।। श्री जिनाय नम ।।

तामिल भाषा में श्री वामनाचार्य विरचित

का

हिन्दी रूपान्तर

हिन्दी टीकाकार

श्री १०८ श्री दि० जैनाचार्य देशभूषण महाराज

आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज ने जो यह मेरु मंदर पुराण की भाषा की है वह बहुत महत्वपूर्ण व उपयोगी है। इस ग्रथ का परिचय तामिल भाषी जनता के अतिरिक्त किसी को न था। इसके प्रकाशन से सभी बन्धु इस पुराण का अध्ययन कर ज्ञान–लाभ करें—इसी भावना से प्रेरित होकर संवत् २०२८ के जयपुर चतुर्मास के समय आचार्य श्री ने इस हिन्दी टीका की रचना की है। इस ग्रंथ की छपाई का पूरा खर्चा श्री मैनादेवीजी बड़जात्या धर्मपत्नी श्री ताराचन्दजी जैन जयपुर ने दिया है तथा कागज आदि निम्न बन्धुओ से प्राप्त हुआ है एतदर्थ सभी को धन्यवाद है।

श्रीमती रामदेईजी टकसाली, जयपुर
श्री जयकुमारजी छाबड़ा, जयपुर
श्री कल्याणमलजी बाणवाले, जयपुर
श्री भागीरथजी नन्दलालजी, जयपुर
कतिपय विभिन्न जैन बन्धु, जयपुर

प्रकाशक

❋ विषय-सूची ❋

मोडर्न पेपर हाउस

चावडी बाजार, दिल्ली–६

द्वारा

श्री गुरुचरणो मे पुष्पाञ्जलि

— श्री —

श्री दिगम्बराचार्य रत्न १०८ श्री देशभूषण जी महाराज

मोडर्न पेपर मार्ट

चावडी बाजार, दिल्ली–६

द्वारा

प्रस्तावना

मेरु मंदर पुराण के कर्ता का नाम और समय

यह ग्रन्थ मेरु मदर पुराण श्री वामनमुनि के द्वारा रचा गया है। इस ग्रथ मे जन्म-स्थान नाम आदि का परिचय उन्होने स्वय कुछ नही दिया है। आदि अगस्त्पर मुनि के शिष्य एक अन्य वामन मुनि हो गये है। और इनके शिष्य अन्य है। परन्तु इस ग्रथ के कर्ता वामन मुनि अन्य मालूम पडते हैं। दूसरे एक वामनमुनि अलकार शास्त्र आदि के रचयिता अन्य थे। दूसरे ग्रथ मे—एलाचार्य कुदकुद के नाम से वामन मुनि का भी उल्लेख पाया जाता है। इसलिये इस मेरु मदर के रचयिता अन्य कोई वामन मुनि हैं, इसमे कोई सदेह नही है। इस ग्रन्थ के कर्ता के रचित ग्रन्थ और इनकी रचना शैली के मनन करने से मालूम होता है कि ये सस्कृत के महान् प्रकाण्ड विद्वान् थे।

इस मेरु मदर ग्रन्थ के पढने से मालूम होता है कि यह तामिलभाषा के भी महान् विद्वान् थे। मद्रास प्रात मे काचीपुर नगर के समीप तिरुपरित कुन्ड्र नाम का एक गाव है। उसमे एक अच्छा पुराना जैन वृषभनाथ भगवान का मन्दिर है। इस मन्दिर मे ग्रन्थकर्ता के चरण और चरित्र को शिलालेख मे उत्कीर्ण किया गया है। परन्तु ठीक पढने मे नही आता है। उस मन्दिर मे कोरा नाम का एक वृक्ष है। उस वृक्ष के नीचे मल्लिषेण मुनि अपरनाम वामन मुनि तथा इनके शिष्य पुष्पसेन—इन दोनो की चरण पादुका वहा विराजमान है। उन चरणो के नीचे पत्थर मे निम्न लिखित श्लोक लिखा हुआ है —

श्रीमत जगतामेकं मित्रसमन्वितम् ।
वंदेऽहृ वामनाचार्य मल्लिषेण-मुनीश्वरम् ।।

इस श्लोक से वामन मुनि का अन्य नाम मल्लिषेण भी प्रतीत होता है।

इन मल्लिषेण मुनिराज ने पचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार, स्याद्वादमजरी इन ग्रथो का तामिलभाषा मे अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त तामिलभाषा मे जो नीलकेशी नाम का ग्रन्थ है, उसकी समयदिवाकर नाम की टीका लिखी है। वे यही वामन मुनि होने चाहिये। इससे मालूम पडता है कि ये वामन मुनि तामिलभाषा के तथा सस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् थे। तथा अपने समय मे सर्वत्र काफी प्रसिद्ध थे।

इन मल्लिषेण मुनि के लिए संस्कृत भाषा मे विद्वान् होने के कारण 'उभयभाषात्मक कवि चक्रवर्ती' ऐसा विरुदावली मे लिखा गया है। क्योकि इन्होने एक जगह ऐसा उद्धृत किया है कि मै तामिल भाषा मे एक ग्रन्थ की रचना करूगा। इससे प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ की रचना के पहले कोई सस्कृत ग्रन्थ की रचना की होगी।

दूसरे एक शिलालेख मे ऐसा लेख मिला है —

श्री मल्लिषेण यति वामनसूरि शिष्य :
श्री पुष्पसेन मुनि पुंगव ....

इस प्रकार इस श्लोक से प्रतीत होता है कि मल्लिषेण और वामन मुनि ये दोनों ही एक मुनि के नाम है। उनके शिष्य पुष्पसेन मुनि है। इससे सब सदेह निवारण हो जाता है।

ये दोनो काचीपुर में आये होंगे। उनके दर्शन करते समय उनके चरण कमलो को भी वहा खुदवा दिया है।

परन्तु उनके काल का निश्चय नही किया जा सकता है। वहां एक दीवाल पर पत्थर पर इतना ही लिखा है कि दुंदुभि नाम सवत्सर मे कार्तिक पौर्णिमा सोमवार महामडलेश्वर हरिहर राजकुमार श्रीमत्पुष्कराज धर्म के लिये वैजप दडनाथ पुत्र जैनोत्तम इन्होंने त्रैलोक्यवल्लभ ऐसे वृषभजिनेन्द्र की पूजा प्रक्षाल के लिए महामडूर नाम का एक गाव प्रबध के लिये समर्पण किया।

उस महामंडूर से छत्र चामर आदि तथा अक्षतादि पूजा की सामग्री आती थी। इस विषय मे उस मन्दिर की दीवाल मे एक श्लोक उत्कीर्ण है।

श्रीमत् वैजपदंडनाथ-तनय सवत्सरे प्रभावे ।
संख्यावान् विरुकप्प-दंडनृपति श्री पुष्पसेनाऽज्ञया ।।
श्री कांची-जिनवर्धमान-निलयस्याग्रे महा-मंडपम् ।
संगीतार्थमचीषीकरच्च शिलयाबद्धं समंतात्स्थलं ।।

इस श्लोक से ऐसा मालूम होता है कि पुष्पसेन मुनि का शिष्य जिनभक्त होना चाहिये ऐसा प्रतीत होता है। विजयनगर नाम के अधिपति राजा हरिहर थे। उनके मत्री दूरिगप्प दन्डनायक थे। उनके गुरु पुष्पसेन मुनि थे। उनके गुरु मल्लिषेण नाम के वामन मुनि थे। ये तीनो एक ही काल मे थे ऐसा प्रतीत होता है। इस ग्रन्थ के कर्ता मल्लिषेण वामनमुनि प्रगट प्रसिद्ध होते है। अन्दाज सात कम ६०० वर्ष आगे थे, ऐसा प्रतीत होता है। इस प्रकार इस ग्रन्थ के परिचय के बारे मे जो हमे मालूम हुआ सो ही लिखा है। पूर्ण परिचय मालूम नही हो सका।

यह ग्रन्थ तामिल लिपि में था। और इस ग्रन्थ का नाम मेरु मदर ऐसा प्रसिद्ध था। इस भाषा का हमे परिचय नही था। परन्तु मन मे इस ग्रन्थ का हिदी भाषा में अनुवाद करने की प्रबल इच्छा बहुत दिनो से हो रही थी। परन्तु इस तामिल भाषा का

परिचय न होने के कारण इस ग्रन्थ का अनुवाद करने मे हम असमर्थ रहे । परन्तु कतिपय दिन बाद हमे ऐसा सयोग मिला कि ब्रह्मचारी माणिक्य नैनार सघ मे सम्मिलित होकर अपने आत्म-कल्याण हेतु अनायास ही पधारे । तब हमने उन्हे क्षुल्लक दीक्षा देकर सघ में सम्मिलित कर लिया और उनका नाम इन्द्रभूषण रखा । तत्पश्चात् उनसे तामिल मे बोलचाल अक्षराभ्यास सतत चालू रहा ।

इससे हमे तामिल के अक्षर पढने का ज्ञान, बोलने की शक्ति साधारणतया प्राप्त हो गई । तत्पश्चात् इनके द्वारा कहे जाने वाले मेरु मदर के अनुवाद कनडी मराठी और हिंदी भाषाओ मे भाषातर अनुवाद, मूलश्लोक का अर्थ भावार्थ जैसा था तदनुसार ही किया गया है । तामिल भाषा मे अनभिज्ञ होने से यदि कोई किसी स्थान पर अशुद्धि रह गई हो तो तामिल भाषा के विद्वान् इसको सशोधन कर लेवे । इस ग्रन्थ के लिखने का प्रयास श्री मिलापचन्दजी गोधा बागायत वालो ने जो कि जयपुर के रहने वाले हैं नि शुल्क किया है । अत हम उन्हे अपना हार्दिक धन्यवाद एवम् शुभाशीर्वाद देते है । अब इस ग्रन्थ का सार विषय लिखा जावेगा ।

—(आ०) देशभूषण

अभिप्राय

जैनाचार्यों की प्रशस्त भावना सदा ही रहती है। वे कभी किसी का बुरा नहीं चाहते है। अपने पर उपसर्ग करने वाले पर भी वे मन मे समताभावो को धारण करते है। जगत मे उनकी समता की कही उपमा नही है। वैर विरोध राग आदि कषायो का सबध एक पक्ष से चलता है। कही दोनो तरफ से भी वैर चलता है। इन ही कषायो से ससार चल रहा है। जिससे सब ही जीव नरक आदि योनियो मे कितनी ही वार जाकर वहा पाप पुण्य के फलो को भोगते हैं। कोई विरले ही जीव ससार से वैराग्य को धारण कर आत्म-कल्याण का पुरुषार्थ करते है। कोई जीव धर्म से अरुचि कर अपने द्वारा ही अपना अहित करता है। ऐसे जीवो की सख्या की कमी नही है। उनको संबोधन करके धर्म मार्ग मे चलाने के लिये ही उपदेशक ग्रन्थ भी लिखे हैं। भव्य जीवो के कल्याणार्थ वहुत परिश्रम किया है। सदा से जिनवाणी चार अनुयोगो के रूप में विभक्त हो रही है। सब से पहले पुण्य पाप का निर्णय करने तथा ससार से वैराग्य उत्पन्न करने के लिये पुण्य पुरुषो की कथा के व्याख्यान रूप प्रथमानुयोग ग्रन्थ प्रथम पदवी मे स्थित होने वालो के लिये बनाये गये है। दृष्टातो के द्वारा मति विशद हो जाती है। इसलिये महान् आचार्यो ने परिश्रम करके सभी अनुयोगो के ग्रन्थो का भव्य जीवो के उपकार के लिये निर्माण किया है। अपने देश की भाषा से साधारण वुद्धिवाले जीव भी लाभ उठावे। क्योकि सस्कृत प्राकृत भाषा तो अध्ययन करने से आती है। अपनी लोकप्रिय भाषा में आचार्यो ने ग्रन्थ प्रस्तुत कर दिये है। परम्परा से आचार्य रचना करते आये हैं। जो आज तक हस्तलिखित ग्रन्थ जैन ग्र थ भण्डारो मे विद्यमान है। मूल सघ की परम्परा तामिलदेश में सब से प्राचीन है। अनेक आचार्यो ने अध्यात्म ग्रथ भी निर्माण किये है। उसी परपरा में श्री मल्लिषेण आचार्य अपर नाम वामन मुनि भी हो गये है। उन्होने मेरु मदर ग्रंथ की रचना की है। इस ग्र थ में पाप पुण्य का फल अच्छी तरह दर्शाया गया है। तामिल देशवासी ही इसका आनद ले सकते थे। श्री १०८ आचार्यरत्न देशभूषण महाराज ने इस ग्र थ की उपादेयता पर ध्यान देकर इसको तामिल भाषा से कनडी भाषा में अनुवाद किया। फिर हिंदी मे अनुवाद किया। श्री महाराज ने इस ग्र थ को लिखने मे गत पूरे जयपुर चातुर्मास का उपयोग किया है। मेरी यह कामना है कि इस ग्र थ का स्वाध्याय कर सब ज्ञान पिपासु वधु पूर्ण आत्महित का लाभ लेवें। इसके संशोधन मे सहयोग मैंने भी दिया है।

ईसरी बाजार
(हजारी बाग)
२८-.२-७१,

जिनवाणी सेवक
शिखर चद जैन शास्त्री
न्याय-काव्य-तीर्थ

॥ मेरु मंदर पुराण कथा का संक्षिप्त सार ॥

ग्रंथ परिचय

प्रथम अध्याय का सार

वैजयंत को मुक्ति दान

इस जम्बूद्वीप के मध्य मे विदेह क्षेत्र सबधी गधमालनी देश मे वीतशोकपुर नाम का नगर था। उस नगर का राजा अत्यत धार्मिक, शूरवीर तथा सभी शत्रु राजाओ के लिये यम के समान वैजयत नाम का था। उस राजा की पटरानी का नाम सर्व श्री था। ये दोनो इन्द्रिय भोग व सुख से अपना काल व्यतीत करते थे। समय पर रानी को गर्भ रह गया। नवमास पूर्ण हो जाने पर पुत्ररत्न का जन्म हुआ। उस पुत्र का नाम सजयत रखा। कुछ समय पश्चात् दूसरे पुत्र का जन्म और हुआ। उसका नाम जयत रखा। बडा होने पर प्रथम पुत्र सजयत का विवाह सस्कार हो गया। तत्पश्चात् कई दिनो के बाद सजयत के पुत्ररत्न उत्पन्न हो गया उसका नाम वैजयत रखा गया। पौत्ररत्न के उत्पन्न होने से आनदोत्सव मनाया गया और याचको को अनेक प्रकार के इच्छा पूर्वक दान देकर उनको सतुष्ट किया।

तव उसी समय अशोक नाम के उद्यान मे भगवान स्वयभू तीर्थंकर का समवसरण आया। उस उद्यान के वनपाल ने राजा को सूचना दी। राजा अपने पुरजन सहित समवसरण मे गया और भगवान के तीन प्रदक्षिणा देकर रूपस्तव, वस्तुस्तव, गुणस्तव तीन प्रकार से स्तुति की। तदनतर भगवान की दिव्यध्वनि द्वारा जीव अजीव आदि सप्ततत्व, नव पदार्थ का स्वरूप समझा। जो भव्य जीव इन तत्त्वो पर पूर्णतया भक्तिपूर्वक श्रद्धान करता है, उसको सम्यक् दर्शन कहते है। उन तत्त्वो जो जानने को सम्यक्ज्ञान और तदनुसार आचरण करने को सम्यक् चारित्र कहते हैं। ये ही रत्नत्रय मोक्ष का मार्ग है। इस प्रकार भगवान ने उपदेश दिया।

राजा वैजयत, सजयत और जयत ने इस उपदेश को सुना और वे तीनो ससार से विरक्त हो गये। उनने अपने पौत्र वैजयत का राज्याभिषेक कर दिया और तीनो ने दिगम्बर जिनदीक्षा धारण की।

दीक्षा के अनन्तर वे वैजयत मुनि एकल विहारी होकर एक पर्वत की चोटी पर जाकर धर्मध्यान मे लीन हुए, शुक्ल ध्यान का चितन किया और शुक्ल ध्यान के द्वारा घातिया कर्मो का नाश कर अर्हत पद को प्राप्त किया और तत्काल केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। तदनतर धरणेंद्र अपने परिवार सहित पूजा के लिये आया। उस समय जयत मुनि ने तपस्या करते समय इन धरणेंद्र को परिवार सहित पूजा करने के लिये आता देखकर

उन्होने निदान वध कर लिया कि मुझको भी इस तपश्चरण के फल से धरणेंद्र के समान फल मिले। कुछ समय वाद जयत शरीर छोडकर धरणेद्र हो गया। कुछ समय के पश्चात् वैजयत केवली ने अघातिया कर्मो का नाश करके सिद्ध पद को प्राप्त किया।

द्वितीय अध्याय

संजयंत मुनि को मुक्ति

वैजयत मुनि को मोक्ष जाने के पश्चात् आये हुए धरणेंद्र आदि देव मोक्ष कल्याण की पूजा करके अपने २ स्थान को चले गये। उस समय सजयत मुनि भी उस मोक्ष कल्याणक की पूजा आदि देखकर अरण्य मे चले गये और ध्यान मे निमग्न हो गये। जिस समय सजयत मुनि ध्यान मे मग्न थे उस समय मुनिराज के ऊपर से आकाश मार्ग से विद्युदष्ट्र नाम का विद्याधर जा रहा था। मुनिराज के तप के प्रभाव से उस विद्याधर का विमान रुक गया। विमान को रुका देख कर वह नीचे आया और देखा कि सजयत मुनि तपस्या कर रहे है। उन मुनि को देखकर वह अत्यत क्रोधित हुआ। और उनको उठा कर लेजाकर विमान मे विठाया और विजयार्द्ध पर्वत के समीप मे बहने वाली कुमुदवती, सुवर्णवती, हेमवती गजवती और चडवेग इन पाचो नदियो के सगम के तटपर ऊपर से पटक दिया और अनेक प्रकार के उपसर्ग किये। मुनि समताभाव से विचार करने लगे कि यह मेरा पूर्वभव का उदय है। मुझे भोगना ही पडेगा। शत्रु मित्र आदि सभी मे समता भाव रख कर ध्यान मे ही मग्न रहे।

उस विद्युद्दष्ट्र विद्याधर ने अपने नगर मे आकर अन्य २ विद्याधरो से कहा कि अपने नगर मे एक दुष्ट राक्षस आया है। यदि यह यहा रहेगा तो हम सब को इस रात्रि में आकर खा जायेगा। इस कारण सब वहा चलो। ऐसा विश्वास दिलाकर विद्याधरो ने उन मुनिराज पर घोर उपसर्ग किया। उनने अनेक प्रकार के उपसर्ग सहन करते हुए धर्म ध्यान पूर्वक घातिया कर्मो का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया। उस समय तीन प्रकार के देवो ने आकर पूजा की। तदनतर अघातिया कर्मों का नाश कर वे मुनि मोक्ष चले गये। तत्पश्चात् धरणेंद्र अनेक देवो सहित आया। यह धरणेंद्र जो पूर्व जन्म का जयत नाम का भाई था, उसने आकर मोक्ष कल्याणक की भक्तिपूर्वक पूजा स्तुति की।

उस धरणेंद्र ने वहा आस पास मे कई प्रकार के शस्त्र पत्थर आदि पडे देख कर तथा विद्युद्दष्ट्र को सपरिवार पडा देख कर अवधिज्ञान से जान लिया कि यह उपसर्ग इस ही विद्युद्दष्ट्र द्वारा किया गया है और उसको लात मारी। उसने क्रोधित होकर विद्युद्दंष्ट्र को व अन्य विद्याधरो को नागपाश से वाध दिया। तब वे अन्य विद्याधर हाथ जोडकर क्षमा मागने लगे कि हमको मालूम नही था—यह मुनि कौन हैं। हम इसके विश्वास पर यहा आगये। और आकर मुनिराज पर उपसर्ग किया हम को क्षमा कीजिये। तब धरणेंद्र को उन पर दया आगई और अन्य विद्याधरो को छोड दिया, और यह कहा कि विद्युद्दष्ट्र

तथा इनके पुत्र परिवार को समुद्र मे डालू गा। उस समय आदित्य नाम का देव लातव कल्प से परिनिर्वाण पूजन करने आगया और धरणेंद्र को क्रोधित तथा विद्यु द्दष्ट्र को नागपाश मे बधा देखकर धरणेंद्र को दयाभाव का उपदेश देना प्रारम्भ किया कि हे धरणेंद्र तुम सज्जनोत्तम धरणेंद्र हो, यह नीच लोग है। इन पर—इतना क्रोध करना ठीक नही, इन पर दया करो। इस सम्बन्ध मे कुछ कहता हू सुनो।

पूर्वकाल मे जब वृषभनाथ भगवान तपस्या कर रहे थे, उस समय नमि और विनमि दोनो राजपुत्र आदिनाथ भगवान के पास आकर कुछ माग रहे थे कि हे भगवन् आपने सब का बटवारा कर दिया, हम उस समय मौजूद नही थे। अब हम को भी हमारा हिस्सा दीजिये। इस प्रकार कहते हुए सगीत रूप मे गाने लगे। तब धरणेंद्र ने अवधिज्ञान से जाना कि ये दोनो भगवान पर उपसर्ग कर रहे हैं। उस धरणेंद्र ने भगवान के पास जाकर कान के समीप मु ह लगाया और उन नमि विनमि से कहा कि भगवान ने मुझ को कान मे कह दिया है मेरे साथ चलो। तदनतर वह धरणेंद्र उनको ले गया और विनमि को विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी मे साठ नगरियो का अधिपति बना दिया और कनक-पल्लव नाम की नगरी को राजधानी बना दिया। और दक्षिण श्रेणी की पचास नगरियो का अधिपति नमि को बनादिया और रथनूपुर चक्रवाल नगर को राजधानी बना दिया। उन दोनो विनमि और नमि को पाचसौ महा विद्या और सात सौ क्षुल्लक विद्या देकर सब विद्याधरो को बुलाकर कह दिया कि आगे से इनकी आज्ञा का पालन करो। ऐसा कह कर वह धरणेंद्र अपने स्थान चला गया। और यह भी विनमि से कहा कि यह विद्यु द्दष्ट्र तुम्हारे ही पूर्ववश का विद्याधर है। इसलिये उसको नष्ट करना ठीक नही है। इसलिए तुम इन पर क्रोध करना छोड दो।

इस बात को सुनकर धरणेंद्र ने कहा कि कर्म रूपी शत्रु को नाश कर मुक्ति गया वह सजयत पूर्वजन्म का मेरा भाई है। उस पर इसने उपसर्ग किया है। मैं इसको नही छोडू गा। तदनन्तर आदित्याभ देव कहने लगा कि यह सजयत तुम्हारा एक ही जन्म का भाई था और दूसरे भवो मे न मालूम तुम्हारा यह कौन था। तुम इन पर कषाय व क्रोध मत करो और कर्म का बध करना ठीक नही है। यदि विचार किया जाय तो ससार मे शत्रु मित्र कोई नही है, सभी समान हैं। व्यवहार मे शत्रु है और मित्र है। निश्चय से इस आत्मा का कोई शत्रु व मित्र नही है। इसलिए ज्ञानी सज्जन लोग राग द्वेष नही करते है। एक जन्म मे हुए, उपसर्ग को देखकर तुम इतना क्रोध करते हो तो पहले भव मे उसने कितने भवो मे इसको दुःख व कष्ट दिये होंगे। उस समय तुमने क्या किया ? यह विद्यु द्दष्ट्र पूर्व भवो मे राजा सिहसेन महाराज का सत्यघोष नाम का मत्री था। राजा ने उस मत्री के मायाचार करते समय कुछ दण्ड दिया था। उस वैर विरोध के कारण क्रोधित आज तक जन्म २ उपसर्ग करता आया है। इन महामुनि ने शात स्वभाव से उपसर्ग सहकर सद्गति प्राप्त की। और अन्त मे मोक्ष पद को प्राप्त किया। और विद्याधरो ने उपसर्ग करके पाप व अपकीर्ति प्राप्त की। इस कारण क्रोध तथा क्षमा का फल आपने भली भाति देख लिया। इसको अपने हृदय मे धारण करो।

तदनतर धरणेंद्र आदित्याभ को देखकर कहने लगा कि इस मुनि को विद्युद्दंष्ट्र ने किस २ भव मे क्या २ उपसर्ग व कष्ट दिए हैं—वे मुझे समझा दीजिये। तदनतर आदित्याभ देव धरणेंद्र से कहने लगा कि सुनो ! तुम क्रोध को शात करो और भगवान को नमस्कार करके मेरे पास आवो, तुम्हे सब वृत्तात कहूगा।

तदनतर इस वात को सुनकर धरणेंद्र भगवान को नमस्कार करके आदित्याभ देव के पास आकर खडा हो गया। तब आदित्याभ देव कहने लगा कि मुक्ति को प्राप्त हुए, यह सजयत मुनि, आप, मैं और विद्युद्दंष्ट्र इन सब की पूर्वभव से आज तक की कथा सुनाता हू। तुम ध्यान देकर सुनो।

तृतीय अध्याय

भद्रमित्र का धर्मश्रवण

इस भरतखड मे सिंहपुर नाम का नगर है। उस नगर के राजा सिंहसेन थे। उनकी पटरानी रामदत्ता देवी थी। उनका सत्यघोष अपर नाम शिवभूति नाम का मत्री था। वह राजा धर्मनीति द्वारा प्रजावात्सल्य पूर्वक राज्य करता था।

उसी नगर के अतर्गत पद्मशख नाम का नगर था। वहा एक सुदत्त नाम का वैश्य था। उनकी स्त्री का नाम सुमित्रा था। सुमित्रा की कूख से भद्रमित्र नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। भद्रमित्र के यौवनास्था प्राप्त होने पर उसका विवाह कर दिया गया। बडा होने पर व्यापार मे कुशल व्यापारी होकर वह रत्नद्वीप मे गया और वहा पर रत्नो और मोतियो का खूब संग्रह किया और कई दिनो बाद वापस लौटकर बहुत द्रव्य सग्रह करके वापस सिंहपुर नगर मे आया। उस भद्रमित्र ने सिंहपुर मे आकर देखा कि यहा के सारे व्यापारी लोग सज्जन हैं। यहा कोई अन्यायी नही मालूम होते, सभी धार्मिक लोग हैं। शहर भी सुन्दर है। ऐसा विचार करके वही व्यापार करने का निश्चय किया और सोचा कि हमारे सारे रत्नो को एक विश्वासी व्यक्ति के पास रख देना चाहिये और अपने नगर मे वापस जाकर अपने कुटुम्ब को लाना चाहिये।

यह विचार करके अपने रत्नो की पेटी वहा के सत्यघोप मत्री के पास लेकर गया और प्रथम भेट मे एक रत्न उस मन्त्री को दिया। वणिक ने एकात मे बुलाकर उस मन्त्री से कहा कि यह रत्नो की पेटी मैं आप के पास रख जाता हू। मैं अपने कुटुम्ब को पद्मशख नगर जाकर लेकर आता हूँ। फिर यह मेरे रत्न वापस ले लू गा। तव मन्त्री ने कहा कि तुम इन रत्नो को मुझे एकात मे लाकर जव कोई भी न हो उस समय लाकर देना, इनको सव के सामने रखना कठिन है। तदनुसार भद्रमित्र वणिक ने स्वीकार कर लिया। तब जैसा मत्री ने कहा था, एकात मे उन रत्नो की पेटी वणिक ने मन्त्री को दे दी और अपने नगर पद्मशख मे जाकर अपने कुटुम्ब परिवार को सिंहपुर में ले आया और एक महल मे उनको ठहरा दिया।

तत्पश्चात् वह वणिक अपने रत्नो को वापस लेने के लिए सत्यघोष मत्री के पास गया। वणिक को देखते ही मन्त्री के मन मे ऐसी दुर्भावना उत्पन्न हुई कि इसको रत्न वापस नही देना चाहिये। व्यापारी ने नमस्कार किया। उसे देखकर मत्री कहने लगा कि तुम कौन हो, कहा से आए हो, क्यो आये हो ? ऐसा पूछने पर भद्रमित्र ने उत्तर दिया कि मै वही भद्रमित्र व्यापारी हू जो रत्नो की पेटी आपको देकर गया था। इस प्रकार सुन कर वह मत्री कहने लगा—क्या तुमने मेरे पास रत्नो की पेटी रखी थी ? भद्रमित्र ने कहा—आपका नाम सत्यघोष है, क्या चार दिन मे रखी हुई पेटी को भूल गये ? तब वह मत्री कहने लगा कि क्या तू बावला है। मैंने तुमको कभी देखा ही नही। पागलपन की बात करते हो। यदि तुमने मुझे रत्नो की पेटी दी थी तो किसके सामने दी थी, उसकी साक्षी कराओ। इस प्रकार मत्री ने कहा।

तब वह भद्रमित्र कहने लगा कि मैंने आपको रत्न देने के बाद आज ही देखा है। और आपने भी आज ही देखा है। केवल चार दिन मे ही आप भूल गये। आपने यह कहा था कि गुप्तरूप से जब कोई भी न हो उस समय लाकर रत्नो की पेटी देना। क्या आप इस बात को भूल गये ? और यह भी आपने उस समय कहा था कि चोरी करना, दूसरे की सम्पत्ति का अपहरण करना महा पाप है। मेरे रत्नो का आपने ही तो अपहरण किया और मुझे उलटा आप चोर और पागल बताते हैं, ऐसा भद्रमित्र ने कहा। तब सत्यघोष को क्रोध उत्पन्न हो गया और उसने अपने कर्मचारी को आज्ञा दी कि यह पागल है, इसको मार पीट कर बाहर निकाल दो।

तत्पश्चात् वह भद्रमित्र अनेक प्रकार से दुखी होकर गली २ में पुकारने लगा कि सत्यघोष ने मेरे रत्नो की पेटी ले ली। यह राजा का मत्री है। ब्राह्मण है, कुलवान है। अब यह मेरे रत्नो की पेटी वापस नही देता है और कहता है कि तू बावला है और मुझे मार कर निकाल दिया। ऐसा पुकारता रहता था।

तब सत्यघोष ने वहा के दुष्ट लोगो से कहा कि इस भद्रमित्र की सारी सम्पत्ति लूट लो और शहर के बाहर इसको निकाल दो। तदनुसार ऐसा ही वहा के दुष्टो ने किया।

भद्रमित्र पुकारने लगा कि पहले ही मेरे रत्नो की पेटी ले ली, बाद मे गुण्डे लोगो के द्वारा मेरी सम्पत्ति लूटली और मुझे नगर के बाहर निकाल दिया। क्या मेरा न्याय करने वाला इस नगर मे कोई नही है ? क्या राजा भी न्याय नही करेगा ? ऐसा कहता हुआ गली २ मे घूमता रहता था।

इस प्रकार की बाते राजा के कान मे पडी तो मत्री को बुलाकर राजा ने पूछा कि यह वणिक क्या बोल रहा है ? सत्यघोष ने उत्तर दिया कि यह तो पागल है, ऐसे ही पुकारता रहता है। इसकी बात पर कोई ध्यान न देवे। मैं तो खुद लोगों को यह कहता हू कि चोरी अन्याय पाप वगैरह नही करना चाहिये, तो मैं स्वय ऐसा काम करूगा ? उस भद्रमित्र ने कोई रत्न मुझे नही दिया, वह झूठा और पागल आदमी है।

इस बात को सिंहसेन राजा ने झूठ मानकर कोई विचार नही किया। तदनन्तर वह भद्रमित्र प्रतिदिन यही कहता रहा कि जिस प्रकार एक बहेलिया चिडिया को पकडने के लिये अपनी बगल मे शस्त्र छिपाकर रखता है कि किसी को मालूम न पडे और जब चिडिया को देखता है तो तुरत ही उस शस्त्र को बगल मे से निकाल कर उसको पकड लेता है, इस प्रकार यह मत्री है। वह रास्ते मे दुखी होकर रोते २ ऐसा पुकारता फिरता था।

पुन उस मत्री ने अपने कर्मचारियो को बुलाकर कहा कि इस भद्रमित्र वरिणक को मारपीट कर इस नगर से बाहर कर दो। तदनुसार उसको मारपीट कर बाहर निकाल दिया।

तब वह भद्रमित्र घबडा कर रात्रि के समय नगर के समीप एक वृक्ष था उस पर चढ गया और प्रात: सूर्योदय होते ही उन्ही पिछली बातो को दुहराने लगा। इस मशा से कि यह शब्द राजा के कान मे पहुँच जाय। राजा ने वह बाते सुन ली और कहने लगा कि यह तो पागल है ऐसे पुकारता है। मन्त्री जो बात कहता है वह सत्य है।

उस सिहसेन राजा की पटरानी रामदत्ता देवी ने विचार किया कि यह आदमी रोज एक ही बात को बोलता रहता है दूसरी कोई बात ही नही बोलता, यदि पागल होता तो और २ बाते भी कहता, रत्नो की बात ही क्यो करता है। वास्तव मे यह पागल नही मालूम होता है। इसकी खोज करना चाहिये। कदाचित् यह बात सत्य भी हो सकती है। इस कारण उस व्यक्ति को बुला कर पूछना चाहिए, ऐसा विचार किया। एक दिन रानी ने भद्रमित्र को बुलाकर सारी बाते पूछी, और सारा हाल जानकर जवाब दिया कि तुम चले जाओ और जो शब्द तुम रोज रटते रहते हो वही पुकारते रहो।

तत्पश्चात् रामदत्ता रानी ने एक दिन सिंहसेन महाराज के पास जाकर उपरोक्त सारा हाल कहते हुए कहा कि इस भद्रमित्र की बातो पर विचार करना चाहिए। इस पर सिंहसेन राजा ने जवाब दिया कि यह तो पागल है, ऐसे ही पुकारता है। इस पर रानी ने कहा कि इस पर कुछ निर्णय करना चाहिये। राजा ने रामदत्ता रानी से कहा कि इस पर तुम खुद ही विचार करो।

रानी ने उत्तर दिया कि यदि आप आज्ञा देवे तो मै इसकी यथार्थ जाच पडताल करू। मुझ मे ऐसी शक्ति है। यदि आप आज्ञा देवे तो मैं मन्त्री के साथ जुआ खेलू और आप मेरे समीप मे बैठे रहे। तब राजा ने आज्ञा दी कि जैसी आप की इच्छा हो वही करे।

तदनतर राजा ने सत्यघोष मन्त्री को बुलवाया। मन्त्री के आने पर रानी न उन के साथ कुछ हास्य विनोद की बाते की और राजा से कहा कि आप अपने मन्त्री की द्यूतक्रीडा की प्रशसा करते हो। मै ऐसा कहती हूँ कि मेरे समान द्यूतक्रीडा खेलने वाला ससार मे कोई नही है। तब राजा ने कहा कि स्त्रिया ऐसा सोचती है कि जैसी क्रीड़ा करने मे हमारी सामर्थ्य है वैसी पुरुषो मे नही है। क्या मत्रीजी ! द्यूतक्रीड़ा मे सामर्थ्य नही रखते

हो ? तब मन्त्री ने जवाब दिया कि मै रानीजी को एक ही दाव मे जुआ मे जीत लू गा। इस बात को सुन कर रानी ने कहा कि प्रथम दाव मे ही मैं इन से जीत लू गी। ऐसी मेरी शक्ति है। दोनो की बाते सुनकर राजा हस कर चुप चाप बैठ गया।

तदनतर रामदत्तादेवी और सत्यघोष मन्त्री दोनो जुआ खेलने लगे। प्रथम दाव मे ही महारानी ने उस मन्त्री की यज्ञोपवीत जीत ली। दूसरे दाव मे उसकी नामाकित मुद्रिका को जीत लिया। तब मन्त्री दोनो दाव मे हार कर दीर्घ श्वास लेता हुआ लज्जित होकर जुआ खेलना छोडने लगा। तत्पश्चात् रामदत्ता देवी ने अन्दर जाकर अपनी चतुर निपुणमति नाम की दासी को एकात मे बुलाकर कहा कि तुम मत्री के महल पर जाकर इस यज्ञोपवीत व मुद्रिका को उसके भण्डारी को जाकर बता देना और कहना कि वह रत्नो की पेटी मत्रीजी ने मगवाई है। तब उस दासी ने मत्री के महल पर जाकर भण्डारी को जाकर वह यज्ञोपवीत और नामाकित मुद्रिका जाकर दिखाई और कहा कि भद्रमित्र की रत्नो की जो पेटी रखी हुई है वह मुझे शीघ्र दे दो, मत्री जी ने मगवाई है। और उसकी निशानी दी है। किसी को भी पता न लगे मुझे तुरन्त ही रत्नो की पेटी दे दो। तब उस भण्डारी ने मुद्रिका आदि को देखकर विश्वास करके रत्नो की पेटी उस दासी को दे दी।

तत्पश्चात् उस निपुणमति ने रत्नो की पेटी लेकर वापस जाकर महारानी को दे दी और सारा बीता हुआ हाल सुना दिया।

रामदत्ता देवी दासी पर अत्यत प्रसन्न हुई और राजा के पास जाकर रत्नो की पेटी उनको दे दी। तब सिहसेन राजा उस मन्त्री के प्रति क्रोधित होकर कहा कि यह महान कपटी व मायाचारी है। और उस मत्री को घर जाने की आज्ञा दे दी।

राजा ने विचारा कि रत्नो की परीक्षा करना चाहिये और एक थाल मगा कर पेटी के रत्न तथा उसमे और बढिया २ रत्न मिलाकर उस मे रख दिए। और भद्रमित्र को बुलाकर कहा कि इन रत्नो मे तुम्हारे कौन से रत्न है। वह निकाल लो। भद्रमित्र ने उन रत्नो मे से अपने जो रत्न थे वह छाट कर निकाल लिये। तब राजा ने कहा कि सत्यघोष ने तुम्हारे रत्न लिये थे इसलिए इन रत्नो मे जो रत्न सत्यघोष के है, तुम उनको भी ले लो तो भद्रमित्र ने जवाब दिया कि मुझे औरो के रत्न नही लेना है। मैं तो अपने ही रत्न ले रहा हू। यदि सत्यघोष के रत्न मेरे पास आ जाय तो मुझे पाप लगेगा और नरक मे जाना पडेगा और हमारे वश का नाश हो जायगा। हमे औरो के रत्न नही चाहिये। मेरे पूर्व जन्म का अशुभ कर्म का उदय था। इस कारण इतने दिन तक मुझे कष्ट सहना पडा, अब आगे के लिये मुझे उसके प्रति कुछ करना नही।

भद्रमित्र की यह बाते सुनकर सिहसेन महाराज ने उसकी महान प्रशसा की और उसको राज्यश्रेष्ठी का पद दे दिया।

तत्पश्चात् राजा ने उस सत्यघोष को बुलाकर पूछा कि यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार की मायाचारी या चोरी करे तो उसको क्या दण्ड दिया जाना चाहिये ? तब मत्री

ने कहा कि ऐसे मायाचारी चोर को एक थाली भरकर गोवर खिलाना चाहिए। अथवा उस पहलवानो को बुलाकर मुक्का घूंसा लगवाना चाहिए। और उसकी सारी सम्पत्ति लेकर नगर से बाहर निकाल देना चाहिए।

यह सुनकर सिहसेन महाराज ने अपने कर्मचारियों को बुलाकर जैसा सत्यघोप ने कहा उसी प्रकार उन्ही को दण्ड दिया और उनके सारे कुटुम्ब परिवार वालो की सारी सम्पत्ति छीन ली और नगर के बाहर निकाल दिया।

इसी प्रकार सत्यघोप मन्त्री भद्रमित्र के रत्नों के अपहरण करने के कारण कुछ समय के लिए पागल हो गया। और तदनंतर राजा के प्रति अनतानुवधी निदान करके यह विचारा कि इसका वदला मैं राजा सिहसेन से लूंगा। और वह आर्तध्यान से मरकर राजा सिंहसेन के खजाने मे अगंध नाम का विषधर सर्प हो गया।

समय पाकर सत्यघोप मन्त्री के स्थान पर धमिला नाम के ब्राह्मण को मत्री पद दिया गया। तत्पश्चात् वह भद्रमित्र वणिक घूमता २ एक बार विमल गांधार पर्वत पर चला गया तो वहा देखा कि वरधर्म नाम के मुनिराज वहा तप कर रहे थे। उनका धर्मोपदेश सुना।

चतुर्थ अध्याय

तदनतर वह भद्रमित्र अपने घर आया और चार प्रकार के दान आदि वह देने लगा। तब उसकी माता सुमित्रा ने कहा कि तुम इस प्रकार यदि दान देकर सम्पत्ति खर्च कर दोगे तो एक दिन सभी धन खत्म हो जावेगा। तब भद्रमित्र ने माता की वात नहीं मानी और वह बरावर दान देता रहा। इसको दान देता देखकर वह सुमित्रा आर्तरौद्र ध्यान करने लगी और वह मर गई। और अंतिग वन मे व्याघ्री उत्पन्न हुई।

एक दिन वह भद्रमित्र उस अंतिग वन मे चला गया। वहा वह व्याघ्री तीन रोज से भूखी वैठी थी, तो तत्काल उस भद्रमित्र को देखते ही पूर्वभव के वैर के कारण उसपर झपटी और मारकर खा गई। भद्रमित्र शुद्ध परिणामो के कारण मर कर भोगभूमि में गया और वहा से आयु पूर्ण करके पूर्वभव के स्नेह के कारण रामदत्तादेवी के गर्भ मे आया और पुत्ररत्न के रूप मे उत्पन्न हुआ।

उस पुत्र का नाम सिंहचन्द्र रखा गया। क्रम से वृद्धि को प्राप्त होने पर वह एक जैन उपाध्याय के पास भेजा गया। वहां धर्म व अनेक शास्त्र-शस्त्र कला आदि मे निपुण होकर घर आया और यौवनावस्था प्राप्त होने पर उसका विवाह हो गया।

तदनतर उस रामदत्ता के एक दूसरा पुत्र और उत्पन्न हुआ। उसका नाम पूर्णचद रखा गया। एक दिन सिंहसेन महाराज अपने खजाने मे चले गये। जाते ही वह अगधनाम

का जो सर्प बैठा हुआ था। उसने पूर्वभव के बैर के कारण महाराज को काट खाया और राजा सिहसेन मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। तब रामदत्ता देवी व उनके दोनो पुत्र वहां आये और देखकर मूर्च्छित हो गये।

उस समय एक प्रसिद्ध मत्रवादी गारुडी को बुलाया गया। उसने मंत्रों के द्वारा विष उतारना चाहा पर विष उतरा नही तो उसने एक हवन कुंड बनवाया और सारे सर्पो को बुलाकर कहा कि इस राजा को किसने काटा है। तुम सब सर्प इस हवन कुड मे कूद जाओ। यदि तुम सच्चे हो तो इसमे नही जलोगे। तत्काल वे सर्प कूद गये और वे उसमे नही जले किन्तु वह विपधर सर्प वहां से नहीं आया। तब उसको बुलाकर कहा कि तुम इस हवन कुंड मे कूद जाओ। वह कूद गया और तत्काल जलकर राख हो गया। और वह मरकर काल नाम के वन मे चमरी मृग हो गया। और सिहसेन मर कर सल्लकी नाम के वन मे अशवनी कोड नाम का हाथी हो गया।

तदनदर राजा सिहसेन के मरने के बाद उनकी पटरानी रामदत्ता देवी प्राण देने को तैयार हुई। वहा रहने वाले सत्पुरुषों ने धर्म का उपदेश देते हुए ससार की अस्थिरता बताकर धर्म मे रुचि उत्पन्न कराई। तब उस महारानी ने कई दिनो के पश्चात् एक दिन अपने दोनो पुत्रो को बुलाया और वडे पुत्र सिहचद्र का राज्याभिषेक कराया। और छोटे पुत्र पूर्णचद्र को युवराज पद दिया। तदनतर दोनो पुत्र धर्मनीति तथा न्यायनीति से राज्य को चलाने लगे।

राजा सिहसेन के मरण के समाचार सुनकर शातिमती और हिरण्यवती नाम की दो आर्यिकाएं रामदत्ता देवी के पास आई। उन दोनो को देखते ही महारानी अत्यन्त शोक करने लगी। उन दोनो आर्यिकाओ ने रामदत्ता देवी को समझाया कि यह ससार असार है। मोह की महिमा है। जहा जन्म है। वहा मरण है अत: तुम शोक करना छोड दो। इससे तिर्यंच गति का बध होता है। यथाशक्ति आप व्रत धारण करके स्त्रीपर्याय को सार्थक करो। यही आपके लिये योग्य है। उस रामदत्ता देवी ने इन आर्यिकाओ से धर्मोपदेश सुनकर वैराग्य भावना मे लीन होकर जिन दीक्षा लेने का विचार किया और अपने पुत्रो को बुलाकर समाचार कहे। इस वात को सुनकर सिहचद्र कहने लगा कि हे माताजी! आप मुझे छोडकर जाना चाहते है! मेरे द्वारा ऐसा कौनसा अपराध हो गया है? रामदत्ता ने पुत्र को समझाया कि हे पुत्र! मुझे आत्मकल्याण करने की भावना जागृत हो गई है, इसमे तुम विघ्न मत डालो। तब पुत्र ने आत्मकल्याण करने हेतु स्वीकृति दे दी। तब रामदत्ता देवी अपने पुत्र की सम्मति पाते ही दोनो आर्यिकाओ के पास जाकर आर्यिका दीक्षा देने की प्रार्थना की। उसी समय वे दोनो राजकुमार अपनी माता के पास पहुँचे और माता के आर्यिका दीक्षा लेने के बाद वे दोनो कुमार घर पर आकर सुख से समय व्यतीत करने लगे।

एक दिन राजा सिहचन्द्र को अपनी माता की याद आई और उसके मन मे वैराग्य की भावना जागृत हो गई। तब एक दिन पूर्णचन्द्र नाम के मुनिराज चर्या के लिये उन

ओर आये तब वह सिहचद्र उन मुनिराज को भक्ति पूर्वक पड़गाह कर अपने घर पर ले गया और नवधाभक्ति सहित उनको आहार दिया।

आहार के पश्चात् मुनिराज को उच्चासन पर विराजमान किया। पूजा अर्चा के बाद विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगा कि हे भगवन्! मुझे मोक्ष प्राप्त करने का उपाय बतलाइये। मुनि कहने लगे जो आसन्न भव्य है, वे मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। अभव्य जीव कभी मोक्ष नही जा सकते। तप दो प्रकार के हैं। एक अन्तरग दूसरा बहिरग। दोनो ही छह २ प्रकार के होते है। अंतरग और बहिरग तप के साथ २ अतरग और बहिरग दोनों प्रकार के परिग्रह को त्याग कर सम्यक्दर्शन सहित मुनिव्रत को धारण किया जाता है। मुनिराज का उपदेश सुनकर वह सिहचन्द्र वैराग्ययुत होकर अपने छोटे भाई पूर्णचद्र को राज्य भार सम्हलाकर दीक्षित हो गये। और दीक्षा लेकर वह सिहचद्र निरतिचार तपश्चरण करते हुए विपुलगति मन.पर्ययज्ञान को प्राप्त हुए और चारण ऋद्धि के धारक हुए।

इधर वह छोटा भाई पूर्णचद्र ससार के विषय भोगो मे लिप्त हो गया और धर्म से अरुचि रखने लगा। इस प्रकार विषय भोगो मे लीन हुआ देखकर वह रामदत्ता आर्यिका उनके पास आई और पूर्णचद्र को धर्मोपदेश दिया। इस धर्मोपदेश को सुनकर ऐसा लगा जैसे बदर को अदरक का स्वाद बुरा लगता है और इधर उधर मुंह बना कर कूदने लगता है। इसी तरह वह पूर्णचद्र भी अरुचि से मुंह बनाकर इधर उधर चला गया। तब रामदत्ता आर्यिका अपने बडे पुत्र सिहचद्र मुनिराज के पास गई और विनय के साथ नमस्कार किया और प्रार्थना की। हे मुनि! पूर्णचद्र धर्म मार्ग मे लगेगा या नही। भव्य है या अभव्य। इसका निरूपण कीजिये। मुनिराज ने कहा कि यह भव्य है धर्म मार्ग पर लग जायगा। इस सबध मे मैं एक कथा कहता हूँ सो सुनो और यह कथा पूर्णचद्र को भी जाकर सुनाओ।

चतुर्थ अध्याय समाप्त

पांचवां अध्याय

मुनि सिंहसेन आर्यिका रामदत्ता व मुनि सिंहचद्र का स्वर्ग गमन तथा पूर्णचद्र को धर्म रुचि उत्पन्न करने के लिए सबोधन

तदनतर वह सिहचद्र मुनिराज कहने लगे—कौशल देश से सबद्ध वृद्धनाम का ग्राम है। उसमे मृगायण नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी स्त्री का नाम मदुरई था। उन दोनो के वारुणी नाम की पुत्री थी।

कुछ समय पश्चात् वह ब्राह्मण मृत्यु को प्राप्त हुआ। अयोध्या नगर का अधिपति अतिबल था। उसकी पटरानी सुमति थी। उस ब्राह्मण का जीव पटरानी के

गर्भ मे आकर हिरण्यवती नाम की पुत्री हुई। यौवनावस्था को प्राप्त होने पर पोदनपुर के राजा पूर्णचद्र के साथ उसका विवाह हो गया। और मदुरई नाम की ब्राह्मण की स्त्री मर कर हिरण्यवती के गर्भ मे आकर पुत्री हुई। वह पुत्री रामदत्ता तुम ही हो। और भद्रमित्र नाम के व्यापारी का जीव मरकर मैं सिहचद्र मुनि मै ही हू और पूर्वजन्म मे जो वारुणी तुम्हारी पुत्री थी वह मर कर तुम्हारे गर्भ से पूर्णचद्र हो गया। इसलिए उस पर आपका गाढ स्नेह है। आगे चलकर वह पूर्णचद सम्यक्दृष्टि होगा। तुम्हारे पिता पूरणचद मुनि दीक्षा लेकर मुझको धर्मोपदेश करके मुझे दीक्षा देकर दीक्षागुरु हो गये। तुम्हारी हिरण्यवती माता ने शातिमति आर्यिका के पास जाकर आर्यिका दीक्षा ली। तुम्हारे पति सिहसेन राजा सर्पदश से मरकर सल्लकी नाम के वन मे अशनीकोड नाम का हाथी हुआ।

एक दिन जव हम पर्वत पर तप कर रहे थे उस समय वह अशनीकोड हाथी क्रोधित होकर मुझे मारने आया। तव मै चारण ऋद्धि के प्रभाव से आकाश मे चला गया और खड़ा रह कर पूर्वभव का स्मरण उस हाथी को करा दिया। हे सिहसेन राजा! तुम पूर्वभव के पाप कर्म के निमित्त से हाथी होकर उत्पन्न हुए। अब उससे भी अधिक पाप कार्य कर रहे हो। जब मैं राजा था, उस वक्त भी मैंने तुम्हे देखा था और आज भी तुम्हे मैं हाथी की पर्याय मे देख रहा हूं। इसलिए आप इस पाप से भयभीत होकर धर्म पर रुचि रखकर सम्यक्त्व धारण करो। मै सिहसेन राजा का पूर्वभव का बडा पुत्र हूं। इस प्रकार सिहचद्र मुनि का उपदेश सुनकर उस हाथी को जाति स्मरण हो गया और खडा होकर एकदम से विनयपूर्वक नमस्कार किया। और उस हाथी को धर्म श्रवण कराया और हाथी ने पाचो पापो को त्याग कर पच अणुव्रत धारण किये। व्रत लेकर वह हाथी मासोपवास पाक्षिकोपवास करने लगा। और सूखा तृण व पत्ते आदि खाकर अपना जीवन पूरा करने लगा। एक वार पाक्षिकोपवास करने की दशा मे केसरी नाम की नदी मे पानी पीने गया था। वहा कीचड में वह फस गया। इस कारण उस कीचड मे से निकलने की शक्ति नही रही। सत्यघोष मत्री का जीव चमरी मृग होकर मरकर कुक्कुट नाम का सर्प हुआ था, वह वहां मौजूद था। उसको पूर्वभव के बैर का स्मरण होकर उसने हाथी को डस लिया। उस विष से वह महान दुखी हुआ और धर्मध्यान मे लीन होकर शातभाव से पच नमस्कार मत्र का स्मरण करता हुआ प्राण त्याग कर सहस्रार कल्प मे सूर्यप्रभ विमान मे श्रीधर देव उत्पन्न हुआ। तब वहां के अन्य देवो ने पास मे खडे होकर जयजयकार करते हुए वाद्यध्वनि की और बहुत सन्मान किया। उस श्रीधर ने अपने मन मे विकल्प किया कि मै कौन हूं कहा से आया हूँ, यह कौनसा क्षेत्र है? उन सबका समाधान अवधिज्ञान द्वारा उसने जान लिया। मैंने पूर्वजन्म मे जो व्रत ग्रहण किया था उस का ही यह फल है कि मै यहा देव हुआ हूँ और यह विभूति मिली है। और यह मत्र परिवार के सेवक देव खडे है।

तदनतर वहां के रहने वाले सामान्य देवो ने उसको नमस्कार करके कहा कि त्रिमजिल नाम की वावडी मे स्नान करके प्रथम जिनेंद्र भगवान के दर्शन करो और यहा

देविया है उनके साथ सुखो का भोग करो। जैसे सामान्य देवो ने कहा उसी प्रकार उस श्रीधर देव ने किया।

राजा का दूसरा धर्मिला नाम का मत्री मरकर वन मे वानर हुआ। और उस कुक्कुट सर्प को बैरभाव से मार दिया। समय पाकर उस पाप के कारण वानर का जीव मरकर तीसरे नरक मे उत्पन्न हुआ। और कुक्कुट से काटा हुआ वह गजराज मरकर सहस्रार कल्प मे देव हुआ। और कुक्कुट सर्प मरकर नरक मे गया।

उस गजराज के मस्तक मे जो गजमुक्ता थे तथा उसकी हड्डी आदि पडी थी उन सबको एक भील इकट्ठा करके ले गया। और धनमित्र सेठ को बेच दिया। धनमित्र सेठ ने उनको राजा पूर्णचद्र को अर्पण कर दिये। राजा ने उन हड्डियो का एक पलग बनवा लिया और पलग के पायो मे गजमोती भरवा दिये और शेष मोतियो की माला बनाकर अपने गले मे धारण कर ली। इस प्रकार वह पचेद्रिय विपय भोगो मे मग्न था।

सिंहचद्र मुनिराज ने इस प्रकार सिंहसेन मुनिराज के पूर्वभव की कथा सुनाई। और कहा कि तुम जाकर अपने छोटे पुत्र पूर्णचद्र को यह कथा सुनाओ। उसका मन धर्म ध्यान मे रुचि वाला हो जायेगा।

तदनतर रामदत्ता देवी सीधी पूर्णचद के कल्याण हेतु गई और सिहचद्र मुनिराज द्वारा कही हुई सारी कथा उनको सुनाई। कथा सुनकर उनको दुख व पश्चाताप हुआ और मृतक गजराज की हड्डियो व मोतियो का बनाया हुआ पलग और माला आदि सबको फेंक दिये। आज तक किये हुए पापो का पश्चाताप करके पचाणुव्रत धारण करके ससार से विरक्त होकर श्रावक के षट्कर्मों मे तत्पर हो गया। तब उसने निदान कर लिया कि यही पुत्र अगले भव मे मेरे गर्भ मे आकर उत्पन्न हो जावे। और रामदत्ता देवी शुभ परिणामो से मरकर महाशुक्र कल्प मे भास्कर प्रभ नाम का देव हुआ। और वहा स्वर्गीय सुखो का अनुभव किया। और वह पूर्णचद्र अपनी आयु पूर्ण करके इसी महाशुक्र कल्प मे वैडूर्यप्रभ नाम का देव हुआ।

तदनतर सिहचद्र मुनि घोर तपश्चरण करते हुए अन्त मे सल्लेखना विधि से शरीर छोड़कर उपरिम २ नवे ग्रैवेयिक मे अहमिंद्र उत्पन्न हुआ। वहा इसकी आयु ३१ सागर की हुई। उसको वहा शारीरिक मानसिक भोग नही है। सब देव प्रवीचार रहित हैं। मुक्त हुए जीव के समान सुख शाति मे रहते हैं और तत्व चर्चा किया करते हैं।

सिहसेन, सिहचद्र, रामदत्ता देवी व पूर्णचद्र आयु पूर्ण करके अपने २ शुभ परिणामो से देवपर्याय धारण का। उस सत्यघोष का जीव घोर दुख पाता हुआ नरको मे गया। आर्तरौद्रध्यान के परिणामो से यह जीव नरक गति, तिर्यचगति को प्राप्त होता है और शुभ परिणामो से मनुष्यगति व देवगति को प्राप्त होता है। इसीलिए सभी लोगो

को चाहिये कि वे आर्त रौद्र ध्यान छोडकर धर्मध्यान मे लीन होवे। यही परपरा मोक्ष का मार्ग है और यही कथा का सार है।

पांचवा अध्याय समाप्त

छठा अध्याय

पुन मध्यलोक मे आकर सिहसेन, रामदत्ता व पूर्णचद द्वारा पूर्वभव के पुण्य के कारण देवगति को प्राप्त होना।

तदनतर देव सुख को भोगते हुए उस रामदत्ता का जीव भास्करप्रभ देव के जब आयु के १५ दिन शेष रह गये तब शरीर की व नेत्रो की काति मलिन हो गई। इससे वह देव डर गया। तब वहा के अन्य २ साथी देवो ने आकर उस जीव को अनित्यादि रूप से ससार का स्वरूप समझाया और इस सबोधन से वह देव अपने हित करने के लिए उद्यत हुआ और धर्मध्यान पूर्वक प्राणो का त्याग किया और मध्य लोक मे आया। जम्बूद्वीप मे भरत क्षेत्र के विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी मे धरणी तिलक नाम का नगर था। उस नगर का अधिपति अतिवेग था। उसकी पटरानी का नाम सुलक्षणा था। रामदत्ता का जीव इन दोनो दम्पतियो के गर्भ मे आकर श्रीधरा नाम की पुत्री हो गई। जब वह पुत्री युवावस्था को प्राप्त हुई तब अलकापुरी के राजा दर्शक के साथ उसका विवाह हो गया था। थोडे समय बाद वह वैडूर्यप्रभ देव आयु के अवसान पर वही से चल कर श्रीधरा के गर्भ मे आकर यशोधरा नाम की पुत्री हुई। यौवनावस्था प्राप्त होने पर भास्करपुर के सूर्यावर्त्त नाम के विद्याधर अधिपति के साथ उस यशोधरा का विवाह हो गया। तब पूर्वभव मे सिंहसेन राजा का जीव श्रीधर देव धर्म ध्यान से आयु पूर्ण करके इस यशोधरा से गर्भ मे आ गया। नवमास पूर्ण होने पर किरण वेग नाम का पुत्र हुआ। वह किरणवेग यौवनावस्था को प्राप्त करके अनेक राज कन्यायो के साथ विवाह करके सुख से भोग भोगने लगा।

एक दिन राजा सूर्यावर्त ने अपने मन मे ससार का स्वरूप विचारा। वे उस विजयार्द्ध पर्वत को छोडकर वहा से नीचे भूमि पर आये तब वहा एक मुनि चन्द्र नाम के तपस्वी तप कर रहे थे। सूर्यावर्त ने इन्हे नमस्कार करके उनका उपदेश सुना। तत्पश्चात् ससार से विरक्त होकर अपने स्थान को गये और वहा जाकर अपने पुत्र को राज्य देकर उनने मुनिराज के पास आकर विधिपूर्वक जिन दीक्षा ले ली।

इस बात को सुनकर सूर्यावर्त की पुत्री तथा उसकी पटरानी दोनो ने गुणवती आर्यिका के पास जाकर आर्यिका दीक्षा धारण की। तदनतर किरण वेग (सूर्यावर्त के पुत्र) ने वैराग्य प्राप्त किया और जिनेन्द्र भगवान के दर्शनो के लिए विजयार्द्ध पर्वत पर स्थित सिद्धायतन कूट के अकृत्रिम चैत्यालय मे गया। और वहा मत्र जिन बिम्बो के

दर्शन करके भक्तिपूर्वक स्तुति की। उस समय उस चैत्यालय मे हरिचद्र नाम के चारण ऋद्धि धारी मुनि विराजते थे। उनको देखकर नमस्कार करके उनके पास बैठ गया। और कहा कि हे भगवन्! धर्म का स्वरूप क्या है? यह मुझको बताइये।

हरिचद्र मुनिराज ने कहा कि सप्त तत्त्व, षट्द्रव्य, सप्तभगी, नय आदि के स्वरूप समझने से तुम्हारे कर्मो का क्षय होकर मुक्ति प्राप्त हो जायगी। इस धर्म को सुनने के पश्चात् उसने ससार से विरक्त होकर जिन दीक्षा लेकर निरतिचार पूर्वक तपश्चरण करते हुए चारण ऋद्धि को प्राप्त कर लिया।

वह किरणवेग तपस्या करते हुए काचनप्रभ नाम की गुफा मे रहते थे। तब श्रीधरा व यशोधरा दोनो ने उन महाराज के पास जाकर धर्म का स्वरूप समझा और वापस अपने घर लौट आई।

तदनतर वह महामुनि उस गुफा मे आ गये और वहा जाते ही देखा कि सत्यघोष का जीव अजगर जो वहा रहता था पूर्वभव के वैर के कारण इन मुनिराज को उसने निगलना शुरू कर दिया। मुनि महाराज ने अपने ऊपर घोर उपसर्ग आया समझ कर ॐ नम सिद्धेभ्य ऐसा बोलने लगे। तब इनकी आवाज को सुनकर वे दोनो आर्यिकाए वापस लौटकर शीघ्र आ गई और मुनिराज के आधे शरीर को अजगर द्वारा निगला हुआ देखकर अवशिष्ट दोनो भुजाओ को दोनो ने खीचना शुरू किया। परन्तु उस अजगर ने अपने बल से मुनिराज के साथ इन दोनो आर्यिकाओ को खा डाला। ये तीनो मरकर कापिष्ठ नाम के स्वर्ग मे उत्पन्न होकर चौदह सागर की आयुष्य वाले देव हो गये। और वह अजगर मरकर चौथे नरक मे गया।

इसका साराश यह है कि पाप कार्य को छोडकर पुण्य कार्य को शक्ति अनुसार पालन करना चाहिए जिससे यह आत्मा ससार मे अधिक समय तक भ्रमण न करता रहे।

छठा अध्याय समाप्त

सप्तम अध्याय

जम्बूद्वीप मे भरत क्षेत्र सम्बन्धी चक्रपुर नाम का नगर है। उस नगर का राजा अपराजित है। उसकी रानी का नाम वसुन्धरा है। अहमिन्द्र नाम के देव ने स्वर्ग से चलकर अपराजित राजा की रानी वसुन्धरा के गर्भ मे जन्म लिया। जन्म लेने के पश्चात् उसका नाम चक्रायुध रखा गया। वह कुमार शस्त्र-शास्त्र आदि अनेक कलाओ मे पारगत हो गया। यौवनावस्था को प्राप्त होने पर उनके पिता ने चित्र माला नाम की राजकन्या के साथ विवाह कर दिया। वह कुमार अपनी स्त्री चित्रमाला सहित विषय भोगो मे खूब

मग्न रहने लगा। कापिष्ठ कल्प मे रहने वाला देव किरणवेग का जीव चित्रमाला के गर्भ मे आया। उसने पुत्ररत्न को जन्म दिया। उसका नाम वज्रायुध रखा गया। क्रम से वह यौवनावस्था मे प्रवेश किया तब पृथ्वी तिलक नाम के नगर का राजा अतिवेग राज्य करता था। उनके प्रियकारिणी नाम की पटरानी थी। रत्नमाला का जीव श्रीधरा था। वह श्रीधर का जीव प्रियकारिणी के गर्भ मे आया। और उसके रत्नमाला नाम की पुत्री हुई। रत्नमाला कुमारी की यौवनावस्था होने पर वज्रायुध से साथ उसका विवाह हो गया।

तदनतर रत्नमाला के गर्भ मे यशोधरा का जीव स्वर्ग से आया, और नवमास पूर्ण होने पर उसके पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। जिसका नाम रत्नायुध रखा गया। रत्नायुध के यौवनावस्था को प्राप्त होने पर राजकन्या के साथ लग्न कर दिया। इस प्रकार अपराजित महाराज अपने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि सभी परिवार को देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए। कई दिनो के बाद एक दिन पिहिताश्रव नाम के मुनिराज उस नगर मे आये। राजा अपराजित ने मुनिराज के पास जाकर भक्ति पूर्वक नमस्कार करके धर्मोपदेश सुना और सुनकर ससार से विरक्त होकर अपने पुत्र को राज्य पद देकर जिन दीक्षा धारण की।

तदनतर वह चक्रायुध राज्य का परिपालन करता हुआ धर्म ध्यान पूर्वक ससार से विरक्त होकर अपने पुत्र वज्रायुध को राज्य भार सम्हलाकर अपने पिता अपराजित के पास मुनि दीक्षा धारण की।

चक्रायुध मुनि अत्यन्त उग्र बारह प्रकार के निरतिचार तप करते हुए बाईस प्रकार की परीषहो को सहन करते हुए तप मे लीन रहने लगे। एक दिन वज्रायुध भी ससार से विरक्त होकर अपने पुत्र रत्नायुध को राज्य भार सम्हला कर अपने पिता चक्रायुध मुनि से जिन दीक्षा ले ली। तदनतर चक्रायुध ने घातिया कर्मो का नाश करके केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। केवलज्ञान प्राप्त होते ही चतुर्णिकाय के देवो ने आकर केवलज्ञान की पूजा की और तत्काल ही मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया।

तब वज्रायुध मुनि ने आकर नमस्कार किया और अपने धर्म ध्यान के हेतु वापस चले गये। वह चक्रायुध केवली पूर्वभव मे भद्रमित्र नाम का व्यापारी था। और सिहचद्र राजकुमार हुआ और तप करके अहमिद्र स्वर्ग मे देव हुआ। तदनतर मध्यलोक मे कर्म भूमि मे आकर चक्रायुध राजा हो गया। और तप करके केवल ज्ञान को प्राप्त करके मोक्ष पद प्राप्त किया।

सप्तम अध्याय समाप्त

अष्टम अध्याय

वह राजा रत्नायुध पचेद्रिय विषयो मे सदैव रत रहता था। [illegible] रहते हुए उस नगर के बाहर के मनोहर नामक उद्यान मे चतुर्मास सहित वज्रदन्त नाम के

मुनि आ गए। उस समय वह मुनिराज त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति के ग्रन्थ का उपदेश कर रहे थे। उस रत्नायुध का हाथी उस उद्यान मे आ गया और उस ग्रन्थ का उपदेश सुनने लगा। उस हाथी का महावत नित्य प्रति मास मिश्रित आहार उसको खिलाता था। किन्तु उस उपदेश को सुनकर उसने उस दिन वह आहार नही खाया। तब महावत ने राजा रत्नायुध से जाकर प्रार्थना की कि राजन्! आज वह हाथी खाना नही खा रहा है। तब राजा ने एक चिकित्सक को उसके इलाज के लिए बुलाया। वह वैद्य महान चतुर था उसने कहा कि इसको कोई रोग तो नहीं है। पूर्वभव का इसको जाति स्मरण हो गया है। यदि परीक्षा करना है तो इसके सामने मास रहित आहार लाकर रखो। तब उसके लिए मास रहित आहार मगवाया गया। उस आहार को रुचि पूर्वक उस हाथी ने खा लिया।

वह रत्नायुध पहले से नास्तिक था किन्तु भगवान के वचनो पर श्रद्धा रखकर उस वज्रदत मुनि महाराज को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके अपने हाथी के सम्बन्ध मे पूछा कि हाथी ने मास मिश्रित आहार किस कारण से ग्रहण नही किया। तदनतर मुनि अपने अवधिज्ञान के द्वारा हाथी के पूर्वभव का हाल समझाने लगे। हे रत्नायुध सुनो—

इस भरत क्षेत्र सम्बन्धी हस्तिनापुर नाम का नगर है। उस नगर का राजा प्रीतिभद्र था। उसकी पटरानी वसुन्धरा थी। उसके प्रीतिकर नाम का पुत्र था। वह राजपुत्र व मन्त्री का लडका सदैव एक साथ मित्रता पूर्वक रहते थे। एक दिन प्रीतिकर व विचित्रमति ने धर्मरुचि मुनिराज के पास जाकर भक्तिपूर्वक नमस्कार करके धर्मामृत सुनकर जिनदीक्षा ग्रहण करली। इन दोनो मे प्रीतिकर मुनि निरतिचार पूर्वक तप करते थे। तप करते २ क्षीराश्रवी ऋद्धि प्राप्त हो गई।

एक दिन ये दोनो मुनि विहार करते २ अयोध्या नगर के उद्यान मे आकर विराजे। वे प्रीतिकर मुनि एक दिन चर्या के लिए नगर मे गये। जाते समय जिस रास्ते से वे जा रहे थे उस जगह एक सुन्दर बुद्धिसेना नाम की वेश्या का घर था। उसके घर के बाहर से जाते समय वह वेश्या उनके सामने जाकर खडी हो गई और नमस्कार करके पूछने लगी कि हे मुनिराज! उत्तम कुल, उत्तम जाति, सत्पात्र दान देने की योग्यता किस धर्म से प्राप्त होती है। मुनिराज ने कहा कि सभी जीवो पर दया करना, स्वनिंदा और दूसरो की प्रशसा करने, शील व्रत पालने, सप्त व्यसनो का त्याग करने आदि व्रतो से उत्तम कुल उत्तम धर्म मिलता है। तदनतर उस वेश्या ने मुनिराज मे अणुव्रत ग्रहण किये और पाँचो पापो आदि का त्याग कर दिया।

तदनतर वह मुनि आहार को आगे न जाकर वापस उद्यान मे उन मुनिराज के पास आ गए। तब उस विचित्रमति मुनि ने कहा कि आज आपको इतना समय कैसे लग गया? तब प्रीतिकर मुनि ने सारे समाचार उन वेश्या सम्बन्धी कह दिये। और यही देर होने का कारण बतलाया। तब विचित्रमति मुनि ने वेश्या का हाल सुनकर उसके प्रति मोह उत्पन्न हो गया। उन्होने पूछा कि वेश्या का घर कहा किस ओर है। इस बात को सुनकर उन्होने अमुक मुहल्ले मे उसका घर है ऐसा बतला दिया।

तब वह मुनि चर्या के लिए नगर मे उसी वेश्या के मकान के बाहर होकर गये तो उस वेश्या ने पहले के अनुसार विचित्रमति मुनि को भक्ति पूर्वक नमस्कार करके पूछा कि हे मुनिवर ! कल जो मैने अणुव्रत एक मुनिराज से लिए थे उसका फल क्या है ? तब मुनिराज ने उसका फल विपरीत बतलाया। इस बात को सुनकर उस वेश्या ने विचारा कि कल जो मुनिराज पधारे थे उनसे आज यह मुनि विपरीत मालूम होते है। मुनिराज ने उसको विपरीत कथाए सुनाई।

कामातुराणा भय न लज्जा

तदनतर उस वेश्या को क्रोध आ गया और अधिक देर तक बात न करके अपने घर वापस चली गई। वे मुनि उस वेश्या से समागम करने का उपाय सोचने लगे।

उस नगर का राजा गधमित्र था। वह मास भक्षण करने का लोलुपी था। वह मुनि उनके रसोइया के साथ जाकर मिला और उससे मिलकर मित्रता करली। वह धूर्त मुनि नित्य स्वादिष्ट मास लाकर उस रसोइया को देता था और उस मास को खाकर वह राजा उस पर प्रसन्न हो गया और कहने लगा कि मैं तुमसे प्रसन्न हू। तुम जो चाहो सो मागो। उसने कहा कि मुझे और कुछ नही चाहिए केवल आपके नगर मे जो बुद्धिसेना वेश्या है उससे मैं विषय भोग करना चाहता हूँ। तब राजा ने तथाऽस्तु कह कर उस वेश्या को बुलाया और उस धूर्त मुनि के सुपुर्द कर दिया। वह धूर्त विषय भोग मे रत हो गया और अन्त मे मरकर वह हाथी की पर्याय मे आया है। अब उसको उस मुनि महाराज के प्रभाव से जाति स्मरण हो गया और इसने मास भक्षण करना छोड दिया। इसीलिए मास मिश्रित आहार नही किया।

तब रत्नायुध को मुनिराज से उपदेश सुनकर ससार से वैराग्य हो गया और जिन दीक्षा धारण करली और उनकी माता रत्नमाला ने भी अपने पुत्र से साथ २ उन मुनिराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली। धर्म ध्यान करते २ समाधिपूर्वक मरण करके ये दोनो अच्युत कल्प मे देव हो गए।

तदनतर उस कुक्कुट सर्प का जीव पाप कर्म के उदय से चौथे नरक मे गया। और वह जीव चार सागर काल तक त्रस पर्याय मे भ्रमण करता रहा। वहा से आयु पूर्ण करके आकर कच्छपुर नगर मे तारण तरण नाम का भील उत्पन्न हुआ। उसकी स्त्री का नाम मगी था। उनके अतिदारुण नाम का पुत्र हुआ।

वह भील एक दिन अपने हाथ मे धनुष बाण आदि लेकर वहां के पर्वत पर गया। वहा देखा कि वज्रायुध नाम के मुनि तपश्चरण कर रहे है। उन पर उस भील ने अनेक प्रकार के घोर उपसर्ग किये। इस उपसर्ग को सहन करते हुए ध्यान मे लीन होकर प्राण छोड सर्वार्थसिद्धि मे जाकर अहमिद्र नाम के देव हुए। और पाप के उदय से आयु पूर्ण करके वह भील सातवे नरक मे गया।

अष्टम अध्याय समाप्त

नवां अध्याय

पूर्णचंद्र व रामदत्ता देवी की कथा

धातकीखड द्वीप के पूर्व भाग मे महा मेरु पर्वत के पश्चिम भाग मे सीतोदा नदी के उत्तरी तट पर गाधिल नाम का देश है। उस देश सम्बन्धी अयोध्या नगर है। उसका अधिपति अर्हदास है। उसकी दो पटरानी थी। जिनका नाम सुव्रता और जिनदत्ता था। वह रत्नमाला का जीव जो अच्युत कल्प में रहता था, सुव्रता रानी के गर्भ मे आया। नवमास पूर्ण होने पर पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। उसका नाम वीतभय रखा गया। और जिनदत्ता के गर्भ मे रत्नायुध का जीव आया वह विभीषण नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वीतभय बलभद्र तथा विभीषण वासुदेव थे, वासुदेव को देखकर प्रतिवासुदेव क्रोधित हो गये और परस्पर मे युद्ध छिड़ गया। तब प्रतिवासुदेव ने वासुदेव की सेना को पीछे हटा दिया। तदनतर वासुदेव ने प्रतिवासुदेव की सेना को युद्ध मे जीत लिया। तव प्रतिवासुदेव ने अपने पास रखे हुऐ चक्ररत्न को चलाया। वह चक्ररत्न वासुदेव के तीन प्रदक्षिणा देकर बाईं ओर खडा हो गया। वासुदेव ने वही रत्नचक्र वापस उन पर छोड़ दिया। तब उस चक्ररत्न ने प्रतिवासुदेव को ही मार दिया।

तदनतर वीतभय और विभीषण दोनो ने उस तीन खड मे रहने वाले सब राजाओ को जीतकर वापस अपने नगर से आकर वे सुख से समय व्यतीत करने लगे।

कुछ दिन पश्चात् वह विभीषण मर गया। और वीतभय ससार से विरक्त होकर वैराग्य भाव रखते हुए जिनदीक्षा धारण करके समाधिपूर्वक मरण करके लातवनाम के कल्प मे देव हुआ। वहा जाकर अवधिज्ञान से जान लिया कि विभीषण दूसरे नरक मे गया है। तव वह वीतभय विभीषण के जीव को सम्बोधन के लिए दूसरे नरक मे गया।

नवम अध्याय समाप्त।

दशम अध्याय

नरक मे वासुदेव द्वारा नारकी को धर्मोपदेश

उस लातव देव ने दूसरे नरक मे जाकर विभीषण के जीव (नारकी) को धर्मोपदेश दिया और पूछा कि हे नारकी जीव ? तुम जानते हो मै कौन हूँ ? मैं पूर्व जन्म मे माधुरी नाम की ब्राह्मण की स्त्री थी उसके तू वारुणी नाम की पुत्री थी। मै दूसरे जन्म मे रामदत्ता देवी हुई और तुम मेरे गर्भ मे पूर्णचन्द्र पुत्र हुए और हम दोनो तपश्चरण करके देव हो गये। तदनंतर मैं वहा से चयकर श्रीधर नाम की पुत्री हुई। दोनो ने कापिष्ठ नाम के कल्प मे देव होकर वहा से आयु पूर्ण करके इस कर्मभूमि मे रत्नमाला नाम की

मै स्त्री हुई । मेरे गर्भ से रत्नायुद्र का जन्म हुआ । हम दोनो ने तप करके अच्युतकल्प मे देव पद प्राप्त किया ।

तदनतर मै गधिला नाम के देश के अयोध्या नाम के नगर मे वीतभय नाम का राजा हुआ और तुम विभीषण नाम का केशव पुत्र हुआ । तुमको अधिक परिग्रहो की लालसा से इस नरक मे आना पडा और मैं तप करके लातव कल्प से आदित्याभ देव हुआ ।

मैने अपने अवधिज्ञान से जाना कि तुम इस नरक मे हो, इस कारण तुमको धर्मोपदेश सुनाने आया हूँ । तुमको इस नरक के दुखो से डरना नही चाहिये । तुम्हारे इस नरक से अधिक दु ख तुम्हारे से नीचे के नरक मे रहने वाले नारकियो को है । मैं पूर्वजन्म मे राजा था, इतना वैभव वाला था, ऐसा विचार मन में मत लाओ और जो अन्य नारकी तुम को कुछ दुख देते हो तो उन पर क्रोध मत करो और यह विचार करो कि यह मेरे अशुभ कर्म का उदय है और सदैव अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु इन पाच परमेष्ठियो का स्मरण रखो । इसीसे तुम्हारा दुख दूर होगा । इस नरक से मैं कव निकलू ऐसा भी विचार मत करो । यदि इस प्रकार तुम शुभ भावनाए रखोगे तो अगले भव मे उच्चकुल मे जन्म लेकर कर्मक्षय करके मोक्ष को प्राप्त करोगे । इस प्रकार जिस तरह तुमको धर्मोपदेश दिया है उसी प्रकार समझ कर उसके अनुसार चलो और यह जिनधर्म ही सुख और शाति देने वाला दयामयी धर्म है । इस प्रकार जो मैंने कहा है उस वात पर विश्वास रखो ।

तत्पश्चात् उस नारकी जीव ने उस देव को नमस्कार करके कहा कि जैसा आपने कहा है उसी प्रकार मै चलू गा और इस प्रकार व देव उसको समझा कर स्वर्ग मे चला गया ।

दशवा अध्याय समाप्त

ग्यारहवां अध्याय

मेरु और मदर का जन्म वर्णन

तदनतर पूर्णचद्र के जीव ने नरको के सम्पूर्ण दु खो को उपशम भाव से सहन किया । जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र मे अयोध्या का अधिपति श्रीवर्मा राजा था । उसके गर्भ से पूर्णचद्र के जीव ने नरक से आकर जन्म लिया । युवावस्था होने पर अनेक २ कन्याओं के साथ विवाह हो गया और विपय सुखो को भोगने लगा ।

इस प्रकार सुख से समय वीतते हुए एक दिन अनत नाम मुनि नगर मे आए । मुनि को नगर मे आया सुनकर उनके दर्शनार्थ गया और भक्ति पूर्वक नमस्कार करके

बैठ गया। मुनिराज के धर्मोपदेश को सुनकर उनको वैराग्य उत्पन्न हो गया। तदनन्तर जिन दीक्षा लेकर निरतिचार तप करके अंत मे सल्लेखना की विधि से मरणकर ब्रह्मकल्प नाम के पाचवे स्वर्ग मे गया।

हे धरणेंद्र सुनो ! पचानुत्तरो मे सर्वार्थसिद्धि नाम के अहमिंद्र लोक मे रहा हुआ वज्रायुध का जीव आकर सजयत हुआ। ब्रह्मकल्प गया हुआ जीव आकर जयत हो गया। जयत ने दीक्षा लेकर एक दिन धरणेंद्र को और उनके पूरे परिवार को देखकर निदान बध किया कि तप के प्रभाव से मैं धरणेंद्र होऊ। सो मरकर वह धरणेंद्र के जीव आपही हैं। सत्यघोष का जीव अतिदारुण है। अतिदारुण का जीव सातवे नरक मे गया। मरकर अजगर हुआ। अजगर की पर्याय से मरकर तीसरे नरक मे गया। वहा से आकर पशु पर्यायो मे जन्म लिया। अनतर जबूद्वीप के भरत क्षेत्र के भूतरमण वन मे मिथ्या तापसी सब मिथ्यादृष्टियो का अधिपति गोश्रृ ग नाम का था। उसकी स्त्री का नाम सगी था। उन दोनो के (सत्यघोष का पुराना जीव) मृग श्रृ ग नाम का पुत्र हुआ। वह भी मिथ्या तपस्वी हो गया। तब अतिसु दर विद्याधर आकाश मे एक दिन जा रहा था। देखकर उसने निदान किया कि मैं भी अगले जन्म मे ऐसा ही विद्याधर हो जाऊ, तब वह मृगश्रृ ग तापसी मरकर विजयार्धपर्वत की उत्तर श्रेणी मे कनकपुर के अधिपति वज्रदत की पटरानी विद्युत्प्रभा से पुत्र हुआ और एक दिन उसने सजयत मुनि को देखकर पूर्वभव के बैर से उपसर्ग किया। मृग श्रृ ग का जीव पूर्वभव मे सत्यघोष था। क्रोध व मायाचार के कारण अनेक कुगतियो मे दुख भोगत हुआ यहा आया। सजयत मुनि पूर्वभव मे सिंहसेन थे। अब संजयंत हैं। सजयत मुनि उपसर्ग सहनकर मोक्ष मे चले गये। सत्यघोष मत्री का जीव अगंध सर्प हुआ, तत्पश्चात् चमरी मृग होकर कुक्कुट सर्प हुआ और तीसरे नरक में गया। वहा से आयुपूर्ण करके चयकर अजगर पर्याय धारण की और चौथे नरक मे गया। वहा से भील की पर्याय मे गया। तत्पश्चात् भील का जीव सातवे नरक मे गया। और सर्प हो गया। वहां से तीसरे नरक मे गया। अनतर मध्यलोक मे आकर मृगसिह नाम का तापसी हुआ। तदनतर अत में विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर होकर धरणेंद्र के पास आया।

वह सिंहसेन राजा हाथी की पर्याय धारण कर आयु पूर्ण करके सहस्रार कल्प मे देव हुआ। तदनंतर मध्यलोक मे किरणवेग राजा हुआ। आयु पूर्ण करके कापिष्ठ कल्प में देव हुआ। तत्पश्चात् मध्यलोक में आकर वज्रायुध नाम का राजा हुआ। तदनतर पचाणुत्तर कल्पातीत मे देव हुआ। वहा से चयकर सजयत नाम का राजा होकर तपश्चरण करके मोक्ष चले गये। इसलिये हे धरणेंद्र इस विद्युद्दंष्ट्र को नागपाश से मुक्त करो। इस प्रकार आदित्याभ देव ने कहा। तब धरणेंद्र ने आदित्याभ देव को देखकर कहा कि आपने नरक मे आकर मुझे धर्मोपदेश दिया। उसके अनुसार चलने से मैंने धरणेंद्र पद को प्राप्त किया। तब धरणेंद्र ने कहा कि मैं इस विद्याधर को ऐसे नहीं छोडू गा। इसकी सब विद्याओ को छेद करू गा तब छोडू गा। इस बात को सुनकर आदित्याभ देव ने कहा कि मैंने जो कहा है कि इसको छोड दो इसमें तुमको तर्क नही करना चाहिये। इनके अपराध को क्षमा कर दीजिये और आगे ऐसी विद्याओ को पुरुषवर्ग

साधन न करे और केवल स्त्रिया ही ऐसी विद्याओ को प्राप्त करे। यदि सजयत मुनि के मोक्ष स्थान पर स्त्रिया आकर मत्र की साधना करे तो अवश्य मत्र सिद्ध हो जावेगा। वहा जाकर उनका मदिर बनाना चाहिये। यदि ऐसा नही करोगे तो सभी विद्याधर मनुष्यो को कष्ट देगा और इस ह्रीमत नाम के पर्वत पर सजयत नाम की प्रतिमा की स्थापना करके पच कल्याणक प्रतिष्ठा कराओ। तदनतर वह धरणेंद्र देव अपने भवन लोक मे चला गया।

आदित्याभ देव उस विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर को देखकर कहने लगा कि अब तुम पूर्वभव के वैर को छोडकर उनके चरणो मे भक्ति पूर्वक नमस्कार करो। एक भव मे बैर करने से तुमको अनेक जन्मातर मे भ्रमण करना पडा। इस कारण तुम इस सजयत मुनि सिद्ध भगवान की पूजा स्तुति करके अपने द्वारा किये हुए अपराधो की क्षमा मागो और कहो कि मैने अविवेक से जो आज तक अपराध किए है वह क्षमा करिये। इस प्रकार वह विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर क्षमा माग कर नमस्कार करके अपने स्थान को चला गया और आदित्याभ देव अपने लातवस्वर्ग मे चला गया।

ग्यारहवां अध्याय समाप्त

बारहवां अध्याय

आगे रामदत्ता का जीव आदित्याभ देव हुआ। पूर्णचद्र का जीव धरणेंद्र हुआ। इन दोनो के भावी भावो की कथा कहता हू।

इस भरत क्षेत्र मे उत्तर मथुरा नगर का अधिपति राजा अनतवीर्य था। उनके दो पटरानी थी। एक रानी का नाम मेरु मालिनी तथा दूसरी पटरानी का नाम अमृतमति था। मेरुमालिनी रानी के गर्भ मे आदित्याभ देव का जीव चयकर आया। उसका नाम मेरु रखा गया। अमृतमति रानी के गर्भ मे धरणेंद्र देव ने आकर जन्म लिया। इसका नाम मदर रख दिया। ये दोनो राजकुमार सभी कलाओ में व विद्याओ मे प्रवीण होकर यौवन को प्राप्त भए। परन्तु इन दोनो ने ससार को असार समझ कर द्वादशानुप्रेक्षा का चितवन किया। एक दिन श्री विमलनाथ तीर्थंकर भगवान विहार करते २ उत्तर मथुरा के निकट उद्यान मे पधारे। चतुर्णिकाय देव से निर्मित स्थान पर समवसरण सहित वहा भगवान आकर विराजमान हुए। इसको देखकर वहा के रहने वाले वनपाल ने नगर मे जाकर दोनो राजकुमारो को निवेदन किया। तब दोनो राजकुमारो ने अपने शरीर पर धारण किये हुए आभरणो को वनपाल को देकर सात पैड आगे जाकर नमस्कार किया। पूजा करने के लिये अष्ट द्रव्यो को लेकर अपने हाथी पर बैठकर समवसरण देखने को अपने उद्यान मे चले गये।

बारहवां अध्याय समाप्त

तेरहवां अध्याय

समवसरण वर्णन

मेरु और मदर दोनों ने जब अपने नेत्रो से दूर से ही समवसरण को देखा तब वे दोनो हाथी से उतर कर पैरो से चलकर द्वादश योजन विस्तार वाले उस समवसरण मे पहुँचे। समवसरण का उत्सेध पाच हजार धनुष था। बीस हजार सोपान (सीढिया) थे। समवसरण की प्रथम भूमि प्रासाद चैत्य भूमि मे चलकर चारो महा दिशाओ मे चार मार्ग थे। उनमे से प्रथम मार्ग मे स्थित मानस्तभ को प्रणाम पूर्वक प्रदक्षिणा देकर चले। इसी प्रकार अन्य तीन मानस्तभो को प्रणाम पूर्वक प्रदक्षिणा देकर मान कषाय को छोड़कर समवसरण के अन्दर प्रवेश कर वहाँ रही हुई खातिका का घुटन प्रमाण जल समुद्र की तरह देखा। उस खातिका मे समभूमि थी। और उस खातिका मे फूल लता आदि बहुत चीजे थी। इस प्रकार द्वितीय भूमि को देखने के अनतर गोपुर द्वार के अन्दर जाकर तीसरे कोट को देख लिया। वह लताभूमि थी। वहा उदेतरवेदी और गोपुर द्वार मे प्रवेश कर आगे भीतर रहने वाली वनभूमि, रहा हुआ चैत्य वृक्ष और स्तूप आदि और मार्ग मे मिलने वाली नाटकशाला आदि देखकर उसके अन्दर रहा हुआ प्रीतिकर गोपुर और वेदी को देखकर और भीतर जाकर पाचवी ध्वजभूमि देखी। जिसमे दस प्रकार के चिन्हो सहित ध्वजाए थी। ध्वजभूमि देखकर अन्त मे रहे हुए कल्याणतर वेदी और गोपुर के दर्शन कर उसके अन्दर छठा प्राकार कल्पवृक्ष भूमि और वहा के रहने वाले मुनि आदि महाराजो को आनन्द से नमस्कार कर आगे चला। फिर मध्य मे आने वाली गृहागण भूमि मे रहने वाले स्तूपो को देख कर नमस्कार कर और भी वहा विद्यमान जयास्त्र व मडप व महोदय मडप देखा। इस प्रकार देखकर सप्त प्राकारो को क्रम से देखकर इसके आगे रहने वाले लक्ष्मीवर मडप मे गोपुर द्वार से घुसकर यहा रहने वाले द्वादश सभा के गणो को देखकर अनतर मध्य मे स्थित चक्रपीठ, त्रिमेखलापीठ के प्रथम पीठ मे चढ़कर प्रदक्षिणा करके अनन्तर द्वितीय पीठ ध्वजपीठ के दर्शन करके अनंतर तृतीय पीठ गंधकुटी मडप मे सिंहपीठ ऊपर चतुर्मुख धारण किये हुए अष्टप्रातिहार्य (छत्रत्रय, अशोक वृक्ष, दुदुंभि, प्रभामडल, पुष्प वृष्टि, दिव्यध्वनि, चामर, सिंहासन) छत्रत्रय विभूषित चामर आदि ढोरते हुए कोटि सूर्यचंद्र प्रकाश को भी जीतकर प्रकाशित हुए। अनत ज्ञानादि चतुष्टय मडित विमलनाथ तीर्थंकरके दिव्य रूप को देखकर आनंद से उनकी स्तुति गुणस्तुति, वस्तुस्तुति करके गणधर कोष्ठ मे जाकर दीक्षा देने की प्रार्थना की। सर्वसघ का परित्याग कर जिन दीक्षा लेकर निरतिचार सम्यक् चारित्र को पालन करके सप्त ऋद्धि से युक्त श्रुत केवली हुआ। तत्पश्चात् लोक स्वरूप, ज्ञान प्रमाण, मिथ्यात्व-स्वरूप, कर्मास्रव के कारण बने हुए ससार स्वरूप और मोक्षस्वरूप आदि को अपने श्रुतज्ञान के बल से बियालीस परमागम को बनाकर अपने मुख से सब लोगो को उपदेश दिया।

श्री विमलनाथ तीर्थंकर के मेरु मदर आदि गणधर पचपन थे। पूर्वधारी मुनि एक हजार सौ थे। अवधिज्ञानी मुनि चार हजार नव्वे थे। विक्रियाऋद्धि प्राप्त मुनि

नौ सौ थे। सपूर्ण सम्यक् दृष्टि श्रावक छह हजार आठ सौ थे। नव सम्यक् दृष्टि पुरुष तीन लाख चौसठ हजार थे। सब श्रावक दो लाख थे। श्राविका चार लाख थी। आर्यिका एक लाख तीन हजार थी।

श्री विमलनाथ भगवान के गण मे श्रेष्ठ रहे हुए मेरु मदर दोनों अपने कर्मों को नाश करने के लिये सोच कर उस गण को छोडकर एक पर्वत शिखर पर गये।

तदनतर दशधर्मो मे लीन होकर, पंच समिति, त्रिगुप्ति बाईस परीषहों को को निरतिचार पालन करते हुए आत्म-भावना मे लवलीन होकर अप्रमत्त गुणस्थल मे बढकर सप्त प्रवृत्तियो को नाशकर क्रम से प्रथम द्वितीय शुक्ल ध्यान से घातिया कर्मो को नाशकर केवली होकर अनत चतुष्टय को प्राप्त हुए।

तब तुरत ही चतुर्णिकाय के देवो ने आकर केवलज्ञान की पूजा की। तब मेरु और मदर दोनो ने अघातियां कर्मों को नाश करके मोक्ष पधार गये। चतुर्णिकाय देव निर्वाण कल्याण की पूजा करके अपने २ स्थान चले गये।

इस प्रकार मेरु और मदर पुराण समाप्त हुआ। जो भव्य प्राणी इस पुराण को पढता है व सुनता है वह क्रम से ससार से विमुक्त होकर शीघ्र मुक्ति को प्राप्त होता है।

श्रीपतिर्भगवान् पुष्पाद् भक्तानां वः समीहितम्।
यद्भक्तिः शुल्कतामेति भुक्तिकन्याकर गृहे ॥

शुभ भवतु शभवतु

॥ श्री जिनाय नम॰ ॥

श्री वामनाचार्य विरचित तामिल भाषा का मूल ग्रन्थ

मेरु मंदर पुराण

हिन्दी टीकाकार

(श्री आचार्य देशभूषण महाराज)

मंगलाचरण

कुट्रंगलिल्लान् गुणत्ता निरैंदान् गुणत्तान् ।
मट्रिद वैयमळंदान् वैय निड्र पेट्रि ॥
मुट्र मुरैत्तानुरैईरोंब दाय दोंड्रार ।
सेट्रगंडी पनि् विमलन् शरण शैन्नि वैत्तेन् ॥१॥
मेदक्क ज्योति विमलन् गणत्तुक्कु नामर् ।
मादक्क कीर्ति युयर् मंदर मेरु नामर् ॥
पोदक्कडलार् पुराणघोरुळान् मनत्तंच ।
सोदिक्क लुट्रंन् तमिलाळोंड्र सोल्ल लुट्रेन् ॥२॥

पंच परम पद कूं प्रणमि श्रुत को नमि हितकार ।
मदर मेरु पुराण की भाषा लिखिहूं सार ॥
विमलनाथ श्री विमल ज्ञान से, हने घाति अघात ।
पाए महा अष्ट गुण तुमने, सिद्धन के सुख नाथ ॥
श्री 'देशभूषण' त्रियोगकर, वन्दे विमल महान ।
करे भाषा तामिल की, मंदर मेरु पुरान ॥

ग्रथकार ने ग्रंथ के निर्माण की आदि मे श्री १००८ विमलनाथ तीर्थकर को नमस्कार किया है। वह विमलनाथ तीर्थकर कैसे है सो कहते हैं—विभाव परिणति से उत्पन्न हुए राग-द्वेष मलिनता से रहित और स्वभाव गुण से युक्त, अनन्त गुणो से परिपूर्ण है, लोकालोक को जानने वाले हैं और देखने वाले हैं। तीनो कालकी चराचर वस्तु को भी एक ही समय मे जानने वाले तथा देखने वाले हैं। ऐसे श्री विमलनाथ तीर्थकर के चरण कमलो मे मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ कि मेरे द्वारा निर्माण किये जाने वाले ग्रथ को समाप्ति निर्विघ्नता पूर्वक हो।

भावार्थ—श्री वामनमुनि ने इस श्लोक मे प्रथम मगलाचरण द्वारा भक्ति पूर्वक श्री १००८ विमलनाथ तीर्थकर को नमस्कार किया है कि ग्रथ की समाप्ति निर्विघ्नता पूर्वक हो। श्री विमलनाथ कैसे हैं ? वे विमलनाथ तीर्थकर, अनादि काल से जो आत्मा के साथ शत्रु के समान लगते आ रहे है, आत्मगुणो को तथा उनके बलको दबाकर नरकादि चार गतियो मे भ्रमण कराने मे अत्यत बलवान हैं और हमेशा आत्माको दुख उत्पन्न कराने वाले हैं, ऐसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय इन चार घातिया कर्मो को नाश करके केवलज्ञान कर युक्त है, जो अंतरंग और बहिरंग लक्ष्मी से सुशोभित है और जो इद्रो के द्वारा पुजनीय है; भूत भविष्यत और वर्तमान इन तीनो काल की चराचर वस्तुओ के एक ही समय मे एक साथ जानने वाले तथा समझने वाले हैं, तथा केवलज्ञान रूपी अतरग लक्ष्मी और देवो द्वारा निर्मित समवसरण रूप बहिरग लक्ष्मी इन दोनों लक्ष्मी से सहित हैं अर्थात् अठारह दोषो से रहित है।

समस्त बारह सभा मे स्थित मनुष्य देव तिर्यंच (पशु पक्षी) आदि सर्व जीवो को अपने दिव्य-ध्वनि के द्वारा सातसौ अठारह भाषाओ मे सुनाते हैं। वे सर्व जीव अपनी भाषाओ मे सुनकर अपने जीवन को सुधार लेते हैं। और कैसे है विमलनाथ भगवान ! जन्म मरण से रहित हैं। पुन ससार मे आने वाले नही हैं, अत: सच्चे देव होने से इनके उपदेश से जीवो का उद्धार होता है। जो पुनः पुनः ससार मे आकर जन्म मरण के आधीन होते हैं वे ऐसे सच्चे देव कैसे हो सकते हैं ?

ऐसे विमलनाथ भगवान को मैं साष्टाग नत मस्तक होकर नमस्कार करता हू।

प्रश्न—वामन मुनि ने कौन से धर्म का उपदेश किया ? संसार मे ३६३ मत हैं अथवा ३६३ धर्म वाले हैं उन्होने भी धर्म का उपदेश अपने २ शिष्यो को व अनुयायियो को दिया और देते आए है और वे भी इसी धर्म के द्वारा ससारी जीवो का उद्धार हो ऐसी कामना करते हैं और इसी प्रकार जैन धर्म और जैनाचार्य भी भव्य जीवो के हित के लिए धर्मोपदेश देते हैं; क्योकि भिन्न भिन्न मतो वाले अपने माने हुए मत के अनुसार उपदेश देते आ रहे हैं। वे भी कहते है कि हमारे देवों ने भी सम्पूर्ण प्राणियो को उपदेश देने का मार्ग बतलाया है। अब कौनसे धर्म से हमारा आत्म-कल्याण हो और कौनसा धर्म ग्रहण करना है ? इसका स्पष्टीकरण किया जाय ताकि वही धर्म मैं ग्रहण करूँ।

उत्तर—सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री समन्त भद्र ने धर्म का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम् ।
ससारदु:खत: सत्त्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे ।। (र० श्रा०)

अर्थ—ससार के दु:खो से बचाने वाले आत्मा के परिणाम अथवा आचरण को धर्म कहते है।

इस प्रकार श्री विमलनाथ तीर्थंकर भगवान ने अपनी दिव्य ध्वनि के द्वारा उपदेश दिया है।

प्रश्न—जैन धर्म मे ही ऐसी क्या महत्ता व विशेषता है कि वही धर्म सच्चा है और माननीय है ? ऐसा प्रतीत होता है कि यह अपने जैन धर्म की महानता तथा अपने मत की पुष्टि करते है और अन्य धर्म की लघुता बतलाने के लिए ही इस प्रकार तुमने प्रयत्न किया है।

उत्तर—हमारे जैन धर्म मे किसी भी प्रकार का आक्षेप व पक्षपात नही है। आचार्यो ने जो सच्चा धर्म बतलाया है उसका मै प्रतिपादन करू गा। क्योकि जिस धर्म मे अहिंसा का सर्वोपरिस्थान हो, समस्त जीवो का जिस धर्म के द्वारा कल्याण होता हो, और जो धर्म दया से युक्त हो, जिस धर्म के धारण करने से प्राणी मात्र का कल्याण होता हो, वही धर्म दयामई धर्म है। "अहिंसा ही परम धर्म है।" जैनाचार्य पक्षपात रहित धर्मोपदेश करते हैं। "गुण" निम्न प्रकार होना चाहिए–कहा है कि:—

यो विश्वं वेद–वेद्यं जनन जलनिधेर्भंगिन: पारदृश्वा।
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलंकं यदीयम्।।
तं वदे साधुवद्य निखिलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषत।
बुद्धं वा वर्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिव वा।।

अर्थ—जो जानने योग्य, जगत को जानता है और जो नाना प्रकार के शोक भय, पीडा, चिन्ता, अरति. खेद आदि रूप तरंगो वाले संसार रूप समुद्र के पार को देख चुका है और जिसका पूर्वापर विरोध रहित है, निर्दोष उपमा रहित वचन है। रागादि दोष रूपी शत्रु के नाशक समस्त गुणो के प्रकाशक, वडे वडे मुनीश्वरो द्वारा वन्दनीय हैं उस महान परमात्मा को मैं वंदना, नमस्कार तथा स्तुति करता हू। चाहे वह वुद्ध हो. वर्द्धमान या ब्रह्मा हो अथवा विष्णु, महादेव कोई भी हो। तात्पर्य यह है कि जिसमे सर्वज्ञता हो, सर्वदर्शिता हो हितोपदेशिता हो, वीतरागता हो, वही हमारा इष्ट है, और उसे ही हम नमस्कार करते है। वह नाम से वुद्ध वर्द्धमान ब्रह्मा, विष्णु और महेश कोई भी हो. हमे नाम से कोई विवाद नही है। जो रागी हो द्वेषी हो मोही हो भय से युक्त हो, आशावान हो वह देव नही कहलाता है:—कहा भी है—

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन, नान्यथा ह्याप्तता भवेत्।। (र० श्रा०)

अर्थ—निश्चय से अठारह दोष रहित, वीतराग, सर्वज्ञ और हेयोपादेय का विश्वास उत्पन्न कराने वाले शास्त्र का प्रतिपादक आप्त होना चाहिए, क्योंकि इससे विपरीत प्रकार अर्थात् १८ दोष रहित विना सत्य आप्तता नही आ सकती।

क्षुत्पिपासा—जरातंक—जन्मान्तकभयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥ (र० श्रा०)

अर्थ—जिस देव मे क्षुधा, तृषा, जरा, रोग जन्म मरण भय मद राग द्वेष मोह और चिन्ता, अरति निद्रा, आश्चर्य, विषाद, स्वेद और खेद यह अठारह दोष नही होते हैं वह आप्त कहा जाता है।

परमेष्ठी परं ज्योतिर्विरागो विमलः कृति।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥ (र० श्रा०)

अर्थ—इन्द्रादि द्वारा बन्दनीय, परम पद में स्थित, ज्ञान का धारक भाव कर्म रहित, मूल और उत्तर कर्म प्रकृति रूप मल रहित सम्पूर्ण हेय तथा उपादेय तत्त्वका ज्ञानी, समस्त पदार्थो का यथार्थ ज्ञाता, उक्त आप्त के प्रवाह की अपेक्षा आदि मध्य और अन्त रहित, सबके हित के लिये इस लोक और पर लोक के उपकार मार्ग का व्याख्यान करने वाला, पूर्वापर विरोधादि दोष रहित, समस्त पदार्थो का यथार्थ स्वरूप का वक्ता, हितोपदेशी कहा जाता है। इस प्रकार इन आप्त या वीतराग भगवान के द्वारा कहा हुआ धर्मका मार्ग सदैव जीवो का कल्याण करने वाला है। इसलिये इनके द्वारा कहा हुआ धर्म ससारी प्राणी को संसार रूपी समुद्र से निकाल कर सुखमय स्थान में रखने वाला है। इसलिये इन श्री विमलनाथ तीर्थंकर ने आत्मा को घात करने वाले ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और अतराय ऐसे चार घातिया कर्मो का नाश कर जीवन मुक्त अवस्था अर्थात् केवलज्ञान को प्राप्त किया है। इस कारण इनको आप्त, सर्वज्ञ, वीतराग तथा हितोपदेशी कहते हैं। और तीन विशेषण अर्हत श्री विमलनाथ भगवान मे पाये जाने से ये सच्चे देव हैं। इसलिये प्रथम ग्रंथ के आरम्भ मे इनको नमस्कार किया गया है। इस सम्बन्ध मे पात्रकेशरी स्तोत्र मे भी अर्हत भगवान की महिमा बताई है —

परिक्षपित कर्मणस्तव न जातु रागादयो।
न चेन्द्रिय विवृत्तयो न च मनस्कृता व्यावृतिः ॥
तथापि सकलं जगद् युगपदञ्जसावेत्सि च।
प्रपश्यसि च केवलाभ्युदित दिव्य सच्चक्षुषा ॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र आपने मोहनीय आदि कर्मो का नाश कर दिया है इस-लिये आपके कभी भी रागादिक दोष नहीं होते है। केवलज्ञान का प्रकाश हो जाने से आपके मतिज्ञान व श्रुतज्ञान नही रहा है। इसी से न इन्द्रियों का व्यापार है न मन की सकल्प विकल्प रूप चचल क्रिया है, तथापि आप केवल ज्ञान मई दिव्य चक्षु से सर्व विश्व को एक साथ जानते व देखते हो। आपकी महिमा अपार है।

प्रश्न—ग्रन्थकार ने प्रथम तीर्थंकर या अन्य तीर्थंकरो को नमस्कार न करके इन्ही श्री विमलनाथ तीर्थंकर को क्यो नमस्कार किया है ?

उत्तर—हमको ऐसा भाव भासित होता है कि ग्रन्थ-कर्त्ता को इन भगवान का स्मरण विशेष रूप से था तथा जिनका वे पुराण लिख रहे है वे दोनो मेरु और मन्दर इन्ही भगवान के गणधर थे। इसलिए इन भगवान को नमस्कार किया है। तथा सामान्य रूप मे यदि विचार किया जाए तो ग्रथकार ने जिन गुणो को नमस्कार किया है वे गुण सभी भगवंतो मे विराजित है अत. उन्होने इन गुणो को कहते हुए सभी तीर्थंकरों को नमस्कार किया है। अब यह मेरु और मदर कौन थे इनका आगे चलकर विवेचन होगा।

ग्रथकार ने इस श्लोक मे अपना लघुत्व प्रकट करते हुए कहा है कि इस ग्रथ की रचना करने से मुझे कोई इनके प्रतिफल की, ससार की तथा अन्य वस्तु की कामना नही है; किन्तु जिस प्रकार श्रीविमलनाथ तीर्थङ्कर ने अपने तप के द्वारा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय व अन्तराय इन चारो कर्मो का नाश कर केवल ज्ञान ज्योति अर्थात् आत्मज्योति को प्राप्त की तथा जगत् की सर्व आत्मा को जगा कर सच्चा मार्ग दिखाया है उसी प्रकार मैं "वामन" मुनि इन्ही के समान उन्ही महानुभावो की पुनीत कथा की रचना करने से इस वाणी रूपी स्तुति के द्वारा मेरे अन्दर अनादिकाल से मोह अविद्या अज्ञान रूपी अन्धकार मे छुपी हुई आत्म-ज्योति प्रकट होकर इस ससार रूपी अटवी से मुक्त हो जावे, इस हेतु से श्री विमलनाथजी तीर्थङ्कर के समवसरण सभा मे जो मुख्य प्रसिद्धि को प्राप्त हो चुके हैं, मुखी हैं और तीन लोक के भव्य जीवो के द्वारा पूजा के योग्य हुए ऐसे मेरु और मन्दर के नाम के जो गणधर शास्त्र समुद्र के पारगामी होकर भव्य जीवो को कल्याण का मार्ग वता दिया है ऐसे महान पवित्र पुराण पुरुषो की कथा लिखने के लिये मेरे मन को अत्यन्त परिशुद्ध कर के मन वचन काय के द्वारा इस तमिल भाषा ग्रन्थ की रचना का प्रारम्भ करता हूँ।

विशेष विवेचन—ग्रथकार ने भव्य प्राणियो के लिए ससार की विचित्रता और ससार शरीर भोग सम्वधी वस्तुओ का परिचय करने के लिये सबसे पहले पचेन्द्रिय विषय मे मग्न हुए अज्ञानी जीवो को महान पुरुषो का कथन करके इन ससारी विषयो (पचेन्द्रिय भोगो) से विरक्त करके वास्तविक आत्म तत्त्व के सन्मुख करने का प्रयास किया है। क्योकि ससार, शरीर एव भोगो को इन ससारी जीवो ने अनेक बार प्राप्त करके उनको छोडते आए हैं। इसके वारे मे श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार मे कहा है कि—

एयत्तणिच्छयगओ समओ सव्वत्थ सुंदरो लोए।
बंधकहाएयत्ते तेण विसवादिणी होई ॥ ३ ॥

भावार्थ—वध होने का कारण यह है कि अन्य पदार्थ से बद्ध होने वाला एक पदार्थ स्वस्वभाव त्याग पूर्वक पर स्वभाव को स्वीकार करने वाला न होने से दो विजायतीय पदार्थों का वस्तुत: एकीभाव अभिन्नत्व होना असभव होने से वास्तव वध होता ही नही। वध का अर्थ एकीभवन है। पदार्थ और उसके गुण पर्याय मे जिस प्रकार एकीभवन तादात्म्य होता है उसी प्रकार दो भिन्न स्वभाव वाले अतएव विजातीय पदार्थों मे एकीभवन-

तादात्म्य नही होता। अशुद्ध अज्ञानी जीव और पुद्गल कर्म इनमे जो बंध होता है वह वास्तव बध न होने से स्वस्वरूप स्थित वे दोनो पदार्थ किसी समय अलग हो जाते हैं। यदि वह बध वास्तव होता तो उनका मोक्ष पृथग्भाव होना ही असभव हो जाता। क्योकि बध से उन दोनो मे तादात्म्य हो जाता है। जिनमे वास्तव बध-एकीभाव-तादात्म्य होता है उनमे एक का अभाव हो जाने पर दूसरे का भी अभाव हो जाता है, जैसे गुणी का अभाव होने पर गुणो का अभाव और गुणो का अभाव होने पर गुणी का अभाव। एकीभाव स्तोत्र के "एकी भावगत इव मया य स्वय कर्मवन्ध" इस प्रथम चरण मे आचार्य श्री वादिराज सूरि ने "एकी भाव गत इव" इन पदो के द्वारा इसी आशय को पुष्ट किया है। क्योकि "इव" शब्द के द्वारा जीव के साथ वास्तव कर्म बध के एकीभाव का अभेद का तादात्म्य का प्रतिषेध किया है।

इस प्रकार समयसार मे कुन्दकुन्दाचार्य ने बध कथा को गौण करके निश्चय कथन को मुख्य बताया है क्योकि व्यवहार नय का परिचय जीव को अनेक बार हो चुका है किन्तु एकत्व आत्म स्वरूप व शुद्ध चैतन्य स्वरूप का निश्चय अनुभव मे नही आया। सो यह वात ठीक ही है। परन्तु निश्चय नय आत्म स्वरूप की अनुभूति के लिये व्यवहार नय गृहस्थाश्रम मे मुख्य माना गया है। क्योकि जब तक वस्तु स्वरूप का ज्ञान हो, तव तक उसके साधन भूत व्यवहार नय का आश्रय अत्यन्त आवश्यक है। जिस प्रकार सोने का पत्थर मिल जाय और यह सोने का पत्थर ही है ऐसी प्रतीति होती है तव मनुष्य उस पत्थर जैसे सोने को अलग करने हेतु जुटाने की सामग्री करने का प्रयत्न करता है। यदि सामग्री ठीक मिल जाय कृति भी मिल जाय और फिर सोने को भी मुस (प्याला) मे गला दे तो उस मुस मे रहने वाला कचरा व सोना भिन्न हो जाता है। तव उसमे जो साधन होता है वह अपने आप छूट जाता है। तत्पश्चात् जो पहले सामग्री साधन जुटाई थी साधक उस तरफ कभी भी दृष्टि नही डालता। इस प्रकार अनादिकाल से सोना व पत्थर जैसे एक रूप मे उसके सम्पूर्ण पत्थर के अवयव मे पूर्ण रूप से छिपे हुए हैं उसी प्रकार आत्मा अनादि काल से इस सर्वाङ्ग शरीर मे एक क्षेत्रावगाह रूप मे धारण किये हुए है। अब इन दोनो को भिन्न भिन्न रूप मे करने के लिये भेद ज्ञान की आवश्यकता है।

इसलिये आचार्यो ने सर्व प्रथम ससारी जीवो को अनादिकाल से पचेन्द्रिय विषय भोगो का परिचय होने से उसी को अपने सुख का मार्ग मान रखा है, अत. उन्ही मे अशुभ से शुभ की ओर जाने को कहा है।

आचार्य ने इस अज्ञानी जीव को इसका परिचय या भोगो की लालसा हटाने के लिये सव से पहले संसार और भोग विषय का तथा उससे भिन्न परमार्थ का पृथक् २ प्रतिपादन किया है। दु ख से छुडा कर पुण्य मे तथा शुभ राग मे परिणमन कर पुण्य का वंध होने वाली कथाओ का विवेचन किया है। जैसे छोटे वालक की माता उसकी खोटी आदत छुडाने के लिए किसी मीठी वस्तु का लालच देकर बुरी आदत छुडाने का प्रयत्न करती है। तव वह वच्चा एक वार मीठी चीज को चाटने पर बुरी चीज को छोड देता है तव उस बुरी वस्तु पर उसकी इच्छा नही होती है। इसी तरह आचार्यो ने ससार की विषय वासनाओ को कम करने के लिए सर्व प्रथम प्रथमानुयोग की कथाओ का विवेचन किया है। श्री समन्त

भद्राचार्य ने भी अज्ञानी गृहस्थ को पुण्य की ओर परिणमन करने के लिये प्रथमानुयोग का ही कथन किया है। यह प्रथमानुयोग सम्यक्ज्ञान को उत्पन्न करने वाला है। यह प्रथमानुयोग कैसा है —इस सम्बन्ध मे श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार मे भी लोक न० ४३ मे कहा है—

प्रथमानुयोगमर्थाख्यान चरित पुराणमपि पुण्यम् ।
बोधिसमाधि-निधानं बोधति बोधः समीचीनः ।।

इसकी टीका करते हुए प० सदासुखजी लिखते है—

अर्थ—"सम्यक् ज्ञान है सो प्रथमानुगोग नै जाने है। कैसा है प्रथमानुयोग ? अर्थ जे धर्म अर्थ काम मोक्ष रूप चार पुरुषार्थ जिनका है कथन जामै, बहुरि चरित कहिये एक पुरुष के आश्रय है कथा जामै, बहुरि त्रिषष्ठिशलाका पुरुषनि की कथनी का सम्बन्ध का प्ररूपक यातै पुराण है। बहुरि बोधि समाधि को निधान है जो सम्यग्दर्शनादिक नाही प्राप्त भये तिनकी प्राप्ति होना सो बोधि है और प्राप्त भये जिन मम्यक् दर्शनादिकनि की जो परिपूर्णता सो समाधि है। वही प्रथमानुयोग रत्नत्रय की प्राप्ति को अर परिपूर्णता को निधान है, उत्पत्ति को स्थान है, अर पुण्य होने का कारण है, तातै पुण्य है। ऐसा प्रथमानुयोग कू सम्यक् ज्ञान ही जानै है।"

इस कारण यह प्रथमानुयोग पुण्य बध का कारण है और प्रथम अवस्था मे यह कारण रूप साधन है। इसलिए श्री वामन मुनि ने अज्ञानी जीवो को पुण्य रूप मे परिणत करने के लिये पुण्य पुरुषो की पुनीत कथाओ का विवेचन किया है।

मलै पोल निड्ग्रु वैयिल्-वन् पणि मारि वंदाल् ।
निलै पेर्द लिल्लार् निलयिन् मुन्नेन्नादु निड्ग्रेन् ।।
कलैया निरैदार् कडंदं कवि मा कडलिन् ।
निलैयादु मिन्ना दिदु नीदुदकुं मेळुंदेन् ।।३।।

अर्थ—ग्रीष्मकाल, वर्षाकाल, शीतकाल ऐसे ये तीन काल अपने को प्राप्त होने पर भी पर्वत के समान अचल रह कर अपने आत्म स्वरूप मे स्थिर रहने वाले, उसी स्थान को छोड कर अन्य स्थान मे नही जाने वाले, अथवा सघ के समूह का अनुभव न करने वाले मनुष्य अत्यत दुर्लभ है। इमके द्वारा आत्म साधन के लिये तपश्चरण करके आत्मानुभव अभी तक नही करने वाले, दुर्द्धर तपस्या का अनुभव न करने वाले, तपश्चरण के द्वारा अत्यत दुर्लभ ऐसे आत्म स्वरूप का अनुभव न करने वाले मैं वामन मुनि नवीन दीक्षित होकर सम्पूर्ण शास्त्र समुद्र के पारगत, ऐसे श्रुत केवली के द्वारा ही उसका अन्त न लगने वाले ऐसे शास्त्र समुद्र को मैं पूर्ण विचार न करके शास्त्र रूपी समुद्र से तिरकर पार होगे ऐसा मन मे विचार करके इस काव्य रचना को करने के लिये कटिबद्ध हुआ हू ।

भावार्थ—इसका साराश यह है कि वामन मुनि के नवीन दीक्षित होते ही इस काव्य की रचना करने की भावना उत्पन्न हुई। ऐसा इसका आशय है।

विशेष विवेचन—गर्मी, वर्षा तथा शीतकाल मे किसी भी बाधा के उत्पन्न होने पर अपने अचल ध्यान मे स्थित रहने वाले तथा घबरा कर एक स्थान को छोड कर दूसरे स्थान मे न जाने वाले ऐसे मुनियो के समुदाय के सामने मैं नवीन दीक्षित वामन मुनि हूं। वे सम्यग्हष्टि मुनि अपने अंदर क्या विचार करते हैं सो रत्नकरड श्रावकाचार मे कहा है कि—

"दुक्खक्खयकम्मक्खय समाहि-मरण च बोहिलाहो य।
एय पत्थेदव्व ण पत्थणीय तदो अण्ण" ।।

अर्थ—"हमारे शरीर धारणादिक जन्म मरण क्षुधा तृषादिक दु.खनि को क्षय होहु, आत्म गुण कूं नष्ट करने वाला मोहनीय ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म को क्षय होहु, तथा इस पर्याय मे चार आराधना का धारण सहित समाधि मरण होहु, बोधि जो रत्न-त्रयता का लाभ होहु। सम्यक् दृष्टि के ऐसी ही प्रार्थना करने योग्य है। इनतै अन्य इस भव मे परभव मे प्रार्थना करने योग्य नही है। ससार में परिभ्रमण करता जीव उच्चकुल नीचकुल, राज्य, ऐश्वर्य, धनाढ्यता, निर्धनता, दीनता, रोगीपना, नीरोगपना, रूपवानपना विरूपपना, बलवानपना, पण्डितपना, मूर्खपना, स्वामीपना, सेवकपना, राजापना, रङ्कपना, गुणवानपना, निर्गुणपना, अनन्तानन्त वार पाया है, अर छोड्या है। तातै इस क्लेश रूप संयोग-वियोग-रूप ससार मे सम्यग् दृष्टि निदान कैसे करै? इस ससार मे अनन्तपर्याय दु:ख रूप पावे तदि एक पर्याय इन्द्रिय जनित सुख को पावे, फिर अनन्त वार दु ख को पावे। सो ऐसे परिवर्तन करते इन्द्रिय जनित सुख हूं अनन्त वार पाया।

अब सम्यग्दृष्टि इन्द्रियनि के सुखकी कैसे वांछा करै है? इस ससार मे स्वयभू-रमण समुद्र का समस्त जल प्रमाण तो दु.ख है, अर एक बालकी अणी ताका अनन्त भाग करिये तिनमे एक भाग प्रमाण इन्द्रियजनित सुख है। इसते कैसे तृप्ति होय? अर भोगनिका त्याग तथा इष्ट सम्पदाका सयोगका जेता सुख है तिसते असख्यातगुणा वियोग कालमें दु.ख है। अर संयोग होय ताका वियोग नियम से होयगा। जैसे शहदकरि लिप्त खड्गकी धाराकूं जो जिह्वाकरि चाटे, ताके स्पर्शमात्र मिष्टताका सुख अर जिह्वा कटि पडे ताका महादु.ख। तैसे विषयनिके संयोग का सुख जाने। तथा जैसे किंपाकफल दीखनेमे सुन्दर, खावनेमे मिष्ट है पीछे प्राणनिका नाश करे है। तथा जहरते मिल्या मोदक खाने मे मीठा, परन्तु परिपाक कालमे प्राणनिका नाश करने वाला है। तैसे भोग-जनित सुख जानहु। बहुरि जैसे कोऊ पुरुष कने बहुत धन होय। अल्पमोल लीया चाहे तो बहुत धनके साटे थोरा धन मिल जाय। अर आप कने अल्प धन होय अर वाका मोल बहुत चाहै तो नही मिलें। तैसे जो स्वय की सम्पदा पाके योग्य पुण्यबन्ध किया होय अर पीछे निदान करनेतैं अपना अधिक पुण्य होय ताकूं घाति तुच्छ सम्पदा जाय पावे है, पाछे ससार परि-भ्रमण याका फल है। जैसे सूतकी लंबी डोरीकरि बधा पक्षी दूर उडि गया हुआ उसी स्थानकूं प्राप्त होय है। जातैं दूरि उडि चल्या तो कहा? पग तो सूत की डोरीतैं बाधा है, जाय नाही सकेगा। तैसे निदान करने वाला अति दूरि स्वर्गादिकमे महर्द्धिकदेव हुआ हू संसार ही में परिभ्रमण करेगा। देव लोक जाय करके हू निदानके प्रभावते एकेंद्रिय तिर्यंचनि मे तथा पचेन्द्रिय तिर्यंचनिमे तथा मनुष्य मे आय, पापसचय करि दीर्घकाल परिभ्रमण करे है। अथवा जैसे ऋण सहित पुरुष करार करि वन्दीगृहते छूटिकरि अपने घरमे सुखसूं आय

बस्या, तो हू करार पूर्ण भये फिर बदीगृहमे जाय बसे। तैसे निदानकरि सहित पुरुष हू तप संयमते पुण्य उपजाय, स्वर्गलोक जाय करके हू आयु पूर्ण भये स्वर्गते चय, संसारहीमे परिभ्रमण करै है। यहा ऐसा जानना जो मुनिपनामे व श्रावकपनामे मन्द-कषायके प्रभावते वा तपश्चरणके प्रभावते अहमिद्रनिमे तथा स्वर्गमे उपजनेका पुण्यसचय किया होय अर पाछे भोगनिकी बाछादिकरूप निदान करे तो भवनत्रिकादिक अशुभ देवनिमे जाय उपजे। अर जाके पुण्य अधिक होय अर अल्प पुण्यका फलके योग्य निदान करे तो अल्प पुण्यवाला देव मनुष्य जाय उपजै, अधिक पुण्यवाला देव मनुष्यनिमे नाही उपजे। जो निर्वाणका तथा स्वर्गादिकनिके सुखका देनेवाला मुनि श्रावकका उत्तमधर्म धारणकरि निदानते बिगाडै है सो इंधनके अर्थि कल्पवृक्षकू छेदे है। ऐसे निदानशल्यका दोष वर्णन किया।

अब मायाशल्य का दोष कौन वर्णन करि सके ? मायाचारके अनेक दोप कहे ही है। मायाचारी का व्रत शील सयम समस्त भ्रष्ट है। जो भगवान जिनेन्द्र का प्ररूप्या धर्म धारण करि अर आत्माकू दुर्गतिनिके दुखते रक्षा करी चाहो हो तो कोटि उपदेशनिका सार एक उपदेश यह है जो मायाशल्यकूं हृदय मे से निकास द्यो, यश अर धर्म दौऊनिका नाश करने वाला मायाचार त्याग, सरलता अगीकार करो। बहुरि मिथ्यात्व है सो इस समस्त संसार परिभ्रमण का बीज है। मिथ्यात्व के प्रभाव ते अनन्तानन्त परिवर्तन किया। मिथ्यात्व विषकू उगल्या बिना सत्य धर्म प्रवेशही नाही करै। मिथ्यात्वशल्य शीघ्र ही त्यागो। माया मिथ्यात्व निदान- इन तीन शल्य का अभाव हुआ बिना मुनि श्रावक का धर्म कदाचित् नाही होय, नि शल्य ही व्रती होय हैं। बहुरि दुष्ट मनुष्यनिका सगम मति करो जिन की सगतिते पाप मे ग्लानि जाति रहे, पाप मे प्रवृत्ति होय तिनका प्रसग कदाचित् मति करो। जुआरी चोर छली परस्त्री-लपट जिह्वा-इन्द्रिय का लोलुपी, कुल के आचारतै भ्रष्ट, विश्वासघाती, मित्रद्रोही, गुरुद्रोही अपयशके भय रहित, निर्लज्ज, पाप क्रिया मे निपुण, व्यसनी, असत्यवादी असन्तोषी, अतिलोभी, अतिनिर्दयी, कर्कश परिणामी, कलहप्रिय विसवादी वा कुचाल प्रचण्ड परिणामी, अति क्रोधी, परलोक का अभाव कहने वाला नास्तिक पाप के भयरहित, तीव्र मूर्च्छा का धारक, अभक्ष्य का भक्षक, वेश्यासक्त, मद्यपायी, नीच कर्मी इत्यादिकनि की सगति मति करो। जो श्रावक धर्म की रक्षा किया चाहो हो, जो अपना हित चाहो हो, तो अग्नि समान विनाशमान कुसग जानि दूरतै ही छाडो। जाते जैसा का सग करोगे तिसमे ही प्रीति होयगी, अर प्रीति जामे होय ताका विश्वास होय। विश्वासते तन्मयता होय है। तातै जैसी सगति करोगे तैसा हो जावोगे। जातै अचेतन मृत्तिका हू संसर्गते सुगन्ध दुर्गन्ध होय है तो चेतन मनुष्य की सगति करि परके गुण अवगुण रूप कैसे नाही परिणमेगा ? जो जैसे की मित्रता करे है सो तैसा ही होय है। दुर्जन की सगति करि सज्जन हू अपनी सज्जनता छाडि दुर्जन हो जाय है। जैसे शीतल जल अग्नि की संगति से अपना शीतल स्वभाव छाडि तप्तपने ने प्राप्त होय है। उत्तम पुरुप हू अधम की सगति पाय अधमताकूं प्राप्त होय हैं। जैसे देवता के मस्तक चढनेवाली सुगध पुष्पनि की माला हू मृतक का हृदय का ससर्गकरि स्पर्शने योग्य नाही रहैहै। दुष्टकी सगतिते त्यागी संयमी पुरुष हू दोप सहित शका करिये है। लोक तो परके छिद्र देखने वाले है, पर के दोष कहने मे आसक्त है, जो तुम दुष्टनिकी दुराचारीनि की सगति करोगे तो तुम लोकनिदानै प्राप्त होय धर्म का अपवाद करावोगे। ताते कुसग मति करो। खोटे मनुष्य की सगति ते निर्दोष हू दोषसहित मिथ्या-

मार्गी शीघ्र होय है। जातै मिथ्यात्व कषायनिका परिचय तो अनादि काल का है और वीत-रागभाव कदाचित् कोई महा कष्टतै उपज्या सो कुसंग पाय क्षण मात्र मे जाता रहेगा "

इस प्रकार दीर्घकाल से दीक्षा लेकर व मुनि तपस्या कर के शास्त्र समुद्र के पारगत ऐसे मुनि का जैसा ज्ञान मेरे मे कहां ? इस कारण मैने अपनी बुद्धि के अनुसार उनके चरण कमल के प्रसाद से छोटा बालक जिस प्रकार महा समुद्र की उपमा अपने हाथ फैला कर बताता है उसी प्रकार मै अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना करता हूं।

नल्लोर्गळ् पोय वळिनालडिपोयिनालुं ।
पोंल्लांगु नींगि पुगळाइ पुण्यमुमागुं ।।
सोल्ला निरैदं श्रुतकेवलि सेंड्र मार्गं ।
सोल्वा नेळुंदेर् कोरुतीमै युंडाग वट्रो ।।४।।

ग्रन्थकार निर्विघ्नता से ग्रन्थ की समाप्ति की कामना करता है।

श्रेष्ठ ज्ञान से युक्त जाने वाले मार्ग से यदि अज्ञानी उनके साथ चार कदम भी चला जावे तो वह अपने दुःखो को समाप्त करके पुण्य प्राप्त करने वाली कीर्ति को प्राप्त करता है। उत्तम वचनो से युक्त परिपूर्ण ऐसे मेरु और मदर नाम के जो दो श्रुत केवली हैं यह दोनो जिस मार्ग पर गये है उसी मार्ग से जाने वाले अज्ञानी भी श्रेष्ठ चारित्र मार्ग को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार मैं अपने मन मे ऐसा विचार कर के मेरु और मदर गणधर श्रुत केवली है जो उनके चारित्र लिखने से मैं भी उनके समान कीर्ति को प्राप्त होकर आत्म कल्याण का श्रेष्ठ मार्ग आगे चल कर प्राप्त करू इस हेतु से मैं ग्रथ की रचना प्रारम्भ कर रहा हू। इसके प्रारम्भ करने मे कोई विघ्न नही आएगा। क्या ऐसे महान् पुरुषो के चरित्र लिखने मे कभी विघ्न आयेगा ? कदापि नही आयेगा।

भावार्थ—ग्रन्थकार ने अपनी लघुता प्रकट करते हुए इस श्लोक मे प्रतिपादित किया है कि महान गुणो से युक्त चारित्रवान ज्ञानी लोगो के साथ चार कदम भी अज्ञानी चले तो पुण्य व कीर्ति को प्राप्त होता है और उसके सम्पूर्ण कष्ट दूर हो जाते है—सत्पुरुषो की सगति मे क्या २ नही होता है। चरित्रवान पुरुष की सगति से यमपाल चाण्डाल, जम्बूकुमार आदि अपने कुकृत्य को छोडकर सच्चारित्र को धारण करते हुए महान तपस्वी हो गये। महान पापी जीव भी श्रेष्ठ पुरुषो की सगति से तिर गये तो मैं भी ऐसे महान तपस्वी मेरु व मंदर नामक श्रुतकेवलियो के चरित्र का वर्णन करूंगा तो क्या मेरी भी ससार की स्थिति नही छूटेगी ? अवश्य छूट जावेगी। इस निमित्त से ऐसे चारित्रवान पुरुषो के चरित्र को भव्य जीवो के आत्म कल्याण के हेतु कहने के लिये मेरे द्वारा प्रारम्भ करने वाले पुण्य के के मार्ग मे क्या कभी विघ्न उपस्थित हो सकता है ? कदापि नही। ऐसे महान पुरुषो के चरित्र वर्णन करने से कभी कोई विघ्न हो ही नही सकता है। श्री पूज्यपाद आचार्य ने अपनी समाधि भक्ति मे इस प्रकार भावना की है कि—

"शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्ताना गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ॥
सर्वस्यापि प्रिय-हितवचो भावना चात्मतत्त्वे।
सपद्यंता मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः ॥

अर्थात्—मेरे अन्दर भगवान की जो वाणी है वह सदैव भरी रहे। उनके गुण गान की स्तुति, महान पुरुषो की संगति, सदाचारवृत्ति, हमेशा साधु की सगति मे रहने की भावना, गुणीजनो की कथा, दोषी जनो से मौन, सभी के साथ हित मित वचन, आत्म-तत्त्व मे रुचि इतनी वाते हे भगवन् ! मेरे हृदय मे सदैव वनी रहे। इस प्रकार मैं भी यही भावना भाता हूँ कि उन्ही के समान मेरे अदर भी इस पुण्य नायक मेरु और मदर श्रुतकेवली के वर्णन करने मे मेरी भावना वनी रहे। इसलिये भव्य जीव पुण्य पुरुषो की कथा का मनन करके अपने जीवन को कल्याणमय वना लेवे। ऐसी मैं इच्छा करता हूँ।

मैं छद्मस्थ हूँ, परन्तु मैं पुण्य पुरुषो की कथा काव्य रूप लिखने के लिये कटिवद्ध हूँ। ज्ञानी लोग इस कविता को पढते समय इस काव्य मे, लघु गुरू शब्द, तर्क, व्याकरण आदि की दृष्टि से काव्य को देखेगे। इसमे कदाचित् व्याकरण की शुद्धि अंक शुद्धि, गुरू लघु आदि २ दोषो को देखकर के मेरी अवहेलना न करे। मैं मन्दवुद्धि हूँ। तर्क व्याकरण आदि शास्त्रो का ज्ञान मुझे न होने पर भी केवल मैं पुण्य पुरुषो के पुण्य चरित्र को लिखना प्रारम्भ कर रहा हूँ। इसलिये इसमे दोषो को न देखकर जिन महान पुरुषो का चरित्र मैं लिख रहा हूँ, उन्ही की तरफ दृष्टि डालकर, उसमे महान पुरुषो के जो गुण है वह ग्रहण करे और ज्ञानी लोग मेरी भूल को न देखे।

पुण्णै पोंदिद किळिपोण्णोडिरुंद पोळ्दिर्।
पोन्ने पोंदिद किळि तन्न युं पोन्निन् वैपर् ॥
पुण्मै सोल्लेनुं पुराण पुरुळै पोंदिदाल्।
नन्मैकन् वैर्तकिणीनामिरंगु पडित्तो ॥५॥

अर्थ—लोक मे पुराने फटे हुए मलिन कपडे मे जिस प्रकार सोने को लपेट कर रखने से कपडा भी सोने के साथ पूज्य हो जाता है, उसी प्रकार के पुराण पुरुषो के चरित्र को मेरी अल्प बुद्धि द्वारा कहने पर ही मेरे जैसे श्रेष्ठ तथा पवित्र हो जाते है। इसलिये पवित्र भाव से लिखे हुए इस चरित्र को ग्रहण करके मेरी भूल पर ध्यान न देकर इसे क्षमा करे। इस कृति को मन, वच, काय व उपयोग द्वारा जो सुनेगा उनको क्या कभी कष्ट आयेगा ? कभी नही।

भावार्थ—कवि इस श्लोक में अपनी लघुता को प्रकट करता है। जिस प्रकार पुराने मलिन कपडे मे लिपटे हुए होने के साथ कपडा भी पूज्य हो जाता है उसी प्रकार सज्जन चरित्रवान पुरुषो के साथ अल्पज्ञानी भी महा ज्ञानी वन जाता है। यह सगति का प्रभाव है। इसी तरह मेरे मे अल्प बुद्धि होने पर भी जिस महान् पवित्र चरित्रशाली उत्तम पुरुषो

का चरित्र निर्माण करने मे मेरी बुद्धि लीन हो जाय तो मेरा ज्ञान उन्ही के समान होने मे कोई आश्चर्य नही है। इसलिये भव्य सज्जन ज्ञानी पुरुषो को अल्प बुद्धि के द्वारा कविता के रूप मे स्मरण कर रहा हू, अत इसके पवित्र सार को ग्रहण करके इह लोक और परलोक मे सुख भाव रखकर मैं इस कृति को प्रारम्भ करता हू। इसके अलावा मुझे अन्य कोई भी प्रयोजन की कामना नही है।

चन्द्रमा मे थोड़ा सा काला दाग रहने पर भी चन्द्रमा के प्रकाश मे क्या कभी न्यूनता आती है? कदापि नही। उसी तरह महान पुरुषो की कथा का वर्णन करते समय कही शब्द दोष भी आ जाये तो सत्पुरुषो के महान चरित्र को कहने मे कभी मलिनता नही आयेगी।

विदेह क्षेत्र का वर्णन:-

मणि मुडि कवित्त् वेंदन् मन्नवर् तन्नं चूळ।
वणिइ नोडिरुंद वे पो लयंकियं कडलुं तीवु॥
तनिविळ् सूळ् मेरु वेन्नुं तडमुडि कवित्त् जंबु।
वनियि नोडिरुंद दीप त्तरसन तगल तोंबन्॥६॥

अर्थ—अत्यन्त माणिक्य और मोती की मणियो के द्वारा सुसज्जित मणियो का हार धारण कर सभा के बीच मे बैठे हुए एक चक्रवर्ती को जिस प्रकार उनके चारो ओर मुकुटबध राजा महाराजा घेरे हुए के समान असख्यात द्वीप और समुद्र से घेरे उसमे कही अधिकता और न्यूनता रहित महान मेरू रूपी मुकुट को धारण कर अत्यन्त सुन्दर, उसके बीच मे विराजित होकर जम्बू द्वीप नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ जम्बू नाम के राजा के हृदय के बीच मे अर्थात जम्बू द्वीप के मध्य मे अत्यन्त सुन्दर लक्ष्मी के समान प्रकाशमान होने वाले पीले सोने के पर्वत के समान चमकने वाले महामेरू पर्वत से सम्बन्धित होकर धर्म तीर्थ जैसे नदी के समान बहा कर जाने वाले परम्परा के रूप मे गन्ध मालिनी नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ देश है। ऐसा देश इस ससार मे अत्यन्त दुर्लभ है। और ऐसे देश मे भव्य जीव जन्म लेकर मानव जीवन को सार्थक बनाने की भावना रखने वाले भी अत्यन्त दुर्लभ होते है। और उसे वैराग्य भावना से युक्त जिनेन्द्र भगवान के तत्त्व के प्रति उपासक के अनुसार धर्म का पालन, व्रत, शील का नियम पालन करने वाले भव्य श्रावको का देश मे मिलना दुर्लभ है। उत्तम श्रावक धर्म की प्राप्ति होने पर भी श्रावक धर्म का पालन कर अपने मनुष्य शरीर के द्वारा मोक्ष और स्वर्ग प्राप्त करने वाले तपश्चर्य की भावना करके इस शरीर को तप के द्वारा कर्म निर्जरा कर मोक्ष को प्राप्त करने की इच्छा करने वाले जीवो के लिये यह क्षेत्र हमेशा जीवो का साधन और मोक्ष स्थान है ऐसे मोक्ष स्थान को जिसमे मोक्ष की परिपाटी हमेशा चलती रहती है. क्षेत्र को सार्थक नाम प्राप्त हुआ, विदेह क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। वह विदेह क्षेत्र सीतोदा नदी के पास उत्तर मे है॥६॥

भावार्थ-कवि ने इस श्लोक मे जम्बू द्वीपका वर्णन किया है। यह जम्बू द्वीप अत्यत सुन्दर उत्तम मणि और मुकुट को धारण कर बैठा हुआ पटखडाधिपति चक्रवर्ती के चारो ओर अनेक मण्डलिक महामण्डलिक राजा-महाराजा घेरे हुए बैठे हुए के समान

प्रतीत होते है। इस तरह असंख्यात समुद्र द्वीपो से घेरा हुआ उसमे तिलमात्र भी कम ज्यादा नही और मानो महा मेरू के समान महान पर्वत को मुकुट के रूपमे धारण कर वैठा हो, ऐसे प्रसिद्ध जम्वू द्वीप के राजा के हृदय मे अत्यन्त सुन्दर महालक्ष्मी के समान युक्त होने वाले सोने के माफिक लाल रग वाले मेरू पर्वत से सम्बन्ध रखने वाले व मालिनी नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ देश है। वह देश ससार मे अत्यत दुर्लभ है। और उसमे रहने वाले जीव वैराग्य भावना वल से ससार के भव्य जीवो को विरक्त कराके, उस धारण किये हुए मानव शरीर के वल से, तप धारण कर सम्पूर्ण कर्मकी जडको उखाडकर इन भव्य जीवो को संसार से उठाकर मोक्ष रूपी स्थान मे रखने की सामर्थ्य को रखता है। ऐसे सामर्थ्य रखने वाले प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ क्षेत्र है। यह विदेह क्षेत्र सीतोदा नदी के उत्तर मे है ।। ।।

गंध मालिनी देशका वर्णन

तिरुवेनतिगळ् ंदु शंबोन् मलैइनैच् सेर् ंदु तीर्थ ।
मरुविये सेल्लु ं गंध मालिनि एन्नु नाडु ।।
विरविला विदेह कें ड्रु मुरै युळाय् विदेगनामम् ।
मरुविय नादुच्चिवोदगै वड तडत्ति लु ंडे ।।७।।
ऐजिर पयरु ं देवर् नाल्वगै कुळ् ु ओडंबो ।
निजि सूळ् दिलंगुमेळ् ु निलत्तिरै यिरुक्कै वट्ट ।।
मंजिलं पार्गळाड लरिवन देळ् ुच्चियादि ।
ए ंजिडा वंद नाटिन् पेरुमया रियंब वल्लार् ।।८।।

इस पवित्र गध मालिनी देश मे सदैव भगवान के पाचों कल्याण होते रहते हैं। पंच कल्याण पूजा के लिये आने वाले भवनवासी, व्यतर, ज्योतिषी, कल्पेन्द्र तथा स्वर्ण मयी शरीर तीनो भित्तियो से घेरा हुआ सात भूमियो से युक्त त्रिलोकीनाथ ऐसे अर्हंत परमेष्ठी विराजमान होने वाले रत्नाकार उस समवसरण भूमि में सुन्दर पावो मे पेंजनी पहनने वाली स्त्रिया आदि उत्सव में अधिक से अधिक आती हैं। ऐसे धर्म हमेशा मोक्ष के साधन रूप मे रहने वाले गध मालिनी देशका वर्णन कौन कर सकता है–कोई नही।

भगवान के गर्भ जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण इस प्रकार पाच कल्याण होते हैं। तीर्थङ्कर भगवान स्वर्ग अथवा नरक गति से च्युत होकर उत्पन्न होते है। भरत, ऐरावत और विदेह क्षेत्र मे उनका आगमन होता है। अर्थात् स्वर्ग या नरक से च्युत होकर इन क्षेत्रो मे उत्पन्न होते है। उनके गर्भावतरण के छह मास पूर्व लगातार माता के आगण मे स्वर्ण व रत्नो की वर्षा होती है। तथा,गर्भावतरण हो चुकने के वाद नौ मास पर्यन्त माता के आगन मे सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुवेर स्वर्ण और रत्नो की वर्षा करता है। तथा उनका नगर स्वर्णमय हो जाता है। अर्हन्त की इस समस्त सपत्ति का वर्णन महा पुराण से जानना चाहिये। इन नौ वातो का आश्रय लेकर अत्यन्त निकट श्रेष्ठ भव्य जीव अर्हन्त भगवान की

भावना करते है। अर्थात् उन्हे अपने हृदय कमल मे निश्चल रूप से धारण करते है। जैसा कि कुन्द-कुन्दाचार्य ने अष्ट पाहुड (बोध पाहुड) मे गाथा स० ३० मे कहा है—

जरवाहिजम्म मरण चउगइगमण च पुण्यपाव च ।
हतूण दोसकम्मे हुउ णाणमय च अरहतो ॥

अर्हन्त भगवान के जो नाम है वे नाम जिन है। उनकी प्रतिमाएँ स्थापना जिन है। अर्हन्त भगवान का जीव द्रव्य जिन है। और समवशरण मे भगवान भाव जिन है। बोध पाहुड मे यही कहा है—

णामे ठवणे हि य सदव्वे भावे हि सगुणपज्जाया ।
चउणागदि सपदिमे भावा भावंति अरहतं ॥२८॥

इस श्लोक मे नामादि चार निक्षेपो की अपेक्षा अर्हन्त का वर्णन किया है। अरहतो का वर्णन करते हुए बोध पाहुड मे और भी लिखा है—

दसण अणंत णाणे मोक्खो णट्ठट्ठकम्मबधेण ।
णिरुवमगुणमारूढो अरहत एरिसो होई ॥२९॥

गाथार्थ—जिनके अनंत दर्शन और अनत ज्ञान विद्यमान है। आठो कर्मो का बध नष्ट हो जाने से जिन्हे भाव मोक्ष प्राप्त हुआ है तथा जो अनुपम गुणो को प्राप्त है ऐसे अर्हन्त होते है।

विशेषार्थ—पदार्थ की सत्ता मात्र का आलोचक न होना दर्शन है और विशेषता क लये विकल्प सहित जानना जान कहलाता है। ज्ञानावरण के क्षय से अनन्त ज्ञान और दर्शनावरण के क्षय से अनन्त दर्शन अर्हन्त भगवान के प्रकट होते हैं। इन दोनो गुणो के रहते हुए उनके आठो कर्मो का बध नष्ट हो जाने से मोक्ष भाव मोक्ष होता है।

प्रश्न—मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम्, मोहनीय तथा ज्ञानावरण और अन्तराय के क्षय से केवल ज्ञान होता है। उमास्वामी के इस वचन से सिद्ध है कि अरहन्त भगवान के चार कर्म ही नष्ट हुए हैं उन्हे "नष्टानष्ट कर्म वन्दे" क्यो कहा जाता है ?

उत्तर—आपने ठीक कहा है, परन्तु जिस प्रकार सेनापति के नष्ट हो जाने पर शत्रु समूह के जीवित रहते हुए भी वह मृत के समान जान पडता है, उसी प्रकार सब कर्मो के मुख्य भूत मोहनीय कर्म के नष्ट हो जाने पर यद्यपि अर्हन्त भगवान के वेदनीय आयु नाम और गोत्र ये चार अघाति कर्म विद्यमान रहते है तथापि नाना प्रकार के फलोदय का अभाव होने से वे भी नष्ट हो गये, ऐसा कहा जाता है। क्योंकि विकार उत्पन्न करने वाले भाव का अभाव हो जाता है। उपमा-रहित अनन्त चतुष्टय रूप गुणो को प्राप्त हुये अर्हन्त अष्ट कर्म से रहित कहे जाते हैं। ऊपर कही विशेषताओ से युक्त पुरुष होता है तथा उपचार से उसे मुक्त ही कहते हैं।

विवेचन—× "अर्हन्त के गुणनि मे अनुराग सो अर्हन्त भक्ति है। जो पूर्व जन्म मे षोडश कारण भावना भायी है सो तीर्थङ्कर होय, अर्हन्त होय है। ताके तो पोडश कारण नाम भावना ते उपजाया अद्भुत पुण्य ताके प्रभाव ते गर्भ मे आवने के छह माह के पहले इन्द्र की आज्ञा ते कुवेर बारह योजन लम्बी, नव योजन चौडी रत्नमयी नगरी रचे है। तिसके मध्य राजा के रहने के महल, नगरी की रचना वडे-बडे द्वार कोट खाई परकोटे इत्यादिक रत्नमयी कुवेर रचना करे, ताकी महिमा कोऊ हजार जिह्वानि करि वर्णन करने कू समर्थ नाही है। तथा तीर्थङ्कर की माता का गर्भ का शोधना अरु रुचक द्वीपादिक मे निवास करने वाली छप्पन कुमारिका देवी माता की नाना प्रकार की सेवा करने मे सावधान होय है। और गर्भ के आवने के छह मास पूर्व प्रभात मध्याह्न और अपराह्न एक एक-काल मे आकाश ते साडे तीन कोटि रत्ननि की वर्षा कुवेर करे है। अर पाछे गर्भ मे आवते ही इन्द्रादिक चार निकाय के देवनिका आसन कम्पायमान होने ते च्यार प्रकार के देव आय नगर की प्रदक्षिणा देय माता पिता की पूजा सत्कारादि करि अपने स्थान जाय हैं।

भगवान तीर्थङ्कर स्फटिक मणि का पिटारा समान मलादि रहित माता के गर्भ मे तिष्ठे है। अर कमल वासिनी छह देवी अर छप्पन रुचिक द्वीप मे बसने वाली और अनेक देवी माता की सेवा करे है। और नव महीना पूर्ण होते उचित अवसर मे जन्म होते ही चारो निकाय के देवनिका आसन कम्पायमान होना अर वादित्रनि का अकस्मात् बाजने ते जिनेन्द्र का जन्म जानि, बडा हष से सौ धर्म नामा इन्द्र लक्ष योजन प्रमाण ऐरावत हस्ती ऊपरि चढि, अपना सौधर्म स्वर्ग का इकतीसवा पटल मे अठारवा श्रेणी बद्ध नाम विमान ते असख्यात देव अपने परिवार सहित साढे बारह जाति के वादित्रनि की मिष्ट ध्वनि अर असख्यात देवनि का जयजयकार शब्द, अनेक ध्वजा उत्सव सामग्री अर कोटयाँ अप्सरानि का नृत्यादि कर उत्सव अर कोटयाँ गन्धर्व देवनि का गावने करि सहित असख्यात योजन ऊँचा इन्द्र का रहने का पटल, अर असख्यात योजन ऊँचा इहाते तिर्यक् दक्षिण दिशा मे हैं। तहा ते जम्बूद्वीप पर्यन्त असख्यात योजन उत्सव करते आय नगर की प्रदक्षिणा देय इन्द्राणी प्रसूति गृह मे जाय माता कू माया निद्रा के वश करि, वियोग के दु ख के भय ते अपनी देवत्व शक्ति ते तहा बालक और रचि, तीर्थङ्कर कूं बडी भक्ति से ल्याय इन्द्र कू सौपे हैं। तिम काल मे देखता इन्द्र तृप्तताकू नाही प्राप्त होता हजार नेत्र रचि करि देखे है। फिर ईशान स्वर्ग के देव, भवनवासी, व्यतर, ज्योतिषीनिके इन्द्रादिक असख्यात देव अपनी-अपनी सेना वाहन परिवार सहित आवे हैं। तहा सौधर्म ऐरावत हस्ती ऊपरि चढया भगवान कूं गोद मे लेय चाले। तहा ईशान इन्द्र छत्र धारण करे, अर सनत्कुमार महेन्द्र चवर ढारते अन्य असख्यात देव अपने अपने नियोग मे सावधान वडा उत्सव ते मेरु गिरि का पाडुकवन मे पाडुक शिला ऊपरि अकृत्रिम सिहासन है तिस ऊपरि जिनेन्द्र कू पधराय है। अर पाडुक वन ते समुद्र पर्यन्त दोऊ तरफ देवो की पक्ति बध जाय है। क्षीर समुद्र मेरु की भूमि ते पाच कोड दस लाख साढा गुणचास हजार योजन परे है। तिस अवसर मे मेरु की चूलिकाते दोऊ तरफ मुकुट कुण्डल हार ककणादि अद्भुत रत्ननि के आभरण पहरे देवनिकी पक्ति मेरु की चूलिकाते क्षीर समुद्र पर्यन्त श्रेणी बधे है। अर हाथू हाथ कलश सौंपे है, तहा दोऊ तरफ इन्द्र के खडे रहने के अन्य दोय छोटे सिहासन ऊपरि सोधर्म ईशान इन्द्र कलश लेय अभिषेक

× प० सदासुखजी कृत रत्नकरंड श्रावकाचार से।

एक हजार आठ कलशनिकरि करै है। तिन कलशनिका मुख एक योजन का, उदर चारि योजन चौडा, आठ योजन ऊंचा, तिन कलशनिते निकसी धारा भगवान के वज्रमय शरीर ऊपरि पुष्पनि की वर्षा समान बाधा नाही करै है। अर पाछे इन्द्राणि कोमल वस्त्र ते पोछकर अपना जन्म को कृतार्थ मानती स्वर्गतै ल्याये रत्नमय समस्त आभरण वस्त्र पहरावे है। तहा अनेक देव अनेक उत्सव विस्तारे है तिनकूं लिखनेकूं कोऊ समर्थ नाही। मेरु गिरत पूर्ववत् उत्सव करते जिनेन्द्र कू ल्याय माता कूं समर्पण कर इन्द्र वहा ताडव नृत्यादिक जो उत्सव करे है तिन समस्त उत्सवनिकू कोऊ असख्यातकाल पर्यन्त कोटि जिह्वानि करि वर्णन करने कूं समर्थ नाही है।

जिनेन्द्र भगवान जन्मते ही तीथङ्कर प्रकृति के प्रभाव से दस अतिशय ज म के साथ उत्पन्न होते है, पसीना रहित शरीर के मल, मूत्र, कफ आदि से रहित और शरीर मे दूध के समान रुधिर, समचतुरस्र सस्थान व्रजऋषभनाराच सहनन, अद्भुत अप्रमाण रूप, महा सुगध शरीर, अप्रमाण बल, एक हजार आठ लक्षण, प्रिय हित मधुर वचन, ये समस्त पूर्व जन्म मे षोडश कारण भावना भायी हुई के कारण है। और इन्द्र द्वारा अगूष्ठ मे स्थापना किया हुआ अमृत का पान करते है। माता के स्तन मे आया हुआ दूध नही पीते है। पुनः अपनी अवस्था के समान देवकुमार के साथ क्रीडा करते हुये वृद्धि को प्राप्त होते है। और स्वर्गलोक तै आया हुआ आभरण वस्त्र, भोजन आदि मनोवाछित देव द्वारा लाये हुये भोजन से तृप्त होते है और वह देव रात दिन उनकी सेवामे हाजिर रहते हैं। पृथ्वी लोक का भोजन, वस्त्रादिक, आभरण को अगीकार नही करते हैं। स्वर्ग से आये हुए भोगो को भोगते हैं। पुन कुमारकाल व्यतीत कर इन्द्र के द्वारा अद्भुत उत्साह करके भक्ति पूर्वक पिता के द्वारा समर्पण कियाहुआ राजभोग को भोग कर तत्पश्चात् अवसर पाकर संसार, देह और भोगों से विरक्त होते हुए वारह भावना भाते हुए वदन श्रवण करते हुए भगवान को सम्बोधन करते हैं। और जिनेन्द्र वैराग्य भाव होते ही चार निकाय इन्द्रादिकनि के देव अपने आसन कम्पायमान होते ही जिनेन्द्र का जन्म अवधि ज्ञान से जानकर वडे उत्सव के साथ आकर अभिषेक करके देवलोक से लाये हुए वस्त्र आभरण भक्ति से अलकार भगवान को कराते हैं। तत्पश्चात् रत्नमयी पालकी की रचना करके जिनेन्द्र भगवान को विराजमान करते हैं। अनेक प्रकार के उत्सव करके जयजयकार करते हुए तप करने योग्य वन मे ले जाकर उतार देते है। वहा आभरण समस्त त्यागकर-देव अघर नतमस्तक होकर नमस्कार करते हैं। तव भगवान एक शिला पर वैठ कर सिद्ध भगवान को नमस्कार करके पच मुट्ठी केश लोंच करते हैं। उस केश लोच को जो भगवान ने उसको अत्यन्त भक्ति के साथ नमस्कार करते हुए रत्नो की पेटी मे रख कर उसको क्षीर समुद्र मे ले जाकर के क्षेपण करते हैं।

जिनेन्द्र केतेककाल मे तप तथा शुक्ल ध्यान के प्रभाव से क्षपक श्रेणी मे घातिया कर्म का नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त करै है। तव ही अरहत पना प्रकट होता है। तद् केवल ज्ञान भूत, भविष्य, वर्तमान त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यो की अनतानत परिणति कर सहित अनुक्रमते एक समय मे सव को जान लेता है और देख लेता है तथा चारो प्रकार के देव ज्ञान कल्याण की पूजा स्तवन कर भगवान के उपदेश के लिये समवसरण रचते है। वह समवसरण महान विभूति वाला, पाच हजार धनुष ऊंचा, जिसके वीच हजार पेढी, जिस पर इन्द्र नील मणि मय गोल भूमि वारह योजन प्रमाण समवसरण की रचना है। जहां

समवसरण रचना होय और भगवान का विहार होय वहा अधो को दीखने लग जाय, बहरे श्रवण करने लग जाय, लगडे चलने लग जाय, गू गे बोलने लग जाय। इस प्रकार वीतराग की अद्भुत महिमा है।

उस समवसरण धूलि शालादिक रत्नमयी कोट मानस्तम्भ बावडी जल को खातिका. पुष्पवाडी फिर रत्नमय कोट दरवाजे, नाटचशाला, उपवन, वेदी-भूमि, फिर कोट, फिर कल्पवृक्षनि का जिसमे देवच्छद नाम का एक योजन का मडप सब तरफ बारह सभा अतरिक्ष विराजमान भगवान अरहत है। जिनकी अनन्त ज्ञान, अनत दर्शन, अनत वीर्य, अनत सुखमयी, अतरग विभूति की महिमा कहने के लिये चार ज्ञान का धारक गणधर भी समर्थ नही है। अन्य कौन कह सकता है? उस समवसरण की विभूति ही वचन के अगोचर है. तीसरी कटनी पर गध कुटी है जहा चौसठ चँवर बत्तीस युगल देवन के मुकुट, कु डल हार, कडा, भुजबधादिक, सर्व आभरण पहने ढाल रहे है। तीन छत्र अद्भुत काति के धारक जिनकी कान्ति से सूर्य चन्द्रमा भी मद ज्योति भासे है और जिनकी देह का प्रभा मंडल का चक्र बध रहा। जिसके कारण उस समवसरण मे रात दिन का कोई भेद भाव नही है। सदैव दिन ही प्रवर्ते है। और वहा की सुगध ऐसी है जैसी सुगन्ध त्रैलोक्य मे भी नही है। ऐसी गध कुटी के ऊपर देवो द्वारा रचित अशोक वृक्ष को देखते ही समस्त लोकनि का शोक नष्ट हो जाता है। और आकाश ते कल्प वृक्षो की पुष्प वर्षा होती है तथा साढे बारह करोड जाति के वादित्रो की ऐसी मधुरी ध्वनि होती है जिनके सुनने मात्र मे क्षुधा तृषा आदि सर्व रोग, वेदना नष्ट हो जाती है और रत्न जडित सिहासन सूर्य की काति को जीतता है।

जिनेन्द्र भगवान की दिव्य ध्वनि की अद्भुत महिमा है। वह ध्वनि त्रैलोक्य के जीवो की परम उपकार करने वाली और मोह अधकार का नाश करने वाली है तथा समस्त जीव अपनी-अपनी भाषा मे उन शब्दो का अर्थ ग्रहण करे है। दिव्य ध्वनि की महिमा गणधर तथा इन्द्र भी अपने वचनो के द्वारा कहने को समर्थ नही है। उस समवसरण मे सिह और हाथी, व्याघ्र और गाय, बिल्ली और हस इत्यादिक सर्व जाति विरोधी जीव वैर बुद्धि छोड कर परस्पर मित्रता करने लगे है। वीतरागता की अद्भुत महिमा को असख्यात देव जय जयकार करे है और देवनिकर रचित कलश, झारी, दर्पण, ध्वजा, ढोल छत्र, चवर, बीजना ये अष्ट अचेतन द्रव्य भी लोक मे मगलता को प्राप्त होते हैं। भगवान को केवल ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् दस अतिशय प्रकट होते है। चारो ओर सौ-सौ योजन सुभिक्षिता और आकाश गमन, भूमि का स्पर्शन तथा किसी भी प्राणी का वध नही होना और भोजन तथा उपसर्ग का अभाव चतुर्मुख दीखे, समस्त विद्या का ईश्वरपना, छाया रहितपना तथा नेत्रो का टिमकारना व केश व नख नही बढते है। इस प्रकार दस अतिशय घातिया कर्मो के नाश करने से स्वय प्रकट हो जाते हैं।

तीर्थंकर प्रकृति के प्रभाव से चौदह अतिशय देवो द्वारा होते हैं। अर्ध मागधी भाषा, सर्व जनो मे मैत्री भाव, समस्त ऋतु के फल फूल, पत्रादिक सहित वृक्ष होय। पृथ्वी दर्पण समान रत्नमयी, तृण-कटक-रजरहित, शीतल मद सुगन्ध, हवा चले। सब प्राणियों को आनन्द प्रकट हो, अनुकूल पवन सुगन्ध जल की वृष्टि होती है। भगवान जहा गमन करते है

वहां सात पैंड आगे और सात पीछे और एक बीच मे ऐसे पन्द्रह पन्द्रह कर दो सौ पच्चीस कमलो की रचना करते हैं। आकाश तथा दिशाये चार प्रकार के देवो द्वारा जय-जयकार का शब्द। एक हजार सूर्य मडल का आरां सहित किरणनिकाधारक अपना उद्योत कर सूर्य मडल का तिरस्कार करता हुआ धर्म चक्र आगे चले । अष्ट मंडल द्रव्य। इस प्रकार चौदह अतिशय प्रकट होते हैं । भगवान के अठारह दोष, क्षुधा, तृष्णा, जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोक, भय, विस्मय, राग, द्वेष, मोह, अरति, चिंता, स्वेद। खेद, मद, निन्दा नहीं होते। इस कारण सदैव उनकी वेदना व स्तवन करना चाहिये। ये अरहत सुख का करने वाला है। इनके अनन्त नाम है और इन्द्र भक्ति के वशमय भगवान का एक हजार आठ नाम का स्तवन करते हैं, तथा अल्प सामर्थ्य के धारक अपनी शक्ति प्रमाण, अरहत भगवान की पूजन स्तवन तथा नस्कार करते हैं। इस प्रकार सक्षेप मे भगवान के पाचो कल्याणो का विवेचन किया गया इस प्रकार समवशरण का वर्णन किया है। उस समवशरण मे भगवान के बिहार मे भवनवासी, ज्योतिपी, व्यतर, कल्पेन्द्र इस प्रकार चारो प्रकार के देवेन्द्र सामनिक त्रायस्त्रिशपरिषद आत्म रक्ष लोकपाल, आर्णव, प्रकीर्णक, अवयोग, किलविप, ऐसे दस प्रकार के देव रहते हैं। इसमे व्यतर और ज्योतिषी देवो मे त्रायस्त्रिश और लोकपाल देव नही रहते बाकी चार प्रकार के देव भगवान के विहार काल मे आते हैं।

मणिइला मलयुमिल्लै घनप्पिला वनमुमिल्लै।
कणिइला निलमु मिल्लै करुंबिला काडुमिल्लै ।।
येनिइलामगळिरिल्लै येळगिला मंद रिल्लै।
तुनिविला तुरवुमिल्लै तूतिला वोळुवक मिल्लै ।।६।।

अर्थ—वहा नव रत्न मणि केसिवाय पर्वत नही रहते हैं। सुन्दरता रहित उपवन नहीं रहता है—धन्य-धान रहित खेत नही रहता, गन्ना रहित देश नही है, रूप रहित स्त्रियां नही है। रूप रहित पुरुष नही है, सम्यक दर्शन रहित तपस्वी नही है, हमेशा परिशुद्ध चारित्र वाले व्यक्ति रहते हैं।

भावार्थ.—ग्रन्थकार ने इस श्लोक में गन्ध मालिनी देश के स्त्री और पुरुषो का और वहा स्थित पर्वत-भूमि उद्यान आदि का भी वर्णन किया है। उस देश मे रत्न मणिमय पर्वत है, अत्यन्त रूपवती स्त्रिया रहती हैं । उसी प्रकार अत्यन्त सुन्दर कामदेव के समान पुरुष रहते हैं, तथा धन्य धान्य से समृद्धि शाली वहां की भूमि है सुन्दर फल और पुष्पो से भरे हुए हरे-भरे अनेक प्रकार के उद्यान है, कामदेव के धारण करने वाले अत्यन्त सुन्दर पुरुष और सम्यक दर्शन से युक्त श्रावक हमेशा रहते हैं । चारित्र से रहित वहां कोई साधु नही रहते। कारण इसका यह है कि जहा सदैव चतुर्थ काल वरतते हैं वहा अधिक से अधिक पुण्यवान स्त्रियां और पुरुष रहते हैं—और उस स्थान में महानतीर्थंकर व त्रेषठ शलाका पुरुषो का जन्म होता—रहता है—क्योकि वहां भूमि पुण्यमय होने के कारण सदैव पुण्य पुरुष ही उत्पन्न होते हैं जिस जीव ने पूर्व जन्म मे अतिशय पुण्य किया हो और जिसने अतिशय निरतिचार पुण्य को पालन कर अत्यन्त घोर तपश्चरण किया हो ऐसा पुण्यशाली जीव उस भूमि मे उत्पन्न होकर पूर्व जन्म के पुण्योदय से मन पूर्वक सुख भोगकर

अन्त मे संसार के भोगो से विरक्त होकर तप धारण करके उस तप के द्वारा मोक्ष को प्राप्त होता है। अत. ऐसी पुण्य भूमि मे उत्पन्न होना यह पूर्व जन्म मे किया हुआ तप और निरतिचार पूर्वक श्रावक व्रत को पालन किया हुआ पुण्य का फल है ॥९॥

कर्पिला मगळिरिल्लै करुणै इल्लारु मिल्लै ।
पोर्पिला वरमुमिल्लै पोद सिल्लारु मिल्लै ॥
लर्क मिल्लारु मिल्लै दानमिल्लारु मिल्लै ।
सोर्कन् मै लाद मिल्लै तूयरल्लारु मिल्लै ॥१०॥

अर्थ—गधमालिनी देश मे पतिव्रतारहित स्त्रियां नहीं हैं। दया धर्म रहित पुरुष नहीं हैं। उस देश मे अधिक से अधिक धर्माचरण वाले मनुष्य मिलेगे। ज्ञान तथा स्वाध्याय रहित वहा कोई भी श्रावक नही मिल सकता। उस देश मे प्रतिदिन आहार, औषधि, शास्त्र अभय इन चार प्रकार के दान देने वाले तथा अपने कर्तव्य को समझने वाले श्रावक मिलेंगे। वहा असत्य बोलने वाले कोई भी स्त्री या पुरुष नही मिल सकते। उस देश मे शुद्ध परिणामी तथा सद्भावना रखने वाले मनुष्य मिलेगे ॥१०॥

भावार्थ—आचार्य ने इस श्लोक में विदेह क्षेत्र के श्रावक श्राविकाओ का वर्णन किया है। उस गधमालिनी देश में स्त्रिया पतिव्रता सुधीर, सतोषी पुरुष अधिक धर्म मे रुचि रखने वाले, अत्यन्त ज्ञान से युक्त-न्याय तर्क व्याकरण आदि के ज्ञाता तथा चार प्रकार के दान देने वाले श्रावक सदैव मिलेगे। वहा के मानव प्राणी सदा सत्य वचन का पालन करने वाले होते हैं। सत्य के अतिरिक्त झूठ वचन उनके मुख से कभी भूलकर भी नही सुनने मे आते। ऐसे शुद्धभाव सहित धर्मात्मा पुरुष दुर्द्धर तप करने मे रुचि रखने वाले सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित पुरुष सदैव वहा विचरते रहते है। जहा पर भक्ति नही है वहा पर मोक्ष मार्ग का ख्याल भी नहीं है।

भावार्थ—इस सम्बन्ध मे श्री कुन्द कुन्दाचार्य ने रयणसार के गाथा नं० ७७ में इस प्रकार लिखा है :—

वत्थुसमग्गोमूढो लोहियलहिए फलजहा पच्छा।
अण्णाणी जो विसय परिचत्तो लहइ तहा चेत्रा ॥७७॥

भावार्थ—समस्त सामग्री और भोगोपभोग साधनो का समागम प्राप्त होने पर लोभी मनुष्य उनका भोग नही करता है, बल्कि लोभवश वह पापो का ही सग्रह करता रहता है। ठीक इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव व्रत तपश्चारणादि करके उसके फल से ससार की वृद्धि ही करता है। मिथ्यादृष्टि जीवो का तपश्चरण भी पाप का ही कारण है।

वत्थु समग्गो णाणी सुपत्तदाणी फल जह लहइ।
णाण समग्गो विसय परिचित्तो लहइ तहा चेव ॥७८॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष धन सपत्ति और भव को सत्पात्रो को दान देकर उसके प्रभाव से चक्रवर्ती तीर्थकर, इन्द्र, नागेन्द्र पद तथा मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त कर लेते है। अर्थात् ज्ञानी जीव विपय कपायो से विरक्त होकर चारित्र को धारण करके उसी भव से मोक्षपद प्राप्त कर लेते है।

भू महिला कणाइ लोहाहि विसहरं कहपि हवे।
सम्मत्तणाण वेरग्गो सहमतेण जिणुद्दिट्ठं ,।७६॥

भावार्थ—स्वर्णादि अलकारो से अलकृत राजमहल और स्त्री आदि पदार्थो के लोभ रूपी सर्प के विष का निवारण करने के लिये मम्यग्दर्शन सहित ज्ञान तथा वैराग्य रूपी अमोघ मत्र ही फलदायक है, ऐसा श्री जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

पुव्व पचेंदिय तणुमणुवचि हत्थायमु डाउ।
पच्छा सिर मुंडाउ फिवगइ पहणायगा होइ ॥८०॥

भावार्थ—सर्वप्रथम अपने पाचो इन्द्रियो को निग्रह करना चाहिये। तत्पश्चात् क्रम से मन वचन काय द्वारा अपने शरीर को वश मे करना चाहिये। फिर सिर का मुंडन करना चाहिये, इससे भव्य जीवो को मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥८०॥

पतिभत्ति विहीण सदी भिच्चोय जिण समय भत्ति हीण जई।
गुरुभत्ति बिहीण सिस्सो दुग्गइ मग्गाणु लग्गणो णियमा ॥८१॥

भावार्थ—पति की भक्ति से रहित स्त्री, स्वामी की भक्ति से रहित सेवक, शास्त्र की भक्ति से रहित साधु तथा गुरू की भक्ति से रहित शिष्य महान् निन्द्य और दुर्गति का पात्र होता है।

इस प्रकार उस गधमालिनी देश मे श्रावक और श्राविकाये कर्म निर्जरा करने के लिये सदैव दान धर्म मे मग्न रहती हैं ॥१०॥

माणि नल वैरं पैवोन् वरंड्रिमा तिरयुं सेंदुम्।
तुनिनल वैळुं कोवुम् तोगयु मयिरुमेदि ॥
वनिग नल्लोरु वन् पोल वयलग मडुत्तवारु।
पनिविला पळंकोडंगि निलैयन परदंदड़् ॥११॥

गंध मालिनी देश की नदियों का वर्णन

अर्थ—जिन प्रकार रत्न, हीरे, मोती, पन्ना वैडूर्य मणि, माणिक स्वर्णादि के आभूषण सदा जगमगाते रहते है उसी प्रकार बड़े वेग से बहने वाली वहां की नदियों का अत्यन्त निर्मल नीर निरन्तर कल-कल ध्वनि करता रहता है। जिस प्रकार [illegible] अनेक प्रकार के स्वर्ण, चांदी, चन्दन [illegible] दान, सोनपत्र, नगरी मार के बान आदि सामग्री

एक देश से दूसरे देश मे भेजते रहते है। उसी प्रकार वहा से बहने वाली नदिया अपने स्वच्छ शीतल जल को एक देश से दूसरे देश मे प्रवाहित करती रहती हैं। इन नदियो के किनारे किसी प्रकार के फल-फूल की कमी नही रहती। अर्थात् कदली, ताड, नारियल, बिजनौर, सुपारी, आम, नीबू, नारगी, अनार, सतरा आदि अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम वृक्ष उस नदी के दोनो तट पर स्थित है, जिनमे कि सदा उत्तमोत्तम फल लगे रहते है। उनके आकर्षण से पथिक गण सदैव फलो का आस्वादन करते हुये वृक्षो के नीचे विश्राम करते रहते हैं।

भावार्थ—ग्रन्थकार ने इस श्लोक मे नदियो का वर्णन किया है। जिस प्रकार वैडूर्य मणि, माणिक्य मोती आदि सूर्य के प्रकाश के समान जगमगाते रहते हैं उसी प्रकार बहता हुआ नदी का अत्यन्त निर्मल, स्वच्छ तथा चमकता हुआ जल कल-कल ध्वनि करता हुआ बहता रहता है। जिस प्रकार एक बडा व्यापारी सुगधित चदन, माणक मोती, हाथी दात तथा चवर बनाने के लिए चवरी गाय के बालो के व्यापार करने के लिये एक देश से दूसरे देश मे ले जाता है उसी प्रकार विदेह क्षेत्र की नदिया दोनो तट पर चदन, कदली, जम्भीर, नीबू, नारगी, आम, खजूर, ताड, श्रीफल तथा अमरूद आदि अनेक वनस्पतियो से सुशोभित होती है। इनमे अनेक प्रकार के फूल-फल बराबर लगे रहते है। इस सघन उपवन की शोभा को देखकर पथगमन करने वाले पथिको का श्रम दूर हो जाता है, और वे आकर इसी उपवन मे फल फूल खाकर विश्राम करते है तथा नदी के निर्मल जल मे स्नान-पान आदि करके आनन्द मनाते है।

कुळै गळुम् मलरुंक् सेट्रिन् कुयिल्गळु मयिलुमातुं ।
मळैयेन मदुक्कळ् दुदु वंडोडु तुंबि पाडि ।।
विलै युरुन् तगैय वागि वेंडि नार् वेंडिट्रियु ।
मळ्गुडै मरंगळ् पोंड्र वम्मलर्स् सोलै येल्लाम् ।।१२।।

अर्थ—नाना प्रकार के सुन्दर एव सुगन्धित पुष्पो के वीच वैठकर सुगन्धित तथा स्वादिष्ट पुष्परस को पान करके प्रसन्न होकर कोयल, भ्रमर तथा मयूरादि की पक्तिया परम सुहावनी लगती थी, तथा गान करती हुई इन पक्षियो की ध्वनि ऐसी सुहावनी लगती थी कि मानो कोई किन्नर किंपुरुष आदि देव-देविया स्वर्ग से नीचे उतरकर वीणा-वादन के साथ अत्यन्त मधुर स्वर मे गान कर रही हो। उन भ्रमर, कोयल और मयूरादि पक्षियो की मधुर ध्वनि पथिक जनो के कानो को अत्यन्त आनन्द उत्पन्न करती थी। उस वन मे उत्पन्न सभी वृक्ष पथिक जनो को इच्छित फल देकर कल्पवृक्ष के समान प्रतीत होते थे ।।१२।।

भावार्थ—इस श्लोक मे ग्रथकार ने विदेह क्षेत्र मे स्थित वनभूमि का वर्णन किया है। उस वनप्रदेश मे उत्पन्न सुगन्धित लता, वेली, वृक्ष, केतकी, चपा, चमेली मदार, पुष्प, मालती, जुही, मुक्ताफल आदि पुष्पो के वीच वैठकर उस कर्णिका के मध्य रहने वाले भ्रमर समूह मधुर रस को पान करके अत्यन्त मधुर स्वर वीणा-वादन के समान गुंजार करते थे। आम्र कदली आदि अनेक वृक्षो मे वैठकर सुपक्व मिष्ट मधुर फल को खाकर कोयल और मयूर पक्षी इस प्रकार मधुर स्वर करते थे कि मानो स्वर्गीय अप्सराये या किन्नर देव-देविया एकत्रित होकर वीणा वादन पूर्वक गान कर रही हो। उस वन मे उत्तम फल और फूलों से

भरे हुये वृक्ष पथिक जनो को इच्छानुसार कल्पवृक्ष के समान तृप्त करते थे। इस प्रकार विदेह क्षेत्र के पवित्र भूमि का वर्णन हुआ ।।१२।।

मदियोडु सींग नील मरिणत्तळत्तिरुंद वेपोर् ।
पोदिय विळ् कमल मॉबल् पूत्तन पौय्गैएल्लाम् ।।
मदिमिसै करुप्पित् वेंडा मरैमिसै वंडिन् पाडल् ।
मदियन्न मुगत्ति नल्लार् बाय् पन्नि नेळ् च्चिदोडे ।।१३।।

अर्थ—चन्द्रमा को नक्षत्र इस प्रकार घेर लेते है कि जैसे इन्द्र नील मरिण रत्नो के द्वारा निर्माण किया हुआ यह भूभाग ही है। उस भूमि मे रहने वाले सरोवर के सभी कमल ऐसे दीखते थे कि चन्द्रमा मे रहने वाले कालेपन के समान श्वेत वर्णके सफेद पुष्पो पर भ्रमरों के अत्यन्त सुन्दर और सरस झकार शब्द हो रहे हो। और चन्द्रमा के समान स्त्रियो के मुख कमलो से "सा रे ग म प" ऐसे शब्द निकल रहे हो। इस प्रकार भ्रमर के शब्द सुनाई दे रहे थे।

भावार्थ—चन्द्रमा के समान नक्षत्र ऐसे प्रतीत होते है कि जैसे इन्द्र नीलमरिण के समान भूमि मे खिलने वाले नील व श्वेत कमल खिले हुये हो। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि चन्द्रमा मे रहने वाले काले-पन कमल मे अन्दर रहने वाले उडने वाले भ्रमर हो और अत्यन्त सुन्दर व सरस झकार शब्द चन्द्रमुखी स्त्रियो के मुखकमल से अत्यन्त मधुर शब्द निकल रहे हो ।।१३।।

अन्नमेन् कुरुगुतारानारेवंडानङ् कोळि ।
तुन्निन पेडैगलोडुम् तुरंदवु मळैत्त तोट्र ।।
मिन्नरि शिलंवि नल्लार् सिल्लरि शिलंबवाडि ।
कण्णियाळ् पैलुम् शालै पोंड्रन कयंगळेल्लाम् ।।१४।।

।। विदेह क्षेत्र की उपजाऊ भूमि का वर्णन ।।

अर्थ—अत्यन्त सुन्दर पुष्पो, बगीचो, वृक्षो, और कोमल लताओं मे थोडा भी अन्तर न होता हुआ एक मे एक सभी पल्लवो पर बैठे हुये कोयल पक्षी के अत्यन्त मधुर शब्द और वर्षा को बून्दे पड़ने तथा मधुमक्खी के शहद के छत्ते मे बून्द पडने के समान ऊपर मे गिरते हुये ऐसे मालूम होते हैं कि जैसे आकाश मे मेघ की बून्दे पड रही हो और उसके बीच अत्यन्त मधुर शब्द के समान भ्रमर गुंजार कर रहे हो। ऐसी सुन्दर वहा की भूमि है।

भावार्थ—सभी तालाबो और सरोवरो मे हंस पक्षी, अत्यन्त मधुर ध्वनि करने वाले सारस पक्षी नाना नामक पक्षी, सफेद बक पक्षी, जलमुर्गी अपने २ साथियों के साथ परस्पर मे प्रेम पूर्वक उस पानी मे जल क्रीडा करते हुये कल्लोल के साथ आनन्द मनाते है। क्षण मात्र भी यदि दोनो मे से किसी का विरह हो जाय तो दोनो अत्यन्त दुःखी हो जाते है और विरहातुर होकर चारो ओर देखने लगते है। इनके अतिरिक्त अत्यन्त प्रकाशमान व मधुर ध्वनि करने वाली देवांगना अपने तारो मे बाजकर [illegible] और [illegible] की ध्वनि

कन्याये इस प्रकार सुशोभित हो रही थी कि मानो वीणा वादन व नृत्यकला आदि का शिक्षण केन्द्र ही इस सरोवर मे स्थापित किया गया हो ।।१४।।

सालिगळ् करु बिर् सेट्रि शाक्तवु मुयर्ंदु तम्मिन् ।
मेलळ वोत्त् शंबोन् विरिदुड नींड्रु मेलोर् ।।
कालुर बनंगु वारिर् कमलत्ति निरैंजिकाय्त्त ।
नीलनर् पवळ् मुत्तिन् कळुत्त वाय् निरैंद पूगम् ।।१५।।

अर्थ—तालाब व सरोवर मे रहने वाले सभी पक्षी अपने २ बाल बच्चो के साथ बडे हर्ष पूर्वक जल क्रीडा करते हुये आनन्दपूर्वक अपने समय को व्यतीत कर रहे थे। वहा पर उत्तमोत्तम तथा सुगन्धित धान, चावल, गेहू गन्ना आदि की फसले परस्पर मे मिलकर एक साथ अधिक से अधिक वृद्धि को प्राप्त करने नीचे झुक जाती है। इनकी बालिया एक समान होती हैं और दर्शको को देखने से ऐसी प्रतीत होती है कि मानो वे सभी स्वर्ण की बनी हुई हो, कुशल शिल्पियो द्वारा हाथो से तैयार की गई हो। भव्य जीव जिस प्रकार पूज्य पुरुषो के चरणो मे विनीत भाव से नत मस्तक होकर प्रणाम करते है उसी प्रकार कमल पुष्पो को नमस्कार करते थे और उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो सुपारी के वृक्षो मे इन्द्र नील मणि या पन्ना की मणि ही लगकर फल रूप मे परिपक्व हो गई हो। उसकी शोभा दर्शको को इस प्रकार प्रतीत हो रही थी कि मानो परम सुन्दर स्त्रिया नीलमणि व मोती मणि के हार को पहिन कर आई हो।

भावार्थ—सुन्दर धान, चावल तथा गन्ने की फसले अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होकर उसकी बालिया एक समान झुकी हुई थी और वह देखने मे इस प्रकार प्रतीत होती थी कि मानो पीत वर्ण के सोने के तार बढकर नीचे को झुक गये हो। जिस प्रकार सत्पुरुषो के चरणो मे भव्य जीव भक्ति भाव पूर्वक नमस्कार करते हैं उसी प्रकार कमल तथा सुपारी के सुन्दर पुष्प झुककर सुशोभित हो रहे थे। जिस प्रकार स्त्रिया अपने कठ मे पुखराज, मोती माणक आदि के सुन्दर हार को धारण किए रहती हैं उसी प्रकार वहा की सुन्दर सुगधित हरे रग की सुपारी झुकी हुई सुशोभित हो रही थी ।।१५।।

सूर्पळि इलामै यानुं तूय नल्लोळुक्कि नानु ।
मिपिरप्पोब लानु मेल्लर् पाडिन्मैयानुं ।।
नट्रवर गीत लानु नादन् शीरोदलानुं ।
कर्पुडै कामर वल्लियार्गळे पोलु मूर्गळ् ।।१६।।

गधमालिनी देश तथा तत्सम्बन्धी नगर मे जितने भी प्राणी रहते हैं उनके मुंह से कभी कटु वचन नही निकलते। वे अत्यन्त परिशुद्धभाव वाले, श्रेष्ठ चारित्र को धारण करनेवाले, ससार के समस्त प्राणियो पर करुणाभाव रखने वाले, महानपस्वी मुनियो को आहारदान देनेवाले, सदैव जिनेन्द्रभगवान् की स्तुति व गुणगान करने वाले, पतिव्रता स्त्रियो से युक्त पुष्पलता के समान अत्यन्त सुन्दर शरीर से सुशोभित स्त्रियो से युक्त उस नगर मे उत्तम श्रावक धर्म मे रत रहा करते थे।

भावार्थ-उस देश के प्रत्येक ग्राम और नगर ऐसे सुशोभित हैं कि वहा के निवासियो के मुख से कभी कटु वचन नही निकलते है। ससार से भयभीत, शुभकामना वाले, चारो प्रकार के दानो मे सदैव तल्लीन, उत्तमसत्पात्रो मे प्रेम, शास्त्र-स्वाध्याय मे लीन रहने वाले, जिनेन्द्र भगवान् का गुणगान करने वाले तथा सुन्दर पुष्पो को धारण करने वाले वहा के नगरनिवासी होते थे ॥१६।

पारिलुळ्ळ वर्कलाम् पडुपयन् पोदुउमाय्।
एर्मलिन् दिडगळ्गु मिबमे पयंदु नल् ॥
वेरिशांद मूडु पोगि मेवि याडल् पाडलोडु ।
वार मादर पोंड्र माड ऊर्गडोरु माडलाम् ॥१७।

अर्थ—वहा की जनता विशाल नगर मे ऊचे २ महलो मे निवास करती हुई विपुल वैभव से सम्पन्न थी। अर्थात् वहा पर चारो ओर से सर्व प्रकार का सुख ही सुख भरा हुआ था। वहा के स्त्री-पुरुष अत्यन्त सुन्दर शरीर को धारण करने वाले होते थे। चन्दन का शरीर मे लेप करके उत्तमोत्तम अलकारो से अलकृत होकर नृत्यमडप मे जाते समय उनके शरीर की सुगध चारो ओर फैलती जाती थी। और वेश्या स्त्रियो के द्वारा सगीत तथा नृत्यादि करते समय इस प्रकार नगर मे महल सुशोभित हो रहे थे कि मानो स्वर्ग लोक मे देवागनाये नृत्य कर रही हो।

भावार्थ—वहा के महल तथा गोपुर अत्यन्त रमणीक, सम्पन्न तथा शोभायमान दीखते थे। उस नगर के निवासी सुख-शाति सम्पन्न होते थे। अर्थात् वहा पर सामान्य रीति से सर्वथा सुख ही सुख था। उस नगर मे अत्यन्त सुगध से भरी हुई वस्तु तथा चन्दन आदि के तेल को शरीर पर लेप करके नर्त्तन मडप मे प्रवेश करने वाले मनुष्यो की सुगन्ध चारो ओर फैल जाती थी और नृत्य सगीत आदि खेल को खेलने वाली देवागनाओ के समान प्रतीत होती थी। उस समय ऐसा मालूम होता था कि मानो देवगण देवलोक से नीचे नृत्य करते हुये आ रहे हो। ऊचे २ महलो से नीचे उतरते समय उनके शरीर के आभरण देदीप्यमान होकर देवागनाओ के समान सुशोभित हो रहे थे।

सुंदरत्तलं मणि सुवर् पळिगु शंबोन ।
लंदर तडक्क मायनेग मालै नांदगम् ॥
मैंदरुं मैलनारु मल्गुमाड माळिगै ।
इंदिर विमान मिगिलि गिरुंद नीरवे ॥१८॥

अर्थ—अत्यन्त सुन्दर भूमि मे वहा की बनी हुई दीवारे अनेक रत्नो तथा स्फटिक मणियो से निर्मित थी। उस दीवार पर पीले रग का लेप करके सुनहरे रग मे रत्न व सोने की मालाओ के समान चित्राम बना दिये गये थे। मयूर के समान चाल वाले पुरुष व स्त्रियों के महल ऐसे सुन्दर व रमणीय बने हुये थे कि मानो देवो के सुन्दर २ विमान ही स्वर्ग से उतर कर भूमि पर आ रहे हो।

भावार्थ—अत्यन्त रमणीय उस भूमि पर बने हुये मकान व महलो की दीवारो पर स्फटिकमणिमय रत्न व सोना से लेप किया हुआ था, जिन पर सुन्दर मालाये लटकी हुई थी। सुन्दर मयूर के समान चाल वाले स्त्री-पुरुषो के लिये ऐसे महल बना दिये गये थे कि मानो देवो के विमान ही स्वर्ग से उतर कर भूतल पर आ रहे हो। इस प्रकार वे महल और मकान सुशोभित हो रहे थे ॥१८॥

चातुर्य मिल्लवरु मिळ मैंदर् तन्सोलु ।
माधुर्य मिल्लवैय मिल्ल मट्रवर्शेयळ ॥
पोदुर्य मिल्लवय मिल्ल पोन्नेइ लिरै ।
कादरमु मिल्लवरु मिल्ल यंदनाडेलाम् ॥१९॥

अर्थ—उस देश मे रहने वाले पुरुषो मे से कोई भी ऐसा पुरुष नही था जो कि शास्त्र आदि कलाओ से रहित हो। अर्थात सभी स्त्री-पुरुष सपूर्ण कलाओ सहित थे। उनकी मधुर वाणी थी, सदैव उनकी बुद्धि सत्कार करने मे लगी रहती थी। वे स्वर्णमयी मन्दिर मे भगवद् भजन, अर्हत की भक्ति तथा पूजा मे सदैव ठीक रहा करते थे। कोई भी प्राणी भगवान् की पूजा आदि के बिना नही रहता था। अर्थात् उस देश मे भगवान् की भक्ति से रहित कोई भी मनुष्य नही था।

भावार्थ—उस देश मे रहने वाले स्त्री-पुरुष सम्पूर्ण कलाओ के जानकार थे। कोई भी कला से रहित नही था। सभी सुमधुर वाणी बोलते थे, सत्कार करने से कोई भी रिक्त नही था। वहा भगवान् की वेदी स्वर्ण से युक्त है। उसमे विराजमान भगवान् अर्हन्त की भक्ति व पूजा करने वाले मनुष्य रहते थे। पूजा से रहित कोई मनुष्य नही रहता था। इसका साराश यह है कि उस देश के निवासी पुरुष अत्यन्त वैभवशाली बलवान, धर्मातमा, सकल शास्त्र-कला, तर्क, व्याकरण तथा छन्द शास्त्र आदि मे परम प्रवीण सर्वजन हितकारी तथा आनन्द को उत्पन्न करने वाले थे। वहा के रहने वाले भव्य प्राणी भगवान् की पूजा मे सदैव लीन रहते थे। यह सभी सौभाग्य मनुष्य को सम्यग्दर्शन सहित दान के कारण से होता है। धर्म रहित मनुष्य को यह सौभाग्य कभी प्राप्त नही हो सकता। आगे चलकर यही पुण्यानु-पुण्य मोक्ष को देनेवाला हो जाता है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने रयणसार मे कहा है कि —

कामदुहिं कप्पतरुं चितारयण रसायण य सम ।
लद्धो भुंजइ सोक्ख जहच्छिय जाण तह सम्म ॥५४॥

जिस प्रकार भाग्यशाली मनुष्य कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिनामणि रत्न और रसायन को प्राप्त कर मनवांछित उत्तम सुख को प्राप्त होता है उसी प्रकार सम्यग्-दर्शन से भव्य जीवो को सभी प्रकार के सर्वोत्कृष्ट सुख और समस्त प्रकार के भोगोपभोग स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं।

पद्मनन्दी आचार्य ने इस मानव प्राणी को सम्बोधन के साथ.पद्मनदिपचविशतिका मे कहा है कि :—

लब्धे कथं कथमपीह मनुष्यजन्मन्यङ्ग प्रसंगवशतो हि कुरु स्वकार्यम् ।
प्राप्त तु कामपि गतिं कुमते तिरश्चां कस्त्वा भविष्यति विबोधयितुं समर्थः ।।१६८।

जन्म प्राप्य नरेषु निर्मलकुले क्लेशान्मतेः पाटव ।
भक्ति जैनमते कथ कथमपि प्रार्गाजितश्रेयसः ।।
समारार्णवतारक सुखकरं धर्म न ये कुर्वते ।
हस्तप्राप्तमनर्घ्यरत्नमपि ते मुञ्चन्ति दुर्बुद्धयः ।।१६६।।

अर्थ—हे दुर्बुद्धि प्राणी ! यदि किसी भी प्रकार से तुम्हे मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ तो फिर प्रसग पाकर अपना कार्य (आत्महित) कर ले । अन्यथा यदि तू मरकर किसी तिर्यंच पर्याय को प्राप्त हुआ तो फिर तुझे समझाने के लिये कौन समर्थ होगा ? अर्थात् कोई नही समर्थ हो सकेगा । जो लोग मनुष्य पर्याय के भीतर उत्तम कुल मे जन्म लेकर कष्टपूर्वक बुद्धि की चतुरता को प्राप्त हुये है तथा जिन्होने पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म के उदय से जिस किसी भी प्रकार से जैन मत मे भक्ति भी प्राप्त कर ली है, फिर यदि वह संसार सागर से पार कराकर सुख को उत्पन्न करने वाले धर्म को नही करता तो समझना चाहिये कि वह दुर्बुद्धि जन हाथ मे प्राप्त हुये अमूल्य रत्न को स्वयमेव छोड़ रहा है ।।१६।।

शीलं वदंगळं शेरिवु मिल्लवरिलै ।
कालै सालै नीदियोडु कल्वि इल्लवरिलै ।।
वेलंमुंबु नल्लदान मिड्रियुंववरिलै ।
मालै कालै मादवरै वंदियारु मिल्लये ।।२०।।

अर्थ—वहा के श्रावक शीलाचार व व्रत मर्यादा से रहित नही होते । प्रात काल सायकाल क्रम से शास्त्र स्वाध्याय से रहित लोग नही हैं । भोजन करने के पहले वे दिगम्बर जैन मुनियो को आहार दान देते हैं । सत्पात्रो को दान दिये विना वे कभी भोजन नही करते । वे प्रात सायकाल महान् तपश्चरण करने वाले साधु पचपरमेष्ठियो को नमस्कार करते हैं तथा वहां पर णमोकार मत्र के जाप से रहित कोई भी श्रावक नही होता ।

भावार्थ—वहा पर शीलाचार सहित व्रती श्रावक सदैव रहते हैं । सभी प्रात सायं-काल शास्त्र स्वाध्याय करते है, दिगम्बर मुनियो तथा सत्पात्रो को आहार दान देते हैं । प्रातः सायकाल सभी श्रावक पचपरमेष्ठियो व साधुओ को नमस्कार करते है तथा जाप करते हैं । पद्मनन्दिपचविंशति मे पद्मनन्दी आचार्य कहते हैं कि :—

ये गुरुं नैव मन्यन्ते तदुपास्तिं न कुर्वते ।
अन्धकारो भवेत्तेषामुदितेऽपि दिवाकरे ।।१६।।

ये पठन्ति न सच्छास्त्र सद्गुरुप्रकटीकृतम् ।
तेऽन्धाः सचक्षुषोऽपीह सभाव्यन्ते मनीषिभिः ॥२०॥
मन्ये न प्रायशस्तेषा कर्णाश्च हृदयानि च ।
यैरभ्यासे गुरोः शास्त्र न श्रुत नावधारितम् ॥२१॥
देशव्रतानुसारेण सयमोऽपि निषेव्यते ।
गृहस्थैर्येन तेनैव जायते फलवद्व्रतम् ॥२२॥
त्याज्य मास च मद्य च मधूदुम्बरपचकम् ।
अष्टौ मूलगुणाः प्रोक्ताः गृहिणो दृष्टिपूर्वकाः ॥२३॥

अर्थ—जो अज्ञानी जन न तो गुरु को मानते है और न उसकी उपासना ही करते है उनके लिये सूर्य का उदय होने पर भी अन्धकार जैसा ही है। ज्ञान की प्राप्ति गुरु के प्रसाद से ही है। अतएव जो मनुष्य आदर पूर्वक गुरु की सेवा सुश्रूषा नही करते वे अल्पज्ञानी ही रहते है। उनके अज्ञान को सूर्य का प्रकाश भी दूर नही कर सकता। कारण यह है कि वह तो केवल सीमित वाह्य पदार्थो के अवलोकन मे सहायक हो सकता है, न कि आत्मावलोकन मे। आत्मावलोकन मे तो केवल गुरु के निमित्त से प्राप्त हुआ अध्यात्मज्ञान ही सहायक होता है। जो जन उत्तम गुरु के द्वारा प्ररूपित समीचीन शास्त्र को नही पढते उन्हे बुद्धिमान मनुष्य दोनो नेत्रो से युक्त होने पर भी अधा समझते है। जिस व्यक्ति ने गुरु के समीप जाकर न तो शास्त्र ही सुना और उनके उपदेश को ही हृदय मे धारण किया उसके पास कान-और हृदय होते हुये भी नही के समान समझना चाहिये। क्योंकि कानो का सदुपयोग इसी मे है कि उनसे शास्त्रो का श्रवण किया जाय तथा सदुपदेश सुना जाय और मन का भी यही सदुपयोग है कि उसके द्वारा सुने हुये शास्त्र का चिन्तन, मनन किया जाय तथा उसके रहस्य को धारण किया जाय। इसलिये जो प्राणी कान और मन को पाकर के भी उन्हे शास्त्र के विषय मे प्रयुक्त नही करते उनके कान और मन दोनो निष्फल ही हैं। श्रावक यदि देशव्रत के अनुसार इन्द्रियो के निग्रह और प्राणिदया रूप सयम का सेवन करते है तो इससे उनके व्रत (देशव्रत) के परिपालन की सफलता इसीमे है कि पूर्ण सयम को धारण किया जाय।

मद्य, मांस मधु और पाच उदुम्बर फलो ऊमर, कठूमर, वड, पाकर और पीपल) का त्याग करना चाहिये। सम्यग्दर्शन के साथ ये आठ श्रावक के मूलगुण कहे गये हैं। मूल शब्द का अर्थ जड होता है। जिस वृक्ष की जडे जितनी अधिक गहरी और बलिष्ठ होती है उसकी स्थिति बहुत समय तक रहती है, किन्तु जिसकी जडे अधिक गहरी और वलिष्ठ नही होती उसकी स्थिति बहुत काल तक नही रह सकती। वह एक छोटी सी आधी मे ही उखड जाता है। ठीक इसी प्रकार से इन गुणों के बिना श्रावक के उत्तर गुणो (अणुव्रतादि) की स्थिति भी सुदृढ नही रह सकती। इसलिये श्रावक के ये आठ मूलगुण कहे जाते हैं। इनके भी प्रारम्भ में सम्यग्दर्शन अवश्य होना चाहिये, क्योकि उसके विना प्राय. सभी व्रतादि निरर्थक

ऐंगनैकिळवनै कंडंद मैत्तवरेनुं ।
पुंगवर् किरैवनर शिरप्पु मुंविलादन ॥
मंगलत्तुळिलगळिल्लै मानमायमंदना ।
डेंगुमिल्लै यावरु मिरैजि मैयोळुगलाल् ॥२१॥

अर्थ—पंचवाण पचेन्द्रिय सहित कामदेव को अर्थात् मन्मथ को जीतकर, निज धर्म रूप आत्मस्वरूप को जानकर दुर्द्धर तपस्या करने वाले श्रेष्ठ मुनियो की और तीन लोक के अधिपति भगवान् जिनेश्वर की पूजा आदि नित्य-क्रिया किये विना वहा के भव्य जीव कोई भी कार्य नही करते । उस देश मे सभी भव्य जीव सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्व पूर्वक नमस्कार करने वाले, सच्चारित्र के धारी तथा शुभ आचरण करने वाले होते है । वे मान माया कपटादि से रहित होते हैं । अर्थात् वहा मायाचारी नही रहते । इस प्रकार उस देश मे लोग रहते है ।

भावार्थ—पचेन्द्रिय विषय मे पचवाणो को जीतकर सच्चे आत्मधर्म को समभकर श्रेष्ठ तपश्चरण करने वाले मुनि जनो की भक्ति और त्रिलोकीनाथ जिनेन्द्र भगवान् की पूजा, अभिषेक आदि षट्कर्म क्रिया नित्य आवश्यक कर्म समभकर उसके किये विना भव्य प्राणी अन्य संसारी कोई कार्य नही करते थे । उस विदेह क्षेत्र मे रहने वाले भव्य श्रावक देववदना सच्चारित्र पालन करने वाले, माया मिथ्या निदान आदि से रहित होते है । उनके अन्दर लेश मात्र भी कपटाचार नही रहता । इसका साराश यह है कि वहा के निवासी नित्य निरन्तर जिनेन्द्र भगवान् की पूजा, अभिषेक तथा नित्य के षट् आवश्यक कार्य करते रहते हैं । वे कभी असत्य वचन नही बोलते तथा धर्म अर्थ, काम और मोक्ष के साधनार्थ सदैव तत्पर रहते है ॥२१॥

नडु कडर पिरंदु संगि नुळिळुरंद पालिनर् ।
कुडिप्पिरंद मैदतम् कुळैमुंग पिरर् मनै ॥
इडैकनवैत्तलिल्लै काद लार्गळ् मैलुभार्वमूर् ।
कडैवकु नोकिलाद मादर् कर्पयादर् सेप्पुवार् ॥२२॥

अर्थ—समुद्र के मध्य रहने वाले शख के अन्दर उत्पन्न होने वाले धवल शख के समान उच्च कुल मे उत्पन्न होकर कानो मे कुंडल को धारण किये हुये श्रेष्ठ पुरुष अपनी आखो से कभी भी परस्त्री पर कटाक्ष नही करते थे और स्त्रिया भी पतिपरायणा होकर पतिव्रत धर्म का पूर्ण रूपेण पालन करती हुई अपने पति की सेवा मे रहकर समय व्यतीत करती थी । ऐसी गुणी स्त्रियो के वर्णन करने मे कौन समर्थ हो सकता है ? अर्थात् कोई नही । वे धर्मपरायणा पतिव्रता स्त्रिया कभी अपने मन मे पर पुरुष का स्मरण तक नही करती तथा अपने इष्ट देव, गुरु शास्त्र के अतिरिक्त अन्य किसी देव को नमस्कार नहीं करती थी ।

भावार्थ—समुद्र के बीच मे उत्पन्न होनेवाले शंख के समान उच्च कुल मे जन्म लेने वाले पुरुष कानो मे कुण्डलादि आभरणो से आभूषित होकर अत्यन्त सुन्दर लगते थे,

किन्तु उनके मुख कमल की शोभा अद्भुत् होते हुये भी उनकी दृष्टि कभी पर स्त्री पर नही जाती थी। उस देश के स्त्री पुरुष सभी सच्चरित्र होकर धर्म ध्यान मे लगे रहते थे। ऐसे स्त्री-पुरुषो का वर्णन कौन कर सकता है ? अर्थात् कोई नही ॥२२॥

अणिदूनुवक्कनियनार् कळाडु मारुयिलनार् ।
मणियैमन्नि वैत्तनर्गळ् वंजमिन् मनत्तिनार् ॥
पनिविला ओळुक्कि नर्गळ् पन्नवर् पळिच्चवार् ।
कनिगैमादर् शीलमिन्न कामरु तगयवे ॥२३॥

अर्थ—उस देश मे रहने वाली वेश्या स्त्रिया उत्तम अलकारो से अलंकृत होकर अत्यन्त सुन्दर रूपको धारण करने वाली, मयूर के समान सुन्दर नृत्य करने वाली, रत्नाभरणों को धारण करने वाली, सारग के समान गति वाली होती हैं। वे सभी कपटाचार माया, मिथ्या, निदान आदि छलो से रहित, दुश्चरित्र से वर्जित. सत्य शील पालने वाली, अर्हन्त भगवान् की भक्ति मे परायण होती है । उस देशकी स्त्रिया वेश्या होने पर भी सच्चरित्र पालन करने वाली होती है। और सभी के साथ प्रेम करने वाले गुणो को धारण करने वाली होती हैं।

भावार्थ—इस विदेह क्षेत्र मे रहने वाली वेश्या स्त्रिया अत्यन्त सुन्दर और अलंकार सहित होती है । उनका शरीर रत्न के समान अथवा बिजली के समान चमकता है। जाति से वेश्या होने हर भी वे एक ही पुरुष पर दृष्टि रखने वाली होती है। उनकी चाल मयूर के समान, आखे मृग के समान, कमर सिंह के समान अत्यन्त सुन्दर होती है । वे कपट तथा दुश्चरित्रता से रहित शील धर्म को पालन करने वाली भगवान् की भक्ति मे मग्न रहती हैं। इस प्रकार उस देश की वेश्या स्त्रिया भी उत्तम शील धर्म का पालन करती हुई सभी के परम प्रिय होती है ॥२३॥

इडैरा तरि ओळि इरवियन् केळुदलाल्
कडै यिळावरी विरैव नालयंग ळल्लदु ॥
पडरोळि विमानत्तोडु पाइरुळ तिन्मय पोल् ।
बिडैयुलावि यादियाय वेट्रिलिग मिल्लवे ॥२४॥

अर्थ—विशाल प्रकाश से युक्त सूर्य के समान सदैव अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने वाले अथवा रात-दिन को एक समान कर देने वाले अनन्तज्ञान रूपी प्रकाश को प्राप्त हुये जिनेन्द्र भगवान् रूपी सूर्य उस देश मे प्रकाश फैलाते रहते थे तथा केवली भगवान् के मन्दिर के अतिरिक्त और कोई अनायतन का स्थान ही वहा नही होना। अर्थात् वहा पर अन्य देवो के स्थान ही नही होते हैं।

भावार्थ—उस देश मे विशाल सूर्य प्रकाश के समान रात-दिन एक समान करने वाले अनन्त ज्ञान को प्राप्त हुये भगवान् जिनेन्द्रदेव के मन्दिर के अतिरिक्त वहा अन्य-मतियों

का कोई स्थान नही है । वहा पर सभी सम्यग्दृष्टि जीव रहते है । सम्यग्दृष्टि के ६३ गुण इस प्रकार होते हैं :—

१ सवेग, २ निर्वेद, ३ निन्दा, ४ गर्हा, ५ उपशम, ६ भक्ति, ७ अनुकम्पा, ८ वात्सल्य ये आठ गुण, शका आदि पाच अतिचारो का छूटना रूप ५ गुण, सात भयो का छूटना रूप ७ गुण, तीन शल्यों का छूटना रूप ३ गुण, पचीस दोषो का छूटना रूप २५ गुण, आठ मूल गुण पालन रूप ८ गुण, सात व्यसनो का त्यागना रूप ७ गुण, इस प्रकार ६३ गुण होते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव इन गुणो को प्राप्त करता है और करना भी अनिवार्य है ।

इसके अतिरिक्त सम्यग्दृष्टि जीव के सम्यग्दर्शन आदि ८ अग भी होते हैं, जिनके बिना सम्यग्दर्शन नही होता, और फल स्वरूप वह सम्यग्दर्शन जीव को मोक्ष मे नही पहुँचा सकता। ऐसी स्थिति मे उनका सचय करना अनिवार्य है। परन्तु वे आठो अग निश्चय और व्यवहार नय के भेद दो प्रकार होते हैं।

१, सरागी जीव और दूसरा वीतरागी जीव । सरागी जीव, व्यवहाररूप आठ अगो को पालता है और वीतरागी जीव निश्चयरूप से आठ अग का पालन करता है ॥२४॥

कुरैयिला कुडिगळार कुळिइयऴर् कोडैवळर् ।
तिरैयिडु मिवट्रिना लियलविनाय नाडेळिन्
निरैमदि नडुवनैद निड्रमीन् कुळांगळ्पो ।
लिरैवन दिरुकै सूळ्‌द नाळेण्ण नाईरंगळे ॥२५॥

अर्थ—वहा पर धन्य धान्यादि सम्पत्ति से परिपूर्ण गृहस्थो के निवास करने वाले ग्राम थे और वे लोग प्रचुर मात्रा में धन्य-धान्य उत्पन्न करके विना मागे ही स्वयमेव राजा को कर देने वाले स्वाभाविक गुण के धारी थे। उस देश मे दश प्रकार की कलाओ से सयुक्त रहने वाले थे। इनके बीच मे चन्द्रमा के समान परम तेजस्वी धर्म से युक्त शान्त स्वभावी वहां के राजा थे। और चन्द्र मंडल मे तारागणो के समान वहा की प्रजा भी उत्तम गुणो से युक्त प्रकाशमान थी।

राजाओ के रहने तथा देशो को घेरे हुये नगरो की सख्या ३२००० है। ये सभी नगर चक्रवर्ती के अधीन हैं। और यहां पर सभी लोग चक्रवर्ती की आज्ञानुसार चलते हैं।

भावार्थ—वहां की जमीन धन धान्यादि मे सर्वथा सुसम्पन्न थी। और सर्वथा सम्पन्न होनेके कारण वे सद्गृहस्थ धान्य की मात्रा अधिक उत्पन्न होने के प्रमाणानुसार अपनी इच्छा से स्वयमेव ही राजा को कर देने वाले होते हैं। और वे स्वभाव से ही धार्मिक वृत्ति वाले होते हैं तथा उस देश में सभी १० कलाओ से परिपूर्ण रहते है। आकाश मे स्थित चन्द्रमा को चारो ओर रहने वाले तारागण जिस प्रकार घेरे रहते है उसी प्रकार उस नगर के मध्य में राजा की राजधानी को घेर कर रहने वाली ३२००० नगरो की प्रजा चक्रवर्ती की आज्ञा का पालन तथा अनुसरण करती थी ॥२५॥

अरै कळ लरसर् कोमानिरु कैय दयैदि सेघिर ।
कुरैविला दीतशोगं कुवेरन दिरुक्कै पोलु ।।
निरैनार् पुगैईरंडा रोवोंदु नीडगंड्र् ।
मरुगु मानदिगळ् पोड्र् वळ्ंगु माइरुत्तदामे ।।२६।।

अर्थ—मधुर स्वर को उत्पन्न करने वाले कठो से युक्त शूरवीर राजाधिराज चक्रवर्ती की राजधानी का वर्णन कहा तक करू ? वहा पर धन धान्य से परिपूर्ण कुवेर के नगर व अलकापुरी के समान अत्यन्त सुशोभित वीतशोक नाम का नगर है। क्रम से इस सुन्दर नाम को प्राप्त हुआ यह वीतशोक नगर १२ योजन लम्बा व ९ योजन चौडा है। वहा पर सदैव जल से परिपूर्ण नदी के प्रवाह के समान जलधारा वहती रहती है और प्रजाजनो के आवागमन के लिये एक हजार मार्ग व गलिया निर्मित है।

भावार्थ—सुन्दर सुमधुर शब्दो से उत्पन्न होनेवाले वीर-कठो से युक्त राधाधिराज चक्रवर्ती की राजधानी का वर्णन कहा तक करे ? उसका वणन करना मेरे द्वारा अशक्य है। फिर भी यथाशक्ति उसका वर्णन करता हूँ। धन-धान्य से परिपूर्ण कुवेरपुरी अथवा अलकापुरी के समान वीतशोक नगर की शोभा अत्यन्त सुहावनी प्रतीत होती है। यह नगर १२ योजन लम्बा व ९ योजन चौडा है। पानी से भरी हुई छोटी २ नदियां सदैव वहती रहती है। और सभी प्रजाजनो के आने-जाने के लिये १००० एक हजार मार्ग व गलिया वनी हुई है।

अरुवदु तलैवैतीट्ट मंड्र् नूररिक्न् कोईल् ।
सेरिमलर् सौलै कुड्म् वावियु सेप्पिनन्न ।।
अरुवदिर् गुणिक्पट्ट वायिरम् सेरिपाडि ।
अरुवदोडिसैंद पात्तार् गुणित्त् वायिरगटामे ।।२७।।

अर्थ—भगवान् सर्वज्ञदेव के ३६० मन्दिर है। उस नगर के चारों ओर [illegible] वने हुये है और दरवाजो पर तोपे लगी रहती है। नगर के चारों ओर छोटी [illegible] तथा कुइया है, जिनकी गणना करना असभव है। उस [illegible] के चारो ओर ३६० [illegible] वहा पर गडरिया आदि जातियो के रहनेवालो के ६०००० साठ हजार [illegible] है। इन सभी स्थानो को मिलाकर साठ हजार तथा [illegible] ग्रामो [illegible] नाम के [illegible] ७०००० सत्तर हजार है।

भावार्थ—इस वीतशोक नामक नगर मे ३६० मन्दिर [illegible] नगर के चारों ओर [illegible] तोपे लगी हुई है। वहा पर [illegible], उपवन और [illegible] की सख्या लगभग ३६० है ।। २७ ।।

[illegible] नूरिरट्टि वायि[illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] ।।

कुञ्जरं कडावि वाळ ुं कुडिगळ ुं नूट्रु कोडि ।
इंजि मानगर मिव्वारियर् कैयालियेंड्र दोंड्रे ।।२८।।

अर्थ—उस नगर के गोपुर द्वार १००० एक हजार तथा छोटे २ द्वार ७०० सात सौ है। वहा पर चिरस्थायी वलिपूजा करने के लिये एक हजार वलिपीठ है। चारो कोनो मे बड़े २ हाथी है, जिनकी रक्षा करने वाले महावत तथा अपनी आजीविका उपार्जित करने वाले अन्य २ सौ करोड मनुष्य है । इस प्रकार विशाल कोट से घिरा हुआ वीतशोक नाम का नगर महान् शोभा से सम्पन्न है।

भावार्थ—उस वीतशोक नामक नगर के गोपुर द्वार एक हजार हैं । और छोटे द्वार ७०० हैं। वहा पर निरंतर बलि पूजा करने के लिये एक हजार वलिपीठ हैं। उस गोपुर के चारो कोनो मे हाथियो तथा उनकी रक्षा करने वाले महावत और जीविका द्वारा पेट भरने वाले नौकर व अन्य मनुष्यो की सख्या सौ करोड है। इस प्रकार सु दर दीवारो से घिरा हुआ वीतशोक नामक सुन्दर नगर स्वर्ग की अल्कापुरी नामक नगरी के समान शोभायमान प्रतीत होता है ।।२८।।

सुंदरं मलर्गळेन्नै सुन्नंतादु कुंकुमम् ।
सेंदन कुबंबु मेर्परंदु पाडिसूळ ंदग ।।
ळंदर तरुक्कनै येनिंदुसूळ् किडंद दो ।
रिंदिर तनुविन् वन्न मेन्न दन्न दागुमे ।।२९।।

अर्थ—उस नगर के चारो ओर खाई बनी हुई है और उसके किनारे अत्यन्त सुगन्धित फूलदार वृक्ष है तथा तेल, चूना, पुष्प, धातु, रोली आदि अनेक प्रकार के द्रव्य उस खाई मे भरे हुये पानी के ऊपर तैरते हुये चमकते हैं । रंग वगैरह से सुशोभित उस नगर की शोभा इस प्रकार दीखती हैं कि मानो सूर्य ने उसे चारो ओर घेर रक्खा हो। उपमा से रहित इन्द्र धनुष वर्ण के समान वीतशोक नामक नगर अत्यन्त शोभायमान दृष्टिगोचर होता है।

भावार्थ—उस नगर के चारो ओर खाई घिरी हुई है जिसके किनारे फूलदार वृक्ष लगे हुए है। उसके अन्दर सुगन्धित तेल, चूना, पुष्प धातु, रोली कु कुम आदि द्रव्यो से मिश्रित वस्तुये पानी पर चमकती रहती हैं । स्त्री और पुरुष अपने शरीर मे उसका लेप करके उस खाई के जल से स्नान करते हैं, जिससे उस जल की चमक के अनुसार उनका शरीर चमकने लगता है। इस कारण वह वीतशोक नामक नगर पथिको को ऐसा दीखता था कि मानो इन्द्रधनुष सूर्य को घेर कर सुभोभित हो रहा हो । चारो ओर खाई से घिरे होने के कारण वीतशोक नामक नगर अत्यन्त शोभायमान दीखता था ।।२९।।

किडंकिडैतडंगळ् सूळ ंदु केडुतोर्ट्रमिड्रिये ।
मडंगन् मोयिंदिन् वानवकुं मीदु पोगना मदिळ् ।।
तडंगळ् मरैत्तल तरैयुं सूळ मान वर् ।
कंदिडा वगई निंड्र नागन् तन्ने कादुमे ।।३०।।

अर्थ—उस खाई के मध्य फैला हुआ विशाल मैदान है। उस उन्नत भूमि को लाघ कर सिंह के समान अत्यन्त पराक्रमी शक्तिशाली देव भी उस नगर से पार जाने मे समर्थ नही थे। उस नगर के चारो ओर दीवार (कोट) है। और पुष्कर नामक एक विशाल समुद्र है। मनुष्य के द्वारा उसका उल्लघन करना सर्वथा अशक्य है। अर्थात् मनुष्य के अन्दर उसके उल्लघन करने की शक्ति नही है। जैसे मानुषोत्तर पर्वत को लाघकर मनुष्य नही जा सकता। वह इतना विशाल वीतशोक नामक नगर है।

भावार्थ—वीतशोक नगर के चारो ओर खाई के मध्य एक विशाल मैदान है। उसके चारो ओर रक्षार्थ सिंह के समान कोट हैं, जिसे महान् पराक्रमी देवता भी लाघकर नही जा सकते। अर्थात् जिस प्रकार कोई मनुष्य मानुषोत्तर पर्वत को लाघकर नही जा सकता उसी प्रकार इस वीतशोक नामक नगर को उलघन करने मे कोई भी समर्थ नही था। इस प्रकार अत्यन्त सुन्दर व शोभायमान वीतशोक नाम का नगर है ।।३०।।

दिक्कयं मलैगळ् पोर् सिरडुनिड् गोपुरंग ।
लोक्कुमाळीगै निरैकुलमलै गळोत्तन ।।
मिक्कमासनम् शक्त् वीदि सीदेयादि यारन ।
चक्करंड्रन् माळिगैयु मेरुवेन्नख्ननदे ।।३१।।

अर्थ—वहां के गोपुर तथा उस वीतशोक नगर के चारो ओर रहने वाले हाथी ऐसे दीखते है कि जैसे छोटे २ पहाड़ तथा छोटे २ गोपुर ही हो। उस नगर मे बने हुये कई मजिल के ऊंचे २ मकान व महल इस प्रकार प्रतीत होते थे कि मानो कुलपर्वत हो। उस नगरी की बडी २ गलियो से आने जाने वाले मनुष्य ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानो सीता नदी की निर्मल धारा नित्य निरन्तर कलकल ध्वनि करती हुई वह रही हो। अर्थात् उस गली से लोग नदी के प्रवाह के समान नित्य निरतर गमन करते हुये दिखाई दे रहे थे। यानी वे रात दिन चलते रहते थे। राजा के राजमहल सुमेरु पर्वत के समान विशाल व सुन्दर प्रतीत हो रहे थे ।।३१।।

मुगिर्करणगळ् पोन्मलैयै मोयत्तयानै पोन्मोय्प्प ।
पगर्किडै कोडादसैंबोन् मालिगैप्पीडदन ।।
वगिर्पुगय ळायनीर् मदत्तरुवि पोंड्रन ।
तुगिर्कणंगळन्नगर् मदिमरुत्तुडैक्कुमे ।।३२।।

अर्थ—महा मेरु पर्वत को किसी बहुत बडे हाथी ने घेर लिया हो और उसमे सूर्य के चलने का मार्ग अवरुद्ध हो गया हो, इसी प्रकार अत्यन्त उन्नत और स्वर्णनिर्मित उस राज महल को मेघो के समूह ने घेर लिया था। चन्दन व धूप का धुआ स्वाभाविक रूप से जिस प्रकार फैल जाता है उसी प्रकार राजमहल के ऊपर मेघ उमड रहे थे। उन मेघो मे जो जल की बून्दे नीचे गिर रही थी वह ऐसी मालूम पड रही थी कि मानो मनवाले हाथी का मद झर रहा हो। उस नगर मे ध्वजा के समूह ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानो चन्द्रमा के अन्दर रहने वाले कलंक को साफ कर रहे हों। ध्वजा की उन्नत ऊंचाई इतनी अधिक हो गई थी कि मानो वह चन्द्रमडल तक पहुँच रही हो ।।३२।।

पलिक्करैत्तलत्तिरुडु पन्दोडांडु पावैयर् ।
कलिक्कय लनैयकरणगळ्कामर्पदिन्मेचेंल्व ।।
वळै त्तनर् पुरुवविल् मलक्कर्णैत्तोडुत्त् विल् ।
लिळै प्पनोङ्ग मारनन् पिलविकलेयददोक्कुसे ।।३३।।

अर्थ—स्फटिक निर्मित प्रागण में गेन्द के खेल को वहां की कुमारी स्त्रियां खेलती थीं। उन स्त्रियो की आखे मछली की सुन्दर आखो के समान परम सुशोभित हो रही थी। स्त्रियो के चलते समय कटि की शोभा इस प्रकार प्रतीत हो रही थी कि मानो कामदेव मन्मथ वाण छोड रहा हो।

भावार्थ—वीतशोक नगर की सारी कुमारी स्त्रियो की चोटिया अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रही थी। उनके भौहे धनुष के समान झुकी हुई थी। उन स्त्रियो की शोभा जब वे परस्पर मे एक दूसरी को देखती थी तब ऐसी मालूम पड़ती थी कि मानो कामदेव एकाग्रचित्त से टकटकी लगाकर देख रहा हो ।।३३।।

मालै सांदेन्नै सुन्नं कै शैवा मरुदु मैंदर् ।
पोक्कवार् कुळलिनार् पोलिरुंदन वनिसैवीदि ।।
मालि मा मारिणयुं मुतुं वीळ्द वै किडदे तोट्रं ।
मेलुलाम् वान यारु वीळ्दि वट् किडंद दोंड्रे ।।३४।।

अर्थ—पुष्पो के हार, चन्दन, सुगन्धित तेल चूना आदि से युक्त गलियो मे व्यापारियो की दूकाने थी। और तरुण पुरुष मस्त होकर जब उस गली से निकलते थे तब ऐसा मालूम होता था कि मानो सुन्दर स्त्रियो के केश ही लहलहा रहे हो। माला बनाने वालो के हाथ से माला बनाते समय यदि कोई पुष्प भूल से नोचे गिर जाता तो उसे कोई पुरुष नही उठाता था। दूकानो मे जो माला व फूलो के गजरे टगे हुये थे उनमे से जब कोई पुष्प गिरता था तो वह ऐसा प्रतीत होता था कि मानो आकाश से पुष्पवृष्टि हो रही हो ।।३४।।

भावार्थ—उस गली मे फूलो के हार, चदन, कपूर, चूना, तेल इत्यादि सुगन्धित वस्तुये तैयार होती थी। वहा से आने-जाने वाले नवयुवक पुरुषो के सिर के केश इस प्रकार सुशोभित होते थे कि मानों सुन्दर स्त्रियो के लम्बे बाल हो। फूलो की बडी २ दूकानो मे माला गूथने वालो के पास से जब फूल की कोई छोटी कली नीचे गिर जाती थी तो उसे कोई नही उठा सकता था और गिरते हुये पुष्प ऐसे मालूम हो रहे थे कि मानो आकाश से फूलो की वर्षा हो रही हो ।।३४।।

कुळै मुगं कुरळवांगि कोडं जिलैकुरवं कोलि ।
एळलुमि दिलंगुवेर्कलंत्रु कोताड वारै ।।
युळयिन् मेन्नोक्क दंदित् उळळत्तं परित्तु कोळळुं ।
मळनंयाळ् मोळिपिनदं याळकं या दरैक्क वन्वर् ।।३५।।

अर्थ—वहा की स्त्रिया कानो मे कर्णाभरण को धारण किये हुये कधो को स्पर्श करती हुयी अत्यन्त सुन्दर मालूम होती थी । उनकी भृकुटि धनुष के समान टेढी थी तथा आखे ऐसी प्रतीत हो रही थी कि जैसे विरहाग्नि से दग्ध कोई अपने मुख से स्वसोच्छ्वास निकाल रहा हो । मृगनयनी सुन्दर स्त्रिया अपने चक्षु रूपी कटाक्ष को फेककर कामी पुरुषो को अत्यन्त चचल व मद नेत्रो से देखती हुई उनके मनको आकर्षण करने मे अत्यन्त निपुण थी । उनके मुख से वीणा के समान अत्यन्त मधुर वचन निकलते थे, जिसका कि वर्णन करने मे मैं असमर्थ हू ।

भावार्थ—कर्णकुण्डल को धारण किये हुये वे स्त्रिया अत्यन्त सुन्दर मालूम होती थी । उनकी भृकुटि धनुष के समान ऊपर उठी हुई थी । विरहाग्नि से दग्ध अत्यन्त प्रकाशमान भाल के समान कटाक्ष बाण को छोडकर हरिणी के समान अत्यन्त मृदु आखो से मुख घुमा २ कर देखती हुई कामी पुरुषो के मन को आकर्षण करती थी । ऐसी धर्मपरायणा स्त्रियो का वर्णन कौन कर सकता है ? अर्थात् कोई नही ।।३५।।

कळ्लु मिदिलंगुम् वास कमलवान् मुगत्तु काम ।
रुळ्ळमुं कुण्णं वंडोडुडन् सुळड्राड वाडि ।।
तेळ्ळेलि याकुं पादुं तिरुव नारपैलुं सालै ।
पुळ्ळेलि तळिगळ् पाडुं तामरै पैगै पोलुं ।।३६।।

अर्थ—अत्यन्त प्रिय व मधुर शब्द बोलने वाली, सुगन्धित द्रव्यो से युक्तचारों ओर सुगन्ध फैलाने वाली कमल के फूल के समान तेज मुख व सुन्दर नेत्रो से युक्त स्त्रिया भ्रमर के समान चारो ओर नाट्यशाला मे नृत्य करती थी । नृत्य करते समय उनके पावो की पैजनिया तथा उनके सुन्दर सगीत से स्त्रिया लक्ष्मी के समान अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती थी उस समय की शोभा ऐसी मालूम होती थी कि मानो मडपशाला मे पक्षियो की कलकलाहट हो रही हो अथवा भ्रमर गुजार कर रहे हो ।

भावार्थ—उस वीतशोक देश की निवासिनी पुण्यशाली स्त्रिया अत्यन्त मधुर शब्द बोलने वाली, कमल के समान विशाल नेत्र व सुन्दर मुख कमल वाली भ्रमर-नाद के समान मनुष्यो को आकर्षण करने वाली थी । उस नाट्यशाला मे नृत्य करने वाली स्त्रियो के पावो मे बधी हुई पैजनियो की ध्वनि मनुष्यो के मन को लुभाने वाली थी । वे नृत्य करने वाली स्त्रियां अद्भुत् शोभा दे रही थी । उस नाट्यशाला मे भरे हुये लौग संगीत करने वाली स्त्रियो के मधुर गायनो से मुग्ध होकर आनन्द से अत्यन्त प्रफुल्लित हो रहे थे ।।३६।।

आणेतेरे कुदुरेनिर्कुं मिड यडैवकुं शालै ।
शेणंमावेंदर् देव्वर् तरुदिरै काणं सालै ।।
माणवेन्मन्नर कोमार मदिर शालै यादि ।
एणय पिरवु मिव्वा रियंबुदर् करिय बंड्रे ।।३७।।

अथ—उस राजा के राज्य मे हाथियो के रथ, घोडो की घुडशाला, आयुधशाला तथा वडे २ सैन्यादि थे । उन्हे शत्रु राजा अनेक प्रकार की नजर (भेट) करते रहते थे, जिससे कि कोषागार सदा परिपूर्ण रहा करता था । अभिमानी राजाओ से परामर्श करने के लिये अनेक मडपशाला आदि निर्मित किये गये थे जिसका वर्णन अल्पबुद्धि के द्वारा वर्णन किया जाना शक्य नही हे ।।३७।।

कामवेवनैयर मैदर काचियन् काण्णि नारुम् ।
पूमगळिलंगु वीरर् पोर् कुलि कुळागल् पोल्वार् ।।
तामवेन्कुडै नानु शक्करन् ट्रन्नै योक्कुं ।
वामम् सूळ् कमलं संगिन् वन्कयर् वनिगरेल्लाम् ।।३८।।

अर्थ—वीतशोक नामक नगर मे रहने वाले पुरुष कामदेव के समान अत्यन्त सुन्दर थे और नील कमल के समान नेत्रधारिणी स्त्रियां लक्ष्मी के समान शोभायमान होती थी । प्रकाशपु ज से युक्त वीर पुरुष नगरी मे सिंह के समान महान् पराक्रमी थे । वे गले मे सदैव फूलो का हार धारण किये हुये रहते थे । धवल छत्र को धारण किये हुये चक्रवर्ती सभा के मध्य मे देवो की भाति सुशोभित हो रहे थे । व्यापार करने मे वैश्य लोग अत्यन्त निपुण होते थे तथा उनके हाथ मे शख पद्म आदि मागलिक चिन्ह वने हुये थे । उनके हाथो की रेखा ऐसो सुन्दर व सुलक्षणा थी, जिससे कि वे महान् पुण्यवान् प्रतीत हो रहे थे ।

भावार्थ—उस विदेहक्षेत्र मे उत्पन्न होने वाले मनुष्य पुण्यशाली होते थे । उनका निरोग शरीर, उत्तम कुल तथा इच्छानुसार सुखसामग्री पुण्यानुवन्धी पुण्य के प्रभाव से ही उनको प्राप्त हुई थी । वहा के पुरुप महान् पुण्यवान तथा शक्तिशाली थे । और सदा भोगोपभोग से परिपूर्ण रहा करते थे । वहा के स्त्री, पुरुष तथा वालक स्वभाव से ही सुन्दर तथा मधुर वचन वोलते थे । वे सदा सत्पात्र दान देने व अर्हंत भगवान की पूजा करने मे श्रद्धा भक्ति पूर्वक सलग्न रहते थे । वे परम दयालु, धर्मात्मा शीलधर्म परायण रहते थे । शील पालन करने मे वे इतने सावधान रहते थे कि अपनी सभी शक्तियो का सदुपयोग करके वे पूर्ण रूप से उसमे दत्तचित हो जाया करते थे । प्रोपधोपवास धारण करने मे सदा रुचि रखते थे और सत्पात्रो को दान देकर पुण्यानुवधी पुण्य के प्रभाव से विदेह क्षेत्र मे जाकर जन्म धारण करते थे । अत्यन्त पुण्यशाली होने के कारण वहा के स्त्री-पुरुप सदा शोभा को प्राप्त करते रहते थे । प्रकाश से युक्त वीर पुरुप सिंह के समान पराक्रमी मालूम होते थे, तथा गले मे पुष्पो का हार धारण किये रहते थे । श्वेत छत्र को धारण किये हुये चक्रवर्ती इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो देवो की सभा लगी हुई हो । उनकी हथेली मे शख चक्र आदि शुभलक्षण अंकित थे, जिससे उनकी शोभा अत्यधिक दृष्टिगोचर होती थी ।।३८।।

मालै यु सांदु पंच वासमुम् वलगु वारम् ।
शालैई नडिसिलुं वार तमर्गळु कूटु वारम् ।।
वेलै नल्लुलगं विक्कुं विकुप्पोरुल् वांगु वार ।
मालैयन् तोर मै मै यमरंदु शैवार मानार् ।।३९।।

अर्थ—वहां पर भाति २ के फूलो की माला, चदन तथा अनेक प्रकार की सुगधित वस्तुओ का आदान-प्रदान निरन्तर लगा रहता है तथा भाति २ के स्वादिष्ट पकवान बनाकर परस्पर मे एक दूसरे को भोजन कराते रहते है। जिस प्रकार समुद्र से घिरी हुई जमीन मे द्रव्य पडा रहता है उसी प्रकार न्याय पूर्वक खरीदना, बेचना, न्याय पूर्वक चलना, अन्याय से सर्वथा दूर रहना तथा भगवान् का पचामृताभिषेक पूजा आदि शुद्धि पूर्वक करना वहां के पुण्यवान् पुरुषो की निधि के समान सुरक्षित रहती है।

भावार्थ—उस महान् वीतशोक नगर मे रहनेवाले भव्य जीव पुण्यानुबधी पुण्य के सचय के कारण खाने-पीने मे कभी अभक्ष्य वस्तु काम मे नही लेते। उनका खान-पान परम पवित्र होता है। वहा न तो अकाल ही पड़ता है और न अतिवृष्टि ही होती है। वहा का धान पुष्टिकारक, सुगधित तथा उत्तम प्रकार का होता है। वहा पर मद्य, मास मधु का सेवन करने वाले पैदा ही नही होते। केवल तीन वर्ण वाले लोग वहा पर होते हैं। वे महान् पुण्यशाली है। एक देशव्रत को धारण करने वाले भव्य पुरुष ही वहा उत्पन्न होते हैं। यह सभी उनके पूर्वजन्म मे किये हुये पुण्य का ही प्रभाव है। अर्हंत भगवान् की पूजा, अभिषेक सत्पात्रो को दान आदि पुण्य करने से वे विदेह क्षेत्र मे जन्म धारण करते है। वे न्यायपूर्वक धनोपार्जित करके दया धर्म के पालक तथा सत्पात्र को दान देने मे सदा दत्तचित रहते हैं। इस प्रकार वीतशोक नगर निवासी भव्य जीवो का वर्णन किया गया ॥३९॥

मुळवमा मुरसंन् संगङ् कडलन मुळंगवं पोर् ।
कुळलियाल् वीणैयेंग कोंबनार कुलावियाड ॥
निळलुला मदियं कोलुं कुडैमुम्मै नीळल् वेंदन् ।
विळैवरा मूदूर् वीत शोक माइ विळंगु निड्रे ॥४०॥

अर्थ—उस वीतशोक नगर के भव्य श्रावक और श्राविका परस्पर मे मिलकर अनेक प्रकार शख, भेरी आदि वाद्य यन्त्रो से नाद करते रहते हैं। जैसे समुद्र मे लहरो के आवागमन से निरतर कलकल ध्वनि होती रहती है उसी प्रकार विविध भाति के नक्कारे वाद्यो, स्वर्णमयी शहनाई, बासुरी वीणा इत्यादि के शब्द सुनाई देते रहते हैं। फूलो की लता के समान नाना प्रकार के नृत्य करने वाली स्त्रिया जैसे चन्द्रमा अपने शीतल किरणो से सभी को शान्ति पहुँचाता रहता है उसी प्रकार छत्र चवर सहित वेदी मे विराजमान भगवान् अर्हंत परमेश्वर का उत्सव करते समय सभी को शान्ति का अनुभव कराती रहती हैं। उस नगर का नाम वीतशोक इसलिये पडा कि वहा की जनता शोक से सर्वथा रहित रहकर सदा सुख शान्ति का अनुभव करती रहती है ॥४०॥

पोण्णुलगु लाय् पोंदु पूमि शै ।
मन्नु मन्नविम् मानगर् किरै ॥
एन्न मेन्नडै या कनंगणा ।
मन्नर् मन्न वन्न वैजयतने ॥४१॥

अर्थ—मानो देवलोक से ही यह भूमि उतर कर आई हो, ऐसा अत्यन्त सुन्दर कुबेर की नगरी के समान वीतशोक नामक नगर सुशोभित हो रहा था और इसका अधिपति हस पक्षी के समान मन्द-मन्द चाल मे मन्मथ के समान वैजयन्त नाम का राजा था।

भावार्थ—देवलोक ही यहा उतरकर आया हो, ऐसा वह वीतशोक नगर सुशोभित हो रहा था और मन्मथ के समान अत्यन्त सुन्दर वैजयन्त नाम का वहा का राजा चक्रवर्ती के समान था। वह राजा कैसा था ? इसका वर्णन इस प्रकार है :—

वक्त्राग्रे भाग्यलक्ष्मी करतलकमले सर्वतो दानलक्ष्मीः ।
दोर्दंडे वीरलक्ष्मी हृदये सरस्वती भूतकारुण्यलक्ष्मी ।।
सर्वांगे सौम्यलक्ष्मीर्निखिलगुणगणा बरे कीर्तिलक्ष्मीः ।
खड्गाग्रे शत्रुलक्ष्मीर्जयतु विजयते सर्वसाम्राज्यलक्ष्मीः ।।

अर्थ—मुख्य मे भाग्य लक्ष्मी, हाथरूपी कमल मे दानलक्ष्मी, भुजा मे वीर लक्ष्मी, हृदय मे सरस्वती रूपी लक्ष्मी, सम्पूर्ण जीवो पर करुणा रूप लक्ष्मी, अगो मे सौम्य रूपी लक्ष्मी, सम्पूर्ण जगत् मे गुण (कीर्ति रूपी) लक्ष्मी, शत्रुओ को जीतने के लिये खड्ग रूपी लक्ष्मी और समस्त साम्राज्य को जीतने वाली विजय आदि लक्ष्मिया चक्रवर्ती राज्य मे विद्यमान थी और वह राजा जगते मे सदैव जय जयकार को प्राप्त होता था। इस प्रकार अत्यन्त पराक्रमी, गुणवान् सर्व सुलक्षणयुक्त धर्मनीति आदि जानने वाला शूरवीर वह वैजयन्त नाम का राजा था ।।४१।।

आरुती नयमगंड्र् काक्षिया ।
नारु नन्नय ममरं् दमाक्षिया ।।
नारु तोल्पगै येडर्त्त सूक्षिया ।
नारिलोंड्र् कोंड गंड्र् वेळ् कैयान् ।।४२।।

अर्थ—वह राजा कैसा था ? छह प्रकार मिथ्यानय को त्याग कर सम्यग्दर्शन को प्राप्त, छह प्रकार के नयोसे युक्त और सत्कीर्ति को प्राप्त था। वह अनादि काल से जीव के साथ चले आये क्रोध, मान, माया, लोभ मद आदि को जीतने मे चतुर था। वह विविध प्रकार के अच्छे उपायो को जानने वाला था। प्रजाजनो से छह भाग मे से एक कर लेने वाला और परिग्रह मे अधिक इच्छा न रखने वाला अर्थात् परिमित परिग्रही था।

भावार्थ—इस भांति छह प्रकार के मिथ्या नय को त्यागकर छह प्रकार के सच्चे नय से युक्त अनेक प्रकार के जीव के साथ चले आये क्रोध, मान, माया लोभ मदादि को जीतने वाला, अच्छे उपायो को जानने वाला, छह प्रकार के करो मे केवल एक भाग कर लेने वाल,ा परिमित परिग्रहधारी, ऐसा वह वैजयन्त नामक राजा था। नय का स्वरूप छठे अध्याय मे विशेष रूप से विवेचन किया जायगा ।।४२।।

कर्पग मवन् करुदिट्रि दलाल् ।
सोर पोरुळरि सुरदि माकडल् ।।
मर्पु यत्तिनान् मालवरैमलै ।
कोट्र वर्कलाम कूट्र नोक्कुमे ।।४३।।

अर्थ वह वैजयन्त राजा याचक जनो की इच्छा पूर्ति करने के लिये कल्पवृक्ष के समान था तथा छहो प्रकार के द्रव्यो का भली प्रकार से ज्ञाता था। इसके साथ ही साथ वह मनन करने मे सदैव दत्तचित्त रहता था। सम्पूर्ण आगम को समझकर उनमे सागर के समान अपार ज्ञानभडार था। वहा का राजा युद्धकला एव बाहुबल मे पर्वत के समान महाबलशाली एव शत्रुजनो के लिए यमराज के समान था।

भावार्थ—वह राजा याचक जनो के लिये कल्पवृक्ष के समान था। अर्हन्त भगवान् द्वारा प्रतिपादित छहो द्रव्यो को अच्छी तरह से जानता था तथा परिपूर्ण रूप से पालने वाला था। युद्ध मे शत्रुवर्ग को जीतने के लिये उनके भुजबल पर्वत के समान प्रतीत होते थे। और वह शत्रु को जीतने के लिये यमराज के समान अजेय था। धार्मिकजनो मे बन्धु के समान, साधुओ के लिये सेवक और विनम्रभावी तथा जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करने मे वह सर्वदा भ्रमर की भाति लवलीन रहा करता था। सत्पात्रदान करने मे राजा श्रेयास के समान और प्रजा मे वात्सल्यभावी तथा धर्मानुरागी था। उत्तम श्रावक के सम्बन्ध मे एक कवि ने कहा भी है कि —

श्रीसर्वज्ञ–पदाब्जसेवनमतिः शास्त्रागमे चितना ।
तत्त्वातत्त्व–विचारणे निपुणता ससयमो भावना ।।
सम्यक्त्वे रचता अघोपसमता जीवादिके रक्षणा ।
सत्सागरोगुणा जिनेन्द्रकथिता येषा प्रसादाच्छिवम् ।।

अर्थ—सदैव श्री जिनेन्द्र भगवान् के चरणो मे सेवन की बुद्धि, शास्त्र का चितवन तत्वा का विचार उसमे निपुणता, सत्सग की भावना, सम्यक्त्व मे रुचि, समता, जीवो पर दया तथा जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रतिपादित धर्म मे सदैव रुचि रखने वाला था ।।४३।।

सूक्षि यार पगै सुरुक्क वल्लदु ।
वाळशै पोरिलन् वन् सो लिड्रिमन् ।।
नाक्षियालिसै केट्ट वसुनमा ।
त्ताक्षिपोल् वैयंदा निरंजुमें ।।४४।।

अर्थ—शत्रु राजाओ के बल को किस प्रकार से कम करे, इसका वह प्रयत्न भली भाति जानने वाला था। युद्ध न हो ऐसे कठोर वचनो को त्यागकर मधुर वचनो द्वारा प्रीति से काम ले, ऐसा वह वैजयत राजा न्याय नीति से राज्य करता था। वह साम दाम दण्ड भेदादि से प्रजा पर शासन करने वाला था। जिस प्रकार प्रात उठकर जिनेन्द्र भगवान् का

स्मरण किया जाता है उसी प्रकार वीतशोक नगर की सारी प्रजा उस राजा की स्तुति करती रहती थी ।।४४।।

नल्ल तोल्कुल तरस नादलार् ।
सोल्लु सैंगयु सोर् वैदामैयारं ।।
पुल्लिनार् पुगळ् माडु पूमगळ् ।
सोल्लिन् सेल्वियु सुल्विवुर्नेगिये ।।४५।।

अर्थ—परम्परा से श्रेष्ठ कुल मे उत्पन्न हुये चक्रवर्ती का वचन और उनके द्वारा होने वाले सत्कर्म अत्यन्त सुदृढ थे और कीर्ति देवी, सरस्वती तथा लक्ष्मी देवी प्रेम से युक्त होकर उनका आश्रय ग्रहण किये हुये थी ।

भावार्थ—वह राजा परम्परा से चले आवे उत्तम कुल मे जन्म धारण किये हुये था और शीलवंत तथा चक्रवर्ती था । पाचो पापो से रहित, सत्यवादी व निश्चल मति वाला था । उसके द्वारा किये जाने वाले सभी कार्य अनुकूल हो जाते थे । उनकी कीर्ति चारो ओर फैली हुई थी । इस कारण उस गुणवान् सत्यवान् राजा के पास सरस्वती, कीर्ति तथा लक्ष्मी देवी आश्रय मे थी ।।४५।।

कर्पगं तनैयनै कामर्वल्लि पोल् ।
वेट्रि वेल् वेंदने वेळ् विनीमैं यार् ।।
पोर्प मैदेळ् दिय कोडियनार् पुनर्न् ।
तर्पुनीर् कडलिडै येळ् दुनाळिदे ।।४६।।

अर्थ—कल्पवृक्षो से सम्बन्धित कामलता के समान जय को प्राप्त हुये आयुध को धारण करने वाला राजा वैजयन्त सुन्दर शरीर को धारण किये हुये था । उनका शरीर ऐसा मालूम होता था कि चित्रकार द्वारा चित्रित किया गया मानो कोई पुतला ही हो । इस प्रकार उनका शरीर अत्यन्त शोभायमान था । और पुष्पलता के समान शोभने वाली स्त्रियो के साथ पाणिग्रहण करके भोग–विलास मे स्नेह पूर्वक आनन्द मनाता था अर्थात् देवों के समान इन्द्रिय सुखो के भोगने मे मग्न था ।

भावार्थ—कल्पवृक्ष मे कामलता के समान जय को प्राप्त किये हुये और हाथ मे आयुध धारण किये पुष्पलता के समान सुन्दर शोभनेवाली स्त्रियो के साथ भोग विलास मे होने वाले आनन्द मे मग्न तथा जनता की दृष्टि को कामदेव के समान शोभने वाली प्रजा के अत्यन्त प्रिय थे ।।४६।।

पूविर् कोंबु पुगळं पडिनल् वडिविन् मा ।
देविप्पट्टम् पेट्रनलिल्लां तिरुवेंबाल् ।।
काविक्कण्णाळ् वरनवकमळ तळियायिमन् ।
कावर् कोमा नियलु नाळार् कविन् पेट्राळ् ।।४७।।

अर्थ—लक्ष्मी देवी को देखकर कीर्ति देवी प्रसन्न होकर उसकी प्रशसा करने वाली के समान सुन्दर रूप को धारण करने वाली सर्व श्री नाम की उनकी पटरानी थी। उसकी आखे नील कमल के समान तथा शरीर स्वर्ण के समान गौर वर्ण था। जिस प्रकार नील कमल मे भ्रमर लीन रहता है उसी प्रकार राजा वैजयन्त महारानी सर्वश्री के साथ भोगो मे मग्न रहता था। इस प्रकार सुख भोगते २ कुछ दिनो के पश्चात् रानी सर्व श्री गर्भवती हो गई ॥४७॥

मुल्लैवकन्निकोडिमुन्नरुंबै पयंदार् पोर् ।
सेल्वस्सिरुवर् पयंदा ळंद तिरुवन्नाळ् ॥
मल्लिर् पोलितोन् मन्नन् मुन्नान् मदिकाना ।
ओल्लेन् कडल् पोलु वंदिट्टुलग तिडर्त्तीन् ॥४८॥

अर्थ—जिस प्रकार जुही गुलाब आदि पुष्पो मे अत्यन्त सुगधित कलिया उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार नव मास पूर्ण हो जाने के पश्चात् उस सर्वश्री रानी ने पुत्ररत्न को उत्पन्न किया। जिस प्रकार शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा को देखकर समुद्र उमड पडता है उसी प्रकार पुत्र जन्म होने पर महा प्रतापी मल्लयुद्ध मे प्रचड बलशाली राजा वैजयन्त को अत्यन्त सन्तोष प्रद आनन्द प्राप्त हुआ। पुत्ररत्न प्राप्त होने के हर्ष मे देश के याचको को इच्छा पूर्वक दान देकर उनके मन को तृप्त किया।

भावार्थ—जुही चमेली के पुष्प तथा लक्ष्मी के समान राजा वैजयन्त की पटरानी सर्वश्री के अत्यन्त सुलक्षण से सम्पन्न पुत्र रत्न पैदा हुआ। जिस प्रकार शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा को देखकर समुद्र उमड पडता है उसी प्रकार महान् प्रतापी बलशाली तथा मल्लयुद्ध मे परम प्रवीण उस राजा को पुत्रोत्पत्ति के हर्ष मे अपार आनन्द प्राप्त हुआ। पुत्र जन्म के हर्ष मे प्रसन्न होकर राजा ने सभी प्रजाजन व याचको को बुलाकर उनके दुख को दूर किया तथा इच्छापूर्वक दान देकर उन्हे भली-भाति सन्तुष्ट किया।४८॥

सुन्न मेन्नै सोरिंदनर्तूरियम् ।
विन्नैविम्मि मुळंगिन वेण्कोडि ॥
एण्ण रोड्ंलु मेगनु माडिन ।
पुण्णियेन्नगर पोण्णगराघदे ॥४९॥

अर्थ—उस राजा वैजयत के परिवार वालो ने अत्यन्त सुगन्धित द्रव्यो से युक्त सुगन्धित चूर्ण तथा तैल आदि लाकर उनको दिया। तत्पश्चात् राजा ने अठारह प्रकार के वाद्य बजवाये, जिसकी ध्वनि देवलोक तक चली गयी और उससे सारा नगर गूंज उठा। जहा तहा रास्ते तथा गलियो मे श्वेत पताकाये बधी हुई थी। इस प्रकार श्रेष्ठ व सुन्दर पुत्र जन्म के समाचार को सुनते ही सम्पूर्ण देश मे आनन्द छा गया। और राजा वैजयन्त की कीर्ति सारे वीतशोक नगर मे फैल गई। उस समय वह वीतशोक नगर ऐसा सुन्दर मालूम होता था कि मानो यह सब देवलोक ही हो।

भावार्थ—सुगन्धित द्रव्यों से मिश्रित तेल आदि वस्तुये राजा के परिवार वाले उनको लाकर देते थे। अठारह प्रकार के वाद्यो की ध्वनि से सारा नगर गूंज उठा। नगर के सभी गोपुर तथा प्रजा के घरो मे धवल पताकाये फहरा रही थी। पुत्र के उत्पन्न होते ही उसकी कीर्ति सर्व देशो मे फैलने से वह नगर देवमय सा प्रतीत होता था ।४६।।

संजयंदनेनुं पेयरानव ।
नंजुदायर् तं कैवळि यंदिवाय ।।
मंजिलामदि पोल वळर्न्द पि ।
नंजिलोदियर् किन्नमिर्द आईनान् ।।५०।।

अर्थ—राजा वैजयन्त ने विधिपूर्वक नामकरण सस्कार करके उस पुत्र का नाम संजयंत रक्खा। अनेक प्रकार के वस्त्राभूषणो से उसको अलकृत किया। शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान वह पुत्र शीघ्र ही वृद्धि को प्राप्त होकर अत्यन्त सुन्दर दीखने लगा। सभी स्त्रियों को उसका वचन मधुर लगने लगा और वह क्रमश· यौवनवास्था को प्राप्त हुआ।

भाथार्थ—सकल सम्पत्ति, भोग सामग्री, अनुकूल स्त्री तथा शुभलक्षण युक्त पुत्र यह सब पुण्योदय से पुण्यवान् पुरुष को ही प्राप्त होते है। एक कवि ने कहा भी है कि.—

चित्रानुर्वतिनी भार्या पुत्रा विनयतत्परा: ।
वैरमुक्तं च यद्राज्यं सफलं तस्य जीवनम् ।।

अर्थ—अपने मन के अनुकूल स्त्री, विनयवान पुत्र तथा शत्रु से रहित राज्य जिस भाग्यशाली पुरुष को प्राप्त हो उसी सत्पुरुष का जीवन सफल होता है ।।५०।।

पुंजि करिणळन् मणिक्कदिर् कुळामुग ।
मंजिलामदि पुयमणि येळुक् कन्मार् ।।
वजिनुन्निडै मलराट् किडंदुडै ।
यञ्जोलार् मनक्कळिरणै पोट्रंबमे ।।५१।।

अर्थ—उस सजयत राजकुमार के सिर के केश सूर्य की किरण के समान प्रकाशमान हो रहे थे। उनका मुखमण्डल निष्कलक चन्द्रमा के समान चमक रहा था और भुजदड हाथी की सूंड के समान अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहा था। उनका हृदय अत्यन्त विशाल तथा लक्ष्मी के भवन के समान अत्यन्त मृदुलता तुल्य प्रतीत हो रहा था। उस बालक के दोनों जांघ कदली स्तम्भ के समान अत्यन्त कोमल तथा चमकीले होकर स्त्रियों के मन को आकर्षित करने वाले थे ।।५१।।

मणियि नं कडंदाविक्य वानवर् ।
कनं पै तुनिगळाड् करणै कालदि ।।

पिनिय वीळंद सेंदामरै पोडिना ।
चरिणयिनुक्कनि युम् मवनाईनान् ।।५२।।

अर्थ—उनके पैरो की हड्डी तैयार किये हुये स्वर्ण के गोले की भांति सुशोभित हो रही थी । घुटने के नीचे का भाग पिडली वा नसो से भरी हुई वत्तल के समान था । उनका चरणतल रक्त कमल के समान था । इस प्रकार वह पुत्र अनेक प्रकार के अलकारो से अलकृत होकर अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहा था ।।५२।।

इंदु विन्नुदयेंरि लंघुम् दिसई ।
वंद तारगं पोलमडंदै पाळ् ।।
मैदन् वंदु पिरंदु जयंद नन् ।
रिद वैयग मेत्ता बळंद नाळ् ।।५३।।

अर्थ—चन्द्रोदय से प्रकाशमान पूर्वाचल को उदय पाकर आनेवाले नक्षत्र के समान उस राजा की पटरानी के गर्भ मे द्वितीय पुत्र आया । और नवमास पूर्ण हो जाने के बाद उसके पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ । उसका नामकरण सस्कार करके जयन्त नाम रक्खा गया । वह बालक पूर्ण चन्द्र के समान दिनोदिन वृद्धि को प्राप्त हुवा और परम तेजस्वी व गुणो से सम्पन्न होकर प्रजाजन को मुग्ध कर लिया, जिसमे सभी उसका गुणगान करने लगे ।।५३।।

पुण्णिय मुदित्तुळि तुळिग मैयदु मा ।
लण्णल् संजयंद नकुंमर नायुळि ।।
विण्णरै तिरुवनाळ् वेळ्बि नीर्मयार ।
पण्णमै मुळियळोर् पावै येय्दिनाळ् ।।५४।।

अर्थ—पूर्व जन्म मे सचय किये हुये पुण्योदय से भोगोपभोग सुख तथा अनुकूल सामग्री अधिक से अधिक प्राप्त होती है । उसी प्रकार पुण्योदय से ख्याति को प्राप्त हुए जयत कुमार ने क्रम से यौवनावस्था को प्राप्त किया । तत्पश्चात् उपासकाध्ययन तर्क, व्याकरण, न्यायशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा धर्मशास्त्र आदि का भली भांति अध्ययन कर लिया । इस प्रकार वह सकल शास्त्रो मे पारगत हो गया । राजकुमार के समान ही सर्वगुणो से सम्पन्न, सगीत कला मे प्रवीण लक्ष्मी, सरस्वती को तिरस्कार करने वाली मधुर वचन बोलने वाली सुन्दरी कन्या के साथ जयन्त का विवाह सस्कार सम्पन्न हो गया ।

भावार्थ—शास्त्रो मे लिखा है कि पूर्वजन्म के पुण्योदय से प्राणी को सारी विभूति प्राप्त होती है । धनपाल आदि ७ भाई थे । उन्होंने सभी अनेको प्रकार के धन्धे व्यापार आदि किये किन्तु पूर्वजन्म मे किये गये पाप कर्म के उदय होने से उनकी दरिद्रता दूर न हो सकी । पर जब आठवे भाई धन्यकुमार का जन्म हुआ तब उसकी ओलनाल भूमि मे गाडते समय ही पुण्योदय से जमीन के अन्दर से धन से भरा हुआ एक बहुत बडा हडा मिल गया । इस प्रकार पुण्य के प्रताप से उस जयन्त कुमार का बल तेज कीर्ति आदि चारो दिशाओ मे फैल

गयी । और पुण्य के प्रभाव से अनेक स्थानो से उनकी सगाई के लिये लोग अपनी पुत्रियो को देने के कहलावे भेजने लगे । यौवनावस्था को प्राप्त हुये उपाध्याय के समान अनेक शास्त्र, तर्क, व्याकरण आदि सर्वागम का ज्ञाता हो जाने पर शुभ मुहूर्त मे एक सुन्दर सुयोग्य राज कन्या के साथ राजकुमार का पाणिग्रहण सस्कार हो गया ।।५४।।

वडु पूमलंदु ळि मदुवैयु बदिर् ।
ट्रोंडैवा यवनलम् परगुनाळवन् ।।
वंडिरै वलं पुरि मणियैई ड्रवा ।
पुंडवळ् वेर्कणाळ् पुदल्वर् पेट्रनळ् ।।५५।।

अर्थ—जब पुष्प खिल जाता है तब भ्रमर उसमे रसास्वाद लेता हुआ उसमे मग्न हो जाता है । इसी प्रकार कदली फल के समान अत्यन्त सुन्दर मुख तथा रक्त वर्णावली सर्वगुण सम्पन्न स्त्रीसुख अथवा रतिसुख का अनुभव करते समय लहरो से सुशोभित समुद्र के अन्दर तरगो के समान मोती को धारण करने वाला तथा विरोधी जनो के वक्ष·स्थल मे भाले के समान प्रवेश करने वाले पुत्र रत्न को उस राजकन्या ने जन्म दिया ।

भावार्थ—जिस प्रकार कमलपुष्प के मध्य मे बैठा हुआ भ्रमर फूल के रसास्वाद में मग्न हो जाता है उसी प्रकार कदली फल के समान अत्यन्त लाल अधर व चमकदार मुख वाली स्त्री के साथ भोग करने लगा । विविध भाति के शख व मोती को धारण कर विरोधी शत्रु के हृदय मे प्रवेश होने वाले तेज अस्त्र के समान परम तेजस्वी पुत्र रत्न को उस स्त्री ने जन्म दिया ।।५५।।

मदि दलै पट्ट पोळ्दिन् मगिळ्दु वै जयंद नेड्रे ।
निधियरै तिरंदु वीसि नोदियार् सेल्ल नालुट् ।।
दुदैमलरशोक मेन्नु वनत्तिडै स्वयंभुनाम ।
तदिशय मडयक्कंडररसनुक्करवितिट्टार् ।।५६।।

अर्थ—जिस प्रकार सकलकला सम्पन्न पूर्ण चन्द्रमा को देखकर समुद्र उमड़ने लगता है उसी प्रकार होनहार उस राजकुमार को देखकर राजा के मन मे अपार हर्ष हुआ । पुत्रोत्पत्ति के हर्ष मे राजा ने वडे हर्षोल्लास के साथ वच्चे का नामकरण सस्कार किया तथा याचको को भिन्न २ प्रकार के वस्त्रादि का दान देकर सन्तुष्ट किया । इस प्रकार आनन्द-पूर्वक क्रमश समय व्यतीत होने लगा ।

विविध भाति के फूलो से सुसज्जित राजा का एक उद्यान वडा रम्य था । उसका नाम अशोक था । उस उद्यान मे भगवान् श्री स्वयम्भू स्वामी का समवसरण आया । भगवान् का पदार्पण देखकर उद्यान का वनमाली परमानन्दित हुआ । भगवान् का समवसरण आते ही उस उद्यान के जितने भी फल-फूल थे वे सभी हरे भरे हो गये । उस उद्यान मे सर्वसमय मे ही फूले-फले सामग्रियो को वनमाली वडे हर्ष के साथ राजा के पास ले जाकर

उपस्थित किया और कहने लगा कि भगवन् उद्यान मे भगवान् का समवसरण आया हुआ है ॥५६॥

विळ‍ुनि दियेळिदिर् पेट्र वरियवन्पोलवेंद ।
नेळ‍ुतरु विशोदितन्ना लेळ‍ुंदु सेंड्रिरिरैंजि वाळ‍्ति ॥
मुळ‍ुदुड नवर्गट्कोंदु मुनिवर्तंकों सिरप्पु ।
केळ‍ु गण वीदिरोरु यियबिन मुरस निड्रे ॥५७॥

अर्थ—जिस प्रकार किसी दरिद्र को अमूल्य निधि प्राप्त हो जाने से उसे बडा हर्ष होता है उसी प्रकार उस वैजयन्त राजा को अपार आनन्द प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् शुद्ध परिणामो के साथ सिंहासन से नीचे उतरकर अपने मन मे इस प्रकार का विचार किया कि जिससे सात प्रकार के ससार का नाश हो और सात प्रकार के परम स्थान की प्राप्ति हो, ऐसी सद्भावना करके सात पग आगे चलकर परोक्ष रूप से नमस्कार किया और अपने शरीर पर से बहुमूल्य वस्त्राभूषणो को उतारकर उस वनमाली को पुरस्कार रूप मे दे दिया। तदनन्तर सभी लोगो को स्वयम्भू भगवान् के दर्शनो के लिये चलने के लिये नगर मे आनन्द भेरी बजवाई ॥५७॥

इडिमुरसियेंबु मेळ्ळंदिर नगरन् तन्नै ।
पडिमिसै यनिदु पडंगळै दिट्ट वण्णम् ॥
कोडि नगरंणिदु पूण‍ुमारमं‍ु पुळयु मिन्न ।
कडिमलर् कळब मेंदि कनत्तिडै येळ‍ुंद दंड्रे ॥५८॥

अर्थ—जिस प्रकार आकाश मे बादल गरजते हैं उसी प्रकार के वाद्य बजने लगे। उस समय की शोभा ऐसी लगती थी मानो देवेन्द्र देवलोक से अमरपुरी को अलकृत करके इस कर्मभूमि मे लाकर स्थापना करदी हो अथवा समुद्र मे तरगो की सुन्दर ध्वनि निकल रही हो। उस वीतशोक नगर मे रहने वाली प्रजा अनेक प्रकार के आभरणो से सजधजकर नील मणि, माणक आदि के हार पहनकर तथा कानो मे कुण्डल, सुगधित पुष्पमाला आदि धारण करके इस प्रकार सुशोभित हो रही थी कि मानो हाथ मे अष्ट-द्रव्य लेकर स्वयम्भू भगवान् की पूजा करने के लिये जाने को तैयार हो।

भावार्थ—जिस प्रकार आकाश मे बादल गरजते हैं उसी प्रकार भेरी मृदगादि विविध प्रकार के बाजे उस वीतशोक नगर मे बज रहे थे। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि मानो देवलोक से देवता अमरपुरी को अलकृत करके लाये हो।

जिस प्रकार समुद्र मे तरगे उठती हैं उसी प्रकार अनेक ध्वजाओ से सुशोभित उस वीतशोक नगर मे रहने वाले प्रजाजन अनेक प्रकार के मोती मणियो से सुशोभित होकर भगवान् स्वयभू की अष्टद्रव्य से पूजा करने के लिये जाने को तैयार हो गये ॥५८॥

काल् पोरु कडलिर् पोंगिक् कडि नग रडैयु मेळ्ळं ।
मालयुं सांदुमेंदि मैइल नार् सूळप्पोगि ॥

कालनै कंडिद वेंदन् कडि नगर् कुरुगि कैमा ।
मेलिळिदिरेंजि पुक्कान् विन्नवर् किरैव नोत्तान् ।।५६।।

अर्थ–प्रचण्ड वायु के वेग से जिस प्रकार समुद्र तरगे कलकलाहट करती रहती है उसी प्रकार उस नगर के सारे स्त्री पुरुष चंदन केशर पुष्प आदि अष्ट द्रव्य की सामग्री हाथ मे लेकर अत्यन्त आनन्द से चलने लगे और राजा वैजयन्त अपनी पटरानी सहित हाथी पर सवार होकर कर्मरुपी यमराज को तप द्वारा नष्ट करके आत्मरूपी साम्राज्य को प्राप्त किये हुये भगवान् स्वयम्भू को देखकर हाथी से नीचे उतरा और भगवान् के दर्शनार्थ समवसरण मे गया । जाते समय वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे देवलोक से साक्षात् देवेन्द्र ही आया हो । यह सब पूर्वभव मे किये हुये पुण्य का ही प्रभाव था । पुण्यहीन पुरुप को ऐसा वैभव नही प्राप्त हो सकता ।।५६।।

वानविर् कडंदु मान पीडत्तै वनंगि वाळ्त्ति ।
मानत्तंबत्तै यैय्दि वलंकोंडु पनिंदु पोगि ।।
माणमेल्लाकुं मोत्तुमलर् मली किडंगु पिन्ना ।
मानमिल्लाद वल्लिवनत्तिडै मलर् कै येंदि ।।६०।।

अर्थ–इन्द्र धनुप के समान धूलि नाम की शाला की वेदी का उल्लघन करके रहने वाले वलिपीठ को नमस्कार व स्तुति करके मानस्तम्भ के पास आकर तीन प्रदक्षिणा दी । तत्पश्चात् सुगधित पुष्पो से भरे हुये लतावन मे जाकर उसमे रहनेवाले मर्यादा रहित पुष्पो को तोडकर अपने हाथो मे लेने पर भी कुछ लोग फल व पुष्पो को भगवान् की पूजा मे नही लगाते, बल्कि मर्यादित फल-फूलो को ही लगाते हैं। इस विषय मे अष्टपाहुड ग्रन्थ मे आचार्य कुन्द-कुन्द ने कहा भी है कि—

यावन्ति जिनचैत्यानि विद्यन्ते भुवनत्रये ।
तावन्ति सततं भक्त्या त्रिःपरीत्य नयाम्यहम् ।।
फुल्ल पुकारङ वागियहि कहियो जिणहं चडोसि ।
धम्मो को वि न आवियउ कपिय वरगि पडेसि ।
केणाय वाडोवाईया केणाय वीणिय फुल्ल ।
केणाव जिणह चडाविया ए तिण्णि व समतुल्ल ।।

जिन मन्दिर व जिनागम में षट्कायिक जीवों का हितकारक स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त कराने वाला कहा है । चैत्यगृह के निर्माण के लिये जो मिट्टी खोदी जाती है वह काय [illegible] के द्वारा चैत्यगृह का उद्धार करके पुण्यकर्म का उपार्जन करता है और उस पुण्यकर्म [illegible] परम्परा से स्वर्ग तथा मोक्ष का प्राप्त होता है । जो उस चैत्यगृह के पास [illegible] [illegible] पुष्प को प्राप्त होता है । जो अग्नि चैत्य गृह के निमित्त जलाई जाती [illegible] होते हैं । जो वायु चैत्यगृह के निमित्त [illegible] को प्रदीप्त

करने के लिये होती है अथवा धूप के अगार और नैवेद्य के पाक क लिये उत्क्षेप निक्षेप को प्राप्त होती है, ऊंची नीची को जाती है वह भी उसी तरह पुण्य को प्राप्त होती है। जो पुष्प आदि वनस्पति चैत्यगृह की पूजा के लिये छेदे जाते है वे भी काय योग के द्वारा पुण्योपार्जन करते है। अत. उसका भी भला होता है । बागवान फूल से कहता है कि हे फूल ! तुम जिनेन्द्र भगवान् के ऊपर कैसे चढाये जाओगे ? क्योकि कोई धर्मात्मा जीव नही आ रहा है। तुम यही पर कम्पित होकर पृथ्वी पर गिर जाओगे। किसी ने कहा भी है कि किसी व्यक्ति ने वाटिका लगवाई किसी ने फूल चुने और किसी ने जिनेन्द्र भगवान् के चरणो मे पुष्प चढाये। ये तीनो ही पुरुष एक समान है और एक ही समान पुण्य को प्राप्त होते हैं ।६०।।

गोपुरं सुरुंबुन् सोलै गोपुरं कोडियिन् पंदि ।
गोपुरं काऊं शंबोन् माळिगै कुळ्वुंकुण्ड्रा ।।
मापुरि येनय तूवै मणिमुत्त मर्नालि मुट्र ।
नूपुरत्तरव मार्प नुवलिय कंडंदु पुक्कान् ।।६१।।

अर्थ—उदय गिरि नामक कोट (दीवार) और गोपुर के भीतरी भाग में भ्रमर के द्वारा मधुर रस को खीचने के समान दीखनेवाले तोप से युक्त वर्णभूमि और गोपुरो को ध्वजा से युक्त ध्वजा भूमि को, छोडकर आगे कल्याणकर नामक कोट और गोपुरो को उल्लघन कर उसमे रहने वाले कल्पवृक्ष की भूमि को, इससे आगे स्वर्ण द्वारा निर्मित गोपुर के समूह से युक्त गुहागण भूमि को, तथा किसी भी प्रकार की न्यूनता से रहित नगर के स्तूप और मणियो से सुशोभित होनेवाली मोती और स्त्रियो के पैरो मे बधे हुये नूपुर आदि मधुर शब्दो से युक्त सातवी भूमि को उल्लघन कर भीतर प्रवेश किया ।।६१।।

पत्तोडु पदनाराय पैंबोनन् मणिय वट्रिर् ।
चित्तिरत्ति यट्र पट्टतिरुनिलयत्तै येय्दि ।।
मत्तमाल कळिर् शंबोन् मलैइनै वलं वंदार् पोल् ।
ट्रोत्तोळिर् मलर्गडूवि पल मुरै वलं वंदिट्टान् ।।६२।।

अर्थ—शुद्ध स्वर्ण तथा श्रेष्ठ रत्नो से निर्मित अत्यन्त शोभायमान श्री निलय में जाकर जिस प्रकार मन्दोन्मत हाथी महा मेरु पर्वत को प्रदक्षिणा करता है उसी प्रकार राजा वैजयन्त गेन्दा के फूल को लेकर भगवान् की प्रदक्षिणा करता हुआ पुष्पवृष्टि की।

भावार्थ—शुद्ध स्वर्ण तथा रत्नो से निर्मित सुन्दर निलय को जिस प्रकार महा मदोन्मत्त हाथी महा मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करता है उसी प्रकार राजा वैजयन्त ने पुष्पवृष्टि करते हुए प्रदक्षिणा की ।।६२।।

निरैमदि कंड नीलमा कडल् पोल नीडा ।
दिरैवन दुरुवन् काना वेळ्दरु विशोदि तन्नार् ।।
शिरै यळिपुनलिर् शेल्लुं कादळ नागि शीर् साल् ।
तुरैविनु किरैवन् ट्रन्मे ट्रुदि वगै तोडंगि नाने ।।६३।।

अर्थ—पूर्ण चन्द्रमा को देखकर महासागर के समान अत्यन्त शीघ्रता से स्वयम्भू भगवान् का दर्शन करते हुये उसके अन्दर उत्पन्न हुये शुद्ध परिणामो से कर्माश्रव से बधे हुये बाध रूपी कर्म का नाश करके आगे जाने वाले के समान अत्यन्त तीव्र भक्ति के द्वारा अपेक्षा करते हुये भगवान् की पूजा तथा समस्त मुनिजनो की भक्ति करते हुये अत्यन्त आनन्दित होकर जिनेन्द्र भगवान् की इस प्रकार स्तुति करने लगा :—

अहो ! जगत गुरुदेव, सुनियो अरज हमारी ।
तुम हो दीनदयाल, मै दुखिया ससारी ॥१॥
इस भव वन में वादि, काल अनादि गवायो ।
भ्रमत चतुर्गति मांहि, सुख नहिं दुःख बहु पायो ॥२॥
कर्म महारिपु जोर, एक ना कान करै जी ।
मन मान्या दुख देहिं, काहू सो नाहिं डरै जी ॥३॥
कबहूँ इतर निगोद, कबहूँ नर्क दिखावै ।
सुरनर पशुगति माहि, बहुविधि नाच नचावे ॥४॥
प्रभु इनके परसग, भव भव माहि बुरे जी ।
जे दुख देखे देव ! तुमसो नाहि दुरे जी ॥५॥
एक जनम की बात, कहि न सको सुन स्वामी ।
तुम अनन्त परजाय, जानत अन्तरयामी ॥६॥
मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे ।
कियो बहुत बेहाल, सुनियो साहिब मेरे ॥७॥
ज्ञान महानिधि लूट, रंक निबल करि डारयो ।
इनही तुम मुझ माहि, हे जिन ! अन्तर पारयो ॥८॥
पाप पुण्य मिलि दोइ, पायनि बेडी डारी ।
तन कारागृह माहि, मोहि दिये दुःख भारी ॥९॥
इनको नेक बिगार, मै कुछ नाहि कियो जी ।
विन कारन जगबधु ! बहुविधि वैर लियो जी ॥१०॥
अब आयो तुम पास, सुनि कर सुजस तिहारो ।
नीति निपुन महाराज, कीजे न्याय हमारो ॥११॥
दुष्टन देहु निकार, साधुन को रख लीजे ।
विनवै 'भूधरदास' हे प्रभु ! ढील न कीजै ॥१२॥

पूमाले मोदलाय पुनैयाद तिरुमुर्ति ।
कामादि वेंड्रुयरंद कडवुळेंड्रु रेमे ॥
कामादि वेंड्रुयदं कडवुळेंड्रु रंदालु ।
कोमानिन् तिरुवुरुवन् कोंडु वप्पाररियरे ॥६४॥

अर्थ—तत्पश्चात् पुष्पो के हार इत्यादि अलकारो से अलकृत परमौदारिक शरीर काम क्रोध मद आदि दोषो को जीतकर प्रकाशमान करने वाले ये ही देव है, ऐसा कोई दूसरा देव नही, ये ही भगवत है, रागदि दोष को जीतकर स्वभावगुण सहित ये ही जिनेन्द्रदेव है, ऐसा भक्तिभाव पूर्वक उच्चारण करते हुये बोले कि हे भगवन्! आपके सुन्दर रूप को मनमे धारण कर सतोष के साथ जो स्मरण व ध्यान करता है वह प्राणी शीघ्र ससार सागर से पार हो जाता है। ऐसा ध्यान व स्मरण करने वाला भव्य जीव ससार मे महादुर्लभ है।

निराभरणभासुर विगतरागवेग दयात् ।
निरबरमनोहर प्रकृतिरूपनिर्दोषतः ॥
निरायुधसुनिर्भय विगतहिस्यहिंसाक्रमात् ।
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानाक्षमात् ॥ चैत्यभक्ति ॥

श्री भगवान् का रूप अलकार अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता है। भगवान् अपने शरीर का शृङ्गार बस्त्राभूषणो से क्यो नही करते ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जिन्होने सम्पूर्ण रूप से राग भाव का नाश किया हैं कदाचित् मन मे राग द्वेष अथाव विषय भोग की इच्छा रहे तो शृङ्गार आदि करने की भावना मनमे होती है और तभी शरीर का शृङ्गार करते है तथा तभी अपने पास सुन्दर २ पदार्थ रखने की इच्छा उत्पन्न होती है परन्तु भगवान् ने सम्पूर्ण रूप से विषय वासना का नाश कर दिया है, इस कारण उनके मनमे शृङ्गार आदि की भावना उत्पन्न ही नही होती। भगवान् का शरीर राग-द्वेषादि नष्ट हो जाने के कारण अत्यन्त सुन्दर दीखता है। तीन लोक के जीव भी उनके दिव्य शरीर को देखकर प्रसन्न होते हैं। राग-द्वेषादि विकारो से सर्वथा रहित होने कारण भगवान् निर्विकारी होते हैं, इसलिये समस्त विकारो को छिपाने के लिये उनको वस्त्रादि की आवश्यकता नही होती। भगवान् ने सम्पूर्ण पापो का नाश कर दिया है। मोह कर्म से उत्पन्न लज्जा ही एक भेद है, इस कारण भेद का नाश अथवा मोह कर्म का नाश होने से भेद ज्ञान उत्पन्न होता है। भगवान् सदैव निर्विकारी है। वे अपने पास एक भी वस्त्र नही रखते। वे निर्भय हैं, जीव की हिसा वगैरह नही करते और न वैसा उपदेश ही देते। भगवान् परम दयालु हैं—भव्य जीवो को सदा दयामय ही उपदेश देते है, इसलिये उनको अस्त्र-शस्त्रादि पास मे रखने की आवश्यकता नहीं होती। भगवान् आहार नही करते—आहार न होने पर भी ज्ञानामृत भोजन से वे सदा तृप्त रहते हैं। ऐसी विलक्षण तृप्ति उनके समान अन्य किसी को नही होती। इस प्रकार भगवान् के स्मरण व ध्यान करने वाले विरले ही भव्य जीव होते है ॥६४॥

विळक्कत्तु पळिंगे पोल् विरिदोळि मूनड्रुडं मेनि ।
यळप्परिय योळि यगत्तुळ् लिरुप्प देंड्र रेयुमे ॥

यळप्परिय ओळि यगत्तुळ् ळिरुप्पदेंड्र रेंदालुं ।
तुळक्कर वेन् रुयरं् दोयं तोळदेळुवा ररियरे ॥६५॥

अर्थ—हे भगवन्! दीपक के प्रकाश, स्फटिक मणि की ज्योति युक्त मन, वचन, काय ऐसी तीनो ज्योति सहित परमौदारिक शरीर की तुलना अन्य मनुष्य के शरीर की तुलना करने मे अशक्य है। ऐसा आपके शरीर का प्रकाश है। ऐसा देखने मे आनेवाला परम प्रकाश आप मे रहता है। ऐसा कहते हुये चलन रहित विभावो को नाश कर स्वभाव गुणों को जानकर भक्ति करने वाले जीव इस ससार मे महान् दुर्लभ हैं।

भावार्थ—जैसे दीपक स्फटिक मणि मे अत्यन्त प्रकाशमान होकर चारो ओर उसका प्रकाश फैल जाता है उसी प्रकार आपकी मन, वचन काय इन तीनो ज्योतियो से युक्त आपके परमौदारिक शरीर की उपमा किसी अन्य के शरीर से देने मे नही आती, इसलिये आपका शरीर अनुपम है। आत्मप्रकाश इस शरीर मे मौजूद है, ऐसा जानने पर भी विभाव परिणति मे मग्न होनेवाला जीव विभाव को छोडकर स्वभाव परिणति मे मग्न होकर अपने निज स्वरूप को जानने वाले जीव संसार मे महान् दुर्लभ है ॥६५॥

अमलमा यरुळ् सुरदिट्टरिवरिये तिरुमूर्त्ती ।
विमल माय विरिंद नार् गुणत्तलैमै विरिक्कुमे ॥
विमल माय विरिंद नाल् गुणत्ताल मै विरिंदालुं ।
कमल नीदुलवु मुनै कादलिप्पा ररियरे ॥६६॥

अर्थ—विभाव से रहित सम्पूर्ण प्राणियो में दया रखने वाले आपके समान गुण किसी अन्य देव में मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। अतः त्रिमूर्ति भगवन्! आपका परमौदारिक शरीर अठारह दोषो से रहित होने के कारण अनन्त दर्शन, अनन्त चतुष्टय तथा अनन्त वीर्य ये चार चतुष्टय आपके अन्दर विशाल रूप मे होते है। इस कारण श्रेष्ठ अनन्त चतुष्टय को प्राप्त किये भगवान् को जानने वाले १०८ कमलो पर विहार करने वाले तथा आपकी इच्छा व भक्ति करने वाले जीव बहुत दुर्लभ हैं।

भावार्थ—आचार्य ने प्रवचनसार में कहा है कि यह आत्मा शुद्धोपयोग के प्रभाव से स्वयम्भू तो हुआ परन्तु इन्द्रियो के विना ज्ञान और आनन्द इस आत्मा के किस तरह होता है? इसकी शका दूर करते है कि यह अज्ञानी जीव इन्द्रिय विषयो के भोग मे ही ज्ञान और आनन्द मान बैठा है। उनको चैतन्य करने के लिये निज स्वभाव से उत्पन्न हुये ज्ञान तथा सुख को दिखाते हैं। वह स्वयम्भू भगवान् आत्मा इन्द्रिय ज्ञान से रहित होता हुआ निज पर प्रकाशक तथा आकुलता रहित अपना सुख इन दोनो स्वभाव रूप परिणमता है। भगवान् कैसे हैं? चार घातिया कर्मो को नाश किया है जिसने अर्थात् जब तक घातिया कर्म सहित था तब तक क्षायोपशमिक मत्यादिज्ञान तथा चक्षुरादि दर्शन सहित था। घातिया कर्मो के नाश होते ही अतीन्द्रिय हुआ। फिर कैसा है? मर्यादा रहित है। जिसके उत्कृष्ट बल है अर्थात् अन्तराय के दूर होने से जो अनन्त बल सहित है। फिर कैसा है? अनन्त है ज्ञान दर्शन रूप प्रकाश जिसके अर्थात् ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म के जाने से अनन्तज्ञान अनन्त

दर्शनमय है और समस्त मोहनीय कर्मो के नाश होने से स्थिर होकर अपने स्वभाव को प्राप्त हो गये है । इस प्रकार भगवान् के वचन व गुणो पर भक्ति व श्रद्धा रखने वाले जीव ससार दुर्लभ है ।।६६।।

येंड्रु निड्रिरै वनँ एत्ति मादव ।
तोंट्रिय यनत्ताना युलग नादनै ।।
निंड्र तत्तु वत्तादु नीमें पेन्नन ।
कुंड्रनार् करुळिनान् कुट्रमट्र कोन् ।।६७।।

अर्थ—इस प्रकार भक्ति सहित भगवान् के सन्मुख खडा होकर पूजा भक्ति तथा उनके गुणो का स्मरण किया और ऐसा करने से मन मे वैराग्य तथा तपश्चरण की भावना उत्पन्न हुई। राजा वैजयन्त भगवान् से इस प्रकार प्रार्थना करता है कि हे त्रिलोकीनाथ ! इस लोक मे सदैव रहने वाले चराचर जीव किस प्रकार के है तथा उनका क्या स्वरूप है ? इस प्रश्न को सुनकर स्वयम्भू तीर्थंकर ने सकल चराचर वस्तु तथा जीवाजीव पदार्थ के स्वरूप को समझाने लगे।

भावार्थ—नाम कर्म के उदय से उसे जितना छोटा-बडा शरीर प्राप्त होता है वह उतना ही सकोच विस्तार रूप हो जाता है। उस जीव का अन्वेषण करने के लिये गति आदि चौदह मार्गणाओ का निरूपण किया गया है। इसी प्रकार चौदह गुणस्थान और सत्सख्या आदि अनुयोगो के द्वारा भी वह जीव-तत्व अन्वेषण करने के योग्य है।

भावार्थ—मार्गणाओं, गुणस्थानो, सत्सख्या और अनुयोगो द्वारा जीव का स्वरूप समझा जाता है। गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय ज्ञान, सयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, सज्ञित्व और आहारक ये चौदह मार्गणा स्थान हैं। इन मार्गणा स्थानो मे सत्सख्या आदि विशेष रूप से जीव का अन्वेषण करना चाहिये। और उसका स्वरूप जानना चाहिये। सिद्धान्त शास्त्र रूपी नेत्र को धारण करने वाले भव्य जीवो को सत्सख्या, क्षेत्र स्पर्शन काल भाव, अन्तर, अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोगो के द्वारा जीवतत्त्व का अन्वेषण करना चाहिये। इस प्रकार जीवतत्त्व के ये उपाय हैं। इनके सिवाय विद्वानो को नय और निक्षेपो के द्वारा भी जीवतत्व की जानकारी कर लेनी चाहिये। उसका स्वरूप जानकर दृढ प्रतीति करनी चाहिये। औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदायिक और पारिणामिक ये पाच भाव जीव के निज तत्त्व कहलाते हैं। इन गुणो का जिसके द्वारा निश्चय किया जावे वे जीव कहलाते हैं। उस जीव का उपयोग ज्ञान और दर्शन भेद से दो प्रकार का होता है इन दोनो प्रकार के उपयोगो मे से ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का और दर्शनोपयोग चार प्रकार जानना चाहिये। जो उपयोग साकार है अर्थात् विकल्प सहित पदार्थ को जानता है उसे दर्शनोपयोग कहते हैं और जो अनाकार है, विकल्प रहित पदार्थ को जानता है उसे दर्शनोपयोग कहते है। घट-पट आदि की व्यवस्था लिये किसी के भेदकरण करने को आकार कहते हैं। और सामान्य रूप से ग्रहण करने को अनाकार कहते हैं। ज्ञानोपयोग वस्तु को भेदपूर्वक ग्रहण करते हैं। इसलिये वह साकार सविकल्प उपयोग कहलाता है और दर्शनोपयोग वस्तु को सामान्य रूप से ग्रहण करता है, इसलिये वह

अनाकार-अविकल्प उपयोग कहलाता है। जीव, प्राणी, जन्तु, क्षेत्रज्ञ, पुरुष, पुमान्, आत्मा अन्तरात्मा और ज्ञानी ये सब जीव के पर्यायवाची शब्द हैं। चूं कि यह जीव वर्तमान काल मे जीवित है, भूतकाल मे भी जीवित था और अनागत काल मे भी अनेक जन्मो मे जीवित रहेगा। इसलिये इसे जीव कहते हैं। सिद्ध भगवान् अपनी पूर्व पर्यायो मे जीवित थे इसीलिये वे भी जीव कहलाते हैं। पाच इन्द्रिय, तीन बल आयु और श्वासोच्छ्वास ये दश प्राण इस जीव के पास विद्यमान रहते हैं इसलिये प्राणी कहलाता है। यह बारम्बार अनेक जन्म धारण करता है, इसलिये जन्तु कहलाता है। इसके स्वरूप को क्षेत्र कहते हैं और यह उसे जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ कहलाता है। पुरु अर्थात् अच्छे-अच्छे भोगो मे ज्ञान प्राप्त करने से यह पुरुष कहलाता है। अपने आत्मा को पवित्र करने के कारण पुमान कहलाता है। यह जीव नर-नारकादि आठ कर्मो के अन्तर्वर्ती होने से अंतरात्मा भी कहलाता है। यह जीव ज्ञान गुण से सहित होने से ज्ञेय अथवा ज्ञानी कहलाता है। इस प्रकार यह जीव उपरोक्त पर्यायवाची शब्दो के समान अन्य अनेक शब्दो से जानने योग्य है। यह जीव नित्य है, परन्तु उसकी नर-नरकादि पर्याय पृथक् पृथक् है। जिस प्रकार नित्य होने पर भी पर्यायो की अपेक्षा उसका उत्पाद और विनाश होता रहता है उसी प्रकार यह जीव नित्य है, परन्तु पर्यायो की अपेक्षा उसमे भी उत्पाद और विनाश होता रहता है।

भावार्थ—द्रव्यत्व सामान्य की अपेक्षा जीव द्रव्य नित्य है और पर्यायो की अपेक्षा अनित्य है। एक साथ दोनो अपेक्षाओ से यह जीव उत्पाद व्यय और ध्रौव्यरूप है। जो पर्याय पहले नही थी उसका उत्पन्न होना उत्पाद कहलाता है, किसी पर्याय का उत्पाद होकर नष्ट हो जाना व्यय कहलाता है और दोनो पर्यायो मे तद्वस्तु होकर रहना ध्रौव्य कहलाता है। इस प्रकार यह आत्मा उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्य इन तीनो लक्षणो सहित है। ऊपर कहे हुये स्वभाव से युक्त आत्मा को नही जानते हुये मिथ्या-दृष्टि पुरुष उसका स्वरूप अनेक प्रकार से मानते हैं और परस्पर मे विवाद करते है। कुछ मिथ्यादृष्टि कहते है कि आत्मा नाम का पदार्थ ही नही है, कोई कहता है कि वह अनित्य है, कोई कहता है कि वह कर्ता भोक्ता नही है कोई कहता है कि आत्मा नामक पदार्थ है तो सही, परन्तु उसका मोक्ष नही है और कोई कहता है कि मोक्ष भी होता है, परन्तु मोक्ष प्राप्ति का कुछ उपाय नही है। इसलिये आयुष्मन् हे वैजयन्त ! ऊपर कहे हुये इन अनेक मिथ्या नयो को छोडकर समीचीन नय के अनुसार जिनका लक्षण कहा गया है ऐसे जीव तत्व का तुम निश्चय करो। जीव की दो अवस्था मानी गयी है। एक संसारी और दूसरा मुक्त (मोक्ष)। नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चार भेदो से युक्त संसार रूपी भवर मे परिभ्रमण करना संसार कहलाता है और समस्त कर्मो का बिल्कुल क्षय हो जाना मोक्ष कहलाता है। वह मोक्ष अनन्त सुख स्वरूप है तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप साधन से प्राप्त होता है। सच्चे देव, शास्त्र और समीचीन पदार्थ का बडी प्रसन्नता पूर्वक श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन माना गया है। यह सम्यग्दर्शन मोक्ष प्राप्ति का प्रथम साधन है। जीव, अजीव आदि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करने वाला तथा अज्ञान रूपी अन्धकार को परम्परा से नष्ट हो जाने के बाद उत्पन्न होने वाला जो ज्ञान है वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है। इष्ट-अनिष्ट पदार्थों मे समता भाव धारण करने को सम्यक्चारित्र कहते हैं। वह सम्यक्चारित्र यथार्थ रूप से तृष्णा रहित मोक्ष की इच्छा करने वाले, वस्त्र रहित और हिंसा का सर्वथा त्याग करने वाले मुनिराज को ही होता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों

मिलकर ही मोक्ष के कारण कहे गये है। यदि इनमे से एक भी अग की कमी हुई हो तो कार्य सिद्ध करने मे समर्थ नही हो सकते। सम्यग्दर्शन के होने से ही ज्ञान और चारित्र फल को देने वाले होते हैं। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र के रहते हुये ही सम्यग्ज्ञान मोक्ष का कारण है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से रहित चारित्र कुछ भी कार्यकारी नही होता, किन्तु जिस प्रकार अधे पुरुष का दौडना उसके पतन का कारण होता है उसी प्रकार सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान से शून्य पुरुष का चारित्र भी उसके पतन अर्थात् नरकादि गतियो मे परिभ्रमण का कारण है। इन तीनो मे से कोई तो अलग-अलग एक-एक से मोक्ष मानता है और कोई दो से मोक्ष मानता है। इस प्रकार अज्ञानी लोगोने मोक्षमार्ग के विषय मे छह प्रकार के मिथ्या नयो को कल्पना को है, परन्तु उपर्युक्त कथन से उन सभी का खडन हो जाता है।

भावार्थ—कोई केवल दर्शन से, कोई केवल ज्ञान से, कोई केवल चारित्र से, कोई दर्शन और ज्ञान दो से, कोई दर्शन और चारित्र इन दो से और कोई ज्ञान तथा चारित्र इन दो से मोक्ष मानते हैं। इस प्रकार मोक्ष मार्ग के विषय मे छह प्रकार के मिथ्या नय की कल्पना करते हैं. परन्तु उनकी यह कल्पना ठीक नही है, क्योकि तीनो की एकता से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। जैन धर्म मे आप्त, आगम तथा पदार्थ का जो स्वरूप कहा गया है उससे अधिक वा कम न तो है, न था और न आगे ही होगा। इस प्रकार आप्त आदि तीनो के विषय मे श्रद्धान की दृढता होने से सम्यग्दर्शन मे विशुद्धता उत्पन्न होती है। जो अनन्त ज्ञान आदि गुणो से सहित हो, घातिया कर्म रूपी कलक से रहित हो, निर्मल आशय का धारक हो, कृतकृत्य हो और सबका भला करने वाला हो वह आप्त कहलाता है। इसके सिवाय अन्य देव आप्ताभास कहलाते हैं। जो आप्त का कहा हुआ हो, समस्त पुरुषार्थो का वर्णन करने वाला हो और नय तथा प्रमाणो से गभीर हो उसे आगम कहते हैं। इसके अतिरिक्त असत्य पुरुषो के वचन आगमाभास कहलाते है। जीव और अजीव के भेद से पदार्थ के दो भेद जानना चाहिये। उसमे से जिसका चेतना रूप लक्षण ऊपर कहा जा चुका है और जो उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य रूप तीन प्रकार के परिणमन से युक्त है वह जीव कहलाता है। भव्य-अभव्य और मुक्त इस प्रकार जीव के तीन भेद कहे गये हैं। जिसे आगामी काल मे सिद्धि प्राप्त हो सके उसे भव्य कहते हैं। भव्य जीव स्वर्ण पाषाण के समान होता है अर्थात् जिस प्रकार निमित्त मिलने पर सुवर्ण पाषाण आगे चलकर शुद्ध सुवर्ण रूप हो जाता है उसी प्रकार भव्य जीव भी निमित्त मिलने पर शुद्ध सिद्धस्वरूप हो जाता है। जो भव्य जीव से विपरीत है अर्थात् जिसे कभी सिद्धि की प्राप्ति न होसके उसे अभव्य कहते हैं। अभव्य जीव अन्ध पाषाण के समान होता है अर्थात् जिस प्रकार अन्धपाषाण कभी सुवर्ण रूप नही हो सकता। उसी प्रकार अभव्य जीव कभी सिद्ध स्वरूप नही हो सकता। अभव्य जीव को मोक्ष प्राप्त होने की सामग्री कभी प्राप्त नही होती। और जो कर्मबधन से छूट चुके हैं, तीनो लोको का शिखर ही जिनका स्थान है, जो कर्म कालिमा से रहित हैं और जिन्हे अनन्त सुख अभ्युदय प्राप्त हुआ है ऐसे सिद्ध परमेष्ठी मुक्त जीव कहलाते हैं। इस प्रकार हे बुद्धिरूपी धन को धारण करने वाले वैजयन्त ! मैने तुम्हारे लिये सक्षेप से जीव तत्व का निरूपण किया है। अब इसी तरह अजीव तत्व का भी निश्चय कर; धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल इस प्रकार अजीव तत्व का पाच भेदो द्वारा सविस्तार निरूपण किया जाता है। जो जीव और पुद्गलो के गमन मे सहायक कारण हो उसे धर्म कहते हैं और जो उन्ही के स्थित होने मे सहकारी कारण हो उसे अधर्म कहते हैं। धर्म और अधर्म ये दोनो ही पदार्थ अपनी इच्छा से गमन करते और

ठहरते हुये जीव तथा पुद्गलो के गमन करने और ठहरने मे सहायक होकर प्रवृत्त होते हैं स्वयं किसी को प्रेरित नही करते।

जिस प्रकार जल के बिना मछली का गमन नही हो सकता फिर भी जल मछली को प्रेरित नही करता उसी प्रकार जीव और पुद्गल धर्म द्रव्य के बिना नही चल सकते, फिर भी धर्म द्रव्य उन्हे चलने के लिये प्रेरित नही करता, किन्तु जिसप्रकार जल चलते समय मछली को सहारा दिया करता है उसी प्रकार धर्म पदार्थ भी जीव और पुद्गलो को चलते समय सहारा दिया करता है। जिस प्रकार वृक्ष की छाया स्वय ठहरने की इच्छा करनेवाले पुरुष को ठहरा देती है– उसके ठहरने मे सहायता करती है, परन्तु वह स्वय उस पुरुष को प्रेरित नही करती तथा इतना होने पर भी वह उस पुरुष के ठहरने का कारण कहलाती है, उसी प्रकार अधर्मास्तिकाय भी उदासीन होकर जीव और पुद्गलो को स्थित कर देता है–उन्हे ठहरने मे सहायता पहुचाता है, परन्तु स्वय ठहरने की प्रेरणा नही करता। जो जीव आदि पदार्थो को ठहरने के लिये स्थान दे उसे आकाश कहते हैं। वह आकाश स्पर्श रहित, अमूर्तिक, सव जगह व्याप्त और क्रिया रहित है। जिसका वर्तना लक्षण है उसे काल कहते हैं। वह वर्तना काल तथा काल से भिन्न जीव आदि पदार्थो के आश्रय रहती है और सब पदार्थो का जो अपने-अपने गुण तथा पर्याय रूप परिणमन होता है उसमे सहकारी कारण होती है। जिस प्रकार कुम्हार के चक्र के फिरने मे उसके नीचे लगी हुई शिला कारण होती है उसी प्रकार काल द्रव्य भी सब पदार्थों के परिवतन मे कारण होता है"॥ ६७ ॥

उयिरु' उयिरल्लदु' पुन्नियं पावमूट्ट् ।
सैइर् तीर् सेरिप्पु मुदिर्पु' कट्टु' वीडुमुट्र ॥
तुयतीकु' तूयनेरियु' सुरुक्कायुरैप्पन् ।
मयक्कीर्ंद काक्ष युडयो इडुक्केन् मदित्तो ॥६८॥

अर्थ—मूर्छा से रहित होकर सम्यग्दर्शन प्राप्त हे वैजयन्त राजा सुनो।

जीव पदार्थ, अजीव पदार्थ, पुण्य तथा पाप पदार्थ, आश्रव पदार्थ, दोगों को रोकने वाला सवर पदाथ, निर्जरा पदार्थ, तथा मोक्ष पदार्थ इनका अनादि काल से ससार मे रहने वाले जीव के दु:ख को नाश करके मोक्ष के दाता ऐसे अत्यन्त निर्मल रत्नत्रय मार्ग का सक्षेप मे वर्णन करूगा।

भावार्थ—हे राजन्! मूर्छा रहित सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुये तुम सावधानी पूर्वक सुनो। जीव अजीव पुण्य तथा पाप पदार्थो को तथा आत्मा मे सर्वदा कर्म को लानेवाले आश्रव पदार्थ हैं। पाप और पुण्य को रोकनेवाला संवर पदार्थ है। कर्म की निर्जरा करने वाला निर्जरा पदार्थ है। आत्मा के साथ कर्मबंध को करनेवाले बंध पदार्थ हैं। आत्मा को संसार से छुड़ा कर सम्पूर्ण कर्मों को नाश करनेवाले ये मोक्ष पदार्थ हैं। इस प्रकार अनादि काल से आत्मा को संसार का [illegible] मोक्ष देनेवाले रत्नत्रय मार्ग का संक्षेप से [illegible]। [illegible] हे राजन्! ध्यान पूर्वक सुनो।

अरिवु काक्षिय दायँदु मूंड्रुसं ।
पोरियोडुट् करणत्तइर् पायुविन् ।।
नेरियिन् वाळ्ं पोरुळदु जीवना ।
मरियिन् वीटदुमाट्रदु मागुमें ।।६६।।

अर्थ—ज्ञान दर्शन आत्मा का स्वाभाविक लक्षरण है। पाच इन्द्रिय, आयु, श्वासोच्छवास मनबल, वचन बल और काय बल इन दश प्राणो से जीवित आये हुये और वर्तमान मे जी रहा है तथा भविष्य मे भी जीवेगा, ऐसे दश प्राण हैं। जो जीता आ रहा है उसको जीव कहते हैं। जीव के दो भेद हैं—जीव और अजीव। कहा भी है :-

तिक्काले चदुपाणा इन्द्रिय बलमा उआणपाणो य।
ववहारा सो जोवो रिगच्छयरगयदो दुचेदरगा जस्स ।।

अर्थ—तीन काल मे इन्द्रिय, बल, आयु, श्वास, नि.श्वास इन चारो प्राणो को जो धारण करता है वह व्यवहार नय से जीव है और निश्चय नय से जिसके चेतना है वही जीव है।। ६६ ।।

वीटि निंड्रदु वेव्विनै येन्मइन् ।
केटिलेन्गुरण मेय्दियोर् केडिला ।।
माक्षि यालुलगं तोळ माट्रर ।
ओट्टि वैय्त शबोन् नोत्तोळिरुमें ।।७०।।

अर्थ— मोक्ष की प्राप्ति करने वाले सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा को दुःख उत्पन्न करने वाले ज्ञानावरणादि आठ कर्मों को नाश करने से अनन्त ज्ञानादि आठ गुणो को प्राप्त कर इसी काल मे नाश न होने वाले व दु.ख को न देने वाले मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं। इस कारण हे राजन्! तुझ को यदि ससार के दुःखो का नाश करना है तो सम्पूर्ण परिग्रहो को छोडकर जिनदीक्षा धारण करो। क्योकि जिनदीक्षा धारण किये विना अनन्त ज्ञान, प्रनन्त शक्ति व अनन्त सुख आदि देनेवाले मोक्ष की प्राप्ति नही हो सकती। आठो कर्मो से रहित शुद्ध स्वर्ण के समान कलक रहित यह जीव सदैव प्रकाशमान होता है।। ७० ।।

माट्रि निंड्रदु वैयग मूंड्रिनु ।
माट्रबुं परियट्ट मोरैंदिनार् ।।
रोट्रं वीद ट्रोर्डदिडै इल्विनै ।
काट्रि नार् गति नांगीर् सुळलु मे ।।७१।।

अर्थ—मोक्ष की इच्छा करनेवाले जीव सम्यग्दृष्टि होते हैं। आत्मा को दु.ख देने वाले ज्ञानावरणादि आठ कर्मों को नाश करने से अनन्त ज्ञानादि को प्राप्त कर अविनाशी

व दु.ख न देनेवाली कीर्ति से सिद्धगति को प्राप्त हुये सिद्धजीव को इस लोक मे रहनेवाले भव्य जीव नमस्कार करके कलक रहित तीन लोक मे प्रकाशमान होता है।

भावार्थ—मोक्ष की इच्छा करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा को दु ख देनेवाले ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय,वेदनीय,अतराय,गोत्र,आयु नाम इन आठ कर्मो के नाश करनेसे अनन्त ज्ञानयुक्त क्षायिक सम्यक्त्व, समस्त लोकालोक विषयों को जाननेवाला क्षायिक ज्ञान, समस्त लोक को जाननेवाला क्षायिक दर्शन, अनन्त पदार्थो का जाननेवाला ज्ञानमय भेदाभावरूप क्षायिक वीर्य शक्ति, केवल ज्ञान को जाननेवाला क्षायिक सूक्ष्मत्व एक दीपक मे अनेक दीप प्रकाशमान होनेवाले के समान एक शुद्ध परमेष्ठी रहने के क्षेत्र मे शका कांक्षादि दोष रहित अनन्त शुद्धात्मा को अवकाश दान देने के सामर्थ्य युक्त क्षायिक अवगाहन, लोक के पिंड समान गुरुत्व, रुई के समान अगरुलघुत्व अर्थात् क्षायक अगुरुलघुत्व अनन्त सुख क्षायिक अव्यावाध और अनन्त गुणरूप क्षायिक अव्यायाध ऐसे आठो गुणो से युक्त सिद्ध भगवान् होते है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु, नाम, वेदनीय, गोत्र अतराय रूपी मल से कर्मों से रहित होने से यथाक्रम क्षायिक ज्ञान, दर्शन, अव्याव।ध, सम्यक्त्व अवगाहन, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व और वोर्य ऐसे विशेष गुणो से युक्त रहते हैं। ये गुण कभी भी नाश नही होते और वे सिद्ध भगवान् दुख से रहित तान लोक के पात्र होते रहते हैं। भव्य जीव ऐसे गुणों की आराधना तथा नमस्कार करने से कर्मकलंक से रहित होकर जैसे १६ (सोलह) ताव देने से स्वर्ण शुद्ध होता है उसी प्रकार शुद्ध कर्मकलंक से रहित सिद्ध भगवान् सिद्धावस्था को प्राप्त होते हैं।

प्रश्न—सिद्ध भगवान का क्या स्वरूप है?

उत्तर—चौदहवें गुणस्थान के अत समय मे शरीर अगोपाग के नाश होने से अंतिम के शरोर से वे सिद्ध भगवान् छोटे शरीरवाले होते हैं। मनुष्य के हाथ मे रहनेवाले वस्त्र कुम्हार के हाथ मे रहनेवाले शकोरे मटके आदि का जैसे सकोच-विस्तार होता है और छोड़ते ही जिस आकार मे वह पहले था उसी आकार मे आ जाता है उसी प्रकार आत्मा सम्पूर्ण कर्मो के नाश होने से वह अपने स्वरूप मे रहता है।। ७१ ।।

मारण्डंबु मिडागति नान् गैदु।
मीन मिल् विलंगिलु मोर् नानूगैदुं ।।
वाणिन् बंदु क्लिगु मणिदना।
मीन मिल्लवै येंदिडु नारगन् ।।७२।।

अर्थ—पीछे कहे हुये मुक्त जीव से विपरीत जीव अधोलोक, मध्यलोक तथा पाताल लोक और द्रव्य क्षेत्र काल भाव इन क्षेत्रो मे हमेशा जन्म-मरण प्राप्त करते रहते हैं। कर्म रूपी वायु के वेग से चारो गतियो मे सर्वदा भ्रमण करते रहते हैं।

भावार्थ—आचार्य ने इस श्लोक मे पचपरिवर्तन स्वरूप का वर्णन किया है।

प्रश्न—परिवर्तन किसे कहते है?

उत्तर—ससरण समार: अर्थात् द्रव्य क्षेत्र काल और भाव इनको ससार कहते हैं। ये चार प्रकार के होते हैं।

१–द्रव्य परिवर्तन—इसका पुद्गल परिवर्तन नाम है। इसके भी २ भेद है। पहले का नाम नव कर्म परिवर्तन है। यह नौ कर्म परिवर्तन औदारिक वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीर से सम्बन्धित छह पर्याप्ति होने से योग्य पुद्गल वर्गणा ऐसे २ इनके नौ नाम है। कर्म परिवर्तन—ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के रूप होने से पुद्गल वर्गणाओ को कर्म-वर्गणा कहते है। एक जीव एक समय मे आठ प्रकार के कर्म होने से योग्य कमवर्गणा को ग्रहण किया हुआ अन्योन्य समय आदिक अवली मात्र आबाधा काल बीतने के बाद उसका नाश होने से श्रेणी चढता है। उसके बाद मोह कर्म परिवर्तन मे क्रमबद्ध होकर पूर्वोक्त कथनानुसार अग्रहीत मिश्र और ग्रहीत मिश्र के समय को अनन्तानन्त बार ग्रहण कर छोडता है। इसी प्रकार ग्रहण करते २ वह जीव प्रथम समय मे ग्रहण किये हुये कर्मवर्गणा के अनुसार समय के पश्चात् कर्मत्व भाव परिणामो को प्राप्त होता है। उसके बीच से सम्पूर्ण कार्य को एक कर्मवर्तन का काल समझना चाहिये।

२–क्षेत्र परिवर्तन—कोई जीव एक समय मे जघन्य अवगाहन से युक्त सूक्ष्म लब्धिपर्याप्तक निगोदी जीव के शरीर को धारण कर उससे अन्योन्य एक २ प्रदेश वृद्धि प्राप्त हुये अवगाहन को धारण करता है, इसी प्रकार एक २ प्रदेश बढते २ महामच्छ के उत्कृष्ट अवगाहन के बाहर शरीर को धारण करने मे जितना समय लगता है उस काल को क्षेत्र परिवर्तन काल कहते है।

३–काल परिवर्तन—एक जीव उत्सर्पिणी काल के प्रथम समय मे जन्म धारण करके अन्योन्य जन्म–मरण को प्राप्त कर ससार मे परिभ्रमण करनेवाला होकर पुन वह जीव उत्सर्पिणी काल मे दूसरे समय मे उत्पन्न होता है। इसी प्रकार तीसरे समय मे क्रमसे जन्म-मरण को बार २ प्राप्त होते हुये उत्सर्पिणी काल तथा अवसर्पिणी काल के दश कोड़ा-कोडी सागर अर्थात् बीस कोडा-कोडी सागर समय को क्रम से जन्म-मरण को बार २ पूर्ण करता है। ऐसा करने से जितना समय होता है उस समय को काल परिवर्तन कहते है।

४–भावपरिवर्तन—यहा का जीव प्रथम नरक की दश हजार वर्ष की आयु प्राप्त कर वहा की आयु को पूर्ण कर वहा से चयकर ससार मे आता है और पुन. २ भ्रमण कर किसी एक काल मे उतना ही आयुष्य को धारण करता है। इसी प्रकार दश हजार वर्ष का जितना समय है उतना समय तक एक हजार वर्ष की आयु प्राप्त करके क्रम मे एक २ समय अधिक आयु प्राप्त कर नर्क आयु की उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागर काल को पूर्ण करता है। इसी प्रकार देव आयु की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की आयु मे लेकर उत्कृष्ट स्थिति ३१ सागर की होती है। मनुष्य व तिर्यच आयु की वस्तु स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त से उत्कृष्ट स्थिति कर्मपल्य से क्रम २ से एक २ समय वृद्धि होकर पूर्ण करता है। इस तरह चार प्रकार आयुष को पूर्ण करने मे जितना समय लगता है वह भव भाव परिवर्तन है। देव आयुष मे ३१ सागर से अधिक आयु को प्राप्त हुआ जीव नियम मे सम्यक्त्व को प्राप्त करने

वाला होकर मोक्षमार्गी होता है। उनकी आयु ३१ सागर की ही है, इससे अधिक नहीं।

५-क्षेत्र परिवर्तन—योग स्थान, अनुभाग-अध्यवसाय, सासादन कषाय, अध्यवस्थान स्थिति स्थान ये चार स्थान के परिवतन क्रम पूर्वक पूर्ण होना भाव परिवर्तन काल है। इनके विशेष स्वरूप को गोम्मटसार से समझ लेना चाहिये। द्रव्य परिवर्तन का काल अनन्त है। उससे अधिक काल क्षेत्र परिवर्तन है, उससे अधिक अनन्तकाल परिवर्तन, और उससे अधिक अनन्त गुणा परिवर्तन है। इस प्रकार परिवर्तन के काल समूह को एक परिवर्तन काल कहते हैं।। ७ ।।

नालरिईरु नांगु नरगरु देवर् तामुं।
मालुरु भोग भूमि मक्कळ् विलगु मागार् ।।
मेलुर् वानदादि देवर् गळ् विलगिन् वारार् ।
शाल वोशानन् मेलाई रेवर् सेन्नि यावार् ।।७३।।

अर्थ—मनुष्य पर्याय को धारण किया हुआ जीव अपने शरीर को छोड़कर अपने २ परिणाम के अनुसार चारो गतियो को प्राप्त करता है। न्यूनाधिक परिणामो के अनुसार पचेन्द्रिय पर्याय तथा तिर्यच गति को प्राप्त हुये जीव अपने २ परिणामानुसार पूर्वोक्त कथन के समान अनेक गतियो मे जन्म लेते हैं। देव गति मे जन्म धारण किया हुआ जीव देव पर्याय को छोड़कर मनुष्य व तिर्यच गति को प्राप्त होता है। पीछे कहे अनुसार नारकी जीव मनुष्य व तिर्यच गति मे जन्म लेता है।

भावार्थ—मनुष्य पर्याय को प्राप्त हुआ जीव अपने धारण किये हुये शरीर को छोड़कर परिणामानुसार चारो गतियों मे जन्म लेता है। अर्थात् कम व अधिक परिणामो के अनुसार पर्याय को धारण करता है। तिर्यच गति को प्राप्त हुआ जीव अपने परिणाम के अनुसार पीछे के कथन के समान तिर्यंच गति मे जन्म लेता है। देवगति मे उत्पन्न हुआ जीव अपने परिणामो के अनुसार मनुष्य व तिर्यंच गति मे पैदा होता हैं। नारकीय जीव भी इसी प्रकार अपने २ परिणामो के अनुसार मनुष्य व तिर्यंच गति मे पैदा होता है।। ७३ ।।

नीर् मर निलंगळावर निड्र नालवगैयदेवर् ।
नीर्मर निलंगळ् सेल्लं विलंगोडु मक्क डम्मिर् ।।
शीमेंइल् विलंगु मक्कळ्ती योडु वळियुमावर् ।
नीर्मयिन् निरिपिर् काट्टि निड्रनविलंगि ट्रोंड्रम् ।।७४।।

अर्थ—एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय जीव और नर्क गति के जीव तथा देवगति के जीवो में से राग रहित भोग भूमि मे मनुष्य और तिर्यंच गति के जीव उत्पन्न नही होते।

प्रश्न—भोग भूमि मे उत्पन्न होनेवाले जीव कौन से हैं ?

उत्तर—कर्मभूमि तथा तिर्यंच गति के जीव जो उत्तम मध्यम और जघन्य पात्र

है उनके द्वारा उत्तम मध्यम व जघन्य पात्र को दान देने व अनुमोदना करने से जो पुण्य संपादन होता है उसके कारण से उत्तम, मध्यम व जघन्य भोगभूमि मे जन्म लेते है। आरणत, प्राणत, आरण और अच्युत ऐसे चार प्रकार के श्रेष्ठ देव तथा अहमिन्द्र देव तिर्यंच गति मे जन्म नही लेते। मनुष्य गति मे ही जन्म लेते है। शेष सौधर्म-ईशान कल्प के रहने वाले सनत्कुमार आदि सहस्रार; कल्प के ऊपर रहनेवाले देव वहा से सैनी जीव आकर उत्पन्न होते होते है, असैनी नही।

भावार्थ—एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, ते इन्द्रिय, चार इन्द्रिय जीव नर्क व देव गति के जीव राग रहित भोगभूमि मे जन्म नही लेते। कर्म भूमि मे उत्पन्न हुये मनुष्य व तिर्यच जीव उत्तम मध्यम और जघन्य पात्रो को दान देने से पुण्य सचय करके उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमि मे जन्म लेते है। आरणत प्राणत आरण व अच्युत ये चार प्रकार के कल्प-वासी देव और अहमिन्द्र देव ऐसे पाच प्रकार के देव तिर्यंच गति मे जन्म नही लेते, बल्कि मनुष्य गति मे ही जन्म लेते है। शेष सौधर्म ईशान कल्प मे रहनेवाले सनत्कुमार आदि सहस्रार कल्प के ऊपर रहने वाले जीव वहा से आकर सैनी जीव उत्पन्न होगे, असैनी नही। ॥ ७४ ॥

अरुगण दुरुवनिल्ला रर्गमिदि रतुट्टोंड्रा।
ररुमइर् शासरांद मडैवरा जीवरड्रि ॥
पिरमरणै येदमाग परिव्राजगरु शेल्वर्।
मरुवुवर् ज्योति ढांतम् मट्ट्र तापदर्कडामे ॥७५॥

अर्थ—तपस्वी दिगम्बर साधु अहमिन्द्र नामक नवे ग्रैवेयिक तथा पचानुत्तर मे जन्म नही लेते। जो साधु अच्छे चारित्रवान है पर वस्त्र धारण करने के कारण सहस्रार कल्प तक जाते हैं, उससे आगे नही। परिव्राजक सन्यासी ब्रह्म कल्प तक जाते है, इससे आगे नही जाते। पचाग्नि तपनेवाले साधु ज्योतिष कल्प तक जाते हैं।

भावार्थ—जिनेन्द्र भगवान् के रूप को धारण किये हुये तपस्वी मुनि जिनलिग धारण करनेवाले साधु अहमिन्द्र नाम के नवे ग्रैवेयिक तक पचानुत्तर मे जन्म नही लेते। वस्त्रधारी साधु तपश्चरण करने पर भी सहस्रार कल्प तक ही जाते हैं। परिव्राजक साधु ब्रह्मकल्प से आगे नही जाते। पचाग्नि तपनेवाले साधु ज्योतिषकल्प तक ही जाते है ॥ ७५ ॥

नरकाक्षि युडैविलंगुम् मानिडरु वदन् सेरिंदु।
कर्पादि मुदलाग कर्पाद मुरच्चल्वर् ॥
नर्पाल वदं शरिंद नरर् विलगु भवनादि।
कर्पातम् शासरांतम् कान्बर् मुरै युळिये ॥७६॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन धारण करनेवाले तिर्यच प्राणी पाच अणुव्रत को धारण करने वाले सौधर्म आदि अच्युत कल्प तक जाते है। निरतिचार पचाणुव्रत को धारण करनेवाले

साधु भवनवासी कल्प तक जाते हैं। तिर्यंच गति के जीव भवन लोक आदि मे सहस्रार कल्प तक क्रम से स्वपरिणामो के अनुसार उत्तम गति में जाते हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन धारण किया हुआ मनुष्य तथा तिर्यंच व्रत धारण करके सौधर्म आदि अच्युत स्वर्ग तक जाते हैं। और निरतिचार अणुव्रतो को धारण करके मनुष्य भवनवासी कल्प तक जाते हैं और तिर्यच जीव भवनवासी सहस्रार कल्प तक अपने परिणामों के अनुसार जाते हैं।। ७६ ।।

भोगनिल विलंगु नरर् पोरुंदिय नरकाक्षियरेल् ।
नागमोदलाम् सोदनीशान् नन्निडुवर् ।।
मोग मिच्छार् भवनर् व्यतरर् ज्योलिडराबा ।
रागु भवरणति शानुत्तरत्तंय मरत्तोळिदांर् ।।७७।।

अर्थ—भोग भूमि में रहनेवाले तिर्यंच व मनुष्य सम्यग्दृष्टि जीव पहले सौधर्म स्वर्ग में जाते हैं। तीव्र मोहनीय कर्म से युक्त मिथ्यादृष्टि जीव भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देवो मे जाते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि महामुनि तपश्चरण के प्रभाव से नवानुदिश व पचानुत्तर मे उत्पन्न होते हैं।। ७७ ।।

मीनानुं पेण्ण नार्कालुं कालिलवुं ।
वान् मेल वरुव तवळ्व कुरिलवु ।।
मेन् मेल वेळ् नरगिन् कीळ् शेल्ला मेर्चेल्लु ।
मेनांगु वीडु तवं विरदं विलंगा मुरये ।।७८।।

अर्थ—स्वयम्भू रमण समुद्र मे रहनेवाले महामच्छ. मनुष्याकार रहनेवाले जीव. सर्प इत्यादि और आकाश मे संसर्ग करने वाले पक्षी आदि भूमि गोचरी, मन सहित गिरगिट वगैरह जीव सातवे नर्क तक जाते हैं। स्त्री छठवें नर्क तक जाती है, इससे आगे नही। चतुष्पाद जीव पाचवे नरक तक जाते हैं। सप आदि जीव चौथे नरक तक जाते हैं। पक्षी आदि जीव तीसरे नर्क तक जाते हैं। कछुवा आदि जीव दूसरे नर्क तक जाते हैं। इस प्रकार ऊपर कहे अनुमार जीव अपने २ परिणामो के अनुसार नर्को मे जाते है। पहले नर्क से चौथे नर्क तक के जीव इस मनुष्य लोक में आकर मनुष्य पर्याय प्राप्त कर जिन दीक्षा लेकर दुर्द्धर तपश्चरण के द्वारा कर्म क्षय करके मोक्ष जाते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि पाचवें नक से आये हुये जीव तपश्चरण के द्वारा मोक्ष नही जा सकते। छठे॰ नर्क से आया हुआ जीव अणुव्रत धारण कर एकदेश व्रत को धारण करता है। सातवे नर्क से आया हुआ जीव तिर्यंच गति मे उत्पन्न होता है।। ७८ ।।

इंदिय मुंड्रिना लुलगुमेंगुमा ।
येदिना नाळिगं एगत्त् वाळु मे ।।

एंदिनोडिरंडरै दीप माळिमूत्र् ।
ड्रिदिय नांगु मूंड्रिरंडि नेल्लये ।।७६।।

अर्थ—एकेन्द्रिय जीव ३४३ घनराजू प्रमाण लोक मे भरे हुये हैं। पंचेन्द्रिय जीवो से त्रस नाडी भरी है। आधा स्वयभूरमणद्वीप, अढाई द्वीप, महालवणोदधि, कालोदधि और स्वयभूरमण समुद्र ऐसे तीनो समुद्रो मे दो इन्द्रिय आदि जीव जन्म लेते हैं।

भावार्थ—एकेन्द्रिय जीव से पचेन्द्रिय जीव तक ३४३ घन राजू प्रमाण लोक मे भरे हुवे हैं। पचेन्द्रिय जीव त्रसनाडी मे भरे है। आधा स्वयम्भूरमण द्वीप, अढाई द्वीप, लवण समुद्र कालोदधि समुद्र, स्वयम्भूरमण समुद्र इन तीनो समुद्रो मे एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय तथा पचेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं।।७६।।

इरंडरै तीविनुन्र् मणिद नान्र् ककंड ।
तिरंड नू टिळुवरत्तना ट्रिरुवरत्तना ।।
मुरंकड कुलगळोर् मूंड्रि ट्रोंडिनार् ।
ट्रिरंड तीविनै येडा सिद्धि यैदुमे ।।८०।।

अर्थ—ढाई द्वीप के जम्बू द्वीप, घातकीखण्डद्वीप, पुष्करार्द्ध द्वीप मे मनुष्य उत्पन्न होते हैं और उसमे भिन्न २ एक सौ सत्तर आर्यखण्डो मे श्री जैन धर्म को प्राप्त करने वाले जीव उत्पन्न होते है। ये जीव पाप को नाश करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णो मे तथा उत्तम कुल मे जन्म लेकर अनादि काल से आत्मा के साथ लगे हुये शत्रुओ को जीतकर मोक्षपद प्राप्त कर लेते है।

भावार्थ—जम्बू, घातकी, पुष्करार्द्ध ऐसे ढाई द्वीप के मनुष्य और उसके अन्तर्गत रहने वाले १७० आर्य खण्डो मे श्री जैन धर्म को प्राप्त करने वाले जीव उत्पन्न होते हैं। वे जीव पाप को नाश करने के निमित्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनो वर्णो मे जन्म लेकर अनादि काल से सम्बद्ध कर्म शत्रुओ को नाश करके दुर्द्धर तपश्चरण करके मुनिदीक्षा धारण कर मोक्ष को चले जाते है।।८०।।

कुडंगइल् विळक्केन कोंडकोंडदन्र् ।
नुडपिन दळव मामुलगमेंगु मा ।।
मोडुंगुळि पुरै तरंगि ल्लै योंगिय ।
विडंकोलिर् पिळत्तलु मिड्मूर्तियाल् ।।८१।।

अर्थ—जीव अमूर्तिक स्वभाव वाले हैं। जिस प्रकार एक दीपक को दोनो हाथो की अजुली मे रखकर यदि बद किया जावे तो वह प्रकाश मद २ प्रतीत होता है उसी प्रकार अनादि काल से रहने वाले शरीर मे आत्मा शरीर रूपी आवरण को प्राप्त हुआ है। नाम-कर्म द्वारा जितना शरीर का परिमाण होता है उतना ही आत्मा छोटे-वडे शरीर

प्रमाण धारण किये हुये है। केवली समुद्घात के चार भेद हैं। दण्ड, कपाट, प्रतर, लोकपूर्ण। लोकपूर्ण समुद्घात के समय इस अकेले जीव में तीन लोक को व्याप्त करने की शक्ति है। यह जीव अत्यन्त सूक्ष्म तथा मोटे रूप को धारण करता है, परन्तु आत्मा शरीर के निमित्त कारण छोटा-बड़ा कहलाता है। यदि निश्चय नय की दृष्टि से देखा जाय तो आत्मा न छोटा है और न बडा है; लोक प्रमाण है। यह आत्मा शरीर का निमित्त पाकर छोटा-बडा शरीर धारण करता है। आत्मा छोटा-बडा नही है। इसका अधिक विवेचन पदार्थसार ग्रन्थ से समझ लेना चाहिये ॥८१॥

पोरिगळार् पुलत्तोळ भोगं तुइप्पुळि ।
इरुगिय विनैगळु किरैव नाय पिन् ॥
पिरिदोरु पिरप्पिनौविनै पयत्तिनु ।
किरै बना मिदु उइरिय कै वण्ण मे ॥८२॥

अर्थ—जीव पदार्थ इन्द्रिय विषय के भोगो को भोगता है। राग-द्वेष मोह से अनुभव के समय मे उस राग परिणति के द्वारा आकर आश्रय करने वाले कर्मों का कर्त्ता होकर आप ही उन कर्मों के बध का कारण होकर आगे चलकर उस कर्म के फल का अनुभव करने वाला होता है।

भावार्थ—जीव इन्द्रिय विषयक भोगो को राग द्वेष मोह से अनुभव के समय मे उस राग परिणति के द्वारा आकर आश्रय करने वाले कर्मो का कर्त्ता होकर आप ही उन कर्मों के बध का कारण होकर आगे चलकर उस कर्म के फल का अनुभव करने वाला होता है। इस प्रकार जीव और पुद्गल का सम्बन्ध समझना चाहिये।

द्रव्य सग्रह मे कहा है—

पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो ।
चेदणकम्माणादा, सुद्धणया सुद्धभावाण ॥
ववहारासुहदुक्ख, पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि ।
आदा णिच्चयणायदो, चेदणभाव खु आदस्स ॥

जीव व्यहार नय से पुद्गल कर्म आदि का कर्त्ता है। अशुद्ध निश्चय नय से चेतन रागादि भाव कर्मों का कर्त्ता है। शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध भावो का कर्त्ता है। इसी तरह जीव व्यवहार नय से पुद्गल कर्मो का फल सुख दुःखो को भोगता है। निश्चय नय से आत्मा अपने शुद्ध भावो को भोगता है ॥८२॥

नाट्ट मुं सुवयु मूरु वण्णमुं तन्मैदागि ।
पोट्टोल् पूरित्तल् बार लुडयदा पुर्गलंदान् ॥

मात्रिडै उईरै पट्रि विनै मोदलागि तुंब ।
माट्रवुं शेंदु गंद मनुवुमा निर्पदामे ।।८३।।

अर्थ—पुद्गल, स्पर्श, रस, गध, वर्ण इनसे युक्त होते हुये पूरण और गलन सहित होने के कारण व्यवहार नय से संसार मे वर्तनावाले संसारी जीवो मे सबद्ध होकर ज्ञानावरणीय यादि ग्राठ कर्मो के कारण सुख दुःख को उत्पन्न कर कर्मस्कंध को उत्पन्न करनेवाले होते हैं-कर्म स्कंध रूप होने के कारण होते है ।

भावार्थ—स्पर्श, रस, गध, वर्ण आदि से युक्त यह पुद्गल राग द्वेष मोह के आश्रव से ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, वेदनीय, अन्तराय, मोहनीय, नाम, गोत्र और आयु ऐसे आठ कर्म रूप परिणत होता । उनके निमित्त से अनेक दु खो को सहते हुये जीव संसार मे परिभ्रमण करता है । सारांश यह है कि यह आत्मा शुभाशुभ भावो से उत्पन्न होने वाले आठ कर्मो को बाधकर ससार मे परिभ्रमण करता है ।।८३।।

नुन्मयु नुन्मयु नल्ल नुन्मयु ।
नुन्मइर् परुमैयुं परुमै नुन्मयुं ।।
मेन्नरु परुमै यु मिरु परुमै युं ।
कण्णरु मनुविना रागुं गंध मे ।।८४।।

अर्थ—स्कन्ध छह प्रकार के हैं । स्थूल-स्थूल, स्थूल, स्थूल-सूक्ष्म, सूक्ष्म-स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्म–सूक्ष्म ।।८४।।

करुमत्तिन् कोळन करुम नोगमम् ।
पेरिय वा नोगमम् पोरिकोळादन ।।
ओरु पोरि पुलत्तन पलपुलत्तन ।
करुदिय वरुवगै कंद मागुमे ।।८५।।

अर्थ—छह प्रकार के स्कंधों का स्वरूप इस प्रकार है—जो छूट जाने पर फिर न मिले उन्हे स्थूल—स्थूल स्कध कहते हैं । जैसे पृथ्वी पत्थर आदि । जो टूट कर फिर मिल जाय उन्हें स्थूल स्कध कहते हैं । जैसे दूध जल आदि । जो देखने मे आवें, पकडने मे न आवे उन्हे स्थूल—सूक्ष्म स्कध कहते हैं । जैसे तम, छाया, धूप आदि । यह नेत्रेन्द्रिय के विषय होते हैं । रस गध स्पर्श शब्द रूप चार इन्द्रियो के विषयों को सूक्ष्म–स्थूल स्कंध कहते हैं । जैसे गध रस स्पर्श तथा शब्द परिणति स्कंध । कर्म वर्गणाओ को सूक्ष्म—सूक्ष्म स्कंध कहते हैं । इस प्रकार ये छह प्रकार के स्कंध सर्व लोक मे भरे हुवे हैं ।।८५।।

ऊरि रंडागि नाट्रम् वण्णमुं सुवैयुमंड्राय् ।
गिरि रंडाकू लागा नुन्मैत्ता येळवैवकल्लाम् ।।

पेरुदन् वळिय दागि पिरंगि मु वलग मुट्रु ।
मारु कंदगट्कादि त्यागिय दनुवदामे ॥८६॥

अर्थ—स्निग्ध परमाणु और रूक्ष परमाणु ऐसे दो प्रकार हैं। स्निग्ध परमाणु को स्निग्ध स्पर्श और रूक्ष परमाणु को रूक्ष स्पर्श कहते है। उष्ण स्पर्श और रूक्ष स्पर्श ये दो प्रकार हैं। सुगंध दुर्गंध में, पंचवर्णो मे और पंच रसो मे इन अणुओ को भिन्न २ जानने की शक्ति केवल अर्हंत भगवान् में ही है, अन्य मे नही। इस प्रकार इस जगत मे छह प्रकार के स्कंध अनादि काल से सदैव भरे हुये हैं।

भावार्थ—सफेद, पीला, नीला, लाल और काला ये पाच वर्ण, चरपरा, कडुआ, कषैला, खट्टा और मीठा ये पांच रस, सुगंध और दुर्गंध ये दो गध तथा ठंडा, गरम, नरम, चिकना, रूखा, कठोर, भारी और हल्का, ये आठ प्रकार के स्पर्श शुद्ध निश्चय से शुद्ध-बुद्ध स्वभाव धारक शुद्ध जीव मे नही है। इस कारण यह जीव अमूर्तिक अर्थात् मूर्ति रहित है।

शंका—यदि जीव अमूर्तिक है तो इसके कर्म का बंध कैसे होता है ?

समाधान—अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से जीव मूर्तिक है। इस कारण कर्म का बध होता है।

शंका—जीव मूर्तिक किस कारण से है ?

समाधान—अनन्त ज्ञान आदि की प्राप्ति रूप जो मोक्ष है उसके विपरीत अनेक अनादि बंधन के कारण जीव मूर्तिक है। कथंचित् मूर्तिक और कथचित् अमूर्तिक जीव का लक्षण है। कहा भी है कि "कर्म बंध के प्रति जीव की एकता है और लक्षण से उस कर्मबंध की तथा जीव की भिन्नता है। इसलिए एकात से जीव के अमूर्तिक भाव नही हैं।

इसका तात्पर्य यह है कि जिस अमूर्तिक आत्मा की प्राप्ति के अभाव से इस जीव ने अनादि संसार मे भ्रमण किया है। उसी अमूर्तिक शुद्ध स्वरूप आत्मा को मूर्त पाचो इन्द्रियो के वषयो का त्याग करना चाहिये ॥८६॥

करुमा नल्लपशय कायनोगमं ।
मरुविय पुलस् वत्त भोगड्कारण ।
मिरुळ् वैत्योकि योलि निळनार् भूतमाय् ।
तिरिवुडै पुद्गलंदान जीयने ॥८७॥

अर्थ—ज्ञानावरणादि जो आठ कर्म हैं तथा धातु उपधातु आदि से युक्त यह पांच प्रकार का शरीर, नो कर्म वर्गणा मे पाच इन्द्रिय मिश्रित होकर नो इन्द्रिय आदि विषय को उत्पन्न करने वाली और भोगोपभोग वस्तु का कारण होने वाली तम, छाया, आताप, प्रकाश शब्द, पृथ्वी, अग्नि, तेज, वायु आदि परिणाम को उत्पन्न करने वाली पुद्गल वर्गणा है। अर्थात् जितना भी पीछे वर्णन कर चुके हैं वे सभी पुद्गल के भेद हैं, आत्मा के नही।

भावार्थ—शब्द, बध, सूक्ष्म, स्थूल, सस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत और आताप, ये सभी पुद्गल की पर्याय है। अब इसको विस्तार के साथ बतलाते हैं।

भाषात्मक और अभाषात्मक ऐसे शब्द दो प्रकार है। उसमे भाषात्मक शब्द अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक रूप से दो प्रकार का है। उसमे भी अक्षरात्मक भाषा सस्कृत प्राकृत और उनके अपभ्रश तथा पैशाची आदि भाषा के भेद से आर्य व म्लेच्छ मनुष्यो के व्यवहार के कारण अनेक प्रकार की है। अनक्षरात्मक भाषा द्वीन्द्रियादि त्रस जीवो मे तथा सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि मे है। अभाषात्मक शब्द भी प्रायोगिक और वैशेषिक भेद से दो प्रकार के हैं। उनमे वीणा आदि के शब्द को तत और ढोल आदि के शब्द को वितत कहते है। मजीरे और तार आदि के शब्द को घन और बासुरी आदि के शब्द को सुषिर कहते है। कहा भी है कि:—

तत बोणादिक ज्ञेय वितत पटहादिकम्।
घन तु कांस्यतालादि सुषिरं वशादिकं विदुः ॥१॥

इस श्लोक मे कहे हुये क्रम से प्रायोगिक शब्द चार प्रकार के हैं। विश्रुसा अर्थात् स्वभाव से होने वाला वैश्रसिक शब्द बादल आदि से होता है वह अनेक प्रकार का है।

विशेष—शब्द से रहित निज आत्मा की भावना से छूटे हुये तथा शब्द आदि मनोज्ञ अनमोज्ञ पच इन्द्रियो के विषयो मे आसक्त जीवो के दुस्वर तथा सुस्वर नामकर्म का जो बध किया है उस कर्मबध के अनुसार यद्यपि जीव मे शब्द दीखता है तो भी वह जीव के सयोग के निमित्त से व्यवहार नय की अपेक्षा जीव का शब्द कहा जाता है, पर निश्चय नय से वह शब्द पुद्गलमय ही है।

मिट्टी आदि के पिडरूप जो अनेक प्रकार का बध है वह तो केवल पुद्गल बध है और जो कर्मरूप कर्मबध है वह जीव और पुद्गल के सयोग से होने वाला बध है। विशेष यह है कि कर्मबध से उत्पन्न निजशुद्ध भावना से रहित जीव के अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से द्रव्य बंध है और इसी तरह अशुद्ध निश्चय नय से रागादि रूप भावबध कहा जाता है। यह भी शुद्ध निश्चयनय से पुद्गल का ही बध है। बेल आदि की अपेक्षा बेर आदि फलो मे सूक्ष्मता है और परमाणु मे साक्षात् सूक्ष्मता है। बेर आदि की अपेक्षा बेल आदि मे स्थूलता है। तीन लोक मे व्याप्त महास्कध मे सबसे अधिक स्थूलता है। समचतुरस्र सस्थान, न्यग्रोध-परिमडल, स्वाति, कुब्जक, वामन और हुण्डक ये छह प्रकार के सस्थान व्यवहार नय से जीव के होते हैं, किन्तु सस्थान शून्य चित् चमत्कार प्रमाण मात्र जीव से भिन्न होने के कारण निश्चय नय की अपेक्षा सस्थान पुद्गल के ही होते हैं।

जो जीव से भिन्न गोल त्रिकोण चौकोर आदि प्रकट अप्रकट अनेक प्रकार के सस्थान है वे भी पुद्गल ही हैं। गेहू आदि के चूर्ण रूप से तथा दाल खण्ड आदि रूप से अनेक प्रकार का भेद जानना चाहिये। दृष्टि को रोकने वाला अंधकार है उसको तम कहते हैं। पेड आदि की अपेक्षा से होने वाली तथा मनुष्य आदि की परछाई को छाया जानना चाहिये। चन्द्रमा के विमान तथा जुगुनू (खद्योत) आदि तिर्यंच जीवो मे उद्योत होता है। सूर्य के विमान मे

तथा अन्यत्र भी सूर्यकान्त मणि आदि पृथ्वीकाय मे होने वाले को आताप जानना चाहिये। सारांश यह है कि जिस प्रकार शुद्ध निश्चय नय से निजात्मा की उपलब्धि रूप सिद्धस्वरूप आकार मे स्वभाव व्यंजन पर्याय विद्यमान है. फिर भी अनादि कर्म बंधन के कारण पुद्गल के स्निग्ध तथा रूक्ष गुण के स्थान रूप रागद्वेष के परिणाम होने पर स्वाभाविक परमानन्द रूप एक स्वास्थ्य भाव से भ्रष्ट हुये जीव के मनुष्य नारक आदि विभाव व्यंजन पर्याय होती है उसी प्रकार पुद्गल मे निश्चय नय की अपेक्षा शुद्ध परमाणु दशा रूप स्वभाव व्यजन पर्याय के विद्यमान होते हुये भी स्निग्ध तथा रूक्ष से वध होता है। इस वचन से राग और द्वेष के स्थानीय, बंध योग स्निग्ध तथा रूक्ष परिणाम के होने पर पहले वताये गये शब्द आदि के सिवाय अन्य भी शास्त्रोक्त सिकुडना, फैलना, दही दूध आदि विभाव व्यजन पर्याय आदि को जानना चाहिये ।।८७।।

अत्तिया यमुर्तिया येळविरेशिया।
योत्तळ उलगि नोड्डुलग लोगमम् ।।
तत्तु बंदनै सैदु तन्म तन्ममा।
मत्तिगळ् शेल वोड्डु निलयिर् केदुवाम् ।।८८।।

अर्थ—अस्ति स्वरूप से युक्त अमूर्त्त तथा असख्यात प्रदेश से युक्त यह आत्मा लोक जितना प्रमाण है उतने लोक मे उतने प्रमाण भरे हुये धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय इस जीव और पुद्गल के गति–स्थिति में सहायक रूप होते हैं।

भावार्थ—आचार्य ने इस श्लोक मे धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय का स्वरूप बतलाया है कि जीव तथा पुद्गल को चलने मे सहकारी धर्म द्रव्य होता है। इसका दृष्टांत यह है कि जैसे मछलियों के गमन मे जल सहायक है, परन्तु स्वय ठहरे हुये जीव पुद्गलो को धर्मद्रव्य गमन नही कराता तथापि जैसे सिद्ध भगवान अमूर्त्त है क्रिया रहित हैं, तथा किसी को प्रेरणा भी नही करते, तो भी, "मैं सिद्ध के समान अनन्त ज्ञानादि गुणरूप हूँ" इत्यादि व्यवहार से सविकल्प सिद्ध भक्ति के धारक और निश्चय से निर्विकल्प ध्यान रूप अपने उपादान कारण से परिणत भव्य जीवो को वे सिद्ध भगवान् सिद्ध गति मे सहकारी कारण होते हैं। ऐसे ही क्रिया रहित, अमूर्त्त, प्रेरणा रहित धर्म द्रव्य भी अपने अपने उपादान कारणो से गमन करते हुये जीव तथा पुद्गलो को गमन मे सहकारी कारण होता है। जैसे मत्स्य आदि के गमन मे जल आदि सहायक कारण होने का लोक प्रसिद्ध दृष्टात है। इस तरह धर्म द्रव्य के व्याख्यान के साथ यह गाथा समाप्त हुई।

साराश यह है कि—पुद्गल तथा जीवो को ठहरने मे सहकारी कारण अधर्म द्रव्य है जिसका दृष्टांत इस प्रकार है कि जैसे छाया पथिको के ठहरने मे सहकारी कारण है, परन्तु स्वय गमन करते हुये जीव व पुद्गलो को अधर्म द्रव्य नही ठहराता। ऐसे ही निश्चय नय से आत्म-अनुभव से उत्पन्न सुखामृत रूप जो परम स्वास्थ्य है वह निज रूप मे स्थिति का कारण है परन्तु "मैं सिद्ध हूं, शुद्ध हूँ, अनन्त ज्ञान आदि गुणो का धारक हूं, शरीर प्रमाण हूँ, नित्य हूँ, असख्यात प्रदेशी हू, तथा अमूर्तिक हूँ। इस गाथा मे कही हुई सिद्ध भक्ति के रूप से पहले

सविकल्प अवस्था में सिद्ध भी जैसे भव्य जीवो के लिये वहिरग सहकारी कारण होते है उसी तरह अपने २ उपादान कारण से अपने आप ठहरते हुये जीव पुद्गलो को अधर्म द्रव्य ठहरने का सहकारी कारण होता है। लोक व्यवहार से जैसे छाया अथवा पृथ्वी ठहरते हुये यात्रियो आदि को ठहरने मे सहकारी होते है उसी तरह स्वय ठहरते हुये जीव पुद्गलो के ठहराने मे अधर्म द्रव्य सहकारी होता है। इस प्रकार अधर्म द्रव्य के कथन द्वारा यह गाथा समाप्त हुई। ।।८८।।

अरुवदाम् पोरुलुलगत्तु विल्लये।
लळविला कायेत्ति लनु वकळोड्डुइ ।।
रळवला विड्रिये येगंड्ु पोप पिन् ।
नुळवल कसु वीडुलग तोडमे ।।८९।।

अर्थ—धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय न होने से अनत रूप आकाश मे तथा अणुरूप मे रहने वाली कर्मवर्गणा उस आकाश मे अ गुरूप होने वाले कर्म परमाणु के साथ जीव परस्पर न मिलने से इस जगत मे लोक, वंध, मोक्ष सभी का अभाव हो जायगा ।।८९।।

अच्चु नीर् तेरोडु मीनै ईर्तिडुं।
अच्चु नीर् इंड्रिये तेरुमीन्सेला ।।
वच्चु नीर् पोल तन्मत्ति शेरलै।
इच्चे युं मुपच्चिच यु मिड्रि याकुमे ।।९०।।

अर्थ—जिस तरह गाडी चलाने के लिये रथ मे लोहे की धुरी सहायक होती है उसी प्रकार जीव और पुद्गल के गमन के लिये धर्मास्तिकाय सहायक होता है। इसके अतिरिक्त कोई अन्य सहायक नही होता।

भगवान् स्वम्भू राजा वैजयन्त को यह बतला रहे हैं कि हे भव्य शिरोमणि! जीवादि द्रव्यो को अवकाश देने की योग्यता जिस द्रव्य मे है उसको श्री जिनेन्द्र भगवान् ने आकाश द्रव्य कहा है। वह आकाश लोकाकाश और अलोकाकाश इन दो भागो मे है। अब इसको विस्तार के साथ कहेंगे। स्वभाविक शुद्ध सुखरूप अमृतरस के आस्वाद रूप परम समरसी भाव से परिपूर्ण तथा ज्ञान आदि अनन्त गुणो के आधारभूत जो लोकाकाश प्रमाण असख्यात प्रदेश अपनी आत्मा के है उन प्रदेशो मे यद्यपि विश्ववन्द्य सिद्ध जीव रहते है तो भी औपचारिक असद्भूत व्यवहार नय की अपेक्षा से सिद्ध मोक्ष शिला मे रहते हैं, ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार पूर्व मे कहा जा चुका है।

ऐसा मोक्ष वही है और कही नही होता। ध्यान करने के स्थान मे कर्म पुद्गलो को छोड़कर तथा ऊर्ध्वगमन स्वभाव से गमन कर मुक्त जीव ही लोक के अग्रभाग मे जाकर

निवास करते हैं। इस कारण लोक का अग्रभाग भी उपचार से मोक्ष कहलाता है। जैसे कि तीर्थभूत पुरुषो के द्वारा सेवित भूमि पर्वत आदि स्थान उपचार से तीर्थ होते है। यह वर्णन सुगमता से समझाने के लिये किया गया है। जैसे सिद्ध अपने प्रदेश मे रहते हैं उसी प्रकार निश्चय नय से सभी द्रव्य अपने-अपने प्रदेशो मे है तो भी उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से लोकाकाश मे सब द्रव्य रहते हैं।।६०।।

अंदर दरवत्त् भूंड्रदागिय।
विंदर पडलमुं निरैय मेळ्गळुस्।।
मंदर मलै मण्गुमत्त् निंड्रडा।
वंद मिनिलय तन्मत्ति इल्ल येल्।।६१।।

अर्थ—अन्त रहित अधर्मास्तिकाय यदि नहीं रहेगा तो आकाश मे रहने वाले स्वर्ग अर्थात् १६ स्वर्ग, ७ नरक मेरु पर्वत, कुल गिरि पर्वत तथा पृथ्वी आदि सभी वस्तुओ का अभाव हो जाएगा। यदि यह अधर्म द्रव्य नही होगा तो यह कभी स्थिर नही रह सकेंगे।।६१।।

परवै इन् सिर गीडु पाद निंड्ळि।
नेरियि नार् शेलवोडु निलयै याकुमा।।
लुरवि पुर्कल मिवैयोड निट्रलै।
शेरिवुरि तम्म तम्मतुत्ति सेय्युमें।।६२।।

अर्थ—पक्षी के उडने के लिये जैसे पख आदि तथा खडे होने के लिये पाव निमित्त होते हैं उसी प्रकार जीव के गमन स्थिरता के लिये धर्मास्तिकाय एव अधर्मास्तिकाय सहायक हैं।।६२।।

अळविड्रि येत्ति याय मूर्ति यादिया।
युळवेंड् पोरुट्रकेळा मिडङ् कोडुत्त्डन्।।
ट्रलर् विड्रि निर्पदा कामं साविना।
लळविला कालत्तोड जीवनेंदुमे।।६३।।

अर्थ—असख्यात अस्ति स्वरूप रहने वाले अमूर्तिक तत्व, अति सूक्ष्मत्व, अगुरु लघुत्व, अवगाहन, लघुत्व इन गुणो को प्राप्त करके इस लोक मे रहने वाले सभी जीवो को अवगाहन शक्ति देने वाला आकाश द्रव्य है। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाच अजीव द्रव्य है।।६३।।

करणं वळिवुइपुं तोव मिलवमे नाळि मूळ्त ।
मिनइ नाळ् पक्कं तिगं लिरदु वे ययन मांडु ।।
पनै युगं पूर्वं पल्ल पव्वमे येनंद मीरा ।
करण मुदर् काल भेदम् सोल्लरिर् काल मिल्लै ।।६४।।

अर्थ—कालद्रव्य—एक निश्चय और एक व्यवहार ऐसे काल के दो भेद है। जो द्रव्य परिवर्तन रूप है वह व्यवहार रूप काल है । ऐसा कैसे है ? सो बतलाते हैं । परिणाम, क्रिया, परत्व अपरत्व से जाना जाता है । इसलिये परिणाम आदि से लक्ष्य है ।

निश्चय काल—जो वर्तना लक्षण वाला है वह परमार्थ काल है ।

विशेषार्थ—जीव तथा पुद्गल का परिवर्तन रूप नूतन तथा जीर्ण जो पर्याय है उस पर्याय का समय घड़ी आदि रूप स्थिति है स्वरूप जिसका वह द्रव्य पर्याय रूप व्यवहार काल है । अर्थात् जो स्थिति है वह काल सज्ञा है, द्रव्य की पर्याय को सम्बन्ध रखने वाली जो यह समय घड़ी आदि रूप स्थिति है वही व्यवहार काल है । पर्याय व्यवहार काल नही है, क्योकि पर्याय सम्बन्धी स्थिति व्यवहार काल है । इसी कारण जीव और पुद्गल के परिणमन रूप पर्याय से तथा देशातर मे आने जाने रूप अथवा गाय दुहने व रसोई करने आदि हलन चलन रूप क्रिया से तथा दूर या समीप देश मे चलन रूप काल कृत परत्व तथा अपरत्व से एक काल जाना जाता है । इसलिये यह व्यवहार काल परिणाम क्रिया परत्व तथा अपरत्व लक्षणवाला कहा जाता है ।

अब द्रव्य रूप निश्चय काल को कहते हैं.—

अपने २ रूप उपादान कारण से स्वय परिमणन करते हुये पदार्थों को जैसे कुंभकार के चाक के भ्रमण मे उसके नीचे की कील सहकारिणी है तथा जैसे शीतकाल मे पढने के लिये अग्नि सहकारिणी है उसी प्रकार पदार्थों के परिणमन मे भी काल सहकारी है । उसको वर्तना कहते है । वर्तना ही लक्षण है, जिसका-वह वर्तना लक्षण कालानुद्रव्य रूप निश्चय काल है । इस तरह व्यवहार तथा निश्चय काल का स्वरूप समझना चाहिये ।

यहा कोई ऐसा कहता है कि समय रूप ही निश्चयकाल है । उस समय से भिन्न कोई कालानुद्रव्य रूप निश्चयकाल नही है, क्योकि वह देखने मे नही आता । इसका उत्तर यह है कि समय तो काल ही की पर्याय है ।

प्रश्न—समय काल की पर्याय कैसे है ?

उत्तर—पर्याय का लक्षण उत्पन्न व नाश होता है । समय का भी उत्पन्न व नाश होता है, इसलिये पर्याय है । पर्याय द्रव्य के बिना नही होती । उस समयरूप पर्याय काल का उपादान कारणरूप द्रव्य भी कालरूप ही होना चाहिये । जैसे ईंधन अग्नि आदि सहकारिणी है तथा भात का सहकारी कारण चावल ही होता है, अथवा कुंभकार चाक चीवर आदि निमित्त कारण से उत्पन्न जो मिट्टी का बहिरग घट पर्याय है उमका उपादान कारण

मिट्टी का पिंड ही है। अथवा जो नर नारक आदि जीव की पर्याय है उसका उपादान कारण जीव ही है। इसी प्रकार घडी आदि का समय भी उपादान कारण काल ही होना चाहिये। यह नियम भी इसलिये है कि अपने उपादान कारण के समान ही कार्य होता है।

कदाचित् कोई ऐसा कहे कि समय आदि काल पर्याय का कारण काल द्रव्य नही है, किन्तु समय रूप काल पर्याय की उत्पत्ति मे मदगति से परिणमनशील पुद्गल परमाणु उपादान कारण है तथा निमेष काल पर्याय की उत्पत्ति मे नेत्रो के पुटो को अर्थात् पलक का गिरना व उठना उपादान कारण है। ऐसे ही घड़ी रूप काल पर्याय की उत्पत्ति मे सामूहिक रूप जल का कटोरा और पुरुष के हाथ आदि का व्यवहार उपादान कारण है। दिनरूप काल पर्याय की उत्पत्ति मे सूर्य का बिब उपादान कारण है। ऐसा नही कि जिस प्रकार चावल रूप उपादान कारण से उत्पन्न भात पर्याय के उपादान कारण मे प्राप्त गुणो के समान ही सफेद काला आदि वर्ण, अच्छी या बुरी गंध, चिकना अथवा रूखा आदि स्पर्श, मीठा आदि विशेष गुण दीख पडते है वैसे ही पुद्गल परमाणु नेत्र पलक विघटन, जल कटोरा, पुरुष व्यापार आदि तथा सूर्य का बिब इन रूप जो उपादान भूत पुद्गल पर्याय है उनसे उत्पन्न हुये निमेष घडी आदि मे यह गुण नही दीख पडते, क्योकि उपादान कारण के समान कार्य होता है, ऐसा समझना चाहिये।

विशेषार्थ—अधिक कहने से क्या लाभ ? जो आदि तथा अन्त से अमूर्त है, रहित है, नित्य है, समय आदि का उपादान कारणभूत है तो भी समय आदि भेदो से रहित है और कालानुद्रव्य रूप है वह निश्चय काल है, और जो आदि तथा अन्त से सहित है समय घड़ी आदि व्यवहार के विकल्पो से युक्त है वह उसी द्रव्यकाल का रूप व्यवहारकाल है। साराश यह है कि यद्यपि यह जीव काललब्धि के वश से विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव का धारक जो निज परम तत्व का सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, आचरण और सम्पूर्ण भाव द्रव्य की इच्छा को दूर करने रूप लक्षण वाला, तपश्चरण रूप, दर्शन ज्ञान चरित्र तप रूप निश्चय चार आराधना है, वह आराधना ही उस जीव को अनन्त सुख की प्राप्ति मे उपादान कारण ही जानना चाहिये। उसमे काल उपादान कारण नही है। इसलिये वह उपादान कारण हेय हैं। आचार्यों ने व्यवहार कालका विवेचन इस प्रकार किया है कि काल द्रव्य एक स्थान को छोड कर दूसरे स्थान मे जाने को समय कहते है। वह समय असख्यात समय मिलकर एक आवली होता है। असख्यात आवली मिलकर उच्छ्वास होता है। सात उच्छ्वास मिलकर एक स्तोक होता है। सात स्तोक मिलकर एक लव होता है, ३८ लव मिलकर एक घडी होती है, दो घडी मिलकर एक मुहूर्त्त होता है, तीस मुहूर्त्त मिलकर एक दिन होता है, १५ दिन मिलकर एक पक्ष तथा दो पक्ष मिलकर एक मास होता है। दो मास मिलकर एक ऋतु होती है, तीन ऋतु मिलकर एक अयन होता है। दो अयन मिलकर एकवर्ष होता है। पाच वर्ष मिलकर एक युग होता है। ८४ हजार वर्ष मिलकर एक पूर्व होता है। असख्यात पूर्व मिलकर एक पल्य होता है। दश कोडाकोडी पल्य मिलकर एक सागर होता है। इस प्रकार काल के अनन्त भेद हैं। समय कम होने वाला कोई काल भेद नही है ॥६४॥

अरुडेळि वार्वम् सिदै येळगिय निगळ् चिज्ञानं ।
पोरुवरु तवत्ति नालु पुणिदना मुइरै पुक्कु ॥

मरुविय विनैगळ् माट्रा मासिमे कळुवि वीटै ।
तरु दलार् पुरिगद मागु तन्मे यार् पुण्णिय मामे ।।९५।।

अर्थ—करुणा और समता भाव से युक्त रत्नत्रय मे श्रद्धा सहित ध्यान के प्रभाव तथा प्रशस्त परिवर्तन और सम्यग्ज्ञान की वृद्धि से उपमा रहित पवित्र परिणाम भाव के द्वारा पुण्योपार्जन किया हुआ भव्य जीव के आत्म स्वरूप को प्राप्त कर पहले जन्म के आत्मा के साथ लगे हुये कर्म समूह को नाश कर मोक्ष को देने वाला दो प्रकार का पुण्य है । एक भाव पुण्य और दूसरा द्रव्य पुण्य ।

भावार्थ—आचार्य ने इस श्लोक मे द्रव्य पुण्य और भाव पुण्य का वर्णन किया है । दया और करुणा से युक्त रत्नत्रथ सहित रुचि पूर्वक ध्यान करने वाला तथा उम परिणाम से होने वाले सम्यक्ज्ञान की वृद्धि से पवित्र पुण्यबध के कारण से अनादि काल से आत्मा के साथ लगे हुये कर्म समूह को नाशकर मोक्ष को देने वाला है । यह भाव पुण्य है ।

द्रव्य पुण्य—दर्शन अधिकार मे श्री समन्त भद्राचार्य ने इस प्रकार कहा है कि:—

देवेन्द्र—चक्रमहिमानममेयमानम्, राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोर्चनीयम् ।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकम, लब्ध्वा शिव च जिनभक्तिरुपैति भव्यः ।।

अर्थात्—श्री जिनेन्द्र भगवान् का भव्य भक्त, अपरिमित देवेन्द्रो के समूह मे महत्, राजाओ के मस्तक से पूजनीय, राजाओ के इन्द्र चक्रवर्ती के चक्ररत्न तथा तीन लोक को दास बना लेने वाले रत्नत्रय अथवा उत्तम क्षमादि धर्म के इन्द्र अर्थात् प्रणयन करने वाले तीर्थंकरो के चक्र को प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त करता है । ऐसा निदान रहित पुण्य अन्त मे क्रम से मोक्ष को देने वाला है । इसको द्रव्य पुण्य कहते हैं ।।९५।।

सादमे पुरुषवेदं सम्मत्तं तक्क नामं ।
कोदमे लाय देवर् मानव रायु वाळ् ।।
पोदमे पोरुकोडिनुवम् पुगळ्चि मीकूट्र मन्नर् ।
घाति या तन्मै नलगि यरवर शाकु मन्ना ।।९६।।

अर्थ—हे राजा वैजयन्त! यह पुण्य साता वेदनीय कर्म, पुरुष वेद, सम्यक्त्व नाम कर्म, उच्च गोत्र, देवायु, सम्यग्ज्ञान, यश, कीर्ति तथा सुख को देने वाला चक्र का आधिपत्य सापद को देता है ।

भावार्थ—कुछ लोग केवल निश्चय नय को लेकर व्यवहार नय को विल्कु करके मोक्ष प्राप्ति का साधन बतलाते हैं तथा अध्यात्मप्राप्ति करना चाहते है । प धर्म मे निश्चय और व्यवहार दोनो नयो के अवलम्बन से मोक्ष की प्राप्ति माना है ।

नय कारण है और निश्चय नय कार्य है। कारण व कार्य के बिना किसी वस्तु की सिद्धि नही हो सकती। कुछ लोग श्रावक की षट्कर्म की क्रिया को श्रावक अवस्था मे आडम्बर समझकर उसका लोप करके केवल अध्यात्मवाद की ही चर्चा करते है। कहा भी है कि —

गृहकर्मणापि निचितं कर्मविमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथीनाम् प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ॥रत्नकरण्ड०॥

अर्थ—सावद्य व्यापार से रहित, अतिथियो मुनियो को दान, निश्चय ही साधक व्यापार से उपार्जन किये हुये पाप रूप कर्म को नष्ट कर देता है। जैसे अपवित्र पानी भी खून को धोकर साफ कर देता है उसी प्रकार मुनियो अथवा उत्तम पात्रो को दान देने से गृहस्थ सम्बन्धी सचित कर्म नष्ट हो जाते है।

भावार्थ—तपस्वियो को प्रणाम करने से उच्च गोत्र, दर्शन शुद्धि स्वरूप यथा विधि दान देने से भोग सामग्री, प्रतिग्रहण पडगाहने आदि से प्रतिष्ठा, गुणानुरूप से उत्पन्न अन्तरग श्रद्धा से सुन्दर रूप और भक्तामर स्तोत्र सकल ज्ञेय इत्यादि स्तुति करने से सर्वत्र कीर्ति प्राप्त होती है ॥६६॥

घाति यु ं करुणं इन्मै यादि यार् कट्टिनिड्ं ।
वेदनै मुदलवेल्लाम् वेंतुयर् विळैक्कुं पाव ॥
मोदिय विरंडुम् योगि नुयिरिनै युरुदलुट्रां ।
दादुर काईदूं पोळ्दिर् रानुरु नीरै योत्तो ॥६७॥

अर्थ—घाति कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले अकारण अप्रसन्नत्व अगुरुनाम राग अर्थात् दुर्ध्यान प्रवृत्ति, अप्रशस्त प्रवृति, अज्ञानवृद्धि, कुतप प्रयोग आदि से पिछले जन्म मे बधे हुये अशुभ कर्मों के योग से असाता वेदनीय आदि कर्म घोर नरक के दुःख को उत्पन्न करने वाले हैं, इसलिये इसको पाप पदार्थ कहते है। उपरोक्त पुण्य पदार्थ और पाप पदार्थ दोनो मिलकर ससारी जीवो को शुभाशुभ ससार के बधन करने वाले है। जिस प्रकार लोहे के गोले को तपाकर पानी मे डाला जाय तो वह पानी को भस्म कर देता है उसी प्रकार आत्मा रागी द्वेषी परिणामो को अपने मे खीचकर कर्म बन्ध को प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ—ग्रन्थकार ने यहा पुण्य और पाप का विवेचन किया है। पुण्य अनेक प्रकार के साता वेदनीय कर्म को प्राप्त कर लेता है और पाप अनेक प्रकार के ससार को प्राप्त करने वाले पाप को प्राप्त करता है। ये दोनो मिलकर ससारी जीव को पाप और पुण्य मे परिणत करके दीर्घकाल तक भ्रमण के लिये कारण बना देते है। जिस प्रकार लोहे के गोले को अग्नि मे तपाकर पानी डालने पर वह पानी को सुखा देता है उसी प्रकार यह आत्मा अशुभ परिणामो से शुभाशुभ ससार बधन मे बधकर दीर्घकाल तक ससार मे भ्रमण करता रहता है ॥६७॥

ईनमे यदिग मीरा पदगमे सांपरायं ।
ज्ञानमिन्मे नल्लवाम् पुण्णिय पावं ।।
तेनुला मलगल् वेंदे तविय में पावमेंड्र् ।
तानेला वुइकुं मागुमुट्रिवै ताम्पत्तागुं ।।६८।।

अर्थ—कठ मे अत्यन्त सुगन्धित पुष्पो का हार धारण किये हुये भव्य शिरोमणि हे राजा वैजयन्त ! सुनो । आस्रव के दश भेद होते है । अशुभ आस्रव, हीन आस्रव, अधिक तथा ईर्यापिथ, कपाय आस्रव, अज्ञान आस्रव, पुण्य आस्रव, पाप आस्रव, द्रव्य आस्रव और परिणाम आश्रव । ये सभी ससारी जीवो के लिये होते है ।

भावार्थ—हे भव्य शिरोमणि राजा वैजयन्त! हीन आस्रव, कषाय आस्रव, अशुभ आस्रव, पाप तथा पुण्य आस्रव द्रव्य आस्रव आदि १० प्रकार के आस्रव सभी जीवो के होते है । ये अशुभ आस्रव क्रोध कषाय के हीन, मदतर अथवा कषाय के परिणाम तीव्र हो ता कपाय आस्रव होता है । ईर्यापथ आस्रव मुनियो को होता है । सर्वदा ईर्यापिथ सहित यत्नाचार पूर्वक चलते समय कदाचित् जीव मर भी जाय तो उससे लगनेवाले पाप का निवारण भी ईर्यापिथ साधन ही है । अर्थात् उसमे यत्नाचार पूर्वक क्रिया होनेके कारण कदाचित् उनके द्वारा होनेवाले आस्रव ईर्यापिथ आस्रव है और कषाय युत होनेवाले आस्रव कपाय आस्रव होते है । ज्ञान आस्रव, अज्ञान आस्रव, पुण्य आस्रव, पाप के द्वारा होनेवाला पाप आस्रव, द्रव्य के द्वारा होनेवाला द्रव्यास्रव परिणाम के द्वारा होनेवाला परिणामास्रव होता है ।

आचार्य ने इस श्लोक मे यह बतलाया है कि इन आनेवाले आस्रवो को रोकने के लिये तीन गुप्ति, पाच समिति, दशधर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बारह सयम, बाईस परीषह, आदि का पालन करना आवश्यक है । इनको जीतनेवाले महाव्रती मुनि शुद्धोपयोग मे लवलीन होकर निश्चल ध्यान मे आनेवाले आस्रव के मार्ग को रोकने से जिस प्रकार दीपक के रहने से अन्धकार नही आता उसी प्रकार ऐसे महा तपस्वियो को ही सवर पदार्थ प्राप्त होता है ।। ६८ ।।

कोपनं समिति तम्म सिंदैईरारडक्कं ।
तापनं परिषै वेल्लुं तन्मै यान् मुनिव निड्राल् ।।
वेप मोड्रिलाद सिंदै विनै वळि विलक्कि निकुं ।
दीप निड्रगत्तो सेरु मिरुकुंदो सेरिप्पि दामे ।।६६।।

इन आस्रवों के द्वार को बन्द करने का मार्ग:-

अर्थ—तीन गुप्ति, पाच समिति, दशधर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बारह सयम, बाईस परीषह आदि को जीतनेवाले वीतराग युक्त महामुनि को शुद्धोपयोग मे लीन होने से हलन-

चलन रहित ध्यान कर्मास्रव आने के मार्ग को रोककर जिस प्रकार दीपक के प्रकाश होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार महाव्रतियो को उक्त प्रकार सहनन करने से संवर की प्राप्ति हो जाती है ॥ ६९ ॥

निड्रवंदार्त्तन् मूंड्र् निनप्पुरार् उदिप्पै याकु ।
मुंबु सें ड्र् इर्क निड्र विनयिन् कन् मूळ्त मादि ॥
निड्रवत्तिदिनोडु पयन् सेय्युमाट्रलुइक्कु ।
मोंड्रिय वगैनाले करांदोरु मुरुवत्तारोय् ॥ १०० ॥

अर्थ—हे राजा वैजयन्त ! ऊपर कहे श्लोक मे बारह प्रकार का संयम, बारह प्रकार की अनुप्रेक्षा, बाईस प्रकार का परीषह,धर्मध्यान, शुक्लध्यान ये सब उत्कृष्ट सम्यग्ज्ञान से उत्पन्न होते हैं। पहले आत्मा से मिले हुये ज्ञानावरणादि आठ कर्म एक महूर्त्त से अधिक रहनेवाली कर्मस्थिति से कर्मफल को देता है। यह कर्म तत्त्वज्ञान ध्यान मे मिश्रित होकर एक-एक समय मे उदय मे आता है ॥ १०० ॥

अनंतमा मनुक्कळ् कूडियेंगुलि ययंगं पागिर् ।
गुणंगळार शेरिय कट्टि गुणंगळोडाट्रन् मूंड्रिर् ॥
ट्रणंदिडादेयंग लोक पेदर्शमाम् समय काल ।
मनंतमा लोगयेल्लाम् वर्गण रूपत्ताले ॥ १०१ ॥

अर्थ अनेक परमाणु मिलकर अगुल के एक भाग क्षेत्र मे स्निग्ध रूक्ष गुणो से बधा हुआ वर्णादि गुणो से स्वभाव उपलब्धि सस्कार नाम की त्रिशक्ति मे स्थिर होकर उत्कृष्ट स्थिति से असख्यात लोक प्रमाण समय कार्य और जघन्य स्थिति से एक समय को प्राप्त होना काल सम्पत्ति है। सम्पूर्ण लोक मे कार्माण वर्गणा है और एसे कार्माण अनन्त हैं ॥ १०१ ॥

योगमेपांव तानु मुंर्डनिड्र डइरिण् योगिन् ।
वेगंदान् मूलमागिविगर्पमाम्विरिद गंदम् ॥
योगत्तालुइर्प देशतोर्ळिविड्रि योप्प सेंड्रार् ।
पाग मुर्दिदियु पावत्तार् बंधमामे ॥ १०२ ॥

अर्थ—मन वचन काय के द्वारा भाव परिणामो से मिले हुये आत्मा के मन वचन काय की तीव्रता के कारण नाना विकल्पो से विशाल प्रकृतिबध आत्मप्रदेश मे सदैव परस्पर मे मिले हुये हैं अर्थात दूध और पानी मिलकर एक होने के समान कर्मास्रव मिलकर आत्मा और शरीर दोनो एक रूप मे प्रतीत होते हैं। मोहनीय कर्म के परिणाम मे अनुभागबध और स्थिति बंध होते हैं ॥ १०२ ॥

एळु मूड्रिरंडु पत्ताक्क रिदंन कोडाकोडि ।
याळिगळागुमांड्र निलयेल्ल तंद मूळतं ।।
मोळै मोवात्तिनुक्कु मुदल् मुम्मै ईड्रिनुक्कु ।
माळिय नामगोद तायुमुप्पत्तु मूंड्रे ।। १०३ ।।

अर्थ—अज्ञान रूपी मोहनीय कर्म का काल सत्तर कोडाकोडी सागर, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय व अन्तराय का तीस कोडाकोडी सागर, नाम, कर्म व गोत्र का उत्कृष्ट काल बीस कोड़ाकोड़ी सागर, आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर होती है। मध्यम स्थिति अनेक प्रकार है ।। १०३ ।।

नंजन उरैक्कुं पावं नल्विनै नाविलियट्ट ।
वंजुवेयमिर्दम् पोल विन्वतै याकुमाट्ट ।।
पुंजिय पंद संद उदय मोडुर्दिचि याकि ।
एंजिना लुदयं चैदिट्टप्पय नाकुमण्णा ।। १०४ ।।

अर्थ—हे राजा वैजयन्त ! पापानुबन्धी पाप जीव को विष के समान परिणामों के अनुसार सदैव उत्पन्न होता रहता है। जीव के अग्र भाग मे रखे हुये अमृत के समान अधिक सुख देनेवाले ये पुण्य कर्म हैं, और पुण्यानुबंधी पुण्य कर्म से इस बंधे हुये कर्म की निर्जरा करके द्रव्य क्षेत्र काल भाव और भव ऐसे पांचो के उदय मे आकर उस स्थिति के अनुसार कर्मफल को उत्पन्न करता है ।। १०४ ।।

योगमे पावंतम्म लुइरिनै यार्त कम्मं ।
योगमे पावंताम् बंदुइरिनै युट्र पोळ् निन् ।।
योगमे पांव तमु मुइरिन् कन् विड्दल् वीडाम् ।
योगमे पांच तम्मु लुवंदेळु मरस वेंड्रान् ।। १०५ ।।

अर्थ—हे भव्य शिरोमणि राजा वैजयत ! यह शुभाशुभ आस्रव मन वचन काय मे आत्मा के बंधे हुये कर्मो को शुद्ध निश्चय नय से तथा शुद्ध परिणामो का आत्मा मे प्रवेश करने एव शुभाशुभ मन वचन के परिणाम का आत्मा से छूट जाने को भावमोक्ष कहते हैं। इस प्रकार से शुद्ध निश्चयरूप मन वचन काय रूप परिणामो मे आनन्दित होकर इस माग से चलने से ससार से पार हो सकेगा। इस प्रकार स्वयम्भू तीर्थंकर ने राजा वैजयन्त को उपदेश दिया ।। १०५ ।।

विनयर विट्टु पोळ्दिन् बेडित्त वेरंडम् पोल ।
जिनैवरु गुणंगलेट्टु निरैंदुनीरोक्कि ओडि ।।

मुनिवरु मुळग मूंड्र निरैज मूवुलग नुच्चि ।
कनैकळलरस निट्रल् चैवलमांगु कडाय् ।। १०६ ।।

हे धीरवीर राजन् वैजयत! ज्ञानावरणीय,दर्शनावरणीय मोहनीय और अंतराय इन कर्मो का आत्मा से छूटते समय जिस प्रकार एरण्ड का वीज सूखने पर उछलते समय ऊपर जाता है,उसी प्रकार सम्पूर्ण घातिया व अघातिया कर्मो का नाश होते ही अनन्त ज्ञानादि गुणो से युक्त यह आत्मा उर्द्ध्वगमन करता है अर्थात् सिद्ध लोक मे विराजमान होता है। इस संसार मे घोर तपश्चरण करने वाले भव्य तपस्वियो के कर्मो की निर्जरा होते ही तीन लोक के ऊपर रहने वाले सिद्धक्षेत्र के शिखर पर जाकर विराजमान होता है। इसको द्रव्य मोक्ष कहते हैं।

भावार्थ—ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, मोहनीय और अतराय इन चार कर्मो का नाश होने से केवल ज्ञान उत्पन्न होता है। आठो कर्म तथा शरीर के नाश होने से जो सम्पूर्ण गुणो का विकास होता है वह भाव मोक्ष है। तथा आठो कर्मो के छूटने को द्रव्य मोक्ष कहते है ।। १०६ ।।

उरेत्तविप्पोरुळिन् मै मै युनर्वदु नल्लज्ञानं ।
पुरैप्पर तेळिदल् काक्षि पोरुंदिय विरंदु मोंड्रिर् ।
ट्रित्तनल् लोळुळ् मागुं साट्रियमूंड्र मोंड्रिन् ।
विरै पोलि तारोय् वीटिन् मैनेरि यावद मे ।। १०७ ।।

स्वयम्भू भगवान फिर कहते हैं कि हे राजा वैजयंत ! पीछे कहे जीवादि तत्त्वो का भली प्रकार श्रद्धान करना सच्चा सम्यक् दर्शन है। जीवादि तत्त्वो को सशय रहित ठीक तौर पर समझना सम्यक् ज्ञान है तथा उसी को अच्छी तरह समझ कर आचरण करना यह सम्यक्-चारित्र है। इन तीनो की एकता होना ही आत्मा का स्वरूप है और ये ही मोक्ष मार्ग है। व्यवहार नय की दृष्टि से इस ही के तीन मार्ग वतलाये हैं और वे तीन मार्ग है सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। इन तीनो को भिन्न २ समझना यह व्यवहार मार्ग है और निश्चय रूप से इन तीनो मे एक-आत्म-रूप परिणत होना निश्चय मोक्ष मार्ग है ।। १०७ ।।

येळु तरु परुदि मुन्न रिरंजिय कमलं पोल ।
तोळु देदिर् मुळुदुं केदु पोइनगर तुन्मी सोट्र ।।
मुळदयु मळैत्ता मुत्ति करसनाय मुयल्व नेंड्र ।
पळुदिला पुदल्वन् ट्रन्मेर् पारै वैत्तिनय सोन्नान् ।। १०८ ।।

जिम प्रकार सूर्योदय होते ही अधकार नष्ट हो जाता है और अधकार नष्ट होने पर कमलो की कली खिल जाती है उसी प्रकार भगवान की वाणी रूपी किरण ने वैजयत

राजा वैजयंत दरबार मे राज्यसिंहासन पर बैठे हुए अपने दोनो पुत्र संजयंत और जयंत को उपदेश दे रहे है।

राजा के हृदय मे प्रवेश किया और उनका अज्ञान रूपी अधकार नष्ट हो गया। अर्थात् आत्म-कली खिल गई। आत्म-ज्ञान की कली खिलते ही वह राजा वैजयत स्वयम्भू तीर्थंकर के चरणो मे नत मस्तक होकर उनके द्वारा कहे हुए जीवादि पदार्थों का स्वरूप भली प्रकार समझकर उनको बार २ नमस्कार करने लगा। वह राजा वैराग्य युक्त होकर वहा से लौटकर अपने राज महल मे आया और इष्ट मित्र बन्धु जन स्त्री पुत्रादि को बुलाकर इस प्रकार कहने लगा—

वैरागी मनुष्य के द्वारा अपने कुटुम्ब को उपदेश किस प्रकार दिया जाता है इसके सम्बन्ध मे आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचन सार मे बतलाया है कि जो मनुष्य विरागता धारण करके मुनि होना चाहता है वह पहले अपने कुटुम्ब के लोगो से पूछकर अपने को मुक्त करावे, जिसकी रीति इस प्रकार है।

भो कुटुम्बी जनो! आप अनेक क्षेत्रो मे कई २ बार भाई बन्धु माता पिता बहन भानजा आदि होते आए हो। मेरी आत्मा अलग है, आपकी आत्मा भिन्न है। ऐसा आप निश्चय समझे। मेरी आत्मा मे ज्ञान-ज्योति प्रकट हुई है। आप जन्म देने वाले मेरे शरीर के माता पिता हो। मेरी आत्मा को आपने उत्पन्न नही किया, इसलिये अब आप मेरे से ममत्व भाव छोड दो। मेरे मन को हरने वाली ऐ मेरी स्त्री! तू मेरी आत्मा के साथ, रमण नही करती अर्थात् प्रसन्न नही करती, यह निश्चय से जान। अब इस आत्मा मे ममत्व भाव छोड दे! आत्म-ज्ञान ज्योतिरूपी रमणी प्रकट हो गई है इसलिए अपनी अनुभूति रूपी स्त्री के साथ रमण करना स्वाभाविक बात है। हे मेरे शरीर के पुत्र! तू मेरी आत्मा से उत्पन्न नही हुवा, यह तू निश्चय से समझ ले। इस कारण तू अब मुझसे स्नेह करना छोड दे। आत्मा मे ज्ञान की झलक उत्पन्न हो गई है, और वही आत्म-झलक पुत्र है। इस कारण हे कुटुम्ब के लोगो, मित्रो, परिवार जनो मेरे से समत्व भाव छोड दो। इस प्रकार कहकर प्राणी माता पिता स्त्री पुत्र आदि कुटुम्बी जनो से अपना पीछा छुडावे। अथवा जो कोई जीव, मुनि दीक्षा लेना चाहता है तो वह तो जगत से विरक्त ही है। उनको कुटुम्ब से पूछने का कोई कार्य ही नही रहा। परन्तु यदि कुटुम्ब से विरक्त होवे और जब कुछ कहना ही पडे तब वैराग्य के कारण कुटुम्ब को समझाने को वचन निकालते है। यहा पर यह न समझना कि जो विरक्त होवे वह कुटुम्ब को राजी करके छूटे, यदि कुटुम्ब राजी न होवे तो न सही, अर्थात् ऐसा न होवे तो वह कुटुम्ब से कभी विरक्त हो ही नही सकता। इस सम्बन्ध मे कुटुम्ब से पूछने का नियम नही है परन्तु यदि कभी किसी जीव को मुनि दीक्षा धारण करते समय कहना ही होवे तो पूर्वोक्त उपदेश बचन निकलते हैं। इस प्रकार वैराग्य होने पर विरक्तता का उपदेश देकर ऊपर कहे अनुसार ससार से निकलने का प्रयत्न करो।

इसी प्रकार उपदेश के अनुसार वैजयत राजा कहने लगे कि हे स्त्री, पुत्र, बन्धु व अन्य कुटुम्बी जनो! सुनो—मैं अनादि काल से अभी तक मेरे निज आत्म-स्वरूप को न जानते हुए क्षणिक पचेद्रिय भोगो मे सुख मानकर अभी तक अनेक प्रकार के दुख मैंने सहे, ससार मे भ्रमण किया। अब मेरे अन्दर आत्म जागृति उत्पन्न हो गई है इस कारण इन क्षणिक ससार रूपी इन्द्रिय सुख को छोड कर अब मैं आत्म-साधना के मार्ग को अपनाऊगा। अब मोक्ष-मार्ग के धारण करने की भावना मेरी आत्मा मे जग चुकी है। ऐसा कहकर वह राजा वैजयन

अपने ज्येष्ठ पुत्र संजयत को बुलाकर और उसका राज्याभिषेक करके राजगद्दी पर बिठाय। और कुछ धर्मोपदेश करना प्रारभ किया ।। १०८ ।।

इळमयु मेळिलुं वाणत्तिडु विलिनींड मायुं ।
वळमयुं किळैयुं वारिप्पुदिय दन् वरवु पोलुं ।।
वेळिइडै विळक्किन् वीयु मायुउ मेंड्‌ु वीदु ।
कुळ_पग लूकं शैवारुनर् विनार् पेरिय नीरार् ।। १०६ ।।

हे सजयत ! सद्‌गुण सहित प्राप्त किया हुवा ज्ञान, मनुष्य जन्म, बाल अवस्था, सुन्दरता ! यह सब दीखने मे पहले पहल बडे सुन्दर लगते हैं, सब को आकर्षित करते है। जब इसकी मर्यादा पूर्ण हो जाती है तब आकाश मे इन्द्र धनुष के समान क्षणिक यह राज वैभव, पुत्र, कलत्र, बन्धु वर्ग इत्यादि सब अलग हो जाते हैं। जिस प्रकार जोर से वर्षा होने के बाद कूडा कर्कट सभी उसके साथ पानी के वेग से वह कर चले जाते है उसी प्रकार तीव्र पुण्य द्वारा प्राप्त हुवा यह क्षणिक वैभव तथा सभी मिली हुई सम्पत्ति आदि सर्व नष्ट हो हो जाती है। इस प्रकार मेरी आयु के नाश होने के पूर्व, मोक्ष मार्ग के साधन के लिये सर्वसघ का परित्याग करके मैंने मेरी आत्मा के कल्याण करने का सुविचार किया है ।।१०६।।

कडल्‌गळं मलैयुं काणं वानयुं कडल्‌गळ् सूळंद ।
तिडर् तिडर्‌गळं कयसुमारुं नाळिगै पुरुवंतीरा ।
पडुत्तुयर् नरग मेळं निगोदमुं पदेरामुन्न ।
रुडल्‌किडंदांळिदि डाद विडमिल्लै युनरि निड्रान् ।। ११० ।।

भली प्रकार से ज्ञानी जीव यदि उपरोक्त सभी वस्तुओ को यथार्थ ज्ञान द्वारा पूर्णतया विचार करके देख लेवे तो असख्यात समुद्र महा मेरु पर्वत देवारण्य, भूतारण्य आदि और अरण्य, देवलोक, समुद्र से घेरे हुए असख्यात द्वीप, पद्‌मादि सरोवर, गगादि नदी, त्रस नाली वाहुल क्षेत्र मे भ्रमण करते आए हैं। यह सभी असह्य दुख देने वाले है। सात नरक निगोद रूप होने वाली भूमि के प्रदेश मे हम पूर्व मे कितनी वार जन्म और मरण करते आए है। हमने कभी जहां जन्म न लिया हो ऐसा कोई क्षेत्र नही रहा, न ऐसा कोई पुद्‌गल परमाणु रहा जो न ग्रहण किया हो। वाल के समान कोई ऐसा स्थान नही रहा है, जहा जन्म न धारण किया हो। हमारी आत्मा अनादि काल से इसी प्रकार लोक मे भ्रमण करती आई है ।। ११० ।।

वेरु गुरु तुयंर लुइत्तु तिलगि नुन्मयंगुं पोळदुं ।
मरुवियां करुविन् मक्कळ् याकैन्द इन् वरुंदुम् पोळ्दुं ।।
एरियन नरगिन् मूळगि येळुंदु वीळ्‌दलरुं पोळदुं ।
अरुगण शरणमल्ला लरन् पिरिदिल्लै कंडाय् ।। १११ ।।

हमेशा भय को उत्पन्न करने वाली पशु व मनुष्य गतियो मे स्त्री के गर्भ मे नौ महिने दु ख को सहन करते समय और अग्नि के समान घोर नरक जैसे कूप मे से जन्म लेते समय सर नीचा और पाव ऊपर इस प्रकार होने वाले दुख से रुदन करते समय इस जीव को अर्हंत परमेश्वर के चरण कमल के सिवाय और कोई शरण नही होता है ।

भावार्थ— इस समय सत्य भावना के विरारो से ही मेरी आत्मा को लाभ होगा। मैंने अनादि काल से इस पचेद्रिय क्षणिक सुख के पीछे कितनी बार चौरासी लाख योनियो मे जन्म-मरण किया, अनेक पर्यायें धारण की, परन्तु उस पर्याय तथा योनि की जब मुझे याद आती है तो मेरी आत्मा कपायमान हो जाती है। इस कारण इस परिग्रह पिशाच को देखकर मेरी आत्मा मे भयानक भय सा मालूम होता है ।

हे कुमार ! जब पृथ्वी रूप मेरा जन्म था उस समय खोदना, विदीर्ण करना, कूटना, फोडना, पीसना, चूर्ण करना, इत्यादि बाधा देकर लोग मुझे सताते थे, अर्थात् पृथ्वीकाय अवस्था मे मैंने दीर्घकाल तक अवर्णनीय दुख सहे । जब मैंने जलकायिक शरीर धारण किया तब सूर्य की प्रचड किरणो तथा अग्नि की ज्वालाओ मे मेरा शरीर अत्यत गर्म होने से मैंने घोर वेदनाएँ सही । पर्वत की दरारे आदि ऊचे स्थान से अति वेग से नीचे मेरा पतन होते समय, कठिन शिलाओ पर टकराते समय मैंने घोर दुख सहन किया । खट्टा, मीठा, क्षार आदि पदार्थो का मेरे साथ जब मिश्रण करके अग्नि मे मुझे झोकते थे तो घोर दुख होता था । ऊची शिलाओ पर ऊचे २ वृक्षो पर से गिरने से, पाव और हाथो के सहारे नदी मे तिरने वाले मनुष्यो के हाथो से ताडते समय और बडे २ हाथी मेरे (जलकाय मे) अन्दर प्रवेश करने से स्नान करते समय और सून्ड से जल क्षोभ करते समय मुझे समान दु.ख होता था ।

वायुकाय—जब जल अवस्था का त्याग कर मैंने वायु रूप शरीर धारण किया तब वृक्ष आदि के हिलने, चीरने तथा उनके धक्का लगने से मैंने असह्य दु खो का अनुभव किया । जिसका शरीर अति कठिन है ऐसे प्राणियो के घात से तथा मेरे से भिन्न वायु से टकराने पर मेरा शरीर चूर चूर होकर बहुत दु खो को सहन किया । अग्नि ज्वालाओ से जब मेरा शरीर स्पर्श हुवा तब तो मेरे प्राण ही निकल गये ।

अग्निकाय—जब वायु शरीर को छोडकर अग्नि रूप शरीर को धारण किया तब मेरे ऊपर लोगो ने मिट्टी धूल डालकर मुझे बुझाया, घनघोर वर्षा पडने पर मूसल काष्ठादि से ठोक कर मेरा चूर्ण करके कष्टो का सामना करना पडा, मिट्टी के ढेले, पत्थर तथा वायु के झकोरो से मुझे असह्य दुख उठाना पडा ।

वनस्पतिकाय—जब अग्निकाय शरीर छोडकर मैंने पत्र पुष्प फल कोमल अकुर वाले शरीर को धारण किया तो लोगो ने ताडना, मर्दन करना, दातो से चबाना, अग्नि मे डालना इत्यादि दुख देना शुरू किया जिसको मैंने सहन किया । झाड लता पौधे, इत्यादि रूप मे जब मैंने जन्म लिया तब दुष्ट लोगो के द्वारा मैं छेदन भेदन किया गया जिससे मुझे घोर दुख सहना पडा । इस प्रकार के उन सभी दुखो को कहने मे तथा उनका वर्णन करने मे मैं असमर्थ हूँ ।

जब मैने कुन्थु जीव आदि पर्यायो मे शरीर धारण कर दो इन्द्रिय ते इन्द्रिय आदि मे जन्म लिया तव अत्यन्त वेग से चलने वालो गाडिया मोटर आदि वाहनो के नीचे आकर दबने से प्राणो का विसर्जन किया। इसके अतिरिक्त घोडे बैल आदि के खुरो के नीचे आने तथा अग्नि पानी का वेग मेरे पर गिरने व मनुष्यो के द्वारा कुचले जाने आदि २ से मुझे असह्य दुख भोगना पडा। उक्त पर्याय को छोडकर पचेन्द्रिय मे घोडा हाथी बैल आदि २ पर्याय मे जन्म लिया तब मनुष्यो द्वारा मेरे पर बोझा लादकर, मेरे ऊपर चढकर असह्य दुख दिया, मुझे लाठी चाबुक आदि से मारकर घोर कष्ट दिया। घास, दाणा, चारा आदि का न मिलना, सरदी गरमी वर्षा का सहना, कान, नाक छिदाना, नुकीली वस्तु से प्रहार करना इस प्रकार नीच व दुष्ट प्राणियो के द्वारा मैने अत्यन्त वेदनाएं सहन की। इसके अतिरिक्त पाव टूट जाने पर लगडा कर चलना, गिर पडना, तडपना क्रूर पशुओ द्वारा भक्षण होना, कव्वे गीध आदि नीच पक्षियो द्वारा नोच नोच खाया जाना, ऐसे घोरातिघोर कष्टो के समय मेरी रक्षा करने वाला भी कोई नही था। मेरी पीठ पर अधिक बोझा लादने से मैं जख्मी हो गया, जिसमे कीट लटे आदि पड जाने से विषैले जानवर मास नोच २ कर खाते थे। अब पापो का उपशम होने अथवा पूव जन्म के पुण्य सचय से मैंने मनुप्य पर्याय धारण की है। परन्तु इन्द्रियो की न्यूनता या दरिद्रता आदि असाध्य रोगो से मैंने महान दुख पाया अर्थात् द्ररिद्रता का अनुभव किया। प्रिय पदार्थ न मिलना, काटे, कीले आदि पदार्थो का सयोग होना, दूसरो की नोकरी करना, शत्रु से पराजय होना आदि २ दुखो से मैं बहुत ही व्याकुल बन गया था। धन कमाने को इच्छा से असह्य दुखदायक कर्माश्रव के कारण असि मसि आदि षट् कर्मों मे मैंने रात दिन प्रयत्न किया। ऐसे नाना प्रकार की विपत्तिया मुझे सता रही थी।

कुछ शुभोदय से देवगति मे जन्म हुवा तो वहा भी मैने यही दुख देखा कि यहा से दूर हटो, शीघ्र चले जावो, प्रभु के आने का समय है उनके प्रस्थान की सूचना देने का नक्कारा बजावो। और यह ध्वजा हाथ मे पकड कर खडे हो जावो। अरे दीन ! इन देवाङ्गनाओ की रक्षा कर, स्वामी की आज्ञानुसार वाहन रूप धारण कर ! अत्यन्त पुण्य रूपी धन जिसके पास है क्या तू ऐसे इन्द्र का दास है ? जिसके पास अतिशय रूप सामग्री है। क्या भूल गया है ? क्यो व्यर्थ खडा हुआ है। इन्द्र के आगे २ क्यो नही भागता ? इस प्रकार देवगति मे अधिकारियो के वचन सुन कर मुझे घोर अपमान सहना पडा। इन्द्र की अप्सराओ के समान सुन्दर सुन्दर देवाङ्गनाएं मुझे कब मिलेगी, यह अभिलाषा रही। मैने देव पर्याय मे रहकर ऐसा ही मानसिक दुख का अनुभव किया। इस प्रकार घोर दुख सहन करते २ मेरा दीर्घ काल चला गया।

अत परीषह उपसर्ग आदि दुख आने पर विषाद करने से कुछ भी लाभ नही होगा। खिन्न हुए पुरुपो को क्या कोई दुख छोड देगा ? यह दुख तो अपने ही कारण तथा निमित्त से हुआ है। ऐसा विचार कर उत्तम २ भावनाओ से उपसर्ग सहन करना चाहिये। यदि इस शरीर को देखकर भय उत्पन्न होता है तो ऐसा कहना भी उचित नही है; क्योकि मैने स्वय ही अशुभ शरीर असख्यात वार धारण किया है। देखा भी है। सारी पर्यायें मेरे परिचय मे है। अव इस समय उत्कृष्ट आर्य क्षेत्र कर्म भूमि मे, उत्तम मनुष्य कुल मे मेरा जन्म हुआ है और मुझे पचेद्रियो के अनुकूल सम्पूर्ण भोग सामग्री प्राप्त हुई है इसलिये अब इस शरीर के द्वारा कुछ आत्म-हित करने की भावना मुझ मे जागृत हो गई है। जितने भी

ससार मे पुत्र मित्र वन्धु वाधव है सब स्वार्थी है, पुण्य के उदय से यह सब सामग्री मुझे प्राप्त हुई है। पाप के उदय मे कोई साथ नही देते। केवल भगवन ही शरण है और कोई शरण नही है। इस प्रकार राजा वैजयत ने कुमार सजयत को उपदेश दिया ।।१११।।

इरंदनपिरवि मेना ळेन्नुदर् करियतम्मुट् ।
करदु कोंड्इरै युन्नुं कालन् वाय् पट्ट पोळ्दुं ।।
पिरंदु नान् गति कनान्गिर् पेरंदुय रुळक्कुं पोळ्दुं ।
तुरंदिडा विनैगळंड्रि तुनै पिरिदिल्लै कंडाय ।। ११२ ।।

इस प्रकार अनादि काल से अनेक योनियो मे जन्म मरण करते आए है उनकी गिनती मैं कहने मे असमर्थ हू। इस ससार मे यमराज नामक कर्म रूपी शत्रु द्वारा इस आत्मा को खीचकर चारो गति मे डालते समय वहा होने वाले असह्य दुखो से छुडाने वाला कोई स्नेही व वन्धु नही है। केवल एक धर्म ही सखा है। ऐसे समय मे और कोई सखा सहायक नही है। कहा भी है "धर्म सखा परम· परलोकगमने" अर्थात् परलोक मे जाते समय धर्म ही एक बन्धु है और कोई सहाई नही है ।। ११२ ।।

घातिग नान्गुं वींद कनत्तुळे कानळ् पाडि ।
लादियाय पिरिदिनाय वंड्रिडु मनंद नान्मै ।।
योदिनोर् वगैनाट्र लुइरिनान् मुंडिद मुन्ने ।
घातियामेघं सूळंद कदिरेन निंड्र कड्राय् ।। ११३ ।।

विभाव परणति द्वारा होने वाले ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन घातिया कर्मो को अपने शुद्ध आत्म स्वभाव के एकान्त ध्यान से नाश करते ही आत्मा मे अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति होती है। यह अनन्त चतुष्टय आत्म शक्ति से आत्मा मे उत्पन्न होते है। मेघ पटल जिस प्रकार सूर्य पर छा जाता है उसी प्रकार अनादि काल से आत्म रूपी सूर्य के ऊपर यह चार घातिया कर्म आच्छादित हुए है। अब इन घातिया कर्मों का उपशम होने से आत्म रूपी सूर्य जागृत होकर अपने प्रकाश से अपने निज स्वरूप को अनुभव करने लगा है ।। ११३ ।।

कुट्र मोर मूंड्रु नान्गु गतिगळिर पोरिगळंदिर् ।
पट्रिय कायमारिर् पळविनै तिरिओरेळिर् ।।
सुट्रिय विनयैगळिट्टीर् ट्रोट्रिय सुळत्ति कडाय् ।
कट्रवर् कडक्क वेन्नु माट्रिडु कडिको डारोय् ।। ११४ ।।

हे सजयत कुमार ! उत्तम सम्यक्दृष्टि ज्ञानी लोग उत्तम चारित्र को धारण करने की भावना भाते है। और मिथ्यादृष्टि जीव राग द्वेष मोह से पचेद्रिय विषयो मे मग्न होकर चारो गतियो मे भ्रमण करते है। तथा इन पचेद्रिय विषय मे मग्न हुवा जीव पृथ्वी, अप,

तेज, वायु, वनस्पति और त्रस ऐसे षट्काय जीवो मे जन्म लेकर सात प्रकार के संसार के परिवर्तन मे उत्पन्न होने वाले आठो कर्मो के बंधन मे संसार मे परिभ्रमण करते हैं।

प्रश्न—सप्त परिवर्तन कौन से है?

उत्तर—स्थापना और नाम यह दोनो मिल कर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव यह परिवर्तन होते हैं ॥ ११४ ॥

एळुक्कयरगंड्रु मीरेळ् कयर् रुयरं दिडैई लोंड्राय् ।
मुळवेन विडैलेंदाय् मुडिवंड्रा अडिई लेळा ॥
एळिविला उलगिट्रोट्र मनंतमाम् पडित्पदेश ।
मेळुवेन तिरंडतोळा इरंडनाळ् पिरंद वेंड्रान् ॥ ११५ ॥

हे बलिष्ठ राजकुमार! सुनो, उत्तर दक्षिण का व्यास ७ राजू और उच्छेद १४ राजू है। सात राज उच्छेद के मध्य मे १ राजू मध्य भाग है। मध्य भाग के ऊपर मृदंगाकार अर्थात् मध्य लोक के साढे तीन उच्छेद के ऊपर ब्रह्म कल्प के शिखर मे पाच राजू होकर क्रम से कम होकर शिखर पर एक राजू प्रमाण रह गया है। अधोलोक मे ७ राजू है। इस प्रकार यह पूर्वापर व्यास है। इस लोक की ऊचाई, लम्बाई और चौडाई इन सब को नापने से ३४३ घन राजू होता है। यह अनादि निधन है। यह किसी के द्वारा बनाया हुआ नही है, और कभी भी नाश होने वाला नही है। इस प्रकार इस तीन लोक मे सम्पूर्ण जीव जन्म मरण के आधीन होकर अनेक दुख को पाकर इस संसार मे भ्रमण करते हैं ॥११५॥

एंबिनै नरंबिर् पिन्नि युदिरं तोय् दिरैच्चि मत्ति ।
पुनपुर तोलिन् मूडि यळुक्कोड् कुळुक्कळ् सोरु ॥
बंबदुवायिट्राय वून् पईल् कुरुंबै तन्मेल ।
लंबरा मान्दर् कंडा यरिविनार् शिरियनीरार् ॥ ११६ ॥

नस को रक्त मे भिगोकर उस नस से हड्डी को भली प्रकार बांध कर उसको मास रूपी कीचड से लेप कर के उसके ऊपर चाम की चादर लपेट कर कृमि कीटक आदि अनेक मलों से झरता हुआ नव द्वारो से युक्त, ऐसे यह अशुचि अपावन कच्चे दुर्गंधित मल के भरे शरीर पर प्रेम करने वाला आत्म ज्ञान से रहित होकर ससार रूपी वन मे भ्रमण करता है।

भावार्थ—जो जीव धर्म मे अनुराग रखते हैं वे इन्द्रिय रूपी सुख को साधते हुए शुभोपयोगी रूपी भूमि में विचरण करते हैं।

शुभयोग सहित, उत्तम तिर्यंच, उत्तम मनुष्य अथवा उत्तम देव होता हुआ उतने काल तक अर्थात् तिर्यंच आदि की स्थिति तक नाना प्रकार के इन्द्रिय सुख को पाता है। सब सासारिक सुखो मे मग्न होकर जीव देवगति मे जाता है, वहाँ अणिमा गरिमा आदि २ आठ

ऋद्धि सहित सुख देवो मे प्रधान है। परन्तु यथार्थ मे वह आत्मिक तथा स्वाभाविक सुख नही है क्योकि जब पचेद्रिय पिशाच उनके शरीर मे पीडा उत्पन्न करता है तब ही वे देव मनोग्य विषयो मे गिर पडते है अर्थात् जिस प्रकार कोई मनुष्य किसी वस्तु से पीडित होकर पर्वत से गिरता है उस ही प्रकार इन्द्रिय जनित दुःखो से पीडित होकर उन विषयो मे यह आत्मा पीडित होता है। इसलिये यह इन्द्रिय सुख दु खरूपी ही है। अज्ञान बुद्धि से सुखरूप मालूम पडता है। दुख के भी दो भेद हैं, सुख और दु ख। मनुष्य चारो गतियों मे उत्पन्न होकर शरीर की पीडा को भोगते हैं तो जीवो का चेतन रूप परिणाम अच्छा बुरा कैसे हो सकता है, ऐसा कभी नही हो सकता। इसलिये हे कुमार सजयत ! पाप और पुण्य यह दोनो दुख के कारण है। और ये ही दुख चारो गति के कारण है। आत्मा के सुख के आगे कोई शाश्वत सुख नही है ॥११६॥

तोड्रि माइंदुलग मूंड्रि ट्र्ुयरैदु मुइर्गडंमै।
ईंड्रताय् पोल वोंबि इंबत्तुळिरुत्ति नादन् ॥
मूंड्ुलगिक्कु माक्कि मुडिविला तन्मै नळ्गु।
मांड्र नल्लरत्तै पोलु मरिय दोंड्रिल्लै येंड्रान् ॥ ११७ ॥

हे कुमार सजयत ! जन्म-मरण रूप से युक्त इस तीन लोक मे दुख भोगने वाले जीवो को जिस प्रकार माता अपने बच्चे का रक्षण करती है उसी प्रकार माता के रूप मे धर्म, देवलोक, चक्रवर्ती आदि इन्द्रिय सुख इस जीव को देकर अन्त मे मोक्ष फल को दिला देती है। ऐसे जैन धर्म के सिवाय और कोई परम रक्षक नही है ॥११७॥

अरियदु तिरुवरमल्ल दिल्लैयेल्।
मरुविय तिरुवर मोरुवि मन्नना ॥
युरुगळ्ु मुडिग कवित्तुलग माळ्वदु।
पेरुयिलै मणिइनै पिडिक्कीवदे ॥ ११८ ॥

इस प्रकार संजयत धर्म के स्वरूप को अपने पिता के मुख से सुनकर इस लोक, में जैन धर्म के अतिरिक्त और कोई धर्म नही है ऐसा निश्चय करके कहने लगा कि-हे पिताजी ! मैं फिर ऐसे सुख शान्ति के देने वाले पवित्र जैन धर्म को छोड कर अनेक दुखो से भरे हुए ससार के कारणभूत होने वाले शरीर तथा क्षणिक राज भोगो को भोग कर नरक गली की ओर खीचने ,वाले ऐसे क्षणिक राज सुख को मै क्यो ग्रहण करू ? मैं इसे ग्रहण नही करूंगा, क्योकि जिस प्रकार तिल को घाणी मे पेल कर उसका तेल निकालने के बाद केवल खल भाग रहता है उसी प्रकार अनादि काल मे राजा महाराजा इस क्षणिक ससार सुख को छोड कर चले गये। अब ऐसे ससार के सुख को भोगने वाला क्या मूर्ख नही है ? अत मैं मूर्ख नही हूं। जस मोक्षरूपी राज की आप इच्छा कर रहे है वह सुख मुझे भी चाहिये, ऐसे क्षणिक सुख की मुझे चाह नही है ॥ ११८ ॥

आदला लरुळिय दुरुदि युंड्रन ।
पोदुला मुडियनान् पुगळ् ंदु भूमिक्कु ।।
नादनाय् सपंदनैनाट्ट उट्रनन् ।
ट्रादुला मलगंलान् ट्रानु नेर्दिलंन् ।। ११६ ।।

इसलिये हे पिताजी ! आप इस क्षणिक राज्य के परिपालन करने की आज्ञा मत दीजिए। यह राज्य सपदा मुझे भी इष्ट नही है। इस वात को सुनकर राजा वैजयत मन मे अति आनदित होकर ज्येष्ठ कुमार संजयत की महान प्रशसा करता है और लाचार होकर उस राज्य भार को सोपने के लिये अपने छोटे राजकुमार जयत को वुलवाता है। कुमार जयत ने आकर पिताजी को नमस्कार किया और कहा कि पिताजी ! क्या आज्ञा है ? राजा ने कहा कि पुत्र ! तुम इस राज्य भार को सम्हालो ।। ११६ ।।

अरिविनार शिरिय नीरा रांड्रवर् तांगळ् सेंड्र ।
नेरिपिनै पिळैक्क पोगिन् माट्रिडै सुळल्वर नीड ।।
मरुविला गुणत्ति नीर्गळ् माट्रिय वरसु मेविन् ।
नेरियिनार् गतिगनांन्गि निंड्रुयान् सुळल्व नेंड्रान् ।।१२०।।

कुमार जयत ने निवेदन किया कि पिताजी ! मैं अल्प ज्ञानी हूं, मुझ मे ज्ञान नही है। और न इस राज्य की मुझे लालसा है। इस राज वैभव को दुखदाई मान कर उससे मुक्त होकर अनन्त सुख की प्राप्ति के लिए आप मुनि दीक्षा लेकर तपश्चरण के द्वारा अखण्ड मोक्षलक्ष्मी रूपी राजपद पाने की इच्छा कर रहे हैं–और यह क्षणिक राज वैभव नरक मे ले जाने वाला मुझे सौंप रहे हैं! क्या यह बात उचित है ? नही। आप जिस मार्ग को स्वीकार कर रहे है वही मार्ग मुझको भी इष्ट है। इस प्रकार कुमार जयत ने पिता से कहा ।।१२०।।

इस प्रकार वैजयत,सजयत और जयत के वैराग्य भावना का विवेचन समाप्त हुआ ।।

वानत्तिन् ट्रुळिळ एल्लाल् वरुंदिनु विरुंबल् सेल्ला ।
मानत्तैयुडय पुळिळन् मैंदेर्गळ् मरुत्तुनिर्प ।।
काण पोरेट्रिन पारम् कंड्रिन् मेलिट्टदेपोल् ।
ट्रेणत्त मुडियै मन्नन् शिरुवन् ट्रन् शिरुवर् कीदान् ।।१२१।।

तदनतर राजा वैजयंत ने अपने दोनो पुत्र सजयत और जयंत सहित राज्य भार को त्याग कर के अपने पौत्र वैजयत का राज्याभिषेक किया और जिन दीक्षा के लिये तीनो चल पडे।

जिस प्रकार चातक पक्षी मेघ की वून्द द्वारा अपनी प्यास वुझाने के लिये वादल की ओर ऊपर देखता है उसी प्रकार राजा वैजयत और उनके दोनो पुत्र मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा करके स्वयम्भू भगवान के समवसरण मे जाने के लिये आतुर हुए ।।१२१।।

राजा कैजयत अपने पौत्र वैजयत का राज्याभिषेक कर रहे हैं।

राजा वैजयंत मय अपने दोनो पुत्र सजयत व जयत सहित जिन दीक्षा लेने के लिये
रत्नाभूषण—मुकुट आदि को उतार रहे हैं।

मन्निनुकिरै मै पूंडान् मन्नन् वैजयंत येंड्रे ।
तिन्मुर शरैद पिन्नै सिरप्पोडु सेंड्र् पुक्कु ।।
पुण्णिय किळवन् ट्रन्नै पुगंदडि पणिंदु पोत्तीर् ।
पन्नवर् पडिमम् कोंडार् पार्थिवर् कुळात्तिनोडे ।। १२२ ।।

जिस समय राजा वैजयत अपने पौत्र को राज्य भार देकर चलने लगे तो यह चर्चा सम्पूर्ण देश के राजा महाराजा तथा प्रजा मे फैल गई । तत्पश्चात् वैजयत, सजयत और जयत ने जिनेन्द्र भगवान की पूजा के लिये अष्ट द्रव्य हाथ मे लेकर भक्ति सहित समवसरण मे प्रवेश किया, और स्वयम्भू तीर्थंकर की तीन प्रदक्षिणा देकर उनकी स्तुति की और वडी विनय भक्ति के साथ भगवान की पूजा की और खडे होकर जिनेन्द्र देव से प्रार्थना की कि हे भगवन् ! हमने अज्ञान अथवा मिथ्यात्व के कारण अनादि काल से इस कर्म के निमित्त से ससार मे निजात्म स्वरूप की प्राप्ति न होने के कारण अथवा इसका स्वरूप न समझने के कारण आज तक ससार मे परिभ्रमण किया । अब हमारी आत्मा मे इस ससार से विरक्ति उत्पन्न हो गई है और ससार दु खो से छूट कर हम मुक्त होना चाहते हैं । आप नौका के समान है । हमको जिनेश्वरी दीक्षा दीजिए । तब मुनिराज ने तथाऽस्तु कहा और दिगम्बरी दीक्षा की अनुमति दे दी ।।१२२।।

मणि मुडि कलिंग मालै मणित्तुन रणयकुंजि ।
पणियोडु परिंदुनिंड्रार् पोरुमद याने योत्तार् ।।
गुणमणि यणिंदु कुंडा पण्णवर् कुळात्तोक्कु पुक्का ।
रिणैइला सित्ति नन्नाळ् डिळवरसि येंड्र् दोत्तार् ।।१२३।।

तदनन्तर उन तीनो को नव रत्न जडित मुकुट-हार तथा सर्व आभरणो का त्याग कराया अर्थात् सर्व बहिरग परिग्रहो त्याग कराया, अट्ठाइस मूलगुणो का पालन कराया और सक्षेप मे मुनि धर्म पालने का उपदेश दिया । पाच समिति, पच महाव्रत, एक भुक्त, विविक्त शय्यासन, स्थित भोजन आदि २ क्रियाओ को समझाया । तीन गुप्ति, पाच समिति और पाच महाव्रत इन तेरह प्रकार से चारित्र पालन करने तथा केश लोच और दन्त न धोने आदि का विवेचन किया । कहा भी हैं—

वद समिदिंदियरोधो लोचावासयमचेलमण्हाण ।
खिदिसमणमदनवण ठिदिभोयणमेयभत्त च ।।

इस प्रकार सक्षिप्त मे उनको पच महाव्रत आदि २ का स्वरूप समझाया और तीनो ने केवली भगवान स्वयम्भू तीर्थंकर के समक्ष जिन दीक्षा धारण की । जिन दीक्षा धारण करने के पश्चात् वे तीनो मुनि ऐसे प्रतीत होने लगे जैसे मद से युक्त हाथी इधर उधर विचरते हैं । जिस प्रकार हाथी का महावत हाथी को खाना पीना देकर हाथी को वश मे करता है उसी प्रकार यह तीनो मुनिराज अपने मदोन्मत्त मन को

वश मे करके पच महाव्रत आदि को निरतिचार पालन करते हुए अर्हत स्वयम्भू तीर्थंकर के उपदेश से अतरङ्ग व वहिरङ्ग तप के द्वारा पचेन्द्रिय विपयो को जर्जरित करके अपने वश मे कर लिया। अतरङ्ग व वहिरग तप के साथ २ दुर्द्धर तपस्या के द्वारा उत्तरोत्तर मूलगुण व उत्तर गुणो के साथ कर्म की निर्जरा करने लगे। और रत्नत्रय (सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) की वृद्धि करने लगे। छोटे राजकुमार वैजयत को राज्य भार सोपने के पश्चात् जैसे वह राजकुमार शनै २ राज्य की वृद्धि करता है उसी प्रकार यह वैजयत, सजयत और जयत तीनो मुनि धर्म की वृद्धि करते हुए मोक्ष रूपी लक्ष्मी पद की प्राप्ति की ओर बढने लग ॥ १२३ ॥

आंगवरंग पूव कादि नूलोदि याकु ।
तान्‌गरु कोळ्‌गै तांगि तामुडन् सेंड्रु पिन्ना ॥
लोगिय उलग मूंड्रु मोरुवळी पडुक्क लुट्रु ।
पाबिनाल् वैजयंतन् परुप्पद शिगरं सेंदान् ॥१२४॥

तदनतर वैजयत, सजयत और जयत तीनो मुनि अङ्ग निमित्त और और अग पूर्व परमागम का पूर्ण रूप से अध्ययन करते हुए निरतिचार चारित्र का पालन करने लगे। वैजयत मुनि अपने घोर तपश्चरण द्वारा घातिया कर्मो की निर्जरा करके एक समय मे लोक अलोक को जानने की इच्छा करने वाले होकर सर्व सघ को त्याग करके एक विशाल पर्वत पर जाकर तपश्चरण करने लगे ॥ १२४ ॥

मळै पनिवैळ्‌गडांगि मलैमिसै मलयैपोल ।
वेळिल् पेरलिड्र पोळ्‌दिनेळ्‌दं सुक्लध्यानं ॥
पळविनै मुळ्‌दुं पारप्परंदन वरंग नान्मै ।
मुळै इडै पोळगिट्रेनु विळै दिकनुं मुन्निरुळ्‌डामो ॥१२५॥

कहा है कि:—

गिरि-कंदर-दुर्गेषु ये वसति दिगम्बराः ।
पाणिपात्र पुटाहारास्ते याति परमां गतिम् ॥

इस प्रकार गिरि कदर वन दुर्ग पर्वत की चोटी पर ये वैजयत मुनि तपस्या करते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो इस पर्वत पर एक छोटा और पर्वत ही हो। इस तरह दुर्द्धर तप करते हुए आत्म-योग मे मग्न हुए। प्रथम व द्वितीय शुक्ल ध्यान से आत्मा को घात करने वाले ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चारो घातिया कर्मो को जीत कर केवल ज्ञान को प्राप्त होकर अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्तसुख आदि चार चतुप्टय से युक्त हुए। तव जिस प्रकार एक दीपक से सारा अन्धकार क्षण मे नप्ट हो जाता है उसी प्रकार अनादि काल से कर्मरूपी अधकार से ढके हुवे आत्मा को केवल ज्ञान दीप प्रकट होते ही ज्ञानावरणादि चारो घातिया कर्म नप्ट हो गये ॥ १२५ ॥

सिद्धनल्लिरदं सेड्‌धातु कळ् पोलधातु ।
वोत्तरु वगैयदागि योळि युमिदिलंगु सेनि ।।
चित्तिरत्ति,यट्टपट्ट पडयेन देवर् सेंड्रार ।
मुत्ति पेट्रिद कोऊ मदर् मुरूर् विळक्कै वेत्तान् ।।१२६।।

जिस प्रकार सिद्ध रस मे लोहा डुवाने से वह लोहा तत्काल स्वर्णमयी हो जाता है उसी प्रकार अर्हंत भट्टारक वैजयत मुनि के शरीर के धातु उपधातु आत्म ज्योति से प्रकट होके प्रकाशमान होने लगे। तब चतुर्णिकाय देव जैसे चित्रकार चित्र लिखता है उसी प्रकार अनेक रगो से सुशोभित होकर अत्यन्त सुन्दर शरीर को नाना वर्णो से तथा अनेक आभरण व सुन्दर २ वस्त्रो सहित आकाश से पुष्प वृष्टि करते हुए वैजयन्त मुनि के सन्मुख वे देवगण नीचे उतर कर आ गए और केवलज्ञानी वैजयत भगवान से आनन्दपूर्वक कहने लगे—

"अद्य मे सफलं जन्म, नेत्रे च विमले कृते ।
स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ।।

हे भगवन् ! आज आपके दर्शनो से हमारा जन्म सफल हो गया, नेत्र सफल हो गये गात्र सफल हुआ इसलिए हे प्रभु ! हम आपके तीथ मे उतर कर कर्म रूपी मल को दूर करने के लिये स्नान कर चुके हैं ।।१२६।।

तेमलर मारि सुन्नं सिदारिनर दिशैकन्‌मूड ।
धूममूमेळ्द दीप सुडर्‌दन मिडंद देवर् ।।
तामनुं सांदु मोदिताम् पनिदेळ्‌दु नीड्र ।
कामनै कडद कोमान् कळलडि पर्व लुट्रार् ।। १२७ ।।

तत्पश्चात् केवली वैजयत भगवान के पास आए हुए चतुर्णिकाय देवो ने स्वर्ग से लाए हुए अत्यन्त सुगधित पुष्पो की वृष्टि की। परिमल चूर्ण की आकाश से वृष्टि की, तथा महान सुगन्धित धूप खेई। केवल ज्ञान के निमित्त रत्न दीपक जलाए और अष्ट प्रकार से भगवान की पूजा करके स्तुति करने लगे कि—

भगवन् दुर्नयध्वान्तैराकीर्णे पथि मे सति ।
सज्ज्ञान-दीपिका भूयात् संसाराब्धि-वर्धनी ।।
जन्म जीर्णाटवी मध्ये जनुषान्धस्य मे सति ।
सन्मार्गे भगवन् भक्तिर्भवतान्मुक्ति-दायिनी ।।
स्वान्त-शान्ति ममैकान्तामनेकान्तैक-नायकः ।
शान्तिनाथो जिनः कुर्यात् संसृति क्लेश-शांतये ।।
कर्णधार भवार्णोधिर्मध्यतो मज्जता मया ।
कृच्छ्रेण बोधिनौर्लब्धा भूयान्निर्वाण-पारगा ।।

अर्थ—हे भगवन् ! मेरा मार्ग दुर्नयरूपी अधकार से व्याप्त है, मुझे आपके द्वारा प्राप्त सम्यक्ज्ञान रूपी दीपक ससार की मर्यादा को छेदने वाला हो। हे भगवन् ! जन्म-मरण रूपी इस अत्यन्त पुराने जगल मे मैं जन्म से ही अन्धा हू। इससे मुक्ति दिलाने वाली आपकी भक्ति सन्मार्ग मे ले जाये। स्याद्वाद मत के एक नायक श्री शान्तिनाथ भगवान् ससार के दुःखो की शान्ति के लिये मेरे हृदय मे सदा स्थिर रहने वाली शान्ति को करे। हे खेवटिया ! ससार रूपी समुद्र के मध्य मे डूबते हुए मैंने बडी कठिनाई से ज्ञान रूपी नौका पाई है। यह मुझे मोक्ष रूपी पार पर पहुँचाने वाली होवे ।। १२७ ।।

उवत्तल् काय्दला लुंट्रिरु वडित्तल देळुंदोर् ।
कुवत्तल् काय्दलु ट्रिरुन् दोंड्रु नीइलैयेर् ।।
सुर्गमानर गदवर् तुन्नुव दुनदु ।
तवत्तिन् ट्रन्मयो तविनै तन्मयो वरुळे ।।१२८।।

हे भगवन् ! आपको जो कोई देखता है उसको महान् आनन्द हो जाता है और जो आपको नही देखता उसके प्रति आप रागद्वेष नही करते। जो पूजा नही करता उससे आप अप्रसन्न नही होते क्योकि आप अठारह दोषो से रहित है और इन दोनो से प्रसन्न अप्रसन्न की भावना का आपको कोई मतलब नही है। आप पर वस्तु से भिन्न हो। परन्तु एक बात है कि आपके दर्शन, पूजा व स्तुति करने करने वालो को देवगति प्राप्त होती है और जो आपसे राग द्वेष आदि करता है उसको पाप तथा नरक गति प्राप्त होती है और पाप पुण्य के अनुसार फल मिलता है—ऐसा आगम का कथन है ।।१२८।।

इरंद धातिग नान्मैयु मळिंदव क्कनत्ते ।
निरंद नान्मे युं वानवर् निलैयुडन् तळरा ।।
परदु वदु निट्रिरुवडि परवुवदिदु उन् ।
सिरंद तन्मयो तिरुवरदि यक्कयो वरुळे ।।१२९।।

ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मो का नाश होते ही जब चार चतुष्टय प्राप्त होते है तब उसी समय देवो के आसन कम्पायमान होते है—यह आपके तपश्चरण व बल का ही महात्म्य है, और किसी की शक्ति नही हैं। ऐसा ही आपके महान धर्मोपदेश का फल है ।। ।। १२९ ।।

कुट्र मोंड्रिलै येनिर् कुट्र मूंड्रु नीयुरैत्ताय ।
पट्रु नीइलै एन्निलु लोगमुं पट्राम् ।।
सुट्र नीईला एन्नि लोव्विरु मुन् सुट्रा ।
मट्र नीइल्लाय मुनिवर् कोनायदोर् मायम् ।।१३०।।

हे भगवन् ! आपके अन्दर कोई दोष नही है—ऐसा कहते है ? यदि राग द्वेष नहीं

राजा वैजयत को तपश्चरण द्वारा केवलज्ञान की प्राप्ति होने पर, केवलज्ञान की पूजा के लिये धरणेन्द्र परिवार सहित आ रहे है।

है तो आपने कर्मो का नाश कैसे किया? इस लोक मे ससारी जीवो मे रहते हुए आपको निष्प-रिग्रही कैसे कहते है? मिट्टी मे से निकला हुवा सोना भट्टी के द्वारा तपाने पर भी मिट्टी रूप नही होता उसी प्रकार ज्ञानावरणादि आठ कर्मो का नाश होने के बाद पुन' ससार का बध नही होता, इस कारण आप अबध है। कोई यह कहता है कि आप बधु नहीं है? आपकी भावना सम्पूर्ण जीवो पर रक्षा करने की है और जगत के सारी प्राणी मात्र को बधु की दृष्टि से देखते है इसलिये आप बन्धु है। इस प्रकार तपश्चरण करने वाले आप ही सच्चे तपस्वी हो, यह आश्चर्य को बात है।। १३० ।।

अरिवु नीइलै योंड्रल तेमवकवै यनेगं।
पिरविनी इलै यान्गळो पिरविइर् पेरियोम् ।।
सेरिवदोर् गति युनषिकल्लै यमक्कु नान्गि व ट्राल्।
वरियैनो येम्मै यान्ट्कोंड वशिइदु पेरिदे ।। १३१ ।।

हे भगवान् ! आपको केवल ज्ञान के अतिरिक्त विकल्प को उत्पन्न करने वाला और कोई ज्ञान नही है। दूसरे जोवो के मतिज्ञान व अवधिज्ञान है। परन्तु केवलज्ञान नहीं है। आप जन्म-मरण से रहित है, आगे आपका जन्म-मरण नही है, परन्तु ससारी सम्पूर्ण जीवो के जन्म मरण होता है। आप गति मे रहित है अर्थात् अगति है। हमको चारो गतियो के दुख हैं। इस कारण सभी जीव आपकी स्तुति करते है तथा आपका आश्रय लेते हैं।। १३१ ।।

येंड्रु वानव रिरैवनै मरंजु इप्पोळुदे।
येंड्रु मूवुलगत्ताुळ् वयररु वियप्प ।।
निंड्रदोर् पडिनिरुमिया वारिवैय्यर् सूळ।
शड्रनन् धरणेंदिरन् शिरप्पाडुं विरंदे ।।१३२।।

इस प्रकार वैजयत केवली भगवान की स्तुति पाठ करते हुऐ सम्पूर्ण देवो को आश्चर्य करने वाले ऐसे उपमा रहित रूप को धारण कर अपनी देवियो सहित भवन-लोक के अधिपति इन्द्र अपने हाथ मे पूजा द्रव्य लेकर उन केवली भगवान की पूजा करने आए ।। १३२ ।।

निळलुमिळ् दिलंगु मेनि निरैयदि मुगमं शंवर्।
कळलणिदि लंगुम् पादंग्कमलंगळ् कामने युम् ।।
पुळलिंदिलंगु नल्लार् वडिविनार् कुळैय वांगुम्।
तळलुरु तन्मै तंद तरणनन दूरुव् दाने ।।१३३।।

उस धरणेन्द्र के मन्मथ के समान सुशोभित शरीर का प्रकाश चारो ओर फैला हुवा था। उनका मुखकमल सम्पूर्ण कलाओ के समान प्रकाशमान था। उनका शरीर स्वर्ण के समान चमकता था। उनके चरण लाल कमल के समान तथा केश नील मणि के समान चमक रहे थे। उनके देखते ही सम्पूर्ण स्त्रिया चचल हो जाती थी।। १३३ ।।

आंगव नुरुवंकाना वरुंदवन् शेयदनदो ।
वीगिय तवत्तिनान् नेलिव्वुरुवाग देन्ना ।।
नींगिय काक्षिदाय निदानत्तो निरैय निड्रान् ।
ओंगियवुलग वेंडा दुम्मिकोडा ओरुव नोत्तान् ।।१३४।।

उस समय धरणेन्द्र का वैभव परिग्रह, वहा के देवो की सुन्दरता, स्वरूप व ऐश्वर्य आदि को देखकर उन सजयत मुनि ने सम्यक्दर्शन से रहित होकर निदान वध कर लिया कि मैंने इस तपश्चरण के भार से जो तप किया है उस तप का फल अगले भव मे मुझे ऐसा मिले कि इस धरणेन्द्र के समान ऐश्वर्य वैभव, तथा चन्द्रकाति वाला मै भी हो जाऊँ। जैसे बदर के गले मे रत्नो का कठा वाध दिया जावे तो वह मूर्ख उसका मूल्य न समझ कर तोड-कर फेक देता है, उसी प्रकार सजयत मुनि ने अब तक सारे वैभव को छोड कर अतरग व बहिरग से सारे शरीर को कृश किया था, वही आज अपनी पचइन्द्रियो के लालच मे आकर तपस्या से धरणेन्द्र के समान फल की प्राप्ति की कामना करके अब तक के समस्त तपश्चरण के फल को ससार का कारण बना लिया, मोक्ष के देने वाले मार्ग से च्युत हो गया और मोक्ष मिलने वाले सुख को छोड़कर पचेन्द्रिय भोगो मे लिप्त होकर दीघ ससार मे फसने का कारण बना लिया ।। १३४ ।।

अरुतवं तागि मेरुवनै पवर्केलु मासै तुरुंविडै तोंड्रुमेनुम् ।
तुरुंबिडे तोंड्रु मेनुम् लुगळिनिन् चिरियरव ।।
ररुंतव निवनिर्कडा मासै इल्लामै येंड्रो ।
पेरुंतव मादबंड्रेर् पिरवि वित्तुत्तल लड्रो ।।१३५।।

श्रेष्ठ तप ऐसे चारित्र भार को धारण कर उसके फल को तथा महान् मेरु पर्वत के समान कीर्ति को न पाकर तिल मात्र परिग्रह के मोह से वह अल्प गुणी बना और वह सजयत मुनि ससार रूपी कीचड मे फस गया। जैसे कोई किसान बीज का रक्षण करता है और उसका उपयोग नही करता उसी प्रकार सजयन्त मुनि ने कर्म रूपी बीज को नष्ट न करके उसे ससार का कारण बना लिया ।। १३५ ।।

कनिंदनै कवळं कैइल् वेंलुडन् कळरु वारै ।
मुनिंदिडुं कळिरु कोल्वार् मुत्तियै विळैवन्दु नीरार् ।।
मनन्दोळत्तुरंदिडादे वाल् कुळैतेच्चिर् कोडुं ।
सुनंगनै पोलु नीरार् माट्रिडै सुलुलु नोरार् ।।१३६।।

जिस प्रकार महावत हाथी को अनेक प्रकार के पकवान बनाकर खिलाता है परन्तु हाथी सहज ही आकर उसको नही खाता है, अपितु महावत उसको पुचकार २ कर खुशामद कर २ के खिलाता है किन्तु वह अपने मन से नही खाता है और उसी हाथी की झूठन को

कुत्ता अपनी पूंछ को हिला हिला कर भोजन खिलाने वाले उस महावत की खुशामद करता है और तब वह झूठन को प्रसन्नता से खा लेता है। उसी प्रकार मनपूर्वक सयम को न धारण करने वाले जीव परिग्रह को न त्याग करके पुनः उसका अश व उसकी लालसा उत्पन्न होने से उसकी ओर चला जाता है। उस समय वह मोक्ष को उत्पन्न करने वाले श्रेष्ठ तपश्चरण मार्ग को त्याग करके जिस प्रकार खाए हुए झूठन को फेंक देते है या वमन की हुई वस्तु को पुनः ग्रहण करने की जो इच्छा करता है उसी प्रकार त्यागे हुए पचेन्द्रिय विषय की पुन. इच्छा करके संसार मे भ्रमण करके अत्यन्त दुख को भोगता है ।। १३६ ।।

नजिनै यामर्दमंड्रे युंडवनयँदु पिन्नै ।
तुंजुव दंजिन्दांड्र नांजय तुपित्तल् पोलुं ।।
पुंजिय पोरिइन् भोगम् मांट्रिडै सुळट्रु मेन्ना ।
वंजिमुन् ट्रुर्द भाग तरुंद व नाशैताने ।।१३७।।

पचेन्द्रिय विषयो से युक्त भोगोपभोग वस्तु तीन लोक के सम्पूर्ण जीवो को घेरने के लिये कारण होती है। इस ससार दुख के कारणो से भयभीत होकर उन विषयादि राज्य पद को छोडकर तथा मुनि पद को धारण किए हुए सजयत मुनि ने पुन इस परिग्रह को धारण किया। जिस प्रकार एक मनुष्य ने विष को अमृत समझकर ग्रहण किया और उससे वह अनन्त दुख को प्राप्त होकर फिर उसका त्याग कर देता है तथा उम दुख को भूलकर फिर मूर्ख के समान उसी विष का ग्रहण करता है, ऐसी दशा उस सजयत मुनि की हो गई ।।१३७।।

ऐंदलै येखं तन् वायै डुडन् कलंदनंजिर् ।
ट्रुबं मोर् कडिगैयेल्लर् ट्रुाजिनार् ट्रोडरंदिडावा ।।
मंबोरि यरवन् तन् वायू योड्रिनालाय लोंजु ।
तुंजिना लनेग कालं तोडरदुं निड्रडुन् गळ् कंडिर् ।।१३८।।

अत्यन्त जहरील पाच फण वाला विषधर सर्प अपने पाचो मुखो से मनुष्य को काटता है और वह विष मनुष्य को अनेक प्रकार के असह्य दुख देकर उसके प्राणो को नष्ट कर देता है, उस विष से वह प्राणी एक भव मे नष्ट हो जाता है, पुन उसको दुःख उत्पन्न नही होता है। किन्तु यह पचेद्रिय नाम के विषय विषधर मनुष्य को भव भव मे दुख देने वाले है। श्री आचार्य गुणभद्रस्वामी ने आत्मानुशासन मे कहा है—

राज्य सौजन्ययुक्तं श्रुतवद्दुरुतप पूज्यमत्रापि यस्मात्,
त्यक्त्वा राज्य तपस्यन्नलघुरतिलघुः स्यात्तपः प्रोह्य राज्यं ।।
राज्यात्तस्मात् प्रपूज्य तप इति मनसाऽऽलोच्य धीमानुदग्र,
कुर्यादार्यः समग्र प्रभवभयहर सत्तपः पापभीरुः ।।

राज्य के हाथ से दुष्टो का निग्रह होकर शिष्टो का पालन होता है। इसलिये राज्य

करना वडा धर्म है। और राजा पूज्य भी होता है जिस प्रकार तपस्वी को शास्त्र का अच्छा ज्ञान होता है तो उसका तप भी पूज्य होता है। इस अपेक्षा से यदि देखा जाय तो पूज्य राज्य भी है। उससे भी पूज्य तप है। परन्तु राज्य को छोडकर यदि कोई तप करे तो और भी पूज्य समझा जाता है। किन्तु तपस्वी होकर फिर राजा वनना चाहे या राज्यपद पर वैठ जाय तो वह पूज्य से भी अपूज्य हो जाता है। उसे वह भ्रष्ट हुवा निकृष्ट समझते है। तपस्वी को राजा भी शिर नमाते है। राज्यपद से इतना वडा पुण्य कर्म सचित नही हो पाता है, जिस से कि आगामी फिर भी राजाओं को विभूति नियम से मिल जाय। क्योंकि राज्यपद के साथ मदमत्सर आदि दोष भी लगे रहते हैं, जिससे आत्मा अति पवित्र न रहकर मलिन हो जाता है। तप मे यह बात नही है। जिस तप मे कर्मो का निर्मूल नाश करके मोक्ष पद पाने की शक्ति विद्यमान है तो राज्यपद प्राप्त होना कौनसी वडी वात है? तप से आत्मा परम पूज्य बन जाता है।

भावार्थ—विषय भोग तुच्छ हैं, दुखो को पैदा करने वाले है। राजभोग सबसे वडा विषयभोग है। इसकी इच्छा भी उन्ही को होती है जो धन दौलत को अपने प्राणो से भी वडा समझते हैं, कामक्रोध अधकार के जो आधीन हो रहे हैं।

किंतु जो जितेन्द्रिय हैं, आत्मा का कल्याण करना चाहते हैं, वे उस पर लात मारते है। इसी प्रकार राज्य को भी आत्मकल्याण करने वालो को हेय समझना चाहिये। इस राज्य के मूल मे ही विषय भोग छिपा हुआ है व परपरा से नरकादि चारो गतियो का कारण है। सदैव पाप का सचय करने का कारण है। विषय भोग की प्राप्ति के लिये यदि राज संपदा भी मिली तो उसको छोडकर बुद्धिमानो को तप ही करना चाहिये। तप ही सुख का का कारण है। तप से साक्षात् सुख की प्राप्ति होती है। राज से सुख व शाति नही मिलती है। परन्तु जैसे कोई व्यक्ति हाथी पर वैठा है तो सभी उसकी प्रशसा करते है, यदि वही व्यक्ति हाथी पर से उतर कर गधे पर वैठ जाय तो लोग उसी को हीन दृष्टि से देखेंगे। उसी प्रकार पूज्य पद प्राप्त करने वाले सयम पद को प्राप्त कर तीन लोक के पूज्य बन जाते हैं, और यदि उसे त्याग कर पचेन्द्रिय विषय मे पड जाये तो लोग घृणा की दृष्टि से देखते है। उसी प्रकार सजयत मुनि की दशा हो गई थी ॥ १३८ ॥

काक्षियै कलविल ज्ञान कदिर्पिनै पिरित्तु पुक्कान् ।
मोक्षिई लुलग मेट्रु मुळुक्कुत्तै पेळित्तु वैय् ॥
माक्षि पेट्रवनै वै मदनक्के येडिमै याकु ।
मोक्षित्ता निदानतन्नै मनं कोल्लार् मदिइन् यिक्कार् ॥१३९॥

सम्यक्दर्शन को नाश करके, सम्यक्ज्ञान रूपी प्रकाश को मिटा कर तथा सम्यक्-चारित्र को गवा कर इस चतुर्गति मे भ्रमण कराने वाले दुःख को नाश करके सिद्ध लोक मे रहने वाले सिद्धो के समान सुख को प्राप्त करने वाले सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र की आराधना से सजयंत मुनि च्युत होकर निदान शल्यसे मृत्यु को प्राप्त होकर धरणेन्द्र पद को प्राप्त हुए। यह ठीक है, क्योकि जिस जीव के जिस समय जो परिणाम होते है उसी

के अनुसार उस को गति मिलती है-ऐसा समझना चाहिये। इसलिये भव्य सम्यक् दृष्टि जोव यदि इस ससार दु ख से पार होना चाहता है तो भगवान जिनेन्द्र देव के कहे मार्ग में तिल मात्र भी शका नही करनी चाहिये।

साराश यह है कि वेदनीय, नाम, आयु और गोत्र ऐसे चारो अघातिया कर्मों को नाश करके तीन लोक के भव्य जीवो के पूज्य होकर वैजयत राजा ने सिद्ध लोक को प्राप्त किया।
॥ १३९ ॥

इस प्रकार वैजयत का मोक्ष प्राप्ति नाम प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

॥ द्वितीय अधिकार ॥

ओळिदं नाल् विनयुं वड्रिट्टु लगोरु मून्ड्रु मेत्त ।
वेळुदु सेंड्रु लग दुच्चि यंदनान् वैजयत ॥
नळंदिय निदानत्तोल जयत नौवमर नाय् कोळ् ।
विळंदन नोळिद वीरन् चरिते यान् विळंव लुट्रेन् ॥१४०॥

अर्थ—वैजयत मुनि के मोक्ष जाने के वाद उनके शरीर के पडे हुए नख, केश, आदि को केवल नमस्कार कर पुतला बना करके अग्नि कुमार देवो ने मुकटानल से दाह सस्कार किया, और उसकी भस्मी को अपने मस्तक पर लगा करके परिनिर्वाण पूजा करके चतुर्णिकाय देव अपने–अपने स्थान को चले गये । निर्दोष तपश्चरण करने वाले वैजयतमुनि के निर्वाण कल्याणक के पश्चात् उस स्थान को नमस्कार करके एकल विहारी होकर निरतिचार व्रतो को पालन करते हुए सजयत मुनि कायोत्सर्ग पूर्वक आत्म-ध्यान करने लगे ॥१४०॥

पंचगति गेट्चंड्र परमन् ट्रन् चरम मूर्ति ।
कजलि शैडु वाळ्ति शिरपयर्द मररपोनार् ॥
वंजमिरवत्तिनान् संजयदनु वनंगि पोगि ।
यंजलिल् कोळगै तांगि इरा पगल् पडियनिड्रान् ॥ १४१ ॥

अर्थ—महातपस्वी सजयत मुनि श्रेष्ठ गुण से युक्त थे । महातपस्वी मुनि जिस वन मे तपश्चर्या करते थे उनकी तपश्चर्या के प्रभाव से उस वन के क्रूर व्याघ्र, सर्प व जगली पशु अपने बैर भाव को छोड कर उन सजयत मुनि के पास प्रेम से परस्पर खेला करते थे ॥१४१॥

मानकंड्रुन् पुलिइन् कड्रु मारिये मुलयै युन्नुम् ।
आन् कंड्रु भाणै कंड्रुम् सिगत्तिन् कंड्रोडाडुं ॥
ऊंड्रिड्रु वाळुं जाति यतोळि लोळिदं वुळ्ळं ।
तान् सेंड्र शांति माकुं वादमान् ट्रन्मै याले ॥ १४२ ॥

अर्थ—दोष रहित सजयत मुनि के तप के प्रभाव से नेवला, सर्प, चूहा, मार्जार आदि प्राणी अपने वैर विवाद को छोडकर परस्पर प्रेम से रहने लगे । भील लोग जो शिकार के लिये इधर उधर घूमते थे उनके मन मे भी दया के भाव पैदा हो गये और शिकार करने का त्याग कर दिया । वह सभी मुनि के तप का प्रभाव था । क्योकि तपस्वी मुनि जहा २ विचरते है वहा २ क्रूर प्राणी भी अपनी क्रूरता को छोड कर विशुद्ध परिणामो को धारण करते हैं । शास्त्रो मे ऐसे अनेक उदाहरण हैं । भगवान नेमिनाथ पूर्वभव मे भील की पर्याय

मे थे। उस समय एक महामुनि दिगम्बर साधु जगल मे विराजमान थे। उस भील राजा ने उनको जगली मृग समझकर जब बाण उठाया तब उसकी स्त्री ने उसे समझाया कि यह वन देवता है, इनको मारना उचित नही है। तब भील ने आकर देखा और नमस्कार करके पूछा कि तुम कौन हो ? उन्होने कहाकि मैं साधु हू। तत्पश्चात् मुनि ने पुण्य, पाप, पुनर्जन्म, मरण, राग-द्वेप आदि के सबन्ध मे भील को समझाया। मुनि का उपदेश सुनकर उस भील को धर्म पर पूर्ण श्रद्धा हो गई और उस भील ने मास, मदिरा आदि न खाने तथा शिकार न खेलने की प्रतिज्ञा की और स्थूल रूप से पाच अणुव्रत को पालन करने का नियम लिया। उसी भील राजा ने क्रम से अपनी पर्याय से मनुष्य जन्म मे आकर सोलह कारण भावना भाई और तीर्थंकर प्रकृति का बध कर लिया और आज वही भील का जीव नेमिनाथ तीर्थंकर हमारे लिये पूज्य हो गये। साधु के उपदेश से अवश्य जीव का कल्याण हो जाता है। इसी प्रकार सजयत मुनि के प्रभाव से जगल मे क्रूर हिसक पशु परस्पर प्रेम से किलोले करते हुए रहने लगे ॥१४२॥

येलिशेंड्रु नागं नन्मेलिडं नागम् कीरि।
नलियु मेंड्रजं लिल्लै मानमा बालिन् मुळळै ॥
पुलिसेंड्रु वांगुं पुल्वाय् किडदुळि नडुंगु मेंड्रु।
नलिवु शेवेडर् सेल्लार् सेट्र मिनट्र वत्ताल् ॥१४३॥

अर्थ—एकाग्र मन से बाह्य और आभ्यतर परिग्रहो को त्याग कर मन, वचन, काय ऐसे त्रिगुप्ति से चार प्रकार के आहार भय, मैथुन और परिग्रह को त्याग करके पचेन्द्रिय विषयो मे जाने वाले मन के उपयोग को आत्म-ध्यान मे एकाग्र करके छह आवश्यक क्रियाओ मे मग्न होकर पुण्य और पाप तथा अशुभ व शुभ क्रिया को त्याग कर वे मुनि शुक्ल ध्यान मे मग्न हो गये ॥१४३॥

ओरु वगै पट्ट उळळं तिरुवगै तुरवु तन्नान्।
मरुविय कुत्ति मूंड्रिर् सन्नैगमाट्रि ॥
पोरुविलैबोरि सेरित्तु पोरुंदि या वास मारिन्।
इरुवगै सविलित्ताय् रेळुवरै शेरिय वैत्तान् ॥१४४॥

अर्थ—आठ प्रकार की शुद्धि से युक्त सजयत मुनि नव विध योग के द्वारा दस प्रकार के आस्रव को रोकने के कारण ऐसे एकादशाग शास्त्र पठन पाठन मे लीन होकर श्रुत ज्ञान से युक्त मन के द्वारा बारह अनुप्रेक्षाओ को भाते हुए त्रयोदश चारित्र को निरतिचार पूर्वक पालन करने मे मग्न थे।

आठ प्रकार की शुद्धि:—

१ परिणाम शुद्धि २. विनय शुद्धि ३. ईर्यापथ शुद्धि ४ प्रतिष्ठापन शुद्धि ५ शय्यासन शुद्धि ६ वाक्य शुद्धि ७. भिक्षा शुद्धि ८. काय शुद्धि। ऐसे आठ प्रकार की शुद्धि से काय को शुद्ध कर आतम ध्यान मे लवलीन थे।

शुद्धि योरेट्टिर् ट्रयानोन्वदायो पियोगी लूट्ट्ु ।
पत्तयुं तडुक्क वंगम् पदिनोंड्रिर् पयिड्ड्रानं ।।
सित्तं पाण्णि रडिर सेंड्ु सिंदयै मुरुविकइट्ठु ।
पतु मूंड्रारि निड् किरियै पंइड्रिट्टाणे ।।१४५।।

अर्थ—मन, वचन, काय, कृत कारित अनुमोदना, आरभ, समारभ आदि को त्याग कर एकादशाग पाठी (द्वादशाग मे दृष्टिवाद को छोड कर कुल ग्यारह अग होते है) पाच महाव्रत, पाच समिति, तीन गुप्ति इन तेरह प्रकार के चारित्र मग्न होकर सजयत मुनि आत्म-ध्यान मे लीन थे ।।१४८।।

कायमा मरग्गि पेत्तै कडंदपिद मडंगळ् पोलुं ।
वाम मार्दिलगु माड मनोगर पुरत्तैशेर्द ।।
भमिमा मराळि येत्तिर् पेरियव निड्ं पोळ्दिर ।
शाम मार्दिलगु मेगित्तानव नोरुवन् वंदान् ।।१४६।।

अर्थ—अत्यत विकट जगल से दूर महान् सुन्दर राजधानी थी। उमसे सवधित उसी के निकट भीमारण्य नामका एक वन था। उस वन मे सिंह के समान तेजस्वी शूरवीर नि:सग वृत्ति को धारण करने वाले सजयत मुनि ध्यान योग मे मग्न थे। वहा कृष्णवर्ण धारण किये हुए एक विद्याधर रहता था ।।१४६।।

वित्तु दंत नेंवनन् विद्याधर वेदन् ।
मत्त तंदि पोल्वन् वानवडियाग ।।
मुत्तातंदि मुइकुळर् शामै योड शेल्वान् ।
सित्तात्तंद मिंड्ं वन् मेर्शड्रान् ।।१४७।।

अर्थ—उस विद्याधर का नाम विद्युद्द्ष्ट्र था। वह विद्याधरो का राजा था जो महान् क्रूर था। उसके दांत तीक्ष्ण तथा लबे होकर प्रकाशमान थे। इस कारण उसका नाम विद्युद्द्ष्ट्र था। उसका शरीर अति सुन्दर तथा केश वडे लबे और सुशोभित थे। एक दिन उसने अपनी विद्याधरी शामदेवी के साथ विमान मे बैठकर आकाश मार्ग से आते समय जिस जंगल मे संजयत मुनि ध्यान मे खडे थे, वहां उनके ऊपर से जाने लगा तो वह विमान वही आकाश मे कीलित हो गया ।।१४७।।

मन्मे निड् मादवर् कोन्मी दोडादाई ।
त्रिम्मेलिड् विमानं कंडु वियपैदि ।।
पुण्मेल वेला रेरुंडान् पोर्पुगैदाट्रान् ।
कन्मेर् कंडान् कैवल शल्वि करुग्ग याने ।।१४८।।
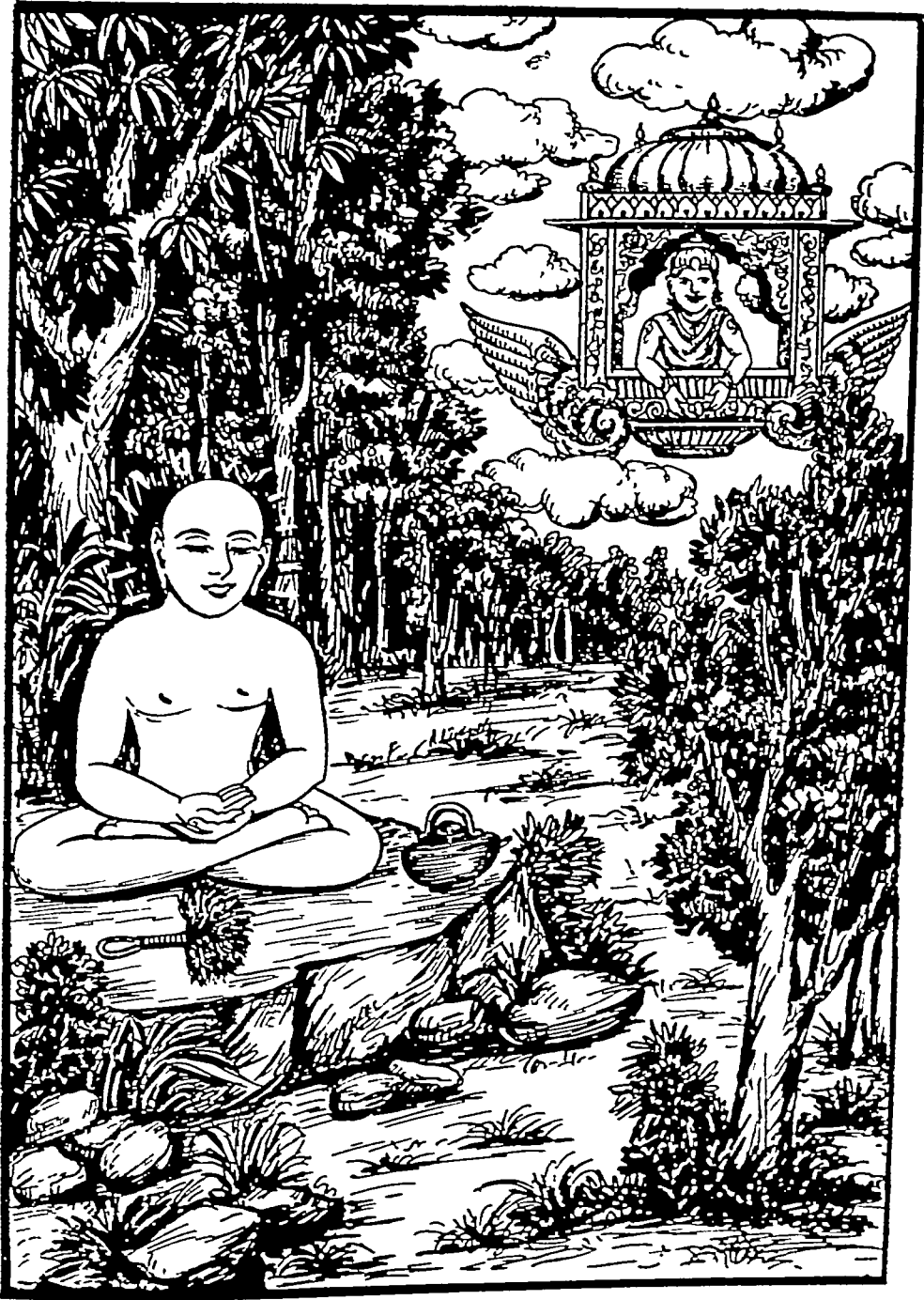
सजयंत मुनि वन मे तपस्या कर रहे हैं और उनकी तपस्या के प्रभाव से उनके ऊपर विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर का आकाश मे जाता हुआ विमान कीलित हो जाता है।

अर्थ—उस समय सजयत मुनि के ऊपर जब वह विमान कीलित हो गया तो वह विद्याधर विचारता है कि यह विमान कैसे रुक गया ? आश्चर्य चकित होकर नीचे आकर देखा तो सजयत मुनि ध्यानारूढ बैठे है, उनको देखते ही जैसे किसी को भाला घुसते हो अत्यत वेदना होती है, उसी प्रकार उस विद्याधर के हृदय मे पूर्वजन्म के बैर से महा क्रोध उत्पन्न हो गया ।।१४८।।

कानानिड् वेरन् कनट्र कडिदोडि ।
माणानोदि माधवर् कोणैवकुड्वदु ।।
सेना रोडुं इमान मेट्रि शेल्गेड्रान् ।
वेनार् वेळि्ळमलै इनिवट्कीळ् परदत्तो ।।१४६।।

अर्थ—तब उस विद्युद्दष्ट्र विद्याधर ने पूर्वजन्म मे किये हुए पाप कर्म के उदय मे शीघ्र ही उस मुनि को जबरदस्ती से खीचकर विमान मे विठा लिया। वहा बास का बडा भारी जगल था। उस जगल मे विजयार्द्ध नाम का पर्वत था। उन सजयत मुनि को वहा लाकर बिठा दिया। पापी दुष्ट लोग क्या २ नही करते है। अर्थात् सभी कुछ कर सकते है। पूर्व जन्म मे जैसा २ जिसने किया वैसा २ उसको भोगना पडता है। तत्र उस समय वह मुनि मन मे विचार करते हैं कि मैं इस समय आत्मा और शरीर को भिन्न रूप मे समझ गया हू, इस मे मेरी कोई हानि नही है। मैंने पूर्व जन्म मे इसके साथ अपकार किया था, वह कर्मरूपी ऋण है, उसका बदला चुकाना है, और उस ऋण को यह विद्याधर यही पूर्ण कर ले तो ठीक है। इस प्रकार वह मुनि बारह भावना आदि का चितवन करते हुए एकत्व भावना का विचार करने लगे।

अरि मित्र महल मसान कचन काच निदन थुति करन।
अर्घावतारन असि—प्रहारन मे सदा समता धरन।

इसी प्रकार वह सजयत मुनि भावना भाने लगे।

उत्कृष्ट साधु के तप की महिमा.—

इहैव सहजान् रिपून् विजयते प्रकोपादिकान्।
गुणाः परिणमति यानसुमिरप्यय वाञ्च्छति ।।
पुरश्च पुरुषार्थसिद्धिरचिरात्स्वययायिनी।
नरो न रमते कथ तपसि तापसंहारिणि ।।

अर्थ—अनादि काल से साथ लगे हुए तीव्र कषायादि का इस तप के धारण करने से ही नाश होता है। यह कषाये जीव को ससार के दुख भुगनाने मे मूल कारण है। इस कारण यह शत्रु के तुल्य हैं। इनको वश करना या इनका दमन करना तप द्वारा ही हो सकता है, क्योकि तप करने वालो को इद्रिया वशीभूत हो जाती हैं। जिसने कि विजय-

वासना छूट जाने से क्रोधादि तथा राग द्वेषादि कषायो का वीज धीरे २ नष्ट हो जाता है। विषय वासना हटने से ज्ञानाभ्यास विषय, आकुलता हटने से शाति तथा तप रूपी श्रेष्ठ कार्य होने से पूजा सत्कार आदि मिलता है। जिन उत्तम गुणो के प्राप्त होने की अभिलाषा प्राण जाने पर भी मनुष्य उत्कठा से रखता है, यह सभी गुण तपस्वी को प्राप्त होते है। यह सभी लाभ साक्षात् जिसको प्राप्त हुए उसके लिए देखने व सुनने मे यही आता है कि कालातर मे इससे मोक्षपद की प्राप्ति भी होती है–जो जीव का सर्वोत्कृष्ट तथा अतिम साधन हो सकता है। इस मोक्ष पद से अधिक जीव को और क्या साध्य हो सकता है, कि जहा पहुँचने से ससार सवधी खेद, जन्म, मरण, भय, रोग आदि २ सर्व क्लेश समूल नष्ट हो जाते हैं और ससार के दुखो का हमेशा के लिये नाश हो जाता है। जहा कर्मक्षय हो जाने के कारण अज्ञान तथा मोह वश होने वाले कर्मजन्य दुःखो से छुटकारा मिलता है, फिर उस जीव को दुःख कहा से हो सकता है? मोक्ष प्राप्त होने के वाद दुख का निर्मूल नाश हो जाता है, इससे अधिक सुख ससार मे कही नही है। दुख सब पराधीनता या विजातीय वस्तु के मेल से ही होता है। यह पराधीनता कर्म जन्य है। वह पराधीनता मोक्ष मे नही रहती है फिर वहा दुख किस बात का होगा? ऐसी अचिंत्य मोक्षधाम की प्राप्ति इस तप से ही हो जाती है। बुद्धिमान् मनुष्य को चाहे प्रत्यक्ष फल न मिलने वाला हो परन्तु परिपाक मे उत्तम फल मिलता दीखता हो तो ज्ञानी उसको अवश्य करता है, किन्तु अज्ञानी मनुष्य की इसकी विपरीत चाल होती है। चाहे परोक्ष मे उसका फल मिलना सभव हो या न हो, परन्तु प्रत्यक्ष फल यदि मिलता हो तो मनुष्य उसे अवश्य करता है। यह तपश्चरण ऐसी वस्तु है, कि इसका फल परोक्ष भी है और प्रत्यक्ष भी है और वह इतना उत्कृष्ट है कि जिससे सर्व प्रकार के क्लेश नष्ट होकर सर्व शाश्वत आनन्द प्राप्त हो जाता है।

अधिक क्या कहे, जिस मनुष्य ने तप के आनन्द का भोग नही किया, न जिसको इसका आनन्द है वे इसका लाभ नही समझ सकते। जैसे भीलनी ने सच्चे मोतियो की कदर नही समझी। वह गजमोती बिखरे हुए जगल मे देखने पर भी उनकी कदर नही करती, न उनको छूती है। परतु गुजाफल को समेट २ कर उनके अनेक आभूषण बनाती है और उन को पहनकर अपने को धन्य मानती है। जो मोतियों की कदर करता है, वह ऐसा नहीं करेगा। अर्थात् गुजाफल को नही पहनेगा। इस प्रकार जो मनुष्य इस तप के आनन्द को लूट चुके हैं, देख चुके है वे किसी प्रकार भी इंद्रिय सुख तथा पर वस्तु मे मग्न नही होते। यदि तप करते हुए शरीर नष्ट भी हो जाय तो कोइ परवाह नही करते। इस प्रकार दुर्धर तप करने वाले सजयत मुनि सिह के समान शूरवीर एव पराक्रमी थे। कर्म रूपी शत्रु उनसे दूर भागते थे ॥१४९॥

वदान् कुमदा वदी युमरीनर् सुवनं पर् ।
कंदार् कयम् वलिपिन् वैत्तानदिमूंड् ॥
शंदार् शंड वेगेयु माय्नायत्तिन् ।
ऐंदारु सेंड्रोंड्रा तडात्तिनड्वाग ॥१५०॥

अर्थ—तत्पश्चात् उस दुष्ट विद्युद्दंष्ट्र ने उस संजयत मुनि को हरिवती, स्वर्णवती,

विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर मुनि को घसीट कर विमान में बिठाकर आकाश मे लेजाकर ऊपर से पाच नदियो के सगम के पास नदी के किनारे पर डाल रहा है ।

गजावती और चण्डवती नाम की नदियो के पास लेजाकर विकट जगल मे पटक दिया।
।। १५० ।।

सिगै मुरुक्कि विमानं शेल्लावगै नोक्कि ।
अंदत्ताडात्ति नडुवे मुनियै यवनिट्टु ।।
मुन्सै विनया लवन मुनियै मुरुक्किनान् ।
मुन्सि विनइन् मेले मुनियु मुरुक्कड्रान् ।।१५१।।

अर्थ—तदनतर वह विमान तो वही रह गया, और विद्युद्दष्ट्र विद्याधर ने सजयत मुनि को देखा और देखते ही मन मे क्रोधाग्नि उत्पन्न हो गई तथा उपसर्ग करने के अनेक प्रकार के षड्यत्र रचने के भाव उत्पन्न होकर उपसर्ग करना चालू कर दिया। उस समय सजयंत मुनि अपने पूर्वजन्म मे किये हुए कर्म का उदय समझकर ध्यान मे स्थिर रहे।।१५१।।

मत्तत्तादि वडिवाइ वीरन् मर्वत्तु ।
कुंत्ताकुरुगा मरिया ओडि कोन्मावा ।।
शत्ति तंडु तारै वाळ्वेल् तडियेंदि ।
येत्ता बेरियाविळिया देळिया विडदोडुम् ।।१५२।।

अर्थ—उस विद्युद्दष्ट्र ने अपने विद्या के बल से दो रूप को धारण कर सजयत मुनि के वक्षस्थल मे अपने तीनो दातो से काट खाया और अनेक घाव कर दिये, और वहा से लौटकर आयुध दड मुग्दल आदि शस्त्रो को लाकर उस मुनि को अनेक प्रकार के कष्ट दिये। तत्पश्चात् पुन क्रूर व्याघ्र रूप धारण कर उनको डराने का प्रयत्न किया।।१५२।।

वाळोई रिलग वंकादरव माइ वदु तोड्रु ।
कोळरि येरुमार्ग कुक्कुट्रु कुलंगत्तोड्रु ।।
नीळेरि कोळुमुंसुट्रु निलं पिळंददिर वार्कुं ।
तोळिनै तुनिप्पनेंड्रु वाळिनै सुळट्रि तोड्रु ।।१५३।।

अर्थ—अत्यत तीक्ष्ण व प्रकाशमान दातो को धारण करने वाले विद्युद्दष्ट्र ने उस मुनि को डराने के लिये सिंह सर्प आदि अनेक विकराल रूप धारण किये शूल, मुग्दल, दड आदि शस्त्रो से प्रहार किया। तुम को मार डालेगे, चीर डालेगे ऐसे भयकर शब्द बोलता हुआ वह विद्याधर मुनि के समीप गया।।१५३।।

अळलु मिळ्दिलंगु वेव्वा योरिया येळैत्तु कत्तुं ।
सुळलुं वेन् कन्नवाय वेरुवै याय् सुळल ओडुं ।।
मळैयन तुरुगर पैय्या मलयडुत्तिड वंदैदु ।
मुळयवर् नडुंगुवेल्ला ऊनमु सोरुंगु सैय्युं ।।१५४।।

अर्थ—सिंह आदि भयानक क्रूर पशुओं के रूप को धारण करता हुआ वह दुष्ट गर्जना करने लगा। जिस प्रकार बादलों से मूसलाधार मेघ वर्षता है, विजली चमकती है उसी प्रकार मुनि पर पत्थरों की वर्षा करके उपद्रव करने लगा ।।१५४।।

इनैयन् पलवुंशंय्य विरैवनु मिवैयलामेन् ।
विनइन पयगळेंड्रु वेगुंडिलन् विनैकन्मेले ।।
निनैविनै निरुत्ति निंड्रा नोचनु नोगि पोगि ।
तनदिड कुरुगि यारुं सलित्तोळ्ंु बडियर् सोन्नान् ।।१५५।।

अर्थ—इस प्रकार उन ने अत्यत घोर उपसर्ग अपने पर होते देख उस समय विचार किया कि मेरे ऊपर होने वाले जो उपसर्ग हैं यह सब पूर्व जन्म के पापों का फल है। यह अशुभ कर्म स्थिति पूरी होने पर अब उदय मे आए हैं। ऐसा विचार करके विद्युद्दंष्ट्र द्वारा किए गये उपसर्गो पर कोई विचार न करके वह मुनि आत्मध्यान में मग्न हो गये।

मेरे अकेले से यह काम नही बनेगा यह विचार कर वह विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर अपने नगर मे गया और नगर के लोगों को डराने के लिये मायाचारी बातें कहकर उन लोगों को अपने साथ चलने को तैयार किया ।।१५५।।

बिलमेन पेरिय वाइन् पिनयलोंड्रुन तिन्नान् ।
मलैपळ विळ्ंगि नालुं वैरोंड्रु निरैदल् सेल्लान् ।।
पल पगल् परिइन् वाडि पदैपिड्रि येत्तापेट्रा ।
ललै पलशैदु नम्मै विळ्ंग वंदरक्क निंड्रान ।।१५६।।

अर्थ—वह दुष्ट विद्याधर उन सभी लोगो से कहने लगा कि हमारे नगर के पास वाले जगल मे एक बडा राक्षस मनुष्याकार आया है। उसका मुख पर्वत की गुफा के समान बहुत बडा भयकर है। वह राक्षस केवल मुर्दे को खाता है और कोई वस्तु नही खाता है। नगर के सभी मुर्दे खाने पर भी उस राक्षस का पेट नही भरता है। सूर्य अस्त होने पर वह राक्षस हमारे नगर मे आयेगा और सब को खाजायेगा। इसमे सदेह नही है। ऐसा वह राक्षस हमारे नगर के पास के जगल मे है ।।१५६।।

इंड्रिरा नम्म एल्लां पिडित्ताव नडैयतिन्नुं ।
इंडिरा वारा मुन्ने ईंडुनामडय कूडि ।।
इंड्रिरा वण्णं शैय्या तोळिडुमे ळिळदुं वाळ् नाळ् ।
एंड्रिडा वेवर्कुं सोन्ना नेरि नरगत्तु वीळ्वान् ।।१५७।।

अर्थ—वह राक्षस आज रात्रि को नगर मे आकर हमको मारकर खाजायेगा इस लिये हम सब लोगों को जगल मे जाकर उसका नाश करना अत्यत आवश्यक है। यदि उस का नाश नही करेंगे तो हम सभी मर जायेंगे। ऐसे तीव्र नरक के बंध होने वाले कृत्य करने
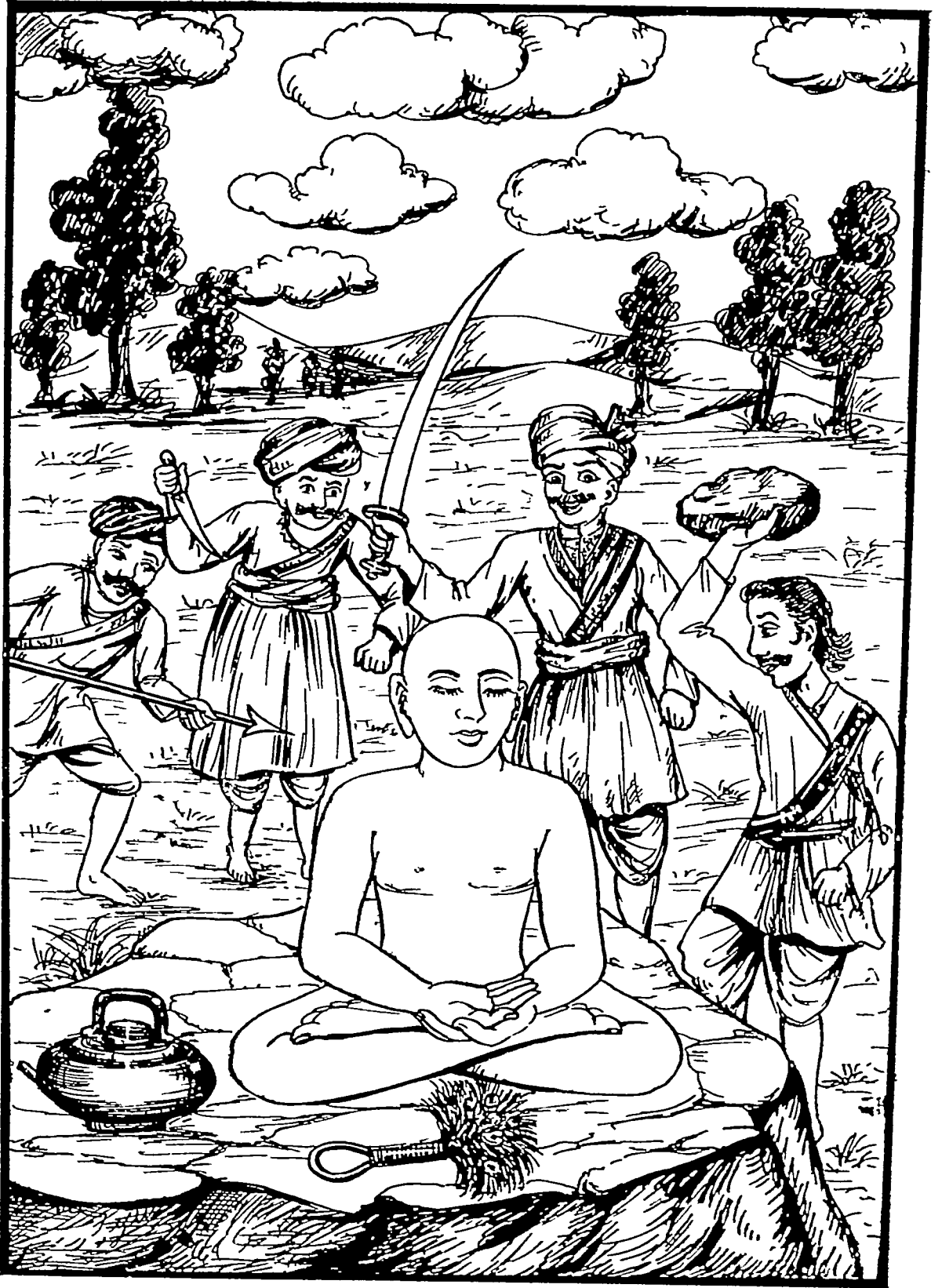
विद्युद्दंष्ट्र तथा उसके अन्य विद्याधर संजयत मुनि पर अनेक प्रकार के शस्त्रों से उपसर्ग कर रहे हैं।

को उन सभी के सामने क्रोधपूर्वक विद्युद्दंष्ट्र ने कहा ।।१५७।।

एमक्किवन् शैद कुट्टमिल्लै एंड्रिगळ वेंडाम् ।
उयक्कु मानुरुदि सोन्ने नुरैत्तदुम् पिन्नै मैयाम् ।।
सुमक्कला मलैगळेंड्रि शोरिंद वन् ट्रन्नै कोन्मिन् ।
एमक्कि वन् शैद वेन्ना पिन्न यु मरिंदु कोएमिन् ।।१५८।।

अर्थ—वह विद्युद्दंष्ट्र पुन: उन लोगो से कहने लगा कि वह राक्षस महान दुष्ट है, उसका नाश करना है। मेरे पर विश्वास रखो। अब तुम सभी लोग मिलकर मेरे साथ चलो। ।।१५८।।

अरक्क नेंड्रोरैत्त मार्ट्र सेविप्पुर तुररु मंजा ।
तिरैत्तडि देळ्दुं शेंड्रु शरीदवन् पेरुमैकाना ।।
अरक्कने इवनेंड्रंजा वरुत्तव मरिविलादार् ।
वरैतिरळेंदि सूळ्दार् वानवर् ग्रडुंगि इट्टार् ।।१५९।।

अर्थ —उस महान दुष्ट विद्युद्दंष्ट्र की मायाचारी बात को सत्य समझकर अज्ञानी सभी लोग विद्याधर से डर कर समुद्र की कलकलाहट के समान अत्यंत तीव्र ध्वनि करते हुए तथा महान क्रूर व्याघ्र के समान गर्जना करते हुए जहा महा तपस्वी सजयत मुनि तपस्या कर रहे थे वहा पहुँच गये। तत्पश्चात् पर्वत के बडे २ पत्थरो को उठा २ कर उन सजयत मुनि पर बरसाने लगे। उन मुनिराज पर होने वाले उपसर्ग को देखकर वन के सभी देवो ने अपनी अपनी आंखे बद कर ली ।।१५९।।

मिन्नोडु तोडरंदु मेगं वेडिपड विडित्तु तोंड्रि ।
पोन्मलै तन्नै सूळंदु पुयलिनै पोळिवदे पोन् ।।
मिन्नुं वेळ्ळे इट्टर् मेलिक्करियवर वेडिप्पवार्तु ।
कन्मळै पोळिय वीरन् कनगमा मलैनिंड्रान् ।।१६०।।

अर्थ—जिस प्रकार आकाश मे बिजली होती है, मूसलाधार वर्षा होती है, उसी प्रकार अत्यंत क्रूर दात वाले विद्याधर ने उन मुनि पर घोर उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया। वे सजयत मुनि उस उपसर्ग को आया देख अपने धर्म ध्यान मे तल्लीन हो गये ।।१६०।।

वंद तानवर् वरैयेड तेरियवु मादल शलियदे ।
निंड्र तन्मैयै पोरुक्क लादान् शैद वेरुप्पै यादल नोक्कि ।।
इंड्रिवन शैवलेन्विनै कळिद यावकुं मरिदागुम् ।
येंड्रु सुविकल ध्यानवाळेडुत्तिरल् विनैपगै युडे कुट्टान्।१६१।

अर्थ—इस प्रकार नगर के सभी विद्याधर विद्युद्दंष्ट्र के साथ मुनिराज पर उपसर्ग करने लगे। वह उपसर्ग सहन करना मुनि के लिये आठो कर्मो की निर्जरा का कारण बन गया और उपसर्ग को सहते हुए सजयत मुनि अपने धर्मध्यान मे लवलीन होकर चार घातिया कर्मो का शुक्ल ध्यान नाम के आयुध के द्वारा नाश करके कर्मों की निर्जरा करने लगे।।१६१।।

वीरन्येर्सेलुं वेगुळि वेंतीइनन् विरंदे ।
मारि पोर् पल मलै येडुत्तोरिंदन नेरिय ।।
वीरन् मेर्सेलुं वेगुळियै विलक्कि पोन्नोरु ।
वांर सेंड्रपिम् पर्मात्तनै परिदेरितिट्टान् ।।१६२।।

अर्थ—वह सजयत मुनि अपने शुक्लध्यान मे अचल रहे तो भी वह दुष्ट विद्याधर उनपर अनेक उपसर्ग करने लगा, किन्तु इतना होने पर भी उस मुनि पर उपसर्गों का कोई प्रभाव नही पडा। उन मुनि महाराज ने क्षमा रूपी खड्ग से ध्यान द्वारा कर्मो का क्षय करके प्रमत्त गुणस्थान को नाश करके अप्रमत्त गुणस्थान को प्राप्त कर लिया।।१६२।।

विन्पुदैक्क विन्चयर वन् पोळिदनन् विन्नोर् ।
कन् पुदैत्त् मयंगिनार् मुरिवन् ।।
पन्बु मैतवर् तन्मयु तूलयुं पाकुं ।
कण्पुदैक्कुमो रेळवरै एक्करणगळित्तान् ।।१६३।।

अर्थ—वे दुष्ट विद्याधर लोग मूसलाधार वर्षा के समान बाणो की वर्षा उन मुनि महाराज पर करने लगे। जिससे उस वन के सभी देवी देवताओ ने भी अपनी २ आखे बद करली। उस समय उन सजयत मुनि ने देव, शास्त्र, गुरु पर सच्चा श्रद्धान रखा और श्रद्धा पूर्वक सप्त प्रकृतियो का नाश किया।।१६३।।

कव्वै तूट्र डनेरि कनल् कडुगिनन् कडुग ।
वेव्वंतिर् मुनि विनैगळै येळिप्प नेंड्रना ।
पव्वत्तुरु तूरांबिनै पगै निलै तळरतान् ।
पुव्वि योडुनिड्रनि येट्टि तन्नयुं पुनर्दान् ।।१६४।।

अर्थ—तत्पश्चात् उस दुष्ट विद्युद्दंष्ट्र ने और भी अत्यत तेजी से उन सजयत मुनि को उपसर्ग देना प्रारंभ किया। परन्तु उन मुनि ने अपने धैर्य तथा दृढता से आत्मा के बल द्वारा सम्पूर्ण अपूर्वकरण गुणस्थान से प्राप्त होकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान को प्राप्त किया।।१६४।।

कारट्टमेरि यांनु कंडवर्नड्गु वन्नं ।
ओरिट्ट दिशैगळ् येलुमुरुमेन तोंड्र वीरन् ।।

आरट्टियोंडु कूडा यिनै पडं तलैव राय ।
वीरेट्टु विनयर् तम्मै येडुत्तोरिंदिट्टु निड्रान् ।।१६५।।

अर्थ—काले मेघ के समान शरीर वाला वह विद्युद्दंष्ट्र चारो ओर से उनपर घोर उपसर्ग कर रहा था। बडे २ वृक्षो को उखाड कर उनपर फेंक रहा था। उस समय सजयत मुनि अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे अस्सी समय शेष रहने पर सोलह कर्म प्रकृति को नाश करके पृथक्त्ववितर्क वीचार नाम के प्रथम शुक्लध्यान मे आरूढ हो गये।

भावार्थ—सोलह प्रकृति इस प्रकार हैं —

प्रकृतियो के नाम.—नाम कर्म मे नरकगति, नरक गत्यानुपूर्वी, तिर्यक्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, एकेंद्रिय, दो इंद्रिय, ते इंद्रिय, चतुरिंद्रिय, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म साधारण ऐसे यह १३ तथा दर्शनावरणीय कर्म मे तीन—निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि ऐसे १६ प्रकृति को नाश किया ।।१६५।।

मयक्क पोररसन् मक्कळ् दंदेन्मर्तम्मुळोंड्रि ।
कयक्कर पोरदुमाय कायदलि मायंद पिन्नै ।।
वीयक्क ओंदोरुत्ति बीळ्दाळ् मेल्लियररुव रोडु ।
मुयप्पिळै दोरुवनिड्रा नोरुंदुपोर् तोडगि मायंदान्।।१६६।।

अर्थ—तत्पश्चात् मोहनीय कर्म के सतानरूप मे रहने वाले आठ कषायो को द्वितीय समय मे नाश करके नपुसक वेद तीसरे समय मे नाश किया। क्रम से चौथे समय मे स्त्रीवेद, पाचवे समय मे हास्यादि नोकपायो को नाश करके पुरुषवेद का छठे समय मे नाश किया। ।।१६६।।

कळ्मलै कवदिर् पेय्दु कनैमळै यिल्लिर् पेय्दुं ।
एल्लैई लिडुंवै शैद लिरैवन्मे लुरामै नोकि ।।
पुल्लियर् पोरादनाल्वर् पोर् मुरै मूवर वीळंदार् ।
मेल्लिया नोरुवन् वोळंदु किडदु पिन् मायंदु पोनान् ।१६७।

अर्थ—इतना होने पर भी वह महापापी विद्युद्दंष्ट्र असाध्य बाण तथा पत्थर आदि के द्वारा महान दुःख देने के लिए अनेक प्रकार के उपसर्ग करता ही रहा। इतना उपसर्ग करने पर भी सजयंत मुनि को एक भी उपसर्ग मालूम नही पडा; क्योकि स्वपरभेद ज्ञानी लोगो को जहा शरीर और आत्मा पृथक २ दीखते हैं, वे अपने निज स्वरूप मे मग्न रहते हैं। उनको बाहर मे होने वाले उपसर्गो का ज्ञान नही होता। जैसे किवाड बन्द करके अपने मकान मे सोने वाले मनुष्य को बाहर की ओर होने वाले पत्थर ओलो की वर्षा का कुछ मालूम नही होता उसी प्रकार भेदज्ञान वाला मनुष्य अपने आत्मध्यान मे लीन हो जाता है उसको बाहर का हाल मालूम नही होता। तदनुसार सजयत मुनि ने उपसर्ग की ओर लक्ष्य न देते हुए सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसे चार कषायो को क्रम पूर्वक सातवें समय मे, और

आठवे समय मे सज्वलन मान का और नवे समय मे माया का नाश किया, अर्थात् अनिवृत्ति गुणस्थान मे कर्मों का नाश किया और सूक्ष्मसांपराय नाम के गुणस्थान के अतिम समय मे संज्वलन लोभ का भी नाश कर दिया ।।१६७।।

विळंगु वाळेइरिलगं नवकुरुमेन तेळिया ।
पुळंकोळ् कार्मुगिलेन विळिया पोडित्तोळुंदान् ।।
तुळंगु शुक्किल ध्यान वाङुळवकर पिडिया ।
कळंकोळ् शिदैयन् पसलै निद्दि रैगळै कांडनान् ।।१६८।।

अर्थ—अत्यत तीक्ष्ण दातो से विद्युद्दष्ट्र उपसर्ग करते समय हसता हुआ महान क्रोध के आवेश मे मेघ के समान गर्जना करते हुए उनके ऊपर और भी अधिक उपसर्ग करने से नही रुका। उस समय सजयत मुनि एकत्व वितर्क वीचार नाम के दूसरे शुक्लध्यान से चलन रहित होकर आत्म बल के द्वारा क्षीण कषाय गुणस्थान के अत मे दो समय शेष रहने के बाद प्रचला, निद्रा ऐसे दो कर्मों का नाश किया ।।१६८।।

करणं कडंद पिन् करण्मिसै नाळ्वरी काना ।
पिरणंगु मिल्लै युळरिविनै शेरिवुरत्तैवर् ।।
इरणि वंदै वरिडै गुरुमबरोडु येदिर्तार् ।
मनंदु मट्रौवीरेळुवरु कनत्तिले मडिदौर् ।।१६९।।

अर्थ—तदनतर दूसरे समय मे दर्शनावरणीय के चार, ज्ञानावरणीय के पाच, अतराय के पाच इस प्रकार चौदह कर्मो की स्थिति मे अन्त समय मे और नाश किया। दर्शनावरणीय चार प्रकृति है—चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवल दर्शनावरणीय ऐसे चार भेद है। ज्ञानवरणीय के पाच भेद हैं–मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मन पर्यय ज्ञानावरणीय, केवलज्ञानावरणीय। अतराय कर्म के पाच भेद हैं- लाभातराय, दानातराय, भोगातराय, उपभोग अतराय और वीर्यान्तिराय ।।१६९।।

घाति नालर सेर्ळिदन वळिदलुं कैवल ओरुनान्मै ।
पोदि पादिगळ् पुणरंदन पुर्णदिलुं पुगंदु लकोरु मूंड्रुम् ।।
ज्वोति मामलर् शोरिदु वंदडैदंन रैडैदलुं तुयरैदि ।
तीदु शैदवन् ट्रिगैत्तनन् ट्रिगैट्टिडा निलैत्तिडै पोइवीळ्ंदान् ।१७०

अर्थ—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय व अतराय ऐसे चार प्रकार के कर्मो का नाश होते ही केवल ज्ञान रूपी प्रकाश शीघ्र प्रकट होकर अनत दर्शन, अनत ज्ञान, अनत सुख और अनंत वीर्य से चार चतुष्टय आत्मा मे प्रकट होते ही स्वर्गो के देव आकाश से पुष्प वृष्टि करते हुए सजयत मुनि के पास आये। तत्पश्चात् वह विद्युद्दष्ट्र विद्याधर उन देवो के प्रभाव से दूर जाकर गिर पडा ।।१७०।।

पगलव नेळच्चियइर् भवनर् तोंड्रिनार् ।
इगलिड तवर्गळें डिसेयुं मोंडिनार् ।।
मुगं मलर् सोंरिदु लवर् कन् मूडिनार् ।
इगरोलुत्तवन् सेप्पिन् मनियै योत्तनन् ।।१७१।।

अर्थ—जिस प्रकार सूर्य उदय होकर शीघ्र ही एकदम ऊपर आजाता है उसी प्रकार भवनलोक के देव अत्यत कातिमान शरीर वाले ऊपर आये। व्यतर ज्योतिषी देव तुरत ही आकर आठो दिशाओ मे रह गये। कल्पवासी देव पुष्प वृष्टि करते हुए आये। उस समय वह सजयत मुनि ऐसे दीखते थे जैसे शीशे मे दीपक रखने से प्रकाश होता है। उसी प्रकार मुनि का परमौदारिक शरीर प्रकाशमान होता था ।।१७१।।

ताम नांड्रन शंदन मेळुगिन चरु फलत्तान् वंद ।
धम भार्तन सुडर् विळक्कोरिदन सोरिवन मलर् मारी ।।
वाय वारिइन् वाल् वळै येरिसिइन् मंगयर् नडमुन्ना ।।
काम वेळै वेंड्रिरुंदवन् ट्रिरुदंडि पळिदुडन् ट्र दिशैदार् ।१७२

अर्थ—वह स ंयत मुनि जिस स्थान पर विराजमान थे उस स्थान की भूमि को देवगण ऊपर से ही पुष्पो की और चदन की वर्षा करके सीचते थे। दीप, धूप, चरु, फल आदि को थालो मे भरकर मुनि के सामने ला लाकर रख रहे थे। साथ ही रत्नमयी दीपको का प्रकाश किया। अत्यत परिशुद्ध शालि (चावलो) से पूजन किया। सभी देवागनाओ ने आकर नृत्य किया। इस प्रकार घातिया कर्मों के नाश करने वाले केवली भगवान् सजयत की पूजा और स्तुति करने लगे ।।१७२।।

विदिग नान्गैयुं कडंदनै यडंदनै विकल मीलोरुनान्मै ।
मदिगनान्गैयुं कडदनै यडंदनै युलगला मदि योंड्रिर् ।।
गतिनान्गैयुं कडंदनै यडदंनै यगदियै गतिइंड्रि ।
तुदिगनान्गैयुं कडंददोर् तुर उडै सुगतवेंपरुमाने ।।१७३।।

अर्थ—हे नाथ ! आप चार प्रकार के घातिया कर्मो का नाश करके अनत चतुष्टय को प्राप्त हो गये है। आपने मति, श्रुत, अवधि ज्ञान को छोडकर तीन लोक मे चराचर वस्तु को एक समय मे जा-ने वाले केवल ज्ञान दीपक को प्राप्त किया है। नरकगति, तिर्यंचगति. मनुष्यगति और देवगति इन चारो गतियो को नाश कर पचमगति नाम की मोक्षगति को प्राप्त करनेवाले है अर्हंत,सिद्ध,साधु ऐसे धर्म को छोड कर शुद्ध परमात्म पद को प्राप्त होने वाले हैं। स्वामी आप ही हमारे रक्षक हो, आप ही सब प्राणियो को शरण देनेवाले है ।१७३।

उलग मूंड्रयु मेदिडु माट्रलै योरुकण डुलगत्तिन् ।।
अलगि नीळयु मगलमु मुयलमु मनुविन लळविकर्कु ।।

इलगु तन्मयै इयल्वि लेव्वुइर्गळु मीयट्रु मत्तुळिल् सेट्ठु ।
दिलगि निड्रिडुं विचित्तिर किरियै नल्वीर्य विरल्वेंदे ।१७४

अर्थ—एक समय मे तीन लोक की चराचर वस्तु को आपने जान लिया तथा उसकी लम्बाई, चौडाई और ऊंचाई आदि परमाणु से नाप करने वाले ज्ञान को प्राप्त कर लिया। आप स्वभाव गुणो से युक्त अनंत ज्ञान वृद्धि से समस्त जीवो के प्रति हिताहित क्रियाओ को परमानद के द्वारा प्रतिपादन करने वाले हैं। इतना करने पर भी आप परवस्तु से भिन्न हैं। तिलमात्र भी उसका सबध न होने से आप परिग्रही रूप नही हैं। उसमे राग परिणति नही है, उसमे रहते हुए भी आप सदैव उससे भिन्न हैं। इस प्रकार जगत को आश्चर्य करने वाले केवल ज्ञान को प्राप्त किये हुए आप भगवान हो ॥१७४॥

मरैगळ् मायं दिड वान् पोरि यैदयु माट्रिमट्र वट्रालास् ।
मुरैयु नींग मूउलगिनोड लोगिन् मुक्कालत्ति निगळ् विल्लाम॥
उरलु मेर्दलु मिड्रिये योगंन तोट्रुमैमुदलाय ।
अरियुनिन्नरि वरिवदों ररिवेम तरुळ्से यंपेरुयाने ॥१७५॥

अर्थ—स्वभाव गुणो मे आकर चिपकनेवाले कर्मो को तथा पचेद्रिय विषयो को नाश करके मिश्रित होने वाले कर्माश्रव को रोकने के लिये पचेंद्रिय विषयो को नाश कर तीन लोक और भूत, भविष्यत्, वर्तमान इस प्रकार तीनो काल मे परिवर्तन करने वाले चराचर वस्तु को एक ही समय मे जानने का उपमारहित ऐसा केवल ज्ञान प्राप्त हुआ है। उस केवल ज्ञान के द्वारा आप की सभा मे रहने वाले सम्पूर्ण भव्य जीवो को हिताहित का आपने उपदेश दिया ॥१७५॥

पोरिगळारी लैवुलत्तिनार् गतिइन् मुक्कालतिरुभोग ।
तुरवि यावयु मुट्र विवत्तिनोडु नदिन् वंधनै योप्पि ॥
दरिइन् मट्रवै यनुवुमा कायमु मनय उन् पेरिब ।
तुरैदि युन्नै नी मुन्नुळ्ळो यनुभवित्तुलग उत्तमनीये ।१७६।

अर्थ—पचेद्रिय विषयो मे षड्-इंद्रियो मे तथा चार गतियो में तीन ही कालो मे भोगोपभोग वस्तुओ को अनुभव करने वाले जीवो के सुखो को अपने सुख के बराबर तुलना करके देखा जाय तो इन ससारी जीवो के सुख अणु प्रमाण भी आपके सुख के बराबर नही हैं। आपका अनत सुख आकाश के समान अमर्यादित है। ऐसे तीन लोक मे जो श्रेष्ठ सुख हैं ऐसे सुख को प्राप्त किये भगवान तीन लोक के नाथ आप ही है।

चक्की फणी सुरेंदज सुखालय,
तत्तो अनंत गुणिदो सिद्धाणं खणं होदि ।

चक्रवर्ती, धरणेंद्र, सुरेंद्र इनको तीनकाल मे प्राप्त होने वाले सुख इंद्रिय सुख ही है। परन्तु यह सुख सिद्ध भगवान को एक ही क्षण मे हो जाता है। देवाधिदेव को अतींद्रिय सुख उत्पन्न होता है। ऐसे महान् सुख को प्राप्त करने वाले भगवान् आप ही हैं और ससारी जीवो को भी सुख प्राप्त कराने वाले आप ही है।।१७६।।

शेरिंद माधवन् तिरुवडि तलत्तिलिप्पोडि शिलतुदिसोन्नार् ।
येरिंद धातिनेन्गुण नाइन नैय्दिन नुलगुच्चि ।।
परंदु वंदु नपंळ्मर परवइन् पन्नगर् मुदलानोर् ।
निरम्कोळ् मामलर् सोरिंदन रेत्तिनर् वेर्तन विनै येल्लाम् ।१७७।

अर्थ—इसी प्रकार सजयंत मुनि को केवल ज्ञान होते समय सभी केवली भगवान् की स्तुति कर रहे थे। स्तुति करते समय सजयत केवली भगवान् ने अघातिया कर्मो को नाश करके सिद्ध लोक मे गमन किया। तत्पश्चात् भवनवासी, ज्योतिष्क तथा व्यतर आदि देव अनेक फलो से भरे हुए जिस प्रकार वृक्ष मे पक्षी इधर उधर से आकर उस झाड को घेर लेते है उसी प्रकार जहा भगवान के कर्मों का क्षय किया था, उसी स्थान पर सभी देवो ने सुगध वृष्टि और पुष्प वृष्टि करके स्तुति की। इस प्रकार उनकी भक्ति करने से देवो की कर्म स्थिति घट गई।।१७७।।

अमिर्तिनुनंजु कण्ण् कळगि दैंड्रुड वन् पोल् ।
तिमिर माम् विनयें नीक्कि सित्तिशै तवत्तिर् काकुं ।।
अमरण दुरुवन् कोंड मुनिवनाय् कुमरन् ट्रानुम् ।
तमरण मगिळ्ंदु नेंजिर् शालवुं पणिदु निंड्रान् ।।१७८।।

अर्थ—अत्यत विष से भरा हुआ जैसा किंपाक फल देखने मे सुन्दर लगता है, खाने मे मीठा, ऐसे फल को खाते ही मनुष्य का जैसे प्राण निकल जाता है, इसी प्रकार यह ससारी मिथ्यादृष्टि जीव इस विषय कलाप के मोह से तपश्चर्या करके भुवन लोक मे देव पर्याय को प्राप्त हुआ वह धरणेंद्र अपने परिवार सहित वहा आया और सजयत मुनि को अपने पूर्व भव का बंधु समझकर भक्ति सहित नत मस्तक होकर नमस्कार करके वहा खडा हो गया।१७८।

विल्लोडु कनैगळ् वेल्कोल् विट्टेंरि पिंडि पालं ।
कल्लोडु मरमुं वाविंतिडर्पंड किडंदकाना ।।
वेल्लै सैद वदियार् पार्तिवन् शयलो वीदेन्ना ।
पल्लवर् नडुंग ओडि पादत्ता लुदैप्प वीळदान् ।।१७९।।

अर्थ—तत्पश्चात् वह धरणेंद्र इधर उधर देखता है कि वहा बाण पत्थर शस्त्र आदि का ढेर लगा हुआ है तथा आयुध मुद्गल आदि अनेक प्रकार के शस्त्र पड़े हुए हैं। उस ने अपनी अवधि द्वारा यह सब देख कर जाना कि यह सभी विद्युद्दंष्ट्र दुष्ट का कार्य है।

ऐसा समझकर सभी विद्याधरो को भय उत्पन्न हो ऐसे उन्होने एकदम दौड़कर विद्युद्दंष्ट्र को जोर से लात मारी। लात मारने से वह विद्याधर उसी समय नीचे गिर गया ।।१७९।।

मेघ वासत्तिर् ट्रोंड्रु मिन्नन दंदत्तानै ।
भोग पासत्तिन् वंदु पोरुंदिय सुट्रत्तोडुं ।।
नाग पासत्तिर् कट्टा नडु कडलिडुवनेन्न ।
सोग पासत्तिनावा युडैंदवर् तुयर मुट्रार् ।।१८०।।

अर्थ—जैसे बादल की गर्जना होते समय बिजली चमकती है, उसी समय दातो से युक्त विद्युद्दंष्ट्र को तथा उनके बधुओ को उस धरणेंद्र ने ललकार कहा कि मैं नाग फास से बाध करके तुम सभी को समुद्र मे फेंक दूगा। उस समय विद्युद्दंष्ट्र के बन्धु लोग जिस प्रकार समुद्र मे जाने वाले जहाजो के टूटने पर जो उनकी दशा होती है वही दशा उन विद्याधरो की हुई। वे दुखी होकर भय से अनेक प्रकार से रुदन करने लगे ।।१८०।।

दरणन ट्रन् कोवन् काना दानवर् तलैबरिल्लाम् ।
मरणमेंड्रे दिर् ट्रोन्नामयंगिय मनत्तरागि ।।
शरणमुन् शरणमेन्ना शार्दनर् पलरुं सोर्दार् ।
करणनंनम् पुलंगळ् कानार् कंदोळु दिरंजि मादों ।।१८१।।

अर्थ—धरणेंद्र के इस प्रकार क्रोध को देखकर सभी विद्याधर पश्चात्ताप करने लगे कि हम इस नाग फास से किसी भी हालत मे नही बच सकते। निश्चय से हमारा मरण ही होगा। इस प्रकार भयभीत होकर विद्युद्दंष्ट्र के अनेक विद्याधर व बधु लोग उस धरणेंद्र के चरणो मे गिर गये, और गिर कर हाथ जोड कर कहने लगे कि हे धरणेंद्र! हम सभी विद्याधरो पर आपको क्षमा करना चाहिये। आपके बिना अब हमारा अन्य कोई शरण नही है। इस प्रकार अत्यत रुदन करके वे प्रार्थना करने लगे ।।१८१।।

मिन्नोत्त वंदत्तिद पाविदान् विदेहत्तिड्रु ।
मुन्नै तन् पावत्ताले मुनिवनै कोंडुवंदु ।।
कन्मोयित्त तिनि तिडोळाय् कयतिडैइट्ट्रु नम्मै ।
तिन्नत्तान् नरवक वदानिडन शप्पलोडुं ।।१८२।।

अर्थ—हे प्रभु सुनो! अत्यत तेजमान शरीर से प्रकाशमान यह विद्युद्दंष्ट्र महापापी पूर्वजन्म मे किये हुए तीव्र पाप कर्म के उदय से विमान मे बैठकर इस विदहे क्षेत्र मे रहनेवाले सजयत मुनि को जगल मे तप करते समय पर्वत के शिखर पर बैठ कर तपश्चरण करते समय उन पर होकर आकाश मार्ग से जा रहा था, वह विमान उन मुनि के तप के प्रभाव से रुक गया। विमान रुकने का कारण देखने को जब नीचे उतरा तो देखता है कि सजयत महामुनि ध्यान मे बैठे हुए हैं। उनको देखते ही विद्युद्दंष्ट्र के मन मे अत्यंत क्रोध

जयत मुनि धरणेन्द्र की पर्याय को धारण करके उन उपसर्ग करने वाले विद्याधरो को नाग पाश से बांध रहे हैं।

उत्पन्न हुआ और विचारा कि पूर्व जन्म का यह मेरा बैरी है, इसको ऐसे ही नही छोडना चाहिये। तदनतर उनसे वदला लेने की इच्छा से जबरदस्ती से बलपूर्वक मुनि को घसीटकर विमान मे बैठाकर लाया और लाकर उसने क्या किया सो अब बतलायेगे। हे बलशाली धरणेंद्र! सुनो। पाच नदियो के किनारे पर अर्थात् गजावती, कुमुदवती, हरितवती, स्वर्णवती और चडवेग इन नदियो के किनारे पर उन को छोडकर वह विद्युद्दष्ट्र वापस लौटकर अपने नगर मे आया और आकर वहा की प्रजा से कहा कि हमारे पट्टन के नजदीक एक भयकर काला राक्षस आया है। वह बहुत विकराल है, मनुष्याकार है और सदैव वह मुरदे को ही खाता है और कोई दूसरी वस्तु नही खाता और इतना खाने पर भी उसका पेट नही भरता। इसलिये आज वह राक्षस हमारे नगर मे आकर भक्षण करने वाला है, इस कारण हम सब लोगो को मिलकर उस राक्षस को मार डालना ही उचित है। ऐसा हम लोगो को उस विद्युद्दष्ट्र ने कहा। पुन यह और कहने लगा कि यह विचार मत करो कि वह हमारा क्या नही करेगा? वह तो आठ दिन मे हम सबको खा जावेगा – इसमे कोई शका व सदेह नही है। इस प्रकार उस दुष्ट विद्युद्दष्ट्र ने हमसे कहा ॥१८२॥

अरिविलान् शोल्लै मेयंड्रजिनो मडैयक्कूडि।
मरुविलान् ट्रवत्तिन् ट्रन्मै पयत्तौ नामदिक्क माटा ॥
शिरियर् याम सैदतीमै पेरियैनी पोरुक्कल् वेंडु।
मिरैवने येडुत्त् काटा मेंड्रवर पनिंदु निंड्रार् ॥१८३॥

अर्थ—उस दुष्ट विद्युद्दष्ट्र के इन वचनो से हमारे मन मे अत्यत भय उत्पन्न हुआ। सम्पूर्ण दोषो से रहित निर्मोही निरारभी, निस्सग, निर्दोष, सर्वसघ परित्यागी, विषय आशा से रहित, धर्म ध्यान सहित, आत्मध्यान मे लग्न, सद्गुणी ऐसे महामुनि के तपश्चरण के महत्व व गुणो को न जानकर अज्ञान से मूढ हुए हम विद्याधरो के द्वारा किये हुए अपराधो को क्षमा करना चाहिये। हमारे द्वारा किये गये घोर उपसर्ग को सहन करके सजयत मुनि ने कर्मो का क्षय करके मोक्ष पद को प्राप्त किया। वे धन्य है किन्तु हम पापी लोग इस कुकृत्य से कौन सी गति मे जाकर पडेगे, यह नही कहा जा सकता। इस प्रकार नत मस्तक होकर सारे विद्याधर धरणेंद्र से क्षमा याचना करने लगे ॥१८३॥

पुलिइनै कंडु पोक ट्रडैद पुल्वाय्गळ् पोल।
मेलियव रुरैक् नेंजं कुळैंदु पासत्तौनीकि ॥
पलरयुं पोगविट्टि पावियें सुट्रत्तोडु।
मोलि कडलिडुव नेन्ना उडंड्रवनेळुंद पोळदिल् ॥१८४॥

अर्थ—जिस प्रकार व्याघ्र को देखकर हरिण आदि पशु भयभीत हो जाते हैं, कोई भी उसके सामने नही ठहर सकता, उसी प्रकार धरणेंद्र से भयभीत होकर सभी विद्याधर घबराने लगे और सभी ने मिलकर क्षमायाचना की। उसी समय धरणेंद्र के मन मे दया आ गई और विद्युद्दंष्ट्र के सभी वधुओ को नाग फांस से छुडा दिया। किन्तु विद्युद्दंष्ट्र व

अनेक विद्याधरो को नही छोडा और क्रोध से गर्जना करते हुए कहा कि इन सब विद्याधरो को मैं समुद्र मे उठाकर फेंकू गा ।।१८४।।

नीदि दानत्तिनालेन् विन्नैगळै वेंड्र वीरन् ।
पादत्तामरैगळैंदि परिविन्न किरियै मुट्रि ।।
आदि दावत्तु नामत्तमर निड्रवनै नोक्कि ।
कोपतापत्तै नोकि गुणंकोळ कूर लुट्रान् ।।१८५।।

अर्थ—देवो ने क्रम पूर्वक आठो कर्मो को नाश करने वाले उन सजयत मुनि की स्तुति की। तदनंतर परिनिर्वाण कल्याण को पूर्ण करके आदित्य नाम के कल्पवासी देवने धरणेंद्र द्वारा अत्यत क्रोध भरे भाव से उन किए जाने वाले कृत्यो को देखकर मनमे विचार किया कि इस धरणेंद्र की क्रोधाग्नि को शात करने का उपाय करना चाहिये और इस प्रकार उसने कहना प्रारभ किया— ।।१८५।।

इवन् शैद कुट्रमेन् कोलेरेदे पोलिरुदं वेळै ।
इवनुशैद पोळ् दिर् शाल वरुळ् शय वेंडुमंड्रि ।।
इवन् ट्रन्नै यनैयारुंड्रन् कोवत्तु किडमु मल्लर् ।
उवंदिन्न मोड्रु केळा उरैक्किड्रे नुरगर् कोवे ।।१८६।।

अर्थ—हे धरणेंद्र! आप मेरी बात पर लक्ष्य देकर सुनो। इन विद्याधरो अथवा विद्युद्दष्ट्र द्वारा की हुई गलती की कौनसी बात है। पशु के समान रहनेवाले इन विद्याधरो ने क्या अपराध किया है, सो कहो। इस समय आपने जो इनपर क्रोध किया है यह योग्य नही है। आपको मैं इसका सभी हाल विस्तार पूर्वक सुनाता हू, सतोष के साथ सुनो ।१८६।

आदि वेदत्तु नादन् पुरुविद उलगमेत्त ।
नीदि मादवत्तै तांगि निरैद योगत्तिनिड्र ।।
पोदिनादरत्तीन् वंदार् भोगवातारत्ति नार्गळ् ।
तीदिला गुणत्ति नार्गल् विनमियु नवियु यैंवार् ।।१८७।।

अर्थ—प्रथम तीर्थंकर भगवान वृषभदेव के दीक्षा लेने के बाद उनके साथ ही घटी हुई घटना के सम्बन्ध मे थोडा सा विवेचन करूगा—

श्री आदिपुराण मे प्रथमानुयोग विषय मे आये हुए विवेचन को सुनो। कच्छ और और महाकच्छ के नमि और विनमि यह दो राजकुमार थे। जहा भगवान वृषभदेव तपस्या कर रहे थे, वहा वे दोनो राजकुमार आये और अनन्य भक्ति करते हुए उनके सन्मुख खडे हो गये ।।१८७।।

वंदवरिरैवन् पादम् वलंकोडु वनंगि वाळ्त्ति ।
अंद मिनिदियु नाडु मरसरुक्कींद वन्नाळ् ।।

वंदिल मडिगळिड् वंदन मन्नेमुक्कु ।
तंदपिन् नंड्रि पोगोयेंड्रु ताळ् तोत्तिनारे ॥१८८॥

अर्थ—ये राजकुमार वृषभदेव भगवान को तीन बार नमस्कार करके उनकी स्तुति करने लगे। तत्पश्चात् वे दोनो राजकुमार वृषभदेव भगवान् से जो तपश्चरण मे लीन थे अनेक देशो को मागने लगे और मागते २ कहने लगे कि हे प्रभु! आपने अन्य सभी राजकुमारो को देश, राज्य, ऐश्वर्य आदि बाट दिये। हम उस समय आये नही थे। इसलिये स्वामिन्! हम अभी आये है, दया करके कुछ ऐश्वर्य, देश आदि हमको भी दीजिये। इस प्रकार योग मे मग्न हुए आदिनाथ भगवान के चरण पकड कर ये दोनो राजकुमार माग रहे थे कि देश और ऐश्वर्य हमको भी मिलना चाहिये—हम दूर से आये है, और जब तक आप हमे नही देगे हम यहा से नही जायेगे ॥१८८॥

मूंड्रुलगमुत्तवरु मुत्तिक्किळवरसा ।
यांड्र वनुत्तरत्तु लंड्रमरं दाय नीये ॥
यांड्र वनुत्तरत्तु लंड्रमरं दु वंदायै ।
मूड्रुलग मोत्तिय वारु शोल्ल मुडियादे ॥१८९॥

अर्थ—इस तीन लोक के समस्त प्राणी आपकी स्तुति करने आते हैं और मोक्षरूपी युवराज पद को प्राप्त करने के लिए पूर्व जन्म मे पचानुत्तर नाम के अहमिंद्र स्वर्ग मे आपने जन्म लिया था। वहा के वैभव भोग आदि को भोग कर वहा से चयकर इस मध्यलोक मे आकर वृषभनाथ तीर्थंकर हुए। इस तीन लोक मे रहने वाले सभी जीव आपकी जो स्तुति करते हैं उसके वर्णन करने मे हम समर्थ नही हैं। वह स्तोत्र स्वर्गावतरण जन्माभिषेक के समय मे किया हुआ है ॥१८९॥

अंतरमुंड्रिवरु मुत्ति किळवरसा ।
मंदरत्तिन् मांडशिरप्पमरं दाय् नीये ॥
मंदरत्तिन् मांडशिरप्पमरु दु मन्नुलग ।
तदरत्तै नीक्कु मरसळित्ताय् नीये ॥१९०॥

अर्थ—शाश्वत मोक्षपुरी के अधिपति होने वाले हे स्वामी! आपका महामेरू पर्वत पर जन्माभिषेक देवो के द्वारा किया गया। हे स्वामी! इस भूमि पर अवतार लेकर आप निर्विघ्नता से और दोषरहित राज्य का प्रतिपालन करने वाले हुए हैं ॥१९०॥

आदियोडद मिला मुत्तिकिळ वरसाय् ।
मादवनाय मन्निन् मिशैयमरं दाय नीये ॥
मादवनाय मन्निन् मिशैयरं दोय् वान् पुगळे ।
योदिय मूकलगु मेत्तावारु डो ॥१९१॥

अर्थ—आदि अत रहित ऐसे मोक्ष सुख को प्राप्त करने के लिए युवराज पद को प्राप्त होने वाले हे प्रभू ! आप तपश्चर्या करके घातिया कर्मो का नाश करके केवल ज्ञान को प्राप्त करने वाले है, इसलिये तीन लोक के समस्त जीव आपकी स्तुति करते है ।।१९१।।

पाडिनार् पखयेल्लाम् तलइन् मेल् वीळंदमन्मे ।
लोडुवार् तांमळेल्ला मुरुंगु निड्रु वंदु केटार् ।।
पीडिनलिरैव नींड्रान् पिरंगुदार् निरंकोळ् शेन्नि ।
याडुमा नागराजनवदिया लदनै क्कंडान् ।।१९२।।

अर्थ—इस प्रकार नमि व विनमि राजकुमारो ने नम्रता व भक्तिपूर्वक सगीत के साथ अनेक प्रकार की स्तुति की । इस प्रकार भक्ति व संगीत करते समय इनके राग से मुग्ध होकर आकाश मे उडने वाले सभी पक्षी नीचे उतर आये । रास्ते से आने जाने वाले पथिक भी इनके सगीत को सुनकर मुग्ध होकर वही स्तब्ध रह गये । उस समय श्री वृषभनाथ तीर्थंकर ध्यान मे मग्न होकर खडे थे । इन सब विपयो को धरणेंद्र ने अपने अवधिज्ञान द्वारा जान लिया ।।१९२।।

कंडवन् कलैगळेल्लाड् कडन्दुप शांति सेड्र ।
पडित नोरुव नागिप्पादवाय् कैमुगात्तार् ।।
पुण्डरी गत्तैवेन्रु पोल मैयै नडिप्पान पोलक् ।
कोण्डदोर लेडन्तन्नालिरै वनैकुरुग वंदान् ।।१९३ ।।

अर्थ—उस धरणेंद्र ने ऐसा वेषधारण किया कि यह महान विद्वान शास्त्री है, उसने गले मे हार-माला आदि धारण कर जहा भगवान वृषभदेव ध्यानारूढ थे उस स्थान पर वह आ गया ।।१९३।।

वंदवन् मैन्दर् सैगैभै वडिवुकण्डु वन्दुवानिर् ।
सुन्दर मलर्ग ळूविइरै वनै वनंगिच्चोन्ना ।।
निन्दिरकिवर्क रैवन सेन्दामरै यडिक्कि सैविलाद ।
वंदरं पलवुं सैदोररोविलीर् पोगवेंड्रान् ।।१९४।।

अर्थ—वह धरणेंद्र वहा आया और नमि, विनमि को भगवान आदिनाथ की स्तुति करते देखा । उस स्तुति व स्तोत्र को देखते हुए अत्यत आनदित व सतोषप्रद हुआ । तत्पश्चात् धरणेंद्र भी स्तुनि करने लगा, पुष्प वृष्टि की, वाद मे वह धरणेंद्र इन दोनो कुमारो को देखकर कहने लगा कि दे अज्ञानी वालकुमारो ! भगवान के ध्यान मे इस प्रकार विघ्न डालना, यह कार्य तुम्हारा ठीक नही । इस स्थान को छोडकर आप अन्य स्थान पर चले जाओ ।।१९४।।

एन्एलुड् कुभरर सुन्ना रीरैवन्ट्रन् पेरुमैयामे ।
योन्रिमट्रिदुनी पोमुड् करुमत्तमेले ।।

यन्रनिलरिवि लामै यु'मैवन्दडैयु मेन्ड्रार् ।
किन्ड्रुनी रिरैवन्ट्रन्नेयिर क्किन्र देन्फोकोलेन्रान् ।।१६५।।

अर्थ—इस प्रकार धरणेंद्र के वचन सुनकर दोनो कुमार कहने लगे कि आप ही पडित हो जो हमे शिक्षा देने आये है । हम आप से अच्छा जानते है, आपको हमे इस विषय मे विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नही । आप जिस काम को आये है वही कार्य करो और जिस रास्ते से आये हो उसी रास्ते से चले जाओ । हमारे सबन्ध मे और कुछ कहने की आवश्यता नही । यदि नही मानोगे तो आपका अपमान होगा । इस कारण शीघ्र यहा से चले जाओ । इस पर धरणेंद्र ने कहा कि आप भगवान के चरण पकडकर क्या माग रहे है? ।।१६५।।

अरसराय्चिलरै नाट्टियरु पोरुळींडुमन्नै ।
विरमिनार कण्डं सैदुवेन्डु वार्कोन्दुपोन्दा ।।
नरसरे नांगळेंलिग नकवणिक्कु वन्दो मेन्न ।
उरेसैदपोरु ळिगुण्डो वुरुवना यिरैवमिराल् ।।१६६।।

अर्थ—इन वृषभनाथ तीर्थंकर ने सभी राज्य ऐश्वर्य आदि तो दे दिया और अब यहा तपश्चरण कर रहे है । हम दोनो राजकुमार वृषभनाथ भगवान् के पास राज्य मागने के लिये आये है । इस प्रकार दोनो बालकुमारो ने कहा ! इस पर धरणेंद्र ने उत्तर दिया कि तुम जिस राज्य सपदा की भगवान् से माग कर रहे हो वह उनके पास नही है, वे कहा से देगे ।।१६६।।

उलगमूंड्रु रुडय्य कोमारु कोंड्रु मट्रिल्लै येंड्रोर् ।
पलदरुदुंडु तीरा पळंपित्तर् नीविरेन्न ।।
निलमेलाम् भरतनक्षि'येवनुळै सेल्लमेंड्रा ।
नुलगिनुक्कुरुदि सोल्लउम्मयो विडुत्त देंड्रार् ।।१६७।।

अर्थ—तीन लोक के नाथ होने वाले वृषभनाथ स्वामी के पास कौनसी सपत्ति नही है? इनके पास सारी संपत्ति व द्रव्य भरा हुआ है । इसलिये धरणेंद्र तुम कुछ समझने नही हो पागल के समान दीख रहे हो । क्या वृषभनाथ स्वामी के पास सपत्ति की कमी है? कोई कमी नही है । तुमको कुछ मालुम नही है । किसी भी प्रकार की गडबड मत करो । तब धरणेंद्र ने दोनो कुमारो से कहा कि इस समय षट्खड का स्वामी भरत चक्रवर्ती है । जो कुछ मागना हो उनके पास जाकर मागो । तब राजकुमार कहने लगे कि क्या ससार मे तुमही विद्वान हो? हमे तुम ज्ञान सिखलाने को आये हो । जिस तरह औरो को ज्ञान सिखाने फिरते हो वैसे ही क्या हमे भी ज्ञान सिखाने आये हो ? ।।१६७।।

मरुविला गुणति नीर्गळ् वडिओडु वाक्कुंडेनु ।
मरिविनार् शिरिईरशाळ वप्पनीरेलुम् केन्मिन् ।।

पिरर्विन वामर् शेप्पल् पेर्ंडुळि शेरिदल् पिन्सेन् ।
ट्रिरै वरंपिरिदिडामै एळैगळियकँ कंडिर् ॥१६८॥

अर्थ—तब धरणेद्र नमि विनमि कुमारो को कहने लगा कि बेशक तुम सुन्दर व शक्तिशाली हो। परन्तु तुम्हारे मे कुछ ज्ञान की कमी है ऐसा मुझे दीखता है। हे उच्च वश मे जन्मे हुए राजकुमारो! इस सबध मे कुछ कहना चाहता हूँ ध्यान पूर्वक सुनो! तुम लोग हमारे उपदेश को न समझते हुए भीख मागते हुए निर्धन भिखारी के समान मालुम पडते हो ॥१६८॥

नादत् पानांगळोंड्ु पेट्ु नेल्लवर्गळेत्त् ।
पोदमोडुक्कु मीवि भूमि येंदरैगळ् पेट्राल् ॥
आदलार् भरतनंडि् देवर् कोनळित्त देनुं ।
यादुनाम् वेंडल् सेल्लो मिनिडरै योळिग वेंडार् ॥१६६॥

अर्थ—दोनो राजकुमार धरणेद्र के इस प्रकार के वचन सुनकर कहने लगे कि यह भगवान् हमको अपने हाथ से कुछ भी देदे तो हमको समाधान है, परन्तु यदि अन्य कोई चक्रवर्ती पद भी दे दे, भरत चक्रवर्ती कितना भी हमको देदे, हमे कोइ समाधान नही है। इस प्रकार गर्जना करते हुए दोनो राजकुमारो ने धरणेद्र से कहा ॥१६६॥

एंड्रलु मेन्नै मन्नर् मंदर् तं पेरुमै येन्नार् ।
शेंड्रवन् शेन्नि शाविट्रिरैवन् ट्रान् शेप्पक्केट ॥
तोंड्रन दंववन् पोलुरुवु कोंडदनि नींगि ।
निंड्रनन् मुडियुं पून्मामुं कुळयु मिन्न ॥२००॥

अर्थ—इस प्रकार नमि और विनमि की बाते सुनकर धरणेद्र ने अपने मन मे उन कामनाओ को जानकर वह भगवान् के पास गया और कान के पास कान लगाकर खडा हो गया। यह दिखाने के लिए कि भगवान् धरणेद्र से कुछ कह रहे है। धरणेद्र से कुछ ही समय खडा ऐसा करके नमि विनमि कुमारो के पास आकर खडा हो गया ॥२००॥

मुन्नैतन्नुरुवं काटि मुनिवनीर्नेंडिट्रिय ।
वेन्नंइंड्रुळि सैदा नेळुगनी रोन्नोडेंड्ु ॥
मिन्नुमोर विमानमेट्रि वेदंट मवरोडेदि ।
मनराइ नाटिइट्टान् मलैनिर्ण यरसरयिकल्लाम् ॥२०१॥

अर्थ—तदनन्तर वह धरणेद्र कहने लगा कि हे राजकुमारो! वृषभनाथ भगवान ने [illegible] यह कहा है कि हे धरणेद्र! यह राजकुमार जो कुछ माग रहे है उनको देदो, सो यदि [illegible] विमान मे बैठकर चलोगे तो जो भगवान ने कहा है वह [illegible] मै तुमको दे दूंगा। इस बात को सुनकर के दोनो राजकुमार विमान मे बैठकर चलने को राजी हो गए।

तत्पश्चात् वह धरणेंद्र उन दोनो कुमारो को अपने विमान मे बिठा कर विजयार्द्ध पर्वत पर ले गया ॥२०१॥

मलमलि वडगिर् शेडि येरुबदु करसनाग ।
विनमि नाट्टि पूरम् कनक पल्लवत्तैईंदा ॥
ननय्यलै तेरकिर् सोडि यैवदु नमिक्कु मींदु ।
पुणैवरु शक्कवाळ् मिरदनू पुरत्तै वैत्तान् ॥२०२॥

अर्थ—विजयार्द्ध पर्वत पर उत्तर श्रेणी में रहने वाले सात नगरो के राजाओ पर नमि कुमार को अधिपति बनाया और विनमिकुमार को कनकपुर नगर मे लेजाकर दक्षिण श्रेणी के पचास नगरो का अधिपति बनाया। इस प्रकार दोनो को चक्रवर्ती वना दिया ।२०२।

विजैगळंजुनूरु शिरयन वेळुनूरु ।
तंजमा ववर्गट्कींदु तानव्र तम्मै येल्ला ॥
र्मजिनीरिवर् गळानै केट्टु वदिरैजिरागिर् ।
ट्र ुजिनीरेड्र ु कोन्मिन् मलैयुमोर् तुगळदाम् ॥२०३॥

अर्थ—कुमारो ने चक्रवर्ती बनने के बाद उन दोनो को धरणेंद्र ने ५०० महाविद्या और ७०० क्षुल्लक विद्या देकर पर्वत पर रहने वाले सभी विद्याधर राजाओ से कहा कि तुम्हारे नगर के ये दोनो कुमार अधिपति है। ये दोनो जैसा कहेगे उसी प्रकार तुमको इनकी आज्ञा मे रहना पडेगा। यदि तुम लोगो ने इनकी आज्ञा का उल्लघन किया तो तुम्हारी सपत्ति आदि छीन ली जायेगी ॥२०३॥

एंड्र वर्करसु नाटि इलंगु पन्नगर्क ु नादन् ।
सेड्र ुतन् भवनम् पुक्कान् सेळुमणि मुडिविव् वीश ।
वंड्र ु तोट्टिड्र ु कारु मरुंळु मिर्पेट्र ु वंद ।
मिद्रिगळ् तंदनंद विननि तन कुलत्ति नुळ्ळान् ॥२०४॥

अर्थ—इस प्रकार उन विद्याधरो को कहकर दोनो राजकुमारो को चक्रवर्ती पद पर राज्याभिषेक करके वह धरणेंद्र अपने स्थान को चला गया और जाते समय यह और कह गया कि यहा की परपरा से चले आये विद्याधरो मे यह ही विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर है ॥२०४॥

नंजुडै मरत्तैयेनुनट्ट ु नीरट्टियाकि ।
बिंजिय वदनैत्ताये वीट्ट ुद लरिदि यार्कु ॥
मेंवदि उलगिनिड् दरिदिये नीविर् नाट ।
विजयर् कुलत्त मेनिवेगुळ् घदन् विड्डुगनेंड्रान् ॥२०५॥

अर्थ—आदित्य देव ने धरणेंद्र से कहा कि विषवृक्ष के लगाने तथा बडा हो जाने के बाद उसको काटना सत्पुरुषो के लिये उचित नही है, ऐसा विद्वानो का कहना है। एक कवि ने कहा है.—

जल न डुबोवत काठ को कहो कहा को प्रीति।
अपनो सोचो जान के यही बडो की रीति ॥

इस बात को भली प्रकार मनन करना चाहिये। यह सभी को मालुम है। परम्परा से विद्याधरो मे ऐसा कथन चला आया है कि किसी को किसी प्रकार का भी कष्ट देना उचित नही है। इसका भावार्थ यह है — धरणेंद्र को आदित्य देव समझाने लगा। उस समय भगवान् के ध्यान से इन्द्र का आसन भी कपायमान हो गया था। महापुरुषो का धैर्य भी जगत के कपन का कारण हो जाता है। इस प्रकार छै महीने मे समाप्त होनेवाले प्रतिमा योग को प्राप्त हुए धैय से शोभायमान रहने वाले भगवान् का वह लम्बा समय भी क्षणभर मे व्यतीत हो गया। इसी के मध्य कच्छ महाकच्छ के पुत्र वे दोनो राजकुमार जो आये थे वे महान तरुण व सुकुमार थे। नमि और विनमि उनका नाम था, और दोनो ही भक्ति से निर्मल होकर भगवान् की चरणो की सेवा करना चाहत थे। वे दोनो ही भोगोपभोग विषयक तृष्णा से सहित थे। इसलिये हे भगवन् ! आप प्रसन्न होइये। इस प्रकार कहते हुए वे भगवान् को नमस्कार कर उनके चरणो से लिपट गये और उनके ध्यान मे विघ्न करने लगे और कहने लगे कि हे स्वामी ! आपने अपने इस साम्राज्य को पुत्र तथा पौत्रो को बाट दिया है। बाटते समय हम दोनो कुमारो को भूल ही गये। इसलिए अब हमको भी भोग सामग्री दीजिए। इस प्रकार वे भगवान् से बार–बार आग्रह कर रहे थे। उन दोनो कुमारो मे उचित अनुचित का कुछ भी ज्ञान नही था और वे दोनो उस समय जल, पुष्प तथा अर्घ से भगवान् की उपासना कर रहे थे। तदनतर धरणेंद्र नाम को धारण करनेवाले भवन-वासियो के अतर्गत नाग कुमार देवो के इन्द्र ने अपना आसन कपायमान होने से नमि विनमि के समस्त वृत्तात को जान लिया। अवधिज्ञान से इस सारे वृत्तात को जानकर वह धरणेंद्र वडे ही समारभ ठाठ के साथ उठा और भगवान् के समीप आया। वह उसी समय पूजा की सामग्री लेते हुए पृथ्वी काछेदन करते हुए भगवान् के पास पहुँचा और दूर से ही मेरु पर्वत के समान खडे हुए मुनिराज वृषभदेव को देखा। उस समय भगवान् ध्यान मे लवलीन थे और उनका देदीप्यमान शरीर तप के कारण प्रकाशमान हो रहा था। इसलिए वे ऐसे मालुम होते थे मानो वायुरहित प्रदेश मे दीपक ही हो, अथवा वे भगवान् किसी उत्तम यज्ञ करने वाले के समान शोभायमान हो रहे थे, क्योकि जिस प्रकार यज्ञ करने वाले अग्नि मे आहुति करने मे तत्पर रहते हैं, उसी प्रकार भगवान् भी महान ध्यान रूपी अग्नि मे कर्मरूपी आहुति जलाने के लिए उद्यत थे, और जिस प्रकार यज्ञ करने वाला अपनी पत्नि सहित यज्ञ करता है उसी प्रकार भगवान् भी कभी नही छोडनेवाले दया रूपी पत्नि के सहित थे। अथवा वे मुनिराज एक कु जर अथवा हाथी के समान मालुम होते थे क्योकि जिस प्रकार हाथी महोदय अर्थात् भाग्यशाली होता है उसी प्रकार भगवान् भी महान् भाग्यशाली व महोदय थे। जिस प्रकार हाथी का शरीर ऊ चा होता है उसी प्रकार भगवान् का शरीर भी ऊ चा था। हाथी जिस प्रकार सुअश अथवा पीठ की उत्तम रीढ सहित होता है, उसी प्रकार वे भी सुअश तथा उच्च कुल मे सुशोभित थे। हाथी जिस प्रकार रस्से के द्वारा खभे के बधा रहता

है। उसी प्रकार भगवान् भी उत्तम व्रत रूपी रस्सियो द्वारा तपरूपी बडे भारी खभे से बघे हुए थे। वे भगवान् सुमेरु पर्वत के समान उत्तम शरीर धारण किए हुए थे। क्योकि जिस प्रकार सुमेरु पवत अकपायमान रूप से खडा है उसी प्रकार उनका शरीर भी अकपायमान रूप से खडा था। सुमेरु पर्वत जिस प्रकार ऊचा होता है उसी प्रकार उनका शरीर भी ऊचा था। सिह, व्याघ्र आदि बडे बडे क्रूर जीव जिस प्रकार सुमेरु पर्वत की उपासना करते हैं अर्थात् वे वहाँ रहते हैं उसी प्रकार बडे–बडे क्रूर जीव भी शात होकर भगवान् की उपासना करते थे अर्थात् उनके समीप मे रहते थे। जिस प्रकार सुमेरु पर्वत इदु तथा महापुरुषो से उपासित होता है उसी प्रकार भगवान् का शरीर भी इंदु आदि महान् सत्वो से उपासित था। सुमेरु पर्वत जिस प्रकार क्षमा रूपी पृथ्वी के भार को धारण करने मे समर्थ होता है उसी प्रकार भगवान का शरीर भी क्षमा धारण करने मे समर्थ था। उस समय भगवान् ने अपने अत करण को ध्यान मे निश्चल कर लिया था तथा उनकी चेष्टा अत्यत गभार थी इसलिए वे वायु के न चलने से निश्चल हुए समुद्र की गभीरता को भी तिरस्कृत कर रहे थे अथवा भगवान् किसी अनोखे समुद्र के समान जान पडते थे। क्योकि उपलब्ध समुद्र तो वायु से क्षुभित हो जाता है परन्तु भगवान् परिग्रह रूपी महान वायु से कभी क्षुभित नही होते थे। उपलब्ध समुद्र तो जलाशय तथा जल है, तथा महान् जतुओ आदि से भरा रहता है परन्तु भगवान् तो दोष रूपी जल जतुओ से छुए भी नही गये थे। इस प्रकार वृषभदेव भगवान् के समीप धरणेद्र बडे आदर से पहुँचा और अतिशय तपरूपी लक्ष्मी से अलकृत उनके शरीर को देखता हुआ आश्चर्य करने लगा और प्रणाम किया। उनकी स्तुति की और फिर अपना तेज छुपा कर दोनो कुमारो से इस प्रकार सयुक्तिक वचन कहने लगा। हे तरुण पुरुषो! ये हथियार धारण किये तुम दोनो मुझे विकृत आकार वाले दिखाई दे रहे हो। कहा तो यह शात तपोवन और कहा यह भयकर आकार वाले तुम दोनो? प्रकाश और अधकार के समान तुम्हारा समागम क्या अनुचित नही है? अहो ये भोग बडे ही निदनीय है। जहा याचना नही करना चाहिये वहा भी याचना कराते हैं, सो ठीक ही है क्योकि याचना करने वालो को योग्य और अयोग्य का विचार ही कहा रहता है। यह भगवान् तो भोगो से निस्पृह है और तुम दोनो उनसे भोगो की इच्छा कर रहे हो सो यह तुम्हारी शिलातल से कमल की इच्छा आज हम लोगो को आश्चर्ययुक्त कर रही है। जो मनुष्य स्वय भोगो की इच्छा सहित होता है वह दूसरो को भी वैसा ही मानता है। अरे ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो अत मे सताप देने वाले भोगो की इच्छा करता हो? प्रारम्भ मात्र मे ही मनोहर दिखाई देनेवाले भोगो के वश हुआ पुरुष चाहे जितना बडा होने पर भी लघु हो जाता है। यदि तुम दोनो इन ससारिक भोगो को चाहते हो तो भरत के समीप जाओ क्योकि इस समय वे ही साम्राज्य का भार धारण करने वाले हैं। वे ही श्रेष्ठ राजा है। भगवान् तो अतरंग व बहिरग परिग्रह का त्याग करके अपने शरीर से निस्पृह हो रहे है। अब यह भोगो की इच्छा करने वाले तुम दोनो को भोग कैसे दे सकते हैं? इसलिये जो केवल मोक्ष जाने के लिए उद्योग कर रहा है ऐसे इन भगवान् के पास धरणा देना व्यर्थ है। तुम दोनो भोगो के इच्छुक हो। इसलिये भरत की उपासना करने के लिए उनके पास जाओ। इस प्रकार जब धरणेंद्र कह चुका तब वे दोनो नमि विनमि कुमार उसे इस प्रकार उत्तर देने लगे कि दूसरे के कार्यो मे आप की यह क्या आस्था है? आप महा बुद्धिमान है अत आप यहा से चुपचाप चले जाइये। क्योकि इस सम्बध मे जो योग्य अथवा अयोग्य है

उन दोनो को हम लोग जानते हैं, परन्तु आप इस विषय मे अनभिज्ञ है इसलिए जहा भी आप को जाना है जाईये । यह वृद्ध हैं यह तरुण है यह मात्र अवस्था का ही विचार है । वृद्धावस्था मे न तो ज्ञान की वृद्धि होती है और न तरुण अवस्था मे बुद्धि का ह्रास ही होता है बल्कि ऐसा देखा जाता है कि अवस्था के पक जाने से वृद्धावस्था मे प्राय. बुद्धि की मदता हो जाती है । और,प्रथम अवस्था मे प्राय: बुद्धिमानो की बुद्धि बढती रहती है । न तो नवीन अवस्था दोप उत्पन्न करने वाली है और न वृद्धावस्था गुण उत्पन्न करने वाली है । क्योकि चद्रमा नवीन होनेपर भी मनुष्यो को आल्हाद करता है और अग्नि जीर्ण होने पर भी जलाती है । हम दोनो ही इस प्रकार के कार्य आप से पूछना नही चाहते फिर आप व्यर्थ ही वीच मे क्यो वोलते हो ? आप जैसे निद्य आचारण वाले दुप्ट पुरुष बिना पूछे कार्यो का निर्देश कर तथा अत्यत असत्य व चापलूसी के वचन कह कर लोगो को ठगा करते हैं । बुद्धिमान पुरुषो की वाणी कभी स्वप्न मे भी असत्य भाषण नही करती । उनकी चेष्टा कभी दूसरो की बुराई करने को नही चाहती, न दूसरो के लिये कठोर वाणी होती है । जिन्होने जानने योग्य सम्पूर्ण तत्वो को जान लिया है ऐसे आप सरीखे बुद्धिमान पुरपो के लिये हम बालको के द्वारा न्याय मार्ग का उपदेश देना योग्य नही है । क्योकि जो सज्जन पुरुष होते है वे न्यायपूर्वक जीविका से प्रसन्न रहते है ।

वे कुमार आगे कहने लगे कि आयु के अनुकूल धारण किया हुआ यह आपका वेष वहुत ही शात है, आपकी आकृति भी सौम्य है और आपके वचन भी प्रसाद गुण सहित तथा तेजस्वी है, और आपकी बुद्धि इतनी विलक्षण है जो अन्य साधारण पुरुपो मे नही पाई जाती । ऐसा यह आपका भीतर छिपा हुआ अनिर्वचनीय तेज तथा अद्भुत शरीर आपकी महानुभावना को कह रहा है । इस प्रकार आपका विशिष्ट विवेक भी आयु की विशेपता को प्रकट कर रहा है । ऐसे पुरुष महान भद्र होते है फिर भी आप हमारे कार्यो मे मोह उत्पन्न कर रहे है, इसका क्या कारण है, यह हम नही जानते । भगवान् वृपभदेव को प्रसन्न करना सव के प्रशसा करने योग्य है । यही हम दोनो का इच्छित फल है अर्थात् हम लोग भगवान् को ही प्रसन्न करना चाहते है । परन्तु आप उस मे विघ्न डाल रहे हो इसलिए जान पडता है कि दूसरो के कार्य करने मे आप उद्योगशील नही है । आप दूसरो का भला नही होना देना चाहते । दूसरो की वृद्धि देख कर दुर्जन मनुष्य ईर्ष्या करते हैं । आप जैसे सज्जन और महापुरुपो को दूसरो की वृद्धि से ही प्रसन्न होना चाहिये । भगवान के वन मे निवास करने से क्या उनका प्रभुत्व नप्ट हो गया है ? देखो भगवान् के चरण कमलो मे यह चराचर विश्व विद्यमान है । आप जो हम लोगो को भरत के पास जाने की सलाह दे रहे हो, यह वात ठीक नही है, क्योकि ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो बडे २ फलो की इच्छा करनेवाला पुरुप कल्पवृक्ष को छोडकर अन्य पेडो की सेवा करेगा, अथवा रत्नो की इच्छा करने वाला पुरुप महासमुद्र को छोडकर शिवाल (कीचड) मे होने वाले समुद्र की सेवा करेगा अथवा धान की इच्छा करने वाला पुआल(भूसो)की इच्छा करेगा? भगवान् वृपभदेव और भरत मे क्या बडा भारी अन्तर नही है ? क्या गोष्पद की समुद्र के साथ बराबरी हो सकती है? क्या लोक मे स्वच्छ जल से भरे हुए जलाशय नही है जो चातक पक्षी हमेशा मेघ से ही जल की याचना करता है? क्या उसकी अनिर्वचनीय हठ नही है ? अभिमानी पुरुप उदार हृदय वाले का आश्रय लेकर अपने मार्ग पर ही चला करते हैं । सो आप इसको उन्नति का ही आधार समझो ।

इस प्रकार उन नमि विनमि कुमार के अभिमान भरे वचन सुन कर वह धरणेंद्र मन मे बहुत सतुष्ट हुआ। सो ठीक ही है, क्योकि अभिमानी पुरुषो का धैर्य प्रशसा करने योग्य होता है। वह धरणेंद्र मन ही मन विचार करने लगा कि अहा ! इन दोनो तरुण कुमारों की इच्छा कितनी बडी है, इनकी गभीरता भी आश्चर्य-कारक है। भगवान् आदिनाथ मे इनकी श्रेष्ठ भक्ति भी आश्चर्य जनक है। इनकी निस्पृहता भी प्रशसा करने योग्य है। इस प्रकार वह धरणेंद्र अपना दिव्य रूप प्रकट करता हुआ, उनसे प्रीतिरूपी लता के समान बचन कहने लगा कि तुम दोनो तरुण होने पर भी वृद्ध के समान हो, मैं तुम दोनो की धीर वीर चेष्टाओ से बहुत ही प्रसन्न हुआ हू मेरा नाम धरणेंद्र है। मैं नागकुमार जातियो के देवो का इ द्र हूँ। मुझे आप पाताल व स्वर्ग मे रहने वाले देवो का किंकर समझो तथा मैं आप की यहा की भोगोपभोग सामग्री को जुटाने आया हूँ। "ये दोनो कुमार महान भक्त है। इन दोनो की इच्छा भोगो से पूर्ण करो" इस प्रकार भगवान् ने मुझे आज्ञा दी है और इसी कारण मैं शीघ्र यहा आया हूँ। विश्व की रक्षा करने वाले भगवान् से पूछ कर आज मै तुम दोनो की बताई हुई भोग सामग्री दू गा। इस प्रकार धरणेंद्र के वचनो से वे दोनो राजकुमार अत्यत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि सचमुच ही गुरुदेव हमपर प्रसन्न हुए है और हमको मनवांछित फल देना चाहते है। इस विषय मे जो सच्चा मत हो वह हम से कहिये; क्योकि भगवान् की सम्मति बिना भोगोपभोग सामग्री इष्ट नही है।

तब उन दोनो कुमारो की बात सुनकर युक्ति पूर्वक विश्वास दिलाकर धरणेंद्र भगवान् को नमस्कार करके उन दोनो कुमारो को अपने साथ लेगया। महान् ऐश्वर्य युक्त वह धरणेंद्र दोनो कुमारो के साथ विमान मे बैठकर आकाश मे जाता हुआ ऐसा शोभायमान हो रहा था मानो ताप और प्रकाश के समान उदित हुआ सूय ही है। अथवा जिस प्रकार विनय और प्रशम गुणो से युक्त कोई योगीराज सुशोभित होता है। इसी प्रकार नागकुमार के समान वह धरणेंद्र भी अत्यत सुशोभित हो रहा था। वह दोनो राजकुमारो को बिठाकर तथा आकाश माग का उल्लघन कर शीघ्र ही विजयार्द्ध पर्वत पर आ पहुँचा। उस समय वह पर्वत पृथ्वी रूपी देवी के हास का उपमा दे रहा था।'

यह विजयार्द्ध पर्वत अपनी पूर्व और पश्चिम की चोटियो से लवण समुद्र मे प्रवेश कर रहा था और भरत क्षेत्र के बीच मे इस प्रकार स्थित था कि मानो उसके नापने का वह दड ही हो। वह पर्वत ऊ चे-ऊ चे रत्नो से नाना प्रकार से विचित्रताओ के लिए हुए था और अपनी इच्छानुसार आकाश गगा को घेरे हुए अपने शिखरो से ऐसा जान पडता था मानो मुकटो से ही शोभायमान हो रहा हो। पडते हुए झरनो के शब्दो से उसकी गुफाओ के मुख आपूरित हो रहे थे और ऐसा मालुम होता था कि मानो अतिशय विश्राम करनेवालो के लिये देव देवियो को बुला ही रहा हो। उसकी मेखला अर्थात् बीच का किनारा पर्वत के समान ऊंचा जहा नही चलते हुए तथा गम्भीर गर्जना करते हुए बडे-बडे मेघो द्वारा चारो ओर से ढका हुआ था। देदीप्यमान स्वर्णो से युक्त और सूर्य की किरणो से सुशोभित अपनी किरणो के द्वारा वह पर्वत देव और विद्याधरो को जलते हुए दावानल की शका कर रहा था। उन पर्वत के शिखरो के समीप लंबी धारा वाले जो बडे-बडे झरने पडते थे, उनसे मेघ जर्जरित हो जाते थे, और उनसे उस पर्वत के समान ही बडे-बडे झरने बनकर निकल रहे रहे थे। उस पर्वत के बनो मे अनेक लताए फैली हुई थी और उन पर भ्रमर बैठे हुए थे।

उनमे वह पर्वत ऐसा मालूम होता था मानो सुगन्ध के लोभ से वह उन वनलताओ को चारा ओर से काले वस्त्रो के द्वारा ढक ही रहा हो। वह पर्वत अपनी उपत्यका अर्थात् समीप की भूमि मे देवियो तथा देवो को धारण करता था। जो परस्पर प्रम से युक्त थे और सभोग करने के अनतर वीणा आदि वाजो को बजाकर विनोद किया करते थे। उस पर्वत के उत्तर और दक्षिण की ओर दो श्रेणियाँ थी जो दो पखो के समान बहुत ही लबी थी और उन श्रेणियो मे विद्याधरो के शिखरो पर जो झरने बह रहे थे उनसे वे शिखर ऐसे जान पडते थे मानो ऊपरी भाग पर पताकाए फहरा रही हो। ऐसे ऊचे-ऊचे शिखरो से वह पर्वत ऐसा मालूम होता था मानो आकाश के अग्रभाग का उल्लघन ही कर रहा हो। ऐसे वह धरणेद्र उस विजयार्द्ध पर्वत की प्रथम मेखला पर उतरा और वहा उसने दोनो राजकुमारो को वहा के विद्याधरो के लोक दिखलाए।

इन्ही दक्षिण और उत्तर श्रेणियो मे क्रम से पचास और साठ नगर सुशोभित है। नगर अपनी शाभा से स्वर्ग के नगरो को भी मात करते है। इस प्रकार धरणेद्र ने उन नगरो का परिचय राजकुमारो को करा दिया और कहा कि तुमही इन विद्याधरो के नगरो के राजा बनकर इनकी रक्षा करो। इस प्रकार युक्ति सहित धरणेद्र के वचन सुनकर राजकुमारो ने विजयार्द्ध पर्वत की प्रशसा की और फिर उम धरणेद्र के साथ-साथ नीचे उतर कर अतिशय श्रेष्ठ और ऊची-ऊची ध्वजाओ से सुशोभित रत्नपुर चक्रवाल नाम के नगर मे प्रवेश किया। धरणेद्र ने दोनो कुमारो को सिहासन पर बिठाकर सब विद्याधरो के हाथो से उठाये हुए स्वर्णो के बडे-बडे कलशो से राजकुमारो का राज्याभिषेक कराया और विद्याधरो से कहा कि जिस प्रकार इद्र स्वर्ग का अधिपति है उसी प्रकार ये नमि विनमि राजकुमार उत्तर व दक्षिण श्रेणियो के अधिपति है। अनेक सावधान विद्याधरो के द्वारा नमस्कार किये गये ये दोनो राजकुमार चिरकाल तक अधिपति रहेगे। कर्मभूमि रूपी जगत को उत्पन्न करने वाले भगवान् वृषभदेव ने अपनी सम्मति से इन दानो को यहा भेजा है। इसलिये सब विद्याधर राजा लोग प्रेम से मस्तक झुकाकर इनकी आज्ञा शिरोधार्य करे।" आदित्य देव धरणेद्र से कहता है कि कुल परपरा से चले हुए यह विद्युद्दंष्ट्र हैं ॥२०५॥

विनैयर वेरिंदवीरन् विदेगत्त् वीत शोगम् ।
तनैयुडै वैजयंदन् ट्रन्मगनिन् मुनुट्रन्मै ॥
किनैयव नेवर्कु मेद मनत्तिनु निनैत्तिडादान् ।
ट्रनैइवै शेदान् वावनाइनु तडिवन् कंडाय् ॥२०६॥

अर्थ—जिमने कर्मो का नाश कर दिया ऐसे वह सजयत मुनि थे। विदेह क्षेत्र के मवधित हुए वीतशोक नाम के नगर के अधिपति राजा वैजयत थे। उम राजा का वह जेष्ठ पुत्र है, और मैं पूर्व जन्मका उनका छोटा भाई हू। यह सजयंत मुनि सम्पूर्ण जीवो के हित करनेवाले तपश्चरण का भार ग्रहण करने वाले है और विद्युद्दष्ट्र ने उनपर घोर उपसर्ग किया। इसलिए मैं विद्युद्दष्ट्र से बदला लिये बिना नही छोडूगा। इस प्रकार धरणेद्र ने आदित्य देव से कहा ॥२०६।

उनक्किवन् ट्रमयनाय पिरप्पु नीर्यरिद दोंड्रे ।
उनक्कु मुनिवनु माय पिरप्पेन्नि लुरैक्कलाट्रा ।।
विनैक्कु वित्तिट्टवेंडा वेगुळिवे पयै पेरुक्कि मै मै ।
निनैत्तिर्डेर् सुट्रमड्रि निड्रवरिल्लै कंडाय् ।।२०७।।

अर्थ—इस प्रकार सुनकर आदित्य देव कहने लगा कि हे धरणेंद्र यह सजयत मुनि एक ही भवका मेरा भाई है। तुम जानते हो, परन्तु यह पूर्व मे कितने भव धारण करते हुए यहा आया है, यह कहना असाध्य है। इस प्रकार विना समझे विद्युद्दष्ट्र पर क्रोध करना उचित नही। आप शाति रखे और क्रोध भाव को शमन करें। वास्तविक दृष्टि से विचार करके देखा जाय तो ससार मे सभी अपने बधु है, सभी मित्र है, शत्रु कोई नही है। दुख दायक यह विषय भोग है। अत विचार व भावना से किसी को कष्ट नही देना चाहिये ।।२०७।।

वरु तिरै मनलिनुं वळिई नाट्रिरन् ।
शरुगिलै पोलवुं शायै पोलवुं ।।
मरुवियविनै वसं वरुवदल्लदिङ् ।
कोरुवर् कनुर ओरुनाळु मिल्लये ।।२०८।।

अर्थ—जिस प्रकार समुद्र मे तरंगे उठती बैठती हैं और जोर से तूफान आने पर वृक्ष पर से पत्ते उड जाते हैं, अर्थात् पतझड हो जाता है, तथा आधी से सारे सूखे पत्ते उडकर इकट्ठे हो जाते हैं, उसी प्रकार अपनी छाया भी अपने को छोड कर दूसरी ओर नही जाती अपने साथ ही आगे पीछे चलती है और इसी प्रकार कर्म भी अपने साथ ही रहेगे। एक दूसरे के साथ नही रहेगे। अपने द्वारा उपार्जित शुभाशुभ कर्मों के निमित्त से उत्पन्न होनेवाले सुख स्थिर नही रहते सभी क्षणिक रहतें हैं ।।२०८।।

मिन्निनु मिगै ननि तोंड्री बदिलिन ।
मन्निय उयिर्द मिन् मरुविलादन ।।
मुन्नै मूबुलगिनु ळिल्लै यायिनु ।
पिन्निय उरविदु पेरिदु मिल्लये ।।२०९।।

अर्थ—आकाश मे बिजली की चमक के समान समस्त जीव जन्म मरण करते आये है। इस तीन लोक में सर्वजीव परस्पर बधु के रूप मे भी है, नाती तथा मित्र भी हैं। परन्तु वे कभी भी स्थिर होकर अपने साथ नही रहते सदैव उनका सयोग वियोग होता ही रहता है ।।२०९।।

उट्रवरे युरुपगैङ रागुवर् ।
सेट्रवरे शिरंदारु मागुवर् ।।

मट्रवरे मरित्तिरंडु मागुवर् ।
अट्रव रोरुवरिमारु मिल्लये ।।२१०।।

अर्थ—इस जन्म मे अपने बधु के रूप में रहने वाले जीव परभव में अपने वधु रूप मे होकर जन्मते हैं। इस जन्म मे रहने वाले विरोधी जीव अगले जन्म मे विरोधी होकर जन्मते है। इस प्रकार प्रत्येक भव मे जन्मते आए हैं। अर्थात् कई भव भवातरो मे मित्र होकर जन्म लेता है, कई भवो मे शत्रु होकर जन्म लेता है। अतः इस प्रकार शत्रु व मित्र इस जन्म मे एक भी जीव नही है ।।२१०।।

अरसर्गळे यरुनरग नागुवर् ।
नरकर्गळे नलवरस लागुवर् ।।
सुररवरे तोळु पुलैय रागुवर् ।
नररवरे करु नायु रागुवर् । २११।।

अर्थ—बडे-वडे चक्रवर्ती जितने सुखी देखने मे आते है, वे प्रायः अत्यंत दुख देने वाले नरक मे जाते हैं। ससारी जीव इस मनुष्य जन्म मे चकवर्ती राजा होकर जन्मते हैं। स्वर्ग के देव भी वहा अपनी-अपनी आयु की समाप्ति पर अथवा व्याधि आदि कष्टो को पाकर भी जन्म लेते हैं और मनुष्य पाप के उदय से कही काले कुत्ते भी होकर जन्म लेते है ।।२११।।

मंगैयरे वाळ रागुवर् ।
तंगैयरे मरुत्तायु मागुपर् ।।
अंगवरे थेडियारु मागुवर् ।
इगिदु पिरविय दियल्विन् वण्णमे ।।२१२।।

अर्थ—कभी स्त्री पुरुष पर्याय मे जन्म लेती है, कभी भगिनी माता होती है। माता भगिनी होती है, पुत्र माता के रूप मे, माता पुत्र के रुप मे जन्म लेता है। इसी प्रकार पिता, पुत्र होता है, पुत्र पिता होता है। ये सव पूर्व भव मे किए गये पाप पुण्य का फल समभना चाहिये ।।२१२।।

सुट्रम पगयुमेंड्रि रडु मेल्लया ।
अट्रिद वळक्किनान् मदिइन् मांदर्गळ् ।।
पैट्रियै पार्कोडा पेट्र दोड्रिले ।
सेट्रमु मार्वमुं शेंड्र निर्परे ।।२१३।।

अर्थ—वधु मित्र शत्रु विरोधी यह कभी भी शाश्वत रूप मे नही होते। इस विषय मे भली प्रकार मे जाने हुए ज्ञानी लोग अनंत सुख को प्राप्त करने के लिये सुख और दुख को समान भाव मे सहन करते हैं। जैसा कि —

सुखे दुःखे वैरिणि बंधु वर्गे,
योगे वियोगे भुवने वने वा ।
निराकृताशेष–ममत्व बुद्धेः,
सम मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ।।

सुख व दुख मे वैरी व बधुओ मे योग मे वियोग मे महल मे व बन मे इस प्रकार समस्त ममत्व बुद्धि रहित होकर मेरा मन समस्त वस्तुओ मे सम भावनासमान होकर रहे ऐसी भावना योगी लोग सदा भाते है ।।२१३।।

अनतमाम् पिरविगु लरुंदव लुनै ।
पुनर् दवुं पगैवना यनदं पोलुमा ।।
लनदमे इवनुर वागि वदवुं ।
निनैत पिन् निदु मगै युरवि नीम्रये ।।२१४।।

अर्थ—अनंत भव भवातर मे इस सजयत मुनि के तुम अनेक समय मे शत्रु और मित्ररूप से विरोधी होते आये हो। यह सजयत मुनि तथा विद्युद्दंष्ट्र अनेक जन्मो मे शत्रु और मित्र के रूप मे सबध करते आये है। सर्व विषयो पर विचार करके देखा जाय तो यह ससार शत्रु और मित्रो से अनादि काल से परिवर्तनशील होकर चला आ रहा है। इस कारण यह दोनो ही शाश्वत नही है ।।२१४।।

येप्पिरप्पिनुं पगै युनक्किव नलन् मुनियु मोरुरवल्लन् ।
एप्पि रप्पिनुं पगै युवर् कुंडुमट्रुर वुन किवनल्लन् ।।
इप्पि रप्पिळिप्पगै युर वुक्कु नीइप्पडि येळुवायेर् ।
शेप्पिरंदुळि पगै युरवुक्कु नीशैवदेन् निरु वाळा ।।२१५।।

अर्थ—अनेक जन्म को धारण करने वाला यह विद्युद्दंष्ट्र शत्रु के रूप मे तुम्हारे लिए नही आया और संजयंत मुनि के लिए मित्रता का रूप भी धारण करके नही आया। इस सजयत मुनि को और विद्युद्दंष्ट्र को पूर्व जन्म मे किए हुए कर्म से यह उपसर्ग उत्पन्न हुआ है। इसी जन्म मे किया हुआ यह उपसर्ग हो, ऐसा समझकर उस द्वेष से उनपर तुम्हारे द्वारा क्रोध करने से संजयत मुनि ने पिछले जन्म मे तुम्हारे पर उपसर्ग किया हो ऐसा समझना उचित नही। इसलिए अब आगे तुम क्या करोगे इस सम्बध मे विचार करके कहो। इसलिए हे धरणेंद्र इन पर क्रोध तथा उपसर्ग करना मूर्खता है, अत उपसर्ग न करके शाति धारण करो ।।२१५।।

ऐबरि वट्रनै येगत्तिल् वाळुयिर् ।
कॅपल सोह्लि इड्रि वनै नी विडु ।।

मुंदिवन् ट्रनक्कींड्र मुनिक्कनायदो ।
रेन्बुरु वेरत्तालिवर्को दायदे ।।२१६।।

अर्थ—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव इन पाच प्रकार के परिवर्तनो का वर्णन कितना भी किया जावे परन्तु पूरा नही हो सकता। यह सब शुभाशुभ कर्मो के निमित्त से होता है, इसलिए हे धरणेंद्र! तुम इस विद्युद्दंष्ट्र को छोड दो। क्योकि सजयत मुनि व विद्युद्दंष्ट्र के पूर्वजन्म मे किए हुए द्वेष या उपसर्ग के कारण इन दोनो के बीच उपसर्ग किया गया है। इसलिए तुम इस चर्चा को छोड कर शातभाव धारण करो ।।२१६।।

आदलाल् वेगुळिये पगै नमक्केलाम् ।
तीर लाम् विनैनार् ट्रीगति पैयुम् ।।
कादलार् तन्मयु मोरु कनुत्तुळे ।
येदिलाराकुमी दिगळतक्कदे।।२१७।।

अर्थ—क्रोध करना शत्रु के समान है। क्रोध करने से अनेक प्रकार के दुख उत्पन्न होते हैं, बधु व मित्र सब साथ छोड देते हैं,क्रोध से सदैव विरोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अनेक प्रकार की हानि होती है। आत्मा की दुर्गति भी इसी क्रोध से होती है। सभी मित्र बाधव माता, पिता अलग हो जाते है, कोई साथ नही देता है। यह आत्मा के लिये अहित करने वाला है। क्रोध नरक का कारण है। इसलिए हे धरणेंद्र इस क्रोध को त्यागना ही श्रेष्ठ है, क्योकि क्रोधी लोगो का कोई विश्वास नही करता न कोई उनके समीप रहना चाहता है। इसलिए तुम क्रोध को मूल से छोड दो। किसी कवि ने कहा भी है:—

क्रोध तै मरे और मारे ताहि फासो होय,
किंचित् हू मारे तो जाय जेलखाने में।
जो कछु निबल भये, हाथ पैर टूट गये,
ठौर २ पट्टी बधी, पडैं शफाखाने मे।
पीछे तै कुटुम्बी जन हाय हाय करत फिरैं,
जाय २ पाव पडे तहसील और थाने मे।
किंचित् हू किए तै क्रोध ऐते दुख होत भ्रात,
होते है अनेक गुण एक गम खाने मे ।। ।।२१७।।

मट्रिवन् शैंद तीमै केडुमा मुनिवने मुन् ।
कोट्रव नागि सैंद कोडुमै शैकोपत्तियाल् ।।
वेट्रिवेलुंड नीर् पोलिड्र वेरत्तिन् वीडि ।
इट्रविपिरप्पिन् वेरत्तिवनिवै शैददेंड्रान् ।।२१८।।

अर्थ—उन सजयत मुनि पर उपसर्ग होने का कारण स्वय सजयत मुनि ही हैं। इस महामुनि के पूर्वजन्म मे ये सिंहसेन राजा थे। इस सिंहसेन राजा को दुख उत्पन्न करनेवाले, क्रोधाग्नि से जिस प्रकार गर्म लोहे के ऊपर पानी डालने से वह सभी पानी को सुखा लेता है, उसी प्रकार इस विद्युद्दंष्ट्र ने अपने अदर उस द्वेष को रख लिया था। उस द्वेष के कारण अनेक नीच गतियो मे भ्रमण करते हुए भवातर तक सजयत मुनि को पूर्वजन्म के वैर भाव का स्मरण होने से इस मुनि को उन्होने उपसर्ग किया। इस प्रकार आदित्य देव ने धरणेंद्र से कहा ॥ २१८॥

इदर्क् मुन् पोन ननगु पिरप्पि लिव्विरन् शैगै।
मदित्तवन् पिरवि दोरुम् वैरत्ताल् वानत्तुइत्तान् ॥
अदर्केलाम् शैवदेन् कोलरु दवन् ट्रिरिदु वारा।
कदिकनिन् ट्रानिवन् ट्रन ट्रीमयार् कडदुंडो ॥२१९॥

अर्थ—यह सजयत मुनि इस जन्म से पहले चौथे भव मे विद्युद्दंष्ट्र नाम का जीव द्वारा किये हुए उपसर्ग को अत्यत क्षमा भाव से सहन कर देवगति को प्राप्त हुआ था। उस भव मे उपसर्ग करते समय तुमने क्या किया? इस समय दीक्षा धारण करके घोर तपस्या द्वारा सजयत मुनि ने विद्युद्दंष्ट्र द्वारा किया गया घोर उपसर्ग सहन करके मोक्ष प्राप्त किया। इस प्रकार मेरे द्वारा कहे गए विषय को भली प्रकार समझना होगा ॥२१९॥

इड्रिवन् शैददेल्ला मुरुदिये इरैवर् कॅड्रु।
निड्रिडुं पुगळै वित्ति नॆंड्रु पळि विळैत्तु कोंड न् ॥
अड्रियु मिवन् शैतुंवम् पोरुत्तर्दा लगदि पुक्कान्।
ओंड्रि इव्विरडिन् मिक्क दोड्रुडो उरगर् कोवे ॥२२०॥

अर्थ—हे धरणेंद्र! विद्युद्दंष्ट्र द्वारा किए गये उपसर्ग मे सजयंत मुनि ने शाश्वत मोक्ष को प्राप्त किया। उनकी कीर्ति तीन लोक मे फैलकर शाश्वत रह गई। और इस सजयत मुनि पर उपसर्ग किये गये निमित्त से विद्युद्दंष्ट्र काल के निमित्त से अपकीर्ति को प्राप्त हुआ अर्थात् सदैव अपकीर्ति रह गई। इसलिये अच्छे कार्य करने से अच्छा व बुरे कार्य करने से बुरा फल होता है। यह भली प्रकार समझ लो। इससे अधिक और मैं क्या कहूँ ॥२२०॥

येंड्रलु मुरग राज निरंद नाळ् पिरविदोरुं।
शेड्रिवन् शदवेल्लाम् शेप्परण देवराजन् ॥
निड्र निन्वेगुळि वेप्पं करुणेया ललित्तु निड्रु।
वेंड्रवर् परिणदु वा नोविनविय दुरैप्प नेंड्रान् ॥२२१॥

अर्थ—इस प्रकार आदित्य देव के वचन सुनकर धरणेंद्र ने कहा कि पूर्वजन्म मे इस विद्युद्दंष्ट्र ने कौन-कौन से उपसर्ग किये सो मुझसे कहो। तब लातव कल्प मे रहने वाला

आदित्य नाम का देव कहने लगा कि हे धरणेंद्र ! मैं आदि से अंत तक इस विषय को कहूंगा। आप ध्यान पूर्वक सुनो। इसको सुनकर आप क्रोधित मत होना। इस आपके अग्निमय क्रोध को क्षमा रूपी जल से भली प्रकार से धोकर संजयत मुनि को नमस्कार करो और मेरे पास स्थिरता के साथ आकर बैठ जाओ। तब मैं अपने उक्तविषय को आपसे आद्योपात कहूंगा। ॥२२१॥

एंड्रुलुनिड्र् कोपत्तोरि मळै इडरुट्राल पोल् ।
अंड्रवन् सोन्नविन् सोन् मारिया लविंदतान् कन् ॥
शेंड्रुदुतेळिवु शिदै जिनवरन् शरण मूळ्गि ।
निड्रनन् कमलमादि तापने पट्ट दोत्तो ॥२२२॥

अर्थ—वह धरणेंद्र आदित्य देव के वचनामृत से मनको शात करके भगवान् को नमस्कार करके एकाग्रचित्त से सुनने को इच्छुक हो और जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश होतेही कमल प्रफुल्लित होते हैं उसी प्रकार धरणेंद्र अपने हृदय कमल को प्रफुल्लित करके आदित्य देव के पास खडा हो गया ॥२२२॥

निड्रवन् तन्नै नोकि मुनिवनु नीनु नानु ।
मिड्रिगळ् दतनोडु विरुंबिय मनत्तारागि ॥
शेंड्रव पिरवि तोट्टु वंदन मिड्रु कारु ।
वंड्रु मेजामै केळ्ग युरक्किंड्र नुरगर् कोवे ॥२२३॥

अर्थ—उस धरणेंद्र को आदित्य देव देखकर कहने लगा कि यह सजयत मुनि, मैं, आप और विद्युद्दंष्ट्र हम सब लोग पूर्वजन्म मे उस भव से इस भव तक क्रम से सिंहसेन आदि राजा हुए थे। विशेषतया उनका चरित्र मैं आप से कहूगा, आप ध्यानपूर्वक सुनो।२२३।

इति संजयंत को मोक्ष प्राप्ति का विवेचन करने वाला द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

।। तृतीय अधिकार ।।

मंदर नडुवदाग कुल मलैयारिन्वंद ।
अदरत्तोळ् नाडा मारु मोरेळुदागि ।।
सुंदर राडगळारिर् सूळ् दवे तिगत्त् मागि ।
नदिय मदिइ निड् नावलं तीविनुळ्ळाल् ।।२२४।।

अर्थ—आदित्य देव ने उस धरणेद्र से कहा कि इस सुमेरु पर्वत के चारो ओर छह कुलगिरी पर्वत होने के कारण भरत क्षेत्रादि सात देश है और चौदह नदियाँ तथा छह सरोवर हैं। इस महान लवण समुद्र मे घिरा हुआ जम्बूद्वीप है। यह जम्बूद्वीप वृत्ताकार है, अर्थात् गोल है ।।२२४।।

पाग तडत्तै पोलुं भरत खडत्त् शवोन ।
नागतुंडत्तै योक्कुं धर्म खडत्त् नल्ल ।।
भोग तुंडत्तैपोलुं शीयमा पुरत्तै सूळ्दु ।
मेग तुंडगळ् मेयुं सोलै नाडुदु तिगळ् ।।२२५।।

अर्थ—इस जम्बूद्वीप क्षेत्र के दो विभाग हैं, एक भरत दूसरा ऐरावत। भरत क्षेत्र मे देवलोक के समान सुशोभित इस धम खड मे उत्तम भूमि के समान अत्यत सुन्दर और शोभायमान सिहपुर नाम का नगर है। उस नगर के चारो ओर अत्यत शोभायमान अनेक ग्राम हैं ।।२२५।।

शियमाणरत्तिन् ट्रन्मै सेण्ण शिरिदु केन्मो ।
काय माराग शेल्वोर् कंडपिन् कडंदु पोगार् ।।
तूय वान तलंशै कुंड् शोलै कन् मांड तम्मार् ।
शेइळै मडनल्लार पोल शित्तनु किनिय दोंड् ।।२२६।।

अर्थ—वह सिहपुर नगर किस प्रकार है उस विषय को मैं प्रतिपादन करूँगा। आप ध्यान पूर्वक सुनो। उस सिहपुर नगर मे जाने वाले विद्याधर देवो की भावना उस पट्टन को छोडकर जाने को नही होती, वह ऐसा ही सुन्दर नगर है। वहा की भूमि अत्यत निर्मल, कृत्रिम पर्वत तथा राजमहल आदि के देखने से, जिस प्रकार सुन्दर स्त्री वस्त्राभरण से अलकार सहित अलकृत होकर खडे होने से देखकर मन आकर्षित होता है, अथवा काम विकार उत्पन्न होता है, उसी प्रकार सिहपुर नगर को देखकर देवो तथा विद्याधरो का मन मोहित होता है ।।२२६।।

शेप्पिय नगर्कु नदन् शीय माशेन् नेंबान् ।
वेप्प निड्राद वेलान् वेंदरै वेंड्र पेट्रि ।।
कोप्पुमं इंड्रि निड्रानुद विकर् पगत्तै योप्पान् ।
तुप्पुरळ् तोंडैवायार् तोळु देळु कामन् कंडाय् ।।२२७।।

अर्थ—पीछे कहा हुआ वह सिंहसेन महाराज, उसी सिंहपुर नगर के राजा थे। जिन्होने सम्पूर्ण शत्रु राजाओ को जीत लिया था जिससे चारो ओर उनकी कीर्ति फैल गई थी। वे उपमा रहित अपने राज्य का परिपालन करते थे। कल्पवृक्ष के समान सम्पूर्ण जीवो पर करुणा भाव रखते थे। अनेक प्रकार धन धान्य दान आदि से प्रजा की सहायता करते थे। सभी स्त्रियो को मुग्ध करने वाले मन्मथ के समान थे। इस प्रकार आदित्य देव धरणेंद्र को कह रहे हैं।।२२७।।

वुण् मिळ्दिलंगु वै वेल् मन्नव नुळ्ळत्तुळ्ळाळ् ।
तेनुमिळ्दिलंगु मै पार ट्रविया निरामाय दत्तै ।।
वानुमिळ् दिलंगु मिन् पोलवरुम् नुन्निडयाळ् वारि ।
तानुमिळ् तमिळ्दु पैद कलसं पोट्रनत्ति नाळे ।।२२८।।

अर्थ—अत्यंत प्रकाश से युक्त हाथ मे आयुध को धारण करने वाला सिंहसेन राजा था। मेघ के रग के समान उनके शिर के केश थे जो विजली के समान चमकते थे। उनकी पटरानी अत्यत सुन्दर शरीरवाली तथा वस्त्राभरण से प्रकाशमान थी। जिस प्रकार क्षीर समुद्र के रस को सोने के कलशो मे भरकर रखा हो उसी प्रकार उनके स्तन भरपूर थे। ऐसी सुन्दर उन सिंहसेन महाराज के रामदत्ता नाम की पटरानी थी।।२२८।।

वेद नान्गगं मारु पुराणमुं विरिवकुं सह्निर् ।
ट्रीदिला सत्तियगोडनामं श्री भूतियेंवान् ।।
पोदुला मुडिनानुं कमैचनाय् पुनर्'दु पिन्नै ।
तीदिला मगट्रि वैयं शेव्विपार् काकुनाळाल् ।।२२९।।

अर्थ—चार वेद, छह पुराण, द्वादशांगादि शास्त्र, अठारह पुराण और उपपुराण को कंठगत करके निर्दोष वचन से सभी को उपदेश करने की सामर्थ्य से युक्त सत्यघोष नाम का ब्राह्मण उनका मंत्री था। उनका अपर नाम शिवभूति था। वह सिंहसेन राजा मत्री सहित प्रजा का परिपालन करता था।।२२९।।

पद्मशाग निधिविकट मायदु ।
पद्मखंड नेनप्पगरुमा नगर् ।।
मट्टलन् मन् धनिगैन्यन् नुळन् ।
सोर् मुंद कोवर्क गुरुत्तने ।।२३०।।

अर्थ—उस सिंहपुरी नगरी मे पद्मशख नाम का एक छोटा नगर था। जिसमे पद्म-निधि, शंखनिधि आदि नव प्रकार की निधि सहित कल्प वृक्ष के समान दान में शूर सुदत्त नाम का एक वैश्य रहता था ।।२३०।।

मट्रवन् ट्रन मनैवकु विळक्क नाळ्।
सुट्र नन्मै नामम् सुमित्तिरै ।।
विकुंरिण पुर्व तोळिर् वेर्कनाळ्।
कपलंद ओर् कामरु वल्लिये ।।२३१।।

अर्थ—उस सुदत्त वैश्य के घर मे दीपक के समान प्रकाशमान, धनुष के समान भृकुटी वाली, लता के समान नेत्र, फूल के समान अत्यत कोमल शरीर वाली सुमित्रा नाम की उसकी स्त्री थी। वह स्त्री महान चतुर गुणवान थी। कहा भी है:—

उच्च कुलीन स्त्रियों के लक्षण:—

साध्वी, शीलवती दया, वसुमति दाक्षिण्य लज्जावती।
तन्वी पापपराङ्.मुखी स्थिरमतिर्मुग्धा प्रियालापिनी।
देवे सद्गुरु-शास्त्र-बधु-सज्जनरता यस्यास्ति भार्या गृहे।
तस्यार्थागम काम—मोक्ष—फलदा: कुर्वंति पुण्याप्रिया: ।।

साध्वी, शीलवती, दयावती, वसुमती, चतुर, लज्जावती, तन्वी, पाप से पराङ्मुख मुग्धा, कम बोलने वाली, देव, शास्त्र, गुरु मे भक्ति रखने वाली, बन्धु बाधवो मे मित्रता रखने वाली ऐसी स्त्री जिसके घर मे होती है उसको चारो पुरुषार्थ सहज ही मे प्राप्त हो जाते हैं और सभी मगलमय करने वाली होती है। ऐसी सुयोग्य वह सुमित्रा नाम की स्त्री उस वैश्य की थी ।।२३१।।

अंदियुं मगल् वानु मुन्नाळिनाल्।
इंदुवै पयंदान्गो विरुवरुन् ।।
मैदनै पयंदार् मदिपोल वळर्।
दंत मिल्लुवमै किड मागिनान् ।।२३२।।

सुरैदकार मुगिल् पोल सुदत्तनेन्।
ट्रिद वर्किडल् तीर वळित्तावन् ।।
परंदुलाम् पेयर् भद्रमित्रनें।
मरंदै तीर्थ लिनामेन्न ओदिनान् ।।२३३।।

अर्थ—जिस प्रकार पूर्णमासी के चद्रमा का प्रकाश सदैव शाति को देता है उसी प्रकार जगत मे प्रकाश करने वाले उन दोनो दम्पति के एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। वह पुत्र पूर्णिमा के चद्रमा के समान शनैः २ वृद्धि को प्राप्त हुआ। वह महान तेजस्वी तथा बडा आज्ञाकारी, माता पिता को अत्यत सतुष्ट करने वाला था। उस पुत्र का नाम भद्रमित्र रखा गया। तदनन्तर नाम कर्म सस्कार के निमित्त से उन्होने अनेक याजक जनों को दान देकर उनकी कामनाए पूर्ण की ।। २३२ ।। २३३ ।।

कलैर्रानिबं कामरु कन्नियर् ।
मलैवि निवमु मुत्तोंडु मामणि ।।
विलइनिवमुं वेंडिनर् कीमैदंदुम् ।
तलै इ'बमुं तानव नैदिनान् ।।२३४।।

अर्थ—तदनन्तर उस बच्चे को विद्याध्ययन हेतु एक ज्ञानी प्रोहित-ब्राह्मण के पास भेजा और अनेक प्रकार की विद्या व कला, व्याकरण निघटु, न्याय, आप्त-आगम आदि शास्त्रो का अध्ययन कराके ज्ञानी पडित बनाया। तत्पश्चात् पूर्णतया विद्या सीखकर वह लडका अपने घर आता है। सयाना होने पर एक योग्य धर्मात्मा की सुशील कन्या के साथ उस पुत्र का विवाह कर दिया। विवाह के पश्चात् थोडे दिनो मे ससारी भोगो को तथा विषय सुखों का अनुभव करता हुआ वह भद्रमित्र अनेक प्रकार के रत्न मोती माणक आदि के ज्ञान मे भली-प्रकार निपुण हो गया, और एक महान् श्रेष्ठी, व्यापारी हो गया। अनुकूल सम्पत्ति ऐश्वर्य आदि इस जीव को प्राप्त होना तथा उत्तम सत्पात्र उच्च कुल आदि मिलना पूर्व जन्म मे उपार्जित पुण्य के फल से प्राप्त होता है, ऐसा समझना चाहिये। इसी पुण्यफल से उसको यह सपत्ति और सतति प्राप्त हुई थी ।।२३४।।

पडंक्कडंदनि तंगिव वलगुलुम् ।
कुडंगै ये यळवळ्ळ कोंळुगनुं ।।
वडसुभंदळु कोगयु मंगदर् ।
नुडगु नुन्निडै युन्नुगर् वेंदनान् ।।२३५।।

अर्थ—वह भद्रदत्त स्त्रियो के अनुकूल जो भी आभूषण जेवर आदि चाहिये था वह सभी घर मे तिजोरी मे भरा हुआ रखता था। अर्थात् रत्नादि आभूषणों से घर भरा पूरा था और वे दम्पति ससार सुख को पुण्य के प्रभाव से भोगते थे। लक्ष्मी उनके चरणो मे लौटती थी ।।२३५।।

वळ' सुरु'गिडिन् मानिधियुं पलो ।
रळ'दु कोंडुण ळांपडि तानेळ ।।
ळुलं शैदूदिप मुळ् पोरुळ् कोंडु पोय् ।
विळ'गु मा मणि तीवडु मेदिनान् ।।२३६।।

अर्थ—वह भद्रमित्र मन मे बठे २ विचार करता है कि व्यापार करके धन की वृद्धि करना चाहिये। न्याय पूवक यदि धन नही कमाया जावेगा तो पेट कैसे भरेगा, तथा बन्धु बांधव से प्रेम भाव कैसे रहेगा ? उनका भोजन सत्कार कैसे करेगे ? यदि न्यायपूर्वक धनोपार्जन दान न करेगे तो परपरा से चला आया गृहस्थ धर्म व मुनि धर्म कैसे चलेगा ? और आगे चलकर बडा कष्ट सहन करना पडेगा। इस प्रकार वह वणिक् पुत्र व्यापार सबधी अनेक सामग्री द्रव्य आदि लेकर रत्न नामक द्वीप मे गया ।। २३६ ।।

शेंड्ड शात्तोड तोविनै शेंद वन् ।
वंड्ड वाणिदत्तार् पेट्र रुदियम् ।।
मंड्र मादवर् कैयिट्ट वल्सि याल् ।
निड्र भोग निल पेट्र दोक्कुमे ।।२३७।।

अर्थ—जिस प्रकार एक सद् गृहस्थ महातपस्वी मुनि के आहार दान के फल से उत्तम भोग भूमि मे जाकर उत्तम भोग भोगता है उसी प्रकार उस भद्रमित्र ने खूब व्यापार करके दान धर्म के द्वारा अधिक सपत्ति को प्राप्त किया ।।२३७।।

पुण्णियं मुदयंशैद जोळ्दि निल् ।
एण्णिलाद पोरुकुवै याययुं ।।
नन्नु मेड्रुळ् नाद नुरैइनु ।
कन्नले येडुत्तिडदु वाइनान् ।।२३८।।

अर्थ—बिना पुण्य के सपत्ति नही मिल सकती। अर्हंत भगवान की यह वाणी है कि जो जीव आहार, औषध, शास्त्र और अभय ये चार प्रकार के दान उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्रो को देता है, वह क्रम से उत्तम गति को प्राप्त होता है। और दूसरे भव मे अपने मन के अनुकूल सर्व प्रकार की भोग सामग्री पाता है। इस उदाहरण के लिए भद्रमित्र सेठ ही है। क्योकि इन्होने पूर्व भव मे उदार चित्त से चार प्रकार के दान को विधि पूर्वक सत्पात्रो को देकर उनकी सेवा की थी, जिससे ऐसी निधि आज इनको प्राप्त हुई है। ऐसे अन्य कई उदाहरण मिलते हैं। आहार दान से श्रीसेन राजा तीर्थंकर पद को प्राप्त हुआ है। शास्त्र दान से ग्वाला का जीव कुदकुंदाचार्य का पद प्राप्त कर श्रुत-केवली हुआ है। अभयदान मे शूकर का जीव मुनि को अभयदान देकर देव पद प्राप्त करके वहा स चयकर भगवान कृष्ण की पटरानी रुक्मिणी का जीव आया है। और औषधदान से रोग की चिकित्सा करके श्रीकृष्ण का जीव तीर्थंकर पद को प्राप्त हुआ है। यह सब पूर्व जन्म के पुण्य का फल है ।।२३८।।

मणियुमुत्तं वैरमुं शेंदन ।
तुनियु नल्लगिलुं तुगिरुंपिर् ।।
मणियुं तूरियुं कोंडु वरुवमं ।
इन्नैयिल् शीय पुरमदं यैदिनान् ।।२३९।।

अर्थ—वह भद्रमित्र श्रेष्ठी रत्न, मोती, अमूल्य द्रव्य तथा चंदन आदि अनेक सुगंधित वस्तुओ का सपादन करके रत्नद्वीप से जहाज मे भरकर रवाना हुआ और अपने पट्टन में वापस आते समय रास्ते मे सिंहपुर नगर मे गया ।।२३९।।

मिक्क लाभत्तिन् मेविन सिंदयान् ।
शक्कर वान मेनत्ति ाळ् मोगियान् ।।
दिक्कनैत्तु तिगळ्‌द दोर् देशिनार् ।
पुक्कनन् पुरं वदेदिर् कोळ्ळवे ।।२४०।।

अर्थ—उस नगर मे रहने वाले व्यापारी लोग उस भद्रमित्र को देखकर विचार करने लगे कि यह तो हमसे भी बडा व्यापारी है, और उसका भली प्रकार सम्मान पूर्वक स्वागत करके नगर मे ले गये ।।२४०।।

अन्नगरिनळगुं पेरुमैयुं ।
मन्नन् मैयुं वाणिवत्त ताकमुं ।।
सोन्न वैतिर ळामयुम् सोररदा ।
मिन्मयुं कंडिरिक्कयु मेविनन् ।।२४१।।

अर्थ—उन भद्रमित्र ने उस नगर मे प्रवेश करने के वाद चारो ओर नगर मे जाकर देखा कि वहा वडी २ हवेलिया है, लबी गलियां और रास्ते हैं, उनको देखता हुआ उस नगर में राज करने वाले राजा का गुणानुवाद करते हुए मन में यह विचार करता है कि यह नगर व्यापार के लिये बडा योग्य है, और नगर की प्रजा राजा की आज्ञा के अनुसार चलती है। इस प्रकार उसने राजा व प्रजा की प्रशंसा की। इस नगर मे कोई दुष्ट चोर डाकू लुटेरा, परस्त्री लपटी, व्यसनी व दुराचारी लोग नही हैं। ऐसी मन मे भावना करके अत्यत आनदित होकर व्यापार करने के लिए इसी नगर मे रहकर अपना व्यवहार वढाना चाहिये। ऐसा मन मे निश्चित किया ।।२४१।।

मट्रिम् मानग रत्तिलिव वान पोरुळ् ।
अट्रभाग नल्लार् कैयिल् वैत्तपणि ।।
पद्मशंडम् यदैदियोर पागिले ।
सुट्रमुं मळैत्तोन्वळि तोक्क पिन् ।।२४२।।

पीडिनार् पेयर्रादगु वदोगिय ।
माडमानगरत्तिडै वाळ्कैमेल् ।।
ओडुमुळ्ळत्तानोन् पोरुळ् वैपिडम् ।
तेडुवान् शिरिमूतियै नन्निनान् ।।२४३।।

अर्थ—तत्पश्चात् वह भद्रमित्र वणिक विचारता है कि सिंहपुर नगर मे अपने द्वारा संपादन करके लाये हुए अनेक प्रकार के रत्न मोती, माणिक आदि को वहा के किसी सत्पुरुष के पास रखकर के अपने जन्म क्षेत्र पद्म शंख नाम के नगर मे जाकर अपने बधु बाधवो को वहा से लाकर एक सुन्दर विशाल भवन बनाकर रहू गा। यह सोचकर वह अनमोल मोती, माणिक, रत्न को रखने के लिए वहा के राजा के सद्गुणी शिवभूति अपरनाम सत्यघोष नाम के मत्री के पास गया ।।२४२।।२४३।।

मिक्क शीर्ति यन् वेदियन् वेंदर्कु ।
तक्क मंदिरि शत्तिय कोडनेन् ।।
ट्रेक्कदै पुराणं सुरुंद पोरुळ् ।
वक्कनिप्पवन् मानव नल्लने ।।२४४।।

अर्थ—वह भद्रमित्र उस मत्री को देखकर विचार करता है कि यह जाति से उत्तम ब्राह्मण है और सिंहसेन राजा का मुख्य मत्री है। सदैव सत्य बोलता है। धर्म शास्त्र का भली प्रकार मनन किया है और सपूर्ण धर्म शास्त्र को सुना है-शास्त्री है। यदि इनकी ओर देखा जावे तो यह मनुष्य नही है, बल्कि इन्द्र के समान देवता है ।।२४४।

तक्क दोड्रिवन् कै पोरुळ् वैत्तलेन् ।
ट्रक्कनत्तोरु पाउडमींद पिन् ।।
मिक्न मासनम् वींद दोळ् पोळ्दिनिर् ।
ट्रोक्ल् तन् करुमम् सोल मट्र वन् ।।२४५।।

अर्थ—इस प्रकार मन मे विचार करके भद्रमित्र ने अपने पास के सपूर्ण रत्नो के भरे हुए सदूक मे से एक रत्न मत्री को भेट करके नमस्कार किया। तत्पश्चात् मत्री की सभा के रहने वाले सभी लोगो के उठकर चले जाने के बाद अपनी चरचा के बारे मे प्रार्थना की। सत्यघोष ने वणिक की बात सुनकर विचारा कि बिना मागे ऐसा मनोज्ञ सुन्दर एक रत्न मुझको मिल गया बडे भाग्य की बात है। और रत्न पाकर वह मत्री अत्यन्त प्रसन्न हुआ। ।।२४५।

वैत्तल् कोडल् वळंगिडन् मायत्तिडल् ।
तुइत्तल् माट्र लिरुंद विडसोलल् ।।
इत्तिरत्तु पिरन् पोरुळ् मेर् सेल ।
सित्तं वैत्तलुं तीविन केदुवे ।।२४६।।

अर्थ—वह मत्री सभी बातो को सुनकर कहने लगा कि हे भद्रमित्र! दूसरे की सपत्ति को अपहरण करना, रखी हुई सपत्ति को वापस देने से इनकार करना, अन्य की अमानता सपत्ति को स्वत उपयोग मे लेना, रुपया लेकर मागने पर मना आदि २ ये सब पाप के कारण है। यह समझ लो ।।२४६।।

येड्रलुं परिणदानुक्कि यावरु ।
निड्रडा पोळुदेन् कैई नीटेन ।।
अंड्र वन् कैयरुम् पोरुळ् वैत्तपिन् ।
मुंदैयूर् पुग मोइंबनो मोर्व नाम् ।।२४७।।

अर्थ—इस प्रकार मंत्री की बात सुनकर उस भद्रमित्र ने मत्री को नमस्कार किया। पुनः वह मत्री भद्रमित्र से कहने लगा कि हे वणिक यदि तुम अपने रत्न आभूषण आदि मेरे पास रखना चाहते हो तो ऐसे समय मे लाकर रखना, जिस समय मे मैं एकात मे रहूं, और कोई भी देखता न हो। तब उस भद्रमित्र ने मत्री की बात मानकर अपने पास जितने भी रत्न, आभूषण वगैरह थे वे सब सत्यघोष मत्री को दे दिए। और कहने लगा कि अब मैं अपनी जन्मभूमि पद्मशख नगर मे जाकर अपने बधुओ को लेकर आता हूं ।।२४७।।

वेइगळ् वेंदु वेडित्तिडु मोसैयुं ।
पाय कळिळ परर् पोडि योशैयुं ।।
आयतन् कुळलोसेयु माले गळ् ।
पायु मोसेयु पाय्विरि योसैयुं ।।२४८।।

अर्थ—वहा से प्रयाण करके जब वह पद्मशख नगर की ओर गया तो रास्ते मे अनेक प्रकार के भयानक जंगल आदि मिले। उन जगलो मे बास के वृक्ष थे। आपस मे उन वासो के टकराने से भयानक अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। अनेक गडरिये उस हरे भरे वन मे बकरिया चराते थे। अनेक प्रकार की वासुरिया वज रही थी जो कानो को मधुर लग रही थी। गडरिये किलोले करते थे। जिस प्रकार गन्ने को मशीन में डालकर पेरा जाता है और उसकी ध्वनि निकलती है वैसी ही आवाजे हो रही थी। इस प्रकार उन वन के अनेक दृश्यो को देखता हुआ वह भद्रमित्र आगे बढता जा रहा था ।।२४८।।

इन्न ओसै इयंब निलंदोरु ।
पन्नरु पद्मषंड मदैदि नान् ।।
मन्नम् सुट्रमे लामर कोंडु पोय् ।
तुन्निनान् शियपुरमडु तोंड्रले ।।२४९।।

अर्थ—इस प्रकार वह भद्रमित्र सेठ अनेक प्रकार के मधुर शब्द जगल मे सुनता हुआ शीघ्र ही थोडे समय मे अपनी पद्मशख नगरी मे जा पहुँचा, और वहा से अपने बधु बाधवो को साथ लेकर वापस लौट कर सिहपुरी नगरी मे आ गया ।।२४९।।

वळि वरुत्त मोळित्तघन् वान्किळै ।
कळिविलाद विवत्ती येळित्तिरिदित् ।।

तोळुद कै शेड्र मैच्चानै तुन्निनिन् ।
ट्रेळिल्पर शिल विन् मोळि कूरिनान् ॥२५०॥

अर्थ—उस भद्रमित्र ने सिंहपुरी नगरी मे आकर एक महल मे अपने बधुओ को ठहरा दिया और कुछ दिन आराम करके अपने रत्नो को वापस लेने को उस सद्गुणी शिवभूति मत्री के पास जाता है और जाकर वहा अनेक प्रकार की स्तुति करता है ॥२५०॥

शेप्पमुं पुगंळु मरिन्नुं सिदंत्त ।
दोप्पिलाद पिरप्पै युडैत्तिडा ॥
शेप्पिनन् मणि मेन् मनं शिक्कुना ।
वोप्पिलान उरैप्पदर् कूकिनान् ॥२५१॥

मायं शैद मरच्चप्पैनै यवन् ।
मायमिल्लवन् ट्रन्मणि शेप्पिनै ॥
माय शैदु कोळक्कुं मनात्तिना ।
मायनेशिल वार्त्तैयु सेप्पिनान् ॥२५२॥

अर्थ—तब वह शिवभूति मत्री भद्रमित्र से पहले के समान मृदुवचन न बोलकर दुष्परिणाम से बोलने लगा । उसके मन मे कुटिलता की भावना जागृत हो गई और अनेक २ प्रकार से असभ्य वार्तालाप करना प्रारभ कर दिया कि मायाचार व कपट करने वाला मनुष्य मायाचारी दुराचारी होता है ॥ २५१ ॥ २५२ ॥

एगुनो युळै यावनी मट्रुनी ।
एंगु पोवदेन सोलवेंदलुं ॥
वगमोदु वंदड्रु मणि चेप्पु ।
तकै तंदु पोम् वाणिगनानेंड्रान् ॥२५३॥

अर्थ—पुन॰ वह मत्री कहता है कि मैं तुझे नही जानता, तू कौन है, कहां से आया है, किस ग्राम मे रहता है, कहा को जाना है ? तब आश्चर्य चकित होकर वह भद्रमित्र कहने लगा कि हे मत्री ! मैं कई दिनो के बाद आया हू । रत्नो की पेटी आपके पास रखकर मैं अपने पद्मखंड नगर बधु बाधवो को लेने चला गया था । आप पर मेरा पूर्ण विश्वास है और मेरा नाम भद्रमित्र है ॥२५३॥

सेप्पन सेप्पिडट्ट देन् सेप्पन ।
ञोप्पिलाद मणि चेप्पु वैत्तदु ॥

तप्पिलीर् मरंदिट्ट दोदानेन् ।
येप्पडि पित्तनो वेंड्रु रैत्तनन् ।।२५४।।

अर्थ—तदनतर भद्रमित्र की बात सुनकर मंत्री कहने लगा कि हे वणिक् ! क्या मेरे पास तुमने रत्नों की पेटी रखी थी ? भद्रमित्र ने उत्तर दिया हा ! तब मत्री ने कहा तुमने मेरे पास पेटी कब रखी थी ? भद्रमित्र ने कहा कि मैंने आप ही के पास तो पेटी रखी थी क्या आप भूल गये ? तब मंत्री ने कहा कि तुम मूर्ख और पागल तो नही हो । मेरे पास रत्नों की पेटी कब रखी थी । सचमुच तुम बावले तो नही हो ? मेरे को तुम्हारा परिचय ही नही है, फिर तुम एकदम आकर यह कहते हो कि मै रत्नो की पेटी रखकर गया था। तुम असत्य बोलते हो ।।२५४।।

येंड्रु नानुनै कंडरि येनिनि ।
मंड्र वेन् कै मणि चेप्पु वैत्तनाळ् ।।
निड्र शांड्रुळ दागि नोकाटिनाल् ।
वंड्रु मंड्रि मट्रुन् नोडे पोगुमे ।।२५५।।

अर्थ—शिवभूति मत्री फिर पूछता है कि भद्रमित्र ! यदि तुमने मेरे पास रत्नो की पेटी रखी है तो बताओ किसके सामने रखी थी । कौन साक्षी है ? जिनके सामने तुमने पेटी रखी हो उनको मेरे सामने लाओ, तो मैं मान लू गा, वरना फौरन तुम यहा से चले जाओ । ऐसा डांट-डपट कर उसको भगाने लगा ।।२५५।।

नंड्रु शालवु नंबि निन् पेरिनु ।
कोंड्र वे युरै ताह्र सोप्पु वैत्तनाळ् ।।
अंड्रु मिड्रु मलदुळ नाळि नाल् ।
येंड्रु मेन्नै नी कंडदु मिल्लये ।।२५६।।

अर्थ—इस बात को सुनकर भद्रमित्र कहने लगा कि हे मत्री ! तुम सब मत्रियो मे श्रेष्ठ हो, तुम्हारा नाम सत्यघोष है । जिस समय यह पेटी मैं रखकर गया था उस समय तुम और मै दोनो ही थे, और कोई नही था । जिस समय मैं पेटी रखने आया था उस समय आपने यह कहा था कि जव कोई नही हो उस समय रत्नो को लाना । सो मेरी रत्नो की पेटी आप के ही पास है । पेटी रखने के वाद आज ही मैं वापस लेने आया हू ।।२५६।।

सांड्रु वेंडिनुं सत्तिय कोडराम् ।
आंड्रनीरांड्रि इल्लै येंड्रि यावकुं ।।
तोंड्रिडा मै तरवेंड्रु सोम्न नाळ् ।
शांड्रु वेंड्रु जडत्ती परिदिलेन् ।।२५७।।

अर्थ—हे शिवभूति मत्री ! आप यदि मुझसे साक्षी चाहते हो तो आप ही मेरे साक्षी हो। दूसरी यह बात है कि आपने यह कहा था कि यदि तुम्हे रत्न देना हो तो एकात मे लाकर देना। इस कारण मैंने एकात मे लाकर पेटी आपको दी थी। ऐसी हालत मे तुम्ही साक्षी हो और कोई साक्षी नही। तुम्हारी बुद्धि मे कोई फेरफार दीखता है। काच और कचन रत्न आदि यह सभी समय पर मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट कर देते हैं। पाप का बाप लोभ ही है। इस काच और कचन के लोभ के कारण ही बडे २ जीव नरक मे जाते हैं। ससार मे सबसे बलवान धन और रत्न हैं। आपकी बुद्धि पर भी रत्नो की पेटी आने पर कुछ फर्क पड गया है। ऐसा दीखता है ॥२५७॥

कनमदोंड्रिले कन् पुदंतिट्टळ ।
पिनमदागु मिव्वाळ्कैयै पेनुवान् ॥
अनिगळामरी उस् पुगुळुं केड ।
मणि कन्मेन् मनम् वेंत्तदोर् मायमे ॥२५८॥

अर्थ—एक ही क्षण मे यह आत्मा इस शरीर को छोडकर जाने वाली होने पर भी इस मोह के कारण बंधु, मित्र, बाधव आदि की रक्षा करने के लिये आत्मा के अच्छे आभूषण अथवा जेवर के रूप मे सम्यक्दर्शनादि गुण तथा लौकिक गुणो का नाश करके रत्नो का इस प्रकार अपहरण करना यह भारी अज्ञानता है, विचार करे। आप सद्गुणी व श्रेष्ठ है। इस प्रकार की भावना रखना आपके लिए उचित नही हैं ॥२५८॥

शैद नंड्रि शिदैत्तर तेरिनार् ।
कैद वंजनै शैदु पिरर् मनै ॥
मैय लान् मगिळ्वार् किद मन्मिशै ।
यैदिडा पळिइन्मै यरिइरो ॥२५९॥

पिरर् पोसुळ् वैत्तल् कोडल् पिरर् तमक्कीदन् माट्रन् ।
मरमेन वेंड्रु सोन्ने वाय् मोळि मरंदिट्टिरो ॥
तिरमल दुरंक्क वेंडाम् सेप्पु कोंडिरुप्प देंड्रि ।
मुरै मुरै पित्तनाकि मुडिद नीर् मोगत्ताले ॥२६०॥

अर्थ—हे शिवभूति मत्री ! किसी वस्तु को लेकर गुप्त रूप से अपने पास रखना, अपहरण करना, दूसरो की वस्तु को लेकर वापस न करना ये सभी पाप के कारण हैं। ऐसा उपदेश आपने ही तो दिया था जिस दिन कि मैंने रत्नो की पेटी आप के पास रखी थी। क्या आप अपने उस उपदेश को भूल गये हो ? रत्नो के मोह से आप मुझे ही उल्टा पागल बना रहे हो, क्योकि शास्त्रो मे यह भी कहा है कि—

"मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदा:। स्तेन-प्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहारा :॥

अर्थात्-झूठा उपदेश देना, स्त्री पुरुष की एकांत की वात की वात को प्रकट करना झूठे दस्तावेज आदि लिखना, किसी का धन अपहरण करना, हाथ चलाने आदि के द्वारा दूसरे के अभिप्राय को जानकर उसे प्रकट कर देना, चोरी करना, चोरी के लिए प्रेरणा करना, चोरी की वस्तु खरीदना, राजा की आज्ञा के विरुद्ध चलना, टैक्स वगैरह नही देना, देने लेने के वाट तराजू को कमती बढती रखना, बहुमूल्य वस्तु मे अल्प मूल्य की वस्तु मिलाकर असली भाव से बेचना। इस प्रकार का जो उपदेश आपने दिया था कि यह सभी पाप के कारण हैं क्या तुम यह सव भूल गये ? यह सब योग्य है या अयोग्य है, तुम विचार करो। इस प्रकार मिथ्या बात करना ठीक नही है। ऐसा भद्रमित्र ने कहा॥ १५९ ॥ २६० ॥

येड्रलु मेळुदं कोवत्तोरि यरि येन्न ओडि।
पोंड्रु मा रडित्तु निड्रार् पुरप्पड तळ्ळ पोंदिट्॥
डंड्रव नडित्तु शेप्पु कोंडदर् कवल मुट्रु।
शेंड्र वन् ट्रेरुवदोरु शिल पगल् पूशलिट्टान्॥२६१॥

अर्थ—इस प्रकार भद्रमित्र की वात सुनकर वह शिवभूति मत्री अत्यत क्रोधित होकर कहने लगा कि अरे धूर्त ! अपना मुह बद कर, व्यर्थ क्यो बक रहा है। क्षण भर मे तुझको प्राण दड दे दूगा। ऐसा कहकर अपने कर्मचारी को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम इस दुष्ट को शीघ्र यहा से निकाल दो। तव कर्मचारियो ने मत्री की आज्ञानुसार उस भद्रमित्र को मारपीट कर वाहर निकाल दिया। वह वेचारा भद्रमित्र दुखी होकर इधर उधर गलियो मे घूमता फिरता कह रहा था कि॥२६१॥

शत्तिय कोड नेन्नु जातियाल् वेदि यड्रान्।
वित्ताार् पेरियन् ट्रूयनेंड्रियान् मिगवुं तेरी॥
वैत्त वेन्मणियै कोंडु तरुगिलन् मन्न केन्मो।
पित्तनु मातु मेन्नै पेरुं योरुळ्ळडक्कु वाने॥२६२॥

अर्थ—मै रत्नद्वीप मे जाकर महान प्रयास के साथ व्यापार करके वहुत से रत्नो को इकट्ठा करके इस सिहपुर नगर मे आया तव यहा के व्यापारियो ने मेरा वहुत सत्कार किया था। इस नगर के वणिक् लोगो का विनय सद्गुण देखकर मै अत्यत प्रसन्न हुआ और यहा के राजा का वडा गुणगान किया, और ऐसी भावना हुई कि इसी सिंहपुर नगर मे रहकर मुझे पुन व्यापार करना चाहिये, और यह सुना कि यहा के राजा का सत्यघोष नाम का मत्री महान पडित अनेक पुराणो का ज्ञाता है, प्रजाजनो का विश्वसनीय है, सद्गुणी है ! तो मैंने यह विचार किया कि जो संपति मैं कमाकर लाया हूँ वह इनके पास रख दूं। और पश्-

शंख नगर जाकर अपने भाई बधुओ को यहा ले आऊ। और यही व्यापार करू। ऐसा सोचकर यहा के मत्री सत्यघोष को मैं रत्नो की पेटी देकर अपने नगर चला गया, और वहा से वापस लौटकर मेरे कुटुम्ब आदि को यहा ले आया। और बाद मे जब मत्री के पास रखे हुए रत्नो की पेटी मागने गया कि मुझे मेरी पेटी वापस दे दो, मैं मेरे भाई बंधु कुटुम्ब परिवार को ले आया हू तो इस पर मंत्री ने कहा कि तुम कौन हो ? कहा से आये हो ? मुझे तो तुमने कोई रत्नो की पेटी कभी दी नही ! तुम झूठे हो पागल हो ? इस प्रकार बुरा भला कहकर मेरे रत्नो को उन्होने अपहरण किया और अपने कर्मचारियो द्वारा पिटवाकर मुझे भगा दिया है। इसलिये हे इस नगर के अधिपति सिंहसेन महाराज! आपके शिवभूति मत्री के पास मैंने मेरे रत्नो की पेटी रखी थी, वह पेटी को वापस नही देता है सो आप मुझे मेरे रत्नो की पेटी दिलवा दीजिये। इस प्रकार कहते हुए गली २ के कौने मे जोर २ से पुकारता हुआ आगे पीछे की सारी बाते बोलता हुआ रात दिन इधर उधर भ्रमण करने लगा ।।२६२।

तन्वळी कुट्रन् काना कन्नेनतान् शेकुट्र ।
मुन्निडादवनै कोवित्त्र वयीर कडिप लुट्रु ।।
मिन्नन करक्कुं कळ्ळर् तगळै विट्टान् ।
लुन्नुदर करिय वाय पोरुळेला मोरुदुं कोंडार् ।।२६३।।

अर्थ—वह शिवभूति ब्राह्मण मत्री अपना कपट व मायाचार प्रजाजनो को प्रगट न हो–इस कारण उसने नगर के निवासियो तथा अपने कर्मचारियो को आदेश दिया कि यह भद्रमित्र वणिक् महान् दुष्ट और पापी है, इसके घर जाओ और इसका सारा माल लूट कर ले आओ। इस आदेश पर कर्मचारी आदि उस भद्रमित्र के मकान पर गये और सारा माल बहुमूल्य सामान वस्त्र आभूषण आदि सब लूट कर ले आये ।।२६३।।

पणमणिविकरदु नागम् पणत्तायु मिळददे पोर् ।
ट्रुणि किरंगु नाय्कन् ट्रोडु पोरुळ् मुळुदुं पोग ।।
गुणमणिइलाद कोडन् कळ्वनिन् पुरुळ् कोडांनिन् ।
ट्रणि नगरिलंग वाट्र पूशलिट्ट वलमुट्रान् ।।२६४।।

अर्थ—इस बात को देखकर भद्रमित्र को और भी महान् दु.ख हुआ। जिस प्रकार नाग फणि मे रत्न रखता है और वह रत्न उस सर्प को मारपीट कर कोई ले जावे तो उसको कितना दु.ख होता है उसी प्रकार वह भद्रमित्र वणिक् अत्यत दुखी हुआ। क्योकि भद्रमित्र के बहुमूल्य आभूषण, वस्त्र व रत्न चले गये तो वह रात दिन गली २ मे रुदन करने लगा, पुकारने लगा ।।२६४।।

मन्नव नदनै केदु मंदिरि तन्नै कूवि ।
येन्निव नुरैत्त वेन्न विरैव केळिवनोर् पित्तन ।।
ट्रन्नैयानरोंद दिल्लै तरुगवेन् मणिचेप्पन्ना ।
पिन्नै पो येन्नै कळ्दनेंड्ट्टान् पेरिय पूसल् ।।२६५।।

अर्थ—उस सिहसेन राजा ने वणिक् के द्वारा सारी चरचा को भली भाति समझकर सत्यघोष मत्री से पूछा कि यह वणिक जो कह रहा है यह क्या बात है, सच २ कहो। तब मत्री यह कहता है कि राजन् यह वणिक् न मालूम कहा से आया है, मैंने इसको पहले कभी देखा नही। एक दिन यह मेरे पास आया और कहने लगा कि मुझे मेरे रत्नो की पेटी वापस दो तो मैंने उत्तर दिया कि मेरे पास रत्नो की पेटी तुमने कब रखी थी ? यह पागल है और मत्री को चोर २ कहता हुआ गली २ मे चिल्लाता रहता है ॥२६५॥

करुममे इरैव केळाय् कळविड्न् विळवै योदुम् ।
धर्म नूलुरैक्कुनाने ताक्किल्ला कळवु शेय्यिन् ॥
वोरुवरु मुलगिर् कळ्ळरल्ल वरिल्लै येन्ना ।
पेरियदोन् शबदं शैद नरसनुं पिरुं तेर ॥२६६॥

अर्थ—वह शिवभूति मत्री कहता है कि हे महाराज ! मैने चोरी करना हमेशा पाप समझा है और ऐसी मै सब को शिक्षा देता हू । क्या मैं उसकी चोरी करता था? क्या मै ऐसा काम कर सकता हू ? चोरी करने से इस जगत् मे अनेक दुख भोगने पडते हैं। यदि मै ही ऐसा कार्य करू तो सारी प्रजा मेरे समान अनुकरण करेगी। इस प्रकार मंत्री के कहने से राजा तथा प्रजा को मत्री का पूर्ण विश्वास हो गया, और राजा व प्रजा सब उस वणिक् को पागल समझकर आगे के लिये उन रत्नो की कोई खोज व तलाश वगैरह नही की ॥२६६॥

परै येनिक्कळ्वन् ट्रन्नै पार्तिव नेन्नै पोल ।
मरैय्यव नेंड्रु कोंडान् शबदत्ताल् वंजि पुंड्रु ॥
पिररिवन् शै गै मोरा रेन्नये पित्तनेन्न ।
कुरै उंडो वेंड्रु पिन्नु कूपिट्टा नीदि योदि ॥२६७॥

अर्थ – तदनतर वह भद्रमित्र श्रेष्ठी कहने लगा कि हे नगरवासियो ! इस मत्री की चाडाल के वचन के समान बातें सुनकर लोग इसके वचनो पर श्रद्धा करते हो। मै रत्नो की पेटी इनके हाथ मे देकर फस गया हू और पागल के समान हो गया हू । यहा के राजा ने भी उस मत्री की मीठी मीठो बातो व तार्किक शब्दो को सुनकर उसकी बातो पर विश्वास कर लिया। कभी ये भी फस जायेगा। इस सिहपुरी नगरी के सभी लोग मुझे पागल बना कर सभी मेरी हसी करते है। इस प्रकार अविरुद्ध बाते बोलता हुआ वह भद्रमित्र गली गली मे घूम रहा है ॥२६७॥

शिरगमै परवै पेर्प नुडंबोलं सेडिइन् मोडि ।
परवैयै शिमिळ् पिन् वांगुं पावियै पोल नीयुं ॥
मरै यव नरिव नेन्नुं मायत्तु मरेंदु निंड्रन् ।
पेर लरुं मणियै कोडां येंड्रवन् पोसक्केळा ॥२६८॥

अर्थ —जिस प्रकार एक शिकारी बहेलिया पक्षी को पकडने के लिये जाल बिछाकर अपने शरीर को सूखे पत्तो से ढककर बैठ जाता है और जब पक्षी आ जाता है तो उसको शीघ्र पकड लेता है उसी प्रकार यह शिवभूति ब्राह्मण लोगो को धोखा देकर उनको फसाने के लिये विश्वास दिलाता है और जनता का विश्वास पात्र हो जाता है इसी प्रकार मैंने भी मत्री को विश्वासी समझकर रत्न समलाये थे। अब वह मत्री मुझे वापस लौटाता नही है। ॥२६८॥

पडुमद यानै विट्टु पासत्ति नायै विट्टु ।
कोडि नगर् पेयन् ट्रन्नै कडिग वेंड्रमै चन्कूर ॥
कडियवर् पडियिर् कंडु शैवदर् कंजि कालै ।
नेडियदोर् मरत्ति नेरि नित्तमा यळें तिट्टाने ॥२६९॥

अर्थ—वह शिवभूति मत्री विचारता है कि इस भद्रमित्र वणिक् को हिसक पशुओ कुत्ते आदि से मरवा डालना चाहिये। ऐसी आज्ञा मत्री ने अपने कर्मचारी को दे दी। इस बात से महान् भयभीत होकर भद्रमित्र राजमहल के पास एक बडा वृक्ष था उस वृक्ष पर वह चढ गया वहां वही चर्चा करने लगा ॥२६९॥

तूयनल्वेद नाणुम् सोल्लिय जाति यादि ।
मेयनल्लमच्च नेंड्रु विरुदु मैयुरत्त लेंड्रुम् ॥
तीइनर् ट्रोळिल नेंड्रुम् तेरियान् वैत्त सेप्पै ।
माय नी शैंदु कोंडाल् वरु पळि पाव मंड्रो ॥२७०॥

वह भद्रमित्र वृक्ष पर बैठा बैठा कहने लगा कि हे सत्यघोष कपटी ब्राह्मण! चारो वेद, छह शास्त्र, अठारह पुराण आदि सभी को पढकर अपने आप को ज्ञानी पडित तथा चार वर्णों मे उत्तम ब्राह्मण कहलाता है। ब्राह्मण कुल मे जन्म लिया है, राजा का मत्री पद पाया है, विश्वसनीय बाते बनाता है इसी कारण इसका यश चारो ओर फैला हुआ है। हवन आदि क्रिया को करने वाला है, वैदिक लोगो का गुरु कहलाता है। ऐसा समझकर मैंने मेरे बहुमूल्य रत्नो की पेटी इनको सम्हलाई थी। मेरे दिये हुए रत्नो को हडप करने से आगे चलकर इस अपकीर्ति और अपमान होगा। इसने इस कार्य से पाप बध बाध लिया है। ऐसा सत्य समझे। ॥२७०॥

कोट्र वेन् कुडयुं शोय वनयुं चामर युनीत्ताल् ।
वेट्रिवेल् वेदनेन्न नीयेन्न वेरि लादय् ॥
कुट्रमेंड्रिंदु मेन्न कुरईलेन् सेप्पै कोंडाय् ।
मट्रिदो पूदिमाय मागुमिव्वैंत्तय्या ।२७१॥

अर्थ—वह वणिक् कहता था कि राजा सिहसेन यदि राज्य शासन के प्रति कोई लक्ष्य नही देगा तो यह राज्यशासन भी कुछ समय मे नष्ट हो जायेगा, ऐसी सभावना है। क्योकि न राजा पृथक है न मत्री पृथक है। यह मत्री पर द्रव्य को अपहरण करता है इस

कारण यह पापी और दुर्गति का पात्र है। हे मत्री ! तुम्हारे पास धन की क्या कमी है, उसके पूर्ण करने मे मेरे समान तुमने अन्य कितने लोगो के साथ विश्वासघात किया होगा? यह समझ मे नही आता। मेरे साथ किया हुआ कपट व मायाचार तुम्हे कभी भी सुख नही दे सकता। ।।२७१।।

मरं पळि शिरुमै शिदै निदै वंदैद मनियै वोव्विन् ।
अर पुगळ् पेरुमै शीर्ति येरि ओडु शेरविलाकुं ।।
मरडुवैत्तूरु दोट्टु वैप्पिनै वव्वुवारे ।
तुरंदिडुं तिरुवेनड्रोदुं सुरुदिइं विरुध्दमाय्तो ।।२७२।।

अर्थ—पाप और निंदा से उत्पन्न होने वाला मन अर्थात् पाप और निदा को उत्पन्न करने वाले इस मन से तूने मेरे रत्नो का हरण कर लिया है, इससे धर्मकीर्ति यश आदि सब तेरे नष्ट होने वाले है। तुम यह समझते होगे कि सबसे सुखी हूं। तुमको वास्तव में पाप और पुण्य की कदर नही है। यह लक्ष्मी-कीर्ति आदि आदि एक दिन सब तेरा साथ छोड़ देगी, यह सत्य समझो। और यह समझो कि यह सब तेरे लिए दुर्गति का कारण होगा। कहा भी है कि "अन्यायोपार्जित वित्तं दशवर्षाणि तिष्ठति।" इस प्रकार यह नीति है। मायाचार पूर्वक संपादन की हुई मनुष्य की सपत्ति दशवर्ष के पश्चात् छोड़कर चली जाती है। यह नीति के वाक्य हैं; किन्तु तुम क्या इस नीति के वाक्यो से परिचित नही हो ? ।।२७२।।

वडि नूने पगळि नूरुं मण्णरै मायं शैदिट् ।
तडुमद यानै वोव्व लमच्चरुक्काय वंजम् ।।
वोडु विलार् तेरि तंगै पोरुळिनै वैत्तु वंदु ।
अडि मिसै युरंगुम् पोळ्दिर् वंजिपा नमच्च नामो ।।२७३।।

अर्थ—इस मंत्री द्वारा अन्य अन्य राजाओ का नाश करके तथा हिंसा करके महा कपट से उनके वाहन भडार आदि आदि को लेना यह सब कपट रूप ही है। मैं सत्यवादी हू सत्यपने से मेरा नाम सत्यघोष पड़ा हुआ है, मैं जाति से ब्राह्मण हूँ, मुझ पर विश्वास रखना चाहिये, ऐसा इनके बताने पर मैंने रत्नो की पेटी इनको दे दी। परन्तु मैंने जब लौट कर आने के बाद रत्न मागे तो उत्तर मिला कि तुम कौन हो ? मुझे रत्नो का कुछ मालूम नही। मैं तुमको नही जानता, मुझे कोई रत्न नही दिए—इस प्रकार का मत्री का मायाचारी जवाब मिलना क्या उचित है ? ।।२७३।।

मंदिरं पइंड्रु शाल वल्लवर् तमक्कु पेय्गळ ।
मंदिरं पूदि तन्ना लंड्रि मट्रोंड्रिर् ट्रीरा ।।
वेंतुयर् नरगत्तुइक्कुं वेगत्तु मोगप्पेयैं ।
मंदिरि भूतिनीयेन् ट्रीतिडा वारि येंड्रान् ।।२७४।।

अर्थ—जैसे यत्र मंत्र करने मे समर्थ हुए मनुष्य के द्वारा भूत पिशाच आदि उसके

मत्र के बल से निकल जाते है उसो प्रकार महान दुख को उत्पन्न करने वाले नरक मे खैंच कर ले जाने वाले मोह रूपी पिशाच से गृहीत हुआ शिवभूति मत्री ने अपने अदर से मायाचार व कपट को क्यो नही निकाला ? इस प्रकार भद्रमित्र वणिक् वृक्ष पर बैठा हुआ बार बार कहता है । ।।१७४।।

नीर्मयुं गुणमु नींड्र जातियु निरमुं कलिव ।
शीर्मयुं सारुवाग वरिदु नी शंय्यु मायं ।
नेर्मैं शैदरसन् केट नाळिन् कनींगु मुंड्न् ।
कूर्मयुं गुणमु मेल्लां कादुवन् कोडवेंड्रान् ।।२७५।।

अर्थ—हे सत्यघोष ! आप श्रेष्ठ गुणो को धारण करने वाले हो, उत्तम ब्राह्मण जाति मे जन्म लिया है–आपका रूप सुन्दर है, सम्पूर्ण शास्त्रो के ज्ञाता हो, आपकी कीर्ति चारो ओर फैली हुई है । ऐसा आपने भी मन मे समझ रखा है, परन्तु राजा ने जब आपको और मुझको बुलाकर पूछा तो तुम्हारे अन्दर जो कपट है उसको मैंने भली भाति जान लिया है । तुम्हारे जब पाप का उदय आयेगा तब शीघ्र तुम्हे उसका फल मिलेगा ।।२७५।।

शोरिमद कळिट्रु वेंदन् शेवियुर नाळुं वदिइप्प ।
परिशिनालळैप्पा केटुं परुवर्लिड्रि विट्टान् ।।
सुर कुळल् करुंगट् चेव्वाय् तुडिइडैं परवैं यल्गुर् ।
ट्रेरिवैं मादि रामदत्तौ चित्त तोंड्ळुंद दंड्रे ।।२७६।।

अर्थ—इस प्रकार वह भद्रमित्र रात और दिन सदैव एक ही बात को राजमहल के बगल वाले वृक्ष पर बैठा बैठा कहता था । इतना होने पर भी राजा सिहसेन ने इस ओर कोई लक्ष्य ही नही दिया । एक दिन उस सिहसेन राजा की रामदत्ता नाम की पटरानी ने भद्रमित्र की बात सुनी और सुनकर उसको एक शका उत्पन्न हुई ।।२७६।।

मुंबु पिन् बोंड्रु तम्मिल् मलैबिला मूर्तिनूल् पोर् ।
पिंबु मुन् पोंड्र वेंड्रु मुरैविकन्ड्रान् ट्रन्नै पित्त ।।
नेंबदोंड्रन् ट्रेंड्रन्नि यवनंत्ता नळैत्तु रामै ।
मुंबु निड्रुवकेदु पोयिन्न मुरैइ डेंड्राळ् ।।२७७।।

अर्थ—वह रानी विचार करने लगी कि यह भद्रमित्र वणिक् वृक्ष पर बैठा बैठा एक ही बात को दोहराता है यह क्या बात है ? और अन्य अन्य लोग इसको पागल कहते हैं वास्तव मे यह पागल नही है । यदि पागल होता तो एक ही बात को बार बार मे दोहराता नही । ऐसा विचार कर रानी ने अपने नौकर को भेजकर भद्रमित्र को बुलाया । तत्पश्चात् रानी ने भद्रमित्र को पूछा कि हे वणिक् ! तुम रोज रोज सदा एक ही बात को बार बार दोहराते हो, यह क्या बात है जो भी विषय कहना हो वह आद्योपान्त मुझे वर्णन करो । इस प्रकार रानी के वचन सुनकर वह वणिक रानी को नमस्कार करके कहने लगा कि मै रत्नद्वीप

जाकर व्यापार करके अनेक प्रकार के रत्न सपादन करके लाया और आपके मत्री पर विश्वास करके उन रत्नो को उनके पास रख दिये। जब वह रत्न मैं वापस मागने गया तो उसने जवाब दिया कि मुझे कोई रत्न ही नही दिए न मैं तुमको जानता हूँ और बुरा भला कहकर अपने महल से मारपीट कर निकाल दिया। तब रानी ने कहा कि हे वणिक् ! यह सारी बाते तुमको राजा के सामने कहनी पडेगी ।।२७७।।

वाळार् तडंतोन् मन्नर मन्नर्त शॅगै वन् पोर् ।
तोळाल् विलविक, मुरै केट्टरं पोट्र लागिर् ।।
ट्राळाळ नल्ला विन् ट्रानिड्डुन् पूस नांळु ।
केळादोळिवा निदु वेन्नरु ळेड्रु केट्टाळ् ।।२७८।।

अर्थ—इस प्रकार कहकर महारानी रामदत्ता ने भद्रमित्र को विदा किया और अपने पति सिंहसेन महाराज से जाकर विनम्रता से कहने लगी कि राजा का यह लक्षण है कि अपने राज्य के प्रजाजनो को सुख शाति है या नही-धर्म की स्थिति मे कोई बिगाड तो नही है, कोई अन्याय तो नही करता है, दुष्टजन कोई विवाद तो नही करता, आदि आदि प्रजा की भलाई के लिए सारी बात देखना। यह राजा का कर्तव्य है कि प्रजा मे सुख शाति रहे, अधर्मी नास्तिक लोगो का उच्चाटन करे तथा शत्रुओ को कोई स्थान न देना, शिष्टाचार का पालन करना-सदैव प्रजा के हित का ख्याल रखना। यह सब राजनीति तथा राजा का लक्षण है। हमेशा इस प्रकार की परिपाटी राजाओ की चली आ रही है। धर्मनीति व राजनीति को भूलना नही चाहिए। मुझे यह बाते कहना तो नही चाहिए, लेकिन जो बात मुझे समझ मे आई, मैंने कहदी। राजन् ! आपके समान प्रजा पालक-शूरवीर राजा के राज्य मे एक दु खी वणिक् द्वारा अति दु.ख से कहने वाली बात को आपने आज तक लक्ष्य देकर क्यो नही सुना ? ऐसा रानी ने राजा से प्रश्न किया। राजनीति मे कहा है कि "राजान: प्राणिना प्राणा: राजा प्रत्यक्ष देवता" इस उक्ति के अनुसार राजा संपूर्ण प्राणियो की रक्षा करने वाला प्रत्यक्ष देवता के समान होता है। राजा संपूर्ण जीवो का प्राण है ऐसा नीतिकारो का कहना है। एक मनुष्य कदाचित् यदि कोई अपराध करे तो दैवता उस अपराधी को ही दडित करता है तो राजा एक मनुष्य द्वारा अपराध किए जाने पर कई व्यक्तियो को दड देता है। इस प्रकार आप न्यायवान राजा हो। विचार करे ।।२७८।।

मत्ताकळिट्रा नळैप्पान् मत्तानेन्न मंगै ।
नित्तं वंदम् मरत्त पोळुडु तेरि नीदि ।।
वैत्तावगया लुरैप्पान् मत्तानल्ल नेन्न ।
मुत्तन्न पल्लाय् मुरै नीइडु केळ्मो वैड्रान् ।।२७९।।

अर्थ—सिंहसेन राजा अपनी पटरानी रामदत्ता की बात सुनकर कहने लगे कि यह वणिक् पागल है। प्रतिदिन ऐसा ही कहता है। तब रानी कहने लगी कि यदि पागल होता तो वह अनेक-अनेक बाते बोलता, किन्तु वह तो वृक्ष पर चढ़ कर रोजाना एक ही बात को

कहता है और कोई बात नही कहता, ऐसी दशा मे वह पागल नही है। तब राजा ने सारी बातें सुनकर कहा कि हे देवी ! इस सबध मे तुम ही विचार करो ॥२७६॥

नीदियै पडित्तान् पोल वळै विकड्रान् वळक्कु निड्र् ।
वेदियन् शयल मेल्लाम् विळक्कु पोल् काट्ट वल्लन् ॥
सूदि यान् बूदि योडु पोरुद पिन्नेन्न सोन्नाळ् ।
यादनि वेंडिट्रल्ला मिशैदन नेंड्रु सोन्नान् ॥२८०॥

अर्थ—राजा की बात को सुनकर वह रानी कहने लगी कि शास्त्र को मनन किया हुआ पडित के समान, अविरुद्ध बात अर्थात् न्याय की बात कहने वाले के समान उस वणिक की बातो को मैंने सुनी है। शिवभूति हमारा मन्त्री है। इन दोनो वणिक की और मन्त्री की बातो को सुनने के लिए मुझको अवकाश मिलना चाहिए। मैं आपकी आज्ञा चाहती हू क्योकि यदि अन्धेरे मे दीपक जलाकर रखा जाय तो अन्धेरा दूर हो जाता है। अत. आप मुझको उस मन्त्री के साथ जुआ खेलने की स्वीकृति दे। तब राजा ने कहा कि हे प्रिये! तू यदि इस बात का निर्णय ही करना चाहती हो तो अवश्य इस कार्य को करो ॥२८०॥

अरसन दरुळि नाले मंदिरि यवनैकूवि ।
पेरिदुपो देशदि याडि पिन्नै योंड्रै तोडंगा ॥
उरै शैदाळ् सूदिलेन्नोडप्प वरिलै येंड्रे ।
अरसुनु मंदिरि यै नोकवगो पेरिदळगि देंड्रान् ॥२८१॥

तदनतर रामदत्ता देवी ने अपने कर्मचारी को भेजकर शिवभूति मन्त्री को राजा के पास बुलाया और रानी ने राजा तथा मन्त्री को नमस्कार किया। तत्पश्चात् रानी ने चतुर होने के कारण दोनो के सामने राजनीति कूटनीति की बातो को तथा कुछ समय हास्य विनोद की चर्चा की और कहने लगी कि हे नाथ! यह सत्यघोष शिवभूति मन्त्री जुआ खेलने मे बड़ा चतुर व सामर्थ्यवान है! इससे कहदो कि यह मेरे साथ जुआ खेलकर मुझसे जीतने का प्रयास करे, परन्तु मेरे से जुआ जीतने की सामर्थ्य इनमे नही है। तब राजा ने हसते हुए मन्त्री की ओर देखा और कहने लगा कि रानी ने जो बात कही वह सत्य है। मन्त्री वास्तव मे इतना चतुर व सामर्थ्यवान नही है। अच्छा मन्त्री के साथ जुआ खेलकर तुमको अपनी चतुरता दिखानी चाहिए ॥२८१॥

वरैयन सेरिद मार्व मदिरि तन्नैवल्ले ।
उरै योंड्र मुडियु मेल्लै उडैप्प निप्पोरि लेन्न ॥
तिरै सेरि कडलंतानै वेंदयान् ट्रेवि तन्नै ।
पोरवेंड्र पूदुम पोळ्दे वेल्वनि पोरि लेंड्रान् ॥२८२॥

अर्थ—वह रामदत्ता महारानी कहने लगी कि हे पर्वत के समान निविड़ हृदय को

धारण करने वाले नाथ ! इस मन्त्री को द्यूत युद्ध मे एक ही क्षण मे जीत सकती हूँ–इस प्रकार की वात रानी की सुनकर मन्त्री ने कहा कि राजन् ! मैं इन रानी को शीघ्र जुआ मे हरा दू गा–इसमे एक क्षण भी नही लगेगा ॥२८२॥

मुरै मुरै सवद शैय अरसनु मुगिळ् मुगिळ्तु ।
पिरै नूदर् पेदै तन्पा लिरुंदनन् ट्रेवि पिन्नै ॥
मरैय वन् मार्वितूलु नाममोदिर मु मीरा ।
मुरै मुरै वेंड्रु कोंडाल् मूचिया वैतुयिर्तान् ॥२८३॥

अर्थ—इस प्रकार परस्पर विवाद के पश्चात् मन्त्री कहने लगा कि मैं मेरा सामर्थ्य प्रकट करू गा। तव राजा भ्रम में पडकर रानी के वगल मे वैठ गया। तदनतर रानी व मन्त्री के वीच मे द्यूत क्रीडा प्रारम्भ हो गई। जुआ के खेल के प्रारम्भ होते हा रामदत्ता देवी ने अपनी द्यूत क्रीडा के सामर्थ्य से मन्त्री की वज्रकी वनी हुई यज्ञोपवीत जीतली और दूसरी वाजी मे मन्त्री की मुद्रिका को जीत ली। तव मन्त्री इन दोनो के जीत लेने के वाद दीर्घ श्वास लेने लगा ॥२८३॥

मईलोडु पोरुडु तोट्र वाळरिपोल माळ्गि इप् ।
पुयलन मेनिवेपुं पोडिप्पव निरुंद पोळ्दिर् ॥
कुइन् मुळि वेंड्रु कोंड काटि सेप्पदनै वांगुम् ।
शयलेलाम् सेविलितायकु सेप्पिविट्टणि दिन् मेंडाळ् ॥२८४॥

अर्थ—जिस प्रकार मादी मोरनी युद्ध करके मोर को जीत लेती है उसी प्रकार वह मत्री रामदत्ता देवी के साथ द्यूत क्रीडा मे अपयश को प्राप्त हुआ। रानी ने जुआ मे जीती हुई यज्ञोपवीत व मुद्रिका को लेकर भीतर गई और अपनी निपुणमति नाम की दासी को बुलाकर कहा कि यह यज्ञोपवीत व मुद्रिका को लेकर मत्री के महलो मे जावो और यह दोनो वस्तुए मत्री के भडारी को वतलाना और यह कहना कि मत्रीजी ने यह कहा है कि यह दोनो चीजे तुम अपने भंडार मे रखलो और इनकी एवज मे जो रत्न तुम्हारे भडार मे रखे है वह तुम दे दो ॥ २८४ ॥

करुंबै मेंड्रनैय तीन् सोर्कावलन् ट्रेवितायां ।
नेरुंगि निड्रेळुंद कोंगै निपुन मा मदियि पोगि ॥
सुरुंबिरुं तुरंगुम् तोंग लमृच्चनट्रन् माडन् तुन्नि ।
विरुंबि वंदडेंद तंडकारिवकु बेरु सोन्नाळ् ॥२८५॥

अर्थ—तत्पश्चात् सभी बातो मे चतुर वह निपुणमति दासी उस मुद्रिका व यज्ञोपवीत को लेकर मत्री के महल मे पहुँची और उसके भडारी को बुलाकर जितनी वाते महारानी ने समझाई थी, उनसे भी अधिक चतुराई से वाते वनाकर भंडारी को विश्वास दिलाकर अत्यंत मार्मिक वाते कहने लगी ॥२८५॥

चित्तिर मोत्त रामदत्तौयुं सिय्यसेनुं।
सत्तियं वैत्त नामन् ट्रन्नै मुन्नारौ इट्ट ् ।।
भाद्दिर मित्रन् सेप्पुंडेनिर् कोडुक्क पार् मेल् ।
नित्तालु मिट्ट पूशल् नेडुं पळि विडक्कु मेन्न ।।२८६।।

अर्थ—वह दासी कहने लगी–देखो भडारीजी यह एक मार्मिक बात है, किसी को प्रकट नही होना चाहिए। शिवभूति मत्री इस समय बडे कष्ट मे है, जुआ मे रामदत्ता महारानी के साथ हार कर उनने सब चीजो को खो दिया है और वह रखे हुए रत्न दिए विना छुटकारा पा नही सकते। मंत्री ने यह मुद्रिका व यज्ञोपवीत जिस पर मत्री का नाम है दी है। इनको तुम भडार मे रखलो और इनके बदले भद्रमित्र के रत्न मुझे देदो, ताकि वह दु ख से निकले। यदि नही दोगे तो मत्री की अपकीर्ति होगी और रोजाना जो वृक्ष पर चढ कर वह चिल्लाता है आपका यह कहना बद कर देगा।।२८६।।

मत्तग मोर्त्तिडोन् मंदिरि सोन्न वार्तै।
वित्तग रुत्त मकुॅ वरुम् पळि विलक्क लगा ।।
भद्दिर वागुवल्लि वरदक्कुं पळि योंड्राय।
तित्तलत्तोंड्र् निड्र् दिदि रो पेंदिरकुॅ ।।२८७।।

अर्थ—उस दासी ने भडारी से यह भी कहा कि मत्री ने इस सबध मे और और भी बातें कही है कि सत्पुरुषो पर आए हुए अपराधो को कोई रोक नही सकता। भरत और बाहुबली के मध्य मे होने वाले सघर्षण तथा इन्द्र और उपेन्द्र इन दोनो राजकुमारो मे होने वाले दोषो का कथन सब जगह प्रसिद्ध है। उन्ही के समान मेरा दोष भी इस कलिकाल तक न रहे तथा मेरी अपकीर्ति भी न हो। वास्तव मे यह बात सत्य है कि उस भद्रमित्र वणिक ने मुझे रत्नो की पेटी दी, मुझे स्मरण नही रहा, मैं भूल गया था और मैंने उस वणिक से यह कह दिया था कि मैंने तुम्हारे रत्न नही लिये ।।२८७।।

आदलालेन् कण्णिंड्र् मुळैत्त विप्पळियुं पोगि।
ओद नीर् वोट्ट मेल्लाम् तडइड्र् पडवं दोड्राय् ।।
तीदिला गुणत्त् वेदे शप्पवन् वैत्तु पोइर् ।
ट्रियादु नानिनैंदि दाडे इल्लै सेप्पेंड्र् सोन्नेन् ।।२८८।।

अर्थ—पुनः दासी ने कहा कि मत्री ने यह बात राजा से कही है कि मेरे हाथो से रत्नो का भद्रमित्र को वापिस दे दू गा–यदि न द्ग ा तो मेरे सत्यघोष नाम पर कलक लग जावेगा। सो आज ही विचार करके निर्णय करो। तब सिंहसेन महाराज ने मत्री की बात सुनकर कहा कि सभा के बीच आने वाली अपकीर्ति को रोकने को कोई समर्थ नही है, तुम भद्रमित्र से यह प्रार्थना करो कि हे वणिक यह रत्नो की पेटी आप वापस लो और अब

यह कहते रहो कि इस सवध मे मत्री का कोई दोष नही है। मैं तो वैसे ही पागलपन मे मत्री का नाम ले ले कर वृक्ष पर वैठा वैठा पुकारता था कि मत्री मुझे रत्नो की पेटी नही देता और गली गली मे चिल्लाता था सो वास्तव मे मैं पागल था और यह भी कहना पडेगा कि एक दिगम्बर मुनि के ससर्ग से मेरा पागलपन दूर हो गया। ऐसा करने से कलंक भी नही लगेगा और राजा भी इस वात को स्वीकार कर लेगा। इस प्रकार निपुणमति दासी ने भडारी को समझाया ।।२८८।।

निनैंत्त पिन् शत्तिय कोड नेंवुदु नींगु मेंड्रेन् ।
विनैपयन् पेरुमै याले कोडुत्तिलन् वेड वंड्रि ।।
सिनंकळिट्रुळव मट्रन् ट्रिरुवुळ्ळ मिरुक्क वेय्यत् ।
देनक्कोंड्रु मरिय दिल्लै इनिसैव दुरैक्क वेड्रान् ।२८९।
मन्नव नदनै केट्टु वरुंपळि विलक्कोनावे ।
येन्नुर्नाकिगु वंद पळियोंड्रु मिल्लै ईंडस् ।।
मिन्मणि सेप्पै ईंदौ वनिगनै वेंडि कोळ्वेन् ।
मुन्नै यन् पित्त्रु तीर्तान् मुनिव नेड्रुरक्के वेंड्रे ।२९०।

अर्थ—उस चतुर दासी ने मंत्री के गले मे रहने वाली यज्ञोपवीत तथा मत्री के नाम वाली मुद्रिका उस भंडारी को दिखाकर कहा कि रत्नो की पेटी मुझे शीघ्र देदो। इस कार्य मे विलम्ब मत करो। साथ मे यह भी कहा है कि यह भेद किसी को मालूम न हो। उस भडारी को दासी की वातो पर पूरा पूरा विश्वास हो गया कि मुद्रिका व यज्ञोपवीत मत्री की ही है। तव वह भडारी दोनो को ले लेता है और तिजोरी मे रखी हुई रत्नो की पेटी उस निपुणमति दासी को दे देता है ।।२८९-२९०।।

मंदिरि नंड्रि देड्रु वरै पुरै मावित्तुलुं ।
तन् पल रंगिरित्तिट्ट वाळियुं तंदु सेप्पुक् ।।
कुरण् करिणन् ड्रन्नै विट्टानोरुवरु मरियावन्न ।
मेन् कैयिर् सेत्पैत्ता वेंड्रोरैत्तु कोंडिनिदिन् मेंडाळ् ।२९१।
मंदित्त नोकत्ता लिम्मन्नेलाम् वरणक्क वल्लाळ् ।
सिदित्तोंड्रुरैत्तु सेयिर् ट्रेदरुं पिळैक् माटार् ।।
वदिकाराकुं मूत्तान् वैत्त सेप्पदनै वांगि ।
तदिट्टाळ् मुगत्तौ नोका तामरै किळैत्ति यन्नाळ् ।२९२।

अर्थ—इस जगत मे सभी लोगो को अपने अधीन रखने की सामर्थ्य को रखनेवाली निपुणमति दासी इस सभा मे रहने वाले कपटी मन्त्री द्वारा अपने कपट से भद्रमित्र वणिक

के अपहरण किए गए रत्नो को वह अपनी बुद्धिमता से भडारी के पास से लेकर आई और महारानी रामदत्ता देवी को सम्हलाये तब रामदत्ता ने उस निपुणमति की बुद्धि की प्रशंसा करते हुए उसका मुख देखने लगी और आश्चर्य मे पड गई कि मैंने इस दासी को थोडी सी बात कही थी, इसने अपनी चतुरता से इतना बड़ा काम करके दिखलाया है ।।२९१।।२९२।।

मुंडिददिक् करुम मेन्ना मुरुवलित्तवळोडुं पोइ ।
पडंकिडंदलगुर् पावाई पट्टडु पवर्ग वेन्न ।।
नुडंगु नुन्निडैं ईनाय् नीनु वलिय निनित्त् पोगि ।
मडंगल् पोलिरुंद विदं मंदिरि माडं पुक्केन् ।।२९३।।

अर्थ—तत्पश्चात् रामदत्ता देवी उस दासी को एकात मे ले जाकर पूछने लगी कि हे मेरी प्रिय सहेली निपुणमति ! तुमने क्या षडयन्त्र रचा और किस उपाय से इन रत्नो को तुम निकालकर लाई, किस युक्ति से भडारी से रत्न निकलवाये ? वह आश्चर्य जनक होकर पूछने लगी कि उस भडारी ने तुमको दिया ही कैसे? क्या तुमने जादू मत्र किया था? इसके उत्तर मे निपुणमति दासी ने कहा कि हे माता ! आपकी आज्ञा होते ही 'आपका स्मरण करते हुए मैं मत्री के मकान पर पहुँची ।।२९३।।

पुक्क पिन् बांडगारी कुलियोप्पान् मेलियुं वण्ण ।
मोक्कनीयुरैत्त वेल्ला मुरैत्तडे याळ सोल्लि ।।
मिक्कवन् वेगुळि मावित्तूलु मोदिरमं काट्टि ।
तक्कदींड् रैत्तपिन्नै तंदशेप्पिदु वेंड्रिट्टाळ् ।।२९४।।

अर्थ—तदनतर वहा जाकर बडे प्रेम से मत्री के भंडारी को बुलाया और आपके कहे अनुसार उनसे वार्तालाप की । चतुराई के साथ बात करके उनको आपके द्वारा दी गई यज्ञोपवीत व मुद्रिका दे दी । तब उस भंडारी को इन यज्ञोपवीत व मुद्रिका को देखकर पूर्ण विश्वास हो गया और उसने मुझसे यज्ञोपवीत व मुद्रिका ले ली और रत्नो की पिटारी मुझे दे दी । ऐसा निपुणमति दासी ने रामदत्ता से कहा ।।२९४।।

करंद पालु मुलै पुगुनी करुदि नेंड् पेरिय वर्ग ।
निरंद मदि पोन् मुगत्तायै नीपुन पाति येंड् रैत्तार् ।।
त्तरिदोर् सोल्लं पुय्यामो वरिप कालन् पालुइर्पो ।
लिरंद पोरुळै कोडुवंदाय् केन्नान् सैवदन उरत्ताळ् ।।२९५।।

अर्थ—तदनतर रामदत्ता महारानी दासी के प्रति कहने लगी कि हे निपुणमति ! तेरे अदर सारे गुण हैं, इसलिए तेरा नाम भी सभी कलाओ मे निपुण होने से निपुणमति रखा गया है, यह ठीक है । तुम्हारे समान सामर्थ्यवान चतुर स्त्रियो मे शिरोमणि, सब कला-सम्पन्न ससार मे महान दुर्लभ है । तेरे पास जो यह कला है वह दूसरे के पास नहीं हो सकती । इसी

कारण तेरा नाम निपुणमति रखा गया है। यह नाम इसलिए आपका सार्थक नाम है। आज के दिन जो तूने यह काम किया है यह साधारण बात नही है। तूने यह महान कार्य किया है। जिस प्रकार किसी जीव को यमराज पकड़ कर ले जाता है और कठिनता से वापस देता है उसी प्रकार चतुराई से तूने यह काम किया है। तू बड़ी विलक्षण वुद्धिवाली है जोशिवभूति मंत्री के भंडारी से वुद्धिपूर्वक चतुराई से रत्नो की पेटी लाई है, यह अतीव महत्व की बात है। इस कार्य के संबंध मे मैं तुझ से अत्यन्त प्रसन्न हू। अव यह पूछती हूं कि इस कार्य के वदले मे तुमको क्या पारितोषिक दूं, यह वतलावो। ऐसा रामदत्ता ने उस दासी से कहा ।।२९५।।

मंदारत्तै वंदनयुं वल्लि पोल मन्नवनै ।
शंदार् नुलयाळ् वंदनगि तन्कै होप्पु कादु दलुं ।।
कंदार् कळिट्रु वेंदन् कन् कय्यै मरिया कारिगैये ।
चिंता मणियो नी येड्रान् शिरै वंडेळुंद मुडियाने ।।२९६।।

अर्थ—इस प्रकार आश्चर्यकारक वार्तालाप होने के पश्चात् वह रामदत्ता रानी अपने पति सिंहसेन राजा के पास गई और निवेदन किया कि मत्री के घर पर निपुणमति दासी को भेजकर जो रत्न मगवाये हैं वह मैं दिखाने लाई हूं। तव वह राजा उन रत्नो को देखकर महान आश्चर्य मे पड़ गए और कहने लगे कि हे देवी! तुम तो महान काम धेनु के समान हो। मैंने जैसा विचार कल्पना की वह सकुशल पूर्ण हो गई। वह राजा वड़ा संतुष्ट हुवा ।।२९६।।

मन्नवन् शेप्पै काना मट्रिव नमैच्चनाग ।
मुन्नमेन्नरसु चेंड्र पडियिट्टु वेंड्रु नक्कान् ।।
कन्नमेन्नडै इनाळै मंदि रित्ताग वेन्न ।
सोन्न वोव्वनिगन् ट्रन्नै सोदित्तर कुळ्ळं वेत्तान् ।।२९७।।

अर्थ—वह सिंहसेन राजा इन रत्नो को देखकर विचार करता है कि इस शिवभूति मंत्री ने इसी प्रकार अवतक कई प्रजाजनों को फसाया होगा, मेरे राज्य में प्रजा को कितनी आपत्ति हुई होगी, कितनी सपत्ति का अपहरण किया होगा! तदनंतर यह राजा एव रानी दोनो ने मिलकर विचार किया कि उस भद्रमित्र वणिक के रत्नो का अपहरण मंत्री ने किया सो ठीक है, वह वणिक इतने रोज तक वृक्ष पर वैठा वैठा तथा गलियो मे पुकारता था। वह विल्कुल सत्य था। हमने मंत्री के कथनानुसार उसको पागल समझा। उसको कितना दुख हुवा होगा? हमने उसके साथ महान अन्याय किया। और दोनो ने यह विचार किया कि यह रत्न भद्रमित्र को वापिस दे देना चाहिए; किन्तु रत्न वापस देने के पहले उस वणिक की भी परीक्षा करनी चाहिए ।।२९७।।

मणि चेप्पु नल्ल वल्ले तरुगणवंद वट्रिर् ।
कुणि पट्ट मणियै वांगिवणिगण ट्रण मणिइर् कूटि ।।
पणित्तानन् वणिगन् ट्रन्नै येळैवकन् पणिट्टु निड्रा ।
निनैत्ता नावळैत्त सीरुं पन्नगर किरैव वेंड्रान् ।।२९८।।

अर्थ—इस प्रकार उस सिहसेन राजा ने अपने भडारी को बुलाया और आज्ञा दी कि राजकीय भंडार मे जितने रत्न रखे हैं वे सब यहा लेकर आवो। आज्ञा पाते ही वह भंडारी खजाने मे से अमूल्य अमूल्य रत्न लेकर थाली मे भरकर लाया और राजा के सन्मुख रख दिये। तदनतर उस राजा ने उसी समय निपुणमति दासी द्वारा लाए गए रत्नो को भी रत्नो मे मिला दिए। राजा सिहसेन ने उस भद्रमित्र वणिक को अपने कर्मचारी को भेजकर बुलवाया। भद्रमित्र ने आकर अत्यत विनय से राजा को नमस्कार किया और मत्री के साथ अब तक जो जो बाते गुजरी वह सब बतलाऊ गा, ऐसो वणिक ने प्रार्थना की और सारे हालात वणिक ने बतलाये ।।२६८।।

कच्चट्ट मुलइनाळु वेंदनुं वणिग कंड ।
विच्चेप्पि लुन् सेप्पुंडे लीयेंबुनी येन्नलोडु ।।
मै चेप्पु मुळिइ नानुं वेंदनै वणंगि पारा ।
विच्चप्पेन् मणिचेप्पेंड्रा नेरिमणि कडग केयान् ।।२६६।।

अर्थ—लक्ष्मी के समान रूप को धारण करने वाली रामदत्ता देवी तथा सिहसेन दोनो उस वणिक से कहने लगे कि हे भद्रमित्र श्रेष्ठी! हमारे यहा जो थाली मे रखे हुए रत्नो का ढेर है इसमे जो तुम्हारा रत्न हो वो छाटकर बतलावो और कहो कि ये मेरा रत्न है। तब उस वणिक ने खडे होकर राजा को नमस्कार किया और उस थाली मे रखे हुए रत्नो के ढेर मे से अपने रत्नो को पहचान कर निकाल लिया और राजा से कहा कि यह रत्न तो मेरे है और यह मेरे नही हैं ।।२६६।।

उरैत्तायन् ट्रन्नै पारा मन्नन् मुन्नि वनै योरु ।
पिरत्ताय मिंड्रि निड्रार् पित्तनेन्ना ।।
उरेत्ता वेन्नरसु सेंड्रु निलत्तावरोट्ट तुंबम् ।
मरकूलत्तावकुं नाय् कन् वारिइन् मडिदं देंड्रान् ।।३००।।

अर्थ—तब वह राजा मन मे विचार करने लगा कि यह रत्न मेरे है और अन्य रत्न मेरे नही है, इसकी पहचान करके इस वणिक ने अपने ही रत्न लिये। इस कारण यह वणिक महा विद्वान व सद्गुणी है व सच्चा है। मैंने इसके गुणो को न देख कर पागल कहकर इसका तिरस्कार किया, यह मेरी महान भूल है। आज तक मत्री द्वारा कितने लोग दुखी हुए होगे कितनो को धोखा दिया गया होगा, कुछ नही कहा जा सकता। जैसे समुद्र के मध्य मे जहाज के चलते समय भूचाल आ जावे तो बैठे हुए लोगो को कितना दु ख होता है। उसी प्रकार इस भद्रमित्र को दु ख हुआ होगा। प्रजा का रक्षक मत्री होता है। यदि रक्षक ही भक्षक हो जावे तो इससे और बुरी बात क्या हो सकती है ? ऐसा मन मे विचार किया।

राजा राक्षसरूपेण, मत्री व्याघ्ररूपेण, प्रजाश्वानरूपेण—यथा राजा तथा प्रजा।

अर्थ-इस कहावत के अनुसार यदि राजा राक्षस रूप धारण करेगा, मत्री व्याघ्र रूप धारण करेगा, तो प्रजा अवश्य श्वान रूप धारण करेगी और जैसा राजा होगा वैसी प्रजा

होगी । राजा और मत्री यदि धार्मिक रूप धारण करेंगे तो प्रजा भी उनका वैसा ही अनुसरण करेगी ।'यथा राजा तथा प्रजा'। राजा या मत्री यदि अन्यायी या अधर्मी होगे तो प्रजाजनो को दु खी करेंगे । कहा भी है कि:—

प्रभुर्विवेकी प्रमदा सुशोला, तुरगमाशस्त्रनिपात धीरा ।।
विद्वान् विरागी धनिकश्च दाता, भूमंडलस्याभरणानि पंच ।।

अर्थ—राजा के पास पाच रत्न रहते है । राजा विवेकी, सुशील स्त्री, घोडे, शस्त्र विद्या धीर, वैरागी विद्वान धनवान होने पर दातार । यह पाचो मनुष्य के लिए आभरण हैं। राजा कैसा होना चाहिए—

अहमेवमतोमहिपति, इति सर्वप्रकृतिसान्विता ।
उदधिरेवनीय सुन्दरी, यःस्वभावान् नस्य विमाणमक्षअत् ।।

अर्थ–राजा लोगो को सपूर्ण प्राणियो की रक्षा करने की सदैव चिंता होनी चाहिए । प्रजा के दु.ख को दूर करने मे दक्ष होना चाहिए । जैसे समुद्र सपूर्ण नदियो को अपने अदर समावेश करके गभीर रहता है और उपमा देने का कारण बन जाता है उसी प्रकार राजा को रहना चाहिए । आपत्ति आने पर भी प्रजा की हर प्रकार की रक्षा करना राजा का कर्तव्य हो जाता है ।

यौवन धनसम्पत्ति प्रभुत्वमविवेकता ।
एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम् ।।

अर्थ—यौवन का मद, सम्पत्ति का मद, राज मद, अविवेक मद यह एक से एक बढ़कर है । यदि इन चारो मदो से एक भी मद हो जावे तो कितना अनर्थ करता है और यदि चारो मद मिल जावे तो उनकी गति क्या होगी ?

मत्री का गुण—

मेघावी प्रतिभाषतो गुणपरो श्रीमान् शील पटः ।
भावज्ञो गुणदोषेनिपुणता संगीत वाद्यादिषु ।।
मध्यस्थो मृदुवाक्यधीर–हृदयाः तत्पडितो सात्विका ।
भापा भेद सुलक्षणाः सुकाविभिः प्रोक्ताश्र्ते मंत्रिणा ।

अर्थ—जो मत्री विद्वान होना चाहिए, कलावत तथा समस्त भापा का जानकार होना चाहिए । गुणवान 'ऐश्वर्यवान व कीर्तिमान होना चाहिए । मृदुभापी तथा प्रजा के भावो को समझने वाला होना चाहिए, कवि भी होना चाहिए । प्रजा के कष्ट को दूर करके हित चिंतवन वाला होना चाहिए । यदि इनसे विपरीत हो जावे तो मत्री अनेक प्रकार के पाश्य मार्ग मे रत होकर सन्मार्ग पर कुठाराघात करने से धर्मार्थ से पुरुपार्थ जो मोक्ष मार्ग के साधक है वह नष्ट हो जायेंगे और धर्म को क्षति हो जाएगी । नीतिकारो ने भी कहा है कि:—

पत्नी प्रेमवती सुताः सविनयका भ्राता गुणालकृत,
स्नेही बधुजनः सकाति चतुरा नित्य प्रसन्नंः प्रभुः।
निर्रोगी चरपरार्थी सपना प्राप्तव्य भोग घन,
पुण्याणा उदयेण संचित फलं कस्यामि सपद्यते।

अर्थ—सद्गुण वाली स्त्री सुबुद्धि, सुलक्षणपुत्र, स्नेही, बधु परस्पर स्नेह करने वाले भाई, प्रौढ, मित्र, प्रजा को प्रिय राजा कपट रहित रखी द्रव्य को देकर याचको की इच्छा पूरी करने वाले भाई, प्रौढ मित्र को भोगने वाला धनी यह सभी को प्राप्त हो जाना पूर्व जन्म का फल है। पूर्व जन्म के पुण्य बिना यह प्राप्त नही होता। इस कारण उस मत्री ने दूसरो के धन का अपहरण करके स्वयं धनवान बनकर तथा उसका सुख भोगने की इच्छा से भद्रमित्र वणिक के रत्नो का अपहरण करके अपने को सत्यघोष की पदवी को प्राप्त करके बतलाने वाला प्रजा पर विश्वास दिलाने वाला ६ शास्त्र १८ पुराण आदि का उत्तम पडित उत्तम कुल मे जन्म लिया और मैं ब्राह्मण हू ऐसा बतलाता है कभी इस प्रकार का पापाचार नही किया- ऐसा कहने वाला उस सत्यघोष मत्री ने उस वणिक के रत्नो का अपहरण करके कितनी अपकीर्ति प्राप्त की है ? मत्री को ऐसा करना उचित है क्या ? और भी कहा है कि कैसा राजा होना चाहिए—

शिथिल मूल दृढ करे फूल चूटै जल सीचे,
उरघ डरि नवाय भूमिगत ऊरघ खीचे।
जो मलिन मुरझाय देखकर तिनही सुधारे,
कूडा कंटक गलित पत्र बाहर चुन डारे।
लघु वृद्धि करे, भेदे जुगल, बाड़ सवारे फल भखे,
माली समान जो नृप चतुर सो सपत्ति बिलसे अखै।
॥३००॥

भद्दिर मित्तिरावुन् चित्तिर मणि सेप्पिट्ट।
मुत्तिरै युन्नदागिल् वैत्तिडल् कोडु पोग॥
वत्तिर मुट्रि यानै मत्ताग यरुक्कु मन्न।
मुत्तिरै येन्न देंड्रु वित्तग रिट्टूदेंड्रान्॥३०१॥

अर्थ— राजा सिंहसेन ने उस भद्रमित्र से फिर कहा कि इन रत्नो मे जिन २ रत्नों पर तुम्हारी म्होर (सील) लगी हुई है। उनको चुन लो। इस बात को सुनकर वह भद्रमित्र राजा को नमस्कार करके बोला कि इन रत्नो पर जो म्होरे (सील) लगी हुई है वह मेरी म्होर नही है, किसी अन्य की म्होर है॥३०१॥

तिरवेन तिरंडु पार्तिट्।
टिरैवमट्रेन्न वल्ला॥

वरिवरु विलैय कर् कन् ।
निरैयवुं किडंद वेंड्रान् ।।३०२।।

अर्थ—इस बात को सुनकर राजा सिंहसेन ने रत्नो ने ढेर मे अन्य रत्न व मुद्रिका आदि मिलाकर पुन: भद्रमित्र से कहा कि तुम मुद्रिका आदि इन मे से चुन लो तव भद्रमित्र कहने लगा कि कि राजन् मेरे रत्न भी इन रत्नो मे बहुत मिले हुए है ।।३०२।।

मरिणन् मिक विम्मरिणयै निन् मरिण योडु कलक्कुं ।
मण्णै तानुळनो वरियादु नीयुरैत्ताय् ।।
येन्निला विलै विम्मरिण तन्सयै पाकुं ।
कण्णु मोडिन् कानेन कावल नुरैतान् ।।३०३।।

अर्थ—इस जगत मे आपके अमूल्य रत्नो के साथ मेरे कम मूल्य के रत्नो को मिलाने वालो के समान और अज्ञानी कौन होगा ? कोई नही है, इसलिए उन अमूल्य रत्नो में मेरे अल्पमूल्य रत्नो का रखना अज्ञानीपन है । राजा कहने लगा कि हे भद्रमित्र तुम्हारी आखो मे कुछ भ्रम है, यह रत्न तुम्हारे ही हैं गौर करके देखो, घबरावो मत, एक वार और देख लो ।।३०३।।

मत्तनल्लवन् करुमत्तिन् वरुं पयन् ट्रेरिंदु ।
सित्त वैत्तलार् सैवदोर् सोळिल् वैय्यत्तिल्लै ।।
वैत्त वेन्मरिण मरंदु वैगलु मळैत्तोनेर् ।
पित्तनेंड्रनै येळैत्तवर पिळैत्तदेन् पेरियोय् ।।३०४।।

अर्थ—इस बात को सुनकर वह वरिणक हाथ जोडकर कहने लगा कि हे राजन्! आप ज्ञानी हैं, भली प्रकार जाने विना आप कोई कार्य नही करते हैं । ज्ञानी प्रत्येक कार्य को सोच समझकर करता है । यदि मैं अपने रत्नो को भूल जाऊं तो लोगो द्वारा मुझे पागल कहना ठीक है । मैं अपने रत्नो की पहचान भूल नही सकता ।।३०४।।

इप्परि सुरैत्तु सेप्पिलिट्टमा मारिणये एल्लाम् ।
सेप्परुं परिसु नीकि सेळुमरिण कैइर् कोंडान् ।।
मै परी शरिंदु तन्मै कैकोंडु पिरिंदु विट्ट ।
ओप्पिर मत्तनाय मुनियै पोल् वरिणग निंड्रान् ।।३०५।।

अर्थ—इस प्रकार कहकर उस रत्नराशि मे मिले हुए अपने रत्नो को पहचान कर भद्रमित्र ने ले लिए और अन्य रत्नो को छोड दिये । जिस प्रकार एक प्रमत्तगुरणस्थानवर्ती तपस्वी अपने सत्यतत्त्व को समझने के वाद अपने सत्स्वरूप आत्म-स्वरूप को अर्थात् स्वपर के ज्ञान को समझकर जैसे जडतत्व को भिन्न जानता है, अपने निज स्वरूप मे लीन रहता है इसी प्रकार भद्रमित्र श्रेष्ठी ने अन्य रत्नो को छोड दिया और अपने रत्न ले लिये ।।३०५।।

मणिइवै शिरिदु भूतिवैत्तन वागुमुन्नै ।
कुणिइलान् शैद कुट्रम् तीर नी कोंडिडेन्न ।।
वणिइला मगळिर् पोल पिरन् पोरुळ् कोंडु वाळुं ।
पणिइले नरस लेड्रान् परूमणि वैरतोळान् ।।३०६।।

अर्थ—तब वह सिंहसेन राजा बणिक से कहने लगा कि, आपके यह रत्न इन रत्नो के ढेर मे शिवभूति मन्त्री ने रखे होगे। आपको दुख देकर वह मन्त्री महान अपराधी बन गया है, इसलिये उसी अपराध के बदले तुम अन्य २ रत्नो को भी ले लो। तब राजा की बात सुन कर बणिक कहने लगा कि अपने धर्म को छोडकर दूसरे की वस्तु को लेकर वस्तु का अपहरण करने वाला मैं नही हू ।।३०६।।

मण्णिय सुत्तमेल्लान् पोरुळिनै वलिदिन् वांगि ।
इन्निल वरप्पि निड्रुम निड्रुम् पळियु मेय्दि ।।
मिन्निनु कडिदु वीयुं याकैयुं किळयु मोंबल् ।
मन्नव पेरिय दोंड्रु मक्कळि पिरवि केंड्रान् ।।३०७।।

अर्थ—जिस मनुष्य का मन सदैव परिशुद्ध नही रहता है–उस मनुष्य की वस्तु को अपहरण करने से इस जगत मे उसके जीवन मे अनेक प्रकार के सकट सहन करने पडते है। क्योकि यह सपत्ति आकाश मे बिजली की चमक के समान क्षणिक है। राजा महाराजा के पास सपत्ति होते हुए भी वे क्षणिक सपत्ति के मोह से ही चक्रवर्ती होते हुए भी नरक मे गए हैं। यह सब मोह की लीला है। संपत्ति एक स्थान पर स्थिर नही रहती। यह सपत्ति वेश्या के समान है जो कभी इसकी बगल मे कभी उसकी बगल मे जाती है। यह सब पाप पुण्य का फल है। इस कारण किसी को सुख शाति नही मिलती एक दिन सब को छोडकर जाना पडेगा। मोहवश मैं अन्य की सपत्ति को स्वीकार करू, यह मेरे योग्य नही है ।।३०७।।

तानत्तिर् कुरुत्तु मंड्रु तन् किळै कोडिर् शाल ।
वीनत्ताळु युक्कु निर्कुं मेच्चत्तौ इळक्क पण्णु ।।
मानत्तौ येळिक्कुं तुइक्किल् मट्रवर् कडियै याकु ।
मूनत्तु नरगत्तुइक्कुं पिरन् पोरुळुवक्किन् वेदे ।।३०८।।

हे राजन्! दूसरे की सपत्ति यदि मोहवश मैं लेकर जाऊगा तो वह सपत्ति उत्पादन के लिए योग्य नही होती। वह सपत्ति अपने बधु बाधव का स्वय का नाश करती है। यहा तक कि अन्यायवश अन्य की सपत्ति लेने से स्वय की पहले की सपत्ति भी नष्ट हो जाती है, और नरक मे जाना पडता है ।।३०८।।

पेरिळ विंब तुंबं पिनिपगं पिरप्पि वट्रिन् ।
आरुदान मुबु शैद विनय वळि वरुव दल्लाल् ।।

वेरोंड्रा लाव दुंडो विनयेंबा निड् दोंड्राल् ।
मारिड्राय् निड् दल्लान् मद्रिवन् शैद दुंडो ॥३०६॥

अर्थ—इस जन्म मे लाभ, अलाभ, सुख, दु.ख, व्याधि, आधि यह छहों अनादि काल से शत्रु के समान लगे हुए हैं। पूर्व कर्मानुसार ये साथ चले आ रहे हैं। मैंने पूर्व जन्म मे उपार्जन किए हुए पाप के उदय से वे पाप जब उदय में आने पर मत्री के साथ विरोध उत्पन्न किया। और पाप कर्म का उपशम होते ही पुन: मुझको मेरी वस्तु मिल गई है। यह सब शुभाशुभ कर्मेन्द्रिय से सारी वस्तुएं प्राणी को मिलती हैं ऐसा उस भद्रमित्र ने राजा से कहा। ॥३०६॥

नीदि नोदुवान् पोनिड्रर नंड्रु सोन्न ।
तीदिला मोळि यै केळा दिंडिरर शीय सेनन् ॥
वेद वाणिगणे नीदि नूल् कंड वेदनोइक् ।
कोदिला गुणत्ति नानेंड्रु वंदन निरुंदु सोन्नान् ॥३१०॥

अर्थ—राजा विचार करने लगा कि जिस प्रकार एक विद्वान पडित बातें करता है उसी प्रकार यह भद्रमित्र निर्दोष वचन बोलता है। यह वणिक न पडित है, न सिद्वात शास्त्री है, फिर भी यह सभी शास्त्रो मे पारंगत होने के समान वार्तालाप करता है। उच्चकुल मे इसने जन्म लिया है। इस प्रकार उसके गुणो का वर्णन किया। तब भद्रमित्र कहने लगा कि मैं प्रशसा योग्य नही हूं। आप सभी शास्त्रो मे पारंगत, निपुण, प्रजापालक, धर्म के प्रति आस्था रखने वाले, प्रजा को धर्म की ओर उत्तेजित करने वाले, धर्म मे कटिबद्ध हैं, ऐसा राजा पृथ्वी पर होना कठिन है। इस प्रकार राजा के गुणानुवाद गाये ॥३१०॥

वैयग पेरिनुं पोया वाकिनन् मरणं वंदा ।
लुय्यला मरुंदेड्रालुं पिरन् पोरुळ् कुळ्ळं वैयान् ॥
तय्यलाय् धरुम नीदि शमनिलै दया वोळुक्कं ।
वैयगाम् तन्निलिदं वणिग नाय् वंद वेंड्रान् ॥३११॥

राजा मन मे विचार करने लगा कि देखो मैंने कितनी बार उलट पलट करके वणिक से पूछा फिर भी वह अपने धर्म पर अडिग रहा। यदि मैं राज्य भी दे दू तो भी वह प्रलोभन मे नही आयेगा। यदि और भी कुछ दूं तथा इतनी सपत्ति होने पर भी यह वणिक यह विचारता है कि यह मेरी नही है इनसे मोह करना व्यर्थ है। ऐसा विचार कर अपनी रानी से राजा कहने लगा कि हे देवी ! धर्म नीति, दयाभाव और सम्यक्चारित्र यह सारी बातें वणिक मे कूट कूट कर भरी हुई है। यह सज्जन व सत्पुरुष है। पागल व पापी नही है। धर्मात्मा, अडिग वणिक है। न्यायोपार्जित धन पैदा करने वाला है। निर्दोष है ॥३११॥

एंड्रुलुं देविवेंद्र वादितन् पवकत्तार् पोल् ।
ट्रिन ळुवर्ग नेजि निगंदन ळागनीदि ॥

कोंड्रव बूदितन् पाल् कोन् सेट्टि पट्टम् तन्मै ।
मंड्ुलम् तोंगल् वेंदन् वनिग नुक्कींडु सोन्नान् ।।३१२।।

अर्थ—वह रामदत्ता पटरानी अपने पति राजा सिंहसेन की बातो को सुनकर जिस प्रकार वादी अपना मुकदमा स्वय के अनुकूल फैसला होने से प्रसन्न होता है, उसी प्रकार भद्रमित्र वरिणक के रत्नो को मत्री द्वारा चोरी किये हुए को निपुणमति दासी के द्वारा प्राप्त हुए थे इस बात को सुनकर महारानी बडी प्रसन्न हुई और सिंहसेन राजा ने शिवभूति मत्री द्वारा इस अपराध को करने पर मत्री पद से च्युत कर दिया और उस भद्रमित्र वरिणक को मत्री पद दे दिया ।।३१२।।

मरिणगळुं पोन्नुं मुत्तुं वैरं पिरक्कुं भूमि ।
मरिणगळुं पोन्नुं मुमुत्तुं वैरमु मडक्कु माडम् ।।
मरिणगळुं पोण्णं मुत्तुं वैरयुम् वडित्तु सैद ।
वरिणगळुं तुगिलुं सेंदु मन्नवम् कैकोळ्ळेंड्रान् ।।३१३।।

अर्थ—स्वर्ण रत्न आदि उत्पन्न होने वाली भूमि को, मोती वज्र आदि से भरा हुआ भडार तथा अमूल्य आभरण वस्त्र आदि सभी भद्रमित्र को दे दिये । तत्पश्चात् अपने कर्मचारी को आज्ञा दी कि शिवभूति ने आज तक अन्य लोगो की कितनी सपत्ति व धन आदि को लूटा है, पता नही । फिर भी इसके धन मे जितने भी आभूषण रत्न आदि हो वे सब लूटकर ले आवो और भद्रमित्र मत्री को दे दो ।।३१३।।

इडं पेरिदुडय्यवर पळिइल् कार्यं ।
तोडंगिय मुडित्तलाल विडार्गळें बदु ।।
मडंगळ् पोनिंड्रिद वरिणगन् मंदिरि ।
रडन् जलै कडदिदु मुडिंद देंड्रनर् ।।३१४।।

अर्थ—मन पूर्वक सत्पुरुष लोग किसी भी कार्य को करने की प्रतिज्ञा करते हैं तो उस कार्य को किसी भी प्रकार की आपत्ति आने पर भी पूर्ण करके ही छोडते हैं, अधूरा नही छोडते हैं । इसी प्रकार सिंह के समान शूरवीर उस भद्रमित्र ने शिवभूति द्वारा अनेक दुख देने पर भी अपनी सत्यता को नही छोडा । इसी कारण भद्रमित्र की गई हुई सपदा मिल गई और मत्री पद मिल गया । यह सब पूर्वजन्म के पुण्य का तथा इनके सच्चरित्र का फल है । ऐसी चर्चा परस्पर मे सभी लोग करते थे ।।३१४।।

मत्तमाल् कळिरु पोगुं वळिइनै कुळित्तु मान् ।
पोइत्तारै शैदु वीळ्तु पिर्डित्तिडु पुलयन् पोल ।।
सत्तिय कोडनेन्नु जडित्तिनार् ट्रन्नै तेट्टि ।
वैत्तिद वैयत्तोडुं वंजित्ता निन्नै येन्ना ।।३१५।।

अर्थ—वह सिंहसेन राजा का मंत्री जिस प्रकार एक मदमस्त हाथी रास्ते मे जाता है, उसको पकडने के लिए खड्डा खोदकर घास बिछाकर उसमे बनावटी हथनी को खडा कर देते है और वह हाथी मस्त होकर उस हथनी के पास जाते ही खड्डे मे गिर जाता है, उसी प्रकार वह शिवभूति मत्री अपने अहकार द्वारा सत्यघोष पद को घोषित करते हुए मायाचार कपट के द्वारा स्वयं ही पापो के खड्डे मे गिर जाता है। इसलिए मायाचार तथा कपटाचार अधिक समय तक टिक नही सकता। शीघ्र ही प्रकट हो जाता है। जैसे तूम्बी के कीचड का लेप कर उसको पानी मे डुबो दिया जावे तो वह पानी मे डूबी रहती है, कीचड के हटते ही वह तूम्बी ऊपर आ जाती है, उसी प्रकार सत्यघोष मंत्री की सारी वाते पाप कर्म के उदय से जनता के सामने प्रकट हो गई। यह मायाचार प्राणी को भव २ मे दुख देता है। मायाचारी व कपट करना उचित नही है। तत्वार्थ सूत्र मे उमास्वास्वामी ने कहा है कि:—

"माया तैर्यग्योनस्य"— मायाचार तिर्यंच गति के लिए कारण है, इसलिए मनुष्य गति से सुगति प्राप्त करना चाहते हो तो मिथ्या माया निदान इन तीनो शल्यो को त्याग करना चाहिये। व्रत भी मायाचारी को नही होता है। निःशल्योव्रती–शल्य रहित मनुष्य को व्रती कहते हैं। यदि शल्य सहित होगा तो उसका कभी ससार से उद्धार नही हो सकता। ॥३१५॥

कोबिया वरसु नीदि कुरै पडा वगैईनान्मा।
पाविया मिवनै नूलिन् पडिनार् कडिगवेन्न ॥
नाभिकालत्ति निप्पा नर्डाक्किड नूलिन्।
ट्रीविगा मणत्ति नगिळ् शैवदु तेरिंदु सोन्नार् ॥३१६॥
मडित्तुवाय् कडित्तु मल्लर् मुप्पदु सवट्टै तिंडो।
केडुत्तिरा वडित्तोरुत्तिन् शान मुत्तालं तीट्टि ॥
पडैत्तमा डनैत्तु कोंडिट डिप्पदि निंड्रुम् पोग।
वडित्तलां दंड्र मेंड्रा ररसनप्पडि शैगेंड्रान् ॥३१७॥

अर्थ—उस समय सिंहसेन राजा अत्यन्त क्रोधित होकर उस पापी सत्यघोप को उसके द्वारा किये हुए अपराध का राजनीति विधान के अनुसार दण्ड देना चाहिये, ऐसा विचार करके राजनीति मे भली प्रकार जानने वाले न्यायाधीश आदि से पूछताछ की कि महाराजा नाभि के समय मे जो दण्ड विधान था वह अलहदा था, अव इस समय हु डावसर्पिणी काल है, और कर्मभूमि मे परिवर्तन कर रहा है, अत इनको कौनसे शासनानुसार दण्ड न चाहिये, ऐसा राजा ने आमत्रित न्यायाधीशो से पूछा। तव सभी ने मिलकर यह विधान वनाया कि वडे पहलवानो द्वारा गदा डंडो आदि से शिवभूति को वत्तीस वार घू सा मार लगानी चाहिये या एक टोकरी भर वैल का गोवर खिलाना चाहिये और आज तक जितनी सपत्ति आदि की कमाई की है वह सव छीन ली जाय और इस नगर मे उसको निकाल दिया जाय। ऐसा सभा मे सभी नीतिकारो ने विधान वनाया। तव राजा सिंहसेन ने अपने कर्मचारियो को वुलाकर आज्ञा दी कि विधानानुसार शिवभूति को दड दिया जावे। तव मन्मथ

सिंह के समान बडे पराक्रमी पहलवान आदि राजा के वचन सुनकर, गदा, आयुध लेकर शिवभूति के घर पर गये और उनका घरबार सब जाकर लूट लिया ॥३१६॥३१७॥

कुरिण शिलै कडवुळ् पोलुं कोट्रवन् कुरिप्पै नोका ।
परणइन् वेंजिलै कळेंदि पाडिकापार्गळ् सूळंदार् ॥
निनैंघरु पेरिय शेल्वं निनिप्पदन मुन्नं नीराय् ।
परिणयिन् मुन्मलरंद सेंदामरित्तडं पोंड्र दंड्रै ॥३१८॥
मलै मिशै शिग वेट्रै वरुत्तुमान् कड्रु पोल ।
तलै मिशै शवट्टै इट्टु शानगं तीट्रि इट्टार् ॥
पुलयर् शड्रवनै सूळ्दुं पोगेन उरैप्प सुट्र ।
मलै कडर् कलिळ नावा यवरुट्र दुट्र दंड्रे ॥३१६॥

अर्थ—लोभ के वशीभूत होकर जीव क्या २ काम नही करता ? वह कार्य अकार्य का कभी भी विचार नही करता है । गुरण भद्राचार्य ने अपने आत्मानुशासन मे कहा है कि —

विषधारी सर्प के तुल्य अनेक भव पर्यत दु ख देने वाले भोगो को सेवने की अत्यत उत्सुकता धारण करके मैंने आगे के लिए दुर्गति का बध किया, अतएव अपने उत्तर भवो को नष्ट कर दिया । और अनादिकाल से लेकर अभी तक मरण के दुख भोगे, तो भी तू उन दुःखो से डरता नही है । निर्भय हो रहा है । जिस २ कार्य को श्रेष्ठ जनो ने बुरा कहा उसी २ को तूने अधिकतर चाहा और किया । इससे जान पडता है कि तेरी बुद्धि नष्ट हो गई है और तुझे आगामी सुखी होने की इच्छा नही है । इसीलिये तू निन्दित कार्य करके अपने सर्व सुख वृथा नष्ट करना चाहता है । ठीक ही है—काम क्रोध रूप बडे भारी पिशाच का जिसके मन मे प्रवेश हो जाता है वह क्या नही करता है ? उसको हिताहित का विवेक कहा से रह सकता है ?

तत्पश्चात् सभा मे रहने वाले सभी लोगो ने मिलकर जैसे पर्वत की चोटी पर बलवान सिंह रहता है उसको क्षुद्र जतु भी मारकर नोचकर खा जाते है, उसी प्रकार सभी लोगो ने उस शिवभूति को खूब मारा पीटा, गोबर खिलाया और पहलवानो के द्वारा गदाओ तथा मुक्का आदि से उसको मरवाया । और मार पीटकर नगर के बाहर निकाल दिया । तब शिवभूति उस नगर को छोडकर अन्य स्थान पर चला गया । उस शिवभूति के सभी कुटुम्बी जिस प्रकार माल से भरा हुआ जहाज समुद्र मे डूब जाता है और सबधित व्यापारी दुखी होते हैं उसी प्रकार दुखी होकर शिवभूति पर आपत्ति आने पर वे सब दुख समुद्र मे डूब गये ॥३१८॥३१६॥

मुन्पगर् देवनेंड्रु मोय् तुडन् पुगळ पट्टान् ।
पिर्पगल् पेयनेंड्रु पिन्सेला दिगळ पट्टान् ॥
अंबुरु मिळमै मूपिलरिवयर् कोरुव नुत्तान् ।
मुन्बुतान् शैदु वंद विधि मुरै उदयत्ताले ॥३२०॥

अर्थ—उस मत्री के पूर्व जन्म में किए गये पुण्य का जब तक बल था और जब वह राज्य सभा मे जाता तब उस समय रास्ते मे लोग उसको नमस्कार करते थे। उसकी स्तुति करते थे वही लोग आज उनके अपराध के प्रति इसको अपशब्द कहते हुए, इसके साथ मारपीट करते है, तथा घोर निंदा कर रहे हैं। जिस प्रकार मनुष्य यौवन अवस्था मे तरुण स्त्रियो के साथ प्रेम करते हैं, वे ही मनुष्य वृद्धावस्था मे उसका तिरस्कार करते है। वही दशा शिवभूति की हुई। इसका सारांश यह है कि तीव्र पचेन्द्रिय मे लालसा रखने वाले को क्या दशा होती है। इसके सबध मे आचार्य कहते है:—

आशागर्त· प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपम्।
कस्यकि कियदायाति वृथा वो विषयैषिता ।।

अर्थ—प्रत्येक जीव का आशा रूपी खड्डा इतना विस्तीर्ण है कि जिसमे संपूर्ण संसार यदि भरा जाय तो भी वह संसार उसमे अणुमात्र के तुल्य दीखेगा। अर्थात् सभी ससार उस खड्डे मे डाल देने पर भी वह खड्डा पूरा नही हो सकता किंतु वह पडा हुआ सारा ससार एक अणु मात्र जगह मे ही आ सकता है। परन्तु तो भी ऐसी विशाल आशा रखने मात्र मे क्या किसी जीव को कुछ भी मिल जाता है? इसलिये ऐसी आशा रखना सर्वथा वृथा है। यदि आशा रखने से कुछ मिले भी तो किसको? आशा तो सभी ससारी जीवो को एक सी लग रही है। और प्रत्येक आशावान यही चाहता है कि सर्व ससार की सपदा मुझे मिल जाय। अब कहो, वह एक ही सम्पदा किस किस को मिले? इधर यदि प्रत्येक प्राणी की आशा का प्रमाण देखा जाय तो इतना बडा है कि एक जगत् तो क्या ऐसे अनत जगत की सपत्ति उस आशा गर्त मे गर्क हो जाय, तो भी वह गर्त पूरा नही हो पावेगा। पर आता जाता क्या है? केवल मनोराज्य की सी दशा है। केवल बडी २ आशा करके बैठना प्रथम श्रेणी के मूर्ख का लक्षण है। आशा करने वाला केवल अपनो धुन मे ही सारा समय निकालता है। करता धरता कुछ नही। उसकी बुद्धि धर्म मे भी नही लगती है और कर्म मे भी नही लगती है। इसलिये धर्म कर्म विना वह सुखी कहा से हो? उसकी दशा एक शेखचिल्ली की सी हो जाती है कि जो सराय के द्वार पर बैठा हुआ भीतर आये हुए घोडे, हाथी, धन, दौलत वगैरह को देखकर अपनाता हुआ खुशी होता था, और रात वसेरा कर, जाते हुए दिलगीर होता था। क्या उसको ऐसी केवल आशा धर के निष्क्रिय बैठने से कुछ मिल जाता था? कुछ नही। यही दशा केवल आशाग्रस्त सभी संसारी जीवो की है। इसलिए आशा छोडकर निश्चय व्यवहार रुप धर्म मे लगना सभी को उचित है ।।३२०।।

मायत्ताल् सेप्पं वोव्वि मंदिरि वनिगण ट्रन्नै।
पेयोत् सुळप्पन्नि पेरुंतुयर् मुन्न सेदान् ।।
मायत्तार् सेप्पुतन् कै पागवम् पट्टु पिन्नै।
पेयोत्त् सुळंड्र् सालप्पेरुंतुयर् तानु मुट्टान् ।।३२१।।

अर्थ—उस मत्री ने भद्रमित्र के रत्नों को मायाचारी से छल कर लेकर के उस भद्रमित्र को गली २ मे भ्रमण कराया। तदनन्तर रामदत्ता महारानी ने युक्ति पूर्वक [illegible] साथ

जुआ खेलकर यज्ञोपवीत व मुद्रिका जीत लिया। और निपुणमति दासी ने अपनी चतुराई व निपुणता से मत्री के भडारी से उस मुद्रिका आदि को देकर [उसके बदले मे रत्नो की पेटी लाकर महारानी को दी और इस कार्य से शिवभूति मत्री की अपकीर्ति हुई और राजा द्वारा वह दड का पात्र हुआ। कारण:-लोभ कषाय अत्यत निदनीय है। इस निमित्त से ससार मे अपकीर्ति और कलक का कारण होकर जगत मे एक इतिहास रूप बन कर रह गया। ।।३२१।।

मणियिनाल् वणिगनुक्कुं मंदिरि तनक्कुं वंद ।
तनिविला तुयरं पट्रिन् ट्रन्मयैशाट्र कंडुम् ।।
पनिविला तुयर माकुं पट्रैने परियुं नल्ल ।
तुनिविलादगिळड्रे तुयरंगट् किरैव रावर् ।।३२२।।

अर्थ—उन रत्नो से भद्रमित्र और मत्री दोनो को महान दुख उत्पन्न हुआ। इस राग से उत्पन्न होने वाले दुख का सम्यक् दृष्टि रहित अज्ञानी जीवो को अनुभव करना पडता है। जब तक सम्यक्त्व उत्पन्न नही होता तब तक बाह्य वस्तु को अपना कर यह जीव मोह के द्वारा इस ससार मे यत्र तत्र भ्रमण कर दुख ही दुख भोगता है। उनको तिल मात्र भी सुख नही मिलता है। यह जीव मोह कषाय के निमित्त क्या अनर्थ नही करता अर्थात् सब ही करता है। कहा भी है:—

वनचरभयाद्धावन् दैवाल्लताकुलवालधि:,
किल जडतया लोलो वालवज्रेऽविचल स्थित: ।
वत सचमरस्तेन प्राणैरपि प्रवियोजित:,
परिणततृषा प्रायेणैव विधा हि विपत्तय: ।

चमरी नाम की गाय जंगली गाय होती है। उसकी पूछ के बाल बहुत ही सुन्दर व कोमल होते है। उसे अपनी पूछ पर बडा ही प्यार होता है। यह एक प्रकार का लोभ है। इस प्रेम या लोभ के वश होकर वह अपने प्राण गवाती है। शिकारी या सिंहादिक हिसक प्राणी जब उसे पकडने के लिये पीछा करते है तब वह भागकर अपने प्राण बचाना चाहती है। वह उन सभी से भागने मे तेज होती है। इसलिए चाहे तो वह भागकर अपने को बचा सकती है। परन्तु भागते २ जहा कही उसकी पूछ के बाल किसी झाडी, आदि मे उलझ गये कि वह मूर्ख वही खडी रह जाती है। एक पैर भी कही आगे नही धरती। कही पूछ के मेरे बाल टूट न जाय, इस विचार मे प्रेमवश वह अपनी सुधबुध बिसर जाती है। बालो का प्रेम उसके पीछे आने वाले यम दड को उससे बिसरा देता है। बस पीछे से वह आकर उसे धर लेता है और उसे मार डालता है। इसी प्रकार जिनकी किसी भी वस्तु मे आसक्ति वढ जाती है वह उसको परिपाक मे प्राणात करने तक दुख देने वालो होती है अत किसी भी वस्तु की आसक्ति को भला मत समझो, सभी आसक्तियो के दुख इसी प्रकार के होते हैं। जिनकी विषय तृष्णा बुझी नही है उनको प्राय ऐसे ही दुख सहने पडते हैं।।३२२।।

पट्रिनै पट्रिनाले पट्रण पट्रिनारै ।
पट्रुता निडुंवै नीरुट् परियट्टं तन्नै याकुं ।।
पट्रिनै पट्रिलामै पट्रन पट्रि नारै ।
पट्रु विट्टिडुंवै नीरुट् परियट्ट मुळिक्कुं कंडिर् ।।३२३।।

अर्थ—राग को मन, वचन, काय द्वारा वश मे करने वाले द्रव्य क्षेत्र काल, भाव व भव ऐसे पाच प्रकार के ससारी जीवो को परिभ्रमण करना पडता है और रागद्वेष से भिन्न मेरा आत्म स्वभाव है ऐसा विचार करने वाला सम्यक्दृष्टि ज्ञानी पचपरावर्तन का नाश करके आत्म शक्ति नाम के मोक्ष सुख को प्राप्न करता है। ऐसा सम्यक्दृष्टि जीव मरण होने के बाद तिर्यच गति मे और ज्योतिष्कदेव, स्त्री पर्याय मे, अल्प आयु वाला, दरिद्री, नपु सक, निंद्यकुल मे विकृत शरीर आदि को प्राप्त नही होता। यह सम्यक् दर्शन की महिमा है। मिथ्यादृष्टि जीव अपने से भिन्न पर वस्तु मे अहकार ममकार करके ससार परिभ्रमण करता हुआ अनेक दुख उठाता है, ऐसे जीव को मोक्ष की प्राप्ति होना दुर्लभ है ।।३२३।।

मोगमे पिरविक्कु नल्वित्तदु ।
मोगमे विनैतन्नै तन्नै मुडिप्पदु ।।
मोगमे मुडिवै केडन्रिर्पदु ।
मोगमे पगै मुन्नं उयिर् कलास् ।।३२४।।

अर्थ—जन्म मरण रूप ससार के लिये मुख्य मूल कारण परिग्रह ही है। जिससे अज्ञानी जीव पाप कर्म उपार्जन करता है। अज्ञानी जीवो के पाप रूपी बीजभूत को उत्पन्न करने के लिये तथा मोक्ष द्वार को रोकने के लिये परिग्रह ही मूल कारण है। तथा तपश्चर्या के मूल कारण को रोकने मे अनन्त सुख देने वाले मोक्ष सुख को रोकने मे भी परिग्रह ही मूल कारण है। यही अनादि काल से शत्रु के समान आत्मा के साथ रहकर बधन का कारण है। मायाचार की निंदा करते हुए आचार्य कहते हैं कि:—

यशोमारीचीयं कनक मृगमाया मलिनितं,
हतोऽश्वत्थामोक्त्या, प्रणयिलघुरासीद्यमसुतः ।।
सकृष्णः कृष्णोऽभूत् कपट बहु वेषेण नितरा,
मपिच्छद्मालाप तद्विषमिव हि दुग्धस्य महतः ।।

मारीच ने स्वर्ण के मृग का रूप रामचन्द्र को छलने के लिए बनाया। इसलिए उसकी निंदा सारे जगत मे फैल गई। संग्राम के समय धर्मराज ने एक बार यह घोषणा कर दी कि अश्वत्थामा मारा गया, बस इतने ही कपट के कारण धर्मसुत के प्रेमी जन उन्हे क्षुद्र दृष्टि से देखने लगे। कृष्ण ने बाल्यावस्था मे बहुत से कपट वेश धरे थे, इतने ही पर से कृष्ण का पक्ष काला हो गया। थोडा सा भी विष बहुत से दूध मे डाल देने से वह सारा दूध बिगड

जाता है। इसी प्रकार थोडा सा भी कपट बडे वडो के यश को मलिन कर देता है अतएवः—

भेयं माया महागर्तान्मिथ्याघनतमोमयात् ।
यस्मिन् लीना न लक्ष्यते क्रोधादिविषमाहयः ॥

माया मानो गहरा एक खड्डा है। इसके भीतर सघन मिथ्यादर्शनरूप बहुत अधकार भरा हुआ है। इसी सघन अधकार के कारण इस खड्डे मे निवास करने वाले क्रोधादिक सर्प तथा अजगर दीख नही पाते हैं। जो जीव इस मायागर्त के भीतर आफसता है उसे ये क्रोधादि भुजग ऐसा डसते है कि फिर वह जीव अनन्तकाल पर्यंत भी सचेत नही होता। इसलिये भाई, इस माया से डरो; और भी कहा है कि:—

प्रछन्नकर्म मम कोपि न वेत्ति धीमान्,
ध्वस गुणस्य महतोपि हि मेति मस्थाः।
काम गिलन् धवलदीधिति धौतदाहो,
गूढोप्यबोधि न विधुः सविधुन्तुद. कैः ॥

अर्थ—मैं अमुक एक दुष्कर्म करता हू, परन्तु छिपकर करता हू इसलिए इसे कोई भी समझ नही सकेगा। इस दुष्कर्म के कारण यद्यपि मुझे बडा भारी पाप लगेगा और अमूल्य व पवित्र मेरे वडे भारी आतमा गुण का विघात हो जायगा। परन्तु दूसरा कोई समझ नही सकता। अरे भाई ! तू ऐसा कभी विचार मत कर। देख, चन्द्रमा मे इतना बडा गुण है कि अपनी शीतल किरणो से जगत का अन्धकार दूर करता है तथा सूर्य की किरणो से दिन मे सतापित हुए जनो के सताप को दूर करता है। ऐसे चद्र को राहु चाहे जितना छिपाता है परन्तु वह चन्द्र छिप नही पाता। छिपाने की हालत मे वह यद्यपि दब जाता है परन्तु उस दबे हुए चन्द्र को तथा छिपाने वाले राहु को इन दोनो को ही लोग देखते है। ऐसा कौन मनुष्य होगा कि जो ग्रहण के समय उन दोनो के गुप्त कर्म को देख न लेता हो। वस इसी प्रकार चाहे जितना छिपाकर कोई पाप करे परन्तु जाहिर हुए विना रहता नही है। किसी दुष्कर्म को छिपाना इसी का नाम माया या कपट है। जब यह कपट जाहिर हो जाता है मायाचारी के बडे फजीते होते है। इसलिये माया रखना बुरा है ॥३२४॥

मोगमे तिरियक्कि डैयुयिप्पदु ।
मोगमे नरगत्तिल् विळुप्पदु ॥
मोगमे मरमाउदु मुट्रमुं ।
मोगमे भरमासुर निर्पदुम् ॥३२५॥

अर्थ—इस परिग्रह रूप पिशाच से गृहस्थ जीव निंदनीय होकर तिर्यच गति को प्राप्त होता है और वह नर्क कुण्ड मे जा पडता है। पाप वध के लिए मूल कारण परिग्रह है। इसको नाश करने के लिए भगवान वीतराग देव द्वारा कहा हुआ अहिंसामयी धर्म तथा मोक्ष

मार्ग ही कारण है । कौरव पांडवो पर कलंक के लगने में मूल कारण परिग्रह ही है । भाई बंधु इष्टमित्र आदि से क्लेश रखाने वाला यही परिग्रह है । भाई भाई, मा-बाप विरोध तथा आपस मे शत्रुता भी यह परिग्रह ही कराता है । इसके रहते हुए आज तक किसी ने सुख नही पाया ।।३२५।।

मोगमे निरैया निर यायदु ।
मोगमे मू वुलगिन् वलियदु ।।
मोगमे मुनिमै किडै यूरदु ।
मोगमिल्लवर् नल्लमुनिवरे ।।३२६।।

अर्थ—यह परिग्रह महान पिशाच के समान है । इसको शात करने के लिए कोई औषधि नही है । तीन लोक की वस्तुएं भी एकत्रित कर ली जांय तो भी शाति नही होती । यह सब प्राणियो को दुख दायक है । यह परिग्रह महान तपश्चर्या का नाश करने वाला है । इस कारण महान तपस्वी ही इसको नाश करने को समर्थ हैं । जिस प्रकार अग्नि मे लकडी डालने से अग्नि प्रज्वलित होती है उसी प्रकार यह परिग्रह पिशाच के समान है । तपस्वी लोग ही इसका शमन कर सकते हैं, और कोई नही ।।३२६।।

मेग विल्लोडु वींदडु पोलवे ।
भोकमुं किळयुं पोरुळुं केड ।।
सोगमुं तुयरुं तुनै यागवन् ।
नेण निड्व रिन्न वियेंबि नार् ।।३२७।।

अर्थ—जिस प्रकार विद्युत आकाश मे उत्पन्न होकर तत्काल उसी क्षण में नष्ट हो जाती है उसी प्रकार राजभोग सपत्ति, वैभव बधु, बाधव, हितुमित्र, पिता माता, यह सभी जब ऐश्वर्य क्षीण हो जाते हैं फिर कोई भी साथ नही देता है । किंतु मोही जीव शरीर संबंधी सभी बाह्य आडंबर को छोडकर मोह ममता से युक्त होकर अन्तमे सभी परिग्रह को तथा मित्र, बंधु, बाधव को छोडकर जाते समय आर्तध्यान रौद्र ध्यान मे नीच गति को प्राप्त होता है और महान दुखी होता है । इस प्रकार की चर्चा सभा मे बैठने वाले लोग करने लगे । ।।३२७।।

अंगु निड्व नेगलु मायिडै ।
संगं तन्मुरैयेंड् तळु वलु ।।
मेगुम् वंदिरुळाय तिडर् कड ।
नुगि नानोडियुं नेडिय दायदे ।।३२८।।

अर्थ—तदनन्तर उस शिवभूति मंत्री ने अपने द्वारा किये हुए कपट तथा मायाचार से अत्यन्त दुखी होकर तीव्र पाप को उपार्जन कर लिया, जिसके द्वारा अनेक प्रकार के महान दुख सागर में मग्न हो गया और उसको वह क्षणिक दुख एक वर्ष के दुख के समान प्रतीत होने लगा ।।३२८।।

मदलै माडमुं मोन्निय शेल्वमुं ।
कुदलै मेन्मोळि यारयुं नीत्तवन् ।।
चिदलै कोडु विळुंद नन् वेंदन् मेल् ।
मुदलदागिय वेरं मुळैत्तदे ।।३२९।।

अर्थ—अत्यन्त सुन्दर महल मे रहने वाला, रत्न सपत्ति, अत्यन्त सुन्दर स्त्रियो एवं अपने खजाने को यह शिवभूति मत्री त्याग करके जाते समय जिस प्रकार रत्नो से भरा हुआ जहाज समुद्र मे चलते समय बीच मे किसी टक्कर आदि के लगने से डूब जाका है; उसी प्रकार सभी कुछ छोडकर जाते समय वह मत्री थरथर कापते हुए नीचे मूर्छा खाकर घबराकर भूमि पर गिर जाता है। उस समय उस मंत्री को सिंहसेन राजा के प्रति महान क्रोध उत्पन्न हुआ और उस क्रोध के निमित्त से आत्मा मे द्रव्य कर्म, भाव कर्म सहित निदान बध कर लिया ।।३२९।।

येंड्रु तानिवै यैदुवदेंड्रळा ।
निंड्र वर् तति नीडिय वांयुळुं ।।
कुंड्र वंदु विलगिनु ळायुग ।
मंड्रु कट्टिय दायुयु मट्रदे ।।३३०।।

अर्थ—इस प्रकार निदान बन्ध करने के बाद वह मत्री पुन अपने मन में विचार करता है कि यह पुत्र, सुन्दर स्त्रिया, सपत्ति आदि २ से तथा अनेक प्रकार के रत्नो से भरा हुआ, सुन्दर२ हाथी घोडे आदि अब मुझे कहा से मिलेगे ? अब सब को छोडकर कैसे जाऊ ; इस प्रकार मन मे अत्यन्त दुखी होकर शोक करने लगा और इस प्रकार आर्तध्यान से तिर्यंच गति का उसने बध कर लिया और आयु पूर्णकर तिर्यंच हुवा ।।३३०।।

मिक्कु निंड्रेरि विळक्कु वींदुळि ।
अक्कनत्तिरु लडयु मारु पोल् ।।
मक्कळायुगं मायंद होळ्दिने ।
तिक्क वायुगं सेंड्रुवित्तदे ।।३३१।।

अर्थ—जिस प्रकार प्रकाश देने वाला दीपक नष्ट होते ही अंधकार फैल जाता है उसी प्रकार शिवभूति मत्री ने मरकर अधकार मय तिर्यंच गति मे जाकर पर्याय धारण की। भावार्थ-श्रेष्ठ आर्य भूमि, उत्तम कुल, उत्तम वश, जैन धर्म यह मिलना ही इस जीव को अत्यत दुर्लभ होता है। ऐसी दुर्लभ मनुष्य पर्याय मिलने पर भी यह जीव पचेन्द्रिय विषयो मे लालायित होकर अनेक प्रकार के कपट मायाचार करके धन सग्रह करता है। इतना करने पर भी इस जीव की तृप्ति नही होती। जैसे पशु पर्याय है वैसे ही मनुष्य पर्याय मे खा पीकर पशु पर्याय के समान महानिद्यगति मे जाकर जन्म लेता है। कितने आश्चर्य की बात है ? हिताहित का ज्ञान मनुष्य पर्याय मे ही होता है। पशुओ मे हेय उपादेय का बोध नही होता

है, किन्तु यह अज्ञानी मानव प्राणी जिस प्रकार किसी भील के हाथ मे अमूल्य माणक या हीरा दे दे तो वह उसे काच समझ कर कौव्वे उडाने के उपयोग मे लेता है, उसी प्रकार मानव रत्न प्राप्त करके उसका उपयोग न करने के कारण पचेन्द्रिय चिडिया उडाने मे वह मोती अगाध समुद्र मे जाकर पड जाता है और फिर उस रत्न का मिलना अत्यत दुर्लभ होता है। इसी प्रकार वह मत्री मनुष्य पर्याय की सारी सामग्री प्राप्त करने पर भी पचेन्द्रिय विषय भोगो मे मग्न होकर अपने पूर्वजन्म मे पुण्य के द्वारा सञ्चय किए हुए मानव रत्न को लोभ कषाय की पूर्ति के लिये उसका उपयोग कर अन्त मे महान निन्द्य गति को प्राप्त हुआ ।।३२१।।

आयुम् गति यैबोरि पुव्वि ।
नीच गोतिरमु निड्दितिड ।।
पोयमन्नवन् पोन्नरैयर ।
वायिनन् पयरगंद नागुमें ।।३३२।।

अर्थ–तिर्यच आयु, तिर्यंच गति, पचेन्द्रिय जाति, तिर्यंच गत्यानुनूपूर्वी नाम, नीच गौत्र आदि ये उस शिवभूति मत्री के उदय में आने से उस शिवभूति के जीव ने सिंहसेन राजा के कोषागार मे आगध नाम की सर्प योनि मे जन्म लिया ।।३३२।।

अरसन्नमेर् करुविर् पोरुळासे इन् ।
मरियिय मायत्तिन् मदिरि मट्रिद ।।
तिर्यक्कायि नन् ट्रियविच्चैगैयै ।
मरुवु वारुळ रोमदि मांदरे ।।३३३।।

अर्थ—उस राजा सिहसेन पर किया हुआ बैर (निदान बध) से तथा संपत्ति आदि वस्तुओ पर मोहित होने से उस मत्री ने अपने मन मे निदान बध कर लिया था। इस निदान बध के कारण तिर्यंच गति मे जन्म लिया। परन्तु इस प्रकार स्व-पर पदार्थ के ज्ञानी लोगो के इतनी संपत्ति होने पर रागद्वेष मोह न करने से जो कर्म का बध होता है, उससे ऐसी निंद्य गति नही होती, ज्ञानी लोग ऐसा बध नही बाधते। अज्ञानी लोग ही ससार परिभ्रमण करके निंद्य गति का बध बाधते है ।।३३३।।

अळविला निधियै विट्टु पिरन् पोरुळदनै मेवल् ।
कळवुदा निरंडु कूरामियलवु कारणं कडम्मा ।।
लळविला पोरुळुंडा युम् पिरन् पोरुट् किवरळादि ।
कळवुदान् कडय दागं कैंपोरुळट्र वर्के ।।३३४।।

अर्थ—तीन लोक की सपत्ति अपने पास रहने पर भी मूर्ख अज्ञानी लोगो की तृष्णा की पूर्ति नही होती है। वे मूर्ख लोग इतना होने पर भी दूसरे की सपत्ति का अपहरण करने की भावना रखते है। सामान्य रीति से विचार किया जाय तो यह भी एक चोरी है। चोरी

दो प्रकार की होती है। कार्य चोरी व कारण चोरी। अपने पास कितनी ही सपत्ति रहने पर भी दूसरे का द्रव्य लेना, मायाचार से अन्य का धन लेना, दरिद्रता आने से चोरी करना यह सभी कारण चोरी है।।३३४।।

ईयल्बि नाङ कळवि नार् कट् किनिय वान् शैगै योंड्र्।
मुयलुरु मनत्तरागि वांगु व निरैय्य वांगि ।।
कुयलराय् कोडुप्प वेल्लाम् कुरैयवे कोडुत्तलागु।
मुयलुरा रिवै शैयादे योरु पगलोळिय मेलुं ।।३३५।।

अर्थ—कार्य चोर:-इसका यह अर्थ है कि कार्य चोरी करने वाले मायाचार से दूसरे के माल को लेते समय अधिक लेना, देते समय कम देना, हमेशा अन्याय द्वारा धन सम्पन्न करना, अन्य का माल चोर लेना आदि यह कार्य चोरी कहलाती है ।।३३५।।

मीन् शंड्र् नेरियै पोलुमं विरुविनार् वेळ्कैयादि ।
तान् चंद्रमनत्त् मळ्ळर् ताम् पोरुळदनुवकाग ।।
कान् चंट्रनेरि पिन् मंड्रिर् सुरुंगैइर् कळवु नूलिन् ।
कून् कोंडु कोळ्ळं कोळ्ळल् कारण कळवुदाने ।।३३६।।

अर्थ—तीव्र परिग्रह की लालसा करने वाले मनुष्य तृष्णा के द्वारा सपत्ति का उपार्जन करने के लिए जिस प्रकार मछली पानी मे जाती है उसके जाने के रास्ते का पता नही चलता, उसी प्रकार चोर शास्त्र मे चोर प्रयोग की विवेचना किए हुए के अनुसार अतिश्रमोजनम् निद्रोत्पादनम्, तालोद्घाटनम् ऐसे चोर शास्त्र के विज्ञान के आयुध के प्रयोग से दूसरे की सपत्ति को अपहरण करना, ताला तोडना, उसको मूर्छित कर देना, ए डा लगाना आदि २ के प्रयोग द्वारा चोरी करना, यह सब कारण चोर प्रयोग कहलाते हैं ।।३३६।।

कोरुळिनै पोलुं शीर्ति तन्नोडुं पुगळै पोकुं ।
अरुळिनै पोकुं सुट्रम् तन्नोडु वायु पोकुं ।।
पेरुमैयै पोकुं पेरुत्तन्नोडु पिरप्पै पोकुं ।
तिरुविनै पोकुं तेट्रन् तन्नोडु शिरप्पै पोकुं ।।३३७।।

अर्थ—"तीरोटु उडमइ उरुही पडु पोगुम" इस नीति के अनुसार चोरी के द्वारा आई हुई सपत्ति थोडे समय मे ही नष्ट हो जाती है, चोर प्रयोग करने से उसकी यश कीर्ति का नाश होता है और भगवत जिनेश का कहा हुआ धर्म का भी इस कार्य करने से नाश होता है। आगे के लिए दुर्गति का बध कर लेता है। धैर्य, ऐश्वर्य आदि सभी कीर्ति चली जाती है। इस चोरी के प्रभाव से सुमति का नाश हो जाता है ।।३३७।।

अंगत्तै कळैदु वीळ्कु मरुङ् शिरै पिनियै याकुं ।
बेकयत्तडियि वीळ्कुं वेण्णुनै कळुविनेट्रि ।।
तोंगुवुत्तोळियुं तूंडिर् ट्रोलिनै युरिक्क पन्नुं ।
कोंगयै कुरैकु मंगै कन्निनै कुडयप्पन्नुं ।।३३८।।

अर्थ—चोर प्रयोग से दूसरे की सपत्ति को हरण करने वाले का शरीर आगोपाग छेदा जाता है। उनको हाथी के पावो द्वारा मरवा दिया जाता है। शूली पर चढाया जाता है, जिस प्रकार मछली मास के टुकड़े के लालच से काटे मे अपना गला फसाकर प्राण खो देती है उसी प्रकार चोर प्रयोग से चोरी के व्यसनो से चोर प्रयोग करने वाले जीव के आगोपाग आदि अवयवो को काट देते है। इस प्रकार तीव्र वेदना उत्पन्न करने वाले दुःख उत्पन्न करने के लिए चोर प्रयोग ही कारण है ।।३३८।।

विळुंदेळु नरगत्तु इक्कुं वेरुवुरु विलक्कि लाकु ।
मळिदत्ती कुलत्ति लुइक्कु मट्रु ना वगत्तु ळाकु ।।
मिळिदतं सुट्रत्ताकु पिच्चयु मिडामर काकुम् ।
कळिद नोयुडंबै याकुं तायरु कडिय पण्णं ।।३३६।।

अथ—चोरी करने वाले जीव चोरी करके अनेक प्रकार के नरक मे जा पडते हैं। अथवा अत्यत भयकर दुःख उत्पन्न करने वाले नरक मे जन्म लेते है तथा महापाप करने से नीच कुल मे जन्म लेते हैं अथवा समय पर खाने को भी न मिले ऐसे निंद्य पर्याय मे जन्म लेते है या सभी प्रकार के रोग कुष्ट जलोदर आदि से पीडित होते हैं। चोरी करने से अगले भव मे माता पिता से विरोध करने वाले होते हैं और माता पिता पुत्र के लिए विरोधी होते हैं। ।।३३६।।

आदलार् कळवदागा विरुमैक्कु मोरुमैयोक्क ।
तीदला माकु मेंड्रु तेरु नल्लरत्तै सेप्पुं ।।
भूति तानागियाय कळविनै पोरुदिं पोल्ला ।
नीदियाल् अमच्चु नींगा राल्वमुं किळयु नीत्तान् ।।३४०।।

अर्थ—इस कारण चोरी करना, चोरी कराना अत्यत निदनीय है। यह चोरी इस व परभव मे दुखदाता है। ऐसे चोरी का निंद्य काम करने से शिवभूति अपने मायाचार के कारण मत्री पद से च्युत हो गया, वधु बाधवो की दृष्टि से गिर गया, उसकी अपकीर्ति हो गई। अतः ज्ञानी लोग इस कार्य को निंद्य समझकर त्याग देते है।

मंदिरि वडिवै येल्लां मन्नवन् मरणत्तिवारु ।
शिंदियावियंदु नोक्का तेरुव दरैयेन्न ।।

अंदनन् ट्रमिलन् ट्रन्नै यवन् पद दमैच्चनाकि ।
मंदिरं पोल निड्र् मण्णिनै तांगु मन्नो ।।३४१।।

अर्थ—तदनंतर वह राजा शिवभूति मत्री को कपटाचार मायाचार से चोरी करते हुए बुरे कार्य करने से मत्री पद से हटा कर दूसरे को मत्री पद देने का विचार करके एक वणिक पुत्र को मत्री पद दे दिया और अपना राज्य शासन सुख से करने लगा ।।३४१।।

तिरैशेरिंदिलंगु माळि पडिमन्नन् ट्रवियोडु ।
मुरै शेरिंदिलंगुम् कीति युवगै नोड शंवन् ।।
वरै शेरिंदिलंगुम् तिडोळ् वनिगन् मट्रोरु नाळ् वाडा ।
विरै शेरिंदिलंग वनं सेंड्र् विरगिर् पुक्कान् ।।३४२।।

अर्थ—तदनतर वह सिहपुर नगर के राजा सिंहसेन अपनी रामदत्ता देवी नाम की पटरानी सहित अत्यत सुख से समय व्यतीत कर रहे थे । उस समय महा मेरु पर्वत के समान गभीर धैर्यशाली भद्रमित्र वणिक एक दिन सुख पूर्वक भ्रमण करने के लिए अत्यत सुगधित पुष्पो से युक्त अतिंग नाम के वन मे पहुँचा ।।३४२।।

विमाम गंदार मेन्नुं विलंगलै इलंगवेरि ।
यमलमाइलंगुम् सिदै येरुत्तवन् वरदन् माविन् ।।
कमल माइलंगुं पांद कैतोळुदिरंजि वाळ्ति ।
तिमिरमां विनैगडीर तिरुवर मरुळ्ग वेंड्रान् ।।३४३।।

अर्थ—उस सघन वन मे रहने वाले विमल गधर्व नाम के पर्वत की चोटी पर चढकर इधर उधर देखते समय वहा वरधर्म नाम के एक महान तपस्वी मुनी को उस पर्वत पर तपस्या करते देखा । उनको देखकर उनके पास जाकर भद्रमित्र ने साष्टाग नमस्कार करके उनकी स्तुति की, और सामने बैठकर अज्ञान वश मेरे द्वारा किए गए कर्मो का नाश हो जाने हेतु कुछ गुरु मुख से उपदेश सुनने का विचार करके अत्यत निर्मलतपस्वी वरधर्म नाम के मुनि महाराज से प्रार्थना की.—भगवन् मैं अज्ञानी हूँ–सच्चा धर्म के मर्म को मै नही जानता । मुझे जैन धर्म का मर्म बतलाइये, ऐसे प्रार्थना की ।।३४३।।

अरिवु नर्काक्षि कांति शांति नल्लडक्क मेदु ।
पोरिगळिर् शेरिवु गुत्ति समितियुं पोरुंदि यासै ।।
वरुविय मनत्तु दंडम् कारवं शन्नै वींद ।
उरुतव नुरैक् लुट्रानुवंद वन् केळ्क लुट्रान् ।।३४४।।

अर्थ—इस प्रकार वह मुनिराज इस भद्रमित्र की प्रार्थना को सुनकर कहने लगे कि हे भव्य प्राणी ! सुनो–सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के प्रति समान परिणाम रखना

चाहिए। इन्द्रिय सयम और प्राणि सयम यह दो प्रकार के सयम है। पचेद्रिय विषय मे राग-द्वेष आदि रहित होना इन्द्रिय सयम है। त्रिगुप्ति, पच समिति, स्थावर और त्रस जीवो पर दया करने को प्राणि संयम कहते है। तीन गुप्ति. पाच समिति आदि क्रिया को पालन करने वाले तपस्वी और मनदण्ड और काय दण्ड और वचन दण्ड से युक्त रहने वाले ऋद्धिगारव रसगारव तपगारव से रहित ऐसे वर धर्म मुनिराज ने भद्रमित्र को धर्म का उपदेश देना प्रारम्भ किया। और वह भद्रमित्र शातचित्त होकर बैठकर उपदेश सुनने लगा ।।३४४।।

करुणयु मरिव् मुंडियुरैयुळु मीदल् काम ।
मरुळिला विरैवन् पादं शिरप्पोडु वनंगन् मैय ।।
लिरुळरतेळिदल् वेंड्रो किरैव नगरत्तै शील ।
मरुवि निंड्रोळुगल् माट्रिसुळट्रि पीर् मरुंदि देंड्रान् ।।३४५।।

अर्थ—मुनि महाराज ने कहा है कि हे भव्य शिरोमणि भद्रमित्र ! तुम आगे की धर्म चर्चा को ध्यान पूर्वक सुनो। गृहस्थाश्रम मे रहने वाले भव्य जीवो के लिए ससार रूपी सागर को शनै' शनै: पार करने के लिए प्रथम सम्यक्दर्शन उत्पन्न करने के लिए चार प्रकार का दान मुख्य है। सम्यक्ज्ञान की उत्पत्ति के लिए भव्य साधुजनो को शास्त्रदान सत्पात्रो को भोजनादि आहार दान तथा भव्य जीवो के रहने के लिए स्थान तथा घबराये हुए को तसल्ली देना अभयदान है और रोग से ग्रसित दुखी प्राणी को औषध देना यह औषध दान कहलाता है। इस प्रकार सदैव चारो प्रकार के दान देना, भगवान की पूजा करना, जिनेन्द्र भगवान द्वारा कही हुई जिनवाणी का शास्त्र स्वाध्याय करना, पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत चार शिक्षा व्रत—ऐसे १२ व्रतो का पालन करना यह सब गृहस्थ के कर्तव्य हैं। इनका पालन करना ससार दु.ख रूप व्याधि को नष्ट करने के लिए औषधि के समान है ।।३४५।।

वदंगळ् पन्निरंडु मेरिवय्यग दुइर्काट् केइल्ला ।
मिदं शैय्दु वरु दिल् वेंतिइडु वेन्नै पोंड्रिरगि ।।
सिदैत्तिन्ना दन शैदार्कु मिनियवे शैय्दु शिदं ।
कंद कडिदोळुग नल्लोर् करुणयै कोडुत्तलामे ।।३४६।।

अर्थ—सम्यक्रूपी रत्न को प्राप्त किया हुआ जीव बारह प्रकार के व्रतो का निर्दोष रूप मे सभी जीव को हित करने वाले दयामय धर्म का पालन करना अर्थात् जीव दया पालना, कोई जीव दुखी होने से उसके दुख को देख कर मन मे करुणा भाव उत्पन्न होना, किसी पर दुख आता देख कर उसकी दया करना, किसी के साथ बदला लेने की भावना न रखना, देव मूढता, शास्त्र मूढता, लोक मूढता तीनो मूढता से रहित होना, चौदह अंगो का पाठी भिन्न-भिन्न रूप से उपदेश देना, सयमी लोगो को शास्त्र देना, सभी शास्त्रदान है ।।३४६।।

इगियर् मूडमेन्नु मिरुळिनै तुरंदु कोंडु ।
वेंगदिर् पोल तोंड्रि मैमेयं चिळैविक निकुं ।।

मंगपूवादि तूलि नरिविनै सेरिय शैदन् ।
मंगल तोळिलि नार्कु मदियनै कोडुत्तलामे ।।३४७।।

अर्थ—इस श्लोक मे ग्रथकार ने चार प्रकार के दानो का वर्णन किया है—शास्त्र दान, औषध दान, आहारदान और अभयदान । स्व-पर कल्याण तथा साधु के सयम की वृद्धि एव शरीर की साधना के लिए सम्यक्दृष्टि श्रावक जो दान देता है उसे आहारदान कहते है । यह आहार दान उत्तम मध्यम जघन्य इस तरह तीन प्रकार के पात्रो को दिया जाता है । पात्र का अर्थ ये है कि हिसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह इन पापो से तथा सप्त व्यसनो से रहित, जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए वचनो मे तथा मार्ग मे श्रद्धा रखने वाले गृहस्थ अर्थात् धर्म मे आस्था तथा श्रद्धान रखने वाले को दान देना यह जघन्य दान कहलाता है । पाच अणुव्रत चार शिक्षाव्रत, ३ गुण व्रत—इस प्रकार इन बारह प्रकार के व्रतो का पालन करने वाले पहली प्रतिमा से ग्यारह प्रतिमाधारी जो उत्कृष्ट श्रावक है इनको दान देना–मध्यम पात्र दान कहलाता है । और दिगम्बर मुनि को जो दान दिया जाता है वह उत्तम पात्र कहलाता है । लू ले, लंगडे, दीन, दरिद्री आदि जो जीव हैं उनका दु:ख देखकर करुणा भाव सहित दान देना यह करुणा दान है । इनमे कीर्तिदान, समदान आदि आदि दान के कई भेद है । केवल प्रशसा के लिए धर्मशाला, औषधशाला, स्कूल, ,कालेज आदि खुलाकर अपने नाम के लिए यो कीर्ति फैले यह दान शुभदान नही है बल्कि अपनी कीर्ति के लिए है । जो अपने बराबर कोई धर्मात्मा हो उनसे कन्या दान देना लेना धार्मिक भावना रखना–यह समदान है, इसमे भी यह जो दान कहे हैं यह दान जगत मे श्रेष्ठ हैं । सत्पात्र दान की महिमा यह है कि सम्यक्दृष्टि ज्ञानी पुरुष धन सपत्ति वैभव को सत्पात्रो को दान देकर चक्रवर्ती इन्द्र, तीर्थकर, नागेश्वर के पद को प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं और इसी प्रकार ज्ञानी विषय कषायो से मुक्त होकर चारित्र पालन करता हुआ उसी भव से मोक्ष जाता है । सबसे पहले भूमि,महल,स्वर्ण, विभूति स्त्री आदि पदार्थो के लोभ रूपी सर्प विष के निवारण के लिए सम्यक् दर्शन सहित तथा वैराग्य रूपी अमोघ मत्र ही फल प्रद है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है । इस प्रकार जो सम्यक्त्व सहित चार प्रकार के दान देता है ऐसा सम्यकदृष्टि इस लोक व परलोक मे अपनी कीर्ति से अज्ञानी जीवो का भी कल्याण करता है और स्वय का भी कल्याण करता है ऐसा विचारना चाहिए ।।३४७।।

उडंवुनर् वोळुक्कं काक्षियुव्वगै नल्लि वंवानाळ् ।
विडंगोळि वीरं वीडु मैत्तवं दरयंशील ।।
मडंगलु मीदानुंडि ईंदव नदनाल् वैयत्त् ।
तुंडंदु कोडवर् गट् कुंडि पोल्वदो रुदविड्ंड्रे ।।३४८।।

अर्थ—निर्दोष आहार उत्तम पात्र मुनि को देने वाले भव्य जीवो का शरीर ज्ञान चारित्र, सम्यक्दर्शन, सतोष सुख, नीरोग तथा तपस्वी शरीर दीर्घ आयु पराक्रम मोक्ष प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ तप शील सच्चारित्र वाला होता है । इस कारण सत्पात्र दान ही समर्थ है । इन चारो दान से आहार दान श्रेष्ठ है ।।३४८।।

ऊनोडु तेनं कळ्ळु मीड्रि नंड्राय उंडि ।
तानु वंदेवकु, यदिल दानमाम् तानमां तानुमूंड्रा ।।
मूनुनुं कोडुमे याकुं मुडन् पट्टु मूनु नाकुं ।
मान मादवकुं मदिल् वर्षयार् पोरुगु मूंड्रु ।।३४९।।

अर्थ—मद्य, मास, मधु इन तीनो मकारो को त्याग करके निर्दोष आहार देने वाले दातार के द्वारा संतोष पूर्वक देने वाले दान को ही दान कहते है । ऊपर कहे अनुसार उत्तम मध्यम, जघन्य इस प्रकार तीन पात्र है । श्रावक को दान देना यह जघन्य दान है । पात्र को चार प्रकार दान देना कहा है । सत्पात्रो को दान देना उत्तम दान है ।।३४९ ।

पुलै सुंवालुंड उंडी वलियिना लुइरै पोट्रिन् ।
मलैइनुं पेरिच्च उंडि वलिइनालुइरै शाल ।।
नलियु मेल् नरगत्ताळंदु नडलैगळ् पडुमेंड्रालि ।
कुलै सुंबारा कुंडि इद नंड्रु मामे ।।३५०।।

अर्थ—मास भक्षण करने वाले जीवो को तथा चोरी करने वाले जीवों को आहार दान देने से कुफल मिलता है, वे भोग भूमि मे जाकर जन्म लेते है नरक में पडते है इसलिए सप्त व्यसन वाले जीव तथा मास भक्षण करने वाले जीव को कभी भी आहार दान नही देना चाहिए ।।३५०।।

अगनिग लरत्ति निंड्रा ररुं पिनियाळर् मूत्तार ।
कुगतिगळ् कुरुडर् मूगर् कोलैत्तोळिल् मनत्तु मिल्लार् ।।
अगल् कैनेंदि नोरुक्करुळिन् लींद वुंडि ।
मगरिगै मलिद पूणोय् मद्दिम दानमामे ।।१५१।।

अर्थ—दरिद्री मनुष्य व्रताचरण करने वाले भव्य जीव को अथवा व्याधि पीडित, रोग ग्रसित वृद्ध पुरुष, अगहीन, अधे, लूले, लंगडे, व्रतो को पालन करने वालो को अर्थात् एक देशव्रती श्रावक आदि जघन्य पात्र को दान देना जघन्य दान कहलाता है ।।३५१।।

उरवियै पेरिट्टुमोंबि ओळुक्करौ निरुत्ति युळ्ळं ।
पेरि वळि पडार्च्चिच नीकि पिररकुं नड्राट्रि पोतीर् ।।
नेरिथिनै तांगि नीगा वींटिवं विळैदल् सेय्यु ।
मुरुत्तयर् कीद एल्ला उत्तम दान मामे ।।३५२।।

अर्थ—अहिसा महाव्रत को धारण करके एकेंद्रिय आदि पचेंद्रिय जीव पर्यंत अर्थात् सपूर्ण जीवो की रक्षा करने वाले, आत्म-साधन मे लीन रहने वाले अथवा सामायिक आदि पट् आवश्यक क्रिया मे सदैव तल्लीन रहने वाले, पंचेंद्रिय विषयों को रोककर हमेशा आत्म-

ध्यान मे रत रहने वाले, अपने पर कोई दुष्ट पुरुष द्वारा उपसर्ग करने पर भी दया भाव रखने वाले, सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ऐसे अनत गुणो से युक्त, मोक्ष की इच्छा करने वाले मुनि को दान देना यही सत्पात्र दान है। यह दान इहलोक और परलोक को सुख देने वाला तथा मोक्ष का देने वाला है। ऐसा समझना चाहिए ।।३५२।।

ऊनुडु तेनुंकळळु मुवंदवैप्पिरवु मीदर् ।
ट्रानमेन्ऱु रैत्त तम्मै कोन्ऱुयि कूर्नै ईवार् ।।
दानमुं दयावु मेल्लाम् तांकण्डवारु काण्ग ।
वीनमेन्ऱालुं केळारियल्लु-वेरुलगत्तारे ।।३५३।।

अर्थ—मधु, मास, मद्य आदि अनेक जीव उत्पन्न होने वाले पदार्थ तथा अनन्त काय उत्पन्न होने वाली वस्तु को देना यह दान नही है। ऐसा दान देना तथा अपने शरीर का मास काट कर या दूसरे का मास काट कर देना यह दान नही है। मिथ्या शास्त्र को पढकर दान देने वाले, मिथ्यामतियो के कहे अनुसार चलना, उनको दान देना यह सब मिथ्यात्व है। और इस प्रकार के दान देने वाले मिथ्यादृष्टि हैं। इसलिए ज्ञानी स्वपर का कल्याण करने वाले ससारी जीवो को सच्चा मार्ग का हित बतलाने वाले महान साधुओ को दान देना उत्तम दान है ।।३५३।।

अनघमायनन्तमाय गुण पुणं दार्व मादि ।
तनैयिला दियल्वि निन्ऱान् ट्रम्मै तन्कन्वैत्तु ।।
निनैतेलै केदु नल्ल सिरप्पदु विनयैं नोकुं ।
कनलिसेर कनगं तनगं तनकन् काळत्तै कळट्रुमारे ।।३५४।।

अर्थ—निर्दोष, अतर्हित ज्ञान गुण से सहित राग द्वेष से रहित ऐसे सर्वज्ञ अर्हंत देव का स्मरण करना, उनके वचनो पर विश्वास रखना, सम्यक्त्व सहित उनकी भक्ति, पूजा करना, स्तोत्र पढना इसे भक्ति कहते है। जिस प्रकार मलिन धातुओ से मिला हुआ सोना अग्नि की तपत से शुद्ध होता है उसी प्रकार अनादि काल से आत्मा के साथ मलिन कर्म रूपी कालिमा इनकी ध्यान पूजा व भक्ति से नष्ट होती है ।।३५४

इरैवनु मुनियु नोलु मियादु मोकुट्र मिल्ला ।
नेरियिनै लेळिदल् काक्षियामद निरुत्तुम् विट्टि ।।
निरुगु मेन्मययुं मूडमारु तीविनय मिन्ट्रि ।
नेरिविळ कुरुन्नलादि यट्टंम निरैद देन्ड्रान् ।।३५५।।

अर्थ—परमात्म स्वरूप भगवत को अतरात्मा मे रखकर उनका ध्यान रखने वाले निर्ग्रंथ गुरुओ को तथा सभी वस्तुओ का परिज्ञान करा देने वाले परमागम को अर्थात् शास्त्र (जिनवाणी) को सशय रहित होकर उसका ज्ञान कर लेना, सशय रहित श्रद्धा करना यह

सम्यक्दर्शन है। यह सम्यक्दर्शन ही मोक्ष को देने वाला है। सम्यक्दर्शन आठ मद, तीन मूढता, छह अनायतन इनसे रहित तथा शंकादि आठ दोषो से रहित होकर अर्हंत भगवान द्वारा कहे हुए मार्ग पर श्रद्धान करना—चलना आदि व्यवहार सम्यक्दर्शन है ॥३५५॥

पेरिय कोलै पोयिकळवु विरर्मनयि लोरुवल् ।
पोरुळ् वरैदल् मत्त मधु पुलैसुनळि नींङ्गल् ॥
पेरियदिसै दण्डमिरु भोग वरै दाडल् ।
मरीयिय सिक्कै नान्गुमिवै मनयत्तार् शीलं ॥३५६॥

अर्थ—त्रस जीवो की हिसा; असत्य वचन, चोरी, परस्त्री और परिग्रह–काक्षा इन पांचो पापो को एक देश त्याग करना इसका नाम पाच अरगुव्रत है। और मद्य, मास मधु को नही खाना, दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदडव्रत, इन तीन गुणव्रतो को और सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण और अतिथिसविभाग यह चारो शिक्षा व्रतो को मिलाकर श्रावक के १२ व्रत होते हैं। इस प्रकार गृहस्थ के द्वारा आचरण करने को शीलाचार (श्रावकाचार) व्रत कहते हैं। और पंच व्रतो को पूर्ण रूप से पालन करने को मुनिव्रत कहते है। इस प्रकार उन वरधर्म मुनिराज ने भद्रमित्र मत्री को उपदेश दिया ॥३५६॥

इस प्रकार भद्रमित्र मुनिराज द्वारा उपदेश देने वाला तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।
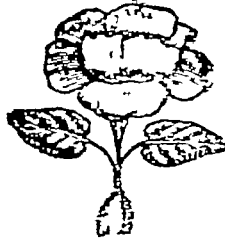
।। चतुर्थ अधिकार ।।

※ पूर्णचंद्र का राज्य परिपालन ※

अमिर्द करणोळिन् मुनियर उरै शेंड्रोरिप्प ।
तिमिर मेन निड्रविनै तीर्थळुंद मदिइर् ।।
कुमुदमेन मलंदुवद माट्र ुवन कोंडे ।
यमलनडि मनवकमला तरुक्नित्द् वैत्तोळुंदान् ।।३५७।।

अर्थ—इस प्रकार वरधर्म मुनिराज का कहा हुआ यह उपदेश जिस प्रकार कुमुदिनी विकसित होती है उसी तरह भद्रमित्र को आत्मा मे अनादिकाल से चला आया सात प्रकार का उपशम होते ही आत्मा मे उपशम भाव उत्पन्न हुए और वह अपनी शक्ति के अनुसार व्रत को धारण कर सर्वज्ञ अर्हत भगवान की स्तुति करके मुनिराज के सन्मुख खडा हो गया । ।।३५७।।

येळुंदु मुनि इरुकमल पादं तोळुदोत्ति ।
शेळुंककग मार्डमिशै शीय पुरं पोक्कु ।।
मुळंगि येळु मुगिलिर् पोरुन् मुळुदुं वरियोकुं ।
वळंग मनत्तळुंगि युरैत्ताळवन् ट्रन्मादा ।।३५८।।

अर्थ—तदनतर वह भद्रमित्र वरधर्म मुनि को नमस्कार करके वहा से चलकर सिंहपुर मे जाकर अत्यत सुन्दर महल मे प्रवेश किया। तत्पश्चात् जिस प्रकार आकाश मे विजली चमकती है और मूसलाधार वर्षा होती है उसी प्रकार भद्रमित्र ने अपनी सपत्ति को दीन, अनाथ, याचक जनो को बुला २ कर दान देना प्रारभ कर दिया । उस भद्रमित्र की माता को इस प्रकार अपने पुत्र का दान देना सहन नही हुआ और माता कहने लगी ।।३५८।।

कुल पेरिथ गुणमरिवु वाडिवु कुडि पिरप्पु ।
पोलंकै युडय वर् कलदु पुगळ्चि इनितडया ।।
इलगु मनै याळुं पोरुळिल्ल विडत्ति गळु ।
मलंगल् वरै पुरुळागलिनि येळियेल् ।।३५९।।

अर्थ—हे भद्रमित्र ! तुम अत्यत प्रेमी व सद्गुणी, श्रेष्ठी, ज्ञानवान, सुन्दर रूप धारण करने वाले, कुलवान, जगत मे कीर्ति के पात्र हो । यह सभी सपत्ति और अनुकूल सामग्री जो मिली हुई है इसका तुमको सदुपयोग करना चाहिये । इस प्रकार की सामग्री पुण्योदय से मिलती है । इसका नाश नही करना चाहिये । यदि कदाचित् आगे चलकर गरीबी आ जावे तो वडी कठिनाईया भुगतनी पडेगी । अत तुम दान मत देवो । घर मे सपत्ति रहने से पुत्र,

बधु, वाधव, मित्र आदि सभी प्रेम सत्कार करते है। यदि सपति न हो तो कोई प्रेम नही करता, अत. सपत्ति का नाश नही करना चाहिये। ऐसा माता ने भद्रमित्र से कहा ।।३५६।।

कादन् मिगुदाय् मोळिइला तरमोंड्रिड्रि ।
पोदरवेनादु पोरुन् मुळुदु मवनीय ।।
कोदमेरि पोंड्रवनै कोल्लं पोंडि सूळंदु ।
तीदुतनक्काकि मनं शिव दोळुगुं वळिनाळ् ।।३६०।।

अर्थ—उस भद्रमित्र ने माता के वचनो को सुना किन्तु माता के कहने को माना नही और दीन, दुखी, याचक जनो को बराबर दान देता रहा। दान देते समय उसकी माता ने अग्नि के समान आखें लाल करके उसको मारने की भावना करके अशुभ कर्म का बध कर लिया। और आर्तध्यान से अपना जीवन बिताने लगी ।।३६०।।

आंगवन् ट्रन् सोन्मरुत्त वळचिइनुं पोरुळ्ग ।
नींग वेळु मतित्तिनु मौवुडंबु नीत्त ।।
पूंगोळलि योगिय वदिग वनं पुक्कु ।
वेन्गै मगवाय् मगन् कन् वेरत्तोडु पिरंदाळ् ।।३६१।।

अर्थ—उस भद्रमित्र ने अपनी माता के वचनो पर कोई ध्यान नही दिया और उसकी माता सुमित्रा सदैव आर्तध्यान मे लगी रही और मरकर अतीग नाम के वन मे व्याघ्री उत्पन्न हुई ।।३६१।।

अरुळिनालुइर्कट् कीद ओपोरु निमित्त माग ।
वेरुळि नान् मयगि वाळुम् विलमि लिव्वेळै तोट्र ।।
मिरुळिला देवर् कोयल् किट्ट दोर् विळक्किन् मेले ।
मरुळिनाल् विट्टर् पायंदु मरित्तादे पोलुव नोंड्रे ।।३६२।।

अर्थ—दूसरे को दान देने मे धन का नाश होता है। ऐसा विचार व आर्तध्यान करने से उस सुमित्रा ने तिर्यगति मे जन्म लिया। जिस प्रकार पतग दीपक के प्रकाश को देखकर उसमे मोहित होकर अपने प्राण गवा देता है उसी प्रकार सुमित्रा ने आर्तध्यान से धन मे मोहित होकर अपने प्राण छोड दिये ।।३६२।।

अप्पच्चक्कान माय कोपलोभत्तिनाले ।
शप्पट्ट पिरवि याळौ वनत्तिडै तिरियुनाळुळ् ।।
कंपट्ट पोरुळै येल्लाम् करुणै यालियुमंद ।
मैपट्ट पुगळिनानो वनत्तिडै विरगिर पुक्कान् ।।३६३।।

अर्थ—अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभ के कारण उस जगल मे वह सुमित्रा का जीव व्याघ्री पर्याय को धारण किये हुए हमेशा उस जगल मे घूमती रहती थी। इधर वह भद्रमित्र श्रेष्ठी अनेक दीन दुखियो, याचक जनो को नित्य दान दिया करता था। एक दिन वह भद्रमित्र अपनी स्त्री के साथ घूमने के लिये उसी वन मे गया ॥३६३॥

कारणं तानोंड्रिड्रि करुमत्तिन् करुमयाले ।
वारणिदि लंगुम् कोंगै मंगम् रोडौ वळ्ळल् ॥
तारणि सोलै कुंड्रम् तन्नुळ्ळे किरियुं पोळ्दिन् ।
वेरनिंड्रिलंगुं सिदै वेंगै निड्रदनै कंडान् ॥३६४॥

अर्थ—उस सघन वन मे घूमते २ अनेक प्रकार के वृक्ष पर्वत आदि को देखा और आते समय उस व्याघ्री को भी वन मे देखा। जब मनुष्य की आयु कर्म की समाप्ति का समय आ जाता है उस समय कोई निमित्त अवश्य मिल जाता है। विधि का ऐसा ही लेख है। उस समय को कोई टाल नही सकता। उनकी आयु की समाप्ति का समय आ ही गया हो ऐसा समझ कर उनको वह व्याघ्री दीख पडी ॥३६४॥

कंडवन् पेयरुमेल्लै कडियदोर् पसिनालुं ।
येंडिसै पवरु निर्प वेळुंद वेरत्तु मोडि ॥
विंडरि विळक्किन्मेले मिट्टिल् पायं दिट्टदे पोल् ।
तडिवर् मोळिनान् मेर् ट्राय पुलि पायंद दंड्रे ॥३६५॥

अर्थ—उस व्याघ्री को देखकर वह भद्रमित्र अत्यत भयभीत हो गया और इधर उधर भागने लगा तो पूर्वभव का वैर उस व्याघ्री को स्मरण हो आया। और वह व्याघ्री जो कई दिनो से भूखी थी। भूख से व्याकुल होकर अति शीघ्र ही जिस प्रकार दीपक पर पतंग उडकर पडता है, उसी प्रकार वह व्याघ्री अपने पूर्व भव के पुत्र भद्रमित्र पर जा झपटी और उसको मारकर खा डाला। ३६५॥

वेबिया पसिइन् वाडि विळु मुईर् किपकंडु ।
कोविया वज नेंजिर करुणं योड्रिड्रि सेत्तु ॥
तीबिया पिरंदु निड्रु मगनयुं तिड्र विद ।
पाविये पोल किल्लार् करुणये पैइल्गै नंड्रे ॥३६६॥

अर्थ—भूख से व्याकुल हुई वह व्याघ्री जो पूर्वभव का अपने पेट का भद्रमित्र नाम का जो पुत्र था और उसने पूर्वजन्म के पुण्योदय से सभी कमाई की थी, उस कमाई मे से वह दान माता को सहन न हो सका और वह माता सुमित्रा आर्तध्यान द्वारा मरकर व्याघ्री हुई और अपने पुत्र भद्रमित्र को ही भक्षण कर गई। इस कारण आगे के लिये उसने तिर्यगति

प्राप्त की । इसलिये आचार्य कहते है कि सदैव करुणादान देना मनुष्य का परम कर्तव्य है ।
।।३६६।।

पिरविगळनंतं तम्मिर् पेट्रताय् सुट्रमल्लाल् ।
उरविग वंड्रु मिल्लै यूनिनै युंडु वाळ्वार् ।।
मर्मलि मलंतराइतम् मक्कळै तिगिन् रारेन् ।
रिरैवनै ईवळुरैत्ता ळिंड्रु तन्मगनै तिड्राळ् ।।३६७।।

अर्थ—यह जीव अनादि काल से आज तक अनेक वार जन्म मरण धारण करते हुए आया है । इसकी सख्या को मेरे द्वारा कहना अशक्य है । यदि सारासार विचार करके देखा जावे तो प्रत्येक भव मे एकेद्रिय से पचेद्रिय तक हम भाई २, स्त्री का पति, पिता, पुत्र आदि २ अनेक बार होते आए हैं । बधु, बाधव, पुत्र, पिता, मामा मामी, चाचा चाची, काका ताई जो भी सवधी हैं सभी शुभाशुभ कर्म के प्रभाव से शत्रु मित्र के रूप मे हमसे सवध रखते आए है । यही हाल भद्रमित्र की माता कहलाने वाली व्याघ्री का समझना चाहिए । जिस प्रकार मानव अपनी जिह्वा के लोभ से जीव हिंसा करके अपनी लालसा की पूर्ति कर लेते हैं उसी प्रकार इस ससार मे जीव इन्द्रिय-लोलुपता के कारण भक्ष्य अभक्ष्य का विचार न करके उनका सेवन करते हुए पेट को कब्र बनाते हैं । यह सभी पूर्व जन्म का किया हुआ पाप कर्म का उदय समझना चाहिये । इसलिए सर्वज्ञ भगवान के द्वारा प्रतिपादन किया हुआ शास्त्रो के प्रमाण से प्राणी मे हिसा का भाव पूर्व जन्म के सस्कार से निर्माण होता है । ऐसा भद्रमित्र की माता का हाल एक इतिहास के रूप मे बन गया है ।।३६७।।

करुदिनार् करुदिट्रिल्लाम् करुणैयाळीयुं कर्पत् ।
तरुविन् मे लुरुमु वीळ सार्य्दनु पोलभार्य्द्रु ।।
परुमद पानै वेंदन् ट्रेविमेर् पट्र्ळत्तार् ।
ट्रिरुमगळ नैय्य रामदत्तै नन् शिरुव नानान् ।।३६८।।

अर्थ—वह भद्रमित्र उस व्याघ्रणी के उपसर्ग से मरकर पूर्वजन्म के किये हुए पुण्य के द्वारा दान के प्रभाव से तथा शुभ भावो से मरकर सिहपुर के राजा सिहसेन महाराज की पटरानी रामदत्ता देवी के गर्भ मे आया । वह रामदत्ता रानी कौन थी ? उस रामदत्ता ने उस भद्रमित्र पर कौनसा उपकार किया था ? इसका समाधान है कि उस भद्रमित्र वणिक् के रत्नो को युक्ति पूर्वक निपुणमति दासी द्वारा शिवभूति मत्री के भडारी से चतुराई से मगाकर रामदत्ता रानी को दिया था । इसी कारण अत समय में उनके प्रेम से निदान वध करके रामदत्ता रानी के गर्भ मे वह भद्रमित्र का जीव आया । इस सवध मे आचार्य कहते है:—

क्रोधात् व्याघ्रो भवति मनुजो मानतो रासभो स्यात् ।
मायाया. स्त्रीधनमुखरहितो लोभत सर्वयोनिः ।।
कामात् पारापतिरिति भवेदत्र संवंधभावात् ।
मोहांध मोही परिजन सुता स्त्री मुता बाधवेपु ।।

क्रोध से मरकर वह सुमित्रा व्याघ्रणी हुई। जयत मुनि घोर तपश्चरण कर के धरणेद्र के वैभव को देखकर निदान बंध करके धरणेद्र हुआ। मोह से भद्रमित्र का जीव रामदत्ता रानी के गर्भ मे आया। इस प्रकार ससार मे अति मोह करने वाला जीव अगले भव मे बधु भाई पति पुत्र आदि होकर दीर्घ ससार मे परिभ्रमण करता है।।३६८।।

कन्निडै वेळुत्तामाम् पोय् मुगत्तिडै परकवकाना।
नुन्निडै तोंड्र विम्मा कन्नगिल् करत्तु नोकि।।
पन्निडै किडद नीन्सोल् पवळ वाय् पांडु वाग।
मन्निडै तोंड्र मैदर् मदिपेट्र दिशयै योत्तान्।।३६९।।

अर्थ—महारानी रामदत्ता देवी के गर्भ रहने के कारण उसका मुख कृश हो गया। पेट मोटा हो गया। स्तन काले हो गये। अत्यन्त मृदुभाषिणी हो गई। उनकी दत पक्ति दाडिम के दानो के समान तथा होठ लाल माणक के समान प्रकाशमान प्रतीत होने लगे। क्रमशः आनद पूर्वक नव मास पूर्ण हो गये। तत्पश्चात् नौ महिने बाद उसने पुत्ररत्न को जन्म दिया। राजा सिहसेन अपने पुत्र का चद्रमा के समान मुख देखकर अत्यन्त सतुष्ट व प्रसन्न हुए। और उनका मुख अत्यत प्रफुल्लित हो गया। "पुत्र रत्न महारत्न"। इस कहावत के अनुसार राजा को महान आनद हुआ।।३६९।।

वेयन तिरंड मेंड्रोन् मेल्लिय लोडुम् वेंद।
नाइरविकरनन् शेंड्रदिशे योडु वानै योत्तु।।
पाइरुं परवै ञालं पैबोना लाति नाय।
शीय चंदिरनेन् ट्रोगै दिसे दोरुं पोकिनाने।।३७०।।

अर्थ—पुत्र के जन्म होते ही राजा तथा रामदत्ता देवी दोनो ही को अत्यन्त आनन्द हुआ। और पुत्र जन्म की खुशी मे दीन,गरीव, दुखी याचको को ऐच्छिक दान दिया। और शुभ मुहुर्त मे विधि पूर्वक नाम सस्कार करके उस बालक का नाम सिहचन्द्र रखा। अपने नगर मे उसके नाम की घोषणा करा दी।३७०।।

नलविला तडत्तु निंड्र नळिनं पोल् वळरंदु नन्नार्।
कुलमेला मेलिय वांगु कोडुंजिलै पयंड्र कुंड्रा।।
कलयला कडंदु कामं कानिदन कमल मोट्रिन्।
मुलै नल्लार् सेर्तिनार्गळ् मुरुगुण्णं वंडै वत्तान्।।३७१।।

अर्थ—हमेशा जल से भरे तालाव मे जिस प्रकार कमल खिले हुए है उसी प्रकार वह सिहचन्द्र राजकुमार पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान प्रफुल्लित हो रहा था। उस समय राजा ने विचार किया कि यह बालक वृद्धि को प्राप्त कर रहा है अत. इसके विद्याध्ययन का प्रवध करना चाहिये। तत्पश्चात् उस कुमार को एक प्रोहित पंडित के पास शुभ मुहूर्त मे

गुरुकुल मे भरती कराया। तब वहा के अध्यापक ने अनेक प्रकार के शास्त्र, न्याय, तर्क,व्याकरण व शस्त्र कला आदि २ में उसको निपुण कर दिया। संसार मे सबसे श्रेष्ठ एक विद्या ही महान धन है और कोई नही है। इस कारण विद्या वाले के पास सभी गुण आ जाते हैं। कहा भी है:—

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रता।
पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखं॥

अर्थ—विद्या से विनय आता है, विनय से पात्रता आती है और पात्रता आने से धन संचय होता है। और धन से धर्म की प्राप्ति होती है और धर्म के द्वारा इस लोक और परलोक का साधन है।

विद्याधीत्यापि भवंति मूर्खाः।
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्॥

अर्थ—कदाचित् विद्या सीखने पर यदि उसको अभिमान उत्पन्न हो जाय तो उसको मूर्ख के समान समझना चाहिये। विद्या पढने के बाद जिनमे समता नही है वह विद्या किस काम की ? विद्या पढने के पश्चात् जो सत्क्रियावान होता है तो वह विद्या उसको सदैव के लिये सुख देने वाली है।

सुखार्थिनः कुतः विद्या, विद्यार्थिनः कुतः सुखम्।

तथाच

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुंक्ते।
कांतेव चाभिरमयत्यनीय खेद।
लक्ष्मी तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं।
किम् किम् न साधयति कल्पलतेव विद्या।

इस प्रकार राजा ने विचार करके अपने पुत्र को सम्पूर्ण विद्याओ में निपुण करा दिया। वह कुमार विद्याओ को प्राप्त करता २ यौवनावस्था को प्राप्त हुआ। राजा ने विचार किया कि कुमार यौवनावस्था को प्राप्त हो गया है इसका अब लग्न करना चाहिये। तत्पश्चात् शुभ मुहूर्त मे उसका लग्न कर दिया। वह सिहचन्द्र अत्यन्त सुगधित पुष्प मे जैसे भौरा मग्न होकर उसका रस लेता है तथा जैसे नदी का मध्य भाग कृश हो गया है, ऐसी नदी के किसी गहरे कु ड मे लोग क्रीडा करते हैं, उसी प्रकार वह राजकुमार अपनी स्त्री के साथ काम भोग में रत रहने लगा॥३७१॥

शिलमरल् शूळ सिघ पोदगत्तै पोल।
कलै पइललुगु लारु कुमरनुं कळमु नालुळ्॥
कोलं पइल् कळिनल् यानै कोट्रवन् ट्रेवि ननूपान।
मलै मिरौ मदियं पोल मंदन् मट्रोरुवन् वंदान्॥३७२॥

अर्थ—वह राजा सिंहसेन व महारानी रामदत्ता दोनो सुख से समय व्यतीत करते थे। आनद के साथ दोनो दम्पति का समय व्यतीत हो रहा था। इसी समय में रामदत्ता रानी ने पूर्णिमा के चद्रमा के समान दूसरे पुत्र रत्न को जन्म दिया ।।३७२।।

इरवलरेंड्ु मुन्नि रिडर् केड वेळुंद वंद ।
पुरवल कुमार नामं पूर चंदिर नेंड्रागळ् ।।
करयोरु कडलंतानै कावल कुमरर् वान ।
दिरवियु मदियु पोल विरुनिल विचळु नाळाल् ।।३७३।।

अर्थ—दूसरे पुत्ररत्न का जन्म होने के बाद सिंहसेन राजा ने उसको देखा और पुत्र जन्मोत्सव की खुशी मे प्रजाजन व याचको को ऐच्छिक दान दिया और विधिपूर्वक नामकरण सस्कार करके उसका नाम पूर्णचद्र रखा। वह सिंहचन्द्र और पूर्णचद्र दोनो राजकुमार जिस प्रकार आकाश मे सूर्य और चद्रमा हैं उसी प्रकार वह राजा दोनो कुमारो के साथ आनद पूर्वक समय व्यतीत करता था ।।३७३।।

वारि सूळ् वलयन् तुयरैदिडिर् ।
रारि यामदु तानुडनैदिडुं ।।
एरनिदुल गिन् पुरि निंबुरुं ।
मारि पोर् कोडै वंगै यम्मन्नने ।।३७४।।

अर्थ—इस प्रकार राजा सिंहसेन अपना समय सुख पूर्वक व्यतीत कर रहा था। समुद्र से चारो ओर घिरे हुए उनके राज्य मे प्रजा को यदि थोडा सा भी दुख हो जाता था तो राजा को बडा भारी दुख होता था। तथा जिस प्रकार मेघ वर्षा करके सारी दुनिया को प्रसन्न करता है उसी प्रकार वह सारी प्रजा को हर प्रकार से प्रसन्न और तृप्त रखता था। प्रजा के दु:ख को दूर करने वाला तथा प्रजा के लिए वह हितकारक राजा था ।।३७४।।

पोन्नु नन्मणियुं पुनै पून्गळुं ।
मण्णु पुण्णरै मट्रोरु नाळ्पुग ।।
पन्नगं मुन्न मामवन् पार्तिडा ।
मिन्निन् वेरत्तिर् वीळं देई रूंड्रिनान् ।।३७५।।

अर्थ—राजा सिहसेन एक दिन अपने स्वर्ण, रत्न, मोती, माणक तथा अमूल्य आभूषण, वस्त्र आदि से भरे हुए भंडार के तोषाखाने मे सहज ही चला जाता है तो पूर्व जन्म मे शिवभूति मत्री का जीव जो मरकर आर्तध्यान से सर्प हो गया था वह वहा बैठा हुआ था। उस सर्प ने राजा को देखा और देखते ही पूर्व भव का बैर का स्मरण हो गया और तत्काल राजा को काट खाया। सर्प को काटते ही राजा को विष चढ गया।।३७५।।

पैयर विन् विडत्तोडु पार् मिशै ।
मैयलुत्त् वेळुंदनन् मन्नवन् ।।
वेय्यवनर वत्तोडु मेदिनि ।
वैय्य नेय्य विळुंदडु पोलवे ।।३७६।।

अर्थ—वह राजा उस सर्प के विष से ग्रसित होकर जैसे अधकार फैल जाता है, उसी प्रकार राजा का शरीर विष से अधकार के समान काला पड गया । वह विष इतना भयकर था कि सारे तोषाखाने मे अंधकार सा छा गया । वह राजा विष से मूर्छित होकर गिर गया ।।३७६।।

कल्लन् नोसै कडलुडंदिट्टन ।
वेल्लइड्डि येळुंद दिया वरुन् ।।
सोल्लुमेय्यु मरंद नर् सोर्ंद नर् ।
मल्लियेंल्गु पुयत्तिरन् मैदरुं ।।३७७।।

अर्थ—उस सिंहसेन के मूर्छित होकर जमीन पर गिर जाने के बाद जिस प्रकार तालाव का बाध टूट जाने पर पानी इधर उधर फैलकर वेकार हो जाता है उसी प्रकार राजा को सर्प के काटने के समाचार सब जगह फैल गये । और कुटुम्वी जनो में हाहाकार मच गया । कर्म की गति वडी विचित्र होती है । मोही जीव इस मोह के कारण कौन से अनर्थ नही करता है ? अर्थात् सभी करता है । क्योकि उस शिवभूति मंत्री ने माया, छल, कपट, लोभ के द्वारा भद्रमित्र वरिणक के रत्नो का अपहरण करके गुप्त रीति से अपने खजाने मे रखे थे । परन्तु यह मायाचार कितने दिन रह सकता था । उन रत्नों को अपने निजी पुरुषार्थ से उसने नही कमाया था । दूसरे के रत्न होने से उन रत्नों का न्यायपूर्वक राजा ने निर्णय करके भद्रमित्र वरिणक को दिलवा दिये थे । फिर भी उन रत्नो के मोह से वह मंत्री आर्तध्यान से मरकर सर्प होकर उस सिंहसेन राजा के खजाने मे बैठा था । उसने यह निदान वध कर लिया था कि किसी भव में मैं इससे वदला लूंगा । इस निदान वंध से खजाने मे वैठ कर सर्प होकर उसको काट खाया । यह परिग्रह रूपी पिशाच वड़े २ चक्रवर्ती त्यागी गणो को भी नही छोडता है ।।३७७।।

रामदत्तेयु मिन्नोइ रंडिनाल् ।
विराम मुट्ट्दोर् मंगइन् वीळ्ंद नल् ।।
करामरी कडल् सूळ् पडि क्कावल ।
निरामे मार पगलुं मिरवायते ।।३७८।।

अर्थ—राजा सिंहसेन की यह दशा देखकर उस रामदत्ता देवी का राजा के प्रति अधिक प्रेम होने के कारण वह रानी मूर्छित हो गई और दुख मे व्याकुल होकर गिर पड़ी । सिंहपुर नगर के अधिपति राजा सिंहसेन के मूर्छित होने के कारण राजमहल व सारे नगर मे दिन भी रात्रि के समान प्रतीत होने लगा ।।३७८।।

गरुड नायवन् कालिली कट्केलाम् ।
गरुड दंड नेंबान् नक्कनत्तिले ।।
मरुवि मंदिर मोदवु मन्ननुक् ।
किरुळ् परंदुई रेगिय देगलुं ।।३७९।।

अर्थ—पाव रहित सर्पों को गरुड के समान रखने वाला एक गारुडी (कालवेल्या) राजमहल मे आ गय। और उसने गरुड मत्र का जाप्य करना प्रारम्भ किया। तब जितने सर्प थे वे सब सामने आकर इकट्ठे हो गये। परन्तु वह भयकर काटने वाला सर्प वहा नही आया। इतने मे राजा सिहसेन का मरण हो गया ।।३७९।।

सैयलुट्रवन् मंदिर मोंड्रिनाल् ।
नेय्योळिक्कि नेरुप्पै येरित्तिडा ।।
पैयन पननाग मेला मळैत् ।
तुय्यवु नुयक्कोंड्रुरै शैगिड्रेन ।।३८०।।

अर्थ—सिहसेन राजा की मृत्यु होते ही उस गारुडी ने घृत की आहूति से एक यज्ञ प्रारभ किया। और मत्र के द्वारा आहूति के प्रभाव से सारे सर्पो को बुलाया। तब सारे सर्प इकट्ठे हो गये। उन सभी सर्पो को देखकर वह गारुडी कहने लगा कि हे सर्पो ! यदि तुम सुख से जीना चाहते हो तो जो बात मैं आपको कहू उसको स्वीकार करना पडेगा ।।३८०।।

कुट्र मिल्लवर् मट्रिन् निरुप्पिनै ।
युट्र पोळ्दिदुं नीरिनै योट्रिडं ।।
कुट्र मिल्लवर् पोनडुवन् ड्रेनि ।
लिट्र तुम्नुईर् येन् कैयीलेंड्रनेन् ।।३८१।।

अर्थ—उस गारुडी ने उन सर्पो से कहा कि यदि तुमने इस राजा को नही काटा है और निर्दोष हो तो तुम इस हवन कुण्ड मे कूद जाओ। यह सब पानी २ हो जायेगा। सर्पो ने गारुडी की यह बात सुनी और गारुडी ने यह बात और कही कि यदि तुमने मेरी बात सुनकर उसे न मानी तो मेरे हाथ से तुम्हारा मरण होगा ।।३८१।।

अंजि मट्रव नानै इरैदिडा ।
नंजु तारिग नन्निन तीयिनै ।।
पुंजु पूस् पौगै पुक्कन पोलवे ।
मुंजु पोडन वंड्रोळियामये ।।३८२।।

अर्थ—गारुडी की बात को सुनकर वे सभी सर्प अत्यन्त भयभीत होकर उसके कहने

को मान लिया और जिस प्रकार पानी से भरे हुए तालाब मे मछली कूद पडती है, उसी प्रकार सारे सर्प उस हवन कुण्ड मे कूद पडे और निर्दोष होने के कारण उस हवन कुण्ड मे पानी २ हो गया और सारे सर्प पानी से निकल कर बाहर आ गये । और तत्पश्चात् आज्ञा लेकर अपने २ स्थान को चले गये ॥३८२॥

बंद कंदनन् मट्रन् नेरिप्पिनै ।
निड्रु पुक्किड नीरदु वायदु ॥
शेंड्रु काळ वलत्तिलती मय्या ।
लंड्रु लोब शमरम दाइनाय् ॥३८३॥

अर्थ—उस राजा सिहसेन को काटने वाले अंगद नाम के सर्प को भी गारुडी ने मंत्र विद्या द्वारा बुलवाया और सर्पों के अनुसार उसने भी हवन कुण्ड मे प्रवेश किया । कुण्ड मे प्रवेश करते ही जिस प्रकार अग्नि में समिध अर्थात् लकडी डालते ही वह लकडी जल जाती है उसी प्रकार वह सर्प तत्काल ही जलकर भस्म हो गया । तदनन्तर अंगद नाम का सर्प जो शिवभूति का जीव था वह आर्तध्यान से मरकर तीव्र पाप कर्म का बंध करके काल नाम के वन मे अतिलोभ से वह चमरी नाम का मृग हो गया ॥३८३॥

आयु किळयुं मरसु मेल्लाम ।
माय मेंबवन् पोल मरित्तिडा ॥
शीय सेननुं तीविनै वन्मया ।
लाईनन् सल्लकी वनत्तानये ॥३८४॥

अर्थ—उस सुशील सिंहसेन राजा ने इस लोक में पूर्व जन्म मे किये हुए पुण्य के उदय से प्राप्त स्त्री, भंडार, शयन, वाहन, रथ, पैदल आदि २ सर्व साम्राज्य को अनित्य समझ कर तथा जगत को अनित्य बताते हुए उसको ऐसे त्याग दिया जैसे कोई शरीर मे से प्राण छोडता है । उसी प्रकार वह इस शरीर को छोड देता है । सर्प के काटते ही उसके तीव्र विष द्वारा मरकर उस राजा के जीव ने सल्लकी नाम के वन मे जाकर हाथी की पर्याय धारण की । ।३८४।

असनी कोड मेनुं पेय रायवन् ।
कसनि संदु कडातयल् यानयै ॥
विसनी यापिडी सूळविलंगन् मे ।
लसन मिगुव दाग वमरं दनन् ॥३८५॥

अर्थ-इस प्रकार हाथी की पर्याय धारण किया हुआ सिंहसेन राजा का जीव 'असनी घोड' नाम से प्रसिद्ध होकर वह हाथी उस सल्लकी नाम के जंगल मे जितने हाथी थे उन सब हाथियों मे प्रधान होकर सुख पूर्वक काल व्यतीत करता था ।

भावार्थ—आचार्य बृहद् सामयिक पाठ मे श्लोक ५१ मे कहते हैं कि परिग्रह ही इस जीव के पतन का कारण है। अनादि काल से इस ही के कारण जीव ससार मे परिभ्रमण कर रहा है।

"लक्ष्मी कीर्ति कलाकलाप–ललना–सौभाग्य–भाग्योदया–
स्त्यज्यये स्फुट मात्मनेह सकला एते सतामर्जितैः।
जन्मांभोधिनिमज्जिकर्मजनकैः किं साध्यते काक्षित,
यत्कृत्वा परिमुच्चते न सुधियस्तत्रादर कुर्वते ॥

लक्ष्मी, धन, पुत्र राजपाट, सासारिक यश, कला, चतुराई, स्त्री आदि सर्व पदार्थ मात्र इस देह के साथ हैं। आत्मा का और इनका साथ कभी नही हो सकता है। एक दिन आत्मा को छोडना ही पडता है। फिर इनके पैदा करने मे, इकट्ठा करने मे, प्रबध करने मे बहुत रागद्वेष, मोह व बहुत पाप का सचय करना पडता है। उस पाप से इस आत्मा को ससार समुद्र मे डूबना पडता है, दुर्गति के अनेक कष्टो को सहना पडता है, तथा जो बुद्धिमानो के लिये इष्ट है अर्थात् मोक्ष व स्वाधोन आत्मिक सुख है वह और दूर होता चला जाता है। इन स्त्री पुत्र, धनादि के भीतर मोह करने से आत्म–ध्यान व वैराग्य नही प्राप्त होता जो मोक्ष का साधक है।

प्रयोजन यह है कि धनादि पदार्थों का मोह करना वृथा है। इनका सचय करना भी वृथा है, क्योकि एक तो ये कभी आत्मा के साथ जाते नही,स्वय छूट जाते हैं। दूसरे इनके मोह मे आत्मा का उद्धार नही होता है। आत्मा पवित्र नही हो सकती है। इसलिये ज्ञानी को इनमे राग ही नही करना चाहिये। इनको उत्पन्न करने का भी मोह छोड देना चाहिये। और आत्म–कार्य मे लग जाना चाहिये। जिस वस्तु को बडे परिश्रम से कष्ट सह करके एकत्र किया जावे और फिर उसे छोडना ही पडे उस वस्तु की प्राप्ति के लिये बुद्धिमान लोग कभी भी चाह नही करते हैं। अत धनादिकी चाह छोडकर स्वहित करना ही हमारा कर्तव्य है ॥३८५॥

नावि नारु कुळलगळ् विरिदिडा।
अवि पोन कलावि किडंदन ॥
देवियै तेरुंदा रेडुत्तु सुय।
रोवुं वण्ण नुरैतुड नोविनार् ॥३८६॥

अर्थ—पिछले श्लोक मे कहे अनुसार राजमहल मे सिंहसेन महाराज के मरण हो जाने के बाद अत्यन्त सुन्दर काले वालो से युक्त राजा की रामदत्ता पटरानी जैसे मोर अपने पंखो को फैला कर नीचे गिरा देता है उसी प्रकार वह अपने पति (राजा सिंहसेन) के मोह से मूर्छित होकर नीचे गिर गई। सब महल की दासियो ने अनेक प्रकार से उपचार करके उसको सचेत किया और उठाकर बैठा किया। पति वियोग से शोकाकुल होकर वह रानी दुख से विलाप कर रही है। उस दुख को शांत करने के लिये अनेक स्त्रियां और दासिया कई प्रकार की धार्मिक वाते कह करके उनको समझाना प्रारभ किया ॥३८६॥

तोंड्रि नन्निलं यादुडनेकेड ।
लींड्र तायरु मीट्ट वैत्तोगलु ॥
मांड्र वरळि वैदलुं वैयगम् ।
तोंड्रि नड्र तोडंगिन यल्लवों ॥३८७॥

अर्थ—वे इस प्रकार समझाने लगी कि प्रजा को पुत्रवत् पालन करने वाली हे राजमाता ! इस ससार मे जितनी वस्तुए हैं वे सव की सव अस्थिर हैं। उनमे एक भी स्थिर नही है। हमको जन्म देने वाले माता, पिता, भाई, वहन इत्यादि जितने भी प्रेमी सगी संगाती हैं वे सव एक दिन छोडकर चले जाने वाले हैं, ऐसा अनादि काल से होता आया है। यह कोई नवीन वात नही है। प्रत्येक द्रव्य उत्पाद, व्यय रूप से परिमगन करना है।

भावार्थ—यह ससार एक महान भयानक जगल के समान है। आत्मा अपने स्वरूप को भूल कर पर स्वरूप मे तन्मय होने तथा उसी मोह के कारण परिवर्तनशील संसार मे परिभ्रमण कर रहा है। परवस्तु के मोह के कारण हिताहित का विचार इस जीव को कभी नही हुआ ? उसी को अपना मानकर अनादि काल से जन्म मरण करता आया है। यह जीव अनादिकाल से मोह के वशीभूत होकर चौरासीलाख योनियो मे जन्म करते हुए छोडता आया है।

जिस पर्याय को धारण किया, उस पर्याय को अपना मानकर छोडते समय दुख करता है। इसलिये यह जीव पच परावर्तन रूप समार मे अनादि काल से चक्कर लगाता आ रहा है। एक क्षण के लिये भी विश्रांति नही लेता है। यह सव राग और मोह की महिमा है।

इस संवध मे अमितगति आचार्य ने तत्व भावना मे कहा है—

चित्रव्याघातवृक्षे विषय सुखतृणास्वादनासक्त–चित्ताः ।
निस्त्रिगैरारमंतो जन हरिणगणाः सर्वतः संचरद्भिः ॥
खाद्यंते यत्र सद्यो भवमरणजराश्वापदैर्भीमरूपैः ।
तत्रावस्थां क्व कुर्मो भवगहनवने दुःखदावाग्नितप्ते ॥३२॥

अर्थ-जैसे कोई एक सघन जगल हो जहां वडे २ टेडे २ वृक्षो का समूह हो, दावाग्नि लगी हुई हो। चारो तरफ से सिह आदि हिंसक प्राणी घूमते हो और जहा तृण को चरने वाले हरिण निरन्तर हिंसक प्राणियो के द्वारा खाए जाते हो ऐसे वन मे कोई रहना चाहे तो कैसे रह सकता है ? जो रहे वही आपत्ति मे फसे। इसी प्रकार यह समार भयानक है। जहा करोडो आपत्तिया भरी हुई हैं जहा निरन्तर दुःखो की आग जला करती है जहां प्राणी नित्य जन्मते हैं, वृद्ध होते हैं, मरण को प्राप्त होते हैं। यह प्राणी इन्द्रिय सुख मे मग्न होकर वेखवर रहते हैं। ऐसे जीव शीघ्र ही काल के ग्रास होते हैं, इस प्रकार जगत मे सुख शांति कैसे मिल सकती है ? वुद्धिमान प्राणी को तो इससे निकलना ही ठीक है। आचार्य गुणभद्र ने भी

आत्मानुशान मे कहा है:—

"असामवायिक मृत्योरे—कमालोक्य कञ्चन ।
देशं कालं विधि हेतुं निश्चिताः सतु जतवः॥७६॥

अर्थ—इस ससार रूपी भयकर राक्षस से बचने के लिये तुम कही भी जाओ, एक देश को छोडकर दूसरे देश मे जाओ। एकान्त मे भी ऐसे स्थान पर जाओ जहा मृत्यु से सबध न हो। ऐसा कोई एक काल देखो जिसमे मृत्यु न आ सकती हो। कोई ऐसा ढग सोचो कि जिस प्रकार चलने फिरने से मृत्यु अपना आक्रमण न कर सके। कोई एक ऐसा कारण मिलाओ कि जिससे मृत्यु की दाढ न लग सकती हो। यह सब जब तुम करलो तब तो तुमको निश्चित होना चाहिये कि यहा तो काल नही आएगा। परन्तु यह याद रखो जब तक तुमने इस शरीर से सबध नही छोडा है तब तक ऐसा देश काल हेतु कभी नही मिलने वाला है। ऐसे देशादिक तो तभी मिलेंगे जब कि तुम शरीर से स्नेह हटाकर वीतरागता धारण कर अध्यात्म चिंतवन करने लगोगे क्योकि ऐसा सबध तो ससार मे कही भी नही है। एक मात्र ससार छूटकर होने वाली चिदानद दशा को प्राप्त होने पर है। इसलिये शरीर रक्षा के प्रयत्न मे लगे रहने से मृत्यु से छूटना असभव है। इसलिए इस मोह को छोडना चाहिये। ससार मे आज तक कोई वस्तु स्थिर नही है। माता, पिता, कुटुम्ब, कबीला सब अनेक २ आयु कर्म के अनुसार मर्यादा छोडकर चले जाते है। यह ससार असार है। इसलिये आप शाति धारण करे ऐसा धर्मोपदेश राजमाता को दिया॥३८७॥

शेल्वमं शिलनाळिडये केडु ।
मल्लळेंड्र् मुरादवरुम् मिलै ॥
मल्लै वेंड्र् पुयत्तोळिन् मन्नव ।
रेल्लै इल्लै इम्मण्णि लिरंदवर् ॥३८८॥

अर्थ—पुन कहने लगी कि हे राजमाता! सपत्ति, धन, दौलत आदि की तथा सब की मर्यादा पूर्ण होते हो इनका नाश हो जाता है। इस जगत मे दु ख को प्राप्त न हुआ हो ऐसा प्राणी आज तक देखने मे नही आया। संसार मे शत्रुओ को जीत कर अपनी कीर्ति फैलाने वाले राजा महाराजाओ को भी इस पृथ्वी को छोडकर जाना पडा और अनादि काल से अब तक कितने चले गये है, इसकी कोई गिनती नही है॥३८८॥

इरंदवर् किरंगि नामु मुळुदुमे लिड्कारुं ।
पिरंदनं पिरवि दोरुं पेट्र् सुट्रत्तै येन्नि ॥
ळिरंदनाळलगै याट्रा देवरुक्केंड्रळ् दुमेन्न ।
तिरंतेरिदु नरंदु देवि शिरिदु पोय् तेरिनाळै ॥३८९॥

अर्थ—हे माता! हमारे राजा सिहसेन मरण को प्राप्त हुए हैं इस विरह के दु ख

करने से आपको कोई लाभ नही होगा। मेरा पति मर गया। इसका विचार करने से कोई फायदा नही है, क्योकि इसी प्रकार भव भवांतरो में कई २ कई बार राजा हुए होगे और सयोग वियोग अब तक होता चला आ रहा है। यदि उन सब का दुख करोगे तो कितना महान असह्य दुख होगा, इसका विचार करो। परम्परा से सत्पुरुषो द्वारा कही हुई बातो को याद करो। आप स्वय ज्ञानी हो सब जानती हो। अब व्यर्थ ही आपको शोक करना उचित नही। आप शोक करना छोड दो इस प्रकार उपचार की बातो को कहकर रामदत्ता रानी को शात किया ॥३८६॥

तेरिमाळ् मयंदर तम्नै तरुगेन चप्प नोंद ।
वेरु पोनडंदु वंदागिरैजि निड्वरै नोकि ॥
पेरिलेनु मैचूटि यरसनै पिरिंदे नेन्न ।
वारिळि वरयै पोल वोळदडि तोळुदु वीळ् दार् ॥३६०॥

अर्थ—तदनंतर उस रामदत्ता रानी ने अपने दोनो पुत्र सिहचद्र व पूर्णचन्द्र को दासी द्वारा बुलवाया। उन दोनो ने आते ही माता के चरणो मे नमस्कार किया। रामदत्ता देवी अपने दोनो पुत्रो से कहने लगी कि पुत्रो! हमने पूर्व भव मे अच्छे पुण्यो का सपादन नही किया इसलिये आपके पिता के हाथ से तुम्हारा राज्याभिषेक न हो सका और वे राज्याभिषेक किये बिना ही संसार से विदा हो गये। इस बात को सुनकर दोनो पुत्र शोकाकुल होकर चरणों मे गिर पडे ॥३६०॥

तिरुवनमाळवरै तेट्रि शीय चंदिरनै नोकि ।
मरुगुला मगडं सूटि मन्मुळुदाळ्ग वेंड्रु ॥
पोरुविला ळदनिर् पिन्नै पूर चंदिर नैनोकि ।
यरशिळंङ कुमर नायनो यमरं दिनि रिक् वेंड्राइळ् ॥३६१॥

अर्थ—तत्पश्चात् रामदत्ता देवी अपने सिहचन्द्र और पूर्णचन्द्र दोनों कुमारो को धैर्य देते हुए कहने लगी कि हे कुमारो! तुम दोनो को अपने राज्य की जिस प्रकार तुम्हारे पिता राज्य का शासन करते थे उसी प्रकार अब सम्हाल करना चाहिये। ऐसा आशीर्वाद देती हुई आज्ञा दी कि सिहचन्द्र का राज्याभिषेक करो और पूर्णचन्द्र को युवराज पद देओ ॥३६१॥

इंदिर विभवं तन्नै इरु वगियिर् सेंदु मयिंद ।
रंदरं पिरिदोंड्रिडि इ वत्तु ळळुंदुं नाळुळ् ॥
शिदुर कळित्तु शीय शेनन् ट्रन् वार्त केट्टु ।
वंदनर् शांतिरन्य मदियेंवा तुरंद मादर् ॥३६२॥

अर्थ—राजमाता की आज्ञा के अनुसार सिहचन्द्र का राज्याभिषेक करके राज्यपद

दिया और पूर्णचन्द्र को युवराज पदवी दी। राजा सिंहचन्द्र सुखपूर्वक राजशासन करने लगा। राजा सिंहसेन के मरण का हाल सुनकर उस नगर मे विराजमान शांतिमति व हिरण्यमति यह दोनो आर्यिकाए माता रामदत्ता के पास आईं ॥३९२॥

अंग तूल पपिड्र् वल्ला ररवमिरं्द लिक्कुं सोल्लार् ।
शिग नरपाचलादि नोन् बोड्डु शरिदु निड्रान् ॥
तंगिय करुणै नेंजिर् ट्ररिना रुयिर् गट् केल्लां ।
तिंगळ् वेन कुडैनांड्रन् ट्रेवियै कंडु सोन्नार् ॥३९३॥

अर्थ—वे आर्यिकाए कैसी थी ? सम्पूर्ण जीवो पर दया करने वाली, भव्य जीवो को अमृत रूपी धर्मोपदेश का पान कराने की शक्तिवाली, व्रत मे अपने शरीर को शुष्क करने वाली, त्रसस्थावर आदि सभी जीवो पर दया भाव तथा हित करने मे कटिबद्ध थी। ऐसी वे दोनो श्रेष्ठ आर्यिकाए चन्द्रमा के समान श्वेत वस्त्र धारण किये रामदत्तामाता से कहने लगी कि हे राजमाता ! ॥३९३॥

अंगर वल्गु त्तारि लरुंददि येनैय नंगै ।
मगल मिळद तेमनोर्गडं पाव वाडि ॥
शंगय वनय कंगळ् सिदरी नो अळुद पोळदुं ।
वेंकळि यानै वेंदन् वेळिप्पडा नोळिग वेंड्रान् ॥३९४॥

अर्थ—आपने अपने पति के मरण होने पर अपने शरीर मे रहने वाले शृंगार माणक मोती रत्न आदि आभरणो को उतार कर त्याग दिया। यह पूर्व मे किये हुए पाप कर्म का उदय ही है। ऐसा समझो ! क्योकि परम्परा से ऐसा ही चला आ रहा है कि जहा जहा जन्म है वहा मरण है। यदि तुम पति के वियोग से दुख करोगी तो वे कभी वापस लौटकर नही आ सकते। इस कारण शोक करना भूल जाओ। दुख करना ससार बध का कारण है। क्योकि आप ज्ञानवान हो। इस विषय को भली प्रकार समझती हो। फिर भी हम तो निमित्त कारण हैं। आपको सात्वना देना हमारा मुख्य कर्त्तव्य है ॥३९४॥

आर्वत्ति नरत्ति सिंदै यार्तमा यदनिर् पिन्नै ।
वैदत्तै उडिय वाय विलंगिडै पिरंदु तीमै ॥
भारत्तै यडंदु सेंड्र् नरगति पदैप्पर् कंडाय् ।
नेरोत्त मनत्तौयागि यनित्तमे निनैक्के वेंड्रार् ॥३९५॥

अर्थ—वे माताए पुन कहने लगी कि हे माता दुख करने से आर्तध्यान होता है और आर्तध्यान से महान तिर्यगति मे जन्म लेना पडता है और वहा अनेक प्रकार के नरक के आतायात के दुखो को सहन करना पडता है। इस कारण इस जगत मे उत्पन्न होने वाले पचेन्द्रिय विषय सुख अनित्य हैं, क्षणिक हैं, कभी भी शाश्वत किसी को रहते नही। सब पुण्य पाप

का फल है । पुण्य की समाप्ति पर सुख क्षण भर भी नही ठहरता । यह वेश्या के समान है जिस प्रकार वेश्या धनिक लोगो की बगल मे कभी इसके पास कभी उसके पास रहती है, उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी चचल है । इसलिए पुन: समझो और आर्तध्यान व शोक को शात करो । ऐसा आर्यिका माताजी ने कहा ॥३६५॥

अळुंदि गीसोगन् तन्नि लरिय विप्परवि यालाम् ।
शेळुम् पयनिळत्तिडादे तिरुवंर शेरुंदु सिंदै ॥
येळदं नल्विशोदि तन्नालिडर् कडल् कडंदु पट्रि ।
लळुंदिय विनयै विल्लु मरत्तुवि तमैक्क वेंड्रार् ॥३६६॥

अर्थ—हे देवी ! शोकरूपी समुद्र मे निमग्न न होकर इस मनुष्य जन्म मे अगले भव के लिए शांत और सुख के मार्ग का साधन करना यही तुमको श्रेयस्कर है । क्योकि मनुष्य गति महान कठिनता से प्राप्त होती है। इस पर्याय से जैन धर्म को भली भाति समझ लो। और धर्म को समझ कर आशा रूपी समुद्र मे न डूबते हुए कर्मो के उपशम करने के लिये शक्ति के अनुसार व्रत नियम ग्रहण करो । उत्तम स्त्री पर्याय को पाकर उससे धर्म का साधन कर लेना यही श्रेष्ठ है । क्योकि यह स्त्री पर्याय अत्यन्त निंद्य है । पूर्व भव मे किए हुए मायाचार के कारण, यह निंद्य पर्याय प्राप्त हुई है । इसलिए हे देवी ! इस शरीर को व्रत और तप के साधन मे लगाकर इसका उपयोग करो । यह आत्मा अनादि काल से पचेन्द्रिय विषयो मे रत होकर ससार मे परिभ्रमण करता आया है । भोगो को ही सुख मानकर जैसे चक्षुरिंद्रिय के आधीन होकर पतग आग मे गिर पडता है उसी प्रकार यह प्राणी एक २ इन्द्रियो के वश मे होकर ससार सागर मे डूबकर महान दुख को भोग रहा है । अत: हे देवी ! आप इस शरीर से भविष्य के लिये व्रत वगैरह का पालन करते हुए नियम से साधन करो, इसी मे भलाई है । एक कवि ने कहा है —

तनुवं संघद सेवेयोल् मनमनात्म ध्यानदभ्यास दोल् ।
धनम दानसु तुजेयोल् दिनमनर्हद्धर्म कार्य प्रवर्तने ।
योल्पर्वनोल्दु नोपि गलोलिदी युष्यम मोक्षचि-
तने योल्तिचुंव सद्गृहस्थननर्घ रत्नाकरा धीश्वरा ! ॥

अर्थ—शरीर का उपयोग मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका की सेवा करना मन को आत्मध्यान के अभ्यास मे लगाना, धन का उपयोग दान व पूजा मे लगाना, दिवस को अर्हत भगवान की पूजा आदि मे व व्रत विधान मे लगाना तथा अपने शेष समय को मोक्ष चिंतन मे व्यतीत करने वाला ही सद्गृहस्थ कहलाता है, और वही पाप रूपी बीज को नष्ट कर अत मे मोक्ष रूपी सामग्री को प्राप्त कर ससार मे मनुष्य जन्म को सफल बनाता है । यही मनुष्य जन्म का सार है । अत. हे रामदत्ता देवी ! इस पर्याय को धर्म साधन मे लगाए रखना ही श्रेष्ठ है । अब आगे के लिए शुभ गति का बध करो ऐसा दोनो आर्यिकाओं ने धर्मोपदेश दिया ॥३६६॥

तुवर् पशै नान्गिर् ट्रीय विलच्यै मूंड्रागि नाळै ।
यवत्तमे पोकिजादे यैम्मै मुम्माट्र् केट्र ।।
तवत्तोडु विरदं शीलं तक्क न तांगि सिदं ।
युवर्पोडु वेरुप्पि नोंड्रि युरुदिक्क नुळक्क वेंड्रार् ।।३९७।।

अर्थ—हे देवो ! क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार प्रकार के कषायो से उत्पन्न होने वाले कृष्ण, नील और कापोत इन तीन लेश्याओ के दुष्परिणामो को व्रत विधान के द्वारा क्षय करना, पाच अणुवत तीन गुणव्रत, चार शिक्षा व्रत ऐसे बारह व्रतो को ग्रहण कर शक्ति के अनुसार तपश्चरण करना ही दुखो का नाश करने वाला मुक्ति का मार्ग है। अत: समस्त सासारिक भोग सामग्री आदि का त्याग करके सतोष पूर्वक धर्म ध्यान के मार्ग को स्वीकार करना चाहिये। ऐसा आर्यिकाओ ने उपदेश दिया ।।३९७।।

अरुन्तवतार्गळ् सोन्नि केटलु निरामइ सित्त ।
निरुलिय तवत्तदागि बेदन मगनैकूवि ।।
पोरुदिय सेल्वं सुट्रं पोर्पुदं पोल मायुं ।
पिरुदिय गुणत्तिनाय नी तिरुवरम् मरव वेंड्राळ् ।।३९८।।

अर्थ—इस प्रकार दोनो आर्यिकाओ ने रामदत्ता देवी को उपदेश देकर उनके दुख को शात किया। धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् उस रामदत्ता माता की इच्छा आर्यिका के धर्मोपदेश के अनुसार व्रत पालन करने की हुई। तदनन्तर वह अपने ज्येष्ठ पुत्र सिहचन्द्र को बुलाकर कहने लगी कि हे सद्गुण शिरोमणि कुमार सिहचन्द्र यह सपत्ति माल, खजाना, हाथी, घोडे सेना आदि सब क्षणिक हैं। इसमे रत होकर जिनेद्र भगवान द्वारा कहे हुए सद्धर्म मार्ग को भी भूलना नही चाहिये। अब मेरे मन मे सयम धारण करने की भावना जागृत हुई है। ।।३९८।।

एंड्रलु मंजि नेज तिळन् शिगनडप्पदे पोर् ।
सेंड्र वन् पळिदेळदुं सेप्पिय देन्कोलेन्न ।।
मिड्रिगळ् पूनि नाळ् मेल् विळुत्तवं तोडंगि नोट्र् ।
कोंड्रिय दुळ्ळ मेन्न उसमुट्र नाग मोत्तान् ।।३९९।।

अर्थ—इस प्रकार माता के वचनो को सुनकर वह सिहचन्द्र मन मे अत्यन्त भयभीत होकर माता के चरणो मे नमस्कार करके खडा होकर पूछने लगा कि हे माता ! आपने जो बात कही वह मेरे समझ मे नही आई। आप क्या कह रही हैं? इसलिए आप मुझे अच्छी तरह से पुन कहो। ऐसी प्रार्थना की तब वह रामदत्ता देवी सुनकर कहने लगी कि हे पुत्र ! ससार असार है, सर्व वस्तु क्षण भंगुर हैं मेरे मन मे सयम भाव ग्रहण करने की इच्छा हुई है। माता के ऐसे वचन सुनकर सिहचन्द्र कुमार अत्यन्त शोकाकुल होकर मूर्च्छित होकर नीचे गिर गया ।।३९९।।

कडगमु मुडियुं सिद कर्पगं पोन वेळ्ंदु ।
पडिविशै किडद वीरन् परिजन तेट्र तेरि ।।
अडियनेन् पिळैत्त देन्कोलडि कनिर् तुरत्तर् केन्न ।
नेडिदु नी रुरैय्य नींगळ् पिळत्तदोंड्रिल्लै एंड्राळ् ।।४००।।

अर्थ—कुमार सिंहचन्द्र के मूर्च्छित होने से शिर के आभरण मुकुट हार आदि इधर उधर बिखर गये और वह मूर्च्छित पडा रहा। उस समय वहा की दासियो आदि ने शीतोपचार से कुमार को जागृत किया। तब वह सिंहचन्द्र माता से प्रार्थना करने लगा कि हे माता! आप इस राजमहल को छोडकर जाने की इच्छा कर रही है, सो मेरे द्वारा ऐसा कौनसा अपराध हो गया है? तब माता कहने लगी कि हे पुत्र आपने कोई अपराध, भूल व गलती नही की है। किंतु मेरे मन मे आत्म—कल्याण करने की तथा इस पर्याय से आगे की पर्याय का तपश्चरण के द्वारा सुधार करने की भावना उत्पन्न हुई है, और कोई दूसरी बात नही है।४००।

मरं पुरिंदिलंगु वैवेल् मन्नवन् ट्रेवि युळ्ळं ।
तिरपुरिंदेळुंद वण्ण मरिंद पिन् सीय चंदन् ।।
रुरंग पुरिंदडिगळेंड्रु तोळुदोडन् पडलु नील ।
निरंपुरिंदेळुंद वैबा नेरि मैई नीकितारे ।।४०१।।

अर्थ—रामदत्ता नाम की पटरानी के इस प्रकार तपश्चरण करने के विचारो को सुनकर कुमार ने कहा कि आप घर मे ही रह कर पडोस के मदिर में विराजकर धर्म साधन करो ताकि हमको भी आपकी सेवा का और धर्मोपदेश सुनने का अवसर मिले। हम अज्ञानी कुमारो को एकदम छोडकर आपका जाना ठीक नही। इस प्रार्थना को सुनकर माता कहने लगी कि बेटा तुम ज्ञान के भडार हो। प्रजा वत्सल ज्ञानी, दान व धर्म मे लीन हो राज्य कार्य मे चतुर व निपुण हो। मुझे शीघ्र स्वीकृति दो। इस प्रकार अपने पुत्र को कहकर संतोषित किया। सिंहचन्द्र ने अपने मन में विचार किया कि मेरी माता ने तप करने का दृढ विचार कर लिया और यह रुकने वाली नही है। ऐसा समझकर माता को दीक्षा लेने की स्वीकृति दे दी। वह माता अपने छोटे पुत्र पूर्णचन्द्र से पूछकर वन की ओर चली गई और वहा विराजने वाली आर्यिका माता से दीक्षा लेने की प्रार्थना की।।४०१।।

अनिचत्तं पोदु कोइवार् पोलनी मयिरै वांगि ।
पणिचप्पै येनय कोंगै पाणि निर पडत्तिन् वीकि ।।
तनि चित्त वैत्त नंगै तामरै पूवि लन्न ।
पनि सुत्तन् सूट्टवेळ् विरुंद दोर् पडि इरुंदाळ् ।। ४०२।।

अर्थ—तब आर्यिका ने रामदत्ता देवी के मन में तीव्र वैराग्य की भावना को देखकर उसको तथाऽस्तु कहकर दीक्षा की अनुमति दी। उसी समय आर्यिका माता की अनुमति लेकर रामदत्ता ने अपने शरीर के वस्त्र आभरण आदि को उतार दिया,और उन्हे त्याग करके

बारह भावना का चितवन करते हुए मन से एकाग्रचित्त होकर शुद्ध श्वेत वस्त्र धारण कर आर्यिका दीक्षा ग्रहण की ।।४०२।।

अरसिर कुमरन् पै पोनळ विड्रि ईंदु पिन्नै ।
पिरस निड्र् राद पिडि पिरान् ट्रिरु शिरप्पि यट्रि ।।
मरै इरुंदवळै सीलु मिरामै तन् नुरवै कंडु ।
विरै मलर् सोरिंदु वाळ्त्ति मींडु तन्नगरं पुक्कान् ।।४०३।।

अर्थ—उस समय पूर्णचन्द्र अपनी रामदत्ता माता को दीक्षा दिलवाकर उनके चरणो में भक्ति पूर्वक माता के वियोग मे अश्रु गिराते हुए उनको नमस्कार किया। दीक्षा उत्सव पर याचक व भिक्षुओ को इच्छित दान दिया और वीतराग भगवान का पचामृतभिषेक किया तथा पूजा स्तुति करके विसर्जन किया और लौटकर वापस घर आया ।।४०३।।

मत्तामालु कळिरु वान्कै इळंददु पोंड्रि राम ।
तत्तायै पिरिंदु शोय चंदिरन् शालवाडि ।।
मुत्तानि मुलैनार्त्तं मुरुवलुं शिरिय नोक्कुम् ।
पित्तान् वाब पट्ट नल्ल पिरसं पोट्रि रिंद वंड्रे ।।४०४।।

अर्थ—जिस प्रकार हाथी अपनी सूंड मे जरा सा घाव हो जाने पर महान व्याकुल हो जाता है और सूड को ऊंची ही रखता है उसी प्रकार सिंहचन्द्र राजा को माता के वियोग से महान दुख हुआ। उन्होने अपनी स्त्री के साथ मोह छोड दिया और जो हास्य विनोद आदि करते थे—उनमे वैसे पहले के समान भाव नही रहे। जिस प्रकार पित्त का रोगी मीठी वस्तु को खाते ही थूक देता है उसी प्रकार राजा को भी भोगोपभोग विषय भोग आदि मे अरुचि होने लगी और शनै २ ससार भोगो से उसको विरक्तता हो गई ।।४०४।।

इंड्रदा येवं दड्रि इरंदनाळ् शिरंद वन् बिर् ।
ट्रोंड्रिना नादलानुं पिरिविन् मातुमा मुट्रा ।।
नांड्र वर् काय नंड्रि यनुवु मामेरु वागि ।
तोंड्रु मेळ् पिरवि तोरुं तोडदु वीडैदु कारुं ।।४०५।।

अर्थ—यह सिहचन्द्र इसी जन्म की रामदत्ता देवी की कूख से पैदा हुआ अर्थात् इसी रामदत्ता देवी ने भद्रमित्र वणिक के रत्नो को दासी के द्वारा देने के कारण से उनपर स्नेह होने के कारण रामदत्ता देवी के गर्भ मे आकर जन्म लिया था। सत्य है सत्पुरुष के द्वारा थोडा सा भी उपकार हो जावे तो उसका आगे बढकर बहुत उपकार हो जाता है। उस समय अल्प किया हुआ उपकार भी मेरु के समान सात भव तक उपकार के लिये निमित्त बन जाता है। ।।४०५।।

पगै वर्तं नन्वु पोल यैदोडि पवळ वायार् ।
मुगै मुलै कण्णं तोळ् मुरु वलुं शेरिय वंद ।।
उवगै नोडु नाळि लुरुतव नुरुवन् वंदान् ।
पुगरिला नेरिविळक्कुं पूर चंदिर नेंबाने ।।४०६।।

अर्थ—शनैः २ सिहचन्द्र के भावो मे तीव्र वैराग्य की भावना होने के कारण अपनी स्त्रियो के साथ, हास्य विनोद व सांसारिक वाते न करना, विषय भोग आदि के वातावरण मे मौन रहना । विरोध की चर्चा तथा स्नेह पूर्वक वात न करना । किसी प्रकार का भी व्यवसाय न करना माध्यस्थ भाव से रहना । किसी पर भी स्नेह न करना इस प्रकार रहते हुए ससार भोग के कारण हैं ऐसा विचार कर वह सव चीजो की ओर से उदासीन भाव होकर समय व्यतीत करता था । एक दिन महाव्रतधारी पूर्णचन्द्र नाम के महामुनि चर्या के लिये बिहार करते हुए राजमहल के बाहर से जा रहे थे ।।४०६।।

वंद मादवन् ट्रन् सेंदा मरै यडि वनंगि पूतु ।
एदं मिलुवगै यैय्दि यें पोन् मंगलगं ळेंदि ।।
इंडु वानुदलि नारो डेदिर् कोंडु पणिंदु पुक्कु ।
सुंदर तलत्ति नेट्रि तुगळडि तुगिलि नीकि ।।४०७।।

अर्थ—उस समय सिहचन्द्र ने अपयी स्त्री सहित मुनि महाराज को देखा आर दोनो दम्पतियों ने नवधा भक्ति सहित पडगाह कर अपने घर पर लाये और उच्चासन पर विठा दिया । तदनंतर भक्ति सहित मुनिराज का पादप्रक्षाल किया और चरणो का गंधोदक मस्तक पर लगाकर अष्ट द्रव्य से उनकी पूजा की । अपने घर मे स्वयं के लिये जो शुद्ध आहार बनाया था उसी मे से थाल मे परोसकर नवधा भक्ति तथा मन वचन, काय से शुद्धि पूर्वक उन पूर्णचन्द्र मुनिराज को आहार दिया । वे मुनिराज निरतराय आहार लेकर वैठ गये । और अपनी नित्य क्रिया आहार मे लगे हुए दोषो के परिमार्जन हेतु मत्र का जाप्य व सिद्ध भगवान का ध्यान किया । तदनंतर दोनो दम्पतियो ने मुनि महाराज को हाथ जोडकर नमस्कार किया ।।४०७।।

मणि मलर् कळस नीरान् मासर कळुवि वासम् ।
तनिविळा पालै शांदं सरुविनलरुच्चि ताट्रि ।।
इनै इिला मुनिषन् पांद पणिंदु नालमिदं मींदान् ।
कनिइ नाळ् पणियुं पोळ्दि लमररुं शिरप्पुच्चैदार् ।४०८।

अर्थ—तदनंतर उन मुनि महाराज को बाहर लाकर उच्चासन पर विठाया । आहार दान के प्रभाव मे देवो ने महाराज सिहचन्द्र के घर पर पुष्प वृष्टि, स्वर्ण वृष्टि, रत्न वृष्टि दातार की स्तुति, दिव्यनाद इस प्रकार पचवृष्टि की । मुनि के आहार तथा तप के प्रभाव को देखकर अन्य लोगो के मन मे जैन धर्म व जैन मुनि के प्रति ऐसी भावना उत्पन्न हुई कि अहा!

दिगम्बर मुनि को आहार देने के प्रभाव से इन लोगो के घर पर देवो ने रत्नादि की वृष्टि की ।। ४०८ ।।

वदव नियम मुट्रि इरुंद मावंदवनै वाळ्ति ।
अंदमुं पिरवि कोंड्डु विल्लयो वरुळु गेन्न ।।
अद मुंडागुं पान्गै यनिय वर्करुंद वत्तान् ।
मेंद मट्रवै इलाकुं माट्रिडै सुळचिये याम् ।।४०९।।

अर्थ—सिहचन्द्र ने मुनि महाराज से हाथ जोडकर नतमस्तक होकर प्रार्थना की कि हे प्रभो ! सासारिक जीवो के लिये ससार का अत है या नही ? इस विषय मे मुझे धर्मोपदेश देकर मेरी शका दूर कीजिये । तब मुनिराज ने सिंहचन्द्र को उपदेश दिया कि जीव दो प्रकार के हैं । एक भव्य दूसरा अभव्य । भव्य जीव के ससार का अत होता है, अभव्य का अत नही होता । उसको चारो गतियो मे हमेशा भ्रमण करना पडता है ।।४०९।।

पान्मैइन् परिशेन् नेन्निर् पळुत्तलु काट्रल् पिंदि ।
ईनमाय् पेरिगिवद तिलइडै कनियु मिव्वा ।।
ट्रून मोड्रि लाद पान्मै उई रिडे कनियुं वोटै ।
तानं पन्नि रंडिन् मेय् मै तवत्तिलै यड्डुत्तपोळ्दे ।।४१०।।

अर्थ—ससारी भव्य जीव कर्मो की निर्जरा करके तपश्चरण द्वारा मोक्ष जा सकता है । जिस प्रकार एक आम के कच्चे फल (कैरी) को तोडकर घास मे पकाते है, उसी प्रकार वह भव्य ससारी जीव कर्मों को परिपक्व करके ससार से मुक्त हो जाता है ।।४१०।।

मेय्तवत्तन्मै तानुं वेंड्रवर् पडिमं तांगि ।
सित्तरं मोळिकन् मोंड्रि लिळु तोडर् पाटि नीगि ।।
पत्तांर पन्नि रंडाम् तवत्तोडु पइंड्र् तन् कन् ।
डत्तम काक्षि ज्ञान ओळ्कत्तौ येळुत्तल् कंडाय् ।।४११।।

अर्थ—सिहचन्द्र ने पुन: पूछा कि हे महाराज वास्तविक तपश्चरण का क्या लक्षण है ? मुनि महाराज ने बतलाया कि भव्य जोव को अर्हंत भगवान के रूप को धारण करने के लिए रुचि व श्रद्धान पूर्वक अतरग परिग्रह का त्याग करना परमावश्यक है । आत्मा से सबधित सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को अतरग मे पूर्णतया मनन करना चाहिये इससे मोक्ष की प्राप्ति होती है । रत्नत्रय के दो भेद हैं । एक व्यवहार, दूसरा निश्चय रत्नत्रय । भगवान जिनेन्द्र देव के कहे हुए वचनो पर श्रद्धान करना सम्यक्दर्शन है और उस पर पूर्ण ज्ञान द्वारा लक्ष्य देना–सम्यक्ज्ञान व उसके अनुसार आचरण करना सम्यक्चारित्र है । यह तो व्यवहार धर्म है । और अपने अदर भेद विज्ञान के द्वारा स्वपर को जानकर पर से भिन्न अपने आत्मा मे लीन होना यह निश्चय चारित्र है । हे गुरुदेव ! सच्चे गुरु का लक्षण

क्या है ? मुनि महाराज उपदेश करते है कि:—

विषयाशावशातीतो निरारभोऽपरिग्रह ।
ज्ञान–ध्यान–तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ।।

अर्थ—जो रसना इन्द्रिय के लपट हो, अनेक प्रकार के रसो के स्वादी हो, आशा व कर्णेन्द्रिय के वशीभूत हो, अपने यश व प्रशसा सुनने की अभिलाषा रखने वाले, अभिमानी, चक्षु इन्द्रिय के वशीभूत, आभरण वस्त्रादि देखने के इच्छुक, कोमल शय्या सुगन्ध वस्तु, विषयो मे लपटता आदि वासनाए जिनमे हैं ऐसे साधु वीतराग मार्ग मे नही हैं। ऐसा समझना चाहिये । ऐसे साधु सराग धर्म मे लीन होकर ससार समुद्र मे डूबने वाले हैं । जो विषय व आशा के आधीन न हो वह साधु नमस्कार के योग्य है । जिनका विषय मे अनुराग है वह आत्मा रहित बहिरात्मा है । फिर गुरु कैसा होना चाहिये:—जो त्रस, स्थावर जीव के घातक न हो, पाप न करते हो वे गुरु कहलाते हैं । इसके अतिरिक्त २४ प्रकार के अन्तरग व बहिरग परिग्रहो से विरक्त हो । स्वजन धन, धान्य, स्त्री, पुत्र, घर, दास, दासो, माणक, रत्न, सोना, रुपया, शय्या, वस्त्र रूप जाति, कुल, अपयश, यश मान्यता, अमान्यता, ऊंचपना, नीचपना, निर्धनपना, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र आदि वर्ण इत्यादि प्रकार के सभी बाह्य परिग्रह हैं। मिथ्यात्व, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुसक वेद हास्य, रति, अरति शोक भय जुगुप्सा, कोध, मान, माया, लोभ, यह १४ प्रकार के अन्तरग परिग्रह है । मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से जीवो के तत्वार्थ का श्रद्धान न होना । अतत्त्व को तत्त्व समझना, कुगुरु मे गुरुबुद्धि करना, कुआगम को आगम मानना, कुधर्म को धर्म समझना, देह के रूप जाति कुल को ही आत्मा जानना आदि सब मिथ्यात्व है । जिस कर्म के उदय से निश्चलपना, उदारपना होकर स्त्रियो के साथ रमने की इच्छा रूप परिणाम करना पुरुषवेद है । मार्दव का अभाव, मायाचारादिक की अधिकता, काम का प्रवेश, नेत्र विभ्रमादि करके सुख के लिए पुरुष से रमने की इच्छा करना स्त्रीवेद कहाता है । काम की अधिकता, भडशीलता, स्त्रीपुरुष दोनो के साथ रमने की इच्छा, जिसकी कामाग्नि ईटो के भट्टे के समान प्रज्वलित रहती है वह नपुसक वेद है । हंसी का परिणाम रखना हास्य परिग्रह है । देशादिको में उत्सुकता तथा अपने अन्दर राग उत्पन्न करने वाले पदार्थो को जो अनिष्ट लगे उसमे अपने परिणाम करना अरति परिग्रह है । इष्ट का वियोग होते समय क्लेश परिणाम होने का नाम शोक परिग्रह है । अपना मरण होने से विरह का भय रखना भय परिग्रह है । घृणित वस्तु को देखकर उसका स्पर्श करना, देखना, ग्लानि करना, दूसरे के कुल शीलादिको मे दोप प्रकट करना, तिरस्कार करना अथवा पर के असहाय रोगो को देखना, जुगुप्सा परिग्रह है । अपने व दूसरो के घात कर डालने के परिणाम तथा पर के उपकार करने का अभाव परिणामो मे क्रूरता रखना क्रोध है । रूप, लावण्य, उच्च जाति कुल ऐश्वर्य, विद्या, रूप आदि का मान करना,दूसरे पर कठोर दृष्टि रखना मान परिग्रह है । मन मे कपट भाव होकर वक्र परिणाम होना, दूसरो को ठगने के परिणाम से परिणामो मे कुटिलता होना माया परिग्रह है । पर द्रव्य मे चाह रूप होना, अपने उपकार के लिये सासारिक वस्तुए प्राप्त करने की अभिलाषा रखना लाभ परिग्रह है । यह मूल आत्मा का घात करने वाले १८ प्रकार के अन्तरग परिग्रह है । इस प्रकार अन्तरग व बहिरग परिग्रहो का जिनके त्याग हो उन्ही को सच्चा गुरु समझना चाहिये ।।४११।।

तानेन पडुव देट्ट्ु विनैविट्ट तन्मै तग ।
नूनमे ललंत नान् मैं इरुमयु मुरम याकी ।।
यानेन देन्न नींगुं विनयेंड्रि याकै सुट्टं ।
यानेन देन्न नींगा देन्निनै तोडरु मेंड्रान् ।।४१२।।

अर्थ—देह मैं, मैं ही देह हूँ इस प्रकार कहने से मिथ्यात्व कर्म का बध होता है। मै ऐसे भाव को उत्पन्न करने वाले अहकार भाव से ससार-बधन नही छूटता है। इस कारण सारी वस्तुओं को पर समझ कर मेरी आत्मा एक ही है, अनन्त चतुष्टय रूप है, ज्ञान दर्शन चारित्रमयी है, ऐसा निश्चय करके एकात मे अपने अन्दर भावना करने से कर्मों की निर्जरा होकर वह आत्मा परमात्मा हो जाती है। ऐसा उन पूर्णचन्द्र मुनि ने राजा सिंहचन्द्र को धर्म का स्वरूप बतलाया ।।४१२।।

एंड्रलु मेनंदु यानु मिवैय्यन मयंगि कोळ्ना ।
निंड्रि यान् गदिगनांगिर् सुळंड्रन नेरियरिंद ।।
विंड्ु नानिवट्रि नींगा दोंळु वने लेन्ग लींगा ।
तोंड्रि नालोंड्ु निल्लादोळि कवित्तोर्डचि येंड्रान् ।।४१३।।

अर्थ—इस प्रकार मुनिराज का धर्मोपदेश सुनकर वह राजा प्रार्थना करता है कि हे प्रभु! यह सब मित्र, इष्ट बन्धु, स्त्री, पुत्र, बाधव, कुटुम्ब, परिवार सर्व मेरा ही है—ऐसी बुद्धि करके मैने मेरे सच्चे आत्म-स्वरूप की पहचान नही की। और उसको भूलकर पहचान न होने के कारण संसार रूपी समुद्र मे मग्न होकर अनेक प्रकार के दुख भोगे। अब आपके धर्मोपदेश के प्रभाव से ससार बधन को नष्ट करने के लिए सयम भार को ग्रहण करने की इच्छा हुई है।

भावार्थ—ग्रथकार ने इस श्लोक मे छोटे राजकुमार पूर्णचन्द्र की वैराग्य की भावना दर्शाई है। मुनिराज के आहार होने के पश्चात् राजकुमार पूर्णचन्द्र ने भी प्रश्न किया कि ससार का अन्त होता है या नही? तो मुनिराज ने कहा हे भव्य प्राणी सुनो—

ससारी जीव दो प्रकार के है। एक भव्य दूसरा अभव्य। भव्य जीव तपश्चरण के द्वारा कर्मो का नाश कर मोक्ष प्राप्त कर सकता हैं और अभव्य जीव तपस्या करने पर भी ससार से मोक्ष नही पा सकता है। जिस प्रकार ठोरड्र मूंग को कितना ही सिझोया जावे तो भी वह कठोर ही रहता है, उसी प्रकार अभव्य मोक्ष को प्राप्त नही हो सकता। ममकार होने से कर्म बध होता है। ससार मे सब पदार्थ नश्वर है। आत्मा से विनश्वर पदार्थो का सबध नही है। आत्मा मे शुद्ध भावना रखने तथा ध्यान करने से क्रम से वह प्राणी कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

तत्व भावना मे अमितगति आचार्य ने कहा है कि:—

'चित्रव्याघातवृक्षे विषयसुख–तृणास्वादनासक्तचित्ताः।
निस्त्रिंशैरारमन्तोजनहरिणगणाः सर्वतः संचरद्भिः ।।

खाद्य ते यत्र सद्यो भत्र मरण जराश्रापदैर्भीमरूपैः ।
तत्रावस्थां कुर्मो भवगहनवने दुःख–दावाग्नि–तप्ते ॥

अर्थ—जैसे ऐसा कोई सघन जंगल हो जहां बडे टेढे २ वृक्षो के समूह हो व दावाग्नि लगी हुई हो और चारो तरफ सिह व्याघ्र आदि हिसक प्राणी घूमते हो और जहा तिनके को चरने वाले हरिण निरन्तर हिसक प्राणियो के द्वारा खाये जाते हो ऐसे वन मे कोई रहना चाहे तो कैसे रह सकता है ? जो रहे वही आपत्ति मे फसे । इसी तरह यह ससार भयानक है । जहा करोडो आपत्तिया भरी हुई है तथा जहा निरन्तर दुखो की आग जला करती है । व जहा प्राणी नित्य जन्मते है वूढे होते है तथा मर जाते है, बेखबर रहते है, बस शीघ्र ही काल के गाल मे दबाए जाते हैं, ऐसे संसार बन मे सुख शाति कैसे मिल सकती है ? बुद्धिमान प्राणी को तो इससे निकलना ही ठीक है ॥४१३॥

नेरुप्पिडै किडंद सेंबिर् पट्ट नीर तुळ्ळि पोलुं ।
विरुप्पिडै किडंद उळ्ळत्तोळुंद वे कत्ति निन्ब ॥
तिरुत्तियै सेय्यु मेंड्ु पुलत्तिनै सेरिय निंट्रल् ।
नेरुप्पै नै तेळित विप्पा नेळुंदव निनैप्प नोंड्रे ॥४१४॥

अर्थ—राजा सिहचन्द्र मुनि महाराज का उपदेश सुनकर प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभु ! मै ससार भवर मे रुलता २ असह्य दुखो को प्राप्त हुआ हू । जिस प्रकार तपे हुए तवे पर पानी डालने से वह पानी शीघ्र ही जल जाता है, उसी प्रकार पूर्व जन्म मे किया हुआ कर्म रूपी समूह को इस भव मे शांत करने के वजाय उलटा पचेद्रिय विपयो को वढाने का उपाय किया है। जैसे अग्नि को शात करने के लिए घी की आहूति उसमे डाल दी जावे तो वह कभी भी शात नही हो सकती वल्कि अधिक भभकती है , इसी प्रकार मैंने उसके ठीक उपाय न समझकर पचेन्द्रिय विषय के द्वारा उसको वुझाने का प्रयत्न किया परन्तु वह वढता ही गया । दुख अधिकाधिक होता गया ॥४१४॥

भूमियेंदरत्तु वंदु पोरुंदिय पुलत्ति नाल्लेमै ।
यो विलदुयित्तु वेरारे सुवै इन्मै युनंर्दु मीट्टुम् ॥
मेवुदर् केळुदल् मेड्ु विट्टदै मेड् लंड्रिल् ।
कूवल मंडुगं पोलु गुणत्तमे निनैक्कि नेंड्रान् ॥४१५॥

अर्थ—इस लोक और परलोक मे अनेक वार जन्म लेकर अनेक प्रकार के इन्द्रिय सुखो का अनुभव करने पर भी नवीन सुख का अनुभव नही हुआ । दुख ही दुख का अनुभव हुआ । इस कारण मेरे सच्चे असली आत्म–सुख को प्राप्त करने की इच्छा हुई है । इसका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार एक व्यक्ति गन्ना खाकर उसके छिलके फैकने के बाद दूसरा मनुष्य उसको खाकर स्वाद की इच्छा करता है, उसी प्रकार मैं भी अनादि काल मे जिस प्रकार अनेक राजा महाराजा इस पृथ्वी के सार को लेकर अन्त मे नि सार समझकर फेंके

हुए गन्ने के छिलके के समान सार रहित सपत्ति को सारभूत समझकर आत्म कल्याण नही कर पाते। उसी प्रकार मेरा आत्मा भी बिगड गया है। इस कारण मुझको तिलमात्र भी सुख का लेश नही आया।

दूसरी बात यह है कि एक छोटे कुए मे रहने वाले मैंढक अर्थात् कूप मडूक के समान अल्प विषय सुख का अहकार करके ससार मे मैंने भ्रमण किया। और इस परवस्तु के मायाचार से नरक गति तिर्यंच गति मनुष्य गति आदि२ निंद्य पर्यायो मे भ्रमण किया।४१५।

पेरर् करु' पिरवि काक्षि पेरु'तवन् तिरु'डु माट्रुम्।
सिरप्पुडै कुल नल् याकै सेरिवित्त सेळुं तवत्तौ ।।
मरप्प नेल् माट्रैयाकु सिवैयुं वंदनुगा वेंड्रु।
तिरत्तुळि तेरिडु तिग नामर्र्कु तेरिय चोन्नान् ।।४१६।।

अर्थ – सिहचन्द्र कहता है कि हे भगवन्! सभी पर्यायो मे श्रेष्ठ मनुष्य पर्याय प्राप्तकर सयमी होकर मन, वचन, काय के द्वारा रुचिपूर्ण तप करने से सम्यक्दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होती है। तप से ही उच्च कुल, आर्य भूमि, सर्व लक्षण से युक्त सुन्दर शरीर, ससार के सभी वैभव प्राप्त होते हैं। परन्तु मैंने शरीर से पचेन्द्रिय विषय रूप ससार का नाश करने के लिए तप नही किया, और तप न करने से पचेन्द्रिय विषयो की लालसा करके ससार मे भ्रमण किया। इस प्रकार उस सिहचन्द्र ने विचार करके अपने लघु भ्राता पूर्णचन्द्र को बुलाया और उसे निश्चय तथा व्यवहार धर्म का सच्चा स्वरूप समझाया। ।।४१६।।

मुन्नं सै तवत्तिन् वंदु मुडिद नर्वयत्तौ कंडार्।
पिन्नु मत्तवत्तौ शैदु पेरु' पयनुगरं दि डादे ।।
मिन्नंजु नुगं बिनार्द वेट्कै इन् वेळंडु पोगुं।
वन्नंजर किल्लै कंडाय् माट्टिट्रडै सुगमु मेंड्रान् ।।४१७।।

अर्थ—हे भाई पूर्णचन्द्र! पूर्व जन्म मे उपार्जन किए हुए शुभ फल से मिली हुई सपत्ति पचेन्द्रिय के विषय सुख के सबध मे विचार करके देखा जाय तो यह सब पूर्व जन्म मे किये गये तपश्चरण द्वारा ही हमको मिले हैं। हम मनुष्य पर्याय से सयम धारण करके तपश्चरण करे तो इसमे भी महान् मोक्ष फल की प्राप्ति हो सकती है। यदि मनुष्य पर्याय को प्राप्त करके भी तपस्या आदि न करे तो पचेन्द्रिय विषय भोगो से अगले भव मे अत्यन्त महान मोक्ष सुख को प्राप्ति कभी नही हो सकती ।।४१७।।

अरु'तव दानं शील मरिवनर् सिरप्पि वट्टार्।
ट्रिरु'दिय मनत्ति नारै तिरुवेंड्रु पिरिदल् सेल्लाक् ।।
पोरु'दिये निर्कु भूमि पुगलोंडु कीर्ति पोगि।
परंदेंड्रु मवर्ग नींगा पगै वरु' पनिवर् कंडाय् ।।४१८।।

अर्थ—इसलिए चार प्रकार के दान देना, बारह प्रकार के अन्तरंग बहिरग तप करना, भगवान की पूजा अभिषेक करना यह शुभ परिणाम को देने वाले है। और पुण्य से ही चक्रवर्तीपद प्राप्त होता है। यह पुण्य क्षणिक है और संसार के लिये कारण है। जब तक यह पुण्य रूपी लक्ष्मी है, तब तक प्राणी आनन्द मनाता है। पुण्य की समाप्ति पर जितना वैभव सुख शाति मिली हुई है, उनका नाश हो जाता है। जब तक पुण्य है, तब तक मित्र बांधव सब अपने हैं। पुण्य के समाप्त होते ही मित्र भी शत्रु बन जाते है। यह सब पुण्य का प्रभाव है ॥४१८॥

वेळ्कैयुं वेगुळि तानुं वेंचलु मन् सोलार् मेर् ।
ट्राक्षियु मुदल मन्नत्तिरुविनै तवरुशैयुं ॥
सूक्षियुं पेरुमै तानु मुर्यचियु ममैच्चुमादि ।
माक्षियै सैदु मन्नर् सेल्वत्तै वळर्क्कु मेंड्रान् ॥४१६॥

अर्थ—अधिक आशा करना, अति लोभ करना, कठोर शब्द बोलना, अति क्रोध करना, अपनी स्त्री पर अधिक स्नेह करना आदि करने से राजा की सपत्ति नष्ट हो जाती है। जिस प्रकार सत्यधर राजा ने अपनी स्त्री विजया रानी से अधिक मोह करने से अपने राज्य को नष्ट कर दिया। क्षत्र चूडामणि मे लिखाहै :—

पुनरैच्छदयं दातुं, काष्ठाङ्गाराय काश्यपीम् ।
अविचारितरम्यं हि, रागांधाना विचेष्टितम् ॥१३॥

विषयो मे मोहित जन कर्तव्याकर्तव्य का विचार किये विना ही स्वकृत कार्य को अच्छा मानते हैं। अतएव सत्यधर ने विषयासक्त हो पूर्वापर विशेष विचार किये विना ही काष्टाङ्गार को राज्य देने का दृढ निश्चय किया। और भी कहा है—

परस्पराविरोधेन, त्रिवर्गो यदि सेव्यते ।
अनर्गलमत: सौख्यमपवर्गोऽप्यनुक्रमात् ॥१६॥

जो मनुष्य धर्म, अर्थ, और काम पुरुपार्थ को यथा समय एक दूसरे के विरोध रहित सेवन करता है, वह निर्वाध सुख को पाता है और परम्परा से मोक्ष भी पा लेता है ॥४१६॥

इनैयन् पलवुं सोल्लि येळिन् मुडि तंविवकोंडु ।
कनै कळ लरुसर् सूड कावलन् पोगि येंद ॥
मुनिवरन् शरण मूळ्गि मुडि मुवत् ट्रुरंदु निड्रान् ।
शिनै मिसै येनियै नीत्त सेरिद कर्प गत्तै योत्तान् ॥४२०॥

अर्थ—इस प्रकार राजा सिंहसेन अपने भ्राता पूर्णचन्द्र को राजतत्र के विषयों की जानकारी कराके राज्य सम्हला कर महाभिषेक करके राज्यपद दिया और वहा से निकलकर पूर्व मे पूर्णचन्द्र मुनिराज द्वारा दिये हुए उपदेश के अनुसार जिन दीक्षा ग्रहण की ॥४२०॥

पनयिसै मनित्तोल् नंजु परिंद दोर् फरिणयैप्पोल ।
मरिणमुडि याडैं कुंजि मनत्तिडै मासु नीकि ।।
गुरण मरिण इलक्क मेन्बत्तीरि रंड रिणदु कोमान् ।
पनिवि नाल् शील मालै पदिनेन्नारिरं दरित्तान् ।।४२१।।

अर्थ—जिस प्रकार सर्प अपने मुख के रत्न को और अपने दातो मे रहने वाले विष को छोडता है, उसी प्रकार राजा सिंहचन्द्र ने अपने राज्य चिन्ह वस्त्राभूषरण आदि का मन पूर्वक त्याग करके पचमुष्टि केशलोच किया और अतरग बहिरग परिग्रहो का त्याग किया। अठारह हजार शीलदोषो मन वचन काय पूर्वक त्याग कर चौरासी हजार उत्तरगुरणो की वृद्धि करते हुए वह सिंहचन्द्र मुनि तपश्चररण करने लगे ।।४२१।।

दयावेनुं तय्यलाळै सालवुं सेरिंदु तन्क ।
नुशाविनु मुरुदि त्तोळ नुडन् पुरणरं्दुरक्क मेन्नु ।।
मयाल् सेय्यु मडंदै तन्नै मनत्तग दगट्रि मान्बि ।
नया उइर् तिरुवकं वैत्त नरुंतव कोडियै यन्नल् ।।४२२।।

अर्थ—जीव दया रूपी स्त्री के साथ मिलकर, मन शोधन रूपी स्नेह से युक्त निद्रा रूपी रस्सी को त्याग कर वह सिंहचन्द्र मुनि तपरूपी स्त्री के साथ मग्न होकर तपश्चररण करने लगे । क्योकि ससार मे सभी व्यर्थ है । कहा भी है:—

"दारा पुत्रा नरारणा परिजननिकरो बधु वर्गप्रियाश्च ।
माता भ्राता श्वसुर कुल बल भोग-भृत्यादिशस्त्र ।।
विद्यारूपं विमल-वपुराधावन मान तेज: ।
सर्वं व्यर्थं मररणसमये धर्म एको सहाय: ।।

स्त्री, पुत्र, पुरुष, परिजन, माता, भ्राता, श्वसुर, कुल, वल, भोग, भाई, वधु, शस्त्र, विद्या, रूप, सुन्दर शरीर, कीर्ति, मान, तेज यह सव मररण समय मे व्यर्थ है । धर्म ही एक सहाई है । इस प्रकार विचार करके इनको व्यर्थ समझ कर वह सिंहचन्द्र मुनिराज सच्चे आत्म सुख मे मग्न हो जाते हैं । कहा है:—

धैर्य यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी ।
सत्य सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मन –संयम: ।।
शय्या भूमितल दिशोऽपि वसन ज्ञानामृत भोजन–
मेते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद्भय योगिन: ।।

अर्थ—जिनका धैर्य पिता है, क्षमा माता है, शाति रूपी चिर स्थायी स्त्री है, सत्य

रूपी पुत्र है, दया जिनकी भगिनी है, मन का संयम भाई है, भूमि तले जिनकी शय्या है, दिशा रूपी वस्त्र है, ज्ञान रूपी भोजन से सदैव तृप्त है, ऐसा जिनके पास शाश्वत कुटुम्ब है; उस योगी के पास भय किस प्रकार रह सकता है। इस प्रकार वे सिंहचन्द्र मुनि अपने आत्मस्वरूप मे मग्न थे ।।४२२।।

विनैगळु कुर्दिच वेळ्कै नीकि मै वसम् वरल् ।
पुरुणै वरु पोरि शेरी पुयिर् कळिवु पोट्र दल् ।।
निनै वन् दोरुक्कमु नेरिविळक्कमु सेयु ।
मनसन तवत्तिनो दरु दवन् पोरु दिनान् ।।४२३।।

अर्थ—कर्म निर्जरा के कारण होने के निमित्त से सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करके, अपने शरीर को आत्मध्यान का साधन हो इस प्रकार शरीर को आत्म साधन मे तपाते हुए, प्राणि सयम और इन्द्रिय सयम को आधीन करने वाले मोक्ष मार्ग के लिये कारण होने वाले बाह्य व अभ्यतर और अनशनादि तप को उत्तरोत्तर तपने लगे ।।४२३।।

पुगा मिगिर् पोरि मुगु मनसनं पोरु डिदिन् ।
नेगा उडंवुडाइन् पडादु नाळ्ग नीदि मादवन् ।।
पुगाविनै सुरुक्क मैयुडंपडु पोरिगळुं ।
मिगाविन विरु वि याव मोदुरिय मेविनान् ।।४२४।।

अर्थ—प्रतिदिन स्वादिष्ट आहार करने से इन्द्रिय मद की वृद्धि होती है, और विषय कषायो की वृद्धि होना कर्मास्रव का कारण है। ऐसा समझकर उत्तरोत्तर उपवास करते हुए शरीर सयम व इन्द्रिय सयम की वृद्धि करने लगे। ऐसा करने से मन आत्मध्यान मे स्थिर होता है। इस प्रकार सिहचन्द्र मुनि आगम के अनुसार एक २ ग्रास आहार मे कम करने लगे और अवमोदर्य तप करना प्रारभ कर दिया ।।४२४।।

इरुत्तल् पोदल् निट्रल् मन्निडै किडत्तलिल्लइर् ।
वरुत्त मैदिडा मै योवु कायगुत्ति मादवन् ।।
तिरप्पिरं शेल् देशकाल भाव मेंल्लै सैदुनुं ।
वृत्ति संख मम् मेनुं विळुत्तवं पोरुदिनान् ।।४२५।।

अर्थ—उठते, बैठने, खडे होते तथा सोते समय पृथ्वी पर चलने वाले सूक्ष्म जीव जतुओं को बाधा न पहुँचे। इस प्रकार जीवो की रक्षा करने के लिये कायगुप्ति सहित वे मुनि प्रवृत्ति करते थे। आहार के समय वह सिहचन्द्र मुनि व्रतपरिसख्यान तथा ईर्यापथ शुद्धि पूर्वक थोरे २ गमन करते थे। इस प्रकार वह मुनि बाह्य तप का पालन करते थे।

भावार्थ—मुनि सिहचन्द्र ने इन्द्रिय सयम और प्राणि सयम दोनो को मन पूर्वक अपने आधीन कर लिया था। जीवों की रक्षा के निमित्त काय गुप्ति द्वारा वे मुनि बाह्य और अभ्य-

तर दोनो प्रकार के तपो को पालते थे। अनशन अवमोदर्य, व्रत परिसख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन और काय क्लेश इस प्रकार छह बाह्य तप और प्रायश्चित्त,विनय, वैयावृत्य स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान यह छह अभ्यतर तप, इस प्रकार बारह तपो को परिपूर्ण पालन करते हुए आत्म-साधना मे लीन रहते थे।

वाह्य और अध्यतर ये तप दो प्रकार के है। दोनो ही तप चरित्र मे अन्तर्भूत हो जाते हैं। अनशनादि वाह्य तप का सबध भोजन प्रभृति बहिर्भूत पदाथो के त्याग से है। इसी प्रकार अंतरग तप भी चारित्र मे अन्तर्भूत है। प्रायश्चित्तादिक अतरग तप के द्वारा सवर और निर्जरा दोनो हो कार्य होते है ॥४२५॥

नवैक्केला मिडमिदेंड्र नावदन् पुलत्तिनिर् ।
सुवै कन्मेवल विट्टर तुरंदु निड्र वट्रिनुं ॥
वुवत्तल् काय्द लिड्रि योत्तु निड्र सित्त मैत्तवन् ।
सुवै परित्याग मागु मादव तोड्रुद्रि नान् ॥४२६॥

अर्थ—सभी पचेन्द्रिय विषयो मे रागद्वेष रहित होकर समता भाव से युक्त वे सिंह-चन्द्र मुनि दुख को उत्पन्न करने वाले, रसनाइन्द्रिय को सुख पहुँचाने वाले रसो का त्याग करके रस परित्याग तप को तपते थे।

भावार्थ—इस प्रकार वे मुनिराज इन्द्रियो के दमन दर्प की हानि, सयम के उपरोध निमित्त घृत तैलादि छह रस अथवा खारा, मीठा, कडुआ, तीखा, कषायला इन छहो रसो का क्रम से त्याग करते हुए रस परित्याग तप का पालन करने लगे ॥४२६॥

कवंद मोरि कूगै पेइ निवंद काडु पाळग ।
सुवदि यानै वाळरि युळुवै निड्रुळन् वनं ॥
कुविदरवु वेंबुलि कुमिरुमाल् वरैमुळै ।
युवंदि राज शीय मुंड्र पोलवे रुरंदनन् ॥४२७॥

अर्थ—भूत प्रेतो के रहने के स्थान, प्राणियो की पीडा रहित स्थान, शून्यागार, गिरिगुफा आदि स्थानो मे तथा सिंह, व्याघ्र ऐसे क्रूर हिसक प्राणियो के रहने के स्थानो मे, पर्वत की चोटी पर ऐसे स्थानो मे रहकर वे मुनि तपस्या व ध्यान करते थे। इस तप को विविक्तशय्यासन नाम का दुर्धर तप कहते है ॥४२७॥

वेनल् वेंबु कान् मलै वेयिन् निलइन् मेवियुम् ।
वान मारि सोरु नान् मरं मुदमं मरुवियुं ॥
ऊनरक्कुं वन् पणि कडर् पुरत्तु वेळिळडै ।
काने यानै पोल मूंड्र काल योगु तागिनान् ॥४२८॥

अरियवा युलगलां विलैइला वरु'कलत् ।
तिरैय मेय्र्यानिदवर् शैगें सोन् मनंगळायिन् ।।
मरियमा शिनै केडुक्कु मद्दिवार मागिय ।
पेरिय यर् मंनकोळ पेरुतवं पोरुदिनान् ।।४२९।।

अर्थ—सिहचन्द्र मुनि गर्मी के दिनो मे पर्वत की चोटी पर, वर्षा काल मे वन मे वृक्ष के नीचे, सर्दी मे नदी के किनारे पर वैठकर तपस्या करते थे। इस प्रकार आगम के अनुसार वह तप करते थे। अलम्य तप, रत्नत्रय साधन करने वाले ऐसे वे सिहचन्द्र मुनि अपने शरीर से सम्पूर्ण मोह त्याग कर अनादि काल से कर्मरूपी शत्रु के दल का नाश करने के लिये मन, वचन, काय से वे कठिन तपश्चरण करते हुए वाह्य और अभ्यंतर तपो मे सदा सर्वथा लीन रहते थे ।।४२८।।४२९।।

पेरर् करिय काक्षि मैयुर्नचि नल्लोळुक्किन्मे ।
लिरप्पैदायै मैमोळि मनत्तळं तिरंजुदल् ।।
शिरप्पुडै यरत्तवर् केदिरेळुच्चि यादित् ।
तिरत्त नाल् विनयंमु शिरंदु मादवम् शेदान् ।।४३०।।

अर्थ—सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सहित तपस्या करने वाले वे सिहचन्द्र मुनि दर्शन विनय, ज्ञान विनय, चारित्र विनय, तप विनय और उपचार विनय इस प्रकार पाच प्रकार के विनय मे युक्त तपस्या करते थे। सम्यक्दर्शन मे शंकादि अतीचार रहित परिणाम करना दर्शन विनय है। ज्ञान मे सशयादि रहित परिणाम करना तथा अष्टागरूप अभ्यास करना ज्ञान विनय हैं। हिसादि परिणाम रहित निरतिचार चारित्र पालने रूप परिणाम करना चारित्र विनय है। तप के भेदो को निर्दोष पालन रूप परिणाम करना तप विनय है। रत्नत्रय के धारक मुनियो के अनुकूल तथा तीर्थादिक का वदन रूप परिणाम करना उपचार विनय है ।।४३०।।

पेरुत्त नोंवु वन् पिनिराळ् पीडै मूविभोग माम् ।
तिरुत्तयेवि नगिळ् ध्यान नखद तोडुड्रिनार् ।।
विरुत्तर् वालर् मेल्लिया ररत्ते मेविनिड्रवर् ।
वरुत्त नीकि योवु वय्या वच्चमु मरुविनान् ।।४३१।।

अर्थ—सिहचन्द्र मुनि बाल, वृद्ध, तथा रोग से पीडित मुनियो की मन पूर्वक वैयावृत्य करने मे परिपक्व थे। इस प्रकार वैयावृत्य के साथ २ दुर्द्धर कायोत्सर्ग तप भी करते थे। इस तपस्या के समय आने वाले बाईस प्रकार के परिषह सहन करते हुए कर्म रूपी शत्रु का नाश करना एव आत्मानुभव का स्वाद लेते थे। वे २२ परिषह इस प्रकार है:—क्षुधा, तृषा, उष्ण, दंशमशक, शीत, नग्नत्व, अरति स्त्री परीषह-परिषह, चर्या निषद्या, शयन, आक्रोश, वध,

याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान तथा अदर्शन परिषह। ॥४३१॥

याकै कनिच्चै निर्को मेळुत्तिन् मेर् पळत्त सोल्लै।
वाकु निड्रु मिळु मच्चोल् वशत्तदां सेवियुमुळ्ळम् ॥
नोकु मप्पोरळिन् मै मै नुगंदेळु देळिवि वट्रै।
याकु नल्लोळुकिर् शाल वरुदं वन् विरुवि शेड्रान् ॥४३२॥

अर्थ—वाचना, पृच्छना धर्मोपदेश देना, अनुप्रेक्षा तथा आम्नाय इस प्रकार पाच प्रकार से स्वाध्याय करने मे वे मुनि तत्पर थे। इन पाच प्रकार के स्वाध्याय करने से मन, वचन और काय स्वाधीन होते हैं। इनमे स्वाधीन होने से पचेन्द्रिय सबधी विषय आधीन होने से यह मन रागद्वेषादि की ओर नही जाता। इसको स्वाध्याय तप कहा है। इस प्रकार वे मुनि पाच प्रकार के तप करने मे मग्न थे ॥४३२॥

अर्त रौतिरत्त शिदै यरवेरिंदु इरै मादिर्।
पेर्त्तु मुत्ति कन् वैक्कुं धरम शुक्किल ध्यान ॥
मोत्तुडनुळ्ळ वैत्ता नुदिरं्दन विनैगळ् पिन्नै।
पार्तिव कुमरन् सिदै परममा मुनिवनानान् ॥४३३॥

अर्थ—आर्तध्यान व रौद्रध्यान के नाश करने वाले धर्मध्यान को एकाग्रचित्त से चिंतन करते समय उनके कर्मरूपी बध शिथिल होने लगे। ऐसे वे मुनि कर्मो की शिथिलता हेतु धर्मध्यान मे निमग्न हो गये ॥४३३॥

वैसित्त मगट्रि ज्ञान काक्षी नल्लोळुक्क पेनि।
मिच्चत्तं वेदनादि यगत्तिन् मेल् विरुप्पै माट्रि ॥
वैयत्तु तन् काय देश मुदर् पुरतन्बु माट्रि।
विच्चित्ति इड्रि सेंड्रान् वित्सर्ग तवत्ति नोड ॥४३४॥

अर्थ—मिथ्यात्व को नाश कर सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को धारण कर स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद ऐसे तीन वेद तथा छह कषाय हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय आदि को वैराग्य भावो से नाश कर आत्मध्यान मे मन को लीन करते हुए अतरग, बहिरग परिग्रह का नाश करके सर्वसघ परित्याग के साथ शरीर के ममत्व का त्याग करके उपशम भावना मे लीन हो गये ॥४३४॥

अडक्कनीरारु शिदै यारिरंडोडु मुंड्रि।
तुडिप्पर परिशै वेल्लुं तोंड्रिय वोळुक्कं तन्नाल् ॥
तड्रुप्पिड्रि युलग मोंड्रिर् ट्रन्नेल्लै विरियुं पोळ्दुं।
वड्रु पडा विपुल मेन्नुं मनपर्यत्तो पेट्रान् ॥४३५॥

अर्थ—तत्पश्चात् पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय यह पांच स्थावर व एक त्रसकाय और स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पांच इन्द्रियाँ और एक मन ये सब मिलकर बारह प्रकार के इन्द्रिय सयम और प्राणि सयमो का पालन करते हुए तथा इनके साथ२ बाईस परीषहो को सहन करते हुए विपुलमति नाम के मन.पर्यय नामक अवधिज्ञान को प्राप्त हुए ।।४३५।।

शीरणि यडक्कं शैदोर् पट्ट्रा काय शैल्लु ।
चारण तन्यै पेट्र् मादवन् शेरिकु नाळुट् ।।
पोरणि यानै वेंदन् पूरचंदिरन् ट्रन् चिंदै ।
वारणि मुलैनार्द वससेंड्र् मयंगु निड्रे ।।४३६।।

अर्थ—तदनतर वह सिहचन्द्र मुनिराज बारह प्रकार के सयम से युक्त सम्पूर्ण परिग्रह को त्यागकर आत्मध्यान मे मग्न होकर असख्यात कर्मो की निर्जरा करने वाले हो गये और आकाश मार्ग से जाते समय उस सिंहपुर नाम के नगर को देखा और उस नगर के राज करने वाले पूर्णचन्द्र राजा को अपनी पटरानी के साथ विषयभोगादि मे मग्न होने का सारा हाल जान लिया ।।४३६।।

इसइन् मेल् सून माऊ मिळय वर् मुलई निब ।
पसैन्न् मासुनमे कन्निन् पुलंगळिर् परंदु वंदु ।।
विसईनाल नाळे विळक्किन् वीळुं विट्टिलुं पोंड्र् वेंदन् ।
इसयुनाळि रायदत्तै मुनियै वादिरेंजि ।।४३७।।

अर्थ—जिस प्रकार अच्छे सगीत तथा वाद्यो में मृग आदि लवलीन होते हैं, उसी प्रकार राजा पूर्णचन्द्र संगीत वाद्यो मे मदमस्त हो रहा था। जैसे पतंग मोह के कारण दीपक मे पडकर अपने प्राण खो देता है, उसी प्रकार राजा पूर्णचन्द्र भोग विलास मे मग्न होकर काल व्यतीत कर रहा था। समय पाकर वह रामदत्ता आर्यिका एक दिन उन चारण ऋद्धिधारी मुनि सिहचन्द्र के पास गई और भक्ति पूर्वक नमस्कार करके बैठ गई ।।४३७।

पुडैय वर मेलिय पोंगु कडैयवर् सेल्वं पोल ।
इडैयदु मेलिय वींगि येळुंदेनै तिरंद कोड्गै ।।
कडैयव रिड रुरत्तं कीळडि यडै वदे पोल् ।
इडैयडि यडय कंडु तुरंद वेम्मिरैव पोट्रि ।।४३८।।

अर्थ—तत्पश्चात् दोनो हाथ जोडकर, जिस प्रकार एक याचक तथा दरिद्री विनय के साथ हाथ जोडकर एक धनी के पास चरणो में पडकर अपनी इच्छा प्रकट करता है उसी प्रकार वह आर्यिका सिहचन्द्र मुनि के चरणो मे नतमस्तक होकर प्रार्थना करने लगी कि हे भगवन् ! राजसपदा, लक्ष्मी, स्त्री, वाहन, सैन्य आदि २ बाहरी विषय तथा पचेंद्रिय विषय

बाह्य परिग्रह आदि को मन, वचन, काय से त्याग कर अत्यन्त घोर सयम भार को धारण कर दुर्द्धर तपश्चरण मे लीन रहने वाले आप ही है। इस कारण मैं आपके चरणो मे नमस्कार करती हूँ ॥४३८॥

कांबेन तिरंडु मंद रुळ्ळत्तौ कनट्र मेंट्रोळ् ।
पाँबिन तुरियै पोल पसै यट्र तिरै यक्कंडुं ॥
तेंब्रलिल् मुळिइनार्दं तिरत्तुळि वेरुतु पोंडु ।
कांबुडै यडवि सेरंद कावल पादम् पोट्रि ॥४३९॥

अर्थ—हे मुनि! आप तरुण पुरुष को अथवा मन को चलायमान करने वाली स्त्री का रूप देखकर उनके गुण व दोषो को भली भाति त्याग कर जगल मे संयम पूर्वक तप करने वाले हो। इसलिए आपको वारम्बार नमस्कार हो ॥४३९॥

पेरिय वर् पादं सेरंद पेदैयर् शिदैपोल ।
करिय मेन् कोदल् कालत्तार् करुप्पोळिय कंडुम् ॥
पुरवलर् सेल्व पार्किर् पुर्पुदं पोलु मेंड्रु ।
मरुविय वरसु नीत्त मादव पादं पोट्रि ॥४४०॥

अर्थ—पवित्र ज्ञान को पाकर अज्ञानी लोगो का पाप नाश होने के समान अपने मस्तक के केश श्वेत होने के पूर्व ही जैसे वर्षा मे अधिक पानी पडने पर पानी का बुलबुला शीघ्र ही नष्ट हो जाता है उसी प्रकार यह बाह्य राजसपत्ति क्षण मे नष्ट होने वाली है, ऐसा जानकर, उसको त्याग कर सयम पूर्वक धर्मध्यान मे लीन होने वाले स्वामी आपको नमस्कार हो ॥४४०॥

एतरुं गुणनै इव्वारेतिय विराम दत्तै ।
पार्तर पगर केट्टु प्रणिदन निरुंदु पिन्नुं ॥
वार्तै युंडिरैव केळुन् मादवत्तिडैय् रेनुं ।
पार्थिव कुमरन् पालदेन मुनि पगर्ग वेंड्रान् ॥४४१॥
मंगल तोळिल्गळ् मुट्रि मणि मुडि कवित्तु वंदु ।
तिगळ् वेन् कुडै नीळर् शीय वासन त्तिरुंदान् ॥
पोंगु सामरै गळ् वीस पोन्मलै कुवडु तन्निर् ।
शिग वेरिंद तोत्तान् शीय मा शेनन् मैदन् ॥४४२॥

अर्थ—इस प्रकार रामदत्ता आर्यिका ने भावभक्ति से स्तुति करके नमस्कार करती हुई एक ओर बैठकर उन मुनिराज से प्रार्थना करने लगी कि हे भगवन्! आपके मुखारविंद से धर्म के चार शब्द सुनाकर मुझे पवित्र कीजिये। इस प्रार्थना को सुनकर उन सिंहचन्द्र मुनिराज ने कुछ धर्मोपदेश दिया। आर्यिका माता एकाग्रचित्त से शात होकर धर्मामृत का

पान करती हुई अत्यन्त तृप्त हुई। और पुनः नमस्कार करके कहने लगी कि हे प्रभो ! मैं कुमार पूर्णचन्द्र के विषय में कुछ पूछना चाहती हूँ। आप दया करके इसका उत्तर मुझे दीजिये। मेरे इस प्रश्न के पूछने में आपके धर्मध्यान मे बाधा तथा अतराय होने से जो कष्ट होगा उसकी मैं क्षमा चाहती हू। आप थोडा सा विषय का प्रतिपादन करे। इस पर मुनिराज ने कहा कि आप किस सबध मे क्या पूछना चाहती हैं कहिये। ॥४४१॥४४२॥

इळंशिग वेट्टै सूळ्‌द इरुं पुलि पोदंग पोर्‌ ।
कळं कंडु मुळुंगुं यानै कावल कुमरर्‌ सूळ्‌ंदार ॥
उळंकोंड वमै चरादि सूळ वंदूर्‌ कोळ्वट्ट ।
तिळन्‌ तिंग ळागि पूर चंदिर निरुंदिट्टाने ॥४४३॥

अर्थ—पुन वह रामदत्ता आर्यिका कहने लगी कि हे गुरुवर ! पूर्णचन्द्र नाम का राजकुमार अपनी दैनिक धार्मिक क्रियाओ से निवृत्त होकर रत्न जडित मुकुट को मस्तक पर धारण करके राज्यसभा मे राज्यगद्दी पर बैठ जाता है। उन पर लगा हुआ रत्नजडित धवल छत्र अत्यन्त शोभायमान होता है। वह पूर्णचन्द्र राजसिहासन पर इस प्रकार बैठता है जैसे मेरु पर्वत की चोटी पर कोई पराक्रमी सिह ही आकर विराजमान हो गया हो ॥४४३॥

कामत्तिरुविन्‌ मंजरियुं कमल तिरुवुं कडलमिर्दु ।
पूमैतळुंद विळंकोडियुं पुनमेन्म यिलु मनै यार्गळ्‌ ॥
वाम कुरुव शिलै कोलि मलर्‌ कन्‌ नंबु तेरिंदुमनम्‌ ।
काम कोमान्‌ विल्लिगळ्‌ पोर्‌ कडिदार मन्नन्‌ पुडैसूळ्‌दार।४४४।

अर्थ—राजा पूर्णचन्द्र के चारो ओर अनेक देशो के राजा महाराजा आकर बैठे थे उस समय वह ऐसा प्रतीत होता था मानो एक बबरी शेर के चारो ओर कई सिंहो ने घेरा डाल रखा हो तथा जैसे चन्द्रमा को चारो तरफ से कई नक्षत्रो ने घेर रखा हो। इसी प्रकार उस सभा मे मंत्रीमंडल, प्रजाजन सभी बैठे हुए थे ॥४४४॥

पानिवर्‌ तरु तिरै कोंडु पैबोना ।
लार्त्तिपि मन्निनै येपिर्द सेप्पेन ॥
वार्‌ कडं कामुलैयार्‌ मगळ्‌चिर्‌ ।
पोर्‌ कडा यानै यान्‌ पुरिंदु सेल्नाळ्‌ ॥४४५॥

अर्थ—राज्यसभा ऐसी शोभायमान दिख रही थी, मानो सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र की सभा मे इन्द्र, इन्द्राणिया, देव देविया, अप्सरा आदि २ ने सौधर्म कल्प के इन्द्र को चारो तरफ से घेर रखा हो। वह पूर्णचन्द्र रति, लक्ष्मी, धन, धान्य आदि २ से अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे ॥४४५॥

कन्मिसै यवनै यान् कंडु कावल ।
विन्मिशै इन्बमुं वेंदर् सेल्वमुं ।।
पुण्णिय मिलादवर्किल्लै पूमग ।
ळेण्णव दुस् सेयाळेंड्रि यंबिनेन् ।।४४६।।

अर्थ—उस राज्यसभा मे महाराजा पूर्णचन्द्र को अनेक देशो के आये हुए राजा लोग आकर अनेक प्रकार की भेट अर्पण करते है और उस भेट को वहां का भडारी (खजान्ची) उठाकर अपने खजाने मे रखता है।

राज्यसभा समाप्त होने के पश्चात् राजा पूर्णचन्द्र रनवास मे पधार जाते हैं और सदैव अपनी रानी के साथ हास्य विनोद आदि विषय भोगो में लीन रहते हैं। वे एक समय भी रिक्त नही रहते। हमेशा काम भोग के विषय मे मग्न रहते हैं। विषय भोग मे मग्न रहने वाले प्राणी को कुछ नही सुहाता है न उसमे कोई विवेक और गुण ही रहता है।

विषयासक्तचित्ताना गुणः को वा न नश्यति ।
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजात्य न सत्यवाक् ।।

भावार्थ—जो मनुष्य विषय भोग मे आसक्त हो जाता है उसके प्राय. सभी गुणों की इतिश्री हो जाती है। अर्थात् ऐसे मनुष्यो मे विद्वत्ता, मनुष्यता, कुलीनता और सभ्यता आदि एक भी गुण नही रहता। इसी प्रकार पूर्णचन्द्र विषयभोगो मे आसक्त रहते थे।

पराराधनजाद् दैन्यात् पैशुन्यात् परिवादतः ।
पराभवात्किमन्येभ्यो न बिभेति हि कामुकः ।।

भावार्थ—जो मनुष्य विषय भोगो मे आसक्त हो जाता है, वह उसके कारण होने वाली दरिद्रता, चुगली, बदनामी और अपमान आदि वचन कहने वाले मनुष्यो की परवाह नही करता। इसी प्रकार पूर्णचन्द्र भी अपनी बुराइयो की परवाह नही करते थे और दिन-ब-दिन कामवासनाओ मे विषयासक्त होते जा रहे थे। और भी कहा है:—

पाकं त्यागं विवेक च, वैभव मानितामपि ।
कामार्ताः खलु मुञ्चति, किमन्यै स्वञ्च जीवितं ।।

भावार्थ—कामासक्त प्राणी भोजन, दान, विवेक, धन, दौलत और बडप्पन आदि का जरा भी विचार नही करते। और तो क्या ? भोग विलास के पीछे वे अपनी जान पर भी पानी फेर देते है। इस प्रकार वे पूर्णचन्द्र भी इन बातो पर कोई ध्यान नही दे रहे थे। उनका सारा समय विषय भोगो मे व्यतीत होता था।

वह रामदत्ता माता आर्यिका कहने लगी कि एक दिन मैने उस पूर्णचन्द्र के राज-महल मे जाकर उनसे धर्म की बाते कहने की भावना करके कहा कि हे राजकुमार ! देवलोक

के इन्द्रिय विषय सुख और इस लोक मे दिखने वाले राजसपत्ति, यह वैभव सुख, स्त्रिया व भोग सामग्री यह सभी पूर्व जन्म के पुण्य सचय बिना इस लोक मे प्राप्त नही होती है। जिन प्राणियो ने पुण्य सचय किया है उन्ही को प्राप्त होती है। जिन्होने पुण्य का सचय नही किया है उनको राज्य सभोग आदि सुख नहीं मिलता है। जिस मनुष्य के हृदय मे विषय वासना बैठी हुई है, उनको मोक्ष लक्ष्मी स्पर्श नही करती। ४४६॥

उरुवमु ळगु नल्लोर्ळिय कीर्तियुं।
सेरु विडै वेल्वल तिरलुं सिंदै सै॥
पोरुळवैं वरुदलुं भोगमुम् नल्ल।
तिरु वुडै येरत्तदु सैगैयंड्रनन् ॥४४७॥

अर्थ—हे मुनिराज! दूसरी बात इस सबध मे मुझे यह कहना है कि सुन्दर शरीर, रूप, लावण्य, राज्यसपदा तथा युद्ध मे शत्रुओ को जीतने की सामर्थ्य पराक्रम आदि यह सभी प्राप्त करने के लिए एक जैनधर्म ही कारण है॥४४७॥

निलत्तिडै येंकुरं वित्तै नीट्रिलै।
मलै तलै मळैइला तारु तानुवरा॥
कुलत्तिडै इंबमु मिल्लै पुन्नियम्।
तलत्तलैवर सेयाद वर्कट् कॆंड्रनन् ॥४४८॥

अर्थ—भूमि मे बीज बोए बिना अकुर की प्राप्ति नही होती है। पर्वत के ऊपर यदि पानी की वर्षा न हो तो ऊपर से झरता हुआ पानी तालाब व कुओ मे नही आता है। उसी प्रकार पुण्य के कारण होने वाले व्रत, नियम, अनुष्ठान, पूजा आदि किये बिना इस मानव को उस पचेन्द्रिय सुख की प्राप्ति नही होती है। इस प्रकार मैंने पूर्णचन्द्र राजकुमार को उपदेश द्वारा समझाया था॥४४८॥

कारण मिल्लये विल्लै कार्य।
पोरणि वेलिनाय मुन्सै मुण्णियम्॥
कारण माग नीरुडुत्त कन्नियुं।
शीरणि सेल्ववुं शॆरिद उन्नये ॥४४९॥

अर्थ—हे पूर्णचद्र! कारण विना कार्य की सिद्धि नही हो सकती। वैसे ही पूर्व पुण्य के बिना सद्गुण, सद्बुद्धि भी नहीं मिलती है। यह सारा वैभव आपको पुण्य द्वारा प्राप्त हुआ है। अब मनुष्य जन्म का सार्थकपना यही है कि आप भोग मे रत न रहकर शरीर से आगे के लिए धर्म साधन मे उपयोग कर लो यही मनुष्य जन्म का सार है। इस प्रकार उस रामदत्ता आर्यिका ने राजकुमार को धर्म-मार्ग पर चलने का उपदेश दिया॥४४९॥

मण्णिन् मेल् मट्रिद सेल्व मेल्वर ।
वेण्णि नी पुण्णिय मींड सैगन ।।
पुन्नियन् मेल् पट्टवेल् पोल् वच्चोलै ।
येन्निडा विगळ्दव नेळुंदु पोइनान् ।।४५०।।

अर्थ—यह सभी राज्य वैभव आदि पुण्य के प्रताप से प्राप्त होते है। यदि तुम आगे चलकर इससे भी अधिक सपत्ति वैभव को प्राप्त करने की इच्छा रखते हो तो व्रत अनुष्ठान आदि धारण करो और उन ही के अनुसार तुमको नियम पूर्वक चलना चाहिये। और शक्ति के अनुसार व्रत, पूजा, उद्यापन करना चाहिये। इस प्रकार मैंने पूर्णचद्र को समझाया और धर्म मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। इन बातो को सुनकर पूर्णचन्द्र को जिस प्रकार बिच्छू काटने से वेदना होती है उसी प्रकार मेरा उपदेश उनको बुरा लगा और मेरी बात को न मानकर तिरस्कार किया और वह उठकर चला गया ।।४५०।।

पुलंगन् मेल् पुरिदळु पोरगळोंबिये ।
विलंगु पेलि यवन् वीडु पोगुमो ।।
इलंगु शेंबोन् नेरलिरैव नल्लरत् ।
तलंगल् वेळानव नडयु मोसोलाय् ।।४५१।।

अर्थ—वह पूर्णचन्द्र पचेद्रिय सुख में मग्न होकर तिर्यंच गति मे पडकर नाश को प्राप्त होगा। इनका जीवन सुधरना अत्यत कठिन है। मैंने ऐसा ही समझा है। अत वीतराग भगवत के द्वारा कहे हुए धर्म को वह स्वीकार करेगा या नही अथवा पशु के समान ही खा पीकर व्यर्थ ही अपने जीवन को बिताएगा ? इस सबध मे आप कहे। रामदत्ता आर्यिका के वचनो को सुनकर सिंहचन्द्र मुनि अवधिज्ञान व मन पर्यय ज्ञान द्वारा जानकर कहने लगे ।। ४५१ ।।

मादवि युरैत्त वेल्ला मादवन् मनत्तौ नोकुं ।
पोदि ळुनर्दत्तौ मुरवलन् पुरिदु कोळ्ळुं ।।
यादु नी कवल वेंडा मदनुक्के येतुवाग ।
ओदु मिक्कदयै केट्टु नी यवर् कुरैक्क वेंड्रान् ।।४५२।।

अर्थ—हे माता ! सुनो ! जैन धर्म को पूर्णचद्र अवश्य ग्रहण करेगा। इसके बारे मे कोई सदेह मत करो। उसको सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी। किस कारण से उसको सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी उसको दृष्टात द्वारा समझाता हू ।।४५२।।

अडकत्तौ पोदिं दुइर्कनरुळि नैयूरियारि ।
तोडक्कयु मुडिव मोत्तु तोडुत्त दोर् मपमं तन्नै ।।

येडुत्त् ुड नाट्रि वार् पोन् ट्रिदत्तै यव्वुयिर् कुं माकुं ।
वडुप्परि दिरु'न माधव नुरंवक कुट्रान् ।।४५३।।

अर्थ—वे मुनि सम्यक्त्व युक्त सब जीवो मे दया भाव रखने वाले पक्षपात रहित जीवो को कल्याण का मार्ग बताने वाले अठारह दोष रहित अर्हंत भगवान के वचनो को कहने की सामर्थ्य रखने वाले थे। उन मुनिराज ने तब पूर्णचन्द्र के पूर्वभव का वृत्तात कहना प्रारंभ किया ।।४५३।।

इस प्रकार पूर्णचन्द्र का राज्य परिपालन का विवेचन करने वाला चौथा अधिकार समाप्त हुआ।

॥ पंचम अधिकार ॥

(विद्युद्द्ंष्टा, रामदत्ता, पूर्णचन्द्र व सिंहसेन का स्वर्गवास जाना)

वार्सनिड् राद सोलै मळैयेन मदुकळ् पंदु ।
मूसुतेन् मुळंग मंजै मुगिलन वगवि मुत्तिन ॥
रूसला मलंगं लार् पोट्टोडंगीय नडंगळोवाक् ।
कोषल येंव तुंडी कुवलयं पुगळु नाडे ॥४५४॥

अर्थ—अत्यत सुगन्ध से भरे हुए पुष्पो के वन मे जिस प्रकार खिले हुए पुष्प के अन्दर भ्रमर मग्न होकर सुगध रस का रसास्वादान करता उडता रहता है और उन भ्रमरो के अत्यन्त मधुर शब्द सुनकर मयूर आदि आनन्द से नृत्य करते हैं तथा सुन्दर स्त्रिया जिस प्रकार आनन्द पूर्वक नृत्य करती हैं ऐसा सभी लोगो के द्वारा प्रशसनीय महा रमणीक कौशल नाम का देश था। उस सर्व सम्पत्ति से युक्त प्रसिद्ध कौशल देश मे तिलक रूप के समान रहने वाला तथा वहा के अच्छे २ गोपुरो से युक्त महल, अनेक पडित विद्वानो से युक्त, वृद्ध ब्राह्मणो से भरपूर वहा वृद्ध नाम का ग्राम था। उस ग्राम मे मृगायन नाम का अति सुन्दर क्षमा धारण करने वाला एक ब्राह्मण रहता था ॥४५४॥

तिरुत्तगु नाडि दर्कुत् तिलद माय् तिगळ्ंडुं सेंड्रार् ।
वरुत्तंतीर् माड मूदूर् मरैयव रुरैयुमांड ॥
विरुत्त नगिरामन् तन्नुळ् मिरुगायन नेंड्रु मिक्का ।
नोरुत्तनं कुळनर्शांति युरुवु कोंड नय्य निरान् ॥४५५॥

अर्थ—अत्यन्त सुन्दर मृग के समान चालवाली, गुणवान मदुरा नाम की उनकी स्त्री थी। जैसे नख व अगुली एक साथ ही रहते हैं वैसे ही वे दोनो दम्पत्ति साथ २ रहते थे। उस मदुरा की दातो की पक्ति अनार के दानो के समान थी तथा होठ लाल परवल के समान सुर्ख थे। उनकी आखे हरिणी की आखो के समान और भृकुटी धनुष के समान थी। इन दोनो के सुलक्षण वाली एक वारुणी नाम की कन्या थी ॥४५५॥

अदिर् पड नडत्तलिल्ला ळवन् मनैकिळैत्ति यन् सोल् ।
मदुरै येनंड्रोरैक पट्टाळ् मगळुं वारुणिया मुत्तिन् ॥
कदिर् नगै करुन् कट्शौवाय् काल् परं देळ्ंदु पोन्निन् ।
पिदिर् परंदिरुंद कौंगै पिनैयना लोरुत्ति यानाळ् ॥४५६॥

अर्थ—जिस प्रकार सूर्यास्त होते ही कमल निस्तेज हो जाते है, उसी प्रकार कारण पाकर

वह मृगायन ब्राह्मण दुख से पीडित होकर मरण को प्राप्त हुआ। वह मदुरा अपने पति के मर जाने से महान् दुखी हुई। उस मृगायन नामक ब्राह्मण ने मरकर अयोध्या मे अतिवल नामक राजा की पटरानी सुमति के गर्भ मे जाकर पुत्री रूप मे जन्म लिया ॥४५६॥

कदिर् मरै पुळुदिर् कांडू कमलमुं पोल् ।
मदुरैयुं मगळुं वाड मरैय्यवन् मरित्तु पोगि ॥
यदिर् वरु पिरवि इल्लारिडैयरा वयोद्दि याळ् ।
मति वलन् ट्रनवकु देवि सुमातिक्कुमरिवे यानान् ॥४५७॥
इरनिय वदियेंवाळ् पेरिळमईलनैय सायल् ।
वरिशिलै मुरुवच्चीवाय् वल्लिदान् वळर् द पिन्नै ॥
तारणिमे लरस रिल्लाम् तैय्यलै तरुग वेन्न ।
सुरमै नाडुडैय तोंड्र् रिन् पुयम् तुन्नु वित्तार ॥४५८॥

अर्थ—वह कन्या शनै. २ वडी होने लगी और वढते २ मोर के इधर उधर फुदकने के समान किशोर अवस्था में आई। उसकी भृकुटी धनुष के समान, आखे कमल के पत्ते के समान दीखने लगी। उस कन्या का नाम हिरणवती रखा गया। उसकी तरुणावस्था होने पर उसके सौंदर्य व रूप को देखकर अनेक राजकुमार उसके साथ लग्न करने को आये। तदनतर अवसर पाकर सुरम्य देश के अधिपति पूर्णचन्द्र के साथ उसका विवाह सस्कार कर दिया गया ॥४५७॥४५८॥

पोदन पुरत्तु वेंदन् पूरचंदिरनुं तोगै ।
मादनं पुनर्ंदु वंद विबत्त् मयंगु नाळुद् ॥
कादलान् मधुरेयेंद कावलन् ट्रेवितन् बान् ।
मादराळुरुत्ति यानान् मट्रवनी कडाये ॥४५९॥

अर्थ—उस सुरम्य देश को पोदनपुर भी कहते हैं। विवाह के पश्चात् वह पूर्णचंद्र अपनी रानी के साथ विषय भोगो मे सदा लीन रहता था। कालवश उस ब्राह्मण मृगायन की स्त्री मदुरा मर कर पूर्णचन्द्र की स्त्री हिरणवती के गर्भ मे आकर कन्या उत्पन्न हुई। वह जीव कौनसा है। यदि तू प्रश्न करेगी तो वह जीव तू ही है ॥४५९॥

अरुंतव नरुळि नालप्प भद्दिर भित्तिरंट्रान् ।
ट्रिरु दिय गुणत्तु निन् पाल् शीय चंदिर निंड्रानेन् ॥
वरुंदु नुन्निडै ईनाळौवारुणि वंदुन् कादर् ।
पोर्णदिय पुदल्व नाय पूरचंदिर नेंड्रानाळ् ॥४६०॥

अर्थ—पूर्वभव मे वरदत्त मुनिराज के उपदेश के प्रभाव से मैंने (सिंहचंद्र) सुगति प्राप्ति के अनन्तर आपके (आर्यिका रामदत्ता) गर्भ से जन्म लिया। मेरा पूर्वभव भद्रदत्त बणिक नाम का जीव था। मेरे जन्म होने के बाद आपने सस्कार सहित मेरा नाम सिंहचन्द्र रखा। और पूर्वभव मे वारुणी नाम की जो ब्राह्मण पुत्री थी उसके जीव ने तुम्हारे गर्भ मे आकर पूर्णचन्द्र नाम का पुत्र होकर जन्म लिया ।।४६०।।

आदलावन् कनिगां ।
कादलै यायिनाय्नी ।।
पोदुला मलग लानुं ।
कोदिला गुणत्त नाने ।।४६१।।

अर्थ—इस कारण पूर्वभव के सस्कार से तुम्हारे प्रति हमारा प्रेम अधिक हो गया है। इस प्रकार इसी उपदेश से उनको सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी। क्योकि पूर्वजन्म के सस्कार से सारी बाते प्राप्त होती हैं। मोह कदमूल के समान है। बार २ इसी प्रेम के कारण किसी भी पर्याय मे पहुँचे, एक दूसरे का सबध होकर प्रेम का कारण बन ही जाता है। इस कारण है आर्यिका माता ! पूर्व जन्म के मोह का ही सस्कार है। इसलिये पूर्णचन्द्र को अवश्य सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी ।।४६१।।

विनैयेनु कुयव नम्मै वेंदुरु वियट्रल् कंडाय् ।
अनगना मुरुवस् तन्नै पेन्नुरु वाकियेंगे ।।
मनवियै मगळु माकि मगळये मैंद नाकि ।
निनैविनाल् मुडित्तु निड्रार् नीदियार् कडक्क वल्लार् ।४६२।

अर्थ-इस नाम कर्म से जिस प्रकार कुभकार मिट्टी के बरतन को अपनी भावनाओ के अनुसार छोटा बडा बनाता है, उसी प्रकार मनुष्य शुभाशुभ भावो के अनुसार अपनी पर्याय धारण कर लेता है। पूर्व जन्म के सस्कार से पुत्र, माता, भगिनी, भाई, बधु, पिता, पिता से पुत्र, पुत्र से पिता, माता से पुत्री, पुत्री से माता इस प्रकार शुभाशुभ अर्थात् मोह कर्म के वश जीव अनेक विचित्र पर्यायो को धारण कर लेता है। इसी तरह ससार मे जितने प्राणी हैं वे सब पूर्व जन्म के पाप पुण्य के अनुसार फल वाले होते हैं ।।४६२।।

भद्दिर बाहु वेन्नुं परममा मुनिवन् पारि ।
लुत्तमन् पादं सेंदु इन् पिदा विड्रु मुनिवनागी ।।
इत्तळ मेत्तनिड्र निनक्कु वंदिदत्तै योदि ।
सित्त मै मोळिकन् मूंड्रु सेरिवित्त कुरव नानान् ।४६३।

अर्थ—इस ससार मे उत्तम गुण को धारण किये ऐसे भद्रबाहु मुनि के चरण में शरण गया है ऐसा तुम्हारा पिता है, वह मुनि दीक्षा लेकर निर्दोष चारित्र को प्राप्त कर यहा

आकर मुझे धर्मोपदेश करके मेरी आत्मा को सुख और शांति करने वाला वही मेरा गुरु है। ॥४६३॥

शांतमामदियै शरंदु तैय्यलायुनै पयंदाळ् ।
कांदि तानाई नाळक् कावलन् शीय सेनन् ॥
पांदळान् मरितुपोगि सल्लगी वनत्त् कैमा ।
वेंदनाय् मुनिय वेरिट्टि पेरसनि कोडम् ॥४६४॥

अर्थ—हे आर्यिका माता ! तुझको जन्म देने वाली तुम्हारी माता ने शांतिमति नाम की आर्यिका के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की थी। तुम्हारा पतिदेव राजा सिंहसेन था। वे सर्प के काटने से मरकर सल्लकी नाम के वन मे वलवान हाथी हुए। वह हाथी सभी हाथियो मे वलिष्ठ था। वह गजराज अनेको को कष्ट व उपसर्ग देता था। उस वन के भीलो ने उसका नाम अशनी कोड रखा था। वह हाथी मद से अधिक वलवान होने के कारण निःसंग होकर अकेला निरकुश रूप से घूमा करता था ॥४६४॥

नागांद देन्नै काना मदत्तिनालंदनांगं ।
वेगांद तालिन् मेले वेगुळिया लोडि वंद ॥
तागा सेत्ति यानेळुंदे नंगु वंदेन्नै काना ।
वेगांद नेरि पुक्किन् मै कंडव नोरुव नोत्रो । ४६५॥

अर्थ—पर्वत चोटी पर मैं (सिंहचन्द्र) जिस समय तपस्या कर रहा था, उस समय मुझे देखकर अत्यत क्रोधित होकर वह हाथी मुझे मारने को आया। मुझे चारणऋद्धि प्राप्त थी, इसलिये उसके प्रभाव से मैं आकाश मे जाकर खडा रह गया। उस हाथी ने मुझे चारो ओर देखा और न दीखने के कारण भयभीत होकर वही खडा रह गया ॥४६५॥

वेंकंद कडवा कूट्टोत्तोन्नै मेलोक्किल् पार्क ।
सिगं मा पुरत्त वेंदे शीय मा शेन ओय्नि ॥
इंगु वंदि याने यानाय पावत्तालिदनै विट्टार ।
पोगि वीळ् नरगं तन्निर पोरुंद वो मुयंचि येंड्रेन् ॥४६६॥

अर्थ—उसी समय वह हाथी सहज ही ऊपर की ओर देखने लगा तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि आकाश में कोई यमराज ही मुझे पकडने खडा है। तव उस हाथी को मैंने देखकर ऊपर से कहा कि हे सिंहपुर के राजा अधिपति सुनो ! तुमने असह्य पाप के उदय से जगल मे अशुभ कर्म के उदय से अशुभ तथा निंद्य पशु पर्याय मे जन्म लिया है। तुम्हारा आचरण वर्तमान मे यदि देखा जाय तो मरकर नरक जाने का कार्य कर रहा है ॥४६६॥

अरसनाय् पेरियविव तळुंद कंदड कनाले ।
करिय राय् पेरिय तुंवत्तळुंद विक्कानिर कडेन् ॥

पेरियदोर् पावत्तलिप्पिरवियै पेरिदु मंजिर् ।
तिरुवर मरुवुयान शोय चंदिर नेंड्रिट्टेन् ।।४६७।।

अर्थ—पुन: सिंहचन्द्र मुनि कहते है कि हे गजराज ! तुम पूर्वभव मे राजसभा मे अत्यन्त गौरव पूर्वक राज्यगद्दी पर राज्य करते हुये सिंहसेन नाम के राजा थे। सूर्य का प्रकाश चारो दिशाओ मे चमक रहा हो ऐसा मैंने मेरी आखो से देखा था। अब इस समय मैं देख रहा हूं कि हाथी की पशु पर्याय मे जन्म लिया है। और भीलो के द्वारा तुम कष्ट सहन कर रहे हो। इसलिये भविष्य मे यदि अच्छी गति प्राप्त करने की इच्छा रखते हो तो तुम जैन धर्म को स्वीकार करो। मुनिराज ने उस गजराज को कहा कि पूर्वजन्म मे जो सिंहसेन तुम राजा थे उनका तुम्हारा पुत्र मैं सिंहचन्द्र हूँ ।।४६७।।

येंड्रलु मेळुंद पोद तिरंद वेप्पिरवि तन्नै ।
एंड्रव नरिंदु मूच्चित्तरु वरै पोल वीळं दान् ।।
निंड् दोर् पडिइर् ट्रेरि निरै तवन् पोल निंड्रान् ।
सेंड्र्यां नरत्तौ कूर सेविनै ताळ्तलोडुं ।।४६८।।

इस प्रकार कहते ही उस हाथी को पूर्वभव का जाति स्मरण उत्पन्न हो गया। और वह मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर गया। तदनन्तर वह हाथी थोडी देर मे सचेत होकर खडा हुआ। उस हाथी का यह हाल देखकर पुन, आकाश मे से नीचे आकर उन मुनिराज ने धर्म का उपदेश देना प्रारभ किया और हाथी भक्ति से ध्यान पूर्वक उपदेश सुनने लगा।

मुनि महाराज ने धर्म की महिमा का उपदेश उस हाथी को सुनाते हुए यह कहा कि यह भोग सुख सामग्री अनेक भवो से भोगने मे आ रहे हैं। चक्रवर्ती पद, देवपद आदि कई प्रकार की संपत्ति वैभव का आनन्द लेते २ इसका खूब अनुभव हो गया है। परन्तु इसमे से आज तक क्षण २ मे नष्ट होता हुआ कोई पदार्थ शाश्वत देखने मे नही आया। यह आत्मा अनादि काल से शुभाशुभ कर्म के फल से इस जगत मे तेली के बैल के समान जैसे वह पट्टी बाधे चारो ओर घूमता है उसी प्रकार चारो गतियो मे घूमता फिरता है। हमने इस ओर आजतक लक्ष्य नही दिया। कहा भी है—

भोगानभुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्त वयमेव तप्ता: ।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णानजीर्णा वयमेव जीर्णा: ।

विषयो को हमने नही भोगा, किन्तु विषयो ने हमारा ही भुगतान कर दिया हमने तप को नही तपा, किन्तु तप ने हमे ही तपा डाला। काल का खातमा नही हुआ, किन्तु हमारा ही खातमा हो चला तृष्णा का बुढापा नही आया किन्तु हमारा ही बुढापा आ गया। क्योकि जब तक तृष्णा नही मिटती तब तक मोक्ष नही होता। कहा भी है—

अंग गलित पलित मुंडम्, दशनविहीनं जात तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डम्, तदपि न मुञ्चत्याशा-पिण्डम् ।

अंश शिथिल हो गये है. वुढापे मे सिर के बाल सफेद हो गये हैं मुँह मे दात नही रहे हैं, हाथ मे ली हुई लकडी के समान शरीर कापता है, तो भी मनुष्य आशा रूपी पात्र को नही त्यागता है। इस कारण हे गजराज ! इससे भिन्न आत्म सुख का अनुभव आज तक इस जीव को नही आया । आचार्य कुन्दकुन्द भी कहते हैं:—

सुदपरिचिदाणुभूया सव्वस्स वि कामभोगवध कहा ।
एयत्तस्सु बलभो ण वरिण सुलहो विहत्तस्स ।।

यद्यपि इस समस्त जीव लोक को काम भोग विषय कथा एकत्व के विरुद्ध होने से अत्यन्त विसवाद करने वाले है, आत्मा का महान बुरा करने वाले हैं, कई बार सुनने मे आया है, परिचय व कई बार अनुभव में आ चुका है। यह जीव, लोक-ससार रूपी चक्र के मध्य मे स्थित है जो निरन्तर अनेक वार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव का परावर्तन रूप करने से भ्रमण करता है। समस्त क्षेत्र को एकछत्र राज से वश करने वाले बलवान मोह के द्वारा राग रूपी साकल से बैल की भाति जोता जाता है। वेग से बढे हुए तृष्णा रूपी रोग के सताप से जिसके अन्तरग मे शोक व पीडा हुई है। मृग की तृष्णा के समान श्रात सतप्त होकर इन्द्रियो के विषयो की ओर दौडता है। इतना ही नही इस काम मे आपस मे आचार्यत्व को करता हैं तथा दूसरे को कहकर भी अ गीकार कराता है। इसलिए काम भोग की कथा सब को सुख से प्राप्त होती है। भिन्न आत्मा का जो एकत्व रूप है वह सदा अतरग मे प्रकाशमान है तो भी वह कषायो के साथ एक रूप सरीखा हो रहा है। इसलिए उसका अत्यन्त तिरोभाव अर्थात् वह आच्छादन हो रहा है। इसलिए अपने मे आत्म ज्ञान न होने से अपने आप ने कभी भी स्वय को नही जाना, तथा दूसरे ज्ञानी जनो की सेवा सगति भी नही की इसलिए वह एकत्व की भावना न सुनने मे आई और न कभी अनुभव मे ही आई। यद्यपि वह एकत्व निर्मल भेद ज्ञान होकर प्रकाश मे प्रकट होता है परन्तु पूर्व मे एकत्व भावना के परिचय न होने के कारण महानदुर्लभ है ।।४६८।।

याकयुं किळयु मादि यावयु निंड्र विल्लै ।
वीकिय विनइन् ट्रुंबम् विलक्कला मरनु मिल्लै ।।
तीकदि सारंडु सेल्बुळि तुनयु मिल्लै ।
नीकरुं गुणंगळल्ल निंड्र तानिल्लै यड्रे ।।४६९।।

अर्थ—अत हे गजराज ! तुम मिथ्यात्व और परिग्रह रूपी पिशाच के निमित्त से चारो गतियो मे भ्रमण करते हुए आते समय तुम को उस दुख से रक्षा करने वाला कोई नही है। जितने भी आज तक इस शरीर सवधी पुत्र, मित्र, वंधु, वाधव प्राप्त होते आये हैं, वे सव पाप पुण्य के सगे हैं। परन्तु जव पुण्य सचय समाप्त हो जाता है तो सव अपने २ ठिकाने चले जाते हैं। परन्तु आज तक जितना २ तुमने उनके सरक्षण के लिए पाप किया उस पाप के भोगी तुम ही हुए। कोई भी दूसरा इसको वटा नही सका, न ससार मे तेरा दुख वटाने वाला कोई साथी मिला। इसलिए तेरी रक्षा करने के लिए जैन धर्म ही है। तेरी आत्मा को सुख शाति पहुँचाने वाला तू स्वय ही है और कोई अन्य नही है। कहा भी है:—

सातो शब्दजु बाजते, घर घर होते राग ।
ते मदिर खालो परे, बैठन लागे काग ।।
परदा रहती पदमिनो करती कुल की कान ।
घडो जु पहुँची काल की डेरा हुआ मसान ।।

जिस मकान मे पूर्व मे अनेक प्रकार के गाने गाये जाते थे आज वे खाली पडे है, कौए बैठे हुए हैं । जो महारानी पद्मनी पहले परदे मे रहती थी और कुल की आन के कारण बाहर नही आती थी, वही आज काल के आ जाने के कारण सब के सामने मरघट मे पडी है । कहा है.—

सुबह जो तख्ते शाही पर बडा सजधज के बैठाथा ।
दोपहर के वक्त मे उनका हुआ है बास जगल का ।।

वाताभ्रविभ्रममिद वसुधाधिपत्यम् ।
आपातमात्रमधुरो विषयोपभोगः ।।
प्राणास्तृणाग्रजलबिंदुसमा नराणां ।
धर्मः सखा परमहो परलोकयाने ।।

इस समस्त पृथ्वी तल का आधिपत्य तीव्र वायु के वेग से तितर बितर हुए मेघ के समान अस्थिर है । तथा मानव सबधी सभी विषय भोग आपात मधुर हैं अर्थात् उपभोग काल मे ही यह विषयोपभोग मधुर होते हैं, परिणाम मे नही । तथा मनुष्यो के प्राण तृण के अग्रभाग पर रहने वाले जलबिंदु के समान चचल हैं अर्थात् न जाने ये प्राण पखेरू कब इस तन को छोडकर उड जायेगे । अहो! यह कितने आश्चर्य की बात है कि इन नश्वर सभी वस्तुओ के लिये मनुष्य सारे प्रयत्न करता रहता है । तो भी ये सभी वस्तुए मनुष्य के सदा सहचर नही होती । सर्वदा सहचर हो वहतो एक धर्म ही है,जो परलोक प्रयाणकाल मे भी साथ नही छोडता । अर्थात् परलोक जाने के समय मनुष्यो का एक मात्र सखा धर्म ही होता है । अत परलोक मे सच्ची मित्रता निभाने वाला यह आराधित एक मात्र धर्म ही है जिसे विषयाभिलाषी जन भूले बैठे है ।।४६९।।

उंडुनाम् विट्ट वल्ला पुग्गल मोंड्र मिल्लै ।
पंडु नाम् पिरंदिडाद पदेशमु मुलबि निल्लै ।।
कोंडु नायिंड्र याकै गुण मिला पूदिगंमुय् ।
मंडिना पुलत्तिल् वीळ्दन् विनै वरुं वाई लेंड्रेन् ।।४७०।।

अर्थ—हे गजराज ! अनादि काल से आज तक यह जीव समस्त पुद्गल पर्याय, सपूर्ण योनियो को धारण करता तथा छोडता आया है, कोई भो पर्याय शेष नही रही है । ससार मे जितने भी जीव है इन सबो ने अनादिकाल से समस्त पुद्गल पर्याय को अशुद्ध

परिणामो के द्वारा कर्म, नौकर्म को ग्रहण कर अनुभव न किया हो ऐसी कोई वस्तु नही है। जितने ससार मे प्रदेश हैं उनमे हम जन्म मरण करते आए हैं। ऐसा कोई शरीर नही है जिस को हमने ग्रहण नही किया हो। हमारा यह शरीर महान अशुचिमय है। इसके निमित्त हमारा आत्मा अनेक प्रकार के दुख उठा रहा है। पचेद्रिय विषयो मे लवलीन होने के कारण कर्म परमाणु आकर आस्रव कर रहे हैं और इसी आस्रव के कारण आत्मा इस ससार मे परिभ्रमण कर रही है। और इसी कारण हम अनेक प्रकार से दुखी हो रहे हैं ।।४७०।।

अरियदिवुलगिन् वेंड्रोल् तिरुमोळि यदनै पेट्रार् ।
पेरिय नर क्काक्षि ज्ञान उळुक् मामवट्रि पिन्नै ।।
वरुविनै वाइलेल्ला मडैक्क मुन् मिडैद पांव ।
निरु सेरे सेल्लुमिद नेरियै नी निनैक्क वेंड्रेन् ।।४७१।।

अर्थ—इस लोक मे घाती कर्म को नाश करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए अर्हंत भगवान तथा उनके मुख से निकले हुए परमागम ही अथवा जिनवाणी पर ही श्रद्धा रखना सम्यक्दर्शन है। उसको सशय रहित होकर जानना सम्यक्ज्ञान है। उसको जान कर उसके अनुसार चलना सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार कहे हुए धर्म व्यवहार के अनुसार पालन करनेसे तथा आने वाले अशुभ कर्मो को रोकने के लिए आत्मभावना के द्वारा भक्तिपूर्वक आचरण करने से अनादि काल से आत्मा के अन्दर लगे हुए कर्मों की निर्जरा होती है। यह निर्जरा मोक्षमार्ग के लिए कारण है और यही आगे चलकर मोक्ष का देने वाली है। इसी प्रकार आचरण करना व्यवहार धर्म है।

भावार्थ—जीवादि तत्त्वो पर श्रद्धान रखना सम्यक्दर्शन है। इसी तत्त्व को तथा अनेक प्रकार के स्वरूप को समझ लेने से सम्यक्ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह सब समझ लेने के बाद तत्त्वो के अनुसार चलना सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार बार बार विचार करना तथा आराधना करना यह निश्चय रत्नत्रय के लिये कारणभूत है। इसकी भावना भाने से स्वपर का आत्मघात न हो अर्थात् परपीडा न हो ऐसे रत्नत्रय के प्रकाश मे चलने से आत्मोद्धार और लोकोद्धार होता है। यह रत्नत्रय आत्मा का भूषण तथा प्रकाशक है इसी को मोक्ष मार्ग कहते है। इसी मोक्ष मार्ग मे अपने आत्मा की स्थापना करो। तदनन्तर उसी का ध्यान व भावना करो। आत्मा मे हमेशा विचरण करो। अन्य द्रव्यो मे विचरण मत करो। इस प्रकार ग्र थकार ने कहा है—

आचार्य ने जैन धर्म के सार को समझने के पहले व्यवहार रत्नत्रय को समझने का आदेश दिया है। वह इस प्रकार है:—

"द्रव्य छह हैं, जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। तत्त्व सात है जीव, अजीव, आस्रव, बध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इनमे पाप और पुण्य मिलने से नौ पदार्थ होते हैं। अस्तिकाय पाच हैं–जीवास्तिकाय, अजीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय

और आकाश अस्तिकाय यह पाच पचास्तिकाय हैं। छह द्रव्यो मे से काल द्रव्य को छोडकर शेष पाच द्रव्य बहुप्रदेशो है। यह सब मिलाकर २७ तत्त्व होते हैं। इन पर श्रद्धा रखना व्यवहार सम्यक्दशन है। निश्चयसम्यक्दर्शन के लिये भी ये ही साधन होते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ने अष्ट पाहुड मे गाथा न० ३० मे कहा है:—

"रयणत्तये अलद्धे एव भमिओसि दीहसंसारे।
इय जिणवरेहि भणिय त रयणत्त समायरह ॥

सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को रत्नत्रय कहते है। रत्नत्रय के व्यवहार और निश्चय की अपेक्षा दो भेद है। इनमे से व्यवहार रत्नत्रय तो इस जीव को कई बार प्राप्त हुआ है। परन्तु निश्चय रत्नत्रय की ओर सकेत करते हुए गाथा मे "सुअलद्धो" लिखा गया है, जिसका अर्थ होता है रत्नत्रय के सम्यक् प्रकार से प्राप्त न होने से अर्थात् निश्चय रत्नत्रय की प्राप्ति न होने से यह जीव अनादि ससार मे भटकता रहा है। ऐसा तीर्थंकर परमदेव ने कहा है। अत: हे भव्य प्राणी ! तू उस निश्चय रत्नत्रय का अच्छी तरह आचरण कर अथवा उसका अच्छी तरह आदर कर। पुन: श्लोक ३१ मे कहा है:—

अप्पा अप्पमि रओ सम्माइट्ठी हवेई फुडु जीवो।
जाणइ त सण्णाण चरदिह चारित्तमग्गुत्ति ॥

अर्थ—आत्म-श्रद्धान मे तत्पर जीव निश्चय से सम्यक्दृष्टि है और व्यवहार नय से जीवादि तत्वो का श्रद्धान करने वाला सम्यक्दृष्टि है। जो आत्मा को जानता है वह निश्चय से सम्यक्ज्ञान है, और व्यवहार नय से जो सात तत्त्वो को जानता है वह सम्यक्ज्ञान है। जो आत्मा मे चरण करता है अथात् उसी मे लीन होता है वह निश्चय से चारित्र का मार्ग है, और पाप क्रिया से विरत होना व्यवहार से चारित्र का मार्ग है ॥४७१॥

वेरुवुरु तुंब माक्कुं विलंगिनु ळेळुंदु वीळ्दल् ।
नरगिडै मरुवुं तुंब नरर्केलाम् कुडुंब मोंवन् ॥
मरुविय देव लोगिन् वळुत्तरल् वान वर्कान् ।
दुरुवमाय् निड् तुंबम् सोन्न नगितिकु मेंड्रेन् ॥४७२॥

अर्थ—हे गजराज ! अनादि काल से जीव ने पचेद्रिय के विपय के निमित्त छल कपट करके निदनीय नीच गति मे जन्म लेकर सदैव दु ख ही दु ख पाया और हमेशा भय ही खाया। इस पाप कर्म के उदय से नरक मे रहने वाले जीव को दु ख ही दु ख सहन करना पडता है। मनुष्य गति मे स्त्री, पुत्र, मित्र, वधु आदि के सरक्षण करने की चिन्ता तथा दुख हमेशा बना रहता है। देवलोक मे जन्म लेने से जब देव गति से सुख को छोडकर जाना पडता है उस समय उसको अनेक प्रकार का दुख भोगना पडता है। इस प्रकार चारो गतियो मे कष्ट ही कष्ट भोगना पडता है ॥४७२॥

मनत्तिडै पिरक्कुं तुंबम् वंदोरु मवट्रिन् ट्रुंबम् ।
तनुत्तनिर् पिरक्कुं तुंबम् तानियल तुंब ।।
मेनच्चोल पट्ट नांगु मिया वर्कु मागुमिन्न ।
निगत्तांर पुनरि निड् तीगति नींगु मेंड्रेन् ।।४७३।।

अर्थ—मनुष्य पर्याय प्राप्त करने के वाद सज्ञी जीवो को हमेशा ससार में मन की इच्छा पूर्ण करने की भावना होने पर भी पूर्वजन्म मे उपार्जन किए अशुभ कर्म से अनेक प्रकार के दुखो को भोगना पडता है। शरीर से उत्पन्न होने वाले शारीरिक दुख तथा मानसिक, स्वाभाविक और आगतुक ऐसे चार प्रकार के दुख सभी ससारी जीवो मे पाये जाते हैं। अतः हे गजराज ! तुम इन सभी दुखो पर विचार करके यदि भगवान अर्हत देव के वचनो के अनुसार आचरण करोगे तो यह सासारिक सारे दुख नाश होकर अत मे क्रम २ से मोक्ष की प्राप्ति होगी। ऐसा मुनिराज ने गजराज से कहा ।।४७३।।

विनयत्तोडिरैंजि केळ्कु मुनिय पोंल विळंबि ट्रेल्लाम् ।
मनो वैत्त् वनगि केट्टु वदंगळ् पन्निरेंडु मेवि ।।
पनैयोत्त लडक्कै मानल्लुयुर् गळै पाद कार्कुं ।
मुनियोत्तु करुणै वैत्तौ उईरै युमोंबिर् ट्रंड्रे ।।४७४।।

अर्थ—इस प्रकार मुनिराज के उपदेश को सुनकर वह हाथी अत्यन्त भक्ति पूर्वक जिस प्रकार आचार्य द्वारा धर्म शास्त्र का किसी मुनिराज को उपदेश देने पर वे मन.पूर्वक आचरण करते हैं, उसी प्रकार धर्मोपदेश सुनकर जैसे निर्ग्रंथ मुनि सपूर्ण जीवो पर दया करते हैं उसी प्रकार वह हाथी दयालु होकर संपूर्ण जीवो की रक्षा करने लगा ।।४७४।।

पौ कोलै कळुवु काम पुलै सुत्तोन कळ्ळगट्रि ।
मैयुरै दिशयिनोडु पोरुळि नै वरुंडुमेनि ।।
नैईनु वदंग नैया वगैना नागराजन् ।
शै मा शैय मत्तिर् ट्रवै निड्राल् पोलचंद्रान् ।।४७५।।

अर्थ—हिंसा झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह ऐसे पाच पापो का स्थूल त्याग व देशव्रत, दिग्व्रत और अनर्थदडव्रत इन तीनो व्रतो को तथा भोगोपभोगपरिमाण शिक्षाव्रत आदि का ग्रहण कर अपने शरीर को व्रत उपवास के द्वारा कृश होने पर भी जैसे दूसरी प्रतिमा वाला श्रावक व्रत को निरतिचार पालन करता है उसी प्रकार वह हाथी भी निरतिचार व्रतो का पालन करने लगा ।।४७५।।

उवर्काडु वेरुप्पि नोंड्रि युडंबोडु पुलंगडम् मेर् ।
ट्रुवर पसै नांगु नीगि सोन्न पन्नि रंडु मुन्नि ।।

शेवर् शै गै इं ड्रि सेत्तं शांति ईनन्मै तीयै ।
कुवत्तल् कायविड्रि पक्कं तिग नोन् नेड्रि शंड्रान् ।।४७६।।

अर्थ - इस प्रकार वह गजराज उस व्रत को निरतिचार आचरण करते हुए तथा क्रम से और २ वढाते हुए वैराग्य भावना मे महान तत्पर हो गया और क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायो को त्याग कर शास्त्र मे कहे हुए बारह भावनाओ का चिंतवन करते हुए दुश्चारित्र को त्याग दिया । मन मे होने वाले हर्ष व विषाद को भी त्याग कर व्रत मे अत्यन्त उत्कर्ष परिणाम करने वाला हो गया अर्थात् कभी २ एक २ मास तक अन्न जल को भी ग्रहण नही करता था ।।४७६।।

वारणं तिड्रु विट्र वट्रिय तुवलुं पुल्ल ।
पारणंयाग पार्त करुन् तवं पयिड्रु पान्मैं ।।
कारण मिदुमेंवान् पोर् कालंगळ् पलवु नोट्रु ।
नीरनै पोडुं यूप केशरी नदियैं पुक्कान् ।।४७७।।

अर्थ—इस प्रकार गजराज अपने व्रतो मे तत्पर रहकर सदैव बारह भावनाओ के चिंतवन मे लीन रहता था । उस वन मे अन्य सभी हाथी जो चारा घास खाते थे उस खाए हुए सूखे घा व टुकडो को हो खा खाकर वह हाथी वन मे गुजर करता था । इस प्रकार व्रत को निरतिचार रूप से पालन करने वाले भव्य जीव के समान उस व्रत को वह हाथी निर तिचार पालन करता था । व्रत का आचरण करते समय एक दिन वह गजराज चतुर्दशी का उपवास करके दूसरे दिन रूपकेशरी नाम की नदी पर पानी पीने चला गया ।।४७७।।

उरैयिनु करिय वण्ण मुर्रांतिग नोंबुमुट्रि ।
नरैयिनै पिळिद दे पोल् वट्रीय कायताट्रायिम् ।।
करैयिनै शांर्दु नोरुळ् कैयिनै नीट कैमा ।
निरैयिनु करसन् काल्गळ् निडत्तिडै कुळिप्प निड्रान् ।४७८।

अर्थ—वह उपवास किया हुआ हाथी धीरे २ नदी के पानी मे उतरता है । वहा गहरा कीचड था । शरीर की शिथिलता के कारण उस हाथी के दोनो पाव कीचड मे फस गये और वह ह थी विह्वल हो गया । पानी पीकर जब वह हाथी कीचड मे से पाव उठाकर ऊपर चलने लगा तो उसके पाव कीचड मे फस जाने के कारण वह वही खडा रह गया । ।।४७८।।

अक्कन तमैच्च नाग चमर मायदनै विट्टु ।
कुक्कुड वडिविर् पोबाय् पिरंद वक्कु वदन् काना ।।
मिक्केळुम दनलुं कोपित्तोडि मेलेरि निट्रि ।
चिक्केन कदुव धोरन् कायमुं त्यागं शैदान् ।।४७९।।

अर्थ—महान प्रयत्न करने पर भी उस गजराज के पांव कीचड से वाहर न निकल सके। जब पानी से पांव न निकल सके तो वह वहां ही खडा रह गया। तव पूर्वभव का सिंहसेन राजा का मत्री सत्यघोष का जीव निदान वंघ करके अगद नाम का सर्प हुआ था और वही सर्प मरकर चमरी मृग हुआ और वहां से चयकर कुक्कुड सर्प हुआ। उस समय उस कुक्कुड सर्प की कीचड मे फसे हुए हाथी की ओर सहज ही दृष्टि गई। देखते ही पूर्व जन्म का यह मेरा वैरी है, ऐसा जाति स्मरण हो गया। जाति स्मरण होते ही उस सर्प ने हाथी को काट लिया। काटते ही हाथी को विष चढ गया ॥४७९॥

मलइनै सूळ्द मंजि नंजु वंदेंगुम् सूळ।
निलइ निर् ट्रळर्दलिड्रि निंड्रु मादवन् ट्रन् पादम् ॥
तलैमिशै कोंडु पजं मंदिरं शिंदै शैदु।
निलै इला उडंबु नीगि नेरियिर् सासारं पुक्कान् ॥४८०॥

अर्थ—जिस प्रकार पर्वत मेघ के समूह के घिरने से काला दीखता है, उसी प्रकार उस कुक्कुड सर्प के विष से वह हाथी काला २ दीखने लगा। परन्तु जव प्राण छोडने लगा तव आर्तरौद्रध्यान न करके शुभध्यान से सिंहचन्द्र मुनि का ध्यान करते हुए वारहवे सहस्रार स्वर्ग में जाकर देव हुआ ॥४८०॥

आयुउं गतियु माणु पुव्वियु मक्क दिक्कं।
येय नल्विनैग ळेल्ला युळुंद वट्रोडुम् शेंड्रु ॥
पाय नल्ल मळि मेल्लोर् पार्तिव नंनिदु वंदु।
मेयिनानेळुंद देपोल् विनैयीनान् मुडित्तोळुंदान् ॥४८१॥

अर्थ—वह देव की आयु, गति, नाम कर्म, आनुपूर्वी नाम कर्म सभी उस देव गति योग्य पूर्वजन्म में किए हुए पुण्य कर्म के फल से सहस्रार कल्प मे रहने वाले उत्पादशय्या नाम के सिंहासन में सम्पूर्ण आभूषण से युक्त १६ वर्ष के तरुण वालक के समान उत्पादजन्म को प्राप्त हुआ ॥४८१॥

आनै तन्नुरुवु नींगि इरवि मुर् पिरभै तोंड्रि।
वानत्तु विल्लै पोल वडिवेलां समैंदु मूळ्तिर् ॥
ट्रेनुत्त वलंग लान् पेर् सीदर नेंवदागु।
मानुत्त नोकिनार् तम् वडिक्कनु किलक्क मानान् ॥४८२॥

अर्थ—अशनी कोड नाम का वह हाथी अपनी पर्याय को छोडकर सहस्रार नाम के विमान मे जिस प्रकार आकाश मे इन्द्रधनुष अत्यंत शुभ्र प्रकाशमान दीखता है, उसी प्रकार एक अन्तर्मुहूर्त मे सर्वांग अंगोपांग को प्राप्त होकर अत्यन्त शोभायमान प्रकाशित होने लगा और महान सुन्दर रूप को धारण कर सभी को मोहित करने वाला श्रीधर नाम का देव हो गया ॥४८२॥

मुडियुं कुंडलमुं तोडु मारमुं कुळयुं पूनु ।
कडमुं कळलुं पट्टु कलावमुं वीळु नूलु ।।
मुडनियल् बागि तोंड्रि योळि युमिळं दिलंगु मोनि ।
पडरोळि परप्प मजिर परुदिई निरुंद पोळ्दिन् ।।४८३।।

अर्थ—उस स्वर्ग मे उत्पाद शय्या से जब जन्म लेते हैं तब वहा जन्म लेने वाले किरीट (मुकुट), मोती का हार, कुन्डल, फूलो का हार, हाथ का कुन्डल, पट्टवस्त्र, जरी मखमल के वस्त्र आदि २ सोलह आभूषणो सहित सूर्य के समान प्रकाशित होते हुए उत्पाद शय्या से उठकर इस प्रकार बैठते हैं जिस प्रकार गहरी निद्रा मे सोकर कोई जाग कर बैठा हुआ है। ।।४८३।।

कारण मलर्गळ् यारि कर्पग मरंगळ् वीळं्द ।
वारणि मुरस मेगुम् मुळंग नंदन वनत्तिल् ।।
वेरियुं दातु मेरि मंद मारुरंगळ् वीस् ।
शीरणि कोंगै यारै देवरुं सेंड्रु सेरं्दार् ।।४८४।।

अर्थ—उस देवलोक मे रहने वाले कल्पवृक्षो से जिस प्रकार मेघ की बून्द बरसती है, उसी प्रकार फूल बरसते थे। वहा अनेक प्रकार के भेरी वाद्य आदि बाजे बजते थे। अति सुगन्ध वायु चलती थी। वहा रहने वाले सामान्य देव तथा देविया उस श्रीधर नाम देव की सेवा करने को तैयार हो गये ।।४८४।।

येतिक्कुं पार्ति देन्नो यावरो यान्विनारो ।
सित्ततु किनय देशं यारदो वेंड्रि रुंदु ।।
तत्तुंर पोळ्दि लंद बवत्तै शारं्देळुंद ओदि ।
कैतल पडिगं पोल कंडदु करुदिर् ट्रेल्लाम् ।।४८५।।

अर्थ—वह श्रीधर देव शय्या से उठता है और चारो दिशाओ मे देखकर आश्चर्य चकित होकर विचारता है कि यह कौनसा स्थान है। मैं कहा से आया हू, ऐसा सुन्दर व रमणीय स्थान मैंने कभी नही देखा। ऐसी सुन्दर स्त्रिया कहा से आई। मगल गीत गान हो रहे हैं। ऐसा विचार करते २ उसको भव प्रत्यय नाम का अवधि ज्ञान हो गया। अवधिज्ञान होते ही जैसे हाथ मे प्रत्यक्ष वस्तु स्पष्ट दीखती है उसी प्रकार उसने भव प्रत्यय ज्ञान मे पिछले भव का सारा हाल जानकर समझ लिया ।।४८५।।

दंतियै तुडक्कमाय् वरिंदु यान् मुन्वु शैद ।
मंदमादवत्तिर् पेट्र तुरक्क मंदारं सूळ्द ।।
विंदिर विमान मेन्नै यद्दिक्कु सूळ ओदि ।
वंदु निंड्रैंजुगिड्रा बार् वानवर् तांगलेंड्रान् ।।४८६।।

अर्थ—उस श्रीधर देव ने पूर्वभव मे मैं अशनीकोड हाथी की पर्याय में था। उस पर्याय को त्यागकर इस समय मैं देव पर्याय में हूँ। ऐसा अपने अवधिज्ञान से पूर्वभव को जान लिया। अहो! कितने आश्चर्य की बात है कि पूर्वजन्म में मैंने अल्पव्रत को धारण किया था और उसी व्रत के प्रभाव से आज मैंने देव पर्याय धारण की है। क्या जैन धर्म सामान्य है? केवल अल्पमात्र व्रत धारण करने से मुझे देव पर्याय मिली! जब कोई प्राणी महाव्रतो को पालन करता है तो क्यो न उसको मोक्ष की प्राप्ति होगी। इस प्रकार विचार करके धर्म के प्रभाव से वह अत्यन्त आनन्दित हुआ। वहां की देविया मंदार आदि सुगधित पुष्पो की वर्षा करती हुई उनकी स्तुति कर रही थी।। ४८६ ।।

पाडुवार् मदुर गीतं देविमार् मिन्नुप्पोनिन् ।
राडुवाररंभै यार्गळरिवै पोरिलय तोडु ।।
मूडुतानेळुंद वोसै दुंदुभि योसै पेंड्रु ।
नीडिया तवत्तिया पार्तरिदव निरुंद पोळ्दिल्।।४८७।।

अर्थ—उन देवियो के सुन्दर वाद्य व गीत उस श्रीधर देव के कानो को वहुत सुन्दर लगे। इस प्रकार वे देविया सुन्दर २ वाद्य और गीतों के साथ नृत्य करती थी। कई देवियां उनकी प्रशंसा करती थी। कानो को मधुर सुनाई देने वाले वाजे आदि वज रहे थे। तव उस समय वहां के देव और देवियां कहने लगी कि हे देव! आप उत्कृष्ट आयु तथा रूप सपत्ति आदि को प्राप्त कर इस देव लोक मे रहने के समय तक इस संपत्ति और इन स्त्रियो का उपभोग करके यहां के आनन्द का अनुभव करे। पुनः वहां के सामान्य देवो ने कहा कि आप भिन्न २ स्वर्गों के भिन्न २ सुखो के आनंद का अनुभव करे। आप के द्वारा जो कार्य यहा होना है उस कार्य के लिये हम प्रार्थना करते हैं सो सुनो।।४८७।।

वेंड्रि वयुंतिरु उंपर मायवु ।
मोंड्रि वय्यग मुळ्ळळवुं सेल्ग ।।
येंड्रु सोल्लि इरैजिय वानवर् ।
निड्रु पिन् सेयु नीदिगळोदिनार् ।।४८८।।

अर्थ—हे देव! आप प्रथम त्रिमंजी नाम की वावडी के जल मे स्नान करे और अर्हन भगवान के दर्शन करे। पूजा, अर्चा, भक्ति, स्तुति आदि करे।।४८८।।

मंजनं सयंत्तार् मदिपोन् मुग ।
तम् सोलारदु मुन्न पमरंदु नी ।।
पंच कायं पनित्त पिरानडि ।
कंजलि सेंदमरुदं शिरप्पुन्नि ।।४८९।।

तानिला तवत्तिल् पयनागिय ।
देवर् तन् तोगै सैव दरिंदु पिन् ॥
नावि नोसै नरंवि नेळगुरर् ।
ट्राविलावि लयं पईल् साले कान् ॥४९०॥

अर्थ—वे सामान्य देव श्रीधर से पुनः कहने लगे कि पूर्व जन्म मे आपने व्रतादि का पालन किया था। इसी कारण आप देव गति को प्राप्त हुए हैं। यह सभी को प्राप्त नही हो सकती। भाग्यवान ही को मिल सकती है। आप भाग्यवान है। इसलिये देवगति मिली है। पूजा, स्तुति करने के बाद आप नृत्य मडप मे पधारे। वहा अनेक स्त्रिया देविया नृत्य गान करती हैं उनको देखिए और सुनिए ॥ ४८९ ॥ ४९०॥

पडं कडंदनि ताकिय वल्गुलार् ।
नुडंगु नुन्निडै मोव नुवलरुं ॥
वडंजु मंद वनयुलैइन् पयन् ।
ट्रुडंगु पिन्नेन यट्रवर् सोल्लिनार् ॥४९१॥

अर्थ—हे श्रीधर देव ! जरी के वस्त्र, रत्नो के आभूषण, अनेक प्रकार के रत्नो से जडे हुए अत्यन्त सुन्दर पावो मे पैजनी बाध कर नृत्य करने वाली यहा देविया है। यह आप पर मुग्ध होकर आपको प्रसन्न करने के लिये नृत्य गान कर रही हैं। आप इनको स्वीकार करे। यह देवगति सम्यक्दृष्टि के लिए अच्छी है। किन्तु जो सम्यक्त्व रहित तप व्रत है वह ससार के लिए कारण है। ऐसे व्यक्तियो के लिए कर्म निर्जरा का कारण न होकर ससार का कारण होता है। इसीलिए पूर्वजन्म मे हाथी की पर्याय मे अणुव्रत धारण कर सम्यक्त्व सहित आपने देवगति प्राप्त की है। आप धन्य हैं ॥४९१॥

नीदि कडवार् पेरियो कडा ।
आदलालमरन् नवै सैद पिन् ॥
द्यातियै कडियुं तिरु मालडि ।
पोदु कोंडु पुगळ्ंदु परिणदनन् ॥४९२॥

अर्थ—सद्गुणो को प्राप्त हुए जीव नीति शास्त्रो मे कहे हुए भगवान के वचनो के अनुसार चलकर इस लोक व परलोक के साधन करने के लिए प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार सद्गुण शिरोमणि श्रीधर देव ने पहले कहे अनुसार पूजा, अर्चा, आदि नित्य क्रिया करके अर्हंत देव की स्तुति की ॥४९२॥

आर नडंद विंकानत्तानै पाय् निड्रुन् ।
सरण शरणडंदे निंड्रिदं शासार नानार् ॥

करणमेला वेंड्रनै कंडवर्गळ् काय ।
मरणमिला वीडैदन् मट्रोर् पोरुळु ।।४६३।।

अर्थ–स्तुति करते समय श्रीधर देव भगवान से प्रार्थना करता है कि हे प्रभु ! जिस वन मे सिंह व्याघ्र आदि रहते है, ऐसे सल्लकी नामक वन मे मैंने हाथी की पर्याय को धारण किया था। परन्तु मेरे पूर्व जन्म के भाग्य के उदय मे आने से सिंहचन्द्र मुनि मुझे मिल गये। वे मुनि अपने वचनामृत के अनुसार मुझे भी वही धर्मामृत वचन सुनाकर मेरी आत्मा को जागृत कराया। अर्थात् पच पापो का त्याग कराया। इसी कारण पशु पर्याय को त्यागकर धर्म ध्यान से अब उत्कृष्ट पर्याय को धारण की है। यह आपके वचन की ही शक्ति है जो मैं निंद्य पर्याय को छोडकर देवगति मे आया। अब मन, वचन, काय त्रिगुप्ति से आपको देखकर अति अनुभव मे लीन होकर स्वानुभूति को प्राप्त होकर जन्म मरण को नष्ट करके मोक्ष प्राप्त करना दुर्लभ नही है, बडा सुलभ है। यह इस कारण सुलभ है कि आपके वचनो मे महान शक्ति है ।।४६३।।

निळर्पोल निंड्रुन्नै वंदडैदा याट्रा ।
यळर्पोकि येंद मिला विंवत्तै याकि ।।
वळुत्तरा मुत्तिइन् कन् वैक्कु निन् पोपीद ।
निळर्सेरा माट्रा नेडु वळियै सेल्वार् ।।४६४।।

अर्थ—हे भगवन् ! आपकी छाया के समान हमेशा हमेशा आपके चरण कमल का जाप्य करने वाले जीव इस ससार रूपी समुद्र से तैरकर अत्यन्त सुख को देने वाले मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है। आपकी पूजा, अर्चा, स्तुति, ध्यान करने वाला जीव अधिक दिन ससार मे परिभ्रमण नही करता है ।।४६४।।

कामनै युं कालनै युं वेंड्रुलग मूंड्रि नुक्कुं ।
सेम नेरि अरुळि सेदामरै पुल्लि ।।
पूमुदिरा पिंडि कीळ् पोन्नेइल् लुन् मन्नियनिन् ।
नाम नवि ट्रादार् वीदुलग नन्नारे ।।४६५।।

अर्थ–हे भगवन् ! आप कामदेव रूपी यमराज को जीतकर तीन लोक के प्राणियो को अनन्त सुख उत्पन्न करने वाले, वचनामृत को पिलाकर देवेंद्र चक्रवर्ती पद को देने वाले हैं और देवो के द्वारा निर्माण किये हुए १००८ दल के कमलो मे चार अगुल अधर विराजमान होने वाले हैं। आप हमेशा कभी भी शोक को न उत्पन्न करने वाले अशोक वृक्ष के नीचे विराजने वाले हैं और आप पर पुष्पवृष्टि मेघो की वृन्दो के समान होती रहती है। देव आपकी स्तुति करते हैं, और स्तुति करने मे मोक्ष की प्राप्ति होती है। ऐसे श्रीधर देव ने भगवान की स्तुति करते हुए प्रार्थना की ।।४६५।।

इप्पडित्तु दित्तोगिय पिन्नरे ।
तुप्पडुं तोडै वायवर् तुन्निना ।।

रोप्पिलाद विबत्त् कुळित्तन ।
नेप्पडि तुरक्त्तियल् पोंड्र् येल् ॥४६६॥

अर्थ—इस प्रकार श्रीधर देव अत्यन्त भक्ति पूर्वक पूजा ध्यान करने के पश्चात् वहा से रवाना होकर अपने निवास स्थान पर आया। श्रीधर के अपने स्थान पर आते ही सुशोभित होकर जैसे सुन्दर २ स्त्रिया आती है उसी प्रकार वहा देवागना आई। तब श्रीधर देव, देवागना के साथ हास्य विनोद आदि मे महान मग्न हुआ। उस मग्न होने का विवरण करना अशक्य है ॥४६६॥

देवों के निवास स्थान के पटलों का वर्णन

वंड्रिन् मेल् वैयित्त मुप्पत्तोळ् नांगिरन् ।
दोंड्रिन् मेलोंड्रु मूंड्रु मूंड्रोंबुदु ॥
वड्रु मेलोंड्रु मान् तुर कप्पुरै ।
निंड् मेलुर कीळ् निंड् नीदियाल् ॥४६७॥

अर्थ—स्वर्ग लोक के पटल—क्रम से सौधर्म, ईशान कल्प मे ३२ पटल हैं। सनतकुमार, माहेन्द्र देवो के स्थान मे ७ पटल हैं। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर देवो के स्थान मे ४ पटल हैं। लातव, कापिष्ठ कल्प मे दो पटल है। शुक्र महाशुक्र कल्प मे एक पटल है। शतार सहस्रार मे एक पटल है। आनत, प्राणत कल्प मे दो पटल हैं। आरण, अच्युत कल्प मे ३ पटल है। नवग्रैवेयक स्वर्ग मे ६ पटल हैं। नवानुदिश मे एक पटल है। पचानुत्तर मे एक पटल है। इस प्रकार सौधर्म, ईशान कल्पो मे पटलो की सख्या है ॥४६७॥

आयु का प्रमाण

इरंडु मेळ्नीरंडु नीरेळुमा ।
ईरंडु मेर्संड्रि रुपत्ति रंडैद ॥
तिरंड वट्रिन् मेलोंड्रु सेंड्रायुग ।
मुरंडेळुं कडन् मुप्पत्तु मूंड्रुमे ॥४६८॥

अर्थ—सौधर्म ईशान देव की आयु २ सागर। सनत्कुमार माहेन्द्र देव की ७ सागर। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर देवो की १० सागर। लातव, कापिष्ठ देवो की आयु १६ सागर। शुक्र, महाशुक्र पटल के देवो की आयु १६ सागर। शतार सहस्रार देवो की १८ सागर। आणत, प्राणत देवो की आयु २० सागर। आरण व अच्युत कल्प के देवो की आयु २२ सागर। नवग्रैवेयक कल्प के देवो की २३ से ३१ सागर। नवानुदिश मे रहने वाले की एक एक सागर क्रम से बढती जाती है। अधिक से अधिक ३२ सागर की आयु होती है। नवानुदिश मे रहने वाले जीवो की आयु ३२ सागर होती है। पचानुत्तरस्वर्ग के देवो की आयु ३३ सागर है। इस प्रकार उपरोक्त आयु उत्कृष्ट आयु है ॥४६८॥

कडर् कोराइर तांडु कडंदमिर् ।
तुडंट्र् वेंपसि तीर मनत्तुना ।।
कडकुं नाळ् पदिनैंदु कळित्तुइर् ।
तडक्क मिल्लइन् पत्तर देवरे ।।४९९।।

अर्थ—एक सागर आयु वाले देवो को एक हजार वर्ष के बाद भूख लगती है। वह भूख मानसिक आहार से तृप्त होती है। एक सागर आयु वाले देव १५ दिन मे एक बार श्वासोच्छवास लेते है। और इन्द्रिय विषयभोग का भी अनुभव मनुष्य के समान करते है। ।।४९९।।

देवों के शरीर की ऊंचाई

येळु मुळं मुदर् केळरै वीळदिडै ।
योळि मुळङ् कर्पदुच्चिइन् मूंड्रै ।।
विळु मुळं मरयैदुडन् वीळंडुमे ।
लुळि मुळं मोंड्रनुत्तर त्तोकमे ।।५००।।

अर्थ—सौधर्म, ईशान स्वर्ग के देवो के शरीर की ऊचाई ७ हाथ। सनत्कुमार माहेन्द्र पटल के देवो की ऊचाई ६।। हाथ। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर देवो की ६ हाथ ऊचाई। लातव कापिष्ठ कल्प के देवो की ५।। हाथ। शुक्र महाशुक्र देवो की ५ हाथ। शतार, सहस्रार स्वर्ग मे रहने वाले देवो के शरीर की ऊंचाई ४।। हाथ। आणत, प्राणत स्वर्ग के देवो की ४ हाथ। आरण व अच्युत स्वर्ग के देवो की ऊंचाई ३।। हाथ होती है। हेट्ठिम ग्रैवेयक के हेट्ठिम मज्झिम उवरिम् ऐसे तोनो विमानो के देवों के शरीर की ऊंचाई २½ हाथ। नवानुदिश कल्प के देवो की ऊंचाई १ हाथ। मध्यम ग्रैवेयक के हेट्ठिम मज्झिम उवरिम् विमानो मे २ हाथ है। उवरिम ग्रैवेयक के हेट्ठिम मज्झिम उवरिम विमानो मे १।। हाथ है। उवरिम ग्रैवेयेक स्वर्ग के देवो की ऊंचाई २ हाथ। पचाणुत्तर पटल स्वर्ग के देवो की ऊचाई १ हाथ। इस प्रकार देवों के शरीर की ऊंचाई समझना चाहिये ।।५००।।

सोद मीशानर् तम् मेलिरुवर तम् ।
मोदि मन्नोंड्रि रंडम् मूरैयुरं ।।
नोदिया निलंकीळ् मूंड्र् नाळेदा ।
लोदियाल् मेल मुन्नाल् वरुनर् वेर ।।५०१।।

अर्थ—सौधर्म ईशान स्वर्ग के देव अपनी २ अवधि से तीसरे नरक तक का ज्ञान जानते है। सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग के देव अपने अवधिज्ञान द्वारा दूसरे नरक के ज्ञान जानते है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्ग के देव तथा लातव, कापिष्ठ पटल के देव अवधि से तीसरे नरक तक का ज्ञान जानते है। शुक्र महाशुक्र शतार व सहस्रार इन चार प्रकार के स्वर्ग के

देव चार नरक तक का हाल जानते है। आनत, प्राणत, अच्युत स्वर्ग के देव पाचवे नरक का हाल जानते हैं ।।५०१।।

आर दावदै केवच्च माय् दिडु ।
नीरिलव्विरुवकुं मेळावदाम् ।।
मारिला चव्व सिद्धिइल् वानव ।
रूरिला ओदि नाळिगै युट् कोळुं ।।४०२।।

अर्थ—नव ग्रैवेयक पटल के रहने वाले देव छठे नरक तक का हाल जानते हैं। नवानुदिश पचाणुत्तर नामके स्वर्ग के देव सातवे नरक तक का हाल जानते हैं। सर्वार्थसिद्धि नाम के विमान मे रहने वाले देव त्रस नाडी मे रहने वालो के हालात जानते है ।।५०२।।

मिडंडन् मेनियै तींडरिल् कांडलि ।
नडैयु मिन् सोलिर सिंद इन् मेवलिन् ।।
मडनल्लारिन् वरुं पय नैंदुव ।
रडैवि लोदियिर् सोन्न मुन्नै वरुं ।।५०३।।

अर्थ—सौधर्म और ईशान स्वर्ग के देव कामभोग मनुष्य के समान करते हैं। सनत्कुमार, माहेन्द्र स्वर्ग के देवो के देवियो के स्पर्शन से ही काम वासना की तृप्ति हो जाती है।ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लातव और कापिष्ठ स्वर्ग के देवो की देवियो के देखने से ही कामभोग को लालसा तृप्त होती है। शुक्र, महाशुक्र, शतार सहस्रार नाम के देवो के देवियो के शब्द सुनते ही काम की तृप्ति हो जाती है। आरणत, प्राणत, आरण, अच्युत स्वर्ग के देवो को स्मरण मात्र से ही तृप्ति हो जाती है ।।५०३।।

पल्ल मैंदिन् मेर् पन्निरडांवदै ।
येल्लै याग विरंडि रंडेरिडु ।।
मल्लनाल्वरु केळु मिक्कैम्बत्तौयि ।
पल्ल मान् देवि येर् पर मायुवे ।।५०४।।

अर्थ—उन देवियो के साथ रहने वाली देवियो की आयु ७ पल्य की होती है। सौधर्म कल्प मे रहने वाले देवो की आयु ५ पल्य की होती है। सौधर्म स्वर्ग से ऊपर रहने वाली देवियो की आयु एक एक पल्य बढती जाती है। आरणत, प्राणत, आरण स्वर्ग मे रहने वाले देवो के साथ की देवियो की आयु ७ पल्य होती है। अन्त मे रहने वाले अच्युत स्वर्ग की देवियो की आयु ५ पल्य की होती है ।।५०४।।

मोंगमिन् मुनिवन दिवस् पोलवे ।
तोगयै यनैयवर् तोर्डाच इंड्रिये ।।

सोग मोड्डु रुतुय रिड्रि तानियल् ।
पागु नल्लग मिंदिरत्तवरिंबमे ।।५०५।।

अर्थ-अहमिन्द्र स्वर्ग मे रहने वाले देव मोह रहित रहते है, जैसे साधु का परिणाम शुद्ध रहता है, और काम सेवन से रहित होते हैं। विशुद्ध परिणाम के अनुभव से ही सुख और शाति को पाते है ।।५०५।।

सोदमर शिरुमै जोदिड रुत्तम ।
मोदिय वरै कडलुत्त उत्तमम् ।।
नीदिया निलंकीळ् मेल वर्कु निड्र्दा ।
मेद मि लिडैयन् पलवु मागुमे ।।५०६।।

अर्थ—सौधर्म, ईशान कल्प के देवो की उत्कृष्ट आयु १ पल्य के होती है। नीच जाति के देवो की आयु जैसे सौधर्म, ईशान कल्प के देवो की उत्कृष्ट आयु होती है उसी प्रकार इनकी जघन्य आयुष्य होती है। मध्यम आयु अनेक प्रकार की है ५०६।।

इडुवयरुलगु मदनियल्वि नन् कनच् ।
शदिर मैचासार कर्पत्तिन् वळि ।।
यदिर् पेर ववन रुमत्ति यायुग ।
मधुर नन्मोळि वरुमिब मेविनान् ।।५०७।।

अर्थ—इस प्रकार देवलोक मे रहने वाले देवो की आयु, उनके काम व विषयभोग तथा आयु का क्रम इस प्रकार होता है। वह श्रीधर नाम का देव सहस्रार कल्प मे सूर्यप्रभा नाम के विमान मे मध्यम आयुष्य को प्राप्त करने वाला बारहवे कल्प मे उत्पन्न हुआ। वह देव वचन प्रवीचार नाम के शब्दो से विषय सुख से तृप्त होता था ।।५०७।।

पदिनरु कडन् मिशै पट्टवायुगं ।
पदिनरु वरुडमा इरंग् कडदुना ।।
पदिनरु पदनैनाळ् विट्टुयिर्त्तिर ।
पदिनरु भावनै यारै पाडुमे ।।५०८।

अर्थ—बारहवे स्वर्ग के सुख को अनुभव करने वाले श्रीधर देव की आयु सोलह हजार वर्ष से कुछ अधिक थी। सोलह हजार वर्ष मे वह देव एक बार मानसिक आहार करता था। और आठ महिने मे एक बार श्वास निश्वास लेता था। वह देव सदैव षोडश भावना का चिंतवन किया करता था ।।५०८।।

नालरि मुळ मियल्बा मोर् मातिरै ।
माल्वरै येनुवळ वाय् निनै पुळि ।।
शालवु नेनिय वर् पोल वैंदलु ।
मालुरु मुरुप्पल वागु मेनियान् ।।५०६।।

अर्थ—उस श्रीधर देव की ऊंचाई साढे चार हाथ थी। वह देव विक्रिया ऋद्धि धारक था और प्रति क्षण मे छोटा बडा शरीर तथा रूप को बना लेता था। और उस रूप से सभी को मोहित करता था ।।५०६।।

वास मोरोंजनै निड्रु नारिड्डु ।
देसु मोरोजनै सेंद्रे रित्तुडुं ।।
दूशणि मासैद मेनिइन् गुणम् ।
पेसलां पडियद्दु वंड्रु पोडिनाल् ।।५१०।।

अर्थ—उस श्रीधर देव के शरीर मे अनेक प्रकार के आभूषण कंठहार आदि थे। उनके गले मे पुष्पहार कभी भी नही मुरझाता था। उनके शरीर मे सुगध सदैव आती है और वह सुगध एक योजन तक फैल जाती है। तथा शरीर का प्रकाश भी एक योजन तक पडता है। उस देव का गुण प्रकट करना अशक्य है ।।५१०।।

मुन् सै नल्विनैनान् मुगिलिन् मिन्नना ।
रिन् सै वायव रेंडु कोंगैयर् ।।
वंदिडै सूळ्दिड वनंग वानव ।
रंदमीलिइन् बत्तुळमरन् मेविनान् ।।५११।।

अर्थ—पूर्व जन्म मे किये हुए पुण्य कर्म के उदय से इस प्राणी को स्त्री, पुत्र, धन, सपत्ति आदि वैभव मिलते है। वैसे ही सभी देवो द्वारा पूजनीय चारो ओर से सब के द्वारा नमस्कार करने योग्य आदि२ सारी बाते श्रीधर को पुण्योदय से ही प्राप्त हुई थी। वह श्रीधर देव भोगपभोग मे सानन्दअपना जीवन व्यतीत करता था। नीच भीलो के द्वारा निकृष्ट जगल मे ताडे जाने वाले हाथी को एक दिगम्बर साधु के उपदेश का निमित्त मिलने से पूर्व जन्म का जाति स्मरण होते ही उसने अणुव्रत धारण किया। और उस व्रत को मन वचन मे धारण करने से श्रीधर नाम का देव हो गया। अल्प व्रत की शक्ति क्या सामान्य है ? आज कल के नास्तिक लोग धर्म से च्युत होनेवाले कहते है कि व्रतो की आवश्यकता नही है। यह व्रत तो ससार के कारण हैं। ऐसा कहने वाले इस अल्पव्रत के उदाहरण को यदि भली भांति समझ लें तो विदित होगा कि व्रत का कितना महान महत्व है। व्रत का तिरस्कार करने वाले आज कल के विद्वानो को इस ओर दृष्टिपात करना चाहिये। क्योकि केवल व्रताचरण के भय से व्रत नियमादि का तिरस्कार करके केवल अध्यात्मवाद का पुरुषार्थ करने वाले तथा

मोक्ष की इच्छा करने वालो को व्रत का महत्व क्या है ? इसके समझने की अत्यन्त आवश्यकता है। जैन सिद्धांत मे अनेकात दृष्टि रखी है। एकात नही है। इस कारण एकात अनेकात को भली प्रकार देखा जाय तो जैन धर्म का निचोड मालूम होकर मोक्षमार्ग की परिपाटी का भली प्रकार से ज्ञान हो सकता है। इसलिए केवल एकांत को पकड कर ही मोक्ष की इच्छा करना चाहते हैं वह उचित नही। इस प्रकार वह श्रीधर देव बारहवे स्वर्ग मे आनन्द पूर्वक स्वर्ग सुख का भोग भोगते हुए काल व्यतीत करने लगा ॥५११॥

मंदिरि तमिलनुं मरित्तु मालवन ।
तंदर मिंड्रि वानरम दागि नान् ॥
सिंदूर कळिट्रिन् मेल् सेरिंद वंदिनाल् ।
वेंतुयररा वरवत्तै वीटिनान् ॥५१२॥

अर्थ—इधर सत्यघोष नाम के मंत्री का मरण होने के बाद सिंहसेन राजा ने धर्मिल नाम के ब्राह्मण को मंत्री पद दिया। तदनन्तर वह ब्राह्मण मत्री मरकर सल्लकी नाम के वन मे बदर हो गया। पूर्व जन्म के प्रेम के कारण उस बंदर ने उस हाथी को कुक्कुड सर्प द्वारा काटा हुआ देखकर सर्प पर उपसर्ग किया और मार डाला ॥५१२॥

वुरगं वान रत्तिन लुई रिळंदु पोय् ।
नरग मूंड्रा वदै नन्नि येन्नरुं ॥
पेरिय माडुयर मडुट्र दाट्रवम् ।
विरैगिनाल् विनै कनित्र् रुदयन्सेय्यवे ॥५१३॥

अर्थ—पूर्व जन्म मे उपार्जन किया हुआ शिवभूति नाम के मत्री का जीव वह कुक्कुड सर्प मरकर अत्यन्त दुख देने वाले तीसरे नरक मे जाकर उत्पन्न हुआ ॥५१३॥

वोट्टगं कळुदै नाय् पांवु वासियु ।
निट्टदोर् कुळिइन् मिक्केळुंदु नारिडुं ॥
मट्टिडै वीळंददि लमेद याकै यान् ।
सुट्टदो पंनैत्तुनि पोल तूंगिनान् ॥५१४॥

अर्थ—वह कुक्कुड सर्प का जीव गधे, ऊंट, सर्प, कुत्ता, घोडा आदि पशुओं के सडे हुए मांस की दुर्गंध के समान घोर नरक मे अत्यन्त दुख को भोगते हुए काला सिर धारण किया हुआ व नीचे मुह ऊपर पाव हुए एक योजन ऊपर से नीचे गिर जाता है और उसका मुह चूर २ हो जाता है ॥५१४॥

मुरुंपुदंयदु मोग मूळ्न मेगलुं ।
परैमिडै नुमिमेर् पदिल पोळ्विने ॥

तडियोडु दंडु वाळेंदि सूळं दिडा ।
कडैयर वदुकिनार् काळमेनियार् ।।५१५।।

अर्थ—उस नरक में अत्यन्त दुर्गंध को प्राप्त हुए वह नारकी जीव अतर्मुहूर्त मे शरीर को धारण करने वाला होकर ऊपर से नीचे गिर जाता है, और गिरते ही उस नरक मे रहने वाले अन्य २ नारकी तलवार मुद्गर, बरछी आदि २ शस्त्रो से उसके टुकडे २ कर डालते हैं ।।५१५।।

तिरित्तनर् सेक्कुर लुट् तेर्याचिइ ।
लुरित्तनर् किळ्ळि पुयोप्प सुट्रिडा ।।
वेरित्त नर् निरैत्त मुळ्ळि लव मेट्रि निन्रु ।
रुरैत्तन रेदिरेदिर् वळैद मुळ्ळिन मेल् ।।५१६।।

अर्थ—उस नारकी जीव के शरीर को वहा के नरक मे रहने वाले अन्य २ नारकी घाणी मे पेलने लगे। उसके शरीर के चमडे को खीच कर अलग कर दिया। और उसके मास के लोथडे को तीक्ष्ण काटो के झाड मे फैंक दिया ।।५१६।।

शीकुळि पुट्पुग नूकि नार् शिलर् ।
वाकिनार् सेंविनैर् युरुकि वायिडै ।।
तूकि मुन्मद्यगै यार् पुडैत्तिरु ।
पाकदाय् पिळंदिडु वारु माई नार् ।।५१७।।

अर्थ—तत्पश्चात् पुराने नारकी जीवो ने इस नवीन नारकी जीव को नारकीय कुड मे डाल दिया। तथा ताम्बे व लोहे को तपाकर गलाकर गर्म २ इसके मुह मे डाल दिया। तीक्ष्ण काटो को चुभा २ कर मारने लगे ।।५१७।।

मलैयन पेरियदो रिरुम्बु वट्टिनै ।
युलै येळर् पोर् कनत्तुरग सुट्टिडु ।।
निलै यळर् कुट्टत्तु वेंदु नीडिया ।
तुलइन्रु वेंबलि येन वेळुंदु वीळुमे ।।५१८।।

अर्थ—पुनः उस नारकी को अग्नि कुण्ड मे डाल दिया। उसमे जिस तरह भात पकता है तथा अन्न को चूल्हे पर चढाने पर जैसे वह अन्न खदबदाता है, सीझता है; उसी प्रकार अनेक प्रकार की तीव्र वेदना को वह नारकी भोगने लगा ।।५१८।।

पंजळ उलरंदु नापरंद वेट् कैया ।
मजिनै मडुत्तुड नडुंगि वीळं दिडा ।।

तुंजिनुं तुंजिडा तुयर माकड ।
लेंजलि लायुग मिरक्क मोड्ि लान् ।।२१६।।

अर्थ—इस प्रकार असह्य दुख को सहन करते हुए जब प्यास से उस नारकी की जिह्वा सूख जाती है तब पुराने नारकी यह कहकर कि यह पानी है पीवो और विष को पिला देते हैं, जिसके पीते ही वह नारकी मूर्च्छा खाकर नीचे गिर पडता है। नरक मे अपमृत्यु न होने के कारण वहा के रहने वाले नारकी जीवो द्वारा अनेक प्रकार के दुख उसको भोगना पडता है ।।५१६।।

निड्ऱु निड्ऱुट्ऱुं वें पशियै नोकुवा ।
नोंड्ि निड्वर् निनैदिट्ट वक्कनम् ।।
सेंड्ऱु नंजह्शै युं सेरिंदिडा ।
पोंड्ऱ निड्ऱुडट्रिडुं कनंदोरुं पुगाा ।।५२०।।

अर्थ—जब तीव्र क्षुधा उत्पन्न होती है तब विष मिश्रित अन्न उसको देते है। उस अन्न के खाते ही पेट मे असह्य पीडा व जलन और अनेक प्रकार की वेदना होती है। इससे वह अधीर होकर गिर जाता है और तडफडाता है ।।५२०।।

मुळ मिशै मुप्पत्तोर् विल्लुयरं् दव ।
नेळु मिशै पुगै मुप्पतोंड्ऱु कादमुम् ।।
विळु मुडन् वेंकनल् वेन्नै पोंड्ऱुडै ।
तेळु कडट्रानु मीदवनि यर्कये ।।५२१।।

अर्थ—तीसरे नरक मे उत्पन्न हुआ कुक्कुड नामक का सर्प जो शिवभूति मत्री का जीव था, वह ३१½ धनुष उच्छेद ऐसे शरीर को धारण कर जमीन से उडकर वहा से सिर नीचा किये जमीन पर गिर जाता है। ऐसे नारकी की आयु नरक मे सात सागर की होती है और आयु समाप्त होने तक इसी प्रकार का घोर दुख भोगना पडता है ।।५२१।।

नेरुप्पिनै युमिळ् दिडुं निळल् कळ् पुक्किडिल् ।
विरुप्पुरु मवै विपरीत माय्वरुं ।।
सेरुच्चया दारिलै तिरियुं तीवळी ।
युरैप्प देन्न वनिनि नरगदुट्रदे ।।५२२।।

अर्थ—वह नारकी नरक के दुखो को अर्थात् गर्मी के ताप को दूर करने के लिए एक वृक्ष के नीचे जाकर बैठता है। और बैठते ही हवा चलते ही उस पेड के पत्ते तीक्ष्ण शस्त्र के समान उसके शरीर पर गिर जाते है। और शरीर चूर २ हो जाता है। अर्थात् ऐसी अत्यत गर्म वायु चलती है मानो अग्नि मे डाल दिया गया हो। वहा से उठकर मन की शाति के लिये वह और २ जगह जाता है तो कही भी कोई शांति का साधन नही मिलता है। उस

नरक मे उस नवीन नारकी जीव के साथ सभी नारकी प्रेम का व्यवहार न करके परस्पर मे सभी मिलकर उसको मारते हैं, पीटते है। इस प्रकार नरक मे रहकर उस मत्री का जीव नाना प्रकार के दुख भोग रहा है।।५२२।

नागत्तै पोलु नागं नागत्ताल् नागमैद ।
नागत्तै नागं तुयुत्तु नागदा नरग मेयिद ।।
मेगत्तिनोडुं तिगळ् वीळं् दुडन् किडंद देन्न ।
नागत्तिन् कोंबु मुत्तुम् नरियनुं कुरुवन् कोंडान् ।।५२३।।

अर्थ—पर्वत के समान रहने वाले गभीर अश्वनी कोड नाम के हाथी के शरीर को कुक्कुड सर्प के द्वारा काटे जाने से वह अन्तिम समय शुभ ध्यान मे लीन होकर मरकर देव-गति को प्राप्त हुआ। और उस सर्प का जीव बदर द्वारा मारे जाने के कारण तीसरे नरक मे गया। तदनन्तर नर नाम का भील जिस स्थान मे वह हाथी मरण को प्राप्त हुआ था उस भूमि पर आकर हाथी के शरीर के दात व गजमोतियो को चुन २ कर ले गया।।५२३।।

दंतमुं मुत्तुम् कोंडु धनमित्तन् ट्रन्नै कंडु ।
वेंतिरल् वेडनीदु वेंडुव कोंडु पोनान् ।।
सुंदर मुत्तुं कोंबुम् कोंडु पिन् वनिगन् पूर ।
चंदिरन् शरणं सारंदु शालवुं शिरप्पु पेट्रान् ।।५२४।।

अर्थ—तत्पश्चात् वह भील गजमोती व गजदन्तो को सिंहपुर नगर मे ले गया और वहा धनमित्र नाम के व्यापारी को कुछ गजमोतो व गजदन्त बेच दिये और बाकी बचे उसने अपने पास रख लिए। तदनन्तर वह व्यापारी उन गजमोती व गजदन्तो को उस नगर के अधिपति राजा पूर्णचन्द्र के चरण कमलो मे जाकर भेट किया और आशीर्वाद प्राप्त किया। ५२४।।

पैंबोनुम् मणियुं मुत्तुं पवळमुं पयिड्र् मंजिर् ।
कोंबि रंडिनैयुं नालु कालगळाय कडेंदु कूटि ।।
वं मणि मुलै नार्गळ् सूळयट्रदनै पेरि ।
कोंबिडै पिरंद मुत्त मालै कोंडनि दिरुंदान् ।।५२५।।

अर्थ—राजा पूर्णचन्द्र हाथी के दात व मोतियो को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उस व्यापारी को भेट स्वरूप कुछ देकर विदा किया। राजा ने मोतियो को पलग के चारो पायो मे भरकर सोने के लिये पलग तैयार कराया। और बाकी गजमोतियो का कठ हार बनवाकर गले मे धारण कर लिया। विषय भोग मे मग्न हुआ जीव क्या २ नही करता? सब कुछ करता है। क्योकि राजा पूर्णचन्द्र को भगवान जिनेन्द्र देव के द्वारा कहे हुए वचनो पर श्रद्धा नही थी। हमेशा इन्द्रिय सुख मे मग्न रहता था। स्त्री व ससार भोगो की ओर अधिक रुचि थी। धर्म के प्रति उसको श्रद्धा नही थी। यह सभी कर्म की विचित्र लीला थी।।५२५।।

इ'मिन्दं माट्रिन ट्रन्मै केटपिन् यारु मिल्लै ।
पोंगिय पुलत्ति नींगि येरंदलै पडादु पोवार् ॥
शिगवेरनय काळै किदनै नी सेप्पुतीमै ।
पंगनल्ल रत्ति नागु मेनप्र्वनिंदु वंदु पोनान् ॥५२६॥

अर्थ—इस प्रकार हे रामदत्ता आर्यिका माता ! इस लोक मे कर्म की विचित्रता महान वलवान है। जव यह कर्म की विचित्रता इस जीव को घेर लेती है तव हिताहित का ज्ञान उसको नही रहता। इन्द्रिय लम्पटी जीव ससार मे क्या नही कर सकता ? सव कुछ करता है। उसको हिताहित का विचार कहां से हो ? इस कारण हे माता ! सिंह के समान पराक्रमी पूर्णचन्द्र राजा को सारा वृत्तांत कह दो। ऐसे सिंहचन्द्र मुनि ने रामदत्ता आर्यिका से कहा। तदनन्तर यह आर्यिका सिंहचन्द्र मुनि को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके सिंहपुर नगर मे आई ॥५२६॥

मादवन् पादमेट्रि मनोगर वनत्ति निड् ।
मादरत्तोडुं पोगि यरसन मगनै कंडु ॥
कादलुं कळिप्पु नींगुं कदैयि नै युरैप्प केळा ।
मेदिनी किरै वन् शाल वेंतुइर् तवल मुट्रान् ॥५२७॥

अर्थ—आर्यिका माता ने राजमहल मे रहने वाले पूर्णचद्र को देखा और वडी शाति से रागद्वेष को नष्ट करने वाले वैराग्य भावना का उपदेश व सारा वृत्तांत कहने लगी। राजा पूर्णचद उपदेश सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और धर्म के प्रति उसे पूर्ण विश्वास और श्रद्धान हो गया ॥५२७॥

मन्निनु किरैव नायु यरत्तिनै परंदु मुन्नै ।
पुण्णिय मुलरं्द योळ्दिन् विलंगिडै पुक्कु वीळ्दान् ॥
विन्निनु किरैव नानान् विलंगि निन् ररत्तं मेवि ।
येन्नलुं ट्रादै नीयु नल्ल तींगरिंदु कोळळे ॥५२८॥

अर्थ—तदनन्तर वह आर्यिका पुनः अपने छोटे पुत्र पूर्णचंद को सवोधित कर कहने लगी कि आपका पिता जो सिंहसेन राजा था उसने इस राज्य को करते हुए इस भव को छोड-कर दूसरे जन्म मे पशु गति मे हाथी की पर्याय पाई। और जव वह वन मे मदोन्मत्त होकर विचर रहा था उस समय मुनि सिंहचन्द्र ने उसको धर्मोपदेश दिया और उस उपदेश से जैन धर्म को हृदय मे धारण कर आयु के अवसान मे शरीर छोडकर देवगति को प्राप्त हुआ। इस लिये इस संवध मे अच्छा कौनसा है और वुरा कौनसा है—उस धर्म को सुनकर स्वीकार करो ॥५२८॥

इलंगोळि मगुडं सूडि इरुनिल किळव नायुम् ।
पुलंगन् मेर् पुरिंदेळुंदु विलंगिडै पुरिंदु वीळ्दान् ॥

विलगिडै पुलंगडम्मै वेरुत्तु बिन्नुलगिर् सेंड्रा ।
नलं कलदारी नाय नीयरिंदु कोनल्ल देड्राळ् ।।५२९।।

अर्थ—नवरत्न द्वारा निर्माण किये हुए किरीट को धारण करने वाले हे बालक ! इस राज्य के सुख वैभव को धारण करने वाले, हे कुमार ! तुम्हारे पिता इस जन्म से दूसरे जन्म मे हाथी की पर्याय मे हुए। किन्तु कर्मवश मनुष्य पर्याय नही मिली। तिर्यंच गति मे जाकर हाथी होकर मुनिराज से अणुव्रत ले लिया और उस व्रत का पालन करते हुए धर्मध्यान पूर्वक मरकर अच्छी गति को प्राप्त किया। रत्नमयी कंठो के धारण करने वाले कुमार ! यदि अच्छी गति मे तुमको जाना है तो कौनसे धर्म को स्वीकार करना चाहते हो बताओ। ।।५२९।।

पट्रिनार् भूति पांबाय् चमर माय् कोळि पांबाम् ।
शट्र्तार् ट्रीइल् वेंबु नरगत्तै सेरिंदु निड्रान् ।।
कोट्रवेर् कुमर नीइप्पिर वियै कुरग वंजिर् ।
शेट्रृम् पट्रु नीगि तिरुवरम् पुनर्ग वेंड्राळ् ।।५३०।।

अर्थ—इस प्रकार वह रामदत्ता आर्यिका पुन अपने पुत्र को कहने लगी कि हे पूर्णचद! वह शिवभूति नाम का मत्री इस सपत्ति के मोह से मरकर सर्प की योनि मे गया। पुन: वहा से मरकर चमरी मृग हुआ। चमरी मृग की पर्याय छोडकर कुक्कुड सर्प हुआ। सिंहसेन राजा क्रोध, मान, माया आदि से निदान बध करके मरकर हाथी हुआ और शिवभूति के जीव सर्प द्वारा वह हाथी काटा गया। और वह सर्प आर्त रौद्र ध्यान से मरकर तीसरे नरक मे गया। इस कारण हे कुमार ! पचेन्द्रिय विषयो मे तुम लीन हो रहे हो। तुमको भी उनके समान ही गति न मिले, इस कारण तुम जैन धर्म धारण करो ।।५३०।।

अरस उन् ट्रादै युट्र तरुंद वन् शीय चंदन् ।
द्रिरिविद उलग मेत्तुं तिरुवडि पनिंदु केटेन् ।।
ओरुवि नी मरत्तै इंदप्पिरप्पु नीरुगुत्ति डादे ।
मरुव् नीयरत्तै इंदमाट्रदु वडविदेंड्राळ् ।।५३१।।

अथ—वह माता पुन कहने लगी कि हे पूर्णचन्द्र ! यह मैं तुम को अपनी बुद्धि से नही बता रही हू। मुनिराज से जो वृत्तात व उपदेश सुना है वैसा ही कह रही हूँ। तुम्हारा पिता सिंहसेन धर्म को छोडकर मरकर हाथी बना और हाथी ने मुनिराज का उपदेश सुनकर अणुव्रत लेकर महान तप किया। और सकल्प विकल्प छोडकर उत्तम गति को प्राप्त हुआ। इस कारण विषय वासनाओ को छोडकर तुम जैन धर्म को अपनाओ ।।५३१।।

आंग व रुरैत्त विन् सोलर विळक्के रिप्प उळ्ळ ।
नीगियतिरुळु नीग नेरिइनै सिरिंदु कंडान् ।।

तांगरुं तुंव मुट्रान् ट्रादै पार्कादलार् पिन् ।
ट्रींगला नींग मुत्तौ कोंबोडु तीईन्न वैत्तान् ।।५३२।।

अर्थ—रामदत्ता आर्यिका ने अपने पुत्र पूर्णचन्द्र को उपदेश देकर जैन धर्म की ओर प्रवृत कर लिया। पूर्णचद्र ने अपने माता के हितोपदेश को ग्रहण किया। जिस प्रकार अधकार मे दीपक रखते ही सम्पूर्ण घर मे प्रकाश पडता है उसी प्रकार अज्ञान रूपी अधकार को नष्ट कर पूर्णचन्द्र की आत्मा में धर्म का प्रकाश पड गया। तव सभी वात जानकर कि अपने पिता ने हाथी की पर्याय को छोडा था। और उसी हाथी के दात व गजमोती का उसने जो पलंग व गले का हार वनाया था तुरन्त उसको तोडकर चूर २ कर दिया और जला दिया ।।५३२।।

पान्मयङ गुदित्त तोळ्दिर् पंदोडि पवळ वायार् ।
नीर्सैयंगुरित्त यामें मनत्तग दगंड्रु निर्प ।।
शीर्मयंगुदिप्प नन्मै शेरिंदनन् सेरिंदोरुम् ।
कूर्मयंगुदिक्कु वै वेर् कुमरनुक् कुरगर् कोवे ।।५३३।।

अर्थ—हे धरणेंद्र! सुनो, पूर्णचन्द्र को उनकी माता का उपदेश सुनते ही उनके हृदय मे पूर्व पुण्योदय से सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई। तव अत्यन्त सुन्दर स्त्री से तथा सर्व कुटुम्ब परिवार से मोह को त्याग दिया। ससार की सभी वस्तुओ से अरुचि उत्पन्न हो गई, और सम्यक्दर्शन की उत्पत्ति हो गई। सम्यक्ज्ञान सहित आत्मा की ओर रुचि उत्पन्न हुई। ।।५३३।।

कलयर वलगु लार्द कादळिर् कळमल् कामन् ।
वलं मलैयनय सेल्व नरगत्तु वीळ्कु माय ।।
मलयविला नेरियै विट्टु मर्याग नार् नेरियै पट्रिन् ।
निलैला माट्रि निड्रु सुळरकुं निमित्त मेड्रान् ।।५३४।।

अर्थ—इस प्रकार सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के होने पर सम्यक्ज्ञान से पुरुष के ज्ञान और विवेक गुणादिक को नाश करने वाले स्त्रियो के हाव भाव विलास तथा मोह को शीघ्र ही त्याग कर दिया। उसे संसार से अरुचि पैदा हो गई। हेय और उपादेय को भली प्रकार जानकर वह पूर्णचन्द्र राजसपत्ति विषयभोग आदि क्षणिक सुखों को हेय समझने लगे। ऐसी पूर्वधारणा जम गई। स्त्रियों के साथ रहने पर विषय कषाय का बंध अबंध रूप मे हो गया। मन मे विचार करता है कि हे आत्मा! क्षणिक सुख के लालच मे मग्न होकर ससार रूपी समुद्र मे पड़कर महान दुख को सहन किया। यदि इस समय मेरी माता (रामदत्ता आर्यिका) मुझे उपदेश न देती तो न मालूम कितने समय तक इस घोर दुख मे पड़ा रहना पड़ता। इस प्रकार भगवान की वाणी मे श्रद्धान करने वाला हो गया। यदि मेरी जिनेन्द्र वाणी पर श्रद्धा न होती तो न मालूम कब तक ससार सागर मे पड़ा रहता। ऐसा विचार किया ।।५३४।।

अंजिनान् माट्रै चाल वडंगि नात् कुलंगडं में ।
नंजये पोलु मेंड्रु नडुंगि नान् ट्रोंडगल् सैयान् ॥
वंजमुं पडिरुं पट्रमं सेट्रमुस् कळिप्पु माट्रि ।
पंचनु वदंगळोडु सीलगळ् पइंड्रु सेंड्रान् ॥५३५॥

अर्थ—राजा पूर्णचन्द्र ने विचारा कि ससार महान दुख का कारण है। अत इससे भयभीत होकर पचेन्द्रिय सुख को नाशवान समझकर इन्द्रिय सयम और प्राणि सयम को पालन करने वाला हो गया। और मिथ्यात्व, माया, असत्य, निदान, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि को त्याग कर उन्होने सप्तशील को धारण किया। अर्थात् अणुव्रत धारण किया।॥५३५॥

शित्तमै मुळिकन् मूंड्रिर् जिनवरन् सेळुं पुर्पादम् ।
मत्तगत्तानिदु नांदु मंगल पयिंड्रु वैय्यत् ॥
दुत्तमर् तम्मै येत्ति शरणं पुक्कुइरै योंबि ।
तत्वं पइंड्रु दानं तवत्तोडु दयाविर् सेंड्रान् ॥४३६॥

अर्थ—तदनन्तर मन, वचन काय के द्वारा अर्हत भगवान का स्मरण करने लगा। पाप के नाश करने वाले चत्तारि दंडक को स्मरण करने योग्य अर्हत, सिद्ध,आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु ये पाच परमेष्ठी हैं। मेरी आत्मा की रक्षा करने वाले हैं। और कोई नही है। ऐसा विचार करके रक्षा मत्र का जाप्य करने लगा। और शक्ति के अनुसार जीवो की रक्षा करते हुए सयम पालन करने वाला हो गया ॥५३६॥

इरै वन दरत्तै येंदल् सेरं्दपिनि राय दत्तै ।
करैकेळु वेलिनानै कंविडादिरुंदु नोट्रु ॥
निरैयळि कालाले निदानत्तु निंड्रु सेड्राळ ।
करैइला वायु नीगि कर्पमा सुक्किलत्तो ॥५३७॥

अर्थ—सर्वज्ञ वीतराग देव का कहा हुआ जिनधर्म उस पूर्णचन्द्र को उनकी माता रामदत्ता आर्यिका ने सुनाया और अपने पुत्र को वही छोडकर उसी राजमहल मे ही रह गई। और राजमहल मे रहकर सभी अणुव्रतो को उनका आचरण कराने लगी। उनकी माता ने विचारा कि अगले भव मे यह पूर्णचद्र मेरे गर्भ से जन्म ले ऐसा मोह के उदय मे उसने निदान बध कर लिया। तत्पश्चात् इस पच अणुव्रत के आचरण के फल से आयु के अन्त मे उस माता ने समाधिमरण करके महाशुक्र कल्प नाम के दशवे स्वर्ग मे जाकर जन्म लिया। मोह की महिमा अत्यन्त विचित्र है। इस जीव के ससार मे परिभ्रमण करने के लिये आत्मा के साथ शत्रु के समान यह मोह कर्म लगा हुआ है। इस कारण यह जीव ससार मे मोह के कारण दुख को दुख न समझ कर सुख मानता है। फल स्वरूप अनादि से आज तक अनेक प्रकार के दुख उठा रहा है। परन्तु मोह रूपी ववन से दुख उठाकर भी सहज अविनाशी आत्म-सुख को प्राप्त करना नही चाहता है ॥५३७॥

पागर प्रभैयेन्नुं विमानत्तु परुधि पोल ।
पागर प्रभनेन्नुं देवनाय् पावै तोंड्रि ।।
नागर् वंदिरैजं विद मूतिय नडुवि इरुंदाळ् ।
सागरं पत्तोडारु तनक्कु वाळ् नाळदामे ।।५३८।।

अर्थ—उस महाशुक्र कल्प में भास्कर प्रभा नाम के विमान मे सूर्य के प्रकाश के समान प्रकाश होने वाला रामदत्ता माता का जीव भास्कर नाम का देव हुआ । तब वहा आकर सामान्य देवो ने उस देव को नमस्कार किया । वह सोलह सागर आयु को प्राप्त करने वाला हो गया । आचार्य कहते हैं कि:—

अणुमात्त व्रतमल्पकालमिरे मुन्नं तच्छल प्राप्तियि ।
प्रणुतक्ष्मापतिपादेनिन्नधिकर्दि सम्यग्व्रताचार ल-
क्षणमं शाश्वतवांतु देव पदमं कैवल्यम को बेने ।
देणिसुत्तुज्जुगिपातने सुखियला रत्नाकराधोश्वरा ।।

अणुमात्र व्रत अल्प काल तक रहने से उसके फल से आगे चलकर पृथ्वी का अधिपति हुआ अर्थात् चक्रवर्ती हुआ । सम्यक्दर्शन अणुव्रत तथा महाव्रत व तपश्चरण करने से शाश्वत मोक्ष पद करने की इच्छा करने वाले तथा महाव्रत की रक्षा करने वाले मोक्ष पद पाने के इच्छुक नही हैं क्या ? तथा सुखी नही है क्या ? अर्थात् वही जीव सुखी है ऐसा मन मे विचार किया ।।५३८।।

इरट्टा माइत्तांडिडै विट्टिन् नमुद मुन्ना ।
वोरेट्टां पक्कन् तन्नै इडै इडै विट्ट्डइत्तु ।।
ओरिट्टिन् पादियाय् नरगत्ति लवदि योट्टा ।
ओरेट्टु गुणंगळ् वल्लुडंबेट्टु मुळमु यरंदान् ।।५३९।।

अर्थ—इस प्रकार भास्कर देव सोलह हजार वर्ष मे एक बार आहार करता था । और आठ महिने मे एक बार श्वास निश्वास लेता था । अपनी अवधि के द्वारा वह देव चौथे नरक तक का हाल जानता था । उसके साथ २ उसको व्रत के प्रताप से अणिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व आदि आठ प्रकार की ऋद्धियां प्राप्त हो गई । उसका शरीर पाच हाथ प्रमाण था ।।५३९।।

मिन्नरि शिलंवि नोसै मिळिरुमे कलैइनोसै ।
इन्नरंवि सै ईनोसै येळुंद गीदत्ति नो सै ।।
मिन्नुडं किडयि नार्द विळैंदुला मुळिई नो सै ।
तन्नुळं कवर विन् सोल् वोच।रत्तोडु नाळाल् ।।५४०।।

अर्थ—वह भास्कर देव उस देव लोक मे अत्यन्त सुन्दर देवागना के पाव के नुपूर के शब्दो को तथा वीना, बासुरी के शब्द व मधुर वचनो को सुनकर वचन प्रवीचार से अपने कामभोग की आनन्द सहित तृप्ति करते हुए स्वर्ग सुख का अनुभव करने लगा ॥५४०॥

कोंट्र वन् पूर चंदन् गुणक्कडं ट्रोंड्रि पोगि ।
मट्रंद विमानत्तिन् कन् वैडूर्य प्रभै तन्नुट् ॥
पेट्रियार् ट्रोंडि तांनु वैडूर्य प्रभनानान् ।
मुट्र् मुन्नुरैत्त वायु मुदल विम्मुर्ति क्कामे ॥५४१॥

अर्थ—इधर पूर्णचन्द्र राजा सम्यक्दर्शन सहित निरतिचार व्रतो का पालन करते हुए समाधिमरण करके शुभ परिणामो से वैडूर्य प्रभा नाम के विमान मे वैडूर्य प्रभा नाम का देव हुआ। पूर्व मे कहे हुए भास्कर देव के समान ही उस वैडूर्य प्रभा की आयु भी उतनी ही थी। और उसी के समान वह भी विषयभोग मे तृप्त था ॥५४१॥

पाडलिन् मवांगयुं पवळ वाईना ।
राडलिन् मयांगियु मरंबइ यारोडु ॥
माडमुं सोलयु मलयुं वावियु ।
यूडु पोय नीडु वर वडु वैगुनाळ ॥५४२॥

अर्थ—इस प्रकार भास्कर तथा वैडूर्य प्रभा दोनो देव उस लोक मे गीत, वाद्य, नाट्य आदि क्रियाओ को देखकर सतोष व आनद मानने लगे। और स्त्रियो के साथ भोग भोगते हुए सुख से काल व्यतीत करने लगे ॥५४२॥

तूयचंदिरन् कलै पेरुग नाडोरुं ।
तीयवन् काळगतेयुं मारु पोइर् ॥
चीय चंदिरन् ट्रवं पेरुग नाडोरुं ।
कायमं कषायमुं कशिष मानवे ॥५४३॥

अर्थ—इधर सिहचन्द्र मुनि महान उग्र तपश्चरण करने लगे। जैसे चद्रमा को राहु ग्रस्त करता है और राहु को छोडकर जाते ही चादनी निर्मलता से फैल जाती है, उसी प्रकार सिहचन्द्र मुनि के तपश्चर्या की प्रतिदिन वृद्धि होते हुए उनका शरीर कृश होने लगा। शरीर के कृश होने के साथ २ लोभ, मान, क्रोध, आदि कषाये भी क्षीण हो गई ॥५४३॥

ईट्रिळा रादनै विदियि लेंदरा ।
नाट्रलु केट्र वारन्न पानमुं ॥
साट्रिय वर्गनार सुरुक्कि शेय्यमे ।
लेट्रिनान् ट्रन्नै निड्रिलंगुं सिदयान् ॥५४४॥

अर्थ—इस प्रकार तपश्चरण के द्वारा मुनि सिंहचन्द्र ने शरीर के क्षीण होने के साथ २ चारो आराधनाओं से चारो कषायो को क्षीण किया और अपनी शक्ति के अनुसार चारों प्रकार के आहारों मे कमी करते हुए आत्म बल को बढाया। और आत्म ध्यान के बल से दर्शन, ज्ञान, चारित्र की आराधना करते हुए तप आराधना की वृद्धि करने लगे। इस प्रकार तप आराधना के साथ २ शुद्ध आत्मा के ध्यान मे निमग्न होते हुए इन्द्रिय तथा प्राणि सयम को निरतिचार पालन करने वाले हो गये ॥५४४॥

शित्तमै मुळिगळिर् सेरिंदु यिर्कॅलां ।
मित्तिर नाय पिन् वेद नादि ॥
लोत्तेळु मगत्तना युवगै युळ्ळुलाय् ।
तत्तुवत तवत्तिनार् ट्रनुवै वाटिनान् ॥५४५॥

अर्थ—तदनन्तर वह मुनि सिंहचन्द्र मन, वचन, काय से त्रस स्थावर जीवो की रक्षा करते हुए शुभाशुभ कर्म को उत्पन्न करने वाले, साता और असाता वेदनीय कर्मो के द्वारा उत्पन्न होने वाला सुख, दुख, हर्ष, विषाद में समता भाव धारण करने वाले होकर तपश्चरण के स्वरूप को भली भाति जानकर दुर्द्धर तपस्या में लीन रहने लगे ॥५४५॥

तिरुंदि नार् तेऊ कंडेळुम नोसर पो ।
नरंबेला मेळुंदन नल्ल मांदरी ॥
लरंगिन नयन मुळ्ळरुंद वक्कोडि ।
इरुंद मै काटि निंड्रिलगुं नीरवे ॥५४६॥

अर्थ—इस प्रकार वे मुनि दुर्द्धर तप करने लगे। उनका शरीर अत्यन्त शुष्क होकर हड्डियो का पीजरा सा दीखने लगा। और उनकी आखे तप के बल से अदर घुस गईं। देखने वाले भव्य जन उनका तपश्चरण देखकर विचार करने लगे कि साक्षात् मोक्ष व मोक्ष का मार्ग यही है। और हमको भी इनको देखकर, और इनके समान आचरण करने से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है—ऐसा भव्य जीव अनुभव करने लगे ॥५४६॥

तवत्तळ लेळुंदुइराम् पोट्राडु वैं ।
तुवक्कर चुडचुड तोंड्रुनी रोळि ॥
निवत्तलां निट्रोळि तुळुंवु मूर्तिया ।
नुवत्तलुं काय्दलु मोरुवि नान् दरो ॥५४७॥

अर्थ—इस प्रकार उनके शरीर के कृश हो जाने के बाद वह मुनि आत्मध्यान रूपी अग्नि से कर्म सहित आत्मा को जैसे स्वर्ण को बार २ तपा कर शुद्ध करते हैं उसी प्रकार अनादिकाल से आत्मा मे लगे हुए कर्म रूपी मल को भुस में डालकर आत्मा की कीट कालिमा को क्रम से नाश करने लगे। तपश्चरण करते हुए उन मुनिराज ने केवलमात्र शरीर को रखते हुए कषाय उत्पन्न होने वाले परिग्रह का त्याग कर दिया ॥५४७॥

तनुवदु तनुवदाय तनुवदायदु ।
मननिरै पोरै तवं मगिळ्वि येदुव ।।
निन्नैवदु विनइ नै निड्रु दिर्तदु ।
मुनिवनुं तनदु मेर् कोळिन् मुद्रिनान् ।।५४८।।

अर्थ—उनका हृदय क्षमाभाव से युक्त हो गया। वे क्षमाभाव अभ्यन्तर तप की भावना से युक्त होकर अत्यन्त सतोप पूवक तपश्चरण करने मे लीन हो गये ।।५४८।।

यरिई नुन् मोळ्गिय देन्न दन्न दाय् ।
परिषैयें वेंड्रव परम मा मुनि ।।
येरुगनै हृदय कमल तुळ्ळिरि इत्त् ।
तेरिवरु शिद्धरै सेळि सेंति नान् ।।५४६।।

अर्थ—इस प्रकार अत्यन्त दुर्द्धर तपश्चरण के साथ २ बाईस परीषह को सहन करते हुए तथा जीतते हुए आत्म बल से बलिष्ठ हुए सिहचद्र मुनिराज वीतराग शुद्धोपयोग भावना से युक्त होकर अर्हंत परम देव को अपने हृदय कमल मे धारण करके श्री सिद्ध परमेष्ठी को अपने मस्तक मे स्थापित किया ।।५४६।।

सेन्नि ईलिडुं कवशत्तोडत्तिरम् ।
पन्नरु पूवरु पांगि नाय पिन् ।।
तन्नुंडंबु ईरिनै तडरु वाळन ।
उळ्ळिनिड्रवद मुन्नि योदिनान् ।।५५०।।

अर्थ—अपने हृदय मे अर्हत, सिद्ध, आचार्य की स्थापना करके कर्म निर्जरा के लिये उनको शस्त्र रूप बना लिया। तदनन्तर पच नमस्कार मत्र का एकाग्रचित्त से मनन करने लगे। तब जैसे २ अर्हत भगवान का ध्यान करने लगे वैसे २ अंकुर चमकने लगे और वैसे ही कर्मों की निर्जरा होने लगी।।५५०।।

कन्नि नार् कळंक मिन्नलयै कंडिडा ।
पन्नुर प्पेरियवर् पांद सेर्ंदव ।।
पुन्निय युरदियै सेविइर् पूरिया ।
विन्नुल मडेदनन् वेंडि वीरने ।।५५१।।

अर्थ—इस प्रकार उन सिहचद्र मुनि ने ध्यान करते हुए सम्यक्दर्शन और ज्ञान के बल से दोष रहित तत्वार्थ स्वरूप को भली भाति अपने अन्दर समझ लिया। और अर्हंत भगवान के चरण ही मुझे शरण हैं और कोई शरण नहीं है—यह स्मरण करने लग गये।

"अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरण मम।
तस्मात् कारुण्यभावने, रक्ष रक्ष जिनेश्वर ! ॥

अर्थात् इस पद के अनुसार भगवान के चरण ही मुझे शरण हैं, और कोई शरण नही है। भगवान का कहा हुआ सप्त तत्व, नवपदार्थ, पचास्तिकाय,षट्द्रव्य प्रवचन मात्र का द्वादशाग शास्त्र यही मेरा शरण है, और कोई शरण नही है। ऐसा अन्त समय मे स्मरण करते हुए वह सिहचन्द्र मुनि समाधिपूर्वक मरण कर देवगति को प्राप्त हुआ ।।५५१।।

पोरुविल उलगेनुं पुरवलकुं नर् ।
किरिव मास् केवच्च दोंबदावदै ।।
मरुविनान् मालोळि विमान मट्रदिर् ।
प्रितयंकरत्तिनै पेरिय वीरने ।।५५२।।

अर्थ—वह मुनि समाधि पूर्वक शरीर को छोडकर नवग्रैवेयक नामक ऊपरी अत्यत शोभायमान प्रीतंकर नाम के विमान मे प्रीतकर नाम का देव हो गया ।।५५२।।

मुप्पत्तोराळियान् मुंडिद वायुग ।
मुप्पत्तो राईर तांडु विट्टुना ॥
मुप्पत्तोर् पक्कत्तै कंडडुविर्तिडा ।
मुप्पत्तोर् नान् गदि शयरें वाळ्तुमे ।।५५३।।

अर्थ—प्रीतंकर नाम के देव की आयु ३१ सागर की थी। वह देव इकत्तीस हजार वर्ष बीतने के बाद एक बार मानसिक आहार करता था। और १५½ दिन मे एक बार श्वासोच्छ्वास लेता था। वह हमेशा अर्हंत भगवान के स्मरण मे लीन रहता था ।।५५३।।

अवधिया नरगमा रावदांदिडा ।
युवदि याल् वरुं पय नोंड्र् मिड्रिये ।।
शिवगति पवर्कुं पोलिवकुं नल्विनै ।
यवधिई नुदयत्ता लागु मिवमे ।।५५४।।

अर्थ—वह प्रीतंकर अपने अवधिज्ञान से छठे नरक तक के हाल को जानता था। उनको स्त्रियो की कामेच्छा नही रहती। मोक्ष मे रहने वाले अहमिंद्र देव के समान आत्म सुख का अनुभव करते हैं। और हमेशा यही भावना भाते रहते हैं—

सिद्धर सतत विशुद्धर बोधस । मृद्धर नेनेदु नानीग ।
सिद्धरसद्रोन्दु लोहवनंद्दिदंदात्म । सिद्धियपडेवे निन्नेनु ॥

सिद्ध भगवान का सतत ध्यान करते हुए मन मे यह भावना भाते थे कि हमको अब किस बात की परवाह है ? जैसे सिद्ध भगवान का ध्यान करने वाले जीव ऐसी भावना भाते है कि सतत हमे सिद्ध भगवान के ध्यान मे रहने से जैसा लोहा गलने से सिद्धरस हो जाता है उसी प्रकार हमारा आत्मा शुद्ध है । ऐसा मानकर आनन्द मे रत रहते हैं ।।५५४।।

अंजिर पयरुळि येरिवनानया ।
लंजिरंडडि नडंदिरंज लल्लदु ।।
अजि वदोरु वर तम्माने इरुसेला ।
रंजोला रिन्मया रगर्नाल्लिदिरर् ।।५५५।।

अर्थ—अत्यत सुन्दर स्त्रियो का ससर्ग अथवा काम सेवन की इच्छा न होने से वह अहमिद्र देव हमेशा बालब्रह्मचारी रहते है। जहा भगवान के पच कल्याणक महोत्सव पूजा उत्सव आदि २ कल्पवासी देवो द्वारा करते समय वे देव अपने अवधिज्ञान द्वारा जानकर नीचे उतरकर सात पैड जाकर परोक्ष मे भगवान को नमस्कार करते हैं, किंतु वहा तक नही जाते हैं ।।५५५।।

इंवमे इडैयर देळुद लल्लदु ।
तुंबमुं कवलयुं तोगै येन्नवर् ।।
कन्नु नंबुस् मिला वर्गमिदित्तवन् ।
मुन्नु पिन् पळिदैदा मूर्ति यायिनान् ।।५५६।।

अर्थ—अहमिद्र को अल्प सुख के अलावा और अधिक कोई सुख नही है और स्त्रियों को देखने की इच्छा तथा उनका स्मरण भी नही होता । इस प्रकार उस नवग्रैवेयक मे जन्मे हुए अहमिद्र देव आयु के अवसान तक शरीर व मानसिक सुख का अनुभव करने वाले होते है। ।।५५६।।

अरुं तवं पौरुंदिय शीलमादियार् ।
ट्रिरुंदिय नाल्वरुं देव राईनार् ।।
पेरुंतुयर् विलंगीट्रि विनैइल् वीळ्ंदु पिन् ।
पोरु दिना निरयेत्तु बूति पोगिये।।५५७।।

अर्थ—इस प्रकार श्रेष्ठ देवपद होने का कौनसा कारण है ? आचार्य बतलाते हैं कि श्रेष्ठ तप अथवा निरतिचार व्रतो के पालन करने से जैसे राजा सिहसेन, सिंहचन्द्र मुनि, रामदत्ता आर्यिका तथा पूर्णचन्द्र ये चारो श्रेष्ठ देवगति को प्राप्त हुए ; उसी प्रकार निरतिचार व्रतो के पालने व श्रेष्ठ तप करने से देवगति प्राप्त होती है। और पाप कर्म के उदय से शिवभूति नामक मत्री का जीव सर्प, चमरी मृग, और कुक्कुड सर्प होकर मरकर तीसरे नरक मे गया ।।५५७।।

पशैवनुम् तनकुत्ताने पावंगळ् पयिड्् सोल्लि ।
नशैय्यमै नबुताने नल्विनै केदु वाइर् ।।
पशैयुर विरंडुम् पाव पुण्णिय वयंगळाद ।
लिगन् मदयांनै पांदळिरंडिनुं तेळिंद दंड्रो ।।५५८।

अर्थ—शत्रु परिणाम से युक्त जीव के अपनी आत्मा के आस्रव करने वाले कार्य को करने से उस जीव को पाप का बध होता है और शुभ भाव को प्राप्त होने वाले कार्य करने से पुण्य बध का करने वाला शुभास्रव होता है। सम्पूर्ण जीवो पर दया करने से शुभ परिणाम होते है। अन्य जीवो के प्रति द्वेषभाव होने से विरोध के कारण पाप बध होकर हमेशा पाप का कारण होता है। महान बलिष्ठ अशनीकोड नाम का हाथी सर्प के द्वारा काटे जाने से शात भाव को धारण कर उत्तम देवगति को प्राप्त हुआ। और कुक्कुड नाम के सर्प को द्वेष भाव तथा दुष्परिणाम से तीसरे नरक मे जाना पडा ।।५५८।।

वाळरि युळुवै कैमा वलैइडं पट्टु मुईव ।
नीळर नायनल्ल विनैयदु निंड्र पोळ्दिर् ।।
कोळरि येरु तन्नै कुरु नरि येनुं कोल्लं ।
नीळर नाय नल्ल विनैयदु नीगि नांगे ।।५५६।।

अर्थ—अत्यन्त भयकर सिह, सियार, भालू, बलवान हाथी आदि यदि मनुष्य के सामने आ जाये तो पूर्वभव के पुण्योदय से बच जाते हैं। यदि पूर्वभव का पुण्य सचय न हो तो नही बच सकता। इसी तरह यदि पाप कर्म का उदय आ जावे तो मामूली गीदड भी उस को मार सकता है ।।५५६।।

तीगति मेलवि नै नीकि सिंदै इन् ।
नोकिला पोरुळैयु नौकि इ ंबत्तै ।।
वीकि यिम् माट्रिनै नीकि वीटिनै ।
याकुनल्लरत्तिनै यमरं्दु शैमिने ।।५६०।।

अर्थ—मन, वचन, काय के शुभ परिणाम से तिर्यच गति, नरक गति मे ले जाने वाले अशुभ परिणामो को त्यागकर मतिज्ञान, श्रुतज्ञान को प्राप्तकर, स्वसवेदन नाम के प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा आत्मस्वरूप को उत्पन्न करते हुए तथा इस ससार सुख को रोकते हुए तथा इस ससार सुख को उत्पन्न करने वाले रत्नत्रयरूपी आत्म धर्म की शाति व प्रेम से सभी जीव आराधना करने से ससार दुख से छूटकर अत्यन्त सुख की प्राप्ति करते है। अत हे भव्य जीव! यदि तू ससार बध से छूटना चाहता है तो सम्यक्ज्ञान पूर्वक सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र धर्म की आराधना कर। ताकि सहज ही मोक्ष सुख की प्राप्ति हो जाय ।।५६०।।

इति-सिंहसेन, रामदत्ता, सिंहचन्द्र, पूर्णचन्द्र मुनि को देव गति को प्राप्त करने वाला पाचवां अधिकार समाप्त हुआ।

॥ षष्ठम अधिकार ॥

वेट्रिवेल् वेंदनुं वेंदन् ट्रेवियुं ।
कोट्रय कुमररुं कोवै यैदिनार् ॥
मट्रिद निलत्तिडै वंदु नाल्वरु ।
मुट्रन उरै पन् केळुरग राजने ॥५६१॥

अर्थ—हे धरणेंद्र सुनो ! वैराग्य को प्राप्त हुए सिंहसेन महाराज तथा उनकी पट-रानी रामदत्ता देवी तथा इनके दोनो राजकुमार सिंहचन्द्र पूर्णचन्द्र अपनी २ आयु के अवसान कर देवगति को प्राप्त हुए। तदनतर ये चारो देवगति की आयु पूर्ण करके इस कर्मभूमि में आकर अवतार लेने के पश्चात् उनके विषय का अब विवेचन करेंगे ॥५६१॥

पागर पिरभ नाम पावै यायुगं ।
सागर त्तुळ्ळदु पदिनै नाळिन ॥
नागरिर् पिरिवे ना नडुगिर् ट्राट्वुं ।
पागर प्रभैयुट् पारिजातमे ॥५६२॥

अर्थ—हे धरणेंद्र ! भास्कर प्रभा नाम के विमान मे उस रामदत्ता आर्यिका का जीव भास्कर प्रभा नाम का महर्द्धिक देव हुआ और अपनी सोलह हजार वर्ष की आयु जब पूर्ण होने लगी तो १५ दिन पूर्व ही वहा के भास्कर प्रभा नाम के स्वर्ग मे कल्प वृक्ष चलाय-मान होने लगे ॥५६२॥

कर्पगं शालिप्पदु कंड देवरुं ।
मट्रवर् शिदयुं नडुगि वाडिनार् ॥
कर्पगत्तोडै यलुं कंठ मालै युं ।
पोपळिदनिगळुं मासु पोर्तवे ॥५६३॥

अर्थ—कल्प वृक्षो के चलायमान होने से वहा के भास्कर नाम के परिवार देवताओ मे भय उत्पन्न होने लगा और भास्कर देव के गले का कंठाहार (माला) मुरझाने लगी ।
॥५६३॥

मदियोळि पदिनै नाडोरु मायं दिडा ।
विदियोळि मासुरि ई वीयु मारु पोन् ॥
मुदिर् मदयर्न योळि मूर्ति मासुरिक् ।
कदिर् कळंड्रिडुवदु कंडु वाडि नान् ॥५६४॥

अर्थ—षोडश कला से युक्त पूर्णचद्र राजा का जीव जिस प्रकार चद्रमा की कला पूर्णमासी से अमावस तक कम होती जाती है उसी प्रकार भास्कर देव की सुन्दर शरीर की कला क्षीण होती देखकर उस देव के मन मे अत्यन्त दुख उत्पन्न होने लगा ।।५६४।।

देवनायमळियै शरीदं नान्मोद ।
लोविला वगै यवनुट्र विबमोर् ।।
तावमाय् तिरंडु वंदडुव दुःरवुमा ।
मूवैनाळग वैइन् मुडिद तुंबमे ।।५६५।।

अर्थ—पद्रह दिन के अन्त में होनेवाले घोर मारणांतिक दुख से वह दुखी हो गया, सोलह हजार वर्ष देवागनाओ के साथ भोगे हुए सपूर्ण सुख जैसे जगल मे आग लगते ही सब नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार इतने वर्षों का वह आनन्द उस भास्कर देव का तत्काल नष्ट हो गया । अर्थात् देवागना का सुख एक क्षण मे नष्ट होता देखकर अत्यन्त दुखी हुए । क्योकि यह ससार चक्र की विचित्रता है ।।५६५।।

सूकरमागि तोंड्रि तुयरुरु मुइर्ग डुंब ।
तागरमागि निड्रं वव्वुडं पिडिद लाट्रा ।।
नागरुक्किरैव रागि विन्निनै नन्नि वीळ्वार् ।
सोगयुं तुयरु नम्मार् सोल्लाम् पडियदोंड्रो ।।५६६।।

अर्थ—शरीरधारी संसारी को कितना ही दुख होने पर भी शरीर छोडने की भावना नही रहती । शरीर को छोडते समय महान दुख होता है, जो अवर्णनीय है । जिस प्रकार एक शूकर निंद्य पर्याय का जीव अपनी पर्याय को छोडता है उसको भी मरण समय मे शरीर छोडने पर दुख होता है । उसी प्रकार देवगति का सुख भी आयु की समाप्ति पर जीव को दुखी कर देता है । उस दुख का वर्णन किया जाना असभव है ।।५६६।।

कानेरि कवरप्पट्ट कर्पगं पोलवाडि ।
वानव निरुंद पोळ्दिन् वंदु सामान देवर् ।।
तेनिव रलंग लाइत् देवर तं मुलगिर् चिन्हाळ् ।
वानवरिरुंदु पिन्नै वळुत्तर् मरवि देंड्रार् ।।५६७।।

अर्थ—जिस प्रकार आग लगने पर जलता हुआ कल्पवृक्ष कंपायमान होता है उसी प्रकार भास्कर देव को दुखी होते देख कर वहा के रहने वाले सामान्य देव उसके पास आकर समझाने लगे कि हे महर्द्धिक देव ! आप अपने पूर्व जन्म में पुण्योपार्जन करने से यहा देवपद को प्राप्त हुए । अब आयु पूर्ण हो गई है । आप घबराओ मत । इस स्वर्ग मे रहने वाले सभी देवो की आयु पूर्ण होने के बाद उनकी कंठ की माला व आभरण मुरझा जाते हैं । ऐसा होना देव-

गति का स्वाभाविक नियम है। अतः आप घबराओ मत। अब आपकी आयु पूर्ण हो गई है। ऐसा वे सामान्य देव समझाने लगे ॥५६७॥

कणं कणंदोरुं वेरा मुडंबिनै कंडु पिन्नु ।
मणंदुडन् पिरिदं वट्रु किरंगु वार् मदि लादार् ॥
पुणरंदवै पिरियुं पोळ्दुं पुदिय वदडयुं पोळदु ।
मुनरं दुरु कवलै कादळु लुळ् पुगारुळ्ळ मिक्कार् ॥५६८॥

अर्थ-एक एक समय उत्पन्न होकर नष्ट होने वाला यह शरीर क्षणिक और अनित्य है। ऐसे शरीर रूपी नाशवान पुद्गल पर्याय को छोडकर जाने मे यह अज्ञानी जीव घबराता है। अपने धारण किये हुए शरीर को छोडना, दूसरे शरीर को धारण करना यह पुद्गल पर्याय की परिपाटी है। यह किसी के साथ शाश्वत रूप मे नही रहता है। इस प्रकार स्वरूप को जिसने भली प्रकार जान लिया है वह सम्यक्दृष्टि हैं। एक शरीर छोडता है दूसरा प्राप्त करता है। इसी को समझ लेना सम्यक्त्व है। शरीर को छोडते समय जो दु ख करता है वह मिथ्या दृष्टि है। परन्तु ससार स्वरूप को अच्छी तरह समझा हुआ जो सम्यक्दृष्टि है वह शरीर छोडते समय दुखी नही होता। वह विचार करता है कि आयु समाप्त होने पर शरीर को छोडना ही पडेगा। वे कभी भी शरीर को छोडते समय डरते नही है। वे विचार करते है किः—

"नष्टे वस्त्रे यथाऽऽत्मान, न नष्ट मन्यते तथा ।
नष्टे स्वदेहेऽप्यात्मन, न नष्ट मन्यते बुधः ॥
यस्य सस्पदमाभाति निस्पदने सम जगत् ।
अप्रज्ञमक्रियाभोगं म शम याति नेतरः ॥
शरीरकचुकेनात्मा संवृतो ज्ञानविग्रहः ।
नाऽऽत्मान बुध्यते तस्माद् भ्रमत्यति चिर भवे ॥५६८॥

अरं पोरुळिव मूंड्रि लादिया लिरंडु मागुम् ।
इरंद दर् किरंगि नालुं यादोंड्रुम् पिन्नै येदा ॥
पिरंदुळि पेरियु तुंबम् पिनिवकु नल्विनैयै याकु ।
मरं पुणरं दिरैवन् पांद शिरप्पि नोडडैग वेंड्राड् ॥५६९॥

अर्थ—धर्म, अर्थ, काम इन तीन पुरुषार्थो मे सबसे पहला धर्म पुरुषार्थ है। उस धर्म पुरुषार्थ से सभी इन्द्रिय विषयभोग सुख सामग्री प्राप्त होती है। इसलिये हे भास्कर देव! आप पूर्वभव के इन्द्रिय सुख को स्मरण करोगे तो आर्तध्यान से निंद्यगति अथवा तिर्यंच गति को प्राप्त करोगे। ऐसा सामान्य देवो ने उनको समझाया। अत आप इस समय शुभ भावना को उत्पन्न करने वाले अर्हंत भगवान के चरण कमलो का स्मरण करो। इससे आप को शुभ गति प्राप्ति होगी ॥५६९॥

येड्रव रुरैत्त माट्रत्तोरियुरु मेळुगु नीरुद् ।
सेंड्रदु पोल तिन्नेंड्रिरैवनर् शिरप्पो डोंड्रि ।।
निड्र नाळुलप्प मिन्नि नींगि नान् निलत्तै सेर्ंदा ।
नंड्रय निदानत्ताले यरिवैया युरगर् कोवे ।।५७०।।

अर्थ—इस प्रकार सामान्य देवो द्वारा कहने के बाद शीघ्र ही जिस प्रकार लाख को अग्नि के सामने रखते ही पिघल जाती है और अग्नि से अलग करने के बाद पुनः वह लाख जम जाती है, उसी प्रकार भास्कर देव का मन दृढ हो गया और धर्म मे रुचि हो गई। वह भगवान की पूजा, स्तुति, स्रोत, भक्ति पूर्वक करता रहा। तत्पश्चात् वह क्रम २ से आयु पूर्ण करके जिस प्रकार आकाश मे बिजली चमकती २ बद हो जाती है उसी प्रकार क्षण भर मे उसकी आयु समाप्त हो गई। और पूर्व जन्म मे निदान बध करने के कारण इस कर्मभूमि मे आकर स्त्री पर्याय को धारण किया ।।५७०।।

कावलन् पोल दीप सागरं सूळ निड्र ।
नावलं तीवु तन्नुळ् भरतत्तु नडुव नोंगि ।।
सेवलं नत्तिर् सेडि शिरगिनै विरित्तु तीवै ।
मेवलुट्रेळुव दुःखुं विलगुम् वेदंड मुंडे ।।५७१।।

अर्थ—असंख्यात द्वीप समुद्रो से घिरा हुआ यह जम्बूद्वीप है। इस जम्बूद्वीप के बीच मे भरतखंड है। भरतखंड के बीच मे जैसे एक हस पक्षी उडने के लिये पख पसारना है और उडने का प्रयत्न करता है, उसी आकार का विजयार्द्ध नाम का पर्वत है ।।५७१।।

आळियै शेरिंदु कंड मारैयु मडिपडुत्तु ।
वेळमा निरैगळ् विन्नोर् वेंदर् विजैयर्गळ् सूळ ।
वाळियंगंगै शिंदु वंदडि यडैदु कुंड्रम् ।
पाळियन् तडक्कै वेंदन् भरतन् पोंड्रिलंगु निड्रे ।।२७२।।

अर्थ—महालवण समुद्र पूर्वापर से भरतादि छह खड घेरे हुए है। उस भरत खड मे गंगा सिंधु नदियो से घिरा हुआ यह विजयार्द्ध पर्वत जैसे भरत चक्रवर्ती अपने हाथ को पसार कर याचक जनो को दान देता है, उसी प्रकार विजयार्द्ध पर्वत का आकार है ।।५७२।।

अंवदु इरुत्तौंडुम् पुगैय्य कंड्रुयर्ंदु नीळ ।
मोनवदु मोंड्रमाय वाइर्त्तदिग मोडि ।।
येवदु पत्तै मेर् सेंड्रगिरु मरुंगुम् पुक्कु ।
विजय रुत्तग मागि पप्पत्तु वीळंद वेर्पिन् ।।५७३।।

अर्थ-उस पर्वत की दक्षिण पश्चिम की चौडाई ५० योजन तथा लम्बाई २५ योजन है। पर्वत के दक्षिणी पार्श्व मे नो हजार से कुछ अधिक और उत्तर दिशा मे दस हजार से कुछ अधिक चौडाई है। उस पर्वत के नीचे दस योजन, ऊपर पचास योजन चौडाई है। वहा विद्याधरो के निवास करने का स्थान है ।।५७३।।

निंड्र मुप्पंदु पत्तोरि नेरिइ नार् सेडियागि ।
सेंड्रन शक्क वालर वियोगर पुरंगळागु ।
मंड्रिय कुंड्रिर् पत्तु मैदुयर् सूळियामे ।
लोंड्रि निंड्रोळिरुं कूडंमगुडं पोलोंबदामे ।।५७४।।

अर्थ—उस स्थान पर दस योजन ऊपर मे समान रूप मे है। उसके बाजु मे दस-दस योजन उत्तर श्रेणी और दक्षिण श्रेणी है। वहा चक्रवाल नाम के प्रसिद्ध व्यन्तर देव का निवास स्थान है। और शेष दस योजन के उच्छेद मे चूलिका है। वह चूलिका राजा के मुकुट के समान नो प्रकार की है ।।५७४।।

इमयेत्ति निरुमोरुंगुं निलगळ् पोंड्रिलंगुम् वेळ्ळि ।
शिमै येत्ति निरुमरुंगुम् सेंड्र विजयर्गळ् सेडि ।।
समय्येत्तु नांग दाव दुःखुमेर् ट्रिळिवु तन्निन् ।
नयैयोप्पर् विजंया लिव्विंजयर् नागर् कोवे ।।५७५।।

अर्थ –हे धरणेंद्र सुनो ! विजयार्द्ध पर्वत के उत्तर दक्षिण दोनो बाजू मे ही दक्षिण श्रेणी उत्तर श्रेणी नाम के नगर हैं। और वहा उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी नाम के चतुर्थ काल मे ऋद्धि को प्राप्त हुए मनुष्य जिस प्रकार रहते हैं उसी प्रकार अत्यन्त शीलवान, गुणवान, विद्याधर रहते हैं।।५७५।।

येळुमुळं विल्लैङ्नुट्रि ळिलिवदु मेट्रु मिल्लै ।
वळुविला वरड तूरु पुव्व कोडिईई निर कोळ्मेल् ।।
येळुमुळ माइरत्तांडेंवत्तु नानुगु निर्कुम् ।
मुळु विल्लैङ्युरु कोडाकोडि मूवारु मुन्निर् ।।५७६।।

अर्थ-उन विद्याधरो के शरीर का उत्सेद पाच सौ धनुष से कम नही रहता है। और उनकी जघन्य आयु सौ वर्ष से कम नही होती है और पूर्व करोड से अधिक आयु उनकी नही होती है। दुखमा, दुखमा-दुखमा यह दोनो काल चौरासी लाख वर्ष प्रमाण है। पाच सौ धनुष अठारह कोडा कोडी काल प्रमाण है। पहले कहे हुए उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी दोनो काल के प्रमाण है। उत्सर्पिणी काल मे आयु व शरीर का उच्छेद होता है। और अवसर्पिणी काल मे आयु व शरीर का उच्छेद कम होता है।।५७६।।

नागत्तौ सूळ्दु नागत्तौप्पोल निकुँ ।
नागैत्तौ विळंगि नागं नागत्तौ चूळं्द वांगु ।।
नागत्तौ यडॅद नागर् नागत्तौ येंड्रु नन्नार् ।
नागत्तु किरैव वेंड्रा नागत्तु किरैवन् ट्राने ।।५७७।।

अथ—लातव कल्प के आदित्य देव ने धरणेंद्र से पुनः कहा कि हे भवन के अधिपति! विजयार्द्ध पर्वत के चारो ओर काले मेघ के समान बडे २ हाथी रहते हैं। और जाही जूही के फूल के समान बेल चारो ओर वहा फैली हुई है। उस पर्वत मे जन्म लेने वाले देवो को उसको छोडकर जाने की इच्छा नही होती है ।।५७७।।

मरुविला पळिगिर् पाय्दं मरगत कदिरै मान्ग ।
लरुगण करित्तु कान नीरन सेलव पोलुं ।।
वेरिमलर् दुदैद नील मणित्तल दगत्तो चंड्रु ।
कुरुगु वर् कुवळै वट्ट मेंड्रु कोल वळै नारे ।।५७८।।

अर्थ—उस पर्वत की पृथ्वी स्फटिक मणि मे जैसे मरकत का पत्थर जोडा गया हो और जोडने से उसके प्रकाश को देखकर वहा के रहने वाले हरिण, इस को हरा भरा घास समझ कर खाने को दौडते है अथवा इसको पानी समझकर पीने को दौडते हैं। उसी प्रकार वहा की भूमि अत्यन्त शोभायमान है। और उस नीलमणि रत्नो से युक्त भूमि को देखकर वहां रहने वाली स्त्रिया अत्यन्त आतुरता से मानो पानी का सरोवर है ऐसा समझकर वहा जाकर देखने लगती हैं ।।५७८।।

वेळ मुम्मदवुं विळै तेरलुं ।
वाळैइन् कनियुं सुळयुं मळाय् ।।
वीळुं वेळ्ळरु वित्तिरळ् वेर्पिदन् ।
सूळु माळि मुळंगुव दुःखुमे ।।५७९।।

अर्थ—उस विजयार्द्ध पर्वत से उत्पन्न होने वाला पानी कैसा है सो बताते है। जैसे हाथी के कर्ण मल, कपोत मल जैसा उत्पन्न होता है उसी प्रकार उस पर्वत मे पानी के झरने निकलते है। और पर्वत की चोटी पर से पानी के गिरने की बडी कलकलाहट की आवाज होती है ।।५७९।

वरुडैपाय वेळुदं मणित्तुगळ् ।
कदिर गळा येळिल् वानै सेरिंदन ।।
मरि यिय मानिदि यांलि मलै मिशै ।
इरुदु नीळ् विळु तींड्रदु पोंड्रवे ।।५८०।।

अर्थ —इस प्रकार सपत्ति से युक्त उस पर्वत पर अष्टापद जीवो के भागते समय वहा की पृथ्वी से धूल उडती है वह आकाश मे फैलकर सूर्य के प्रकाश को ढक देती है। जैसे बड के वृक्ष की जटाएं नीचे तक चारो ओर फैल जाती हैं उसी प्रकार विद्याधरो के विमान नीचे उतर कर आते है और उसी प्रकार वह धूल ऊपर से नीचे आती है ।।५८०।।

मलैकन् वंजियं कुंवन् विन् सोला ।
रलत्तकम् सेरिंदजिलं पारडि ।।
तलत्तोळुंद सेंदामरै पोदुपो ।
निलतगम् पोरुंदिक्किडंदवे ।।५८१।।

अर्थ–उस विजयार्द्ध पर्वत पर रहने वाली स्त्रिया अत्यन्त मधुर वचन बोलने वाली तथा पाव मे बधे हुए नूपुर के मधुर शब्द करने वाली, अनेक अलकार से युक्त, अत्यन्त सुन्दर रूपवान हैं। और जब वे स्त्रिया चलती है तो उनके पाव के तलवे मानो लाल कमल ही उछल कर गिर रहे हो—इस भाति प्रतीत होते हैं ।।५८१।।

पेंवोनन् पवळम् पडिगं मणि ।
योंबदि नोळि यड् कळंदुळळु लाय् ।।
वंबुकोंडु किडंदवे माल्वरै ।
युंबर कोन् विल्लुरंगुव दुःखुमे ।।५८२।।

अर्थ–वह पर्वत स्वर्ण, स्फटिक, नीलमणि आदि नवरत्नो से निर्मित अत्यन्त प्रकाश से युक्त है। उस पर्वत को देखने से ऐसा मालूम होता है कि जैसे कोई शहर ही सोया हुआ हो। ऐसा वह पर्वत प्रतीत होता है ।।५८२।।

येरिसुरा उयर्दा निडं पोंड्ळिल् ।
वेरियुला मलर् पदरं मिल्लनै ।।
सेरियुं विजयर् सेइळै यारोडुं ।
कुरैविला कुरुवंदव रोप्परे ।।५८३।।

अर्थ—सुगधित लताओ से तथा मंडपो से युक्त तथा रत्नों को धारण किये हुए स्त्रियो के साथ वहा रहने वाले विद्याधर कुमार उत्तरकुरु नाम के उत्तर भोग भूमि मे जैसे मनुष्य विषय भोगो को भोगते है उसी प्रकार विद्याधर इन्द्रिय भोगो का अनुभव करते हैं। ।।५८३।।

किन्नर मिदुनम् सैद गीत माय्न् ।
तिन्नरंबि नेळुंद वेळाल् वळि ।।

मिन्निनाडु मरबयर् मेवलार् ।
पोन्नुलगडु पोलु मोर् पालेलाम् ।।५८४।।

अर्थ—उस विजयार्द्ध पर्वत के एक ओर वीणा, वाद्य, सगीत सहित वहा की रहने वाली शशिदेवी विद्याधरिया अत्यन्त शोभायमान नृत्य करती हैं। उस नृत्य कला को देखकर ऐसा मालूम होता था जैसे स्वर्ग की अप्सराये ही नृत्य कर रही हो ।।५८४।।

कोंगु वागै कुडिसं कुरुंदुनल् ।
वेंगै सेन्नवगं तन्नवगं पाडलं ।।
वांगु वाळयुं ताळैयुं पुण्णैयुं ।
पांगिनोगिन पार्मिशै इल्लये ।।५८५।।

अर्थ–उस पर्वत पर नारियल के वृक्ष जाहीजूही की लता, नीबू का झाड, ताड वृक्ष, केले के झाड तथा चम्बल आदि नाम के अनेक जाति के वृक्ष अनेक प्रकार के सुन्दर २ फूलोदार सुगन्धित वृक्ष आदि उस पर्वत पर हरे भरे सुशोभित दिखाई देते थे। उस पर्वत की उपमा देने को ससार मे ऐसी अन्य और कोई वस्तु नही हैं ।।५८५।।

कळ्ळु मीळ्दल रुंकळ् नीर् चुनै ।
पुळ्ळोलिप्प वंडार् तेळुं पूम् पोगै ।।
वेळ्ळ मार्डुळ विड्रि विळैवय ।
ळुल्ल वण्ण मुरैत्तर् करियवे ।।५८६।।

अर्थ—कनेर के पुष्प, अनेक प्रकार की लताओ मे लगे हुए पुष्पो की वाटिका, पानी का तालाब, हरे भरे वृद्धिगत धान की फसल, वहा की अत्यन्त सुन्दर भूमि, सुगन्धित धान की बाली आदि का वर्णन कहा तक किया जावे, वहा की भूमि अत्यन्त सुन्दर व अवर्णनीय है। ।।५८६।।

मट्रिद मलै मिसै वडत्तेन् सेडियिर् ।
कोट्रव रुरै पदि कोडियूर् गळार् ।।
सुट्र पट्टि रुंदवै तूट्रोरु बदिर् ।
ट्रेकोरु पुरिनल दरणि तिलगमे ।।५८७।।

अर्थ—इस विजयार्द्ध पर्वत पर उत्तर दक्षिण श्रेणी मे करोड से अधिक सख्या के ग्रामो से चारों ओर घेरे हुए विद्याधर राजाओ के नगर थे। वह नगर एक सौ दस थे। वहा की श्रेणी मे धरणी तिलक नाम का एक नगर है। ५८७।।

कोडिमिडै गोपुर वीदि वायलां ।
वडिवुडै मगळिरुं मैदरुं मलिन्दन् ।।

तडियिडु मिडंबेरा दडयुं मानगर् ।
कडलिडं नदिपुगुं काक्षि दागुमे ॥५८८॥

अर्थ—उस धरणी तिलक नगर मे अधिक से अधिक ऊचाई मे तथा ध्वजाओ से युक्त गोपुर थे। और गोपुर के आसपास बडी २ गलिया थी। उस नगर मे सुन्दर स्त्रियो की इतनी भीड रहती थी कि जिससे आने जाने मे बडी बाधा होती थी। इस प्रकार स्त्रियो व पुरुषो से भरा हुआ वह नगर था। उस गली मे आने जाने वाली स्त्रिया तथा पुरुषो के चलने फिरने मे ऐसे शब्द होते थे जैसे पर्वत पर से नदी के पानी के गिरने की आवाज होती है। यदि खडा होकर वहा के लोगो के आवागमन को देखा जावे तो ऐसा मालूम होता था कि जैसे नदी के दोनो किनारे बह कर जा रहे हो ॥५८८॥

सुर वुयर् कोडियुडै तोंड्रल् काळैयर् ।
नरै विरि मरै मलर् नंगै मंगयर् ॥
पोरि यिरु पुलंगळं मेग भूमिय ।
दरिवन तळि नगर् पोलु मानगर् ॥५८९॥

अर्थ—ऐसे उस महानगर मे निवास करने करने वाली तरुण स्त्रिया सर्वगुण सम्पन्न व रूप मे सुन्दर, मधुर शब्दो से युक्त एक क्षण मे मन्मथ को वश मे करने वाली थी। वहा के रहने वाले मनुष्य इष्ट विषय व काम सेवन मे यहा के मनुष्यो के समान ही भोग भोगते थे। जैसे अर्हंत भगवान का समवसरण ही यहा उतरा हो ऐसा सदैव वह नगर प्रतीत होता था ॥५८९॥

नरंवि निन्नोलि नाडग माडुनल् ।
लरंवै यरनै यारोलि याय् पिळि ॥
सुरुंबुनुं मौलि सूदेरि कोदयर् ।
करुंवि नन् मोळि युं कव्वै सेय्युमे ॥५९०॥

अर्थ—उस नगर मे वीणा के तथा नृत्य करने वाली स्त्रियो की पैजनी के मधुर शब्द कान मे अत्यन्त मधुर सुनाई दे रहे थे। अनेक प्रकार के विषय भोग सबधी अनेक कलाओ से स्त्री और पुरुष युक्त थे। ऐसे स्त्री और पुरुष उस नगर मे निवास करते थे ॥५९०॥

मळै युन् मिन्नन माळिगैयू डुला ।
मुळैय नार् पुरुवत्तुरु वच्चिलै ॥
कुळैय वांगि विडुड् कनस् पुळ्ळपुग ।
वळलुं कव्वै यमरं दतंरोर् पाल् ॥५९१॥

अर्थ—उस नगर मे महलो पर इधर उधर घूमने वाली सुन्दर स्त्रियो की आंखे

हरिणी की आख के समान अत्यन्त सुन्दर दीख पडती थी । वे तरुण स्त्रिया कटाक्ष दृष्टि से जिस मनुष्य की ओर देख लेती थी उसी मनुष्य को अपने नेत्रो के कटाक्ष से वश में कर लिया करती थी ।।५६१।।

मदि यडंद नेडुड् कोडि माडवूर् ।
कदिबन् विजंयर् कोनदि वेगनाम् ।।
निदिइरंडन नीडिय तोळि नान् ।
विदिइन् विजै कडंद नेडंदगै ।।५६२।।

अर्थ-उस नगर मे आकाश मे चद्र मडल को स्पर्श करने वाली ऐसी बडी २ ऊंची २ ध्वजाएं थी । ऐसी ध्वजाओ से अलकृत धरणी तिलक नाम का वह नगर था । उस नगर का अधिपति पद्मनिधि के समान सम्पूर्ण पुरुषो की तथा नगर निवासियो तथा याचको की इच्छा पूरी करने वाला सभी विद्याओ मे निपुण अतिवेग नाम का राजा था ।।५६२।।

विलक्किला विळुनि दिर्वेंड्र यायुवा ।
मिलक्कन मिया वयु मिरुंद कोंव नाळ् ।।
सुलक्कनै यां पेयर् तुनार् गडोळ् वलि ।
विलक्किय पुयत्तदि वेगन ट्रेविये ।।५६३।।

अर्थ—शत्रु राजाओ के भुजबल को नाश करने की शक्ति रखने वाले उस राजा अतिवेग की सर्व प्रकार के गुणो से सम्पन्न जैन धर्म मे परायण तथा धर्म मे आसक्ति रखने वाली सर्व सुन्दर सुलक्षणा नाम की पटरानी थी । यह पटरानी पूर्वजन्म मे रामदत्ता का जीव ही यहा आकर सूर्य के प्रकाश के समान चमकने वाली महारानी हुई । इस सुलक्षणा पटरानी के गर्भ मे भास्कर नाम का देव का जीव आया और नव मास पूर्ण होने के बाद श्रीधरा नाम की कन्या उस पटरानी के उत्पन्न हुई ।।५६३।।

परुदिइन् नोळियळां पावै तानवळ् ।
वरु शिलै तिरुनुदन् मामडंदै पार् ।।
ट्रिरुवेन तोंड्रिनाळ् शीदरै यदाम् ।
मरुविय पुरुळ् वळि वंद नाममें ।।५६४।।
कोट्र व नाम् कुलमल इर् ट्रोंड्रिय ।
कर्पुडै सुलक्कनै कनग पाति युळ् ।
कर्पग कोडियदु वळरंदु कामरुं ।
पर्पुडै मुलैयरुं पेळुंदु पूतवे ।।५६५।।

अर्थ—अतिवेग नाम के कुलपर्वत के समान गभीर और पतिव्रता श्रेष्ठ लक्षणों

वाली सुलक्षणा नाम की पटरानी के श्रीधर नाम की पुत्री जिस प्रकार श्रेष्ठ भूमि मे कल्प लता उत्पन्न होकर फैल जाती है उसी प्रकार वह पुत्री क्रमश बढने लगी ।।५६४।।५६५।।

मुत्तनि मुगिन् मुलै मुळरि वानमुग ।
तत्तैयङ् किळवियै तरुशगनेनुं ।।
वित्तग नळगैयान् वेंदर् कीदं नर् ।
मुत्ति पेट्रारै मुत्तानं मूर्तिये ।।५६६।।

अर्थ—वह श्रीधरा अनेक प्रकार के मोती, माणक आदि के कठो को गले मे धारण करके कमल के समान मुख वाली वह कन्या अत्यन्त सोभाग्यशाली थी। उस श्रीधरा कन्या का अत्यन्त पराक्रमी दर्शक नाम से प्रसिद्ध अलकापुर के अधिपति के साथ विधि पूर्वक विवाह सस्कार कर दिया गया। वह दर्शक सदैव अपनी श्रीधरा रानी के साथ विषय भोग मे तल्लीन रहता था ।।५६६।।

अळमुं कुळल्गळुं तिरुत्ति यम्मलै ।
इळ मईलनय वळोडौ यंदरा ।।
नुळमलि युवगै नोडु नाळिनाल् ।
वळरोळि वैडूर्य प्रभै वानवन् ।।५६७।।

अर्थ—नवरत्न आदि आभरणो से तथा अनेक गुणो से सुशोभित वह श्रीधरा और उसके पति दोनो काम भोग मे समय व्यतीत करते समय जैसे मोती से मोती और माणक से माणक मिलने मे चमक व प्रकाश अधिक बढता है, उसी प्रकार वे विषय भोग मे दोनो मग्न थे ।।५६७।।

इरै वळै इरामै तन्निळय काळैमेर् ।
पिरविलेन् वयिर् पिरक्कु माय् विडि ।।
निरैतव पयनेना निनैत सिंदइन् ।
मरुविला तिरुविनाळ् वेट्र ट्रोडिना ।।५६८।।

अर्थ—पूर्व मे रामदत्ता आर्यिका ने पूर्णचन्द्र के राजमहल मे यह निदान बध कर लिया था कि यह मेरा छोटा लडका पूर्णचन्द्र ही मेरा पुत्र हो। ऐसा निदान बध कर लेने से उसी पुत्र का जीव गर्भ मे आया। और वह श्रीधरा नाम की कन्या उत्पन्न हुई ।।५६८।।

मंगैयाय् मैद नाय् वाणिर् ट्रेवनाय् ।
मंगयाय् वैडूर्य प्रभन् ट्रोड्रिनान् ।।
इगिदु माट्रिन् दियल्वि सोदरं ।
सेंगय निडुंगन तिरुविनाममे ।।५६९।।

अर्थ—पूर्व जन्म मे वारुणी का जीव स्त्री मरण करके पूर्णचद्र हुआ था और वह मरण करके पुनः उस श्रीधरा रानी के गर्भ मे आकर लडकी उत्पन्न हुई। वढते २ वह कन्या सर्वगुण सम्पन्न हो गई। तव उसका नाम यशोधरा रख दिया। ससार की विचित्रता वलवान है। यह सव मोह की माया है ।।५६६।।

अंगयु मडिगळु मलरंद तामरै ।
कोंगयुं कुळल्गळुं कुरुवै कोंडूयाम् ।।
वेंगयर् पोरुव कन्वेयै वेंड्र तोळ् ।
पंकय मलर् मिसै पावै पावये ।।६००।।

अर्थ—उस यशोधरा का मुख लाल कमल के समान अत्यन्त सुन्दर था। उसके नेत्र हिरणी के नेत्र के समान एवं भृकुटी इन्द्र धनुप के समान थी। इस प्रकार वह कन्या सुशोभित होकर पृथ्वी को शोभित करने लगी ।।६००।।

मेघरवत्तोडु मिडैदं पेरोलि ।
पागर पुरत्तव रिरैवन् पारोडु ।।
नागर् तं मिडत्तै युंम नडुक्कुं विजैगट् ।
काकरन् सूर्या वरुत्तनागुमे ।।६०१।।

अर्थ—वहां मेघ की गर्जना के समान आवाज करने वाली तथा सूर्य के प्रकाश के समान प्रकाशवान, ऐसा भास्कर नामक नगर का अधिपति प्रतापी सूर्यावर्त नाम का राजा राज्य शासन करता था ।।६०१।।

निरैमदि यनय मुक्कुडै नीळलि ।
निरैवन तिरुंदडि निरुंद सिंदयान् ।
पोरिकडम् पुलंगन् मेन् मिक्क पोळ्दिर्नु ।
नेरियला नेरिच्चेला नीदिया नवन् ।।६०२।।

अर्थ—वह सूर्यावर्त राजा सूर्य के समान प्रतापी, शत्रु समूह को सदेव परास्त करने वाला, अत्यत धार्मिक था। देव, शास्त्र, गुरु मे भक्ति रखने वाला, शीलगुण सम्पन्न, चार प्रकार के दानो मे हमेशा रत तथा सदैव जीवों पर दया करने वाला, तीन छत्रो के नीचे रहने वाला तथा सदैव भगवान के चरण कमलों की पूजा मे रत रहता था। वह धर्मज्ञ तथा पापभीरु भी था ।।६०२।।

आट्रन् सूंड्रान् मलै यरसर् तम् वलि ।
माट्रिय पुयवली मट्रमंगै तन् ।।

नेट्रिय वडं सुमंदेळुंद कोंगयै ।
याट्रुळि वेळ्विया लन्न लैंदिनान् ।।६०३।।

अर्थ—उत्साह शक्ति, आलोचना शक्ति, प्रभुत्व शक्ति इन तीनो शक्तियो से युक्त, विजयार्द्ध पर्वत पर रहने वाला, सब राजाओ को अपने आधीन करने वाला वह सूर्यावर्त राजा अलकापुरी का अधिपति था। उसका श्रीधरा की कूख से जन्म लेने वाली यशोधरा नाम की कन्या के साथ जैन उपाध्यायो के द्वारा विधि पूर्वक पाणिग्रहण सस्कार किया गया और यशोधरा उसकी पटरानी बनी ।।६०३।।

आर्यावर्तत्तुळ् लारैप्पोलवच ।
सूयांवर्तनु तोगै तन्नलं ।।
वारिवर्तत्तुळ् ळमिळ्दिन् वांगिय ।
तारियान् परुगुनाळ् शासरत्तिनुळ् ।।६०४।।

अर्थ—आर्यावर्त नाम की उत्तम भोगभूमि मे रहने वाले मनुष्य के समान यह सूर्यावर्त नाम का राजा अपनी पटरानी यशोधरा के साथ विषयभोग मे मग्न हो गया और आनद पूर्वक समय व्यतीत करने लगा ।।६०४।।

कामरुं देवियर् वदनत्तामरै ।
तेमरु वंडेन सेंगट् शीधर ।।
नामद यानै शासरत्तिन् वळियिप् ।
पूमरु कुळलि तन् पुदल्व नाईनान् ।।६०५।।

अर्थ—सुलक्षण से युक्त, देवागना के तुल्य, कमलपुष्पवत् सुन्दर वदन वाली यशोधरा थी और कमल को जिस प्रकार भ्रमर सदैव उसकी सुगन्ध के लिये घेरे रहता है, उसी प्रकार पूर्व जन्म मे हाथी की पर्याय मे सभी हाथियो से घिरा हुआ अशनी कोड नाम के हाथी ने पचाणुव्रत ग्रहण करने के फल से सहस्रार कल्प मे जन्म लिया हुआ वह श्रीधर देव अपनी आयु को पूर्ण करके वहा से यशोधरा रानी के गर्भ मे आ गया ।।६०५।।

श्रीधर निशोधरै शिरुवनाय् मन्निर् ।
केदमाम् तिमिर् केड किरण वेगनाय् ।।
मादिरं तन्नयुं वनवकु विजया ।
लोदनोर् वट्टत्ति नोरुव नाईनान् ।।६०६।।

अर्थ—उस श्रीधर देव का जीव यशोधरा देवी के गर्भ से जन्म लेकर पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्र का नामकरण सस्कार करके किरणवेग ऐसा नाम रखा गया। अब वह अपनी विद्या के सामर्थ्य से समुद्र से घिरा हुआ उस पृथ्वी मे जन्म लेकर उपमा रहित हो गया।।६०६।

कुंजिगळ् करुवळै सुरुळिन् कोत्तन ।
मंजिला मदियिन दियर्कै वान् मुगं ।।
कुंजर तडक्कै तिन् पुयंगन् मार्वगं ।
पंजिन् मेल्लनैनल पदुमै कन्बवे ।।६०७।।

अर्थ—उस किरण वेग के सर के वाल स्त्रियो के हाथो मे रग विरंगी चूडिया जैसे चमकती है, वैसे चमकते थे । उसका मुख कलकरहित चंद्रमा के समान सुशोभित था । उनके हाथ हाथी की सून्ड के समान थे । उनका वक्षस्थल लक्ष्मी निवास करने के स्थान के समान अत्यन्त विशाल था ।।६०७।।

इडै यरि येट्रिन् तिडैयौ वेंदरन् ।
तुडै कडन् माळिगै तून्गळ् पोलुमे ।।
नडै विडै योदुक्कुमा नळिनं कालडि ।
यडैयलर् करि योडु कूट्र मन्ननै ।।६०८।।

अर्थ—उस किरणवेग का कटिभाग सिंह के कटिभाग के समान शोभायमान था। उनके पांव कदलीस्तम्भ के समान तथा वह तरुण साड के समान यौवनवान दीखता था । चलते समय उनके पांव के तलवे कमल पुष्प के समान दीखते थे । उनके आस पास के देश के शत्रु राजा उनको देखकर कांपते थे । ऐसा वह पुत्र महान पराक्रमी था ।।६०८।।

कलै गुण नूल्गळिर् कामनन्न वन् ।
मलै मिसै मन्नर्द कण्णि वल्लि कन् ।।
मुलै मलि भोगत्तिन् मीइमुवन् मोळ्गुना ।
निलै इन्मै सूर्यावरुत्त नेन्निनान् ।।६०९।।

अर्थ—वह किरणवेग सगीतादि ६४ कलाओ मे परिपूर्ण तथा मन्मथ के समान यौवनावस्था को प्राप्त हुआ था। ऐसा वह किरणवेग विजयार्द्ध पर्वत पर रहने वाली कुमारी के साथ विषय भोग आदि का आनन्द पूर्वक सुख भोगता था। वह आर्यावर्त राजा, यह संसार अनित्य है—ऐसा समझ कर अनित्य भावना का चितवन करने लगा ।।६०९।।

कळिट्रि नुक्करस निड्रालुम् कालवै ।
येळट्रि सेरिद पोदाव दिल्लैनम् ।।
वेळिट्रिनिर् कट्रिय विनैइन् वेतुय ।
रळट्रिन् वीळ् पोडु मुंड्रावदिल्लये ।।६१०।।

अर्थ—जिस प्रकार एक बलवान हाथी पानी पीने को जाते समय अपने दोनो पावो को कीचड मे फंसाकर शक्तिहीन हो जाता है और प्रयत्न करने पर भी उनके दोनो पाव

कीचड मे नही निकलते उसी प्रकार वह विचारता है कि मैं कर्मरूपी कीचड मे फंसकर उसमे उठकर ऊपर आने की शक्ति न होने के कारण ससार रूपी कीचड मे फसकर महान दुख को भोगने वाला हो गया हूँ। परन्तु मैंने उस कीचड से उठकर मैंने ऊपर आने का पुरुषार्थ नही किया। यह मेरी बडी भारी भूल है। पद्मनदी आचार्य ने भी तत्व भावना मे श्लोक ५ मे लिखा है —

"लब्ध्वा जन्म कुले शुचौ वरवपुर्बुध्वाश्रुत पुण्यतो ।
वैराग्य च करोति यः शुचितया लोके स एकः कृती॥
तेनेवोज्झितगौरवेण, यदि वा ध्यानामृत पीयते ।
प्रासादे कलशस्तदा, मणिमयो हेम.समारोपितः ॥

पुण्य के उदय से पवित्र कुल मे जन्म पाकर व उत्तम शरीर का लाभ कर जो कोई शास्त्र को समझ कर व वैराग्य को पाकर पवित्र तप करता है वही इस लोक मे एक कृतार्थ पुरुष है। यदि वह तपस्वी होकर मद को छोडकर ध्यान रूपी अमृत का पान करता रहे तो मानो उसने स्वर्णमई महल के ऊपर मणिमयी कलश ही चढा दिया है। अर्थात् आत्मध्यानी ही सच्चे तपस्वी हैं और वे ही कर्मो को काटकर मोक्ष के अधिकारी होते हैं। पुन विचार करने लगा कि—

दिनकर–करजाले शैत्यमुष्णत्वमिंदो. ।
सुर–शिखरिणि जातु प्राप्यते जगमत्वम् ॥
न पुनरिह कदाचिद् घोर–ससार–चक्रे ।
स्फुटमसुखनिधाने, भ्राम्यता शर्म पुंसा ॥६८॥ (तत्व भावना)

मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा, आत्मज्ञान रहित ही जीव चारो गतिमई ससार के चक्कर मे नित्य भ्रमण करता है। अज्ञानी को ससार ही प्यारा है। वह ससार के भोगो का ही लोलुपी होता है। इसलिए वह गाढे कर्मो को बाधकर कभी दुख, कभी कुछ सासारिक सुख उठाया करता है। उनको स्वप्न मे भी आत्मिक सच्चे सुख का लाभ नही होता है। आचार्य ने यहा तक कह दिया है कि असभव बातें यदि हो जाय अर्थात् सूर्य की किरणे गरम होती है वे ठडी हो जावे, व चद्रमा मे ठडक होती है सो गर्मी मिलने लगे तथा सुमेरु पर्वत सदा स्थिर रहता है सो कदाचित् चलने लग जाय परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव को कभी भी आत्म-सुख नही मिल सकता है। इसलिये हमे उचित है कि मिथ्यात्व रूपी विष को उगलने का उद्यम करें और सम्यक्दर्शन को प्राप्त करें। भेद विज्ञान को हासिल करे व आत्मा के विचार करने वाले हो जावे। इस ही उपाय से मुक्ति के अनन्त सुख का लाभ होता है। श्री पद्मनदि मुनि परमार्थ विशति मे कहते हैं-

दुःखव्यालसमाकुलं भववनं हिंसादिदोषद्रुमं ।
नित्य दुर्गतिपल्लिपातिकुपथं भ्राम्यन्ति सर्वेङ्गिनः ॥
तन्मध्ये सुगुरु-प्रकाशित-पथे प्रारब्धयानो जनः ।
यात्यानन्दकर परं स्थिरतरं निर्वाणमेकं पुरं ॥१०॥

इन दुखरूपी हाथियो से भरे हुए व हिंसादि पापो के वृक्षो को खोटे मार्ग मे नित्य पटकने वाले संसार वन मे सर्व ही प्राणी भटका करते हैं। इस वन के बीच मे जो चतुर पुरुष सुगुरु के दिखाये हुए मार्ग मे चलना शुरू कर देता है वह परमानन्दमई उत्कृष्ट व स्थिर एक निर्वाण रूपी नगर में पहुँच जाता है ।।६१०।।

मडंदयर् मनत्तिनुम् कडिदु मायं्दिडु ।
मुडंवोडु किळैयन् वुळ्ळं वैत्तवन् ।।
ट्रडंगन् वेम्मुलयवर् सूळचांबिय ।
मडंगल् पोल् मलै निंड्ृ निलैत्तिन् वंदनन् ।।६११।।

अर्थ—इस शरीर संबंधी पुत्र, मित्र. बंधु, बाधवादिक जितने भी दीखते है वे सब असद्भूत चारित्र है । और वे असद्भूत चारित्र होने से क्षणिक और चचल है, शीघ्र ही नष्ट होने वाले हैं । इस प्रकार वह आर्यावर्त विचार करके कि यह सब अनित्य है, एकत्व भावना का चितवन करने लगा और इस प्रकार भावना भाते समय उनकी महारानी आदि सब कुटुम्ब के लोग वहा उनके पास आये तब उनको सबोधन करके ससार की असारता का उपदेश देकर वैराग्य युक्त होकर विजयार्द्ध पर्वत पर से नीचे आ गये । और नीचे आकर उस जगल में घोर तपश्चरण करने वाले निर्ग्रंथ मुनिराज को देखा और देखते ही शीघ्रता से उनके पास जाकर भक्ति पूर्वक स्तुति करके बारंबार नमस्कार किया । तत्पश्चात् बहुत विनय के साथ उनसे प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभु ! अष्ट कर्मो के मर्मो को तथा स्वरूप को समझने की मेरी भावना है । कृपा करके उसको मुझे समझाकर प्रतिपादन करें ।।६११।।

मलैविन् मादवन् मामुनि चदिरन् ।
ट्रलैव नन्नवन् ट्रन् चरणंबुयम् ।।
निलनु रप्पणिदेत्ति निंड्ृन्विनै ।
फलमेनो पनिक्कॅड्ृ पानदनन् ।।६१२।।
अरिओडा लोगम् तन्नै यारिरुळ् पोल निंड्ृ ।
मरुदलै शेयं ज्ञान काक्षिया वरनं वाळि ।।
नेरियुं वायुइरंडि नोड्निम् नमिर्दम् पूशि ।
सेरिय नावैत्त लुक्कुं तीय नल् वेदनीयम् ।।६१३।।

अर्थ—तदनन्तर आर्यावर्त राजा की प्रार्थना को सुनकर वे मुनिराज कहने लगे- ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अतराय ये चार घातिया कर्म हैं और आयु,नाम,गोत्र, वेदनीय ये अघातिया कर्म हैं । ये घातिया कर्म आत्म स्वभाव को हमेशा घात करते आये हैं । इस कारण यह सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के निज स्वरूप को घातते हैं और ससार मे परिभ्रमण कराने वाले हैं । ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय जिस प्रकार अधकार मे रखी हुई वस्तु दिखाई नही देती उसी प्रकार दर्शन और ज्ञान का आवरण करके अपने आत्म-स्वरूप का आवरण कर देते हैं । और उसमे सात तथा असाता वेदनीय दोनो कर्म विष

और अमृत के समान है। जैसे मनुष्य खड्गधारा मे लगे हुए मधुबिंदु के लोभ से उसको जीभ से चाटता है और उसकी धार से जिह्वा कट कर खून निकलता है उसी प्रकार जिह्वा इन्द्रिय के लोभ के कारण ऐसा करने से साता कर्म मधु की बून्द है और असाता कर्म खड्ग की धार के समान है। श्री उमास्वामी ने तत्वार्थ सूत्र मे कहा है:—

"आद्योज्ञान-दर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीयऽऽयुर्नाम-गोत्रातरायाः ।।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गौत्र, अन्तराय ये आठ मूल प्रकृतिया हैं ।।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय,अन्तराय ये चार घातिया कर्म है। क्योकि जीव के अनुजीवी गुणो को नष्ट करते हैं। आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय ये चार अघातिया कर्म हैं। जलो हुई रस्सी की तरह इनके रहने से भी अनुजीवी गुणो का नाश नही होता। अब जीवो के उन गुणो को कहते है जिनको कि कर्म घातते हैं'।

केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनतवीर्य और क्षायिक सम्यक्त्व तथा क्षायिक चारित्र और क्षायिक दानादि इन क्षायिक भावो को तथा मतिज्ञान आदि (मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय) क्षायोपशमिक भावो को भी ये ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्म घातते है। अर्थात् ये जीव के सम्पूर्ण गुणो को प्रगट नही होने देते। इसी वास्ते ये घातिया कर्म कहलाते है।

अब अघातिया कर्मो का कार्य बताने के लिए पहले आयु कर्म का कार्य बतलाते है।

कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ और मोह अर्थात् अज्ञान, असयम तथा मिथ्यात्व से वृद्धि को प्राप्त हुआ ससार अनादि है। उसमे जीव का अवस्थान रखने वाला आयु कर्म है। वह उदय रूप होकर मनुष्यादि चार गतियो मे जीव की स्थिति करता है। जैसे कि काठ–(खोडा) जेलखानो मे अपराधियो के पाव को बाध रखने के लिये रहता है, अपने छेद मे जिसका पैर आ जाय उसको वाहर नही निकलने देता। उसी प्रकार उदय को प्राप्त आयु कर्म जीवो को उन २ गतियो मे रोक कर रखता है।

अब नाम कर्म का कार्य कहते है —

नामकर्म, गति आदि अनेक तरह का है। वह नारकी वगैरह जीव की पर्यायो के भेदो को, तथा जीव के एक गति से दूसरी गति रूप परिणमन को कराना है। अर्थात् चित्र-कार की तरह वह अनेक कार्यों को किया करता है। भावार्थ—जीव मे जिनका फल हो सो जीव–विपाकी पुद्गल मे जिनका फल हो सो पुद्गल–विपाकी, क्षेत्र–विग्रह गति मे जिनका फल हो सो क्षेत्र–विपाकी तथा च शब्द से भव–विपाकी। यद्यपि भव–विपाकी आयुकर्म को ही माना है; परन्तु उपचार से आयु का अविनाभावी गति कर्म भी भव–विपाकी कहा जा सकता है इस तरह नाम कर्म जीव–विपाकी आदि चार तरह की प्रकृतियो के रूप परिमणन करता है।

अब गोत्र कर्म के कार्य को कहते है.—

कुल की परिपाटी के क्रम से चला आया जो जीव का आचरण उसकी गोत्र सज्ञा

है। उसे गोत्र कहते हैं। उस कुल परम्परा मे उत्तम आचरण होय तो उसे उच्च गोत्र कहते है। जो निंद्य आचरण होय वह नीच गोत्र कहा जाता है। जैसे सियार का एक वच्चा वचपन से सिहनी ने पाला, वह सिह के बच्चो के साथ ही खेला करता था। एक दिन खेलते हुए वे सब बच्चे किसी जगल मे गये। वहा उन्होने हाथियो का समूह देखा। देखकर जो सिहनी के वच्चे थे वे तो हाथी के सामने हुए, लेकिन वह सियार जिसमे कि अपने कुल का डरपोकपने का संस्कार था—हाथी को देखकर भागने लगा। तब वे सिंह के बच्चे भी अपना बडा भाई समझकर उसके साथ पीछे लौटकर माता के पास आये। और उस सियार की शिकायत की कि हमको शिकार से इसने रोका। सिहनी ने उस सियार के बच्चे से एक श्लोक कहा जिस का मतलब यह है कि हे वेटा! तू अब यहा से भाग जा, नही तो तेरी जान नही बचेगी।

शूरोसि कृतविद्योऽसि, दर्शनीयोसिपुत्रक।
यस्मिन् कुलेत्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते ॥

अर्थ—हे पुत्र! तू शूरवीर है, विद्यावान है, रूपवान है परन्तु जिस कुल मे तू पैदा हुआ है, उस कुल मे हाथी नही मारे जाते।

भावार्थ—कुल का सस्कार अवश्य आ जाता है। चाहे वह कैसे भी विद्यादि गुणों कर सहित क्यो न हो। उस पर्याय मे सस्कार नही मिटता।

अब वेदनीय कर्म के कार्य को कहते हैं—

इन्द्रियो का अपने २ रूपादि विषय का अनुभव करना वेदनीय है। उसमे दुख रूप अनुभव करना असाता वेदनीय है और सुख रूप अनुभव करना साता वेदनीय है। उस सुख दुख का जो अनुभव कराये वह वेदनीय कर्म है ॥६१२॥६१३॥

मत्तत्तिन् मयक्कु मोगं वान् रळै पोलुमाय्।
चित्तिरक्कारि नाम शिरुमयुं पेरुमयुं शै ॥
गोतिर कुलाल नोक्कुं पोरुनैळिनै कोळामर काक्।
वैत्तवन् पोलुमंद रायंगन् मन्न वेंड्रान् ॥६१४॥

अर्थ—हे राजन्! यह कर्म इस प्राणी को चारो गतियो मे भ्रमण कराने का कारण है और अनेको दुखो को उत्पन्न करने वाले है। आयु कर्म जैसे अपराधी के पाव मे वेडी डाल देते है उसी प्रकार यह कर्म जकडे रहता है। जिस प्रकार चित्रकार चित्र को छोटा-वडा करता है, इसी प्रकार नाम कर्म है। शुभाशुभ ऊच नीच नाम यह कर्म ही करता है। गोत्र कर्म—कुम्हार जैसे वर्तन को छोटा वडा वनाता है, उसी प्रकार ऊँचा नीचा करना यह गोत्र कर्म का कार्य है। अतराय कर्म—जिस प्रकार राजा याचक लोगो को दान करता है और भडारी उसको दान देता देख कर रोक देता है उसी प्रकार अन्तराय कर्म आत्मा की शक्ति को प्रकट नही होने देता है। दर्शनावरणीय कर्म—जैसे दर्शन करते समय भगवान के मन्दिर का दरवाजा वद रहता है—दर्शन नही होता, उसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म आत्मा पर आवरण करता है ॥६१४॥

मुडिविला कोडुमै ताय मोगंदान् मुन्ममिल्ला ।
कडिय तीविनैगळेल्ला कट्टवे तानु कट्टु ।।
केडुवळितान् केडामुन् केडेंद विनैक्कु मुट्टा ।
तडुत्तलु करिय मोग मरसन विनैगेट् केड्रान् ।।६१५।।

अर्थ—हे राजन् ! अनेक प्रकार के दुख को देने वाला यह मोहनीय कर्म अनादि काल से आत्मा को दुख देता आ रहा है। जब तक मोहनीय कर्म का नाश नही होता तब तक आत्मा के साथ लगे हुए मोहनीय कर्म जनित दुःख भी नष्ट नही होते । यह कर्म महा बलवान है। जैसे सेना मे सेनापति प्रधान होता है उसी तरह आठो कर्मों मे मोहनीय कर्म प्रधान है। इस कर्म के नष्ट होने पर अन्य कर्म अपने आप खिर जाते है। इसको जीतना अत्यत कठिन है ।।६१५।।

मदियिना लार्व सेट्र मयक्कत्तान् विनयवट्रान् ।
कदिगळुळ् कळुमक्काय मारिलोंड्रामक्कायं ।।
पोदिय वैबोरियै याक्कुं पोरिगळार् पुळत्तमेवि ।
विदियिनाम् वेळकँ शेट्र मीदुमच्चुळट्रि यामे ।।६१६।।

अर्थ—अज्ञान से रागद्वेष तथा मोह उत्पन्न होता है। मोह से आत्मा मे कर्म का बध होता है। उन कर्मो से छह काय के जीवो मे जिस २ पर्याय मे जीव जाकर अपनी भावना के अनुसार पर्याय धारण करता है, वैसे ही पूर्व जन्म मे किया हुआ शुभाशुभ परिणाम के अनुसार पर्याय प्राप्त करता है। यह आत्मा अनादि काल से मोह के कारण अनेक पर्याय को धारण करता हुआ ससार मे परिभ्रमण करता आ रहा है ।।६१६।।

परियट्ट मिदनै वेल्वार् पान्मै यार् पान्मेइल्लार् ।
तिरिवट्टं पोल नानगु गदिगळुट् तिरिवरेन्न ।।
किरियेट्ट विरैमै तन्नै किरण वेगन् कन्वैत्तु ।
पोरियोक्क भोगं विट्टु पुरवलन् मुनिव नानान् ।।६१७।।

अर्थ—जो ज्ञानी भव्य जीव है वे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव को जानकर मोक्ष पुरुषार्थ के द्वारा तपश्चरण करके मोक्ष भी प्राप्त कर लेते है। इस मार्ग को न जानने वाले ससारी जीव कुम्भकार के चक्र के समान है जैसे चक्र एक ही जगह चक्कर करता रहता है उसी प्रकार यह जीव एक ही जगह भ्रमण करता रहता है। इस प्रकार मुनिराज ने आर्यावर्त को उपदेश दिया। उस उपदेश को सुनकर वह आनदित हुआ और पुन मुनियो को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके अपने नगर मे लौटकर आ गया। अपने पुत्र किरणवेग को बुलाकर उस नगर का अधिपति बनाया अर्थात् उसका राज्याभिषेक कर दिया। और मन, वचन, काय से सर्वसघ, कुटुम्ब परिवार आदि का त्याग करके जिनदीक्षा को धारण कर लिया ।।६१७।।

येरिमुयंगिलंगु वेळान् ट्रुरंद पिनिसोदरै यान् ।
करिकुळर् करुगट् सेव्वाय सूर्यावरुत्तन् ट्रेवि ।।

शिरिदरै योडुं शेंड्रु गुरण वदि पादं सेरंदु ।
वरिसैर् ट्रुरंदु मंजै मयिरु गुत्तिरुंद वत्तार् ॥६१८॥

अर्थ—उस आर्यावर्त राजा ने जिनदीक्षा लेने के पश्चात् रति तिलोत्तमा के समान रूप को धारण करने वाली वह यशोधरा व उसकी माता श्रीधरा इन दोनोने भी वैराग्य भावना को भाते हुए जिनमति नाम की आर्यिका के पास जाकर आर्यिका दीक्षा धारण कर ली ।६१८।

अंग पूर्वादि नूलु लच्चियर् कुरिय श्रोदि ।
वेंगडु काननन् मेवल् वेरु पट्टुरैंदल् विट्टु ॥
शिगनर् पाय्चलादि नोन् बोडु सेरिंदु सेंबोन् ।
वंगमे यनैय तोळ्गळ् वट्रिमाशडैय नोट्रार् ॥६१९॥
तवक्कोडि इरंडु पोल तांगरु कोळ्गै तांगि ।
युवत्तल् काय् विंड्रि शित्तत्तोत्तु निंड्रोळुगु नाळुळ् ॥
नवैक्केला मिडमिब्पोग मेंड्रु नर्किरण वेगन् ।
शिवत्तिरै युरइन् शित्तायदन नकूंडन् सेरंदान् ॥६२०॥

अर्थ—तदनन्तर इन दोनो आर्यिकाओ ने घोर तपश्चरण करते हुए अगाग, पूर्वांग आदि शास्त्रो का अध्ययन किया और त्रिकाय योग को धारण कर सिंह निष्कृत व्रत को धारण करके उपवास सहित घोर तपश्चरण करने लगी। तपश्चरण करके शरीर को कृश किया। और दोनो आर्यिकाए निर्दोष चरित्र को परिपालन करने लगी। इधर इस ससार को, इन्द्रिय भोगो को दुख का कारण समझ कर उस किरणवेग ने भली प्रकार से ससार भोगो के विषय को अच्छी तरह से जान लिया और विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण दिशा मे सिद्धायतन नाम के अकृत्रिम चैत्यालय मे गया ॥६१९ ६२०॥

ऐयैदुं कादमोंगि यागंड्रु नींडडि ईनुच्चि ।
यैं यैदिर पादि नीळ् मगलमाम् शिकरन् तन्नै ॥
पैयोंड्रुम् परवैयल्गुर् पट्टिगै सूदु पोल ।
मैयोंड्रि मलरंद कन्नार् वनप्पिर् काविरंडु सूळंद ॥६२१॥

अर्थ—वह विजयार्द्ध पर्वत पच्चीस कोस ऊचा व पच्चीस कोस ही चौडा था। उस के ऊपर शिखर था, उस शिखर की ऊंचाई साढे वारह कोस थी। उस पर अकृत्रिम चैत्यालय था उस चैत्यालय के चारो ओर दो उपवन थे ॥६२१॥

वेदिगै तोरणंगळ् वैदन कांतियारंद ।
सेदिय मरंगनान् नगु दिसै दोरुं सेरिदं कावु ॥
ळादियोडंद मिल्लावरिन् कोईलैदुम् ।
वीदिग डोरुं नान्गु गोपुरं विळंगु निंड्रे ॥६२२॥

अर्थ—उस चैत्यालय की वेदिया तोरण से घिरी हुई थी। उस चैत्यालय के चारो ओर अत्यत प्रकाशमान चैत्य वृक्ष है और जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने जाने को चार वीथी है। चारो वीथियो पर चार ही गोपुर है ॥६२२।

कनगनन्यरणियुं कंबम् कुमुदमुं पालिकालु ।
मननिरै भूतमांडु पावैगळ् कूडशालै ॥
विमैवेल्लं वेदमूं ड्ुम् पुराणमुं मेळुदि वैय्योन् ।
ट्रन दिडं प्रोंड्ु वेंड्रोर् तलै वन् दिरुक्कै यामे ॥६२३॥
आयतं कादमागि यदनरै यगल मागि ।
यायदन् काल् कुरैद तुयरना यमलमागि ॥
नीदिया निंड्र गंद कुडिगळु नूट्रिट्टागि ।
वायद लोर् मूंड्ु मुन्बु मंडयम् पलवुमामे ॥६२४॥

अर्थ—उस अकृत्रिम चैत्यालय के स्तम्भ रत्नो से निर्मित हैं जो अत्यन्त प्रकाशमान और शोभायमान दिखते हैं। और उसके बाहर नर्तन मडप मे जिस प्रकार नर्तकी नृत्य करती है उसी प्रकार के अनेक रगो से चित्रित चित्राम हैं। और आगम के अनुसार द्वादशाग भाव को वहा चित्रित किया गया है और उसमें अर्हंत भगवान के प्रतिमा कृत चित्र हैं। उस चैत्यालय के निचले भाग से ऊपर के भाग तक एक कोस चौडा, सवाकोस ऊचा और सवा कोस लम्बा इस प्रकार एक सौ आठ सख्या वाले मडप हैं ॥६२३॥६२४॥

स्तूपै चेदियमर वैजयंतयाम् ।
मा पेरुं कोडिमलिमानत्तंबनर् ॥
गोपुरन् कोडिनिरै तोरण मिवै ।
वापिमानंदयै यैद वंदवे ॥६२५॥

अर्थ—यह स्तूप चैत्यवृक्ष और वैडूर्य नाम के रत्नो की ध्वजा, महान सुशोभित मानस्तभ, विशेष सुन्दर गोपुर आदि यह सभी पूर्वी दिशा मे थे। जिनके आस पास कई तालाब थे ॥६२५॥

आडु मामिसै वंद किरण वेगनर् ।
कूडमालुरै विडंकुरगु मेल्लैयु ॥
नीडि यादिळिंदु पिन्निलत्तिन् मेलवरा ।
कोडुनीळगोपुरकडंदु कुंबिडा ॥६२६॥

अर्थ—वह किरणवेग अनेक प्रकार के विचित्र नृत्य करने वाली नर्तकी के समान चचल घोडे पर चढकर सिद्धायतन नाम के मडप मे जाने के लिये शीघ्रता से चैत्यालय के पास नीचे आकर घोडे से उतरा और थोडी दूर पैदल चल कर गोपुर के आगे आकर जिनेन्द्र

भगवान के मंडप मे गया और जैसे सुन्दर कमल की कली आपस मे जुडी हो उसी प्रकार दोनो हाथ जोडकर किरणवेग ने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया ।।६२६।।

मलर् कैई नेंदिमामेरु सूळ्वरु ।
मलर् कदि नरुक्क निर किरण वेगन् ट्रान् ।।
पलमुरै वलं वर परमन् कोइलु ।
निलैयुरु कदवंग नींगि निड्रवे ।।६२७।।

अर्थ—तत्पश्चात् वह किरणवेग अपने हाथ मे अत्यन्त सुगधित पुष्प लेकर जिस प्रकार मेरु पर्वत को सूर्य प्रदक्षिणा देकर आता है उसी प्रकार वह जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करता हुआ तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान के मंदिर मे जाता है और मदिर मे घुसते समय उस चैत्यालय के द्वार अपने आप खुल जाते है ।।६२७।।

केडुकल कंड वन्नाय् केन् केळिर् पोर् ।
कुडै मुम्मै नीळळं कोनै कांडलु ।।
मडि मिसै गलर् सोरिंदरट्रि येंबि नार् ।
पडि मिसै कळिरु पोर् पणिदेळुंदनन् ।।६२८।।

अर्थ—किवाडो के खुलते ही जिस प्रकार एक नाव नदी मे जाते समय रास्ता भूल कर दूसरी जगह जाने तथा पुन: प्रयत्न करने पर अपने सही रास्ते पर आ जाने से मल्लाह प्रसन्न होता है उसी प्रकार वह किरणवेग अर्हंत भगवान के प्रतिकृत को देखकर अत्यन्त संतोष व आनन्द सहित भगवान के चरण कमलो मे वह सुगन्धित पुष्प अर्पण कर साष्टाग नमस्कार करके खडा हो गया ।।६२८।।

मणि निलं सेंदनम् कोंडु मट्टिया ।
वणिप्पेर वरुच्चनै विदियि नंचिया ।।
विनैला रिरैवनै पणिदेळुंद पिन् ।
ट्रणि पडु विनय वन् ट्रुदि तोडगि नान् ।६२९।

अर्थ—तत्पश्चात् सुगन्धित चन्दन मिश्रित पानी से शुद्ध की गई भूमि पर बैठ कर अष्ट द्रव्य से भगवान की पूजा की व कर्म निर्जरा का कारण भूत अत्यन्त भक्ति पूर्वक जिन स्तुति की ।।६२९।।

अरिविना लरिय।द वरिवनी ।
पोरिइनाल् भोगिमल्लनि ।।
मरुविलाद गुणत्तुने वाळ्तु मा ।
ट्ररिगिलेनडि येनर वेंदने ।।६३०।।

अर्थ—भक्तिपूर्वक पूजा स्तुति करके वह किरणवेग प्रार्थना करता है कि हे प्रभो ! आपने मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ऐसे चार ज्ञानो को तथा पाचवे केवलज्ञान को प्राप्त करके चार घातिया कर्मों को नष्ट किया है और उस केवलज्ञान के द्वारा तीन लोक मे चराचर वस्तु को तथा उसकी द्रव्य पर्याय को जानने की शक्ति आपने प्राप्त की है। और पचेन्द्रिय क्षणिक सुख को विष के समान समझकर उसको त्याग करके अतीन्द्रिय शाश्वत सुख को प्राप्त किया है। आप मे अनन्त गुण विद्यमान हैं। हम अल्प ज्ञानियो मे स्तुति करने की योग्यता नही है। इसलिये हम आपके गुणानुवाद तथा स्तुति करने मे असमर्थ हैं ॥६३०॥

ओड्रि यावयु मुन्मै इनालेना ।
ओंड्रलामयु मुन्मयु मोदिना ॥
योंड्रिडादन पोलु निन्वाय् मोळि ।
योंड्रिडा विनै योड्ळ् वारुळम् ॥६३१॥

अर्थ—जीवादि द्रव्य द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा एक है और पर्यायार्थिक दृष्टि से अनेक है। ऐसा आपने अपने केवलज्ञानादि द्वारा बतलाया है। परन्तु आपके वचन पर मिथ्यादृष्टि लोग विश्वास नही करते हैं ॥६३१॥

नित्तमाम् पोरुळ् निड्र् गुणत्तेना ।
नित्तमु मर्लनिड्र् गुणत्तेना ॥
नित्त मुंड्रि निलाद निन्वाय् मुळि ।
नित्तमुं निनै वार् विनै नींगुमें ॥६३२॥

अर्थ जीवादि द्रव्य निश्चय नय से एक होने पर भी वह द्रव्यार्थिक अपेक्षा से नित्य है। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से अनित्य है। इसी प्रकार आपका वचन अनेकातमय है और अनेक प्रकार का है।

भावार्थ– ग्रथकार का कहना है कि भगवान की वाणी अनेकांतमय है। क्योंकि प्रत्येक पदार्थ उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप से युक्त है। द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा वस्तु नित्य है और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा अनित्य है। आलाप पद्धति मे कहा है कि—

"नयभेदा उच्यन्ते–अर्थात् नय के भेदो को कहते हैं —

णिच्छय-ववहारणाया मूलमभेया णयाण सव्वाणं ।
णिच्छयसाहणहेऊ दव्वयपज्जत्थिया मुणह ॥

सम्पूर्ण नयो के निश्चय नय और व्यवहार नय ये दो मूल भेद हैं। निश्चय का हेतु द्रव्यार्थिक नय है और व्यवहार का हेतु पर्यायार्थिक नय है। निश्चय नय द्रव्य मे स्थित है और व्यवहारनय पर्याय मे स्थित है। श्री अमृतचद्राचार्य ने भी समयसार मे गाथा ५६ की टीका मे "व्यवहारनयः किल पर्यायाश्रितत्वात्" निश्चयस्तु द्रव्याश्रितत्वात्" इन शब्दो द्वारा

यह बतलाया है कि व्यवहारनय पर्याय के आश्रय है और निश्चयनय द्रव्य के आश्रय है। अर्थात् निश्चयनय का विषय द्रव्य है और व्यवहारनय का विषय पर्याय है।

ववहारो य वियप्पो भेदो तह पज्जओ त्ति एयट्ठो ॥५७२॥ (गो जी.)
व्यवहारेण विकल्पेन भेदेन पर्यायेण। (समयसार गाथा १२ टीका)

व्यवहार, विकल्प, भेद और पर्याय यह सब एकार्थवाची शब्द हैं। क्योकि निश्चय नय का विषय द्रव्य है और व्यवहारनय का विषय पर्याय है। अत निश्चय नय का हेतु द्रव्यार्थिकनय है और व्यवहार का हेतु पर्यायार्थिक नय है ॥६३२॥

अलगिला वरि विन्कन् नडंगिवन् ।
दुलगेला मुळ्ळडंगिय उन्नै यन् ॥
मवमिलाद मनत्तिडै वैत्तपिन् ।
नलगि लामैय देन् कणदायदे ॥६३३॥

अर्थ—आप अपने केवल ज्ञान रूपी प्रकाश के द्वारा सर्व द्रव्य पर्यायो को एक ही समय मे जानने वाले है। हे भगवन्! आपके समान मेरे कलक रहित मन, वचन, काय से ध्यान करने से मेरे अन्दर भी आपके समान गुण आ जाते हैं।।६३३॥

वेरियार मलर् मोदु सेल् पोदु पू ।
मारियाय् मू वुलोग मेडुक्कु मा ॥
वीरिया दडियेन् विनैत्तीर नल् ।
वारि यावरु ळायर वेंदने ॥६३४॥

अर्थ—हे धर्मचक्र के अधिपति! हे त्रिलोकीनाथ! आप लाल कमल पर गमन करने वाले हैं। देवो के द्वारा पुष्प वृष्टि करने योग्य है। अनन्त गुण व अनन्त शक्ति से युक्त आप की स्तुति करने से कर्मो का नाश होता है। इस,कारण आप भक्ति,स्तुति के योग्य है। देवागम स्तोत्र मे समंतभद्राचार्य ने भगवान की स्तुति करते समय भगवान के प्रति यह प्रश्न उठाया कि हे भगवन्!

"देवागम-नभोयान-चामरादि-विभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान् ॥

हे भगवन्! आपके समवसरण मे देवो का आगमन, आकाश गमन, छत्र-चवर आदि की विभूति जो देखने मे आ रही है इसलिये आप यह कहते होगे कि इन विभूतियो के कारण मुनि हमारे दर्शन करते हैं। परन्तु इन विभूतियो के कारण से तो आप महामुनियो के द्वारा स्तुति करने योग्य नही हो सकते, क्योकि इस प्रकार विभूति तो मायामयी मस्करी आदि इन्द्रजालियो में भी पाई जाती है। देव आज्ञा-प्रधानी है, देवो का आवागमन व अन्य२ विभूति आपमे समझ कर हमारे समान परीक्षा प्रधानी स्तुति करना नही मानते है। इसलिए

स्तवन आगम के आश्रय है। इस स्तवन का हेतु देवो का आगम विभूति सहित है तो यह हेतु भी आगम आश्रित है। यह विभूति ऐसी है कि प्रतिवादी को तो प्रमाण सिद्धि नही देती है। सबसे पहले देवागम आदि को देखे बिना कैसे माने ? और आगम प्रमाणवादी के यहा भी माया आदि से प्रवर्तन करने वाला है सो इसको कैसे साधे ? पुन प्रमाणवादी कहते है कि जो सच्चा देव आगम आदि विभूति सहितपना भगवान मे है वह मायामयी मे नही है इसलिये वही हेतु (कारण)हो, यह विचार ठीक नही। इस प्रकार तुम कहोगे तो भी सच्ची विभूति भगवान के प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नही होती। आगम से यदि कहा जाय तो आगम प्रमाण है। इसलिए इस हेतु से भगवान आप सिद्ध नही होते है। सिद्ध भगवान मुझे पूछते हैं कि जो अतरग व बहिरग शरीरादि मोह जो हमारा है दूसरे का नही है इसलिये हम स्तुति करने योग्यहै। इसी प्रकार मेरी स्तुति करना चाहिये पुन आचार्यकहते है —

"अध्यात्मं बहिरप्येष त्रिग्रहादिमहोदयः।
दिव्यः सत्यो दिवौकस्स्वप्यस्ति रागादिमत्सु सः।२।(आ.मी.)

अध्यात्म अर्थात् आत्माश्रित, शरीराश्रित अतरग शरीर आदि का महान् उदय, पसीना आदि मलका न आना बाह्य देवो द्वारा किये हुए गधोदक वृष्टि, दिव्यपना ये बाते सच्चे मायामयी मे नही पाये जाते हैं। चक्रवर्ती आदि मनुष्यो मे यह दिव्य शरीर नही रहता। फिर भी हमारे द्वारा स्तुति करने योग्य आप नही हो सकते हैं। इस हेनु से भगवान आप हमारे स्तुति करने योग्य नही हैं। अतरग और बहिरगपना सच्चे इन्द्रजाली मे नही पाया जाता बल्कि कषाय रागादि सहित स्वर्ग के देवो मे पाया जाता है। इस कारण आप स्तुति करने योग्य नही है।

जो भगवान के घातिया कर्मो के नाश से ऐश्वर्यपना है, वैसा रागादि सहित देवो मे नही है। इसलिये हमारी स्तुति करना चाहिये। पर भगवान के घातिया कर्मो के नाश से उत्पन्न हुआ केवलज्ञान तो साक्षात् दीखता नही यह आगम आश्रित है।

इसके अलावा अन्यवादी जो प्रमाण सम्प्लव को मानने वाले अनेक प्रमाणो से सिद्ध मानते हैं। यह आगम प्रमाण से सिद्ध हुआ। इसमे कौनसा दोष है ? आचार्य इसका उत्तर देते हैं कि ऐसा प्रमाण सम्प्लव इष्ट नही है। प्रयोजन विशेष जहा होता है वहा प्रमाण सम्प्लव इष्ट है। पहले सिद्ध प्रामाण्य आगम से सिद्ध हुआ तभी उसके हेतु को प्रत्यक्ष देखकर अनुमान से सिद्ध करे, पीछे उसको प्रत्यक्ष जाने। वहा प्रयोजन विशेष होता है। ऐसे प्रमाण सम्प्लव होता है। केवल आगम से ही अथवा आगमाश्रित हेतु जनित अनुमान से प्रमाण नही। फिर काहे को प्रमाण सम्प्लव कहना। ऐसे २ विग्रह ऐश्वर्यों से भी भगवान परमात्मा नही माने जाते हैं। फिर भगवान्, समत भद्राचार्य को कहते है कि हमारा तीर्थकर सम्प्रदाय है। मोक्ष मार्ग स्वय धर्म तीर्थ को हम चलाते हैं। इस कारण हम स्तुति करने योग्य है। इसका आचार्य उत्तर देते है.—

"तीर्थकृत्समयानां च परस्परविरोधत।
सर्वेषामाप्तता नास्ति कश्चिदेव भवेद्गुरुः।३। (आ मी)

हे भगवन् ! यदि हम तीर्थकर कहेगे तो उसके द्वारा भव्य तिर जाते है, ऐसे धर्म-तीर्थ को आप करते हो तो इस प्रकार करने से तीर्थंकर कहेगे या तीर्थकर आगमन कहेगे तो इसमे भी परस्पर विरोध होता है। सभी मे आप्तपना नही है। इसलिये कोई एक गुरु स्तुति करने योग्य होता है, सभी देव नही होते।

हे भगवन् आप्त ! तुम्हारे तीर्थकरपने हेतु से महानपना साधे तो यह तीर्थकरपना अनुमान प्रमाण से तो सिद्ध नही होता। प्रत्यक्ष आप दीखते नही, और उसका लिंग भी नही दिखता। और आगम से साधे तो पूर्ववत् आगम का साधन ठहरे पुनः यह विचार हो। इस कारण इन्द्रादिक विषय मे भी असभव ही है। तो भी बौद्ध धर्म आदि अन्यमती भी सब अपने २ को तीर्थंकर माने हैं। फिर तुम्हारे मे और उनमे अन्तर ही क्या है। वे भी सर्वज्ञ नही। इस कारण परस्पर आगम विरुद्ध कहता है। जो विरुद्ध न कहे तो मतभेद काहे का। इसलिए तीर्थकरपने का हेतु है तो कोई भी इस महानपने को नही साधे।

यहा मीमासक मत वाले यह कहते हैं कि इसी से पुरुष तो कोई भी सर्वज्ञ महान स्तुति करने योग्य नही है, कल्याण के अर्थ तो वेद ही कल्याण के उपदेश का साधन है ?

वेद आप ही स्वय अपने अर्थ को नही कहता। वेद का अर्थ पुरुष ही करते हैं उनमें परस्पर मे विरोध देखा गया है। भट्ट के सम्प्रदायी तो वेद का वाक्यार्थं भावना को मानते है। प्रभाकर के सम्प्रदायी नियोग को वाक्यार्थ मानते हैं, वेदान्त वाले विधि को वाक्यार्थ मानते हैं। इनमे आपस मे विरोध है।

नास्तिकवादी चार्वाक तथा शून्यवादी यह कहते हैं कि जब कोई वस्तु ही सत्यार्थ नही है तब किसका आप्त और काहे की परीक्षा विवाद का प्रयास करना ? कोई वस्तु है ही नही इसका निश्चय कैसे करे ? तुम नास्तिक हो और यह कहते हो कि कोई वस्तु ही नही है तो तुम्हारी बात कौन मानेगा। क्योकि सर्व वस्तु का जानने वाला सर्वज्ञ आप्त है। वस्तु का स्वरूप कोई किस प्रकार मानता है कोई किस प्रकार मानता है इसकी परीक्षा भी करना चाहिये और परीक्षा होय तो प्रमाण सहित ज्ञान से होय है। प्रमाणरूप ज्ञान है और सर्वथा सच्चा ज्ञान सर्वज्ञ देव का है, सो वह सर्वज्ञ अदृष्ट है उसका निश्चय करना चाहिये। और जो थोडा ज्ञान वाला हो सो अपने ज्ञान के ही आश्रय होता है। सो साधक और बाधक प्रमाण का कैसे निश्चय होय। वादी प्रतिवादी निष्पक्ष निश्चय करे तो कोई प्रकार की बाधा नही होवे और इसी प्रकार निश्चय करना ही परीक्षा है।

फिर मीमासक कहते है कि अल्प ज्ञानी को तो सिद्ध होय और सर्वज्ञ की सिद्ध नही ऐसा कैसे ? जो अल्पज्ञ आत्मा की सिद्धि है उसके निषेध के लिये इस श्लोक मे "कश्चिदेव भवेद्गुरु ऐसा कहा है अर्थात् कहिये कौन गुरु है ? ज्ञानरूप आत्मा है वही गुरु है वही महान है। जिससे इस आत्मा और पुद्गल के सबध से ज्ञानावरणादि कर्मों के आवरण से अल्प-ज्ञपना दोषसहित पना है। जब आवरण दूर हो गया तो आत्मा सर्वज्ञ वीतराग हो गया। यह प्रमाण से सिद्ध है। ऐसा आप्त सर्वज्ञ का निश्चय हो जाय और भगवान के वचनो का निश्चय हो जाय और आगमानुसार सब निश्चय हो जाय। ऐसा निश्चय करके देवागमादि विभूति सहितपना से और विग्रहादि महोदयपना से तथा तीर्थंकरपना से तो आप्त सिद्ध न

हुआ। अत: भली प्रकार निश्चय हुआ है असंभवता बाधक प्रमाण जिसमे है ऐसे अर्हंत भगवान आप ही ससारी जीवो के स्वामी हो, प्रभु हो इस कारण अत्यन्त दोषो का और कर्मो के आवरण की हानि का तथा समस्त तत्वो का ज्ञातापना होनें से समस्त मुनियो ने आपका स्तवन किया है।

इस प्रकार आचार्य समतभद्र स्वामी ने निरूपण किया। तब साक्षात् भगवान ने पूछा जो अत्यन्त दोष और कर्मों के आवरण हानि मेरे मे निश्चय की सो कैसे ? फिर आचार्य कहते है —

"दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षय ॥४॥ (आ.मी)

दोष और आवरण की हानि सामान्य तो प्रसिद्ध है। एक देश हानि से थोडे ज्ञान वाले के एक देश निर्दोषपना और एक देश ज्ञानादिक उसकी हानि के कार्य देखिये है। इस कारण निर्दोष आवरण की हानि किस तरह देखिये है। यहा अति शायन अर्थात् हानि वृद्धि होती देखिये है जैसे कनक पाषाण मे कीट कालिमा आदि अदरूनी व बाहर का मैल ताव देने से मैल का अभाव हो जाता है वैसे अल्प ज्ञान के नाश के लिये जो सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के पालने से सब प्रकार के दोषो को तथा कर्मो के आवरण का अभाव हो जाता है, ऐसा सिद्ध हुआ है। कर्मो के आवरण तो ज्ञानावरणादिक कर्म पुद्गल के परिणाम है और दोष अज्ञान रागादिक जीव के परिणाम है। फिर यदि यहा कोई यह कहे जैसे अतिशायन हेतु दोषो के आवरण की हानि सपूर्ण साधी तैसे कहुँ बुद्धि आदि गुण भी हानि बधती २ देखिये है सो यह भी कही पूर्ण सधै है ? इसका यह उत्तर है कि बुद्धि आदि की सम्पूर्ण हानि आत्मा विषै साधते हैं तो आत्मा के जडपना आवे और जडपना आने से बडा भारी दोष लगे तो जीव और पुद्गल का सबध बध पर्याय मे क्षयोपशम रूपबुद्धि है। उसका अभाव होता है सो आत्मा का स्वाभाविक ज्ञानादि गुण तो सारा प्रकट हो जाता है और बध पर्याय का अभाव हो जाता है। पुद्गल कर्म जड रूप भिन्न हो जाता है उसी प्रकार पुद्गल के बुद्धि आदि गुण का अभाव का व्यवहार है। ऐसे वीतराग सर्वज्ञ पुरुष अनुमान मे सिद्ध होता है। इसलिये अर्हंत भगवान को नमस्कार किया है ॥६३४॥

मारि मुक्कुळिन् मायं्दु पिरंदुमार् ।
ट्रार नत्तिलेन् नाळ् तुयर् पोय दन् ॥
पार माय उन् पाद मडैद पिन् ।
वारि वीळंद वन् माल् करै सेंदरं् वाम् ॥६३५॥

अर्थ—हे भगवन् ! सम्पूर्ण जीवो पर दया करने वाले आपके चरणकमल मे शरण आये हुए जीव का सभी दुख नाश होता है। जिस प्रकार समुद्र मे पडे हुए मनुष्य को यदि बीच मे उसके हाथ मे कही लकडी का टुकडा मिल जावे तो वह मनुष्य उसके सहारे से समुद्र के किनारे पहुँच सकता है। उसी प्रकार तुम्हारे चरणकमल मे अल्प स्तुति करने मात्र से इस क्षणिक संसार रूपी अटवी मे रहने वाला भव्य जीव ससार समुद्र से तिर कर इष्ट स्थान पर

पहुँच सकता है ।।६३५।।

पोंगु शाय् मरै पूमळै मंडिलम् ।
शिंग मेदनै पिंडि सेळुं कुडै ।।
येंग यूवम दामोळि दुंदुभि ।
येंगडि विनै तीर वेळगुंमे ।।६३६।।

हे भगवन् ! आपके ऊपर ढोरने वाले चवर, पुष्प–वृष्टि, प्रभा मंडल, सिंहासन, अशोक, वृक्ष, मीन छत्र, दिव्यध्वनि और देववाद्य को देखते ही आपके दर्शन मात्र से सर्व पापों का नाश हो जाता है ।।६३६।।

विलकरसनैय वोक्काळै वीर नै ।
इलंगि निड्डि पळिदत्ति इव्वगै ।।
वलंकोंडु मुनियरि चंदिरन् नव ।
नलं कलं सेवडि मुडियिर् ट्रीटिनान् ।।६३७।।

इस प्रकार स्तुति करके राजा किरणवेग अनन्त वीर्य से युक्त जिनेन्द्र भगवान की अनेक प्रकार से स्तुति करते हुए प्रदक्षिणा देकर उस चैत्यालय के प्राकार तथा मंडप मे विराजमान भगवान के दर्शन कर सभामंडप मे आया और वहा सिंहचन्द्र मुनि को देखा। मुनिराज को देखकर मन, वचन, काय से भक्तिपूर्वक कर–बद्ध होकर पचाग नमस्कार करके खडा हो गया ।।६३७।।

अरुंतव नरसने कुशल मोविन ।
तिरुंदिय गुणत्तिना निरैदि शोय वेन् ।।
ट्रिरुंदव निळुंदु माट्रगत्तुं वोटिनुं ।
पोरुंदु कारण मरुळ् पोट्रियेंड्र नन् ।।६३८।।

अर्थ—उन मुनि ने किरणवेग राजा को सद्धर्म वृद्धिरस्तु ऐसा आशीर्वाद दिया अर्थात् सद्धर्म की वृद्धि हो। और कहने लगे कि हे किरणवेग 'जीयात्' अर्थात् जयवन्त हो, ऐसा शुभ आशीर्वाद देकर पूछा कि राजन् कुशल है। मुनिराज के वचनो को सुनकर वह किरणवेग ससारी भोग से विरक्तसा होकर चरणकमल मे नमस्कार करके कहने लगा कि हे प्रभु ! हे परम गुरु ! समार मे कुशलता कहा से आयेगी। जब तक यह जीव ससार बधन से छूटकर अखंड मोक्ष सुख को प्राप्त नही करता तब तक आत्मा को सुख कहा से मिल सकता है ? अत हे प्रभु ! मोक्ष सुख को प्राप्त करने की जिन दीक्षा देकर मेरी रक्षा कीजिये। ।।६३८।।

इंदु विनैळि लोडुत्तिलंगु पारैमे ।
निड्र पिड्रि ईनिळलिरुंद चारनन् ।।

मंड्रत्लर् मुडुइनाय मांट्र् वीडुमास् ।
सेंड्र तत्वं तिळियामै तेरलाल् ।।६३६।।

अर्थ—किरणवेग की प्रार्थना सुनकर उस चैत्यालय मे स्थित अशोकवृक्ष के नीचे चद्रशिला पर विराजमान चारण ऋद्धिधारी हरीचद्र मुनि कहने लगे। हे भव्य शिरोमणि राजा किरणवेग सुनो ! जीवादि तत्वो के न जानने वाले ससारी जीव इस ससार मे हमेशा भ्रमण करते रहते है। जीवादि तत्व को समझे हुए सम्यक्दृष्टि जीव स्वर्गादि सुख की इच्छा करते है। इस क्षणिक राज लक्ष्मी को एक दिन छोडना ही पडेगा। इसलिए इसको राजी खुशी से छोडकर आत्म-कल्याण मे लगना, यही ज्ञानी जीवो को उचित है।

तत्व भावना मे कहा है—

"नानारंभपरायणैर्नरवरैरावर्ज्य यस्त्यज्यते ।
दुःप्राप्योऽपि परिग्रहस्तृणमिव प्राणप्रयाणे पुनः ।।
आदावेव विमुञ्च दुःखजनक तत्व त्रिधा दूरत—
स्तो मस्करि-मोदक व्यतिकर हास्यास्पद मा कृथा" ।।

यहा आचार्य कहते हैं कि राजलक्ष्मी आदि २ बडी २ सम्पत्ति बडी मेहनत से एकत्रित की जाती है, जो प्रत्येक को मिलना असभव है। परन्तु करोडो की सम्पत्ति कैसे भी वह कमाई गई हो शीघ्र छोडकर जाना पडता है। जब मरण का समय आ जाता है उस समय हाथ से जैसे तिनका गिर जाता है उसी प्रकार सब छूट जाता है। ज्ञानवान प्राणी को उचित है कि पहले ही मन, वचन, काय से उसको छोड दे। इससे पहले सारे परिग्रह को त्याग करे। ज्ञानी को स्वय मोह त्याग कर सब छोड देना चाहिये। यदि परिग्रह न हो तो नवीन परिग्रह को बढाना नही चाहिये। परिग्रह को ग्रहण करके वास्तव मे छोडना हसी का स्थान है। किसी ने एक फकीर को बहुत से लड्डू दिये। उनमें से एक लड्डू विष्टा मे गिर गया। तब उस लोभी फकीर ने उस लड्डू को उठा लिया। तब एक वृद्ध आदमी ने कहा कि तुमने इस लड्डू को क्यो उठाया तो जवाब मिला कि मैं घर जाकर इसको फेंक दूंगा। तब उस वृद्ध ने कहा कि जब इस लड्डू को फैंकना ही था तो उठाने की क्या आवश्यकता थी। इस प्रकार आचार्यों ने कहा कि इसको ग्रहण करना बुद्धिमानी नही है। यह आत्मा के घात करने का कारण है। वास्तव मे चेतन अचेतन का परिग्रह आत्मा को सैकडो दुखो मे पटकने वाला है। इसलिए जो निर्विकल्प सुख को चाहते हैं, आत्मीय आनन्द का अनुभव करते हैं उनको भगवान द्वारा कहे हुए तत्वो को मानने से ही अविनाशी निर्विकल्प सुख की प्राप्ति हो सकेगी ।।६३६।।

अस्ति नित्त मनित्त मवाचिय ।
मोत्त वेट्रुमै योट्रुमै सूनियं ।।
तत्वं मिवै योंड्रिय तन्मैयाल् ।
मित्तमारुं वेरेयन वेंडिनाल् ।।६४०।।

अर्थ—श्री भगवान की वाणी अनेकातमयी है। वह अनेकात अस्तित्व, नास्तित्व अवाच्य, भिन्नत्व, अभिन्नत्व और शून्यत्व ऐसे छह नयों से युक्त होकर वस्तु स्वरूप को भिन्न२ रूप से मानते हैं। कोई नित्य तत्व को मानता है, कोई अनित्य तत्व को, कोई वाच्य तत्व को, कोई अवाच्य तत्व को मानता है। इस प्रकार मानना मिथ्यात्व है ॥६४०॥

नित्तमे तत्वमेंड्रु निड्रवन् ।
शित्तं वेत्त पोरुडेरिंदु शेप्पुमें ॥
नित्तमे येंड्र कोळळियु मंड्रेनिल ।
तत्वंदान् पेरर् पाडु मिल्लये ॥६४१॥

अर्थ—वस्तु सर्वथा नित्य है ऐसा कहने से उस वस्तु के अनेक रूप उत्पाद व्यय, आदि स्वरूप को कैसे बताया है? यदि वह नित्य ही होता तो किसी भी वस्तु की उत्पत्ति नही हो सकती। वस्तु स्यात् अनित्य भी है और नित्य भी है ऐसा समझना चाहिये। यदि वस्तु को नित्य ही कहा जावे तो यह वस्तु उत्पाद, व्यय, ध्रुव रूप है ऐसा नही कह सकते। इस सबंध में आचार्य समंतभद्र ! आप्त-मीमांसा मे श्लोक ३७ मे कहते हैं:—

"नित्यत्वैकांतपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते ।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाण क्वतत्फलम् ॥

नित्य एकांत वादी के कहने के अनुसार वस्तु कूटस्थ रहने से एक सी रहे। उसी पक्ष मे कूटस्थ रहने में होने वाली क्रिया या उसकी शक्ति अथवा परिस्पद चलना या एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाना ऐसी अनेक प्रकार की क्रिया नही बन सकती है। क्योकि कारक कर्त्ता कर्म आदि का कूटस्थ मे पहले से अभाव है, और वह कभी पलटता नही। और यदि पलटे नही तो कारक की प्रवृत्ति कैसे बने? पुनः जब कारक का अभाव हो जायगा तो प्रमाण कहा और प्रमाण का फल प्रमिति कहा से ? इसलिये प्रमाण का कर्ता हो तब प्रमाण और प्रमिति संभव होती है। अकारक प्रमाता नही होता है। जो कोई भी किसी के प्रति साधन न हो तो अवस्तु ठहरे, तब आत्मा की शुद्धि भी नही होती। ऐसा कहने से नित्यात्मा मे दूषण आता है। फिर वह सांख्यमती कहते हैं कि हम अव्यक्त पदार्थ कारण रूप है उसको सर्वथा नित्य मानते हैं और कार्य रूप व्यक्त पदार्थ को अनित्य मानते है। इसलिये उसमे विक्रिया बनती हैं। वहां व्यक्त जो पदार्थ है वह किसके निमित्त से छिपा हो उसको प्रगट होना है ऐसे तो अभिव्यक्ति और नवीन अवस्था का होना उत्पत्ति है ऐसा व्यक्त पदाथ को नवीन मानकर विक्रिया होती है आचार्य फिर उसके लिये कहते हैं ॥६४१॥

निलैइन तन्मये तोट्रड् केडिवै ।
इलैयेनिलिरैवनु तूलु मिलैयाल् ॥
निलैइला माट्रदु नीक मिन्मइर् ।
ट्रोलैविला वीटदु तोट्र मिल्लये ॥६४२॥

अर्थ—वस्तु उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप से युक्त होते हुए सत्य है। यदि वस्तु इस प्रकार न रह कर सदैव ही नित्य रहे तो ससार से कोई भी जीव मुक्त न होकर उसको ससार मे ही रहना पडेगा। और भगवान के मुख से कहा हुआ शास्त्र भी असत्य मानना पडेगा। सर्वदा नित्य ही है ऐसा कहा जाय तो आप्तेष्टम्, ससार इष्टम्, मोक्षेष्टम् इस प्रकार कहे हुए सभी वचन असत्य हो जायेगे ।।६४२।।

विनै इनै शैदलुं तुयित्तलु मिलै ।
निनैवदु तोड्रि मीदुर्णवदुं निलै ।।
इनैय तान् वेंडिय विट्ट मारोडु ।
मुनैदलुं शेयु नित्त मुट्र वेंडिनाल् ।।६४३।।

अर्थ—तत्व सदैव नित्य ही है ऐसा कहने से शुभाशुभ कर्म, पाप-पुण्य यह सभी नही बन सकते है और जप, तप, ध्यान, व्रत, नियम तथा उसका फल स्वर्ग, नरक आदि बन नही सकते। यदि यह नही बने तो जीव के द्वारा किए जाने वाले पाप कर्म नही सभवते। ऐसे दीखने वाले सभी कूटस्थ हो जायेगे ।।६४३।।

कडन् कोडुत्तान् कोळान् कोंडवन् कोडान् ।
मडंदै तन् शिरुवनु वळंच ये दिडान् ।
ट्रोडगिये नून् मुडित्तोदि नान् सोलान् ।
ट्रिडं पोरु ळेरिणट्ट् मून्ड्र मारैदुं ।।६४४।।

अर्थ—वस्तु सर्वथा नित्य ही है ऐसा कहने से ससार की सभी वस्तु लेन देन तथा सारा व्यवहार बन्द हो जावेगा। और सभी व्यावहारिक क्रियाओ का भी अभाव हो जायेगा। व्यावहारिक क्रियाओ का अभाव हो जाने से पूर्वापर विरोध आता है। इस कारण जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा हुआ वचन कथचित् नित्य अनित्य है ऐसा मानने से सभी व्यवहार क्रिया बन सकती है। स्वर्ग मोक्ष भी तभी बन सकता है ।।६४४।।

तन्सोल् मारागि मेर्कोळळिद तन् ।
पिन् पिरन् कोळ् पिडि तिट्ट तिट्टमा ।।
मोन्बदि नोडु मारैद उम् पोरु ।
निड्रदे येंव वर् निर्क निर्कवे ।।६४५।।

अर्थ—सर्वथा नित्य ही है ऐसा कहने वाले बातचीत कहना सुनना दृष्टात आदि जो व्यवहार की बातें है, यह सभावित नही होती है। इसी प्रकार पूर्वापर विरुद्ध कहने वाले क्षणिकवादियो का कहना भी घटित नही होता है ६४५।।

अनित्तमे तत्वमेन्नु मातनुं ।
निनैप्पुं वाचगमुं पोरुळु विना ।।

वनत्तु मक्कन त्तोट्र् केट्ट पिन् ।
नेनैत्तु मिल्लेंब् देतै कोंडेत्तयो ।।६४६।।

अर्थ—सर्वथा नित्य है। सर्वथा नित्यवादी कहने वाले की बात से उनके द्वारा किए जाने वाले व्यवहार मे चलने वाली सभी क्रिया कैसे सभव होती है। यदि वह नित्यवादी इस प्रकार नित्य कहने से वस्तु को देखकर या न देखकर कहता है। अथवा तुम्हारे कथन की पुष्टि करता है। यदि नित्य है तो व्यवहार बातचीत कैसे करते हैं। तुम स्वय बोल रहे हो इसी बात से तुम्हारे नित्यवाद पने का खडन हो रहा है ।।६४६।।

कण कणंदोरुं तोट्रमुं केडुमाय् ।
तनंददे त्तत्वं निलै इल्ले निर् ।
कनंकनंदोरुं केट्टवन् केटि नै ।
युनरं्दु सोल्लुमो विल्लैयो उंडनिल् ।।६४७।।

अर्थ—प्रतिक्षण मे प्रत्येक वस्तु का उत्पाद व्यय ध्रौव्य कहा जाता है। प्रत्येक वस्तु क्षण २ मे परिणमन करने वाली है। इसलिए प्रत्येक वस्तु नित्यानित्य से युक्त है। और परिणमनशील ही सारी वस्तुए है ऐसा भगवान के द्वारा कहे वचन है। यदि वस्तु का सर्वदा नास्तिकपना कहोगे तो वस्तु मे भेद करके कैसे कह सकते हो? इस प्रकार प्रत्येक वस्तु मे सत्यासत्य, नित्यानित्य व्यवहार चलता ही रहता है यदि इस प्रकार न चलेगा तो ससार का लोप हो जायेगा ।।६४७।।

अविदं वव्विळक्के इरुळै केड ।
शिवंदु निंड्रे रियुं मेन शेप्पिना ।।
निवंदु निंड्रोरु वन् सोलु मोंड्रिडि ।
लुवद नित्तमु नित्तमु मुट्टि नान् ।।६४८।।

अर्थ—जिस प्रकार दीपक कभी बडे प्रमाण मे जलता है और अन्त मे छोटे प्रमाण मे होकर बुझ जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु बनती है और बिगडती है। ऐसा कहना क्षणिक बौद्धमत वालो का वचन है। जैसे दीपक के बुझने से उसका नाश हो जाता है वैसे आत्मा का नाश हो जाता है। ऐसा क्षणिक मत बौद्ध धर्म वाले कहते हैं। यह बात पूर्वापर विरोध है ।।६४८।।

मायं्द वन् कंड वप्पोरुळ्ं मनत् ।
ताय्दु तोंड्रु मवन् सोलु मेंड्रिडिन् ।।
मायं्द नंतर मनत्तेप्पोरळेयु ।
मायं्दु सोल्लु व दावदु मागुमे ।।६४९।।

अर्थ—प्रथम समय मे अपनी पर्याय का नाश होना देखकर भविष्य मे उत्पन्न होने वाली पर्याय को कहना और अनादि काल से परपरा से चली हुई वस्तु को नही कहना और वर्तमान और भविष्य की बात कहना आगम के विरुद्ध है । यदि क्षणिक कहेगे तो आगे की ज्ञात कैसे कह सकता है । इस कारण प्रत्यक्ष विरोध है ।।६४६।।

सित्तमुन्नंदु पिन्नंदु तत्तमि ।
लत्तियंतं वेरागु रिर् सोन्नदा ।।
मति यंतम् वेरल्लवे याय् विडि ।
नित्त मोटिना निड्र डोंड्रु न् मै याल् ।।६५०।।

अर्थ—मन मे भविष्य की वस्तु का बार बार स्मरण करना यह सब उस विषय के लिये परस्पर विरोध आता है । और यह वस्तु परस्पर आपस मे सबधित है, ऐसा कहने से उस संवध मे विरोध नही आता है । इसलिए वस्तु नित्य है और अनित्य है, प्रत्येक द्रव्य या वस्तु नित्यानित्य है ऐसा कहने मे विरोध नही आता है । क्योकि वस्तु व्यवहारनय से अनित्य है और निश्चयनय से नित्य है । ऐसा कहने से वस्तु-प्रतिपादन मे बाधा नही आती है ।।६५०।।

अरिव नाम् किरंडुं मरियुं मेरिण ।
लरिव नामवन् यार्कोलरिंदिलोम् ।।
नेरिइ नाट्रव शैयिदु निड्रोडिया ।
नरिव नेंड्रिडि लांगव निल्लये ।।६५१।।

अथ– ज्ञानी आगे पीछे दोनो समय को जानता है—प्रत्येक क्षरण मे ऐसा यदि कहते हो तो क्षण २ मे जीव कैसे नष्ट हो जाता है , यह समझ मे नही आता और तपश्चरण करने वाला साधु अधिक दिन तक कैसे टिक सकता है ? नही टिक सकता है । इसलिए वह ज्ञानी साधु तुम्हारे मत के अनुसार अनित्य है ऐसा कहना आपके मतानुसार गलत है । और तुम्हारे मत के लिए ही यह बाधा है । इसलिए प्रत्येक वस्तु का उत्पाद व्यय ध्रौव्य मानना विरोध का परिहार है । क्षणिक बौद्धमत वाले जो कहते हैं कि वह सत्य है तो इससे नित्यत्व एकात मत मे दूषण हैं । इसलिये जो वे क्षणिक एतातवादी कहते है वह सिद्ध और कल्याण-कारी है । उनके मत के निराकरण के लिये तथा ऐसे मत वालो के लिये आचार्य समतभद्र आप्तमीमासा के श्लोक ४१ मे कहते है –:

"क्षणिकैकातपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्यसभवः ।
प्रत्यभिज्ञाद्यभावान्न कार्यारम्भः कुत फलम् ।।

क्षणिक एकात का पक्ष मे भी परलोक,बध मोक्ष आदि का मानना असंभव होता है । क्योकि पहले तथा पिछले समय मे जो अवस्था होती है उसका जोडरूप ज्ञान तथा स्मरण ज्ञान आदि के अभाव से कार्य का प्रारभ सभव नही होता । कार्य के आरभ विना पुण्य पाप

सुख दुख आदि का फल फिर किस से होय ? अर्थात् नही होता है। यदि क्षणिक पक्ष मे सतान को कार्य करने वाला कहा जाय तो सतान परमार्थभूत क्षणिक एकात मे संभव नही है। एक अन्वयी ज्ञाता द्रव्य आत्म द्रव्य ठहरे। तब सतान सत्य ठहरे सो क्षणिक पक्ष मे ऐसा होता नही। इसलिये क्षणिक एकात मत हितकारी नही है। परलोक बध, मोक्ष यदि सभव न हो तो काहे का हितकारी है। जैसा नित्यत्व आदि एकात है वैसा ही यह है। इसलिए ऐसे मत का परीक्षावान आदर नही करता।

आगे इस क्षणिक एकान्त पक्ष मे सत् कार्य बनता नही है। जो कहे तो मत मे विरोध आवे। अब असत् रूप ही कार्य कहे जिसमे क्या दोष है ? इसके लिये आचार्य आप्त मीमासा मे श्लोक ४२ मे कहते हैं —

"यद्यसत् सर्वथा कार्यं तन्मा जनि खपुष्पवत् ।
मोपादाननियामोऽभून्मां श्वासः कार्यजन्मनि ॥

जो कार्य है सो सर्वथा असत् उत्पन्न होता है। ऐमा माना जाय तो वह कार्य आकाश के फूल की तरह मत हो। पुन उपादान आदि कार्य के उत्पन्न होने को कारण है। जिसका नियम ठहरता नही है। फिर यदि उपादान का नियम न ठहरे तब काम के उत्पन्न होने का विश्वास ठहरता नही। इस कारण यही कार्य नियम से उत्पन्न होगा। जैसे जौ के पैदा होने के लिए जौ बीज ही है ऐसा उपादान कारण का नियम होय तिस कारण तै वही काम उत्पन्न होने का विश्वास ठहरे, सो क्षणिक एकात पक्ष मे असत्कार्य माने तब यह नियम ठहरता नही है ॥६५१॥

वारि योटिल् वला करितिट्ट पोर् ।
पार मोदैगळ् पत्तुं पइंड्रव ॥
तार्वत्तोडु मरित्तरि वैदिडि ।
नेरि नित्तमो मोट्रिन नागुमे ॥६५२॥

अर्थ-नदी का पानी वेग से वहते समय बगुला किनारे पर वैठ जाता है किंतु उसकी दृष्टि पानी के वहाव की ओर न रहकर नदी मे रहने वाली मछली की तरफ रहती है, दूसरी तरफ वह दृष्टि नही रखता। बगुला की इष्ट वस्तु मछली है। उसको अन्य वस्तु से कोई मतलब नही रहता। उमी प्रकार ससार मे रहने वाला भव्य जीव क्षमाशील, वीर्य ध्यान प्रज्ञा, उपाय दया, वल, ज्ञान, व उपयोग यह दस प्रकार विषय को भली भाति अभ्यास कर मोक्ष की प्राप्ति करने की इच्छा से इन ऊपर कही हुई वातो की ओर ध्यान देकर अन्त मे मोक्ष की इच्छा की भावना सहित मरण करके बुद्ध होकर उसी भव मे तप करके मोक्ष को जाता है। ऐसा यदि कहते हो तो जीव नित्य है ऐसा मत तुम्हारे से सिद्ध होता है। जीव अनित्य नही है, नित्य है ऐसा सिद्ध होता है। अगर अनित्य कहते हो तो तुम्हारे मत के अनुसार ही नित्य सिद्ध होता है। इस विषय को दीपकर बुद्ध नाम की जातक गाथा मे लिखा है। मैंने बुद्ध होकर यदि जन्म लिया है तो मुझे क्या करना चाहिये ऐसा विचार कर उपरोक्त दसो बातो पर पारविद्या मे परिपूर्ण होकर पुन· दूसरे जन्म मे गौतम बुद्ध होकर जन्म लिया।

इस प्रकार उपरोक्त विषय के अनुसार जीव अनित्य है, तुम्हारे मत के अनुसार जीव शाश्वत नित्य है ऐसा सिद्ध होता है ।।६५२।।

मेदं ओटिल विळुंदवत् तुळि्ळ पोल् ।
वंद पावनै योडवन् मायु मेल ।।
मेंदु पोन वनलन् मट्रार् कोलो ।
बंद मोंड्रिला पाळ् मुत्तिनादने ।।६५३।।

अर्थ—अग्नि से तपे हुए गर्म तवे पर पानी डालने से जिस प्रकार वह पानी तुरन्त ही सूख जाता है, उसी प्रकार जीव अपने परिणाम के अनुसार मर जाता है। यदि ऐसा तुम कहोगे तो कौनसा जीव मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है ।।६५३।।

आदलालनित्त पिडित्ताव् नाम् ।
पोदि यानैयुं भोग वेंरिदव ।।
रोडु'नूल्गळु मोट्टर केट्ट पिन् ।
यादि नानिलै यायै निरुत्तु वार् ।।६५४।।

अर्थ–इसलिये आप लोगो के अपने मत के अनुसार कहे जाने वाले सभी विषय सभव नहीं है। इसलिये इन सभी बातो पर तुम्हारे मत के अनुसार विचार करके देखा जाय तो बौद्ध लोग कहने वाले का मत सभवता नही। यदि वस्तु क्षण २ मे नष्ट होती है। ऐसा कहोगे तो पुनः वही वस्तु कहा से आ जाती है ।।६५४।।

नौ वेन सोल्लि नान् सोन्न वन्नवु ।
मौववक्कनत्तिले येंळिदु पोदलाल् ।।
नव्वये नव्वये नविट्रि नल्लदु ।
मोव्विनै यनित्त मेंबार्गळ् मूटिडार् ।।६५५।।

अर्थ—सर्वथा तत्व अनित्य है ऐसा कहने वाले अनित्यवादी से यह पूछते है क अनित्यवादी साधने वाले मुह से नमः कहते है। पहला अक्षर 'न' यह अनित्य हुआ या नही । इस शब्द का नाश हुआ या नही? तुम्हारी दृष्टि से वह न शब्द अनित्य हो गया पुन. म अक्षर कहने से वह भी अनित्य हो गया। उस म अक्षर के उच्चारण करते ही उसका नाश हो गया जब न, म का नाश हो गया तो पुन. नमो शब्द की उत्पत्ति कहा मे हो गई। तब हृदय मे नमः शब्द का अर्थ कहा से होता है ? ।।६५५।।

वासत्तै पोल्वरु मेन्निन् मा मलर् ।
नासत्तै शेलाद मुन्नन्नु मुट्टिडै ।।

वासत्तै वैतुण्पिन् मायु मारु पोल् ।
पेसिट्रंडो पिरिदोडु निर्कवे ।।६५६।।

अर्थ—पुष्पो मे रहने वाली सुगध, पुष्प के सूख जाने पर वह दूसरे पुष्पो मे चली जाती है । इसी प्रकार "न" अक्षर को कहने वाले मरने के वाद म अक्षर का उच्चारण होता है । यदि तुम ऐसा कहते हो तो एक मनुष्य मरने के वाद पुनः उत्पन्न होता है जैसे म अक्षर की वाद में उत्पत्ति होती है । ऐसा कहा जाय तो उस सुगन्ध पुष्प के मरने (सूखने) के पहले ही अपने समीप से रहने वाले पुष्प की सुगन्ध को देखकर मरण को प्राप्त होना तुम कहोगे तो "म" ऐसा अक्षर को कहने वाले मनुष्य मरने के पहले ही उनके पास रहने वाले मनुष्य को "न" ऐसा कहने वाले अक्षर को अपने पास खडा रहने वाले "म" नाम के अक्षर को देखकर मर जाता है, ऐसा अर्थ निकलता है । क्या वह पहले ऐसा देखकर मर गया यह अर्थ तुम्हारे मत के अनुसार निकलता है ।।६५६।।

मुर्कनत्तुरै त्तवन् मुंडिद पोळदि निर् ।
पिर्कन तुरै पवन् पिरक्कु मेंड्रलान् ।।
मुर्कनत्तवनोडु पिर्कनत्तव ।
निर्कु मैड्रै दिडि नित्तमागुमे ।।६५७।।

अर्थ—अतीत काल मे कहा हुआ मनुष्य भविष्य मे उत्पन्न होने वाले मनुष्य को वह समझकर कहता है । ऐसा यदि तुम कहोगे तो वह जीव नित्य है ऐसा तुम्हारे मत के अनुसार वह जीव नित्य है ऐसा सिद्ध होता है ।।६५७।।

नल्विनै शय निनित्तान् शयान् पिनै ।
योविनै शैदव नदन् पयंड्रु वा ।।
निव्वगै यनित्तमे येंड्रै प्पवर् ।
शेय्यु नल् विनैगळुं पयनु मिल्लये ।।६५८।।

अर्थ—सर्वदा जीव अनित्य है, ऐसा कहा जावे तो पुण्य कार्य की इच्छा करने वाला जीव भविष्य मे शुभ कार्य करने की इच्छा कैसे करेगा और उसके फल को कैसे भुगतेगा ? इसलिये वस्तु को यदि अनित्य ही कहा जावे तो शुभाशुभ आचरण करने वाले को शुभाशुभ कार्य का फल का अनुभव कैसे होगा ? अर्थात् नही होगा । ऐसा आपके मत के अनुसार सिद्ध हुआ । पर कर्मों के अनुसार जीव शुभ अशुभ फल भोगता है । यह तुम्हारे मत के अनुसार कैसे सिद्ध हुआ । आप्तमीमासा मे कहा है—

"सर्वथाऽनभिसंबंधः सामान्य-समवाययोः ।
ताभ्यामर्थो न सवधस्तानि त्रीणि ख-पुष्पवत् ।।

सामान्य और समवाय का वैशेपिको ने सर्वथा संबध माना है । फिर इन दोनो से

भिन्न पदार्थ द्रव्य,गुण, कर्म यह सबंध रूप नही होता है। जिससे परस्पर अपेक्षा रहित सर्वथा भेद माना है। इससे यह सिद्ध हुआ कि परस्पर अपेक्षा बिना सामान्य समवाय और अन्य पदार्थ यह तीनो ही आकाश के फूल के समान अवस्तु हैं। वैशेषिक ने कल्पना मात्र वचन जाल किया है। ऐसे कार्य-कारण, गुणगुणी, सामान्य-विशेष इनके अन्यपने का एकात भेद एकात की तरह श्रेष्ठ नही ।।६५८।।

मरित्तदु विदुवेन उनरु मव्वुनर् ।
वरक्केडु मनित्तदुळिल्लै यामेनि ।।
लरक्केड वेट्रिन विळैक्के यदेनु ।
मरित्तुनर् अनर् वदुं मयक्क मागुमे ।।६५६।।

अर्थ—एक वस्तु को देखकर पुन कई दिनो बाद वह वस्तु देखने मे आती है वह प्रत्यभिज्ञान, है, जो सर्वथा अनित्य है। ऐसा तत्वशास्त्रो मे देखने मे नही आया और अधेरे मे यदि दीपक को लाकर रखा जावे और उजाले को कहे कि यह दोपक है तो भ्रम उत्पन्न होता है ।।६५६।।

तव्वियन् देशमे काल भावमेन् ।
रव्वियम् पिडित्तंद विळक्कि देड्रेळु ।।
मेव्वगं युम् केडि निदुव देंड्रेळु ।
मव्वदु मिदुविन् पेररिवु मिल्लये ।।६६०।।

अर्थ—इस सबध मे जैनाचार्य कहते हैं कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार वस्तु नित्यानित्य है, उसी प्रकार दीपक हमेशा रहता ही है—ऐसा कहने वाले प्रत्यभिज्ञान अनित्य है। पहले दीपक था ऐसा कहने वाले वह दीपक अनित्य है। ऐसा तुम्हारे मत के अनुसार शास्त्र मे नही है। इसलिए वस्तु हमेशा नित्यानित्य है ।।६६०।।

अंड्रु नाम् पिरिंदन मडिकडा मिव ।
रिंड्रु वंदारेन उरैत्ति यावरुं ।।
सेंड्ररि दिरंजुव देव्वरि विना ।
लोंड्रु निंड्रिडा वगं युरैक्कु नूलिनार् ।।६६१।।

अर्थ—सर्वथा अनित्य ऐसा कहने वाले मत की अपेक्षा मे विचार करके देखा जाये तो वस्तु अनित्य ही मानने से कल मैंने अमुक मनुष्य को देखा था यह कैसे सभव है ? क्योकि सर्वथा अनित्य ऐसा कहने वाला वह वस्तु अनित्य होने के बाद यह मनुष्य कल देखा था यही कहना असाध्य नही है। इस कारण स्वपर द्रव्य चतुष्टय की अपेक्षा से नित्यानित्य है ऐसा तुम्हारे मत से सिद्ध होता है और स्वद्रव्य की अपेक्षा से कल देखा हुआ मनुष्य यही है ऐसा कहना तुम्हारे मत के अनुसार सिद्ध नही होता है। यदि आप ऐसा कहोगे कि वस्तु सर्वथा अनित्य है, यह किस ज्ञान के द्वारा कहते हो ? ।।६६१।।

मुन्नै कनत्ति निरदंवनुं मुडिदं कनत्तु निड्रवनु ।
पिन्नै कमत्तु पिरप्प वनुं पिरिदु पिरिदे युरविल्लै ।।
येन्नि ट्रडुमाट्रडु विल्लै इवट्रै कोंडु विडु मोरु वन् ।
ट्रन्नैक्कानो मादलिनुं तडुमाट्र वकुं तडु माट्रे ।।६६२।।

अर्थ—भूतकाल मे मरण करके वर्तमान काल मे रहने वाला और भविष्यत काल मे उत्पन्न होने वाला यह समय आपस मे सम्वद्ध नही होता, ऐसा यदि कहा जावे तो संसार का ही अभाव हो जाय तो जन्म मरण का भी अभाव हो गया तो जीव का भी अभाव हो गया और जब जीव का अभाव हो गया तो मोक्ष मार्ग का भी अभाव हो जायगा ।।६६२।।

दानं शीलं तवं दरुवं दया कडंमा ट्रडुमाट्रिल् ।
वाणिन् मन्निर् पिरंदिरंदु वंदु वीडु पेरुमोरु वन् ।।
द्रानं किलनेन् परावकुं तडु माट्ररुत्त वीटिनै पेर् ।
ट्रानेंड्रार् सोर् पोरुळिड्रे लारो वीडु पेरुवारे ।।६६३।।

अर्थ – दान करने से, शील, सयम, व्रत, तप आदि से, जीव दया पालन, जीवो की रक्षा करने से, व्रत उपवास आदि शुभाचरण से जीव मरकर देवगति मे जन्म लेकर वहा के सुख का अनुभव कर वहा की देव पर्याय व आयु को पूर्ण कर मध्य लोक मे आर्य क्षेत्र मे अर्थात् भरत क्षेत्र मे जन्म लेकर तपश्चर्या करके कर्म का क्षय करके वह जीव मोक्ष की प्राप्ति करता है। यह आगम का कहा हुआ सर्वथा अनित्य है। ऐसा कहने वाला किसी मत का कोई शास्त्र नही है अर्थात् ससार नाम की कोई वस्तु ही नही वन सकती ।।६६३।।

येल्लवगैयुं केट्टुळ्ळत्तिल्ल ददं क्कनत्तुदुदित्तु ।
वल्ले वरुमि सेन्दानम् मुडियुं कनत्तु वंददवर्को ।।
वेल्ला वगैयु मिड्राय् वंदंदु मदर्को वीडेंड्रा ।
निल्ला दंदत्तदु पोद नियल्वे निड्र वदर्के निल् ।।६६४।।

अर्थ—समस्त मतो की दृष्टि से विचार करके देखा जावे तो यह आगम आर्ष परम्परा से विरुद्ध पडता है। एक समय मे रहने वाले जीव का नाश दूसरे समय मे आने वाले जीव को मोक्ष होता है यदि ऐसा कह दिया जाय तो पहले समय मे नाश हुआ जीवपना दूसरे समय मे कहाँ से आ सकता है ? ।।६६४।।

अदंत्तदन्नप्पिन् वरुन् गंद मदकुं वीडु तानागिल् ।
मुन्दं कनंकोडवन् शेंदु मुट्टिदारेन्न पयन् पेट्रार् ।।
सिदिप्पिलान् ट्रवन् तन्नै यरिया नल्लोर् सेरियिल्लान् ।
बदु पन्दिुम् वीडेंदु पार्न्नै किद पाळ्यॊडे ।।६६५।।

अर्थ—सतान के अवसान मे आने वाले स्कध को मोक्ष होता है। ऐसा यदि कहते हो तो पहले समय मे किये गये तप के प्रभाव से उस जीव को कौनसा फल मिलता है? और किस फल का अनुभव करता है? इस प्रकार कहने वाले एकात अनित्य मत वालो को मोक्ष की प्राप्ति कहा से होती है? अर्थात् कही से नही होती ।।६६५।।

इट्ट मारुं विट्ट्ु मेर् कोळ्ळिदु तन् सीन् मारागि ।
तिट्ट मूंड्ुं मरुतलिप्प तेरा तनित्त मेंवाड्रेन् ।।
सेट्टर् केट्टे पोइडुग तडुयाट्ररुत्तु वीडेदुं ।
शिट्टर् सोर् कदचित्ते येनित्त मेवार् तिरुवरमे ।।६६६।।

अर्थ—अनित्य आत्मवाद से युक्त बौद्ध दर्शन मे आत्मा सर्वथा नित्य होने से बुद्धि इच्छा ज्ञानादि का नाश होना यही निर्वाण है। अथवा जैसे दीपक बुझ जाता है उसी प्रकार आत्मा का नाश होता है, इसी को निर्वाण कहते है। अर्थात् जिस प्रकार दीपक बुझ जाने के बाद उजाला नही है, उसी प्रकार आत्मा शरीर मे से निकल जाने के बाद दीखता नही है, बस इसी को निर्वाण कहते हैं। इस प्रकार यह क्षणिक बौद्ध मत है ।।६६६।।

वैर मुंड्रु डैयन् वैयत्तुइर् कण्मेन् मायै मैदन् ।
शैइर् विडत्तया मुन्नूरा नरक्केडु मनित्त सोन्ना ।।
नूईरिनै इल्लै येंड्रा नूनिनै युंग वेंड्रान् ।
पईरिनार् कोल युम् सोन्नान् मुत्तियुम् पाळेंड्रिट्टान् ।।६६७।।

अर्थ—बौद्ध मत वाले,बौद्धमत कहलाने वालो मे परस्पर मे विरोध आता है अर्थात् असगत है। उनका तत्व संसार का नाश कर मोक्ष प्राप्त करने का विषय जैन सिद्धात के विरोध का कारण है।

भावार्थ—यह बौद्धमत मायादेवी के समान है। इस लोक मे रहने वाले जीव दयामयी धर्म को न जानने वाले सर्वथा क्षणिक अथवा नाश होना ऐसे कहने वाले जीवो को अनात्मवाद से क्षणिक है, ऐसा प्रतिपादन करने वाले, मरे हुए जानवर का मास खाने का समर्थन करने वाले, जगल मे कोई जीव हिंसा कर रहा हो उसका विरोध न करने वाले तथा कोई जीव का घात करके मास लाकर देने और खिलाने मे कोई दोष न होना ऐसा कहने वाले तथा मोक्ष मे किसी वस्तु का या जीव का न होना ऐसा बौद्धमत वाले प्रतिपादन करते हैं। ।।६६७।।

आवचिय यादर् सोल्लार् पोरुळिन् येलरि वेळामै ।
अवाचिमेंड्रु सोल्लार् योरुळिन् मेलरि वेळुंद ।।
दवाचिमेंड्रु सोल्लार् सोलप्पडा पोरुळु मुंडो ।
ववाचिय पक्कन् ट्रन् सोन्मारु माय कतंचित् तायत्ते ।।६६८।।

अर्थ—सर्वथा वस्तु को अवाच्य कहने वाले कहते हैं कि एक वस्तु के जाने हुए ज्ञान से कहने वाले शब्द को अवाच्य कहते है। एक शब्द कहने के वाद पुन: दूसरा शब्द नही कहते है क्योंकि लोक में रहने वाली वस्तुओं को शब्दों के द्वारा कहने मे नही आता, इस कारण वह शब्द अवाच्य है ऐसा कहने वाले सभी वचनीय अवाच्य होते हैं ।।६६८।।

मदुर मेंड्रोरुरेत्त सोल्लान् मदुरं तान् वशिक् पोट्टु ।
मदुरत्तिन् विकल्प येल्लाम् वैत्तरी वरिदं वन्नाम् ।।
यदुर सोल्लमाय दादला लवाचि पम्मां ।
मदुरे ताम् मधुरच्चोल्लार् सोल्लपडुं सोल्लपडादाम् ।।६६९।।

अर्थ—इस प्रकार जिह्वा पर रहने वाली मिश्री आदि मीठी वस्तु के स्वाद को इतना सा है ऐसा कहना साध्य नही है। उसी प्रकार सत्य ऐसे विषय को कहना साध्य न होने के कारण वह शब्द अवाच्य होता है।

भावार्थ—इस संबध मे आचार्य समतभद्र ने आप्तमीमासा मे श्लोक ५४ मे कहा है

"स्कंधा संततयश्चैव संवृतित्वादसंस्कृता: ।
स्थित्युत्पत्तिव्ययास्तेषां, न स्यु: खरविषाणवत् ।।

स्कंधा·-रूप, वेदना, विज्ञान,संज्ञा और सस्कार यह पाच स्कंध हैं। इनमे स्पर्श, रस, गंध, वर्ण के परमाणु तो रूप स्कंध हैं, उनका भोगना वेदना स्कंध है और सविकल्प, निर्विकल्प ज्ञान विज्ञान स्कंध है। वस्तुओ के नाम को सज्ञा स्कंध कहते हैं। तथा ज्ञान, पुण्य, पाप की वासना को संस्कार स्कध कहते हैं। उनकी सतान को संतति कहना स्कंध संतति है। ऐसे लोग असस्कृत हैं अकार्य रूप हैं उनकी वुद्धि उपचार करि कल्पित है। बौद्धमतीं सर्वथा परिणामो को भिन्न २ मानते हैं। वह संतान संप्रदाय आदि कल्पना मात्र है। इस कारण उस स्कंध सतति की स्थिति, उत्पत्ति, विनाश सभव नही है। इससे यह स्कंध सतति विना किये है। कार्य कारण रूप नही है। जिसकी वुद्धि कल्पित है उसके काहे की स्थिति और काहे की उत्पत्ति विनाश ? यह तो गधे के सीग की तरह कल्पित है। इससे पहले जो यह कहा था कि विरूप कार्य के लिए हेतु का व्यापार मानिये हैं। ऐसा कहना भी बिगडे है। स्कध संतान ही जव झूंठा है तव क्या वाकी रहा जिसके अर्थ हेतु का व्यापार मानिये। ऐसा क्षणिक एकात पक्ष है वह श्रेष्ठ नही जैसे नित्य एकांत पक्ष श्रेष्ठ नही वैसे यह भी परीक्षा किये सवाध है। पुन श्लोक ५५ मे कहा है·—

पुन: नित्यत्व यह दोनो सर्वथा एकांत माने उसका दूषण दिखाते हैं·—

विरोधान्नोभयैकात्म्य स्याद्वाद-न्याय-विद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्ते ऽप्युक्तिर्नावाच्यमितियुज्यते ।।५७।।

जो लोग स्याद्वाद न्याय के विद्वेषी है उनके नित्यत्व अनित्यत्व यह दोनो पक्ष एक

स्वरूप नही बने है जैसे जीना और मरना इन दोनो मे विरोध है । यह एक स्वरूप नही होता है । विरोध दूषण के भय से अवक्तव्यैकात मानना यह भी अयुक्त है । इसी कारण "अवाच्य" है । ऐसी उक्ति कहना भी उचित नही । ऐसा कहने से अवक्तव्यपने का एकात तो रहा नही । अवक्तव्य शब्द से तो वक्तव्य हो गया ।

इस प्रकार नित्य आदि एकात विरुद्ध ठहरा । अनेकात की सिद्धि हुई । शून्यवादी के आशय को नष्ट करने के लिये तथा अनेकात के ज्ञान की दृढता के लिये स्याद्वाद न्याय के अनुसार नित्यानित्यवादी आचार्य कहते हैं ।।६६९।।

वैय्यत्तु वोर्तं केल्लाम् वाचिय पिल्लमागिल् ।
पोय्यैता मुरकि कंड्रार् गळा वरिप्पूतलत्तार् ।।
मे यैत्ता नूलु सोल्ला दुनर्मुं वेरादल् वेंडुम् ।
वैयत्तु वळक्कु नूलोडि वनु माराई नाने ।।६७०।।

अर्थ—इस जगत् मे कहने मे आने वाली ऐसी कोई वस्तु ही यदि न हो तो ससार मे रहने वाले सभी प्राणियो के वचन ही असत्य हो जायेगे । और शास्त्र मे कहे जाने वाले सभी शब्द अवाच्य होगे । इस प्रकार अवाच्य होने से अवाच्य मत के कहने के अनुसार तो आगम के सभी विषय विरुद्ध होते है ।।६७०।।

गुण गुणि वेरे येन्निर् कूडिय मुडि विट्रागु ।
मुनर् वोडु काक्षियादि युयिरिन् वेरळवु मागुं ।।
गुण गुणि तन्मै येंड्रि कुळु वलुं पिरिवु मागु ।
मुनर् दिडा दुइरिक्किर्कु मोरो वळि कुणियु मंड्राम् ।।६७१।।

अर्थ—तुम्हारे मत के अनुसार गुणो से युक्त वस्तु को यदि भिन्न कहा जाय तो वस्तु दूसरे स्थान से आकर मिली है–ऐसा कहना पडेगा । यदि ऐसा कह दिया जाये तो आत्म–गुणो मे युक्त आत्मा मे रहने वाले दर्शन और ज्ञान गुण भिन्न हैं ऐसा मत तुम्हारे से भिन्न होगा । इस प्रकार गुणी और गुण भिन्न है, ऐसा कहते है । इस तरह कहने से ससार मे जितनी वस्तु है, उनकी तुम्हारे मत के अनुसार कोई भी स्थिति नही होगी । अत यह कहना पडेगा कि ससार मे गुण रहित्त कोई भी वस्तु नही है ।।६७१।।

मयक्कमे सेट्र मार्वमां बंद कारनंग ।
ळुईर् परिणाम मिंड्रि योळिय मोइ कट्टु वीडुं ।।
कयक्क मिनिलै इट्रागि कयत्तिडै कल्लु पोलाम् ।
वियप्पुरु तवत्ति नालेन् पेरुवदु वेरेन् वारेल् ।।६७२।।

अर्थ—गुण और गुणी दोनो भिन्न २ है, यदि ऐसा कह दिया जाय तो रागद्वेष

परिणाम से कर्म बध का कारण नही होगा। इस प्रकार होने से मोक्ष, बध आदि का भी अभाव होगा। जैसे पानी से भरे हुए तालाब मे एक पत्थर डाल दिया जाय और वह डालते ही नीचे चला जाता है उसी प्रकार वह होगा। जैसे एक मनुष्य को तपश्चरण के द्वारा आत्मा के साथ बधे हुए कर्मों के अलग होने से तपश्चरण करने पर भी सफलता नही होगी अर्थात् सभी धर्म विफल होगे उसी प्रकार मोक्ष का तुम्हारे मत के अनुसार अभाव होगा। इनका मत बाधा सहित है, यह आप्तमीमासा मे श्लोक २८ मे दिखाते हैं.—

"पृथक्त्वैकातपक्षेऽपि पृथक्त्वादपृथक्तुतौ।
पृथक्त्वे न पृथक्त्व स्यादनेकस्थोह्यसौ गुणः ॥

पृथक्त्व कहिये पदार्थ सब भिन्न ही है ऐसा एकात पक्ष होने से पृथक्त्व नामा गुणो से गुण और गुणी इन दोनो ,पदार्थों के भिन्न २ पना होने से दोनो अभिन्न ही होते हैं। ऐसे यह पृथक्त्व नामा गुण ही नही ठहरता है। जिससे पृथक्त्व गुण को एक को अनेक पदार्थों मे होना मानते हैं तो पृथक्त्व गुण कहना ही निष्फल हो गया। जो वैशेषिक द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ऐसे छह पदार्थ मानते हैं। उनके उत्तर भेद इस प्रकार हैं:-द्रव्य नौ, गुण चौवीस, कर्म पाच, सामान्य दोय प्रकार, विशेष एक तथा समवाय एक है। तिनमे गुण के चौबीस भेदो मे एक पृथक्त्व नामा भी गुण है सो यह गुण सर्व द्रव्य गुण आदि २ पदार्थो को भिन्न २ करता है ऐसा माना है। फिर नैयायिक प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टात, सिद्धात, अवयव, नर्क, निर्णय, बाद, जल्प वितन्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रह स्थान इस प्रकार सोलह पदार्थ माने है। इनको भी भिन्न २ हो मानते हैं। तिनका पदार्थों का सर्वथा भिन्न पक्ष होने से प्रश्न करते है कि पृथक्त्व गुण से द्रव्य गुण ये दोनो भिन्न हैं या अभिन्न। यदि अभिन्न कहा जाय तो सर्वथा भिन्न का एकान्त पक्ष कैसे ठहरे ? फिर कहे जो द्रव्य, गुण, पृथक्त्व तै भिन्न है तो द्रव्य, गुण, अभिन्न ठहरे। पृथक्त्व गुण न्यारा है तिसने द्रव्य, गुण का कहा किया कुछ भी नही किया जिससे पृथक्त्व गुण एक है और अनेक मे ठहरा मानते हैं। इस प्रकार ऐसा कहने से सर्वथा भेदवादी नैयायिक वैशेषिक मत के सर्वथा पृथ-क्त्व एकात पक्ष मे दूषण दिखाया ॥६७२॥

उडंवि नुळुइरै पोल गुण गुणी योंड्रो डोंड्र ु।
विडुं पडि कंड दुंडेल् वेरन विळब लागुम् ॥
शेडं पुरिदुरै वेराग पोरुळं वेरामेन् बानेल् ।
मडंदै पेन् मार्देड्रालुं मगळला पुरुळु मुंडो ॥६७३॥

अर्थ—जिस प्रकार जीवात्मा एक शरीर को छोडकर दूसरा शरीर धारण करता हैं और दूसरा शरीर छोडकर तीसरा शरीर धारण करता है उसी प्रकार गुण और गुणी का स्वरूप है, ऐसा कहते हैं। इस प्रकार कहने से जीव नाम के पदार्थ का भी अभाव होगा। इस प्रकार गुण और गुणी का स्वरूप है। ऐसा कह दिया जाय तो जीव नाम के पदार्थ का अभाव हो जायगा। आत्मा नाम का कोई पदार्थ ही नही रहेगा। इस प्रकार गुण, गुणी तादात्म्य सवधी है। गुण, गुणी कहना व्यवहार नय की दृष्टि से है। अग्नि और उष्णता को जिस

प्रकार अलग नही किया जा सकता उसी प्रकार गुणगुणी का सबध है । कुमारी व स्त्री कहने मे व्यवहार है परन्तु निश्चय दृष्टि से एक ही है ।।६७३।।

येत्ति रत्तालु मुंड्रे तत्व मेंड्रु वेंड्रुम् ।
वित्तग नावि नारिर् गुण गुणि विकर्प वेंडार् ।।
पित्तन् ट्रन् तुनवुं शैगै सुख दुःखं पिरिवु मुंड्राय् ।
तत्व मोळियु मारुं वीडुंदान् पाळ दामे ।।६७४।।

अर्थ—गुणगुणी सर्व प्रकार से तत्व स्वरूप से एक ही है ऐसा कहने के अनुसार उसमें पीछे कहे अनुसार सर्वथा गुणी भिन्न गुण भिन्न ऐसा कहना, जैसे एक मनुष्य मरकर सुख दुख यह दोनो एक ही रहता है उसी प्रकार सर्वथा गुण गुणी को भिन्न ऐसा कहने वाले मत की दृष्टि को भी इसी प्रकार उनके मन से मोक्ष का अभाव होता है । अर्थात् मोक्ष की सिद्धि नही होती है ।।६७४ ।।

वंड्रन उरैप्पान् केट्पानुनर्वुं मोन्नानुगु वेडां ।
वंड्रेनि लोंड्रु मिड्रा मुळ वेनि लोड्रु मंड्रा ।
मेंड्रिडा नानुगुं वेंडि प्रांतियेंड्रुरै क्कु पोळ्दु ।
निड्रवै भ्रांति याग निलै पेट्र विकर्प मेल्ल ।।६७५।।

अर्थ—ससार मे समस्त जीव एक ही है । ऐसा कहने वाले और उसी प्रकार तत्व को अभिन्न कहने वाले और चारो यह एक ही है ऐसा कहने वालो के मत की दृष्टि से प्रत्यक्ष विरोध होता है । कहना सुनना यह सभी भिन्न २ क्रियाएं है । ऐसा कहने से सर्वदा अभिन्न तत्व का सभव नही होता है । इस प्रकार कहने सुनने तथा जानने वाले तथा मत के शास्त्रो को जानने वाले ये चारो अभिन्न २ है । ऐसा कहने से यह चारो विषय भिन्न २ हैं ऐसा नही कह सकते ।।४७५।।

वंड्रेन उरैत्त मेर्कोळ्डन् सेल्लु मेदु ओड्डु ।
निड्रदो रेड्डुत्तु कादु निड्र दन् पोरुण् मुडिक्कि ।।
लोंड्रेंड्र मेर्क्कोळ् तन् सोल्लुळिंदु मारैदि योडि ।
निड्रव पक्कं सेर् दा नेरि पिरि तिल्लै याळे ।।६७६।।

अर्थ—सर्वथा भिन्न है ऐसा कहने वाले तत्व को अच्छी तरह से विचार करके देखा जाय तो हेतु दृष्टात, उपनय आदि आत्मा से संबधित नही होते । और उनसे सवध न होने के कारण उनके मत मे बाधा आती है । पहले प्रकरण मे सर्वथा भिन्न ऐसा कहने वाले मत के तत्व के प्रकार, यह भी प्रत्यक्ष मे विरोध आता है ७६।।

वंड्रन उरैक्कु नूलै योदुवा नोड्रन ड्रेंड्रु ।
निड्र नूलोदु वानोड्डुत्तिड्डुम् वोड्डुमत्ते ।।

यॆंड्रॆनि लोंड्रन ड्रागुमामेनि लळियट्रान्टा ।
नोड्रॆन उरॆत्तु पेट्र ऊदिययेन् कोलोवे ।।६७७।।

अर्थ—जीवादि सभी द्रव्य एक परमात्मा वहु आधेयवर्ती है ।

यथा–मृतपिण्डमेकं, बहुभांडरूप, सुवर्णमेक बहु भूषणात्मकं ।
गोक्षीरमेक बहुधेनुजात, एकं परमात्म तत्त्वं बहुदेशवर्ति ।।

अर्थात् एक मृत्तिका पिड मे वहुत से बर्तन तैयार होते है, एक स्वर्ण मे कई आभूषण तैयार होते हैं । दूध एक ही है किंतु गायो की सख्या अनेक है । उसी प्रकार एक परमात्मा अनेक रूप धारण करता है ऐसा सर्वथा अभिन्न मत वालो का मत है इस प्रकार अभिन्न मतो द्वारा कहना सर्वथा भिन्न है ऐसा लोग कहते है · सर्वथा भिन्न सर्वथा अभिन्न है ऐसा कहने वाले दोनो ही मत वालो से मोक्ष मार्ग मे बाधा आती है, इनके मत पर श्रद्धान करना उचित नही । यह भिन्न है ऐसा कहने वाले अद्वैतवादी का मत ठीक नही, ऐसा कहने से कोई लाभ नही है ।।६७७।।

वंड्रन उरॆक्कु मारि तीवेयिर् कोर्दुगुमोडि ।
तिन न्ड्रिडा रिडा मन्नै चोरु तेडिये पशितुरुंगु ।।
मेड्रिडा विरडुरॆकु मेन्नै पार्कि लेल्ला ।
मोंड्रन उरॆकु वाये युन्मत्त चरित मायते ।।६७८।।

अर्थ—यदि अभिन्न मत वाले ऐसा कहेंगे तो पानी के बरसने, धूप को देखने तथा अग्नि के जलते समय, अर्थात् धूप मे चलते समय, वन में वृक्ष के नीचे बैठने आदि सारी वाते सारे तत्त्व असिद्ध ठहरे । यह पाव के नीचे की मिट्टी को खाकर अपनी भूख क्यो नही मिटाता रोटी को क्यो ढूंढता है । ऐसा अभिन्न मत वालो के कहने मे प्रत्यक्ष रूप से विरोध आता है । ।।६७८।।

विन्मदि येन्निला मन्न कर्कळि ।
नुन्निला नीरगत्तुरवु पोलवु ।।
कण्गुरु कडंदोरा कायं पोलवु ।
मेन्निला कायोत्तु ळुइरु मोंड्रॆ निल ।।६७९।।

अर्थ—वहुत से फलो से भरे हुए पात्र मे आकाश मे रहने वाले चद का विव प्रत्येक पात्र में प्रतिविवित होता है, उसी प्रकार एक आत्मा सम्पूर्ण शरीर मे दिखता है । इस प्रकार तुम कहते हो तो—।।६७९।।

छायॆकु तन्मॆ तानॆगु मोत्तपो ।
सायु नल्लरि यिव तुंव मादिगळ् ।।

कायत्तु लुइर्गळु क्केगुं मुत्तिडि ।
लेयु मंड्रि योंड्रा दिव्वेडुत्तुरं ॥६८०॥

अर्थ—अनेक जल के पात्रो जैसे चद्र का प्रतिबिंब दिखने के समान अनेक शरीर मे रहने वाले आत्मा को सुख दुख आदि विशेष युक्त विषय की उपमा देने मे नही आती। इसलिये आपके मत प्रत्यक्ष और प्रमाण से बाधित होते हैं ॥६८०॥

कातुळुंवु कडत्तुरंतिमया ।
लोर् तुळुंबु नर् वादिग लुत्तोवा ॥
नीर्त्तुळुंबुनर् वादिग लुत्तोवा ।
नेर् तुळुंब देगंनमेंड्रिडिल् ॥६८१॥

अर्थ—कही मिट्टी के पात्र मे रहने वाला पानी हवा से हिलता है। उसी प्रकार कदाचित् यह ज्ञान चलायमान होता है अथवा हिलता है यदि ऐसा कहो तो वह बात कई विषयो मे संभव होती है, कई विषयो मे सभव नही होती है। मिट्टी के बर्तन मे रहने वाला पानी चंद्रमा के चलायमान होने के समान चचल दीखता है तो आकाश मे चद्रमा चलायममान नही दीखता है, यदि आप ऐसा कहोगे तो ॥६८१॥

इ ब तुंब मुमिर् कल याकैय्य ।
चेबं दिडं वेडुत्तुरै याल् वरुं ॥
मुन्सै पुण्णिय पाव मुडित्तदर् ।
पिन् पिरंद लिरत्तलु मिल्लये ॥६८२॥

अर्थ—सुख दुख आदि इस आत्मा के नहीं हैं, शरीर को सुख दुख उत्पन्न होता है। इस प्रकार इसके लिये उदाहरण दिया जाय तो एक जीव पूर्व जन्म में उपार्जन किया हुआ पाप और पुण्य का अनुभव करके पुन जन्म और मरण धारण करता है। यह कभी जीव नाश होता है ऐसा सिद्ध हुआ इसलिये जीव और आत्मा भिन्न २ है ऐसा सिद्ध हुआ ॥६८२॥

वारियेन् मेन् मदि निर्पव चायेतान् ।
नीरि नींगुदलिल्लये निन्नुरै ॥
योरु मोरुइर् निर्प उंडवुयिर् ।
पेर नीपिन मागि पिळैत्तदे ॥६८३॥

अर्थ—घडे के पानी मे प्रकाश में रहने वाला चंद्र का प्रतिबिंब पडता है। वह प्रतिबिंब पानी को छोडकर इधर उधर नही जाता है। इसलिये भिन्न २ मत वाले आप लोगो के द्वारा कहे जाने वाला अभिन्न तत्व जीव घडे मे रहने वाले चद्र के समान इस शरीर से पृथक नही होता यदि ऐसा कहा जावे तो सभवता नही ॥६८३॥

इंदवुं चायेयुं पोलिरंडुयिर् ।
निड्रन कंडिलं निकुँ काटिट्ु ।।
वंडियुं चायै पोला निरंडुइर् ।
निड्र दुंडागिलुं निड्र दिल्लये ।।६८४।।

अर्थ—चंद्रमा की छाया के समान रहने वाले जीव को हमने देखा नही और छाया के समान जीव और शरीर रहता है ऐसा यदि कहोगे तो तुम्हारे द्वारा कहे जाने वाले दृष्टात से इस तत्त्व का सबध न होने से आपका मत सिद्ध नही होता ।।६८४।।

कडं कडं दोरा काय मदायव ।
रुडंबुंडंबु तोरा मुई रोंड्रे निल् ।।
कडंद कंदुळि काय निलैकुमा ।
रुंडंबुडं दुळियुं मुइर् निपंदां ।।६८५।।

अर्थ—प्रत्येक पानी के पात्र मे आकाश मे रहने वाले चद्रमा के दीखने के समान हर एक शरीर मे उत्पन्न होने वाले सभी जीवो को एक ही है ऐसा कहेगे तो उस घडे के फूट जाने के बाद केवल आकाश ही रहता है। उसी प्रकार शरीर को छोड जाने के बाद उस आत्मा को रहना चाहिये था। परन्तु आपके मत के अनुसार यह नही घटता है। इस कारण आपके दिये जाने वाले उदाहरण से यह मत सिद्ध नही होता है ।।६८५।।

कुडतुळुं कुडमिंड्रि इरुंदमर् ।
ट्रिडत्तिनुं कविनुक्कियल् पोत्तपो ।।
लुडंबुळु मुडंविड्रि इरुंद वेव् ।
विडत्तिनु मुइगोत्तिडल् वेंडुमें ।।६८६।।

अर्थ—घट मे, घट से रहित पृथ्वी मे यह आकाश आदि मे समान रूप मे रहता है। इस प्रकार आपके दृष्टात के द्वारा सभी मे रहता था, परन्तु रहता नही। इस कारण तुम्हारा मत संभवता नही ।।६८६।।

उडंवि मुइर तोळि लालुई ।
रुडंवि नुन्मं युनर् तिडुमत्तोळि ।।
लडंगलुं मिल्लावळी या रुइर् ।
तोडरंदु निड्र मं सोल्लुव देन् कोलो ।।६८७।।

अर्थ—शरीर मे युक्त इस आत्मा के गुण आत्मा को ही मालूम होते है। शरीर का कोई पता नही चलता। शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है। तथा शरीर जड है ।।६८७।।

उडंबु तानुइर् कोयदु मुंडेनि ।
रडंद तन्नुरै ज्ञाल विरोधिया ।।
मुडंबु तन्नळ वायुड निड्रु पिन् ।
विडुं पडित्तुइरेंबुदु वीळंददे ।।६८८।।

अर्थ—शरीर के नाश होने के पश्चात् जीव रहता है, यदि आप ऐसा कहोगे तो तुम्हारे द्वारा माने गये अभिन्न मत माने जा सकते हैं, यह ठीक है, परन्तु तुम्हारे अभिन्न मत के समान पुद्गल को छोडकर जाने वाले जीव को देखने वाला कोई नही है। जीव के निकल जाने के बाद पुद्गल मात्र ही दीखता है। और पूर्व जन्म मे अशुभ कार्य के द्वारा पापोपार्जन किया हुआ जीव शरीर प्रमाण होता है यदि ऐसा कहना है तो सम्पूर्ण जगत मे इसका प्रचार है यह बात जगत मे प्रसिद्ध है। इसलिये सदैव जीवात्मा एक ही कहना, यह तुम्हारा अभिन्न मत आगम के विरुद्ध आता है ।।६८८।।

तत्तु वंनिदु वैदुव दंड्रेनि ।
लुत्तौ वामैयै विट्टुइ रोंड्रु दान् ।
शित्तियै दुव दिन् मइर् सिद यान् ।
मुत्ति यैद मुयलुथ देन्कोलो ।।६८९।।

अर्थ-तत्त्वो का स्वरूप दो प्रकार का है। जीव तत्त्व का एक प्रकार से रहना, ऐसा कहना भ्रम है। जीव अपने धारण किये हुए शरीर को छोडकर जाने के बाद दूसरा शरीर धारण नही करता–यदि आप ऐसा कहेगे तो मोक्ष की प्राप्ति की इच्छा करने वाले ज्ञानी लोग तपस्या क्यो करते है ? तपस्या करने से क्या लाभ है ? आप के कहे गये मत के अनुसार ज्ञानी लोग तपश्चरण करते हैं। अतः ऐसा सिद्ध नही होता ।।६८९।।

काक्षिये नुडित्तिडा काटि युवट्रै विट ।
ताक्षिया लोंड्रेनि लंदग नुक्किरुळ् ।।
माक्षियां वैयगमट्रु नक्कु योन् ।
ट्राक्षिया लोंड्रेदि लार विलक्कु वार ।।६९०।।

अर्थ—इस लोक में दीखवे वाले पुरुष प्रवृत्ति दुष्टम्, शास्त्र प्रवृत्ति दुष्टम्, लोक प्रवृत्ति दुष्टम्, ऐसा कहने के लिये शास्त्र प्रवृत्ति ऐसा कहने मे विरोध रहित परस्पर मे भिन्न २ स्थिति को बतलाया हुआ उसके स्वाभाविक गुणो से भली भाति न जानकर तथा न समझते हुए अपने द्वारा किया हुआ सर्वथा अभिन्न तत्त्व के बराबर है। ऐसा ग्रहण करके कहने वालो का यह मत है। जिस प्रकार अंधे को रात दिन समान दीखता है उसी प्रकार एकात मत वाले को कितना ही समझाया जावे वह अपने हठवाद को नही छोडता है ।।६९०।।

सुत्त सूनियं तत्तुव मेंबवन् ।
सुत्त सूनिय मागिलु निर्किलुं ॥
सुत्त सूनियं तत्तुव मल्लदाम् ।
सुत्त सूनियंतान् मुदलल्लवो ॥६६१॥

अर्थ—वस्तु सर्वथा शून्य है ऐसा कहने वाले मत भी ठीक नही हैं ; क्योकि जो वस्तु सामने प्रत्यक्ष मे दिखाई दे रही है उसको यदि शून्य कहा जायेगा तो प्रत्यक्ष रूप कहने मे बाधा आती है। इस कारण सर्वदा वस्तु को शून्य कहने वाले स्वतः शून्य ही होते है; क्योकि शून्य ऐसा कहने वालो की बात प्रत्यक्ष मे दिखाई दे रही है ॥६६१॥

सोन्न सूनिय वादियुं सूनियं ।
मुन्न मिल्लदो मुन्न मुंडायदो ॥
मुन्न मिल्लदर् केन्भोकि तानिलै ।
पिन्न इल्लदर केषिळै यायदे ॥६६२॥

अर्थ—इस कारण प्रत्यक्ष वस्तु को शून्य कहने वाले स्वय शून्य होते हैं। जानी हुई वस्तु को शून्य कहना सर्वथा असत्य हैं। भूतकाल मे वस्तु थी या नही यदि ऐसा उनसे पूछा जाय तो यदि वे ऐसा कह दे कि वस्तु नही थी तो अनादि काल से चली आ रही वस्तु को सर्वथा शून्य कहना,अथवा हमारे सामने प्रत्यक्ष मे जो वस्तु दीख रही है, उसको शून्य कहना तथा भविष्यत काल मे उसी वस्तु का नाश न होना, इसका आपके मत से प्रत्यक्ष मे विरोध आता है ॥६६२॥

तोट्रं वीदल् तोडरंदु निलै पेर ।
लाट्रवुं पोरुळिन् निगळ् वादलार् ॥
ट्रोट्र मायं दिडल् सूनिय मेंड्रिडि ।
नेट्र वारुरैत्ता निलै मट्रदे ॥६६३॥

अर्थ—उत्पाद, व्यय रूप होकर रहने वाले को यदि ऐसा कहाजावे कि यह शून्य है तो उस तत्त्व को किस प्रकार माना जायेगा। ऐसा कहने वाले तथा सुनने वालो के मत के अनुसार यह ठीक नही है। ऐसा कहने से उस वस्तु मे विरोध आता है ॥६६३॥

इट्ट दिट्ट मेरिदु तन्कोळिनै ।
विट्टु मारेदि तन् सोल् विरोधिया ॥
केट्ट वारिवै तीनेरि केळिनी ।
मट्टुला मुडियाय् नल्लवा नेरि ॥६६४॥

अर्थ—वे हरिचद्र मुनिराज किरणवेग को संबोधन करते है कि हे राजा किरणवेग!

आगमेष्टम्, प्रतिज्ञानेष्टम्, कर्म-फल-सबधेष्टम्, ससारेष्टम्, मोक्षेष्टम् आदि इष्टो को और लोक प्रवृत्ति दुष्टम्, पुरुष प्रवृत्ति दुष्टम्, शास्त्र प्रवृत्ति दुष्टम्, इस प्रकार तीनो दृष्टियो को नाश कर तथा अपने अभिप्रायो को त्यागकर विरोध होने वाले नित्यमेव अनित्यमेव अवाच्य-मेव, भिन्नमेव, अभिन्नमेव, शून्यमेव ऐसे इन छह प्रकार के तत्वो का त्याग करके आगे, सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ऐसे इन तत्वो का मैं प्रतिपादन करूगा उसको ध्यान पूर्वक सुनो ! ऐसा हरिचन्द्र मुनिराज ने उस किरणवेग से कहा ॥६९४॥

उन्मेइल्लद निकुरैयु मिलै ।
युन्मै इल्लद निकुनर्वु मिलै ॥
युन्मै इल्लद निर् पयनु मिलै ।
युन्मै इल्लदर् कुन्मुयु मिल्लैये ॥६९५॥

अर्थ—पुन: वे हरिचन्द्र मुनिराज कहने लगे कि सत्स्वरूप मे रहने वाली वस्तु वचनीय नही है । और उस वचन मे ज्ञान भी नही है । सत्य रहित वस्तु मे फल ही नही है । असत्य वस्तु मे सत्य ऐसे गुण नही है । ऐसा सुख बोध नाम के ग्रथ के पाचवे अध्याय मे विशेष रूप से विवेचन किया है । इस संबध मे विशेष विवरण को समझ लेना चाहिये । ॥६९५॥

अत्तियन् वयत्तालेंड्रु नित्तमां ।
सित्तमुं मोळियुं तिरि विन्मया ॥
नित्तमे वेतिरेगत्त नित्तमाम् ।
सित्तमुं मोळियुं सिदै वैदलाल् ॥६९६॥

अर्थ—अस्तित्व रूप से रहने वाले सत्यगुण को निश्चय से सदैव सत्य गुण को जानने वाले मन के द्वारा कहने वाले वचनो का नाश न होने कारण निश्चय से गुण और गुणी दोनो एक ही है । ऐसा जानने वाले मन,वचन स्यात् नित्य स्वरूप है । इससे एक द्रव्य, अन्वय, व्यतिरेक गुणो से नित्यानित्य होता है । सत्य ऐसे कहा हुआ अस्तित्व स्वरूप उत्पाद व्यय से युक्त है ॥६९६॥

अन्वयं व्यतिरेग मनंद मत्त् ।
तन्मैयार् पोरु डानिगळुं पडि ।
सोन्निगळं्द तनिचोल्ल लिलैयत् ।
तन्मैयार् पोरुडान दवाचियम् ॥६९७॥

अर्थ—निश्चय गुण पर्यायगुण को प्राप्त होकर अनन्त गुण से युक्त ऐसे जीवादि जीव के विषय को सामान्य रीति से सामान्य रूप मे तुम्हारे विषय को उस द्रव्य के विशेष गुणो की शक्ति न कहने के कारण अवाच्य होता है । यह स्याद्वाद रूप नही है । इसलिये यह तत्त्व वाच्याऽवाच्य रूप कहलाता है ॥६९७॥

अन्वयं वेतिरेग मट्र पोरुट् ।
सोन्न नल्लरि विर्षय नादिइर् ॥
भिन्न मादलिर् भिन्नमुमां पोरु ।
नन्वयं वेंड्रलादिय वट्रे चोल् ॥६६८॥

अर्थ—पीछे कहे हुए जीवादि द्रव्य के तादात्म्य अन्वय तथा व्यतिरेक ऐसे दो प्रकार के गुण है। यह दोनो गुण व्यवहार की अपेक्षा से भिन्न तथा निश्चय की अपेक्षा से अभिन्न हैं। इसी विभाव विषय को जीतने का विवेचन करूगा। इसे सुनो ॥६६८॥

माट्रि निड्र पिन् वीटिनु निर्कुनल् ।
लाट्रल् पट्रि येळुं मुनर् वन् वयं ॥
माट्रि निड्रदु वीटिलिल्लामै याल् ।
वेट्रुमै युन वास्रि वेतिरेगमे ॥६६९॥

अर्थ—आचार्य अन्वय, व्यतिरेक गुणो के वारे मे दृष्टात पूवक विवेचन करते हैं। हे किरणवेग राजा! सुनो। अन्वयगुण,व्यतिरेक गुणो को उत्पन्न करने के लिए निमित्त कारण होने से यह जीव नरकगति, देवगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति इन चार गतियो मे भ्रमण करता है। इसलिए यह जीव अन्वय गुणो से युक्त होकर उपादान कारण से होने वाले विभाव गुण को प्राप्त होकर इन चारो गतियो मे भ्रमण करता है। जिस प्रकार सोना अन्वयगुण को प्राप्त होकर उपादान कारण होकर कुन्डल, कडा आदि पर्यायो मे परिणमन होता है, उसी प्रकार यह जीव भी उपादान कारण को प्राप्त होकर संसार मे अनेक पर्यायों को धारण करके ससार मे परिभ्रमण करता है ॥६६९॥

अन्वयं व्यतिरेग अन्वयं वेतिरेगत्तैयाकला ।
लिन्नवै पिर पादि यै याकलाल् ॥
पोन्निनपोरु निट्र लदन् पय ।
निन्न दोंड्रै योंड्रै दलु मुक्कुमें ॥७००॥

अर्थ—पूर्व मे कहे हुए गुण और गुणी से युक्त वह द्रव्य सदैव केवल व्यवहार नय मे भिन्न होने पर भी निश्चय नय से आपस मे एक रहते हैं। अपने स्वभाव को छोडकर दूसरे स्वभाव मे परिणत नही होते। अत: यह जीवद्रव्य, ज्ञान, दर्शन, गुण से युक्त है। गुण और गुणी मे प्रदेश रूप से भेद नही होता है। वचनो के द्वारा गुण और गुणी ऐसा कहा जाता है परन्तु निश्चय से नही है ॥७००॥

येंड्र मिग्गु नयं पोरुळ् तम्मु ।
लोंड्र योड्र बिट्टो रिडत्तिन् कनुं ॥

सेंड्र निड्रन कंडरियामै या ।
लोंड्र मास् पोरुळोडु गुणंगळे ।।७०१।।
अचेतनत्तिडै चेदन मिन्म युं ।
चेतनत्तिलअ चेतन मिन्मयु ।।
मोदु मूर्ति ये मूर्ति योन् ड्रन्मयुं ।
तीदिलादव सूनिय सेप्पि नेन् ।।७०२।।

अर्थ—अचेतन द्रव्य मे चेतन गुण नही, चेतन द्रव्य मे अचेतन गुण नही । मूर्ति रूप द्रव्य मे अरूपी गुण नही है । इसलिये सर्वदा नाश नही है । कथचित् अशून्य ऐसे परमागम मे अर्हंत जिनेन्द्र के द्वारा कहा हुआ अनेकातवाद है । इस अनेकातवाद मे केवल एकातवाद को ही मानकर यदि एकात कोटि सिद्ध करेंगे तो सिद्ध नही होगा । प्रत्येक द्रव्य के साथ स्यात् शब्द का प्रयोग किया है । इसलिये व्यवहार की अपेक्षा से अर्हत भगवान के वचन के अनुसार हमने प्रतिपादन किया है । यह मार्ग एकात और अनेकात रूप मे कहे हुए पर किसी भी प्रकार की शका नही करना चाहिये ।।७०१।।७०२।।

सोन्न वारु विकर्प मोरु पोरुट् ।
तन्मै इट्रलै वन् मुदलारु मा ।।
ट्रिन्मै इल्लिदु मै मै इवट्रिन् मेर् ।
सोन्न भंगमु मेळ्ळ् सोल्लु वास् ।।७०३।।

अर्थ—पूर्व मे कहे हुए नित्य, अनित्य, अवाच्य, भिन्न, अभिन्न और शून्य यह छह प्रकार के भेद एक ही वस्तु मे होते हैं । आप्तेप्ट आदि छह द्रव्य पूर्वोक्त तीनो दृष्टातो मे परस्पर मे एक होकर रहने के कारण ये छहो स्वभाव से एक ही वस्तु मे रहते हैं । इस प्रकार सर्वज्ञ द्वारा कहे हुए आगम से इस भेद को भली प्रकार समझने के लिए सप्तभगो का मै विस्तार से विवेचन करूगा, तुम सुनो ।।७०३।।

उन्मै नल्लिन् मै युन्मै इन्मयु मुरैक्कोनामै ।
युन्मै नल्लिन्मै युन्मै योडुरैक्कु नामै ।।
नन्निय मूनड्र माग नयभंग मेळु मोड्रिर ।
कन्नुरि मन्नमंगळ् कडा वीट्रि नयगळ्वेदे ।।७०४।।

अर्थ—हे भव्य शिरोमणि राजा किरणवेग ! वस्तु के कथन करने के लिये सात भग (तरह) होते हैं । स्यात् अस्ति,स्यान्नास्ति,स्यादस्तिनास्ति,स्याद्अवक्तव्य, स्यादस्तिअव क्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य, और स्यादस्ति-नास्ति-अवक्तव्य । एक पदार्थ मे परस्पर विरोध न करके अविरोध रूप से प्रमाण अथवा नय के वाक्य मे यह सत् है आदि की जो कल्पना की जाती है वह सप्त भगी है । अस्ति द्रव्य और नास्ति द्रव्य इनको पृथक २ करके यदि एक को

ही ग्रहण करोगे तो यह मिथ्या है। इससे वस्तु की सिद्धि नही होती। प्रत्येक वस्तु कथचित् सत् है और कथचित् असत् है ॥७०४॥

उंडेन पट्ट देर्क इल्लया मुरुव मिड्रे।
लुंडेन पट्टवंड्रे यामिदं उलग मेल्ला ॥
मुंडेन पट्ट देर्के इल्लया मारें नेन्निल्।
वंडुनुं कौदै यावाळ् मगळिला उरुव मंड्रो ॥७०५॥

अर्थ—ऐसा अस्ति कहने वाले द्रव्य को नास्ति न कहना इससे व्यवहार नही रहेगा और तोन लोक मे रहते वाले सभी द्रव्य एक ही होगे, ऐसा होगा। अस्ति रूप वस्तु को नास्ति रूप स्वभाव कैसे कहा जायेगा? इस प्रकार का यदि प्रश्न होगा तो इस संवध मे आचार्य दृष्टात देते हैं कि एक मनुष्य की वहिन दूसरे की अपेक्षा पत्नी है। इसी प्रकारे दूसरे की अपेक्षा लडकी होने के कारण अस्ति हो गई और दूसरे को अपेक्षा नास्ति हो गई। एक की अपेक्षा से वह स्त्री माता है। इस कारण वह नास्ति हो गई। इस प्रकार एक ही द्रव्य मे व्यवहार न होगा तो संसार मे सभी वस्तु विना व्यवहार के एक ही होगी। यदि वस्तु मे व्यवहार नही होगा तो सारी वस्तु गडवड हो जायेगी ॥७०५॥

अत्तियां कुंभ मेड्रा लुलगला मडमवायो।
वैत्तदन् निडत्त देनिन्न मट्रेगु कुंभ मेड्राल् ॥
वैत्तदन् निडत्त देन्नित् मट्रेगु मिलामै याले।
नत्तियुंडैत्तन् रागि लुलग नर् कुंभ मामे ॥७०६॥

अर्थ—घट अस्ति रूप है क्योकि घडा सभी जगह न रहने के कारण उस समय वहा रहने के कारण वह घट अस्ति रूप हो गया। और वही घट दूसरो की अपेक्षा से नास्ति रूप हो गया। क्योकि घट स्वक्षेत्र की अपेक्षा से अस्ति हो गया। और परक्षेत्र की अपेक्षा मे नास्ति हो गया। इस प्रकार अस्ति नास्ति नही होगा तो एक ही घट तीन लोक मे है ऐसा होगा। इसलिए स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव की अपेक्षा से द्रव्य, अस्ति रूप एव परद्रव्य की अपेक्षा से नास्ति रूप होता है ॥७०६॥

इदुवदु वलामै युंडे लिदु वदु वेन्नलागु।
मिदु वदु वलामै इन्ड्रे लिदु वदु विलामें याले ॥
पोदु ओडु विशेडयिड्रि पोम् पोरुळ् पोन पिन्ने।
विदि विलक्कि लामै याले शूनियमांगु वेंदे ॥७०७॥

अर्थ—हे राजा किरणवेग सुनो! वस्तु ऐसे बतलाया हुआ जो द्रव्य है वह यदि नास्ति न होगा तो द्रव्य कूटस्थ होगा। एक २ वस्तु मे रहने वाले विशेष गुणो का और उस द्रव्य का अभाव हो जाता है। इस प्रकार अभाव होने से अस्तित्व व नास्तित्व यह साधन

नही है । इसलिये वस्तु मे रहने वाले अनेक भेदो को कह नही सकते ।।७०७।।

अत्तियालति जीवनरिविना लरिव नेन्नि ।
लत्ति माराय वेल्ला गुणत्तंयु मडय पट्टि ।।
नत्तियाम् भंगं तोंड्रि जीव नै नाति येन्नु ।
मितिर भंगमेळुं पोरु ळिडै इरंद वारे ।।७०८।।

अर्थ– यह आत्मा सत्स्वरूप ऐसे अस्ति रूप से चेतन नाम के ज्ञानादि गुण गुणी से युक्त तत्स्वरूप या अनादि काल से अस्ति रूप है क्योकि अस्ति रूप को दूसरे अचेतन ऐसे असत् स्वरूप है । यदि ऐसा मान लिया तो अस्ति द्रव्य नास्ति रूप होता है । इसलिये जीव पदार्थ का स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति इस प्रकार मानकर प्रत्येक द्रव्य मे ७ भग होते है ।।७०८।।

उन्मयु मिन्मै तानु मोरु पोरु ट्रन्मै यागुं ।
चन्मै सोल्लु मूंड्राय् भंग मट्रौ विरंडिर् ।।
कन्नुरु पोरुळै योर् सोल् सोलाम यैतुरिय काट्टुं ।
तिन्नि यो डवाचि येतिन् सेरिविन् सेप्पु मूंड्रुम् ।।७०९।।

अर्थ—स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति ये दोनों वस्तु एक ही स्वभाव के गुण के भेद हैं । क्योंकि स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव इनकी अपेक्षा से अस्ति हो गया । और पर द्रव्य परक्षेत्र, परकाल, परभाव की अपेक्षा नास्ति हो गया । यह दोनो भेद एक ही द्रव्य मे उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार रहने वाले स्यात् अस्ति-नास्ति नाम का तीसरा भग हो गया । इस प्रकार स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति यह दोनो ही एक समय मे कहने मे समर्थ न होने के कारण स्याद् अवक्तव्य यह चौथा भग हो गया । स्याद् अस्ति स्याद् नास्ति स्याद अस्ति नास्ति ऐसे तीन अवाच्य को एक ही समय मे कहने को साध्य नही होता । इसी प्रकार अन्य ? भगो के सबध मे जान लेना चाहिये ।।७०९।।

सेप्पिय भंग मेळुं वत्तुक्क डोरुं सेल्लु ।
मिप्पडि वुरैत्त वेल्ला मेव कारत्तो दोंड्रिर् ।।
रप्पित्ति नयंगळागि तड्डुमाट्रं तन्नै याकुं ।
मैपड वुनरं्द पोळ्दिन् वीटि नै विळैक्कुं वेंदे ।।७१०।।

अर्थ—हे राजा किरणवेग ! यह उपरोक्त सप्त प्रकार के भग जीवादि सभी द्रव्यो मे रहते हैं । इन सात भगो को अस्ति नास्ति ऐसे भिन्न २ रूप से कल्पना ग्रहण करगे तो व्यवहार का लोप हो जायगा और सप्तभग विषय को अन्य मिथ्यादृष्टि लोगो के एक २ नय को पकड कर ही मोक्ष मार्ग को न समझने के कारण संसार भ्रमण होता है । इस कारण द्रव्य सम्पूर्ण तौर पर एक ही है भिन्न २ नही है । ऐसा कहने वाले अन्य प्राणी मोक्ष की प्राप्ति कैसे कर सकते है? ।७१०।।

अनादि मिच्चोद यत्तालरिवु मिच्चत्त मागि ।
कनाविनुं मै मै कानार् पान्मै यांग कालं वंदाल् ॥
विनावि मै युनरं्द वट्रिनिळुंदाळ् विशोधि तन्ना ।
लनादि मिच्चुव समत्ता लडयुं सम्मत्तं वेंडे ॥७११॥

अर्थ—हे राजन् ! अनादि काल से मिथ्यात्व के तीव्र उदय से हेय उपादेय का स्वरूप न समझने के कारण अपने निज स्वरूप का अनादि काल से लेकर अब तक स्वरूप स्वप्न में भी अनुभव मे नही आया है। उनके अनुभव मे तो स्वपर के भेदज्ञान की भावना अभी तक उत्पन्न नही हुई, न आपापर के जानने का अभ्यास किया, इस कारण वह आज तक ससार मे भ्रमण कर ही रहा है। सम्यक्त्व को धारण करने की लब्धि उत्पन्न हो जाय तो वह जीव सद्गुरु का उपदेश सुनकर उस उपदेश के निमित्त से कर्म क्षयोपशम लब्धि से अनादि काल से आत्मा के साथ संबध करते आये मिथ्यात्व कर्म प्रकृति के उपशम से सम्यक्त्व उत्पन्न कर लेता है ॥७११॥

येळुवुदु कोडा कोडि सागर त्तिळिंदु निर ।
पळुदेलां शेय्य वल्ल मिच्यत्त पगडि तन्नै ॥
येळियवे सारं्व कोडा कोडि मेलंद मूळ्त ।
मुळिय मेट्रिदियै सोदि शाम वण्ण मोरुंगु वीळ्कुं ॥७१२॥

अर्थ—मोह कर्म को सत्तर कोडाकोडी सागर मे कुछ कम होकर आत्म-स्वभाव को प्रगट न होने देने वाले मिथ्यात्व प्रवृत्ति को नाश करने वाले कोडाकोडी सागर मे एक अतर्मुहूर्त में उस स्थिति को अर्थात् मध्यम उत्कृष्ट स्थिति को विशुद्धि लब्धि द्वारा नाश कराता है। ॥७१२॥

निड्र् कीटिदियै कंडन् कणंदोरु नेरिइर् सेय्या ।
वंदमु नार्पत्तोरु पगडिकट् कोलित्त कोळ्दे ॥
वंदुडन् कट्दुतीय नल्विनै तिदि सुरुक्का ।
वंद मूळ्तं सेड्ंद विशोदिय दगंड्र पिन्नै ॥७१३॥

अर्थ—इस प्रकार उस स्थिति को खड २ करके प्रति समय मे नाश कराते २ इकतालीस प्रकृति मिथ्यात्व कर्म को वध करने वाले परिणामो का नाश करने से और उनमे आकर वध होने वाले पाप और पुण्य स्थिति को कम करके एक मुहूर्त के बाद देशनालब्धि परिणाम का ज्ञान होने के बाद आगे कही जाने वाली ४१ प्रकृतियो का वध नहीं होता है। अर्थात् एक मिथ्यात्व दूसरा नपुसक वेद, तीसरा नरक आयु, चौथा नरक गति, पांचवा नरक गत्यानुपूर्वी, छठा एकेंद्रिय जाति, सातवा दो इन्द्रिय जाति, आठवा तीन इन्द्रिय जाति, नवा चतुरिंद्रिय जाति, दसवा हुंडक सस्थान, ग्यारहवा असंप्राप्तासृपाटिका सहनन बारहवां आतप, तेरहवा स्थावर, चौदहवा सूक्ष्म, पद्रहवा अपर्यायात्मक, सोलहवा साधारण शरीर, सत्रहवा निद्रा २, अठारहवां प्रचलाप्रचला, उन्नीसवा स्त्यानगृद्धि, बीसवा अनन्तानुबधी

क्रोध, इक्कीसवा अनतानुबधी मान, बाईसवा अनन्तानुबन्धी माया, तेईसवा अनन्तानुबधी लोभ, चोबीसवा स्त्रीवेद, पच्चीसवा तिर्यच आयु, छब्बीसवा तिर्यंच गति, सत्ताइसवा तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, अट्ठाईसवा न्यग्रोध सहनन उन्तीसवा स्वाति सहनन, तीसवा वामन सहनन, इकतीसवा कुब्जक सहनन, बत्तीसवा कीलक सहनन, तेतीसवा नाराच सहनन, चौतीसवा अर्द्ध नाराच सहनन, पैंतीसवा वज्र वृषभनाराच सहनन, छत्तीसवा उद्योत, सैतीसवा अप्रशस्त विहायोगति, अडतीसवा दुर्लभ, उन्तालीसवा दु स्वर, चालीसवा अनादेय, इकतालीसवा नीच गौत्र इस प्रकार यह इक्तालीस प्रकृतिया हैं ।।७१३।।

कणंदोरु मनंद मांगु गुण मुडै विशोदि तोंड्रा ।
कनदोरुं कट्टु गिड्र विनैत्तिदि सुरुंगि कट्टा ।।
कनंदोरु पडिय नंदोम् नल्विनै भाग मेट्रा ।
कनदोरु मळविर् कट्टुं तींविनै भागं वीळ्कुं ।।७१४।।

अर्थ—अनादि काल से उपार्जित किये हुए ज्ञानावरणादि आठो कर्मो की स्थिति को घटाकर अत. कोडाकोडी सागर प्रमाण कर लेने की योग्यता आ जाना तथा दारु लता अस्थि और शैल रूप अनुभाग वाले चार घातिया कर्मों की अनुभाग शक्ति को घटाकर केवल दारु और लता के रूप मे ले आने की शक्ति हो जाना इसको प्रायोग्यलब्धि कहते हैं ।।७१४।।

इव्वै पयंद दाय विदन् बिन् वंद दर्पमत्त ।
मौवगै पयत्तै शैया वंद मूळतत्ति नोगं ।।
कौवै शै विनक्कु कालन् पोलपु पुव्वाणि तोंड्रि ।
शव्वि इट्रिदि नोड्ड भागत्तै सिदैक्कु निंड्रे ।।७१५।।

अर्थ—इस प्रकार के फल देने वाली प्रायोग्यलब्धि के प्राप्त हो जाने के बाद आगे उत्पन्न होने वाली करण लब्धि मे प्रायोग्य लब्धि के समान ही इस परिणाम के फल को देते हुए तथा सम्पूर्ण कर्मों के क्षय स्वरूप मोक्ष को अनेक नय निक्षेप प्रमाणो के द्वारा भली भाति जानकर दर्शन मोहनीय कर्मो के उपशम करने योग्य परिणाम का हो जाना कारणलब्धि है ।।७१५।।

विदिइनि केपत्तोड्ड गुणंद शेंगमत्तै शय्या ।
पुदिय वास् विदिइन् भाग तिदीयै मुन्पोल कट्टा ।।
पदररु पलगं ळारै पयंद पुवाणि नींग ।
वतिशयं पलवुं मैय्यु मणि येट्रि विशोदि तोंड्रा ।।७१६।।

अर्थ—इस क्रम से निक्षेप गुण सहित सक्रमण करके कभी भी न होने वाले नवीन पुण्य बंध का अनुभाग और स्थिति गति का अधिक बध होकर छह प्रकार के फल को उत्पन्न करने वाले ऐसे अपूर्व करण परिणाम को छोडकर आत्मा मे अतिशय गुण उत्पन्न करने वाले अनिवृत्ति करण नाम का परिणाम उत्पन्न होता है ।।७१६।।

पन्द सन्दत्तै चारन्द नाल्वगै पयत्तै याका।
वेंड्रला विनैकु केट्टमो कट्ट मोरुंगु शय्या ।।
निड्रु गुणत्तच्चेडि निक्केवन् तन्नै याका ।
कुंड्रिय विनगेट् केंड्रु गुणंद सेंगमत्तै शया ।।७१७।।

अर्थ—इस प्रकार परिणाम उत्पन्न होने के पश्चात् पाप और पुण्य इन दोनो कर्मो मे पाप कर्म को सत उदीरणा और पुण्य कर्मो को बध उदीरणा कहते हैं। तदनन्तर उस स्थिति को कम करके गुण श्रेणी मे आरोहण करते२ गुण निक्षेप कर उसके परिणाम से पुन अपने स·यक्त्व की वृत्ति करता है ।।७१७।।

अनियेट्टि करणं पिन्नै येंदर करणं शैया ।
विदियेंद कोडा कोडि मूळ्त मेल् कीळ् मुन्निड्रु ।।
तन्नै विट्टु नडु वनंद मूकत् माय् निडेदितन् कन् ।
विनै इनै कीळु मेलु मंदर वेळियै शैया ।।७१८।।

अर्थ—तदनन्तर अनिवृत्तिकरण लब्धि के परिणाम एक अन्तर्मुहूर्त के बाद क्रम से वृद्धि करते हुए मिथ्यात्व कर्म की अन्त कोडाकोडी उत्कृष्ट स्थिति को तथा अन्तर्मुहूर्त की मध्यम तथा जघन्य स्थिति को अतर्मुहूर्त मे आत्मा मे रहने वाले मिथ्यात्व कर्म के तीन भाग करके एक भाग ऊपर, और भाग नीचे करके अन्त मे आत्म-ज्योति की वृद्धि करता है ।।७१८।।

वेळिइन् मेल् मिच्चत्ततिन् वेम्मयै तन्मै शैया ।
वेळिइन् कीळ् मिच्च मेल्लां विरगुळि येळुंद पोळ्दि ।।
लळविला ज्ञानं काक्षि येक्कणत्तेळुंद वट्ट्राल् ।
वेळिइन् मेनिड्र् तुंडन् कंड मूंड्रागि नीळुं ।।७१९।।
तिरियिर् पैदरत्त पोळ्दिर् ट्रिरिविद मागि वीळुं ।
वरगै पोल् मिच्चं चम्मा चम्मत्त मागि ।।
विरगिनाल् वीळंद मूनं्ड्रो दनंतानु वंधि नान्गास् ।
तिरै इनै यवित्तान् माट्रान् तिन् कडर् करयं कानुं ।।७२०।।

अर्थ—आत्म-ज्योति प्रगट हो जाने के बाद आत्मा मे लगे हुए बाह्य और अभ्यतर कर्मो की निर्जरा होकर सत्ता मे रहने वाले तथा उदय मे आने वाले पाप कर्मो का नाश करते समय अनन्त गुण से युक्त सम्यक्दर्शन का आत्मा मे प्रादुर्भाव होने के पश्चात् आत्मा मे अनादि काल से वंधे हुए कर्मो की निर्जरा होकर, खड २ तीन टुकडे होकर, इस तरह नीचे गिर जाते है, जिस प्रकार कि चक्की मे अनाज को डालते ही सबसे पहले उसके तीन टुकडे हो जाते हैं। मिथ्यात्व के तीन भाग होते हैं। मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व सम्यक् प्रकृति।

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायरूपी तरगो का उपशम होकर सम्यक् विशुद्ध परिणाम को प्राप्त हुआ यह जीव ससार रूपी सागर का अन्त करके मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है ।।७१६।।७२०।।

मिच्चत्त यगडि मेळुं विरगिनान् लुवस मिप्प ।
उच्चत्ति निड्र वीर मुपशम सम्मत्तिट्टि ।।
मिच्चत्त पगडि वंदमुदल् व्यापार नींगा ।
वच्चत्तै विनिकट् काकि येंद मूळतळवु निकुं ।।७२१।।

अर्थ—मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति और अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया और लोभ इन सात प्रकृतियो का क्रम से उपशम करके रत्न पर्वत पर से मनुष्य के नीचे गिरने मे वह जो रहने का समय होता है वह जीव उपशम सम्यक्दृष्टि होता है। उपशम सम्यक्दृष्टि जीव एक मुहूर्त पर्यंत मिथ्यात्व प्रकृति का बध करने वाली प्रकृति, कर्म प्रकृति को रोकता है ।।७२१।।

उपशम कालत्तुळ्ळो अनंतानुवधि तोड्रिर् ।
कुबद शादं शम्यादृि यांगुण त्तै येंदु ।।
मुपशम कालत्तिन् पिन् मूंड्रत्तोंड्रुदय मादल् ।
सवदभा मिच्चं सम्मा मिच्चिल तन्मै तानां ।।७२२।।

अर्थ—उस उपशम काल के अन्तर्मूहूर्त तक अनन्तानुबधी क्रोध, अनन्तानुबधी मान, अनन्तानुबधी माया और अनतानुबधी लोभ इन चारो कषायो मे से किसी भी एक कषाय का रत्न पर्वत पर से मनुष्य के नीचे गिरने के समय तक के बीच का समय के समान भाग वाले को सासादन गुणस्थान प्राप्त होता है। उस उपशम काल के अनन्तर उक्त प्रकृतियो मे मिश्र प्रकृति का उदय हो जावे तो वह मिश्र गुणस्थानी कहा जाता है। सम्यक्प्रकृति का यदि उदय हो जाय तो वह सम्यक्दृष्टि गुणस्थान कहलाता है।।७२२।।

वेदगं मुदित्त पोळ्दिन् मेयुनर ओडु काक्षि ।
कोयादु मो कुट्र मैदा तेरिपुदि विनैगडमै ।।
बोदियुं काक्षि दानुं पूरणै शेंड्रु निड्रु :
घाद वेदक मुन्नेळै काक्षि काई कमदामें ।।७२३।।

अर्थ—सम्यक् प्रकृति का यदि उदय हो जावे तो वह अपने आत्म-स्वरूप को जान लेता है। और सम्यक्त्व सहित ज्ञान वाला होकर, सम्पूर्ण दोषो से मुक्त होकर पाप कर्मो का नाश करता है। तब वह सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान पूर्ण हो जाने के वाद वह वेदक सम्यक्त्व पूर्व मे कहे हुए सात प्रकृतियो का नाश करने वाला क्षायिक सम्यक्दृष्टि कहलाता है। इस प्रकार क्षायिक गुण को प्राप्त हुए भव्य जीव को क्षायिक सम्यक्दृष्टि कहते है ।।७२४।।

अडक मिलानै यादि नालवकुं मूंड्र मागु ।
मुडॅत्तिडा तुवस मिप्पा नाल्वरु कुपस मित्तां ।।
केडुत्तव ररुवर् कागिर् केटिन् कनाय दागुं ।
तडवक्कै मा वेंदे येंड्रान् ट्रत्व तवत्तु वेंदन् ।।७२४।।

अर्थ—जीव अजीव तथा तत्वो के स्वरूप को जानने वाले निर्ग्रंथ महा तपस्वी हरीचद नाम के मुनि उस किरणवेग राजा को इस प्रकार आत्मा के साथ लगे हुए सभी कर्मों के भेदो का विवेचन करते हुए कहते है कि हे राजन् ! सुनो ।

असयत, देशसयत, प्रमत्त अप्रमत्त, यह चार गुणस्थान पर्यंत उपशम सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व इन तीनो मे से कोई एक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। इन कर्मों के नाश करने मे उपशम श्रेणी चढने वाले अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, तथा सूक्ष्म सांपराय क्षीणकषाय, सयोग केवली, अयोग केवली ऐसे छह गुणस्थानो मे एक क्षायिक सम्यक्त्वी रहता है ।।७२४।

काक्षियु मरिवु मिन्न कदिर्प बैबोरियुं वेंड्रु ।
पूक्षि सालोळुक्कं तांगि पुरिंदेळु ध्यान वाळाल् ।।
वेट्कै वेररुत्तु घाति विनैगळै वेंड्र पोळदि ।
लाक्षि मूउलग मागु मरस मट्रिर मो वेंड्रान् ।।७२५।।

अर्थ—वह सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान पहले कहते आये हुए के समान प्रकाशमान होकर वृद्धि होते हुए पचेन्द्रिय विषयो को नाश कर सम्यक्चारित्र को प्राप्त होकर धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान इन आयुधो से राग, द्वेष, मोह रूपी ससार वेल का उच्छेद कर घातिया कर्मों का नाश कर इस तीन लोक मे भरे हुए चराचर वस्तुओ को एक ही समय मे जानने की सामर्थ्य रखने वाले केवलज्ञान को प्राप्त होता है ।।७२५।।

मादवन् मलरंद वाय् मै माणि विळ केरिप्प मैय ।
लादिय मंद कार् मगंड्र तमनरिवु काक्षि ।।
योदिय वगइर् ट्रोंड्र उलप्पि ला पोरुळै कंडा ।
नेद मडिला मै केडु विय ट्रुव नेंड्रु सोन्नान् ।।७२६।।

इस प्रकार हरिचद्र मुनिराज सत्य अहिंसामयी धर्म का स्वरूप राजा किरणवेग के समझ मे आ जाये इस प्रकार राजा को समझा दिया । उस समय राजा किरणवेग ने अपने मन मे उन मुनिराज के उपदेश से अन्दर मे रहने वाले मिथ्यात्व रूपी अन्धकार को दूर किया और धर्म मे रुचि रखने वाले उन हरिचद्र मुनि के चरणो मे नतमस्तक होकर विनय से प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभु ! निर्दोष गुणो से भरे हुए मोक्ष पद प्राप्त कराने वाली मुझे दिगम्बरी जिन दीक्षा प्रदान करें । इसको प्राप्त करने की उत्कठा मेरे मन मे हो गई है ।
।।७२६।।

विरि तिरै वींदु तोंड्रल् वेळ्ळं वेनत्तुयरम् वेलै ।
तिरि भुवनत्ति नेल्लै तिमिर् गणार् गति गळासै ।।
येरि पुरि वडवै इंबम् दोप माट्राळि निंड्रिव् ।
वुरैयनुं दोनि सित्ति पत्तनं तुइक्कु मेंड्रान् ।।७२७।।

अर्थ—पुन. मुनिराज से प्रार्थना करता है कि मेरी आत्मा अनादि काल से ससार रूपी तरग मे उथल पुथल हो रही है। आज तक इस ससार मे चिरस्थान मुझे कही भी नही मिला। इस ससार रूपी समुद्र मे दुख जल प्रवाह के समान है। तीन लोक मे भरे हुए दुख तालाब के समान है। समुद्र के बीच मे रहने वाले द्वीप के समान यह चारो गति है। यह दुख राग रूपी समुद्र मे बडवानल के समान है। सुख रत्नद्वीप के समान रहता है। अब मैं शीघ्र ही हे प्रभु ! आपके नौका रूपी चरण कमलो का सहारा लेना चाहता हू। और सद्धर्म रूपी नाव मे बैठकर इस ससार रूपी से पार होना चाहता हूँ। बस यही मेरी अभिलाषा है। ऐसा विचार कर राजा किरणवेग ने जिनदीक्षा लेने का दृढ विचार कर लिया ।।७२७।।

भोगमुं पेरुळु मेल्लां मेघमुम् तिरयुं पोलुं ।
सोगमुं तुयरुं याकुं तोडुकडर् सुट्र मागुं ।।
नागमुं निलमुं पेट्राल् नालेदु नाळिल् वेराम् ।।
योगि याय विनयै वेलव निरैव वेंड्रुरै शैदाने ।।७२८।।

अर्थ—इस प्रकार विचार करके मुनि महाराज से वह प्रार्थना करता है कि हे प्रभु भोगोपभोग ऐश्वर्यादि जितने भी पचेंद्रिय विषयो को उत्पन्न करने वाली भोग सामग्री है वह सब आकाश मे बादलो के समूह के तथा समुद्र की तरगो के समान क्षणिक है। मेरे शरीर सबधी भाई, बधु, मित्र, कुटुम्बी, पुत्र इन सब को अभी तक मैंने अपना ही समझा है, यही कल्पना मात्र करता आया हूँ। इनको जितना २ अपना समझा उतने २ दुख के कारण होते गये। इनके द्वारा आज तक मुझे कोई सुख प्रतीत नही हुआ। मैंने देवगति, साम्राज्य भी प्राप्त किया परन्तु वहा भी सुख नही मिला उसको भी मुझे छोडना पडा, उनको भी आत्मा से भिन्न समझा। इस कारण अब ससार समुद्र से तारने के लिये मुझे दिगम्बरी जिन दीक्षा प्रदान करे। इसको ग्रहण कर कर्म रूपी शत्रुओ का नाश करके मोक्ष रूपी लक्ष्मी को प्राप्त करने की इच्छा मेरे मनमे प्रकट हुई ।।७२८।।

अरुं तवं दानं शील मरिव नर् शिरप्पु नांगुं ।
तिरिंदिय गुणत्ति नार्कु सेदिक्कु वीदि यागु ।।
मरुंतव मरिदु शील माट्रुव दांगि दानुं ।
पोरुंदि नर्शिरप्पोडोंड्रि पुरवल शेलग वेंड्रान् ।।७२९।।

अर्थ–किरणवेग की प्रार्थना को सुनकर मुनिराज कहने लगे कि राजन् ! तपश्चरण का मूल यह है कि, चार प्रकार दान देना, शीलाचार से रहना सर्वज्ञ भगवान की पूजा, अर्चा

करना, धर्म पर रुचि पूर्वक दृढ श्रद्धान रखना आदि यह सब भव्य सम्यक्दृष्टि के लिये प्रथम मोक्ष जाने का मार्ग है। इस प्रकार के तपश्चरण के भाव को प्राप्त करके ससार मे रहकर ही धर्म मार्ग पर चलना यही अच्छा है। यही आगे चलकर मोक्ष मार्ग का साधन होगा। एक दम से तप भार को सम्हालना बडा कठिन होगा। तप तीक्ष्ण तलवार की धार के समान है। प्रत्येक प्राणी को यह तपश्चरण भार मिलना महान दुर्लभ है। आप ससार मे रहकर ही, सत्पात्रो को दान देवे, पूजा, अर्चा, शास्त्र, स्वाध्याय करो। धर्म पर श्रद्धा रखो तो सहज ही मोक्ष प्राप्त करने की सामग्री प्राप्त होगी। इस प्रकारगृहस्थाश्रम मे ही रहकर पट्क्रिया पूर्वक धर्म ध्यान करके समय को बिताना चाहिये ।।७२९।

अरुळिय मूंड्र मेन् कन् विनै पर् वॅरिंदु वीटैं ।
तरुयेनिलरिय वंदत्तवत्ति नार् पयनु मिल्लै ।।
अरिय वत्तवति नड्रि पिरप्पिनै कडक्कोनादे ।
लरुविय देन् कोलेन् वरुंदव नमैंग वेंड्रान् ।।७३०।।

अर्थ—हरिचद्र मुनि का उपदेश सुनकर पुन. किरणवेग प्रार्थना करने लगा कि शील दान, पूजा आदि ही कर्मो के नाश करने के कारण नही हैं। ये तो पुण्य वध के कारण हैं। यदि पुण्य को मोक्ष का देने वाला समझा जावे तो तपश्चरण ही क्यो किया जावे। इतने महान तीर्थकरो ने क्यो तपश्चरण किया ? आप ही तो यह कहते है कि बिना ससार छोडे कल्याण नही होता है। फिर मुझे ही आप ऐसा उपदेश देते हो कि गृहस्थाश्रम मे ही रहकर षट्क्रिया, दान, पूजा आदि करो, ऐसा आपने क्यो कहा ? तब मुनिराज ने कहा कि यदि तुम्हारे मन मे तपश्चरण करके कर्मो की निर्जरा करने की भावना उत्पन्न हुई हो और जिन दीक्षा लेने की शक्ति हो तो दिगम्बरी दीक्षा लो वरना दीक्षा लेकर फिर उसमें वाधाएं पड जावे, यह ठीक नही। और इसी कारण हमने घर पर ही रहकर धर्म ध्यान करने का उपदेश दिया था। ऐसा हरिचन्द्र मुनि ने किरणवेग को समझाया ।।७३०।।

सैंकयर करुंगेट् शौवाय् शीरडि परवै यलगुर् ।
कोंगैगळ् वींगत्तेइंदु नुडंगिडै कोडिय नार्गळ् ।।
वेंगळियानै वेंदन् विददियान् तिरुवै मेव ।
वंग व नुमिळ पट्ट तंबलं पोल वानार् ।।७३१।।

अर्थ—हरिचन्द्र मुनि राज के कहने के वाद राजा किरणवेग वैराग्य से युक्त होकर संसार शरीर भोग से विरक्तता धारण कर, जिस प्रकार एक मनुष्य पान खाकर चबाकर तुरन्त ही थूक देता हैं उसी प्रकार किरणवेग ने अपनी पटरानी, राज्य वैभव आदि सर्व सम्पत्ति भोग सामग्री का एकदम त्यागकर कर दिया ।।७३१।।

परु मारिण मुडियिं तोंडुं पट्टमुं कुळयिं पूनुं ।
तरु मरिण यारं ताम मंगदं शेन्न वीरम् ।।

अरुविलै पट्टं विट्ट वरस नाल् मुनिय पट्ट ।
परिसनं पोल चायै इळदु पोय् वीळ्द वंड्रे ।।७३२।।

अर्थ—तदनन्तर उन मुनिराज ने "तथास्तु" कहकर शास्त्रोक्त विधि के अनुसार किरणवेग को जिन दीक्षा की अनुमति दे दी । उसने अपने मस्तक पर रहने वाले मुकुट, छत्र, चाद तथा अन्य २ वस्त्राभूषण आदि को जिस प्रकार एक राजा क्रोधित होकर अपने शत्रु राजा को अपनी हद से बाहर निकाल देना है, उसी प्रकार सारे अलकारो को उतार कर फेंक दिये और कानो मे कुण्डल रत्नो, के हार उतार कर अलहदा रख दिये ।।७३२।।

कुंदळमागि नीलं कुळंड्रेळुंद नैय कुंजि ।
मंदिर पदंगळ् सोल्लि वन् कैयाल् वांगु मेल्लै ।।
येंडर करण शिदै कौवळि युळैय दाग ।
विदिय सिरगु वीळ्दं परवै पोलेळुंद वेगं ।।७३३।।

अर्थ—तत्पश्चात् हरिचन्द्र मुनिराज ने राजा किरणवेग को पूर्वमुखी बिठा कर शास्त्रानुसार विधि व मत्र पूर्वक आचार्य भक्ति, सिद्ध भक्ति आदि को पढकर "ॐ नम सिद्धेभ्य" ऐसा बोलकर सिद्ध भगवान को नमस्कार किया और अपने हाथो से पचमुष्ठि केश-लुंचन किया । केश-लुचन करते समय जिस प्रकार पक्षी के पख उखाड कर फेंकते समय वह पक्षी भाग नही सकता उसी प्रकार पचेन्द्रिय विषयो के सुख को त्याग कर वे केश-लुचन करके मन मे स्थिर हो गये ।।७३३।

दडिनै कोवित्तादि्र दरुमात्तिन् वळिय नागि ।
विडं गारवयळ् वेय्य परिशयै वेंड्र् वीरन् ।।
मुंड मोरेंदा दोड्रि मुनिमै इरू ट्रनिय नागि ।
दंडुळि मुगिलिर सेल्लुं चारणत्तन्मै पेट्रान् ।।७३४।।

अर्थ—वे किरणवेग मुनि मन,वचन और काय ऐसे तीन दड को त्याग कर आत्म-भावना मे लीन हो गये और पुन: उत्तम क्षमादि दस धर्मों का पालन करते हुए, रसगारव, ऋद्धिगारव, और सात गारव ऐसे तीनो गारवो को त्यागकर क्षुत्पिपासादि परीषह को जीतकर दस प्रकार के मुडनो से युक्त होकर आकाश मे जैसे मेघ समूह जाते हैं, उसी प्रकार इन्होने आकाश मे गमन करने वाली चारण ऋद्धि प्राप्त कर ली ।।७३४।।

तिरिविद योगु तांगि तिरिव दोर् शिगरि पोल ।
मरुविय कोळगै नींगा मादवर् मरुळ चल्वान् ।।
करि यर शदनै पोल कांचन कुगयै सेंर्दाङ् ।
करिइळ वेरु पोल वरुंदव निरुंद नाळाल् ।।७३५।।

अर्थ—उन किरणवेग मुनि ने चारणऋद्धि प्राप्त करके ऐसा त्रिकाल योग धारण किया कि वहां अन्य सभी मुनिगण उनके तपश्चरण के महत्व को देखकर लज्जित हो गये। उन मुनिराज के चारणऋद्धि तथा तपश्चरण के वल से उनको आकाश मार्ग मे जाते देखकर मुनिगण विचार करते हैं कि हमको इतना समय मुनि दीक्षा लिये हुए हो गया आज तक हमे ऐसी ऋद्धि प्राप्त नही हुई। इन नवीन दीक्षित मुनि को इतनी जल्दी ऐसी महान् ऋद्धि कैसे प्राप्त हो गई। तदनन्तर वे किरणवेग मुनि इधर उधर विहार करते हुए कातन नाम के पर्वत पर सिंह के समान वृत्ति धारण किये हुए वहा तप करने लगे ।।७३५।

येरि मूळ्गि यनै कुळ्गै यशोधरै इलंगु वान्मेर् ।
द्रिरिगिड्र दनैय कुळ्गै शिरिदरै योडुम् शवोन् ।।
विरिगिड्र कुगइन् पाडं मैत्तवन् ट्रन्नै वाळ्ति ।
इरिगिड्र विनय रागि इरैवन् पालिरुंद कालै ।।७३६।।

अर्थ—वे मुनिराज निरतिचार पूर्वक व्रतो का पालन करते हुए उस पर्वत की गुफा मे उपवास किये हुए विराज रहे थे। एक दिन यशोधरा तथा श्रीधरा नाम की दोनो आर्यिकाएं असिधारा के समान चारित्र को पालन करती हुई उस कातनगिरि पर्वत पर आई और उनने भक्तिपूर्वक मुनिराज को नमस्कार किया ।।७३६।।

विदिइनार् गतिग नान् मेविनिड्रार् कंड मुन् ।
मदिय्निार् पेरिय नीरार् मक्कळाय् वंदु तोंड्रि ।।
विदियिनार् ट्रानं पूजै मैत्तवं शैयदु वीटै ।
गतिगळै कडंदु शेल्वार् कारिगै यार्गळ् शेन्नार् ।।७३७।।

अर्थ—तदनन्तर मुनिराज की भक्ति स्तुति करके पुन. नमस्कार करके वे आर्यिकाए वैठ गईं। मुनिराज ने उन दोनो को "सद्धर्मवृद्धि" ऐसा शुभाशीर्वाद दिया। उन यशोधरा श्रीधरा आर्यिकाओ ने विनयपूर्वक प्रार्थना की कि हे प्रभु! यह जीव ससार मे अनादि काल से परिभ्रमण करता आया है, इसके उद्धार होने का कौनसा उपाय है? वह हमे कृपा करके वतलाइये। मुनिराज ने कहा कि जीव के उद्धार होने का एक जैन धर्म ही कारण है। चारो गतियो मे भ्रमण करते हुए इस जीव को अपने २ परिणामो के अनुसार उच्च नीच गतियो मे जाना पडता है। जव तक यह जीव भगवान के द्वारा कहे हुए मोक्ष मार्ग को वतलाने वाले वचन व तत्वों को भली भाति से जानकर उस पर सम्यक्त्व सहित श्रद्धा नही करता है तव तक यह जीव ससार मे परिभ्रमण करता ही रहेगा। जिस समय इस जीव को जिनेंद्र भगवान की वाणी मे श्रद्धा हो जाती है, उस समय प्राणी स्वपर भेद-विज्ञान को प्राप्त कर लेता है। तव यह थोडे समय में ही तपश्चरण के द्वारा कर्मों का नाश करके संसार से मुक्त हो जाता है।

भावार्थ—ग्रंथकार ने इस श्लोक मे यह विवेचन किया है कि जीव का कल्याण जैन धर्म ही कर सकता है। जैन धर्म पालन करने वाले को भगवान के द्वारा कहे हुए तत्वो पर

रुचि रखना चाहिये। वह प्राणी भव्य होना चाहिये। आर्य कुल मे जन्म, भगवान जिनेन्द्र के प्रति निदानबध रहित भक्ति, देव पूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय आदि क्रिया के द्वारा जो पुण्य बध होता है वह आगे चलकर कर्म निर्जरा तथा शरीर भोग आदि से विरक्तता उत्पन्न कराता है। इसीसे तपश्चरण के द्वारा कर्मों का नाश करके ससार से मुक्ति को पाता है।

प्रश्न—दीक्षा के योग्य कौन व्यक्ति होता है।

उत्तर— देश-जाति-कुलोत्पन्नः क्षमा-सतोष-शीलवान्।
मोक्षाभिलाषिको धर्मे गुरु-भक्तो जितेन्द्रियः ॥
शातो दातो दयायुक्तो मदमाया-विवर्जितः।
शास्त्ररागी कषायघ्नो दीक्षायोग्यः भवेन्नर ॥

उत्तम देश उत्तम जाति,उत्तम कुल मे जन्म, क्षमा शील व सतोषी,शीलवान,मोक्ष की अभिलाषा रखने वाला, दयावान, गुरु भक्ति मे परायण, जितेन्द्रिय, शात स्वभावी, दानी, सपूर्ण प्राणियो पर दया रखने वाला, आठ मद से रहित, शास्त्रज्ञ, कषाय रहित ऐसा जीव जिन दीक्षा के योग्य है।

इस सबध मे आचार्य कुदकुद ने प्रवचनसार मे तीसरे अध्याय मे क्षेपक श्लोक १५ मे कहा है कि:—

"वण्णेसु तीसु एक्को कल्लासगोतवासहो वयसा।
समुहो कुंछारहिदो लिंगग्गहणे हवदि जोग्गो ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों वाले व्यक्ति मे कोई भी हो, आरोग्यवान, शीलवान, तपवान, उत्तम कुलवान, बालक व अतिवृद्ध भी न हो, निर्विकार, अभ्यतर-बाह्य, परम चैतन्य परिणति से विशुद्ध, ज्ञानवान, व्यभिचार दुराचार से रहित, योग्य, जिन लिंग धारण करने योग्य ऐसा जीव दीक्षा लेने योग्य होता है। स्त्रियो के लिये मोक्ष प्राप्ति नही होती है। इसका कारण यह है कि उनमे परिपूर्ण बाह्य अतरग परिग्रह के त्याग करने की शक्ति नही होती। क्योकि स्त्री पर्याय विकार सहित है। पूर्णतया महाव्रत नही पाल सकती है। इस सबध मे अधिक विवेचन प्रवचनसार ग्रथ से समझ लेना चाहिये ।।७३७।।

इंदिरन् ट्रॆविमार्कु मिरैमै शै मुरै मै इल्लै।
पैदोर्डि मगळि रावार् पावत्ता पेरिय नीरार् ॥
मैदेरै पेरामै पेट्रा लिळंदिडल् माट्रु पेन्नि।
लंदरत्तनय तुंबत्तांगति नींगु वारगळ् ॥७३८॥

अर्थ—देव लोक मे सौधर्म इन्द्रके समान इन्द्रानी शचीदेवी को दूसरे को आज्ञा देने की सामर्थ्य नही है। उसने पूर्वजन्म मे पापोदय से स्त्री पर्याय को धारण किया है। और

मायाचार के कारण स्त्रीरूप मे जन्म लिया है। और उनको यदि सतान न हो तो दुख होता है। और यदि सन्तान होकर पुत्र का मरण हो जाय तो महान दुख होता है। यदि अपना पति दूसरी स्त्री के साथ प्रेम करता है तो उस स्त्री को दुख होता है। स्त्री स्वतत्र नही है, क्योंकि:—

"पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रो रक्षति वार्धक्ये, न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥

इस प्रकार इस श्लोक के अनुसार स्त्री स्वतंत्र कभी नही रह सकती, वह अपने दुख से तथा चचल वुद्धि होने के कारण मोक्ष प्राप्त करने की अधिकारिणी नही होती ॥७३८॥

विरद शीलत्त रागि दानमत्तवरकु शेंदु।
अरुगनै शरण मूळ्गि यांदवर् शिरप्पु शेंदु ॥
करुदि नर् कनवर पेनुं कर्पुडै मगळिरिंद।
उरुवत्ति नींगि कर्प तुत्तम देवरावार् ॥७३९॥

अर्थ—पुनः वह मुनिराज आर्यिकाओं से कहने लगे कि पंचाणुव्रत, शीलाचार निर्ग्रंथ-व्रत को धारण करके तपश्चरण करने वाले निर्ग्रंथ व सत्पात्रो को चार प्रकार के दान का देना और अर्हंत वीतराग जिनेन्द्र देव की भक्ति पूजा करना, ऐसे गुणो को प्राप्त हुए पति-व्रता स्त्रियों के द्वारा किये जाने वाले पुण्य के फल से अगले जन्म मे देवगति के सुख का अनुभव करके वहा से चयकर उच्च कुल मे जन्मी हुई स्त्रियो मे यह सभी गुण रहते हैं। ऐसी कुल-वान स्त्रियां इस जगत् मे वहुत दुर्लभ हैं।

"कार्येषु दासी करणेषु मत्री, रूपेसु लक्ष्मी क्षमया धरित्री।
स्नेहे च माता, शयनेसु रंभा, षट्कर्मयुक्ता कुलधर्मपत्नी ॥

इस प्रकार जिन स्त्रियो मे ये गुण हो वे ही सच्ची स्त्रिया है। और अपनी स्त्री पर्याय को धारण करके पचाणुव्रत का पालन करके मनुष्य पर्याय मे आकर जिन दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करने की भागी होती हैं ॥७३९॥

मादवं तांगि वैय्यत्तय्यराय् वंदु तोंड्रि।
येद मुंड्रिड्रि वीडु मैयदु वर तैयलाग ॥
नीगि नीदिया नोट्रु वंदोर् नीचिरि पिरचि नींगि।
घाति कर्नरिदु वीडुं कालत्ता लटैदि रेंद्रान् ॥७४०॥

अर्थ—ऐसी उत्तम स्त्रिया सयम धारण करके देवगति का सुख प्राप्त कर चक्रवर्ती पद का अनुभव करके जिन दीक्षा धारण कर मोक्ष सुख को प्राप्त करती है। इस कारण तुम दोनो सम्यग्दर्शनानुष्ठान आदि क्रिया का निरतिचार पालन करो। इससे अगले जन्म मे मनुष्य

पर्याय को प्राप्त करलोगे और इस व्रत के पालन करने से मोक्ष पद की प्राप्ति होगी। ।।७४०।।

तूंबन्न तडक्कै मावै तुयर् शैंदु नरग पुक्कं।
कांवल कडल्गळेन्ना मवल मुट्टरिदिल् पोंदु ।।
मेबडलिलाद वेन्ना विलगि नुं सुळंड्रु मीडुम्।
पांबदाय् पदलै वांगर् पाविदान् परिणमित्तान् ।।७४१।।

अर्थ—वह आदित्य देव आदित्य से कहने लगा कि अश्वनी कोड नाम के हाथी को सर्प ने काटा और वह सर्प मर कर तीसरे नरक मे जाकर वहा सात हजार वर्ष तक अपने द्वारा पाप उपार्जन किया हुआ असह्य दुख का अनुभव कर त्रसस्थावर आदि अनेक पर्यायो को धारण कर वहा से चयकर उस सर्प के जीव ने उस स्थान पर जन्म लिया था जिस जगह वे किरणवेग मुनिराज ध्यान मे मग्न थे।।७४१।।

इरुवरु मियेंब केट वरत्तिन रागि पोग।
पेरियवन् कुगैयै सेर पिरैयेइ रिलगं वंगाम् ।।
तेरियळ् विळित्तु काना विरै वनै पिडित्त पोळ्दि।
लरुग वेंड्रैप्प मीळा वच्चिय रदनै कंडार् ।।७४२।।

अर्थ—उस समय उन मुनिराज ने उन दोनो यशोधरा व श्रीधरा आर्यिकाओ को उपदेश दिया और उपदेश सुनकर वहा से आर्यिकाओ ने अन्यत्र प्रयाण किया। उनके जाते ही उन मुनिराज ने अपने स्थान को छोडकर पर्वत की गुफा मे प्रवेश किया। गुफा मे प्रवेश करते ही वह सर्प (अजगर) जो अन्दर बैठा था, उसने इन मुनिराज को देखते ही मुह मे लेकर निगलना शुरू कर दिया। उस वक्त उन मुनिराज ने "अर्हंत" इस प्रकार जोर से उच्चारण किया। यह अर्हंत शब्द उन दोनो जाती हुई आर्यिकाओ के कान मे पडे। वे तुरन्त ही वापस आई और उन्होने उस गुफा मे प्रवेश किया। उन आर्यिकाओ ने देखा कि वह अजगर मुनिराज को निगल रहा है ।।७४२।।

वेगुंडु वैतुइत्तु शीरि विळित्तन् लुमिळ्ंदु वेंव।
लगंड मुं शिलिर्प वंगां दरवुंक्क सादु नादन् ।।
नुगन् तिरंड नैय तोळै पट्रि यागट्र पोळ्दिन्।
मुगड्कंडार् मुनिव नोडु मूवरु विळुंग पट्टार् ।।७४३।।

अर्थ—उन आर्यिकाओ ने ऐसा देखकर उन मुनिराज की दोनो भुजाओ को पकडकर वे उन्हे बाहर खैचने लगी। उस समय वह बलवान अजगर उन दोनो आर्यिकाओ को भी पकडकर निगलने लगा ।।७४३।।

अरुक्कनै शनि शौव्वायोडरवु तान् विळुंगिट्रे पो।
लरुक्क वेगन् ट्रन्नोडे यारि यांगनै कडंमै ।।

नेरिगिय वरवं कोळ्ळ निड्रम् मै मै तम्मे ।
लोरुविकय मनत्तगागि युडंवु विट्टोरुगुं सेंड्रार् ।।७४४।।
पाविट्टन् मेलोर् कोंब पनित्तिला मनत्ति नार् पोय् ।
काविट्ट कर्प्पत्तिरेळ् कडल पेट्रन् कुरिशे कैमा ।।
पेर् पेट्र विमानत्तिन् कन् मुनि यर्ग प्रभनानान् ।
ट्री पत्तै पुरैयु मादर् देववक्कु तिलद मानार् ।।७४५।।

अर्थ—जिस प्रकार सर्प को अगार, केतु और शनि को राहु ग्रसित करता है उसी प्रकार मुनि व दोनो आर्यिकाओ को वह अजगर निगल गया । उस समय वे तीनो समता धारण कर शातिपूर्वक परीषह सहन करके देवगति को प्राप्त हुए । पापी अजगर ने तीनो को निगलते हुए किसी प्रकार का हलन चलन नही किया । और कई दिन पश्चात् वह दुष्ट पापी अजगर मरकर चौथे नरक मे गया । वे मुनि कापिष्ठ नाम के कल्प मे शाति पूर्वक शरीर को छोडकर सोलह हजार वर्ष की आयु धारण करने वाले रुचिकर नाम के विमान मे रवि प्रभा नाम का महर्द्धिक देव हुआ और वे दोनो आर्यिकाएं अत्यन्त गुण को प्राप्त करने वाले सामान्य देव हुए ।।७४४।।७४५।।

मरुविला गुणत्तिनार् पोय् वानवराग मायाक् ।
करुविनार् पांदळ् पोगि नरग नांगाव दैदि ।।
यरुब दो विरडंरै याम् पुगै युयरं देळुंदु वीळु ।
मरुवदो डिरंड वैविल्लु यरं दो रुडंवु पेट्ट्रान् ।।७४६।।

अर्थ—इस प्रकार दोष रहित गुण को प्राप्त कर वह तीनो जीव देवलोक मे उत्पन्न हुए और अतिद्वेषी वह पापी अजगर का जीव मरकर चौथे नरक मे गया । वह पापी सर्प साढे बासठ धनुष शरीर की ऊंचाई को प्राप्त हुआ और पापोदय से साढे बारह हजार योजन ऊंचा उछल कर फिर नीचे गिर गया । इससे वह अत्यन्त दुखित हुआ उसका सारा शरीर छिन्न भिन्न हो गया ।।७४६।।

अरत्तिनुं काक मिल्लै येंन्वदु मिदनै यायंदु ।
मरत्तिनुंगिल्लै केडु मेवदु मदित्तिवर् तम् ।।
पिरत्तिने येरिदु कोन्मिन् ट्री गति पिरवि येंजिल ।
मरत्तै नीतरत्तोडोंड्रि वाळु नीर वैय्यत्तिरे ।।७४७।।

अर्थ—हे उत्तम कुल मे उत्पन्न हुए मानव प्राणियों ! इस आत्मा को सुख शाति देने वाला अहिंसा धर्म के अतिरिक्त और कोई धर्म ससार मे नही है । इस प्रकार भली भांति मनमे विचारते हुए उत्तम चारित्र धारण करके धर्मध्यान पूर्वक मरकर वह मुनि देवगति को प्राप्त हुआ । और वह सर्प पाप के कारण मरकर नरको मे गया । इसलिये हे भव्यजीव ! यदि

अच्छी गति पाना है तथा दुख से छुटकारा पाना है तो अच्छा कार्य करके सदैव धर्मध्यान मे लीन रहो। ऐसा हरिचन्द्र मुनि ने कहा ।।७४७।।

मन्नुं देवियु मिळैय्य मैंदनु ।
मिन्नव रायिना रिरिणय केवच ।।
शेन्निई लिरुंदव शीय चंदिरन् ।
ट्रन्वर उरैपन केळ् धरण वेंड्रनन् ।।७४८।।

अर्थ—राजा सिंहसेन और उनकी पटरानी रामदत्ता देवी तथा उनका छोटा राजकुमार पूरणचन्द्र इन तीनो जोवो ने कापिष्ठ नाम के कल्प मे जन्म लिया। आगे ऊपर ग्रैवेयक मे अहमिंद्र होकर जन्म लिया हुआ राजा सिंहसेन का ज्येष्ठ पुत्र सिंहचन्द्र उस अहमिंद्र लोक मे आयु को पूर्णकर कर्म भूमि मे आया। इस विषय का हम प्रतिपादन करेंगे। हे धरणेंद्र ! उसको लक्ष्य पूर्वक सुनो–ऐसा आदित्य देव ने धरणेंद्र से कहा ।।७४८।।

राजा सिंहसेन, रामदत्ता देवी व पूर्णचन्द्र इन तीनो जीवो
का स्वर्ग प्राप्त कराने वाला छटा अध्याय पूर्ण हुआ।

॥ सप्तम अधिकार ॥

※ चक्रायुध को मोक्ष प्राप्ति ※

उलग मेनुं तिरुविनिडै युंदि यन जंबूइत् ।
तलनिलवु भरत मलि धर्म खंड मदनिर् ॥
पुलवर् कुगळ् वरिय पुरि चक्कर पुरमेन् ।
रुलगुडैय विरैव नुरै नगर मेन उळदे ॥७४६॥

अर्थ—जिस प्रकार मनुष्य शरीर के मध्य मे नाभि होती है उसी प्रकार जम्बू के मध्य मे सुमेरु पर्वत है । उस पर्वत के दक्षिण भाग में जम्बू द्वीप से संबधित भरत क्षेत्र है। उस भरत क्षेत्र के आर्य खड मे विद्वानो द्वारा वर्णन करने योग्य ऐसा भगवान के समवसरण के समान अत्यत सुशोभि। चक्रपुर नाम का सुन्दर नगर है ।।७४६॥

किडगु मदि डेरुवु किडँ माळिगै ईनोळुंगु ।
नडुवरसन् माळिगै ईनमरं दिरुंद नगरम् ॥
नुडंगुदिरै वेदिगै योडारु कुलमलैग ।
नडु वडैद मलै युडैच दीपमदु वनैत्ते ॥७५०॥

अर्थ—उस पट्टन के चारो ओर घेरे हुए एक महान गहरी खाई है । चारो ओर सुदर रास्ते हैं । उसके अतर्गत छोटी २ गलिया हैं । बडे २ ऊचे सतखणे महल मकानात हैं। उन सबके बीच में राजा का राजमहल है । यदि सभी को विचार करके देखा जाय तो जिस प्रकार जम्बूद्वीप शोभायमान है उसी की उपमा के अनुसार यह पट्टन है । इस नगर के चारो ओर विस्तार पूर्वक गहरी खाई है तथा छोटी २ नदियोके समान गलिया हैं । बडे सामन्तो के मकानात बने हुए हैं । राजा के राज महल मानो मेरु पर्वत ही है ऐसे प्रतीत होते है। इसलिये इस नगर को ग्रथकार ने जम्बूद्वीप की उपमा दी है । ७५०॥

तोगै यनैयार् कनडमाडु मिड मोरु पाल् ।
पाग पदि नुदलि यर्गळ् पाडु मिड पोरु पाल ॥
मेग मेन वेग मुडै नाग निलै योरुपाल ।
पूग मोदलाय मलि पुरंवनैय दोरुपाल् ॥७५१॥

अर्थ—उस नगर मे किनारे पर नरमयूर के समान सुन्दर शरीर वाली स्त्रियो के नृत्य करने की नृत्यशाला बनो हुई है । और अष्टमी व पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान प्रकाशमान मुखवाली स्त्रिया वहा नृत्य करती हैं । आकाश मे जैसे काले मेघो का समूह रहता है ।

उसी प्रकार वहा मदनमस्त हाथियो के बाधने की गज शालाए थी। उस नगर के बाहर उद्यान मे सुपारी, कदली, आम, नारगी आदि २ के वृक्ष सुशोभित थे ।।७५१।।

वाणिनै येळुंदु वरुं वासिनिलै योरुपा ।
लूणुरैयुं वेर् पडै यडैक्कु मिड मोरुपार् ।।
ट्रेनुलवु कूंदलवर् तिळैक्कुं तेरु वोरुपा ।
लानै निसै वरुंवणिग रवरिडंग लोरुपाल् ।।७५२।।

अर्थ—अत्यन्त जातिवन्त सुन्दर वेग से चलने वाले घोडे के ठान थे। शत्रुशाली वैरियो को नाश करने वाले शस्त्र शालाए मानो बैरी को जिस प्रकार आख फाड २ कर देखा जाता है उसी प्रकार शस्त्र शालाए बनी हुई थी। स्त्रिया अपने सिर मे बालो को गूथ कर जिस प्रकार मस्तक नीचा करके जाती हैं, उसी प्रकार सुन्दर २ गलिया थी। वहा के व्यापारी लोगो की पृथक २ मंडिया थी ।।७५२।।

कंदं मलर् कंदसु् विळै कैलव रोरुपा ।
लंदनिला वरिव नुरै यालै यंग ळोरुपाल् ।।
वंदुलग मिरैजं मन्न निरुक्कु निडमोरुपा ।
लंदं मिला विण्णविड मियार्कु मुरै परिदे ।।७५३।।

अर्थ—अत्यन्त सुगन्धित चूर्ण मसाले आदि बनाने वाले लोगो की दुकाने अलग २ स्थानो पर थी। भगवान अर्हंत देव के चैत्यालय वहा एक ओर बने हुए थे। मानवो के द्वारा पूजनीय राजमार्ग, राजमहलात एक ओर थे। इस प्रकार नगरी की शोभा का वर्णन करना मेरी अल्प बुद्धि मे अशक्य है। इस प्रकार वह चक्रपुर नगर शोभनीय था ।।७५३।।

इन्नग रिदर् किरैव नेत्तरिय कीर्ति ।
मण्णन रपराजितन् वयप्पुलि योडप्पा ।।
नन्न मनैयार् मदन नांड कैप्पुयत्तै ।
तुन्निय वसुंदरि तुळुंबिय नलत्ताळ् ।।७५४।।

अर्थ—उस नगर की कीर्ति चारो ओर फैली थी। उस चक्रपुर नगर का अपराजित नाम का राजा था। उसकी सर्व गुण सम्पन्न, सुन्दर, शुभ लक्षण वाली, हंसगामिनी वसुन्धरा नाम की पटरानी थी ।७५५।।

मळलै किळि तेनमिदैं वान् करुंबु नल्लि याळ् ।
कुळलोत्तेळु मुळि मदनन् कोडि मैलं शाय ।।
लुळं र् कोलि नोकत्तुरु वोक्कोडि ईनोडु ।
मळलुत्तिडं वेळ नंड्रा नमरं् डुळ गुं वळिनाळ् ।।७५५।।

अर्थ—तोते के शब्द, वीणानाद के समान मधुर शब्द बोलने वाली हरिण की आंख के समान नेत्र वाली, पुष्पलता के समान शरीर युक्त वह वसुन्धरा मन्मथ को मर्दन करने वाली थी। ऐसी सुलक्षणा पटरानी के साथ वह राजा विषय भोग तथा सुखोपभोग में आनद के साथ समय व्यतीत करता था ॥७५५॥

देशुडय शीय चंदन् केवच्चत्तिन् वळ्वि।
वास मुलवुं कुळलि मंगै तन् वैट्ट्ट् ॥
तूसु पोदि पावैयन तोंड्रि यवन् मन्नोर्क्।
काशै केड वंददोरु मामणिय दानान् ॥७५६॥

अर्थ—अत्यत प्रकाशमान से युक्त पूर्व जन्म मे तप के बल से उपार्जन किया हुआ अहमिंद्र प्राप्त किया प्रीतंकर नाम का देव जो पूर्व जन्म का सिंहसेन राजा का जीव था वह अहमिंद्र नाम देव की आयु पूर्ण करके वसुन्धरा रानी के गर्भ में आया और नवमास पूर्ण होने के बाद पुत्ररत्न का जन्म हुआ। पुत्र के जन्मोत्सव के उपलक्ष मे उस राजा ने प्रजाजन तथा याचको को इच्छा पूर्वक दान देकर उनको तृप्त किया ॥७५६॥

शेक्कर मलिवाणि निर्डैतिगंळन वंदान्।
कक्कुलं विळंग वण्ण ट्रोंडिय कनत्ते ॥
विक्किरमशालि विनै येट्टुं वेरुमेंड्रे।
तक्क पयरुं चक्करायुध नैन्निट्टार ॥७५७॥

अर्थ—वह पुत्र शुक्ल पक्ष की द्वितीया के चंद्रमा के समान वृद्धि करता हुआ पूर्णिमा चद्रमा के समान अपने कुल को प्रकाशित करने वाला हो गया। जन्म होते ही बालक के सम्पूर्ण शुभ लक्षणो को देखकर राजा ने मन मे विचार किया कि इस पुत्र के शुभ लक्षण ऐसे हैं जैसे शुभ कार्य करके यह मोक्ष मे जावेगा। उसका नामकरण संस्कार करके शुभ मुहूर्त में उसका नाम चक्रायुध रखा गया ॥७५७॥

मंगयर् तङ् कोंगैक्कु वट्टिलिदु निरैमदिपोर्।
पुंगुदवि शिनिडै सिगं पोगगत्ति नडिनर् ॥
शंकमल निल मडंदै शेन्नि मिशै यनिदु।
पोंगुमी मिलुडैय विडै पोल नडंदाने ॥७५८॥

अर्थ—वह चक्रायुध बालक अपनी माता के स्तनपान से वृद्धिगत होता हुआ क्रम से शनैः २ बढने लगा। वह बालक सिंह के बच्चे के समान घुटनो के बल चलने लगा और गिरते पड़ते उठने लगा और शनैः २ चलने लगा ॥७५८॥

अंजु वरुडं कडंदु नामगळोळाडि।
वेन्जिलै मुदर् पडै पईड् पिनै वेंवूस् ॥

शेंजरम् वरिंद शिलै येंडितिरन् मारन् ।
मैंद नोडु पोर् तोर्डींग वाळि तोड लुट्टान् ।।७५६।।

अर्थ—जब वह बालक पांच वर्ष का हो गया तब राजा ने एक उपाध्याय पडित के पास कला शास्त्र आदि २ सीखने के लिये उनके आधीन कर दिया। बाद मे वह राजकुमार थोडे दिनो मे तर्क व्याकरण, शस्त्र-शास्त्र आदि अनेक कलाओ मे उत्तीर्ण होकर युवावस्था को प्राप्त हुआ ।।७५६।।

अंगदनै मन्ननपराजित नरिंदु ।
कोंगरंवु पोलु मुलै कुव्वैयन् सेव्वाय ।।
लेंगुळलि चित्तिर नन् मालै येनुं शोंबोन् ।
वांगनय तोळि तुनै यागमलि वित्तान् ।।७६०।।

अर्थ—यौवनावस्था को प्राप्त हुए चक्रायुध कुमार को देखकर राजा अपराजित ने उस कुमार के लिये अत्यन्त सुन्दर सर्वगुण सम्पन्न शीलवान एक राजा की कन्या चित्रमाला के साथ विवाह कर दिया ।।७६०।।

कापिष्ठ स्वर्ग से किरणवेग का भरत क्षेत्र में आकर जन्म लेना।

मिन्नि नोडु मेघं विळै याडुवदु पोल ।
वन्न नडै योडव नमरं दोळ्गुं वळिनान् ।।
मन्नरुक्क वेगन् मलि काविट्टत्तिन् वळ्वि ।
येन्नवर् कडंप्पुदल्व नागिय वदरित्तान् ।।७६१।।

अर्थ—चक्रायुध राजा अपनी पटरानी चित्रमाला के साथ विविध भाति के इन्द्रिय जनित सुखोपभोग करते हुए आनन्द से समय व्यतीत कर रहा था। दैवयोग से निमित्त पाकर पूर्वभव का राजा किरणवेग का जीव जो ससार से विरक्त होकर दुर्द्धर तपश्चर्या करके समाधिपूर्वक शरीर को त्यागकर उत्तम देवगति को प्राप्त हुआ, वह वहा से उत्तम स्वर्गीय सुखो का दीर्घकाल तक अनुभव करके वहा से चयकर इस कर्म भूमि मे चक्रायुध रानी की पटरानी चित्रमाला के गर्भ मे आया और नवमास पूर्ण होने पर रानी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया ।।७६१।।

वानत्तु मिन्नु मुन्नान् मदिइनै पयंददे पोर् ।
ट्रेनुत्त मुळि यिनाळ्द्देवनै पेट्र पोळ्दि ।।
तूनत्तै वैय्यत्तिन् कनगट्रि निड्र् दविमन्नन् ।
मानत्त युडैय नामं वज्रायुद नेन्निट्टार् ।।७६२।।

अर्थ—जिस प्रकार शुक्ल पक्ष की द्वितीया में आकाश अत्यन्त निर्मल रहता है उसी प्रकार अत्यन्त सुन्दर मुख कमल से सुशोभित उस चित्रमाला की कुक्षि से परम तेजस्वी पुत्र-

रत्न के जन्मोत्सव के निमित्त राजा ने याचक जनो को विविध भाति दान देकर पुत्रोत्सव हर्षोल्लास पूर्वक मनाकर नाम सस्कार करके पुत्र का वज्रायुध नाम रखा ।।७६२।।

मदि कलै वळरत्तानुं वळंवदे पोल मंदन् ।
विदिइ नार् कलयुं वेंदर् विजयुं विळंग ओंगि ।।
नुदि कोंड वेर्क नल्लार् नोक्किनु किलक्कमाना ।
नदि पति यदनै यारायं्द रिवै यर् पुणर्क लुट्रान् ।।७६३।।

अर्थ—जिस प्रकार शुक्ल पक्ष की चंद्रकला दिनोदिन बढती जाती है उसी प्रकार राजकुमार वज्रायुध शैन: २ वृद्धि को प्राप्त होता हुआ अल्प काल मे ही सकल विद्याओ तथा कलाओ मे तथा आयुधादि मे भी निपुणता प्राप्त करके यौवनावस्था मे प्रवेश किया। तत्पश्चात् एक दिन राजा चक्रायुध ने अपने पुत्र को सर्व विद्याओ व सुलक्षणो से सम्पन्न तथा तरुण अवस्था देखकर विवाह सस्कार करने का विचार किया। ७६३।।

* पृथ्वी तिलक नगर का वर्णन *

मरुंद वान् कुरुचि मुल्लै नैदलुं मैयंगि वानोत् ।
तिरुदु विन् विगर्प मिड्रि इलंगिय सोलेत्तागि ।।
परुदि इन् वेम्मै याट्ं पदागै सूळ माड यूदूर् ।
पिरुदिवि तिलक मेन्नुं पेरुडै नगर मुंडे ।।७६४।।

अर्थ—जिस प्रकार देवगण सर्व सम्पत्ति व सुख सामग्रियो से सम्पन्न रहते हैं तथा इच्छानुसार पूर्ण रूपेण इन्द्रिय सुखो का भोगोपभोग करते रहते हैं, उसी प्रकार इस पृथ्वी में छह प्रकार की ऋतुएं प्रजाजनो के मनोनुकूल सुखदायिनी थी। पृथ्वी के चारो ओर वनोपवन होने के कारण प्रजाजनो को शीत-उष्णादि की कोई बाधा नही होती थी। वसत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमत, शिशिर ये छह ऋतुए सदा पृथ्वी पर बनी रहती थी; जिससे कि सभी प्रजाजन सदा सुखी रहते थे। उस नगर का नाम पृथ्वीतिलक नगर था ।।७६४।।

मट्रिद नगर् कु नादन् मालदिवेगन् मांड ।
पेट्रि यान् ट्रनक्कु देवि पिरिय कारिणि येंबाळा ।।
मट्रि वर तमक्कु मंगें इरतन माले यानाळ् ।
सेट्र निरवत्तु देवनायवच्चीदरै तान् ।।७६५।।

अर्थ—पृथ्वीतिलक नगर का राजा अति तिलक था। उनकी पट्टरानी सर्व गुण सम्पन्न, अत्यत सुन्दर, शीलवान थी। जिसका नाम प्रियकारिणी था। जो पूर्व जन्म मे श्रीधरा नाम की स्त्री थी, वह आर्यिका दीक्षा लेकर उत्तम चारित्र पालन करके दुर्द्धर तपश्चर्या करती हुई अंत मे समाधि पूर्वक शरीर को त्याग करके देवगति को प्राप्त हुई। वहा के

स्वर्गीय सुखो का दीर्घकाल तक उपभोग करके वहा की आयु पूर्ण करके इस नगर के राजा अतितिलक की पट्टरानी प्रियकारिणी के गर्भ मे आई और नवमास पूर्ण होने के बाद उत्पन्न हुई। उसका नाम रत्नमाला रखा गया ।।७६५।।

* रत्नमाला की शोभा का वर्णन *

कर्पग वल्लिईड्र कण्णि मंजरियै पोलुं ।
पोर् पुडै तिरुविन् पांद पूमग ळिरुकै कामन् ।।
नर्कनैत्तूणि नंगै तन् कर्ण काळूरु ।
पोट्रिरट् कदळी नल्लार् पुगळेन परंदव ल्गुल् ।।७६६।।

अर्थ—वह रत्नमाला द्वितीया के चन्द्रमा की कला के समान शनै शनै बढती गई और उसके शरीर की शोभा दीप्तिमान होती गई। उसका चरणतल रक्तकमल के समान सुन्दर, एडी तरकश की भाति, जघा कदली के समान सुशोभित थी। जिस प्रकार महापुरुषो की कीर्ति सर्वत्र फैल जाती है उसी प्रकार उस रत्नमाला कन्या के सौंदर्य की शोभा सर्वत्र फैल गई। उसका विशाल हृदय स्वर्ण कलश के समान अत्यत सुन्दर था ।।७६६।।

मिन् सुळि नर कोंवु ळोर कैइर् ट्रामम् वेय् तोळ् ।
पोन् पुनै यमिर्द सेप्पि निनै मुलै वलंपुरिइन् ।।
ट्रन् सुरि पोलुं नंगै मगल विरुक्कै कोव्वै ।
नन् कनियागुं सेव्वाय् मुरुव नर् शिरिय मुत्तम् ।।७६७।।

अर्थ—रत्नमाला का कटिभाग केहरि के समान, नाभि पानी मे उठने वाले भवर के समान, कठ शख के समान, स्तन सुन्दर स्वर्ण कलश के समान, अधर टेसु पुष्प के समान रक्त तथा दंत, पक्तिया मुक्ताफल मोती के समान अत्यत सुशोभित लगती थी ।।७६७।।

मुगतिडै यळगलाम् पोन्दोळुगुव दोक्क मूकुं ।
वगुत्त तन्मुगत्तिर् केट्र वळ गैद कादुम् ।।
नगत्तिनुं कन्नोप्पिल्लै नचिलै पुरवं नंगै ।
मुगत्तिनु कोप्पु तिगन् मुयलिड्रि इरुदं दामे ।।७६८।।

अर्थ—उसके कान अत्यत सुन्दर विशाल थे। नयन मृग के समान तथा भृकुटि झुके हुए धनुष के समान थी ।।७६८।।

नेरिदुं नैतोळुगि नींडु निलत्तिन् कदिरै येल्लाम् ।
करंदोरु कट्रै याकि वैत्तदान् कवरि पंदम् ।।

पुरंबुळ वळगु सोल्लिर् पुरिंदुळी पार्थ कन्नै ।
तिरंबिडा वगैयै सेय्युं शेप्पुव दिनि मट्रेन्नो ।।७६९।।

अर्थ—उसके केश इस प्रकार चमकते थे जैसे कि अनेक नील रत्न एक साथ एकत्रित होकर प्रकाशमान होते हैं। उसकी शोभा जिसने एक बार देखली उसकी इच्छा किसी अन्य स्त्री को देखने की नही होती थी। उसमे इतने सुलक्षण विद्यमान थे जिसकी उपमा ससार मे किसी अन्य स्त्री से नही की जा सकती थी ।।७६९।।

मइलिय लन्नं पोलु मेन्नडै मान्मै नोक्कुं ।
कुइल् कुळन् मळलै नल्लि याळ् मोळिमलर् कोडिय नाडन् ।।
नियल् वेलां सूदरार् चक्करायुद नरिंदु पिन्नै ।
तैय्यलै वज्जिरायुदर्कु तरुगण तूदु विट्टान् ।।७७०।।

अर्थ—इस प्रकार अनेक शुभलक्षणो से सम्पन्न राजकुमारी रत्नमाला के गुण तथा सुन्दरता की प्रशसा गुप्तचर दूतो द्वारा सुनकर चक्रायुध राजा ने अपने सुयोग्य राजकुमार वज्रायुध के साथ शुभविवाह करने का विचार किया। समय पाकर अर्तितिलक राजा ने अपने दूतो को रत्नमाला के पिता के पास विवाह निश्चित करने के लिये भेज दिया ।।७७०।।

तूदर् वंदुरेत्त माट्रं केटदिवेगन् सोन्नान् ।
पोदुलाम् कुळलै मंदन् पुनर् दिडिर् पुगळ्चि ताभेन्न ।।
ट्रियादुनी रुरेत्तदेल्ला मिसैदन नेन्न प्पिन्नै ।
नीदि नूल वगैन् वेळ्वि यागुदि नेरियिर् सैदार् ।।७७१।।

अर्थ—राजा चक्रायुध के दूत पृथ्वीतिलक नगर मे जाकर अतितिलक राजा के पास आकर विवाह के संबंध मे विचार-विमर्श किया। इसे सुनकर राजा अतितिलक अत्यंत हर्ष पूर्वक कहने लगा कि यह तो परम सौभाग्य है कि वज्रायुध जैसे सुयोग्य राजकुमार के साथ यदि मेरी पुत्री का शुभ विवाह हो जाय तो जगत मे विशेष रूप मे कीर्ति व मान्यता फैल जायेगी। हे दूत ! जो तुम शुभ सदेश राजा की ओर से हमारे लिये लाये हो, वह हमें मान्य है। मेरी सम्मति अपने राजा से जाकर कहो। तत्पश्चात् दूत वापस चक्रपुर नगर में आकर राजा से सभी शुभ समाचार कहे। यह मगलमय समाचार सुनते ही राजा ने एक ज्योतिषी को बुलाकर शीघ्र ही विवाह का मुहूर्त निकलवाया और पं० जैनोपाध्य के द्वारा विवाह सस्कार सम्पन्न किया ।।७७१।।

कडि मलर् कोडिय नाळै कावल कुमर नंदि ।
वडि उडै तडक्कै वेळं पिडियोडु मगळ्वदं पोर् ।।
कोडि मलर् पंदर् कुंड्रम् वावियुं काउमेय्दि ।
पडिमिसै पट्ट विन्बम् परिविड्रि नुगरु नाळिल् ।।७७२।।

अर्थ—सुगधित सुन्दर सुमन की भाति मृदु शरीर वाली परम सुन्दरी राजकुमारी रत्नमाला के साथ विधिपूर्वक कुमार वज्रायुध का शुभ विवाह सम्पन्न हो गया और बाद मे दोनों दम्पति अत्यत हर्षोल्लास पूर्वक परस्पर मे रतिक्रीडा करते हुए स्वछद रूप से वनोपवन में इस प्रकार रहने लगे जैसे कोई मदोन्मत्त गज हस्तिनी के साथ वन प्रदेश मे स्वच्छद हो कर भोगोपभोग करके सुखी होता है ।।७७२।।

इंब नीर् कडलै येरि इशोदरै यान देव ।
नंबिनार् शिरुवनाना नर गरण मालै कंड्रु ।।
नंदिय मदियै कंड नळि कडल् पोंड्रु ज्ञाल ।
मंदमिलुवगै येद वरद नायुव नेंड्रारे ।।७७३।।

अर्थ—पूर्वजन्म मे यशोवरा नाम की जो आर्यिका थी वह अपने उत्तम तप के प्रभाव से समाधि पूर्वक शरीर को त्यागकर कापिष्ठ कल्प मे पर्याय प्राप्त की और स्वर्गीय सुखो को भोगने के बाद वहा की आयु पूर्ण हो जाने पर स्वर्ग से चलकर पृथ्वीतल मे रत्नमाला के गर्भ से पुत्र रत्न रूप मे जन्म लिया। उसका जन्म होते ही प्रजाजनो मे इस प्रकार अपार हर्ष उत्पन्न हुआ जैसे पूर्ण चद्रमा के समय सागर मे ज्वार भाटा उठता है। उसका नाम रत्नायुध रखा गया ।।७७३।।

वारि सूळ् वैयत्तिन् कन् वरुमयै केडुक्क वंद ।
पारिजादत्तिन् कंड्रिर् परि विड्रि वळर्‌ंदु मैदन् ।।
वेरिसूळ् कूंद लारै वेळ्विया लंदि इंबम् ।
पूरिया मनत्त नागि भोगत्ति नाट्र वीळदान् ।।७७४।।

अर्थ—कल्पवृक्ष प्राप्त हो जाने पर जिस प्रकार सासारिक समस्त सुखो की उपलब्धि से प्राणी हर्षित होता है, उसी प्रकार रत्नायुध राजकुमार सर्व सुविधाओ एव सुखो से समन्वित प्राप्त हुआ। और वह राजकुमार अनेक राजकन्याओ के साथ विवाह करके सुखपूर्वक काल व्यतीत करने लगा ।।७७४।।

तानुं तन्मगनुं पिन्नै यवन् मगन् मगनु माय्पे ।
राणंदत्तळुंदु गिड्र नल्लपरादितन् पो ।।
यूनन् तीर तवत्ति लोट्र शेरित्त मादवनै येत्ति ।
ईनं तोविनै कट्रकाकु मुपाय मोन्निरंब मेड्रान् ।।७७५।।

अर्थ—उस समय अपराजित राजा अपने पुत्र पौत्रादि विपुल परिवार को देखकर अत्यत हर्षित हुआ। कुछ दिनो के बाद एक पिहितास्रव नामक मुनि महाराज कही से विहार करते हुए आकर नगर के उद्यान मे ठहरे। मुनिराज का शुभागमन सुनकर राजा अपराजित अपनी रानी सहित विनीतभाव से जाकर दर्शन वदन करके मुनिमहाराज ने निवेदन किया कि

हे स्वामिन् ! अनादि काल से आत्मा के साथ रहने वाले कर्म शत्रु को नाश करने के लिये कौनसा प्रयत्न है ? ।।७७५।।

विनैयुइर् कट्टु वीटिन् मैं मै यैं येरिंदु तेरि ।
तिनै यनैत्तानुं पट्रिर् सेरिविला नेरियै मेविट् ।।
तनै विनै नोकि निड्र् तन्मै यनाग नोक ।
विनयनैत्तानुं नीगुं विकारंगे ळोडु मेंड्रान् ।।७७६।।

अर्थ—यह सुनकर पिहितास्रव मुनिराज कहने लगे कि हे राजन् ! कर्म स्वरूप, जीवस्वरूप, जीव के परिणाम द्वारा आने वाले आस्रवो का स्वरूप तथा मोक्ष स्वरूप को सम्यक्ज्ञान से रुचिपूर्वक समझकर दर्शनविशुद्धि को प्राप्त करने पर द्रव्य मे रागद्वेष रहित होकर सम्यक्चारित्र को पाकर अनादिकाल से आत्मा के साथ लगे हुए कर्म शत्रु को नष्ट करके आत्मा के शुद्ध स्वरूप को वीतराग परिणति द्वारा दर्शन करने से सभी कर्मों का नाश होकर मोक्ष पद की प्राप्ति होती है ।।७७६।।

येड्रलुं मुडियै मन्नन् चक्करायुदनुक्कींदु ।
कुंड्रेनत्तिरंड तोळाय् कुवलयं कातु शिण्णाळ् ।।
शेंड्र मन् कावलुपारं शिरुवनुक्कींदु पोगि ।
निड्रिडा निळैमै नींगु नीयन तोळुदु नीत्तान् ।।७७७।।

अर्थ—इस प्रकार पिहितास्रव मुनिराज के द्वारा धर्म के यथार्थ स्वरूप को सुनकर अपराजित राजा ने अपने राजपुत्र चक्रायुध के राजतिलक कर दिया । पुन राजा अपने पुत्र को उपदेश देता है कि हे राजकुमार ! मेरे समान न्यायनीति के द्वारा तुम भी राज्य करना जैसा कि मैं अब तक करता आया हू । और राज्य करते २ जिस प्रकार इस राज्य संपत्ति को मैंने त्याग करके तुम को राजतिलक देकर जिन दीक्षा धारण कर रहा हू , उसी प्रकार तुम भी राज्य शासन न्यायनीति पूर्वक करते हुए राज्य सपदा त्याग करके, अपने पुत्र को राज्यभार सभलाकर मोक्ष सुख की प्राप्ति के लिये जिन दीक्षा ग्रहण करना ।।७७७।।

अपराजितन् मादवनायिन पिन ।
नुवरोद मुडुत्त निलत्तै यलां ।।
चक्करायुदनुं तळरामै निरुत् ।
दपराजितनुं मवनाइनने ।।७७८।।
पोरिमीदु पुलत्तेळु भोग मेला ।
मिरवादिरवुं पगलुं नुगरा ।।
निरैया दोळिय पिनेरुप्पिनिडै ।
विरगे इवै येंड्र वेरुत्तनने ।।७७९।।

अर्थ—अपराजित राजा के दीक्षा लेने के बाद उनका पुत्र चक्रायुध न्यायपूर्वक राज्य करते समय अपने पराक्रम से जिस प्रकार वन मे सिंह से सब भयभीत होकर भाग जाते हैं उसी प्रकार सब शत्रु राजाओं को इसने परास्त कर लिया। राजा चक्रायुध राज करते हुए पचेंद्रिय सुख को मर्यादा पूर्वक भोगता था। वह मन मे विचार करने लगा कि अनादि काल से पचेंद्रिय सुखो को भोगने पर भी आत्मा की तृप्ति इनसे नही हुई। जिस प्रकार अग्नि मे ईंधन डालने से वृद्धि होती है उसी प्रकार पचेंद्रिय सुख को जितना २ अधिक भोगा जावे उसकी तृप्ति नही होती है ; बल्कि वृद्धि ही होती है। विचार करने से वैराग्य भावना उसके मन मे उत्पन्न हो गई ।।७७८।।७७९।।

अरिवालरिया वरिया वदनार् ।
पिरिदाम् विनैयै पिनिया वदना ।।
निरैया दुनिला दुविरु पुरणिन् ।
रुरवे मुयल्वा रुणर् वंड्रिलरे ।।७८०।।

अर्थ—इस प्रकार वैराग्य भावना से युक्त होकर चक्रायुध राजा मन मे विचार करने लगा कि पदार्थों के हेयोपादेय स्वरूप को भली भांति न जानकर वीतराग शुद्ध स्वरूप से युक्त आत्मा के स्वरूप को न जानने वाले अज्ञानी जीव पचेंद्रिय जन्य विषयो मे मग्न होकर उस क्षणिक विषय सुख के लिये अनेक प्रकार के पापो का सचय करके उससे तीव्र कर्मास्रव का बध करके इस चतुर्गति मे भ्रमण करते चले आ रहे है ।।७८०।।

विनैयान् वरुविवम् वेरुत्तिडवे ।
तनै ये नुदलि तळरा वगैया ।।
निनै वान् विनै नीगि निरैदुडने ।
पुरणैया दुपोरुंदु मनत सुगं ।।७८१।।

अर्थ—शुभाशुभ कर्मों के द्वारा आने वाले ससार-सुख को त्याग कर आत्म-भावना मे मग्न होकर उन कर्मों को चार प्रकार के धर्मध्यान (आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाक विचय और सस्थान विचय) के द्वारा कर्मों का नाश करने से अनत आत्मसुख की प्राप्ति होती है। ऐसा विचार किया।

भावार्थ—धर्मध्यान के दस भेद इस प्रकार से हैं—

दसण्ह धम्मझाणाण। दशानां धर्मध्यानानामपायविचयोपायविचय-विपाकविचय, विरागविचय- लोकविचय- भवविचय- जीवविचय- आज्ञाविचय- सस्थानविचय- ससारविचय लक्षणनाम्। तत्र विचयः परीक्षा। (१) सन्मार्गान्मिथ्यादृष्टयो दूरमेवापेता इति चिन्तनमपाय-विचय'। मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रेभ्यो वा जीवस्य कथमपायः स्यादिति चिंतनमपायविचय.। (२) दर्शनमोहोदयादिकारणवशाज्जीवा. सम्यक्दर्शनादिभ्यः पराङ्मुखाः इति चिन्तन-मुपायविचयः। (३)कर्मणा ज्ञानावरणादीनाम् द्रव्य-क्षेत्र-भव-काल-भाव-प्रत्यय फलानुभवनं प्रति

प्रणिधान विपाकविचय.। (४) संसारदेहविषयेषु दु:खहेतुत्वानित्यत्वचितन विरागविचय' (५) ऊर्ध्वाधोमध्यलोकविभागे नानाद्यनिधनादिस्वरूपेण वा लोकस्वरूपचितन लोक विचय:। (६) नरकादिचतुर्गति–भव–चितन भवविचय: (७) सति (विद्यमान) जीवा उपयोगस्वभावा अनाद्यनिधना मुक्ते नररूपा इत्यादि जीव-स्वरूप-चितनम् जीवविचय'। (८) सर्वज्ञागम प्रमाणीकृत्यात्यतपरोक्षार्थावधारणमाज्ञाविचय.। सर्वत्र ज्ञातार्थसमर्थनंवा, हेतुसामर्थ्यात्। (९) अधोमध्योर्ध्वलोकस्य शरावव्ज्रमृदगाद्याकारचितन सस्थान-विचय: (१०)स्वोपात्तकर्म-विपाक-वशादात्मनो भवातरा वासिससार.। तत्र परिभ्रमण जीव: पिता भूत्वा पुत्र पौत्रश्च भवति, माता भूत्वा दासो भवति, दासो भूत्वा स्वाम्यपि भवति—इति चितन संसारविचय:। एतेषा द्वादशसयमप्रभृतीनां दशधर्म्यध्यानपर्यंतानामनुष्ठाने य: कश्चित् क्रोधादिवशाद्वसिको दोषो जातस्तत्रालोचना कर्तुमिच्छामि।

धर्मध्यान के चार भेद के साथ २ दशभेद भी हैं.—

१. अपायविचय, उपायविचय, विपाकविचय, विरागविचय, लोकविचय, बहुविचय, जीवविचय, आज्ञाविचय, संस्थानविचय तथा ससारविचय भेद से दश प्रकार हैं।

१ सन्मार्गान्मिथ्यादृष्टयो दूरमेवमुपेता इति चितनमयपायविचय:।

अर्थ—मिथ्यादृष्टि जीव सन्मार्ग से दूर हैं, उन्हे वह पद किस प्रकार प्राप्त होगा, यह चितन करना अपापविचय है। मिथ्या दर्शन ज्ञान चारित्र से समन्वित जीव का कैसे सन्मार्ग में प्रवेश होगा, यह चितन अपापविचय है।

२. दर्शन मोह के उदय होने के कारण जीव सम्यक्दर्शनादि से पराङ्मुख हो रहे हैं। यह चितन करना उपायविचय है।

३. ज्ञानावरणादिक कर्मो का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव प्रत्यय फल के अनुभव प्रति प्रणिधान विपाकविचय है।

४. संसार शरीर विषयो मे दुख के कारणभूत अनित्यत्व का चिंतन करना विराग विचय है।

५ ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, और मध्यलोक के स्वरूप का चिंतन करना लोकविचय है

६. नरक, निगोदादि चारो गतियो मे होने वाले दारुण दु:खो का चितन करना भवविचय है।

७. उपयोग स्वभावी अनादि निधन मुक्ति श्री से इतर अन्य जीव स्वरूप का चितन करना जीवविचय है।

८. सर्व शास्त्रो को प्रमाणित करके अत्यन्त परोक्षार्थ अवधारण आज्ञाविचय है। अथवा हेतु सामर्थ्य से सर्वज्ञ ज्ञानार्थ का समर्थन करना।

९. अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक के मृदगादि आकार (स्वरूप) का चिंतन करना संस्थान विचय है।

१० पूर्वभव मे अपने द्वारा किये गये सद् असद् कर्म विपाक के वश से आत्मा का भवान्तर मे जन्म धारण करना संसार है। उस अपार ससार सागर मे परिभ्रमण करता हुआ

जीव पिता हो जाने के बाद पुत्र पौत्र होता है, माता होकर भगिनी भार्या और कन्या होता है, स्वामी होकर सेवक होता है, यह चिंतन करना ससार विचय है।

इन बारह प्रकार से सयम आदि तथा दश प्रकार के धर्मध्यान पर्यंत अनुष्ठान करने से जो कोई क्रोधादि वश से दैवसिक दोष उत्पन्न हो गया हो उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ ।।७८१।।

मुडि विल्लटु मुन्नमु मेन् कणदर् ।
ट्र्डेयाम् विनैयै तवनोदि इनिर् ।।
ट्र्डैवन् निनि यौवरसन् नोनया ।
वडिवेल वन् वज्जिर वायुदन् मेल् ।।७८२।।

अर्थ–इसलिये मेरे अदर अनादि निधन ऐसे आत्मस्वरूप को न समझ कर मैं अनेक पाप कर्मों का उदय करता हुआ ससार मे भ्रमण करता आया हूँ। इस कारण मैं इन बधे हुए कर्मों की निर्जरा करके जिनदीक्षा लेकर अपना कल्याण करने की मेरो भावना है। इस प्रकार वह चक्रायुध राजा वैराग्ययुक्त होकर अपने पुत्र वज्रायुध को बुलाकर कहने लगा ।।७८२।।

मुडियुं पडियुं मुदला यिनत्रै ।
तडै वेलरसन् नपराजित नाम् ।।
वडिविन् मुनि वन् नडिमामलरै ।
मुडिइन् ननिया मुनियायिनने ।।७८३।।

अर्थ—हे वज्रायुध ! अनादि काल से मैंने स्वपर का ज्ञान न करके तथा अपने आत्म स्वरूप को न जानकर बाह्य पचेन्द्रिय स्वरूप मे मग्न होकर विषयाध होकर मैंने मेरा समय व्यर्थ ही वाह्य वस्तुओ मे गवा दिया। अब मेरे आत्मा मे इन पचेंद्रिय सुखो से विरक्त होकर आत्म-कल्याण हेतु जिन दीक्षा लेने की भावना है, अव तुम इस राजभार को सम्हालो। तदनन्तर राजा ने पुत्र का राज्याभिषेक किया और कहने लगा कि जैसे मैंने अव तक राज-भार सम्हाला है, उसी प्रकार तुम भी धर्मध्यान पूर्वक आत्म-कल्याण हेतु अपने पुत्र को राज्यभार देकर जिन दीक्षा लेना। यही मनुष्य जन्म का सार है। ऐसा उपदेश देकर उसने चक्रायुध अपराजित नाम के मुनि के पास जाकर भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और गुरु से प्रार्थना की कि मेरी आत्मा का इस ससार से उद्धार करो। मुनि महाराज ने तथाऽस्तु कहा और विधि पूर्वक जिन दीक्षा दे दी ।।७८३।।

चक्करायुधनु पोगि तादै तन्पादं सांर्दु ।
मिक्कमा मुनिवनागि वेळ्ळिडै यादि योगि ।।
निक्कुं वेव्विनैग नींग विरापगल् पडिम निड्रु ।
पक्कनोन् पिरदि योडु भावनै पइंड्रु शेंड्रान् ।।७४८।।

इस प्रकार उस चक्रायुध राजा ने अपराजित मुनि से जिन दीक्षा ग्रहण की और तीनो काल अर्थात् प्रात., मध्याह्न तथा सायकाल मे योग धारण करने वाले हो गये। वह पक्षोपवास, मासोपवास करते हुए धर्मध्यान से युक्त तपश्चरण करने लगे ।।७८४।।

नेरिवळि यॆंगुम् सेल्लुमीळ्चि नर् पर्डाचि निड्र ।
शेरिवि निर् पुरिगळारुं सेरित्त शैयमत्तनागि ।।
येरुवगै काय मोंवि येरुळ् पुरि येडक्त्तोडुं ।
मरुतर वेरियुं सिदै वळुवर तळुवि निड्रान् ।।७८५।।

अर्थ–वे चक्रायुध मुनिराज अपने आत्म-चिंतन मे समय को व्यतीत करते हुए स्पर्श, रस, गध आदि विषयो को रोकते हुए, सम्यक्चारित्र मे रत होकर षट्काय जीवो के संयम का पालन करते हुए आत्म गुण की वृद्धि के लिये आने वाले कर्मो का नाश करने के लिये धर्म-ध्यान मे लीन हो गये ।।७८५।।

वेळ्कैर पसियि नोइल् वेंडलिर पेरामै तन्निर् ।
काक्षि ई लिरुत्तल् पोदल् किडत्तलि लुडामै तन्निर् ।।
काक्षिई लरिविन् ज्ञान मिन्मैर् कलंगि चित्त ।
माक्षियै शलाद कत्तु परिषै पन्मूंड्र ं वेंड्रान् ।।७८६।।
वेप्पमुं कुळिरुं मासुं शिर्पमुं तुरलुं वेंजोर् ।
सेप्पलं कोलयुं तिड्रल् कुत्तलुं तीय ऊरुं ।।
तुप्पुरळ् वाई नार्दं तोर्डाचियां परिषै युळ्ळिट् ।
दोप्पिला पुरत्तु निड्र ओवदु मोरुंगु वेंड्रान् ।।७८७।।

अर्थ—वे मुनिराज आत्म-भावना की स्थिरता तथा सम्यक्ज्ञान के बल से बाईस परीषह को जीतने वाले हो गये। बाईस परीषहों के नाम इस प्रकार हैं —

(१) क्षुधा (२) पिपासा (३) शीत (४) उष्ण (५) दंश मशक (६) नग्नता (७) अरति (८) स्त्री (९) निषद्या (१०) चर्या (११) शय्या (१२) आक्रोश (१३) वध (१४) याचना (१५) अलाभ (१६) रोग (१७) तृण स्पर्श (१८) मल (१९) सत्कार पुरस्कार (२०) प्रज्ञा (२१) अज्ञान (२२) अदर्शन। ये परीषह मोक्ष मार्ग के साधन मे आने वाले कष्टो को देने वाली हैं। यह परीषह पूर्वोपार्जित कर्मों के उदय से होती हैं ।।७८६।।७८७।।

चेतन मिदरमायुं शेल्वन निर्प वायु ।
मेदुवि नियल्बि नागुं विकारियाय् विकारि इंड्रि ।।
योदिय उरुव मागि इतरमा युलग मागि ।
नीदि यार् पोरुळ्ग निड्र निलै मै यै निनैत्तु निड्रान् ।।७८८।।

अर्थ—जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ऐसे इन छह द्रव्यो मे से जीव तो जीव द्रव्य है और बाकी पाचो अजीव द्रव्य है। जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्य इन दोनो के मिलने से गमनागमन की शक्ति उत्पन्न होती है और धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चार द्रव्य है सो स्थिर है। यह परस्पर सहकारी कारण होने से प्ररूपते है। व्यवहार नय से जीव और पुद्गल द्रव्य विभाव पर्याय रूप है। और धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये अविकारी हैं। और उसमे पुद्गल द्रव्य वर्ण, स्पर्श, रस और गध से युक्त है। उसमे जोव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये अमूर्तिक हैं। यह प्रत्येक द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्य से युक्त है। इस प्रकार चक्रायुध मुनि मन मे भेद ज्ञान से विचार कर कि इससे भिन्न यह आत्मा है। ऐसा समझ कर अपने आत्म-स्वरूप मे मग्न हो गये ।।७८८।।

अनुविना लळक्क मूंड्रु कयंगिय पदेशमागु।
मनुविनुक् केग मागु मनंद मा काय देश।
मिनैला काल मूंड्रा मेट्रिळि वाय नदम्।
पणि विला भवंग रुप्पोपाद मूर्चनै निनैतान् ।।७८९।।

अर्थ—पुद्गल द्रव्य परमाणु वाले है। और अपने प्रदेश से तीन लोक मे फैलते है। यदि तीन लोक मे इनके नाप की जावे तो जीव, धर्म, अधर्म, इनके असख्यात परमाणु होते हैं। पुद्गल परमाणु और काल प्रदेश इनका एक प्रदेश होता है। आकाश के अनन्त प्रदेश होते हैं। यह छह द्रव्य परस्पर विरोध रहित आपस मे मिले हुए रहते हैं। निश्चय परमाणु द्रव्य काल व्यवहार पर्याय की अपेक्षा से भूत, भविष्यत् और वर्तमान ऐसे काल तीन प्रकार के है। और उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, ये दोनो काल अनादि से चले आये हुए हैं। गर्भ, उपपाद और सम्मूर्छन ये तीनो जीव के जन्मस्थान कहलाते है। इसमे कौनसा छोडना है और कौनसा ग्रहण करना है—इन सारी वातो पर विचार करके हेय उपादेय का विचार कर जो पदार्थ, उपादेय था उसको ग्रहण कर लिया ।।७८९।।

उदयक्कि लुपशमत्तिर् केटिर् केटविवु तन् कट्।
पदमोत्त परिणामत्ताम् पचं पावत्तै युन्नि ।।
इदमुत्ति इदर्कु पाय मिरदन तिरयन् तीय।
मद मदर् कुपाय तन्नै इद मिन्मै मनत्तुळ् वैत्तान् ।।७९०।।

अथ—ऐसे हेय उपादेय के बारे मे जानकर उपादेय को ग्रहण कर वह मुनिराज ने २१ प्रकृतियो मे से कर्म प्रकृति के उदय से सेनी पचेंद्रिय जीवो को काललब्धि के निमित्त से ७ प्रकार के दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय को उपशम करके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय कर्म के क्षय और क्षयोपशम परिणाम से उत्पन्न होने से पाच प्रकार के परिणामो को अपने मन मे ध्यान करके मोक्ष सुख को प्राप्त करने मे सामर्थ्य रखने वाले सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनो को व्यवहार और निश्चय नय के सम्बन्ध से भली भाति समझकर मोक्ष हेतु धर्मध्यान को धारण किया ।।७९०।।

विनैयेट्टि नुदयत्तागुं विकारंगळ् विपाक मेंड्र् ।
मनं वैत्तुमुनिवन् सोल्ल वज्जरायुधनं भोगं ।।
तनै विट्ट मनत्तनागि सेदंगै चीरडिइर् सेल्लु ।
मन मुक्कु मिरद मालै यार वत्ति नरिदिर् पोंडार् ।।७६१।।

अर्थ—आठो कर्मो के उदय से विकारी भाव यह सब कर्म के विपाक हैं-ऐसा मन मे विचार करके अपने पिता चक्रायुध मुनि जिस प्रकार वैराग्य से युक्त तपस्या करते थे उसी प्रकार वज्रायुध ने भी अपने मन मे वैराग्य लाकर स्त्री, पुत्र, वैभव आदि को त्याग कर दिया ।।७६१।।

भोगित्त भोगन ताने पुदिय वै यागि तोड्रि ।
मोगत्तै पेरुक्क लल्लान् मुडिवैदा चेल्व मायुं ।।
मेगत्तिन् मिन्निन् मोयु मिवट्रै नामुन्नं नींगि ।
नागत्तै वीटै नलुगु नट्रवं पुरिदु मेंड्रान् ।।७६२।।

अर्थ—राजा वज्रायुध ने सोचा कि भोगोपभोगवस्तु ही मुझे प्रिय दीखती है इनको अनादि काल से मैं देखता आ रहा हूँ। भोगोपभोग वस्तु ही सारी देखता आया हूँ। वास्तव मे आत्मा का स्वरूप ही एक सच्चा है। आज तक भोगोपभोगवस्तु को ही भोगते हुए अनेक प्रकार का अनुभव किया और इस सम्पत्ति को मैंने मेरी समझ कर भोगा। वह आकाश की बिजली की चमक के समान क्षणिक है। इसलिये यह सारी पुद्गल वस्तुएं क्षणिक हैं। सभी मर्यादा पूर्ण होने पर आत्मा से अलग होने वाली हैं। इसलिए यह सब वैभव आदि मुझको छोडे इससे पूर्व ही मैं इनको छोड दूं तो ठीक है। अत.अखड मोक्ष सुख को उत्पन्न करने वाले मोक्ष मार्ग को ग्रहण करने की मन मे भावना उनके उत्पन्न हुई अर्थात् दीक्षा लेने की भावना जागृत हुई। ।।७६२।।

इरद नायुदनै कूवि मुडियिनै ईंदु वेदन् ।
विरमना मनंत्त नागि वेळ्कइन् वीळ्ंदु पोगि ।।
तुरैयुना वगैर् पिन्ना लक्कर विडत्तिर् पाव ।
निरैना लुदयं शेय्य निड्रिडुं तुंव मेंड्रान् ।।७६३।।

अर्थ—इस प्रकार वज्रायुध ने वैराग्य से युक्त होकर अपने पुत्र रत्नायुध को बुलाया और उसको राज्यभार सम्हला दिया और कहा कि यदि तुम इस संसार मे लीन होगे तो पूर्व कर्म के उदय से इस सारी सम्पत्ति का नाश होकर अनेक प्रकार के सुख दुख भोगने पडेंगे। इसलिये इस संपत्ति मे मोहित न होकर परम्परा मोक्ष प्राप्ति हेतु की भावना से पचेन्द्रिय विषयो मे मूर्च्छित न होकर भगवान जिनेन्द्र के कहे हुए मार्ग मे रुचि रखकर यथाशक्ति अपने जीवन को सुधारने की उत्कंठा रखो।।७६३।।

तिरुमलि यार मालै तिळैक्कुं तिन् पुयत्तरागि ।
युरुमलि कळिट्रि नुच्चि योंगिय कुडई नीळल् ।।

वरुमवर् मुन्बु ताम् सै नल्विनै मायंद पोळ्दि ।
नेरि युरु तिरुवि नोन्नार् कुळैयरा ईयल् वर् कंडाय् ।।७९४।।

अर्थ—हे राजकुमार सुनो ! मोती का हार माला, अनेक प्रकार के रत्न आभरण आदि को धारण कर हाथी पर बैठकर सफेद छत्र को धारण कर नगर मे घूमने वाले राजा लोगो के पूर्व जन्म मे उपार्जन किये हुये पुण्य ही का यह सब फल है। यदि अशुभ कर्म का उदय आ जावे तो सभी सपदा का क्षणभर मे नाश हो जाता है। और राजा भी पराधीन हो जाते हैं। चक्रवर्ती के पास कितनी सपदा होती है। इस वारे मे आचार्यों ने त्रिलोकसार मे गाथा ६८२ मे कहा है —

"चुलसी दिलक्खभाद्दिभरहा हया विगुणणवयकोडीओ ।
णवरिणहि चोद्दसरयण चक्किरथीओ सहस्सछण्णउदी ॥

चौरासी कल्याण रूपी हाथी हैं, चौरासी लाख रथ हैं, अठारह करोड घोडे हैं। छह ऋतु योग्य वस्तु का देने वाला कालनिधि है। भाजन पात्र का दायक महाकालनिधि है। अन्न का दायक पाडुनिधि है। आयुध का दायक माणवकनिधि है। वादित्र का दायक शख निधि है। वस्त्र का दायक पद्मनिधि है। आभूषण का दायक पिगल निधि है। नाना प्रकार की रत्न निधिया है। ये नौनिधि हैं। चक्र असि छत्र, दड, मणि, चमर, काकिणी, यह सात अचेतन और गृहपति, सेनापति, गज, घोडा, शिल्पी, स्त्री, पुरोहित ये सात सचेतन, ऐसे चौदह रत्न है। छियानवे हजार स्त्रिया है। ऐसी चक्रवर्ती की सपदा है। इतना होने पर भी चक्रवर्ती की तृप्ति नही हुई। यह सभी पूर्व जन्म के पुण्य का उदय है परन्तु इनको ससार का कारण तथा क्षणिक समझकर चक्रवर्ती भी इसको त्याग कर जिन दीक्षा ले लेता है। इस प्रकार हे पुत्र ! तुम भी प्रजा का न्यायपूर्वक पालन करते हुए धर्मध्यान करना और भविष्य मे तुम भी अपने पुत्र को सदुपदेश देकर राज्याभिषेक करके जिन दीक्षा धारण करना ।।७९४।।

पचनल्ल मळि इन् कट् परुमणि पवळत्तिन् काळ् ।
मंजिन् मेंलन् सोलार्गळ वरुडमा पोट्रु इंड्रार् ॥
मुन्वुताम् शैद तीमै मुळैतुळि कनत्तिन् वेराय् ।
तुंजि नार् पोल मालै तुगनिल तुरैवर् कडाय् ।।७९५।।

अर्थ—हे कुमार ! अत्यत मृदु शय्या पर सोने वाले श्रीमत भी पूर्व जन्म के पुण्य सचय के बाद जब पाप कर्म का उदय आ जाता है तो उनको भी कटकीय भूमि पर सोना पडता है और महान नीच से नोच कर्म करना पडता है। यह प्रत्यक्ष मे देखने मे आता है। ।।७९५।।

कडल् विळैयमर्द मन्न कवळ तुर् कळत्तिर् कामत् ।
तुडि इडै मगळि रैंद तुयर मुट्र रिदि नुंडा ॥
रुडैय कल् कैयी नेदि यूर् तोरुं पुक्कु पेट्र ।
वडगिनै यमरं दुवांगळ् नल्विनै येविद काले ।।७९६।।

अर्थ—क्षीर समुद्र के पानी के समान अत्यंत मधुर दूध आदि भोजन सामग्री को लाकर एक सोने के पात्र मे रखकर उनकी स्त्रिया अपने पति को देते समय उनकी इच्छा न होने पर भी उन स्त्रियो की भावना को पूर्ण करने के लिये वे भोजन करते हैं। पर पूर्वजन्म में पाप कर्म के उदय से सारी संपत्ति वैभव होने पर भी उसका भोग नही कर सकते हैं। राजा होने पर भी तीव्र पाप के उदय होने पर निंद्य कर्म करके घर २ जाकर भीख मागना पडता है। फिर भी पेट नही भरता। महान दरिद्रता आने पर भी वह मरने की इच्छा नहीं करता है। अनेक कष्ट सहता है। यह सब पाप कर्म का उदय है ।।७९६।।

नुरै इनुं नुय्य वाय कंडुगि लुडुप्पि नोंडु ।
करैव थोनरळु मल्गुर् कपंग वल्लियेन्नार ।।
तेरु इडै वीळ्ढु तीडां शिलतुनि युडुप्पर् शेल्व ।
मोरुवर् कन् नेंड्र निल्ला दुरुदि कोंडोळुगु गेंड्रान् ।।७९७।।

अर्थ—अत्यन्त मधुर रेशम के वस्त्रो को पहनने वाली स्त्रिया कितना मोह करती है। यह सब पुण्य कर्मो के उदय का कारण है और तब तक ही भोगता है। पाप कर्म के उदय आने पर वे ही फटा हुआ मैला कपडा पहन कर गुजर करती हैं। ऐसी यह क्षणिक सपत्ति है, जो वेश्या के समान है। आज इसकी बगल मे कल उसकी बगल मे है। इस कारण धर्म ध्यान करो। इसी मे सुख शाति है ।।७९७।।

इनैयन् पलवुं शोल्लि वज्जरायु दनुं पिन्नै ।
तनै यनै विडुत्तु पोगि चक्करायुदनै शार्ंदु ।।
मुनिवनर् कमल मन्न वडिइ नै मुडिइर् ट्रीटि ।
विनइन् पयन् कडंमै वेरुविन नडिग कॆंड्रान् ।।७९८।।

अर्थ – इस प्रकार धर्मोपदेश अपने कुमार को राजा वज्रायुध ने दिया और उस पुत्र रत्नायुध को राज्यभार देकर उसका राज्याभिषेक किया और अपने पिता मुनि चक्रायुध के पास जाकर प्रार्थना की कि हे भगवन्! अनादिकाल से ससार रूपी समुद्र मे डूबता तैरता आया हू। मेरा इस जगत मे उद्धार करो। ऐसी प्रार्थना की ।।७९८।।

पुलै मगरेणिनुं शाल पुयवलि युडैय रागिन् ।
निलै मगट् किरैव रागि निंड्रिडुं तिरुवु मंगे ।।
मलै इन कुलत्त रेनुं पुयवदिम मायंद पोळ् दिर् ।
ट्रलै निल नुरुत्ति योन्नार् ताळ्नै तुळैय रावार् ।।७९९।।

हे भगवन्! नीच जाति मे जन्म लिया हुआ जीव पूर्व जन्म के पुण्योदय मे राजसुख के भोग भोगता है। और श्रेष्ठ कुल मे जन्मा जीव यदि पूर्व कर्म का पापोदय आ जाय तो वह नीच लोग के समान आचरण करता है ।।७९९।।

विनै वसमा यविद वोरिला वाट्कै तन्नै ।
निनैदोरु मुळिल निड्रु नडुगिडु मर्डांग नोट्रु ॥
विनै गळै वेड्रिट्टेंड्रन् विळुक् गुरां पोरुंदि मोळा ।
निनैवरु मुलर् मैद निनैदियान् वंद देंड्रान् ॥८००॥

अर्थ—कर्म से उत्पन्न होने वाले इस भयानक ससार मे यदि मन मे आत्म-कल्याण का विचार न किया जाय तो हमेशा संसार मे वह रुलता ही रहता है। और उसको अनेक प्रकार के शोक दुख उत्पन्न होते है इसलिये संयम पूर्वक जिन दीक्षा लेकर पूर्व जन्म के किये हुए कर्म का तपश्चरण द्वारा नाश कर मोक्ष सुख को प्राप्त करने की मेरी भावना हुई है। मैं आपके पवित्र चरण कमलो की शरण मे आया हूँ। ऐसे अपने पिता चक्रायुध मुनि से वज्रायुध कुमार ने प्रार्थना की ॥८००॥

समै तमम् शांति कांति दम्या मालिदि याकै नोकि ।
यमै वरु तोळिल रड्रि येच्चंग लेळु मिड्रि ॥
नमर पिररेंब दिड्रि योळिदल् मादव मिदामे ।
अमैग विड्रिरेवन् सोल्ल वरुंतवन् तीर्डांग नाने ॥८०१॥

अर्थ—इस प्रकार मुनि चक्रायुध ने वज्रायुध कुमार की प्रार्थना सुनकर पुन: धर्मोपदेश दिया। उस उपदेश को सुनकर वह अत्यन्त प्रभावित हुआ और उत्तम क्षमा धर्म को धारण कर वह कुमार पचेन्द्रिय विषयो को त्याग कर सम्यक्चारित्र को प्राप्त कर, आत्मा का स्वरूप समझ कर षट् काय के जीवो की रक्षा करने वाले होकर सात प्रकार के भयो से रहित हो गया। और अपने मित्र, बधु, बाधवादि स्त्री, पुत्रादि पर समता भाव होकर सर्व कुटुम्ब का परित्याग करके उस कुमार वज्रायुध ने मुनि चक्रायुध से जिनदीक्षा ग्रहण की। ॥८०१॥

अरियन् शैय वल्ला रांड्रव रंड्रियारे ।
वरिशैइन् मन्नन् मैदनुं मैदनुं वैय्य तन्नै ॥
योरुडुगळ् पोल विट्टा रुलगेला मिरंज निड्रा ।
रिरविरे यंड्रि निड्र विरुळ् कडिदे ळलु मुंडो । ॥८०२॥

अर्थ—सज्जन लोगो के आचरण मे कितने भी कष्ट हो, उसको वे अधूरा नही छोडते, पूरा ही करते हैं। और वे ही उसका फल भोगते हैं। यही सज्जनो का लक्षण है। इन्हीं को सज्जन कहते हैं। इस प्रकार सद्गुणो को प्राप्त हुए राजा अपराजित (मुनि) उनका पुत्र चक्रायुध मुनि और चक्रायुध का पुत्र (मुनि) वज्रायुध ये तीनो ही तपश्चरण भार को धारण कर एकत्व भावना मे स्थिर हो गये। जिस प्रकार सूर्य अन्धकार का नाश कर देता है। उसी प्रकार वे तीनो महामुनि सद्गुण से युक्त अपने अज्ञानाधकार को नाश करने वाले हो गये ॥८०२॥

तिक्कय मलै पोल शिदनै तिरुति चिन्ना ।
लर्कन् वंदुदयत्तुच्चि यडै वदे पोल वंदु ।।
चक्क रायुदनु पिन्नै तडवरै मुडियै शारंदु ।
शुक्किलध्यानं तन्नाल् विनंयिरु दूर्कलुट्टान् ।।८०३।।

अर्थ—जिस प्रकार महामेरु पर्वत के चारो ओर दिग्गज पर्वत रहते हैं, उसी प्रकार कुछ समय तक सघ के साथ विहार करते हुए ध्यानाध्ययन मे समय व्यतीत करते हुए वे चक्रायुध मुनि जिस प्रकार सूर्य उदय होकर बारह बजे मध्य मे आता है और तीव्र प्रकाशमान होता है उसी प्रकार वे सघो का परित्याग कर एक पर्वत की चोटी पर विराजमान होकर शुक्ल ध्यान के बल से कर्म शत्रु का नाश करने लगा ।।८०३।।

वरिशैर् सुरुक्कि वैय्य दुच्चियार् वडिवु तन्नै ।
पुरुवत्ति निडैन् मूकि नुनि इट्टान् पोरुंद वैयतु ।।
तिरिविद योगि नोडुं सेंड्रु वंदाडुम् सिदै ।
युरुव मट्रि दने युन्न विनेगळे ळुडैद वंड्रे ।।८०४।।

अर्थ—वे मुनि शुक्लध्यान के बल से बध का कारण होने वाले परिग्रहादि को मन-पूर्वक त्यागकर त्रिगुप्ति धारक हो गये । और सच्चे सुख को प्राप्त किये हुए सिद्ध परमेष्ठी की नाशादृष्टि से अपने मे स्थापना करके ध्यान करने लगे । इस प्रकार मिथ्यात्व, अविरत, प्रमादे और कषाय यह चारो जो बध के कारण हैं इनका नाश कर आत्म भावना मे लीन होकर स्व-सवेदन ज्ञान से अनुभव मे आने वाले सिद्धो के समान निश्चय रत्नत्रय स्वरूप की भावना करते २ दर्शन मोहनीय की सात प्रकृतिया अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्-प्रकृति, अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ इस प्रकार सातो प्रकृत्तियो का नाश कर दिया ।।८०४।।

मोगणि यत्ति नोडुं मुप्पत्तेळ् पगडि वींडा ।
वेग योगत्तो डोड्रा वेळुंद शुक्किल ध्यानं ।।
वेग योगत्ति नीरेन् पगडि वीळ वळद वेय्योन् ।
मेग योगत्तिन् वीटिन् विरिदन वनंद नानमै ।।८०५।।

अर्थ—उन मुनिराज ने पृथक्त्ववितर्कवीचार वाले शुक्ल ध्यान मे ज्ञानावरणी की पाच, दर्शनावरणीय की नौ, मोहनीय की अट्ठाईस, अतराय की पाँच, नरक गति, तिर्यंच गति, एकेंद्रिय आदि चार जाति, पाच सस्थान पाच सहनन, अप्रशस्त वर्ण, रस, गध, स्पर्श, नरक-गत्यानुपूर्वी, तिर्यंच-गत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, सूक्ष्म, अपर्याप्त साधारण, अस्थिर, अशुभ दुर्भग, दु स्वर, अनादेय अयशकीर्ति, नरकायु, असाता वेदनीय नीच गोत्र, ऐसे चौरासी प्रकृतियो का नाश किया । जिस प्रकार सूर्योदय होते ही मेघपटल दूर हो जाते है, उसी प्रकार उसी क्षण मे चक्रायुध मुनि ने घातिया कर्मो का नाश होते ही अनत सुख

अनतवीर्य अनतदर्शन और अनतज्ञान ऐसे अनत चतुष्टय को प्राप्त कर लिया ।।८०५।।

वेय्यव नेळलुं वैय्य व्यापारि पदनै पोल ।
वैय्य मिलनंद नान्मै येळुंदवक्कनत्तु वानोर् ।।
मैयरु विशिुंवै येल्ला मरैत्तुडन् वंदु सूळंदु ।
पुय्यरु तर्वात्ति नानै पुगळंदडि परव लुट्रार् ।।८०६।।

अर्थ—जिस प्रकार सूर्य के उदय होते ही ससारी प्राणी अपने २ कार्य मे लग जाते हैं , उसी प्रकार अनादि काल से लगे हुए घातिया कर्मों का नाश होते ही आत्मा मे रहने वाले अनन्त चतुष्टय उसी क्षण मे प्रकाशित हो गये । और चतुर्णिकाय देवो ने आकर चक्रायुध केवली भगवान की भक्ति पूर्वक पूजा, स्तुति करके नमस्कार किया ।।८०६।।

गाति नान्मै कडंदोय् नी कडैई नान्मै यडंदोय नी ।
वेद नान्गुं विरित्तोय्नी विकल नान्मै विरित्तोय नी ।।
केद नान्मै केडुत्तोय् नी केडिलिब कडलोय निन् ।
पाद कमवं पणिवारे युलगं पणिय वरुवारे ।।८०७।।

अर्थ—वे देव चक्रायुध केवली भगवान को विनय से भक्तिपूर्वक नमस्कार तथा उनकी स्तुति करके कहने लगे कि हे प्रभु ! ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चारो कर्म रूपी शत्रु अनादिकाल से लगे हुए हैं । इन घातिया कर्मों को आप ही नाश करने वाले हो । प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुपयोग इन चारो योगो के प्रतिपादन करने वाले आप ही हो । मति, श्रुत, अवधि और मन पर्यय चारो ज्ञानो को प्राप्त करने वाले, अनन्त सुख, को प्राप्त करने वाले तथा शारीरिक, मानसिक, आगन्तुक और स्वाभाविक इन ससार के दुखो के कारण होने वाले पापो का नाश करने वाले आप ही हो । जितने प्राणी आपके चरण कमल की स्तुति करने वाले हैं, वे ही जीव आपके समान पद को प्राप्त कर लेते हैं । भाग्यवान के अलावा आपके चरण कमलो की पूजा स्तुति अन्य को प्राप्त नही होती है ।।८०७।।

पदिनें कुट्र मरिंदोय् नी परम नान्मै यडै दोय नी ।
इद मैय्यु इरुकु मळिपोय् नी इन्ना पिरवि योरिवोय् नी ।।
कदमुं मदमुं कामनयुं कडंदु कालर् कडंदोय् निन् ।
पद पंगयङ् गळपनिवारे युलगं पणिय वरुवारे ।।८०८।।

अर्थ—क्षुत्पिपासादि बाईस परीषह को जीतने वाले, एकेंद्रियादि षट्काय जीवो को अभयदान देने वाले तथा संसार रूपी दावानल को नाश करने वाले आप ही हो । क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारो कषायो को जीतकर कालरूपी यमराज को नाश करने वाले

आपके चरण कमलो की जो भव्य जीव भक्ति व स्तुति करते हैं वे आपके समान हो जाते हैं।
।।८०८।।

शिदिप्परिय गुणत्तोय् नी देवरेत्तुं तिरलोय् नी ।
पंदम् परियुं मेरियोय् निन्पाद् कमलं पनिवारुक् ।।
कंद मिळा विवंत्तै येळित्तु मुत्ति येगत्तिरुत्तु ।
मेंदै पादं पनिवारिव्वु लग परिणय वरुवारे ।।८०९।।

अर्थ—अनन्त गुणो को प्राप्त करने वाले, चतुर्णिकायिक देवो द्वारा पूजनीय आप ही हो। कर्म बध को नष्ट करने वाले रत्नत्रय धर्म रूपी मार्ग को प्राप्त करने वाले आप ही हो। आपके चरण कमलों की पूजा भक्ति करने वाले भव्यजीव मोक्ष प्राप्ति करने वाले तथा आपके समान अनन्त चतुष्टय को प्राप्त होते हैं।।८०९।।

मलर् मळै पोलिदु मारि मुगिलेन वंदु वानो ।
रलै कडन् मुगिलोडोंड्रि मुळंगुव रनैय्य देन्न ।।
उलगुडै इरैवन् पाद मुळ्ळ मैमुळि यींडोंड्रि ।
निलै ला पिरवि नींगु नेरियिनार् ट्र् दिगळ् सोन्नार्।।८१०।।

अर्थ—इसी प्रकार चतुर्णिकाय के देवों ने केवली भगवान के पास आकर जैसे मेघों की वर्षा होती है,उसी प्रकार उन्होने पुष्प वृष्टि करते हुए भक्तिपूर्वक पूजा स्तुति की।।८१०।।

आइडै येवत्तंजु विनै केट्ट वक्कनत्ते ।
पोयुलगुच्चि पुक्कान् पोरुदि यन् गुणंगळोडुम् ।।
तूय वान् मलर् सोरिंदु तुदित्तिडन मनर् पोनार् ।
माय् मिरवत्ति नान् वज्जि रायुद नूवनगि पोनान् ।।८११।।

अर्थ—चतुर्णिकायिक देव उन चक्रायुध केवली भगवान की स्तुति करते हुए घातिया कर्मो का नाश किऐ हुए, अनन्त ज्ञानादि गुण तथा सिद्ध पद को प्राप्त हुए, उन भगवान की वे देव परिनिर्वाण पूजा करके पुन: भगवान को स्तुति स्तोत्र पाठ पढ करके वहा से लौट कर अपने इष्ट स्थान को चले गए। माया कषाय से रहित चक्रायुध केवली भगवान की निर्वाण कल्याण की पूजा समाप्त करके तपोवन की तरफ चले गये।।८११।।

वनिगनाय धरुम मेवि मन्नाय् माधवत्ता ।
लिनैला केवच्चेत्तु नमर ना इंगु वंदु ।।
तणिविला तवत्तिन् माट्रं येरिंदु चक्करायुदन् पो ।
इनैला उल पुक्कानिदु वरत्तियर् कै यामे ।।८१२।।

अर्थ—पूर्व जन्म का वणिक भद्रमित्र श्रेष्ठी का जीव श्रावक व्रत को धारण कर भगवान द्वारा कहे हुए वचनो के अनुसार पूजादान आदि षट् क्रिया मे आचरण करने वाला होने के कारण अपनी माता व्याघ्रणी के द्वारा भक्षित किया हुआ जीव उन राजा सिंहसेन महाराज की पटरानी रामदत्ता देवी के गर्भ मे आकर जन्म लिया। नामकरण सस्कार करके सिंहचन्द्र ऐसा नाम रखा गया। आगे चलकर घोर तपश्चरण करके उसके फल से नवग्रैवेयिक नामक अहमिंद्र कल्प मे देव उत्पन्न हुआ। वहा देवगति के सभी सुख भोगकर आयु के अवसान पर कर्म भूमि मे आकर चक्रायुध होकर धर्मध्यान पूर्वक घातिया कर्मों का नाश करके मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया। जैन धर्म की यही महिमा है ।।८१२।।

सातवा अधिकार समाप्त ।।

॥ अष्ठम अधिकार ॥

* वज्रायुध का अनुत्तर विमान में जन्म लेना *

अरस नाय नल्लरद नायु दन् ।
पिरस मार् कुळर् पिनैय्य नारुंडु ॥
वरै शै तोळवन् मगिळ्वं वार्तैयै ।
युरै शैवन् निनि युरगराजने ॥८१३॥

अर्थ—हे धरणेंद्र सुनो ! राजा रत्नायुध अपनी पटरानी सहित विषय भोगो को विष के समान समझ कर उसको त्याग दिया। इस संबध मे मैं विवेचन करूगा। लक्ष्य पूर्वक सुनो ॥८१३॥

वाम मेगलै मैलं शायलार् ।
काम कोटियुट् कळुमु कादलार् ॥
सेम नल्लरं सेप्पिट्रि इडै ।
यामै पोलव नवल मैंदुमे ॥८१४॥

अर्थ—कठ मे रत्नमयी स्वर्ण मोती युक्त आभरण धारण करने वाली स्त्रियो मे अनेक प्रकार के विषय भोग मे लवलीन रहने वाले उस राजा से यदि कोई व्यक्ति जैन धर्म की वात कहे तो जैसे कछुआ किसी आदमी को देखते ही घबरा कर पानी मे घुस जाता है, उसी प्रकार वह राजा रत्नायुध अत.पुर मे जाकर बैठ जाता था। अर्थात् उनको यदि जैन धर्म की महिमा कोई बताता तो आख लाल हो जाती थी। जब तक जीव को देशनालब्धि प्राप्त नही होती तब तक जैन धर्म को धारण करने की रुचि उत्पन्न नही होती ॥८१४॥

अरसु मिबंमु किळयु मायुवुं ।
विरै से तारवन् वोयु मेंड्रे नान् ॥
रिरै यृडुत्त विप्पडि मिशैदन् ।
तरसु निर्प दे याम वेन्नु में ॥८१५॥

अर्थ—अत्यन्त सुगधित फूलो के हार को धारण किये हुए राजा रत्नायुध को राज सुख, बधु, मित्र, स्त्री, पुत्र मे मुझे शाति है और ये ही सदा शाश्वत रहेगे-ऐसे यह विचार सदैव ही बने रहते थे। किन्तु यह राज सपदा, वैभव, मालखजाना, बंधु-बाधव हमेशा स्थिर रहने वाले नही है। ऐसा विचार उनको कभी नही होता था।

भावार्थ—ग्रथकार कहते है कि इन्द्रिय सुख मे मग्न हुआ जीव सदैव इसीको सुख समझता है। दूसरी बात मे कोई ध्यान जाता ही नही है। कहा है कि एक राजा रात्रि के

समय पडे २ यह विचार करता है कि मेरे समान संसार मे कोई सुखी नही है।

"चेतोहरायुवतयः सुहृदानुकूलाः।
सद्-बांधवाः प्रणयगर्भगिरश्च-भृत्याः॥
गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरगाः।
सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति॥

अर्थ—मेरे पास मन को हरने वाली अनेक सुन्दर रानिया है, मित्र वर्ग सभी अनुकूल हैं, भ्रातृ वर्ग सभी अच्छे है, सेवक हमारी आज्ञा मे सदा तैयार रहते हैं और द्वार पर हाथी, घोडे आदि वाहन गर्जना करते रहते है।

इस प्रकार उपर्युक्त तीन चरणो की रचना शयन कक्ष मे लगे हुए श्यामपट्ट पर करके राजा सो गया तत्पश्चात् कोई सस्कृत का विद्वान राजमहल मे चोरी करने के लिये घुसा था उसने जब इस श्लोक को देखा तो चौथे चरण की रचना इस प्रकार की कि राजन्! तुम्हारे नेत्रो के बन्द हो जाने पर तुम्हारा कुछ भी नही रह जाता। अर्थात् आँखो के मुद जाने पर प्राणी का कुछ भी नही रहता। प्रात काल राजा ने जब श्लोक के अन्तिम चरण को देखा तो उसकी आखे खुल गई और उसने अपने धन वैभव को क्षणिक मान लिया। इस प्रकार पचेंद्रिय विषयाध जो मनुष्य हैं उनको धर्म कर्म का विवेक नही रहता है। अत वह राजा विषयभोगो मे मग्न होकर अधे के समान विचारता था ॥८१५॥

**पोरिइन् भोगमुं पुण्णि येत्तिन् वन्।
दुरुव देंड्रेना नुंब रिंवमुं॥
मरुविल् वोडु मट्रिल्लै मायंद वर्।
पिरवि युं मिलै येंड्र पेशुमे ॥८१६॥**

अर्थ—ससार को उत्पन्न करने वाले इन्द्रिय विषय भोग पूर्व जन्म मे उपार्जित किए हुए पुण्य पाप के फल से इस भव मे सुलभता से मिलते हैं। यह ज्ञान राजा रत्नायुध को विदित नही था। वह अपने मन मे विचार करता है कि नरक, स्वर्ग, मोक्ष आदि ये सब झूठे हैं। मरा हुआ मनुष्य लौटकर ससार मे कभी नही आता, इसलिए पाप पुण्य कोई वस्तु नही पुण्य सचय करके प्राणी देवगति को गया, स्वर्ग मे गया, यह कहना सभी मूर्खपना है क्योकि ऐसा किसी ने देखा न सुना है। ८१६॥

**कद्र मादं राय् काम शल्वत्तिर्।
पेट्र विवत्तं मिळैक् विट्ट पोय्॥
मट्र मिबं मेल्वर वरुंदुद।
लुट्र वूनरी विट्टदोक्कुमे ॥८१७॥**

अर्थ—पुनः रत्नायुध यह विचार करता है कि ससार मे धर्म कोई वस्तु नहीं है। अपने द्वारा पंचेद्रिय सुख को भोगना, खाना, पीना यह ठीक है। मरकर वापस दूसरी पर्याय धारण करना कायक्लेश तप करना धर्मध्यान करना यह सब पागलपन व मूर्ख है। देवलोक में जाना और मरकर वापस आना यह किसने देखा है ? यह सब मूर्खता है। ऐसा वह मानता था। और कहता था कि जिस प्रकार एक कुत्ता रोटी का टुकड़ा लेकर नदी की ओर जाता है और अपनी परछाई पानी मे देखकर यह समझता है कि दूसरा कुत्ता पानी मे और है उसकी रोटी पकडने को अपना मुंह खोलता है तो वह अपने मुंह की रोटी भी पानी मे गिरा देता है। इसी प्रकार वह विचार करता है। ससार में वर्तमान परिस्थिति को न सुधार कर आगे का विचार करना मूर्खता है ।।८१७।।

तोंवत्तार तुंवं तुइत्तलल्लदु ।
तुंवत्ता यिल्लं लुइक् वेण्णुद ।।
लंविर् कांचिर माकि मांगणी ।
तिन् कुट्र दवर सिंदै वण्णमे ।।८१८।।

अर्थ—तपश्चरण से उत्पन्न होने वाले दुख को ही अनुभव करता है। सुखलेश मात्र भी नही है। देवगति मिलना, विषय सुख का त्याग करना अथवा विष से अमृत मिलना ऐसी भावना वह रत्नायुध करता है और मानता है ।।८१८।।

विनैगळ् वेरुपट्टुदयं शेदला ।
लिनैय्य सिदय नागि शेल्लनान् ।।
मुनिवन् वज्र दंतन् मुइ मलर् ।।
वनमनो गरम् वंदु नान्निनाम् ।।८१९।।

अर्थ—इस प्रकार मिथ्यात्व कर्म के उदय से राजा नास्तिक मत के अनुसार विषय सेवन को प्रतिपादन करता था। उसी समय नगर में वज्रदन्त नाम के मुनिराज मनोवेग नाम के उद्यान में चतुर्विध संघ सहित आकर विराजमान हुए। वे अत्यन्त गंभीर निस्पृही थे। सिह के समान धीरवीर तथा पराक्रमी थे। सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीन आराधनाओ में रात दिन पुरुषार्थ करने वाले थे। ऐसे मुनिराज रत्नायुध राजा के उद्यान मे पधारे ।।८१९।।

मेरुमालवन पत्तिरालत्तुल् ।
वारणं मलै शूळ निंड्र् दुं ।।
वीर मादवर् शूळ मैत्त वन् ।
तारकै मदि तानु मोत्तनन् ।।८२०।।

अर्थ—अत्यन्त निर्दोष व्रत महित तप करने वाले वे मुनि जिस प्रकार मेरु पर्वत के चारो ओर नदनवन तथा दिग्गज पर्वतादि होते हैं, उसी प्रकार उन वज्रदन्त मुनि के चारों

ओर निर्दोषव्रत तथा चारित्र को पालने वाले मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका आदि सब बैठते थे। देखनेवाले भव्य जीवो को ऐसा दीखता था जैसे चद्रमा के चारो ओर नक्षत्र प्रकाशित होते हैं। उसी प्रकार उन वज्रदन्त मुनिराज के चारो ओर क्षुल्लक, क्षुल्लिका, श्रावक, श्राविका आदि शोभायमान होते थे ।।८२०।।

पिरवि माकडल पेयकुं माट्रला ।
लिरंव नन्नव नेंडु कोळ्ग यान् ।।
मरुविन् मादवन् वेंय्य मूंड्रिनु ।
मुरवि निड्रवा रोद वंड्रि नान् ।।८२१।।

अर्थ—ससार रूपी समुद्र को पार करने के लिये सम्यक्त्व के बल से भगवान के समान सम्यक्चारित्र को प्राप्त किये हुए मुनि वज्रदन्त इस लोक मे जीव के जन्म और मरण के सबंध मे प्रतिपादन करने वाले त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति नाम के ग्रंथ का स्वाध्याय करते हुए अपने सघ के त्यागियो को उपदेश देते थे ।।८२१।।

ओंड्रि रंडोरु मूंड्रु नालै दाय ।
निड्र वेंबोरिने रिइन् वाळुइ ।।
रोंड्रु नीर मर निल नेरुप्पु कार् ।
ट्रेंड्रि काय मेंदेदि वाळुमे ।।८२२।।
नंडु शिप्पि शकादि नावन ।
कुंद रेंबु कोपादि मूंड्रन ।।
वंडु तुंबि वंडादि नालवेंन् ।
तिंदिय पशु नरर् नरगर् देवराम् ।।८२३।।

अर्थ—उस सघ के त्यागियो ने प्रश्न किया कि शास्त्र मे प्रतिपादन किया हुआ विषय कौनसा है तो आचार्य कहते हैं कि संसारी जीवो के मुख्य दो भेद हैं। एक स्थावर और दूसरे त्रस। एकेंद्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पचेंद्रिय जीव इनकी मार्गणा मे अर्थात् स्थावर पाच है, और त्रस चार हैं। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक यह तो पाच स्थावर हैं और दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेंद्रिय ये चार त्रस हैं। लट, शख, सीप, कीटक आदि दो इन्द्रिय जीव हैं। चिऊंटी खटमल, विच्छु आदि तेइन्द्रिय जीव हैं। भ्रमर, मक्खी, मच्छर, पतगा आदि चौइन्द्रिय जीव हैं और पशु, पक्षी, मनुष्य, नारकी, देव आदि पचेन्द्रिय जीव हैं ।।८२२।।८२३।।

उळुदल कल्लुदलडंत्त लोडुकाय् ।
तळल्गळादि मण्णु डर्गळ् मायं दिड्डु ।

मळलै याट्रुद लवित्त लादि याय्त ।
तळलुडवन् तानु मायुमे ।।८२४।।

अर्थ–हलन चलन से, कूदने फादने से, आग जलाने से पृथ्वीकाय जीव को बाधा होती है, और वे मर जाते हैं । पानी मे उठने वाली तरगो से तथा अनछना पानी को गर्म करने मे अथवा पानी पृथ्वी पर डालने से जलकायिक जीवो का घात होता है ।।८२४।।

तिरै यलैप्प वुं तीइर् काचउं ।
तरै ननैप्पउं शांक नी रुइर् ।।
वरै योडिट्रवुं वट्ट मादिगळ् ।
पोरवुं वात कायंगळ् पोंड्रुमे ।।८२५।।

अर्थ—गर्म पानी मे ठंडा पानी या ठडे पानी मे गर्म पानी मिला देने से, अग्नि के बुझाने आदि से अग्निकायिक जीवो को बाधा होती है । हवा चलने, पंखा हिलाने आदि से वायुकायिक जीवो को हानि पहुँचती है ।।८२५।।

वेयिलुं मारियुं मिक्क वातमु ।
मइल् शंवि पडै तीयोडादियार् ।।
पइर् मरं मुदल् पशिय कायमा ।
मुइर्ग नोंदु वेंतुयर ळुक्कु मे ।।८२६।।

अर्थ—अधिक धूप पडने, अधिक जल वृष्टि तथा आंधी व वायू के वेग से तथा घास को आयुधो द्वारा काटने आदि से वनस्पति काय के जीवो को महान दुख होता है । और उससे वृक्ष खेती आदि नष्ट हो जाती हैं ।।८२६।।

माल्कडर् पिरंदालु मावदेन् ।
मेलै वेव्विनै निकुं माय् विडिन् ।।
वाल् वळै मकरगळ् शिप्पि मोन् ।
काल नन्नवर् कैइन् मायुये ।।८२७।।

अर्थ—शख, सीप आदि अनेक प्रकार के दो इन्द्रिय जीव समुद्र मे उत्पन्न होते हैं उनका रक्षक कोई नही रहता । पाप कर्म के उदय से धीवर लोग जाल को पानी मे डालकर जीव को पकड लेते हैं और मार डालते हैं । इससे जीव की हिंसा होती है और जिन्होने इस जीव को मारा है । वे भी अनन्त काल तक दुख को सहते हुए संसार मे परिभ्रमण करते हैं । ।।८२७।।

मलयुं वावियुं कानुमेवियुं ।
वलयुं विल्लुं वान् पोरियु मादिया ।
यलै संवारगळु कंजि नेजंळिन् ।
तुलै विलाय वेंतुयर् वेळवकुमे ॥८२८॥

अर्थ—तिर्यंच गति मे उत्पन्न हुए पशु पर्वतो मे, सरोवर के निकट जंगल मे, पानी की नाली मे रहने वाले जीव हिसको के द्वारा मारे जाते हैं । बलवान पशुग्रो के द्वारा उनका भक्षण होता है और महान दुख सहन करना पडता है ॥८२८॥

ऊन काररुं पोसैं वीररुं ।
तीङ्र् वेळ्वियुं तीय दैवमु ॥
मीन मानव रादि येंदुवर् ।
तानुडंविडुं शारं्द जातिये ॥८२९॥

अर्थ—मासभक्षी मनुष्य योद्धा लोगों के द्वारा अज्ञान से तथा अज्ञानी लोगो के द्वारा करने वाले यज्ञ, चाडाल आदि नीच जाति तथा अनेक पापी मनुष्यो के द्वारा, हरिण, बैल, भैसे आदि की बलि दी जाती है । इससे भी उन जीवो को महान कष्ट भोगने पडते हैं ॥८२९॥

कूरिरुंवि नार् कुडुमि पोळवुं ।
भार मेट्रवुं पादं यापवुं ॥
वारणं तुयरंदु मट्रय ।
वेरु मूदियु मेरंदु नैय्युमे ॥८३०॥

अर्थ—अत्यन्त बडे शरीर को प्राप्त हुए हाथी को अकुश मारने तथा पावो मे लोहे की सांकलो से बाधे जाने से उनके दर्द होने से तीव्र तथा असह्य दुख सहना पडता है। तथा घोडे, बैल, ऊट आदि जीवो को गाडी मे जोता जाता है । हल चलवाया जाता है । समय पर दाना पानी नही मिलता है और इस कारण उन जीवो को महान बाधा व दुख भोगना पडता है ॥८३०॥

इप्पडि विलांगिर् पिरप्पार् कडा ।
मेप्पडि पट्ट वेरेंड्रि येंबिडिन् ॥
मै पडत्तुर वादु विळुत्तव ।
तोप्पिन् मायत्ति नोडुळ् वार्गळुं ॥८३१॥

अर्थ—पहले कहे अनुसार पशु पर्याय मे कौनसे जीव उत्पन्न होते हैं ? बाह्य और अभ्यतर परिग्रहो को मन पूर्वक जिन्होने त्याग नही किया और निर्ग्रंथ भेष को धारण कर मायाचार करने वाले को पशु शरीर धारण करना पडता है ॥८३१॥

मोग मोडु मिच्चोदयत्तालु मर् ।
ट्रेग मागि नांगिल् विलंगा इडं ॥
काग मेयन कारिगै यार् मनत् ।
तागु मायं विलांगि नै याकुमे ॥८३२॥

अर्थ—अत्यन्त तीव्र चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से दर्शन मोहनीय, मिथ्यात्व कर्म के उदय से एकेंद्रिय पर्याय मे और मिथ्यात्व से मदतर औदयिक परिणामो के उदय से दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पचेंद्रिय इन चार जातियो मे तथा परिणामो के अनुसार तिर्यंचगति मे जन्म लेता है। और स्त्रियो मे अत्यन्त मोहित रहने के कारण मायाचार सहित होने के कारण तिर्यंच गति मे जन्म लेता है ॥८३२॥

उळ्ळं मैमुळि योंड्रु दलु निला ।
वेळ्ळे मान्दरुं वीळ्वर विलंगिडै ॥
तळ्ळ वारं शेयातनं तेडुमक् ।
कळ्ळ नेंजिनर् वीळ्गति युमिदे ॥८३३॥
मंड्रि निड्रु पिरं पोरळ् वांगुवार् ।
तिड्रु तेनोडु कट् पुलसिर् शेल्वार् ॥
निंड्रु नीदि केडुत्तय लार् मनं ।
योंड्रु वारुळ लुगति युमिदे ॥८३४॥

अर्थ—मन, वचन, काय इन तीनो मे से एक २ के आधीन होने वाले अज्ञानी जीव निंद्यनीय पशु गति मे जन्म लेते है। इस प्रकार मनुष्य गति को प्राप्त होकर अपने करने योग्य धर्म कार्य को न करके कपटाचार तथा मायाचार करने से जीव तिर्यंच गति मे जन्म लेता है। न्यायालय मे जाकर झूठ बोलना, झूँठी गवाही देना, झूँठा काम करना, दूसरे के द्रव्य को अन्याय से शक्ति पूर्वक हरण करना, अपने बल से दूसरे को आधीन कर लेना, पैसा लेकर झूँठी गवाह देना, दूसरे को ठगना यह सभी मायाचार कहलाता है। और मद्य, मास, मधु को सेवन करने वाले, अहिंसा धर्म को नाश करने वाले, अपनी विवाहिता स्त्री को छोडकर पर-स्त्री सेवन करने वाले तिर्यंच गति मे जन्म लेते हैं ॥८३३॥८३४॥

वंड्रला दुइरिल्लै येनच्चोला ।
निंड्रती नेरि इर् शेरिवार्गळु ॥
मोंड्रु नल्वळक्कोर दुडै दानुळे ।
वेंड्रि याकु नर् वीळ्गतियुं विदे ॥८३५॥

अर्थ—इस जगत मे परमात्मा एक ही है दूसरा कोई नही है, ऐसा कहने वाले तथा शास्त्रों की रचना करके प्रचार करने वाले, उसी के अनुसार चलने वाले, प्रतिवादी के अनुकूल

होकर उनके माफिक झूंठो गवाह देना, उनके अनुकूल मुकदमा जीतना ऐसे जीव तिर्यंच गति मे जन्म लेते हैं ।।८३५।।

इल्लै नल्विनै तीविनै इन्नुइ ।
रिल्लये इरंदार्गळ् पिरत्तलु ।।
मिल्लये तुरकत्तोडु वीडनुं ।
सोल्लिनार् सुळलुं गतियु मिदे ।।८३६।।

अर्थ—पुण्य पाप को उत्पन्न करने वाला कोई द्रव्य नही है । जीव द्रव्य भी नही है । जो जीव है वह शून्य है । मरा हुआ मनुष्य पुनः नही जन्म लेता और देवगति मनुष्य गति मोक्ष आदि का प्रतिपादन करना मिथ्या है । इस प्रकार नास्तिक लोग झूंठा प्रचार करने वाले तिर्यंच गति मे जाते हैं ।।८३६।।

अरस नीति येळित्तवं मन्ननु ।
मरस रीति यळित्त वमैचनु ।।
पुरैनार् पिररै पुनर् तीप्पेनुं ।
निरैय नैय्दि विलंगि निर्परे ।।८३७।।

अर्थ—राजनैतिक में राज किया हुआ राजा, मत्री आदि मोहनीय कर्म के तीव्र उदय से अपनी स्वस्त्री को छोडकर परस्त्री के ऊपर दृष्टि रखने वाले अथवा लग्न की हुई स्त्री दूसरे पुरुष पर दृष्टि रखने वाली, उग्र परिणाम रखने वाली यह सब नियम से नरक मे जाते हैं । तथा मंद परिणामी होने से भी नरक मे जाते हैं ।।८३७।।

अरद नायुदन् ट्रन् मेग विजय माम् यानै येंदप् ।
पिरसमार् वनत्तिरुदं पेरुदवन् विलंगिन् वाट्कै ।।
युरै शैदा निदनै केळा पिरप्पिनै युनरं दिट्टु निन् ।
विरविय कवळं कोंडा दोंळिदुं वै तुइत्त दंडु ।।८३८।।

अर्थ—इस प्रकार पहले कहे हुए मनोहर नाम के सुन्दर उद्यान मे घोर तपश्चरण करने वाले वज्रदन्त मुनिराज अपने चतुर्विध संघ को तिर्यंच गति मे जन्म लेने वाले विषय का प्रतिपादन करते थे। जहा मुनिराज उपदेश दे रहे थे उसमे कुछ दूरी पर उस रत्नायुध नाम के राजा का मेघ विजय नाम का हाथी बधा हुआ था । उस हाथी को मुनिराज के उपदेश मे जाति स्मरण होकर देशनालब्धि उत्पन्न हो गई । उस हाथी का महावत उस हाथी को मास मिश्रित चारा सामने रखकर खिलाने लगा तो उस हाथी ने उसको छूआ भी नही, वैसा का वैसा वह चारा पडा रहा ।।८३८।।

पिरर् मनै पिळैत्त नेंजिर् पेरियव नोरुवन् पोल ।
निरै मदं पुलरंदु नैंदु नीचनेन् सैदे नेंड्र ।।

मर मुळिदुरुवि योंबि कवळगंळ् वांगा नींग ।
वरै कळ लरसर् कोडि यरिंदव रुनंति नारे ।८३९।।

अर्थ—इस प्रकार व्रती पुरुष नीति विरुद्ध ऐसी अन्य परस्त्री के साथ भोग करके, विषयभोग भोगने के बाद मन मे पश्चाताप करके खडा होकर अपनी आत्म-निन्दा करते हुए ऐसी प्रतिज्ञा करता हो कि मैं आगामी ऐसा काय नही करूगा । उसी प्रकार वह हाथी मनुष्य के समान अपने निंद्य आचरण करने के सबध मे विचार करता है कि मैंने निंद्य तिर्यंच गति मे जन्म लिया है । वह आत्म-निंदा करते हुए तथा अब आगे मैं इस प्रकार का कोई पाप कर्म नही करूगा ऐसा निश्चय करके वह हाथी खडा रह गया । उस समय वहा महावत ने मास मिश्रित रखे हुए आहार को हाथी द्वारा न छूने पर यह सारी वाते उस महावत ने राजा रत्नायुध को जाकर कही कि वह हाथी चारा नही ले रहा है ।।८३९।।

मन्नन् वंदमच्च रोडु मरुंदरि पुलवर् तम्मै ।
येन्निदर् कुट्रदेन्न वियादि मट्रि यादु मिल्लै ।।
मिन्नुमिळुंदिलुंगुम् पूनोय् विलगल् पोनिड्रं वेळ ।
मुन्निनार् पिरप्पु नर् द दुःखु मिव्वुइट्पि नेंड्रार् ।।८४०।।

अर्थ—यह समाचार सुनकर राजा रत्नायुघ तथा मंत्री और वैद्य आदि हाथी के पास आये और वैद्य से मत्री ने कहा कि इस हाथी को कौनसा रोग हो गया ? तब वैद्य ने हाथी के रोग की चिकित्सा की । चिकित्सा के वाद वैद्य कहता है कि इस हाथी को कोई रोग नही हैं और यह दीर्घ श्वास लेता है । मेरे समझ मे इस हाथी को पूर्व जन्म का जाति स्मरण हो गया है । ऐसा इसके देखने से प्रतीत होता है ।।८४०।।

ऐयोडु वादपित्तं विकारत्तं यडैंदंदिल्लै ।
मैयलुं वैय्य दोंड्र् माट्रि दर् कुट्र विल्लै ।।
कैमलै इदन् कै यूनिर् कवळंगळ् वैत्त पोळ्दि ।
नैय्य मोंड्रिड्रि वांगि नरिंदडु पिरप्पै यें‌ड्रार् ।।८४१।।

अर्थ—वह वैद्यराज उस राजा से कहते हैं कि इस हाथी को कोई रोग नही है । और कोई विषधारी जीव ने भी इस को नही काटा है । मेरे विचार से ऐसा प्रतीत होता है कि इसको पूर्व जन्म का जाति स्मरण हो गया है यदि इसकी परीक्षा करनी है तो मास रहित भोजन देकर परीक्षा करनी चाहिये ।।८४१।।

तेनुलां तारि नानु मप्पडि शैग वेन्न ।
ऊनि लायत्तूय नल्ल कवळंग लुळयर् ।।
मानमा वांगक्कंडु मन्ननु वियदु पिन्नै ।
कारणन् मायुनिवन् ट्रन्नै कंडडि पनिदु सोन्नान् ।।८४२।।

अर्थ—तब वैद्य के वचन सुनकर रत्नायुध ने हाथी के महावत को बुलाकर आज्ञा दी कि इस हाथी को मास रहित आहार देना। तत्पश्चात् महावत ने परिशुद्ध आहार लाकर हाथी के सामने रखा। उस आहार को देखते ही तुरन्त हाथी ने खा लिया। ऐसा देखकर राजा ने आश्चर्यचकित होते हुए अपने मनोहर नाम के उद्यान मे वज्रदन्त मुनिराज के पास जाकर नमस्कार करके हाथी के सबध मे प्रश्न किया ।।८४२।।

मकर याळ् वल्लमॅद नोरुवनॅ कंड्रमट्र ।
पुगर् मुग कळिट्रिन् मन्नन् मुनिवनॅ वनंगि पिन्नॅ ।।
शिगरमाल् यानॅ कुट्र दरुळुग वेंड्रु सेप्प ।
निगरिला पोदि यार् पार् तरस नी केनयु वेंड्रान् ।।८४३।।

अर्थ—जिस प्रकार वीणा के मधुर शब्द को सुनकर मृग अधीन होता है उसी प्रकार रत्नायुध का हाल हो गया। वह वज्रदन्त मुनिराज को अत्यन्त विनय के साथ नमस्कार करके कहने लगा कि हे प्रभु! मेरा यह हाथी प्रतिदिन देने वाले मास मिश्रित आहार को न खाकर के चुपचाप खडा रहता है और मास रहित चारे को देने से वह खाने लग जाता है। इसका क्या कारण है? इस पर महातपस्वी वज्रदन्त मुनिराज अपने अवधिज्ञान के द्वारा कहने लगे कि राजन्! उसका कारण मैं विस्तार से कहता हू सुनो! ।।८४३।।

र्याट्रिद भरदत्तिन् करणत्तिन पुरत्तिन् मन्नर् ।
पेट्रि यार पेरिय मन्नन् पिरदि वद्दिर नेन्वा नाम् ।।
वेट्रि वेल् वेंदन् ट्रेवि वसुंदरी विलगेल् पोलुं ।
र्कपिनाळ् पुदलूवन् प्रीति करनें वानोरुव नानान् ।।८४४।।

अर्थ—हे राजन्! इस भरत क्षेत्र मे हस्तिनापुर नाम का नगर है। उस नगर मे प्रीतिचन्द्र नाम का राजा राज्य करता था। उनके शीलवान अति सुन्दरी नाम की पटरानी थी। इन दोनो के अति सुलक्षण और चतुर प्रीतिकर नाम का पुत्र था ।।८४४।।

चित्तिर मदि यॅबानाम् मंदिरि तुनॅवि तीन् सोल् ।
मुत्तनि मुरुवर् सॅव्वाय् कमल याम् कमलॅ योप्पाळ् ।।
वित्तग पुदल् वन् ट्रानुं विचित्र मति यॅवानां ।
मत्तमाल् कळिट्र् वेदन् मगनुक्कनड्रोरुव नानान् ।।८४५।।

अर्थ—उस प्रीतिचद्र राजा के चित्रमति नाम का मत्री था। उस मत्री के कोमल शरीर वाली सर्वगुण सम्पन्न कमला नाम की स्त्री थी। इन दोनो के विचित्रमति नाम का पुत्र था। इस प्रीतिंकर राजकुमार और विचित्रमति दोनो के घनिष्ट मित्रता थी और आनद पूर्वक समय को व्यतीत करते थे ।।८४५।।

अरुमणि यार मार्वरिरुवरु मनंग नन्नार् ।
मरुविय पुलत्तु चिंदै माशुन मन्न नीरार् ।।
दरुम नल्लुरुचि येन्नुं सादुविन् पादं सेरं्दु ।
तिरुवर मरुळ केटोर् पुलंगन् मेल् वेरुमु चेंड्रार् ।।८४६।।

अर्थ—इस प्रकार समय को व्यतीत करते हुए वे दोनो यौवनावस्था को प्राप्त हुए। कई दिनो के बाद उस हस्तिनापुर नगर के समीप के उद्यान मे धर्मरुचि नाम के मुनिराज विहार करते २ आए। मुनिराज के आगमन के समाचार सुनकर इन दोनो ने वहा जाकर भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और मुनिराज ने इन दोनो को धर्मोपदेश दिया। उन दोनो ने धर्मोपदेश सुनकर ससार के सुख को क्षणिक समझा और भोगोपभोग से विरक्त हो गये।।८४६।।

माट्रिरै सुळंट्रु मट्रिर् पुलंगन् मेल् मट्रि वट्रै ।
याट्रवुं तुरक्क माट्रिन् सुळट्रिय तगलु मागिर् ।।
काट्रि यम् मनत्तु मट्टै कडला तेळिवै याकु ।
माट्रल साल् तुरवेंड्रोदु मरु मरुंदळिक् वेंड्रार् ।।८४७।।

अर्थ—तदनन्तर वह प्रीतिकर राजकुमार और मत्री का पुत्र विचित्रमति ने मुनिराज को नमस्कार करके पूछा कि हे प्रभु! मद्यपान किया हुआ मनुष्य जैसे उसके नशे मे मनमाने आचरण करता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व कर्म के उदय से पचेन्द्रिय सुख के लिये हेयोपादेय वस्तु को न समझकर इस संसार मे यह जीव भ्रमण करता है। उस मिथ्यात्व को त्याग करके सम्यक्त्व को धारण कर जिन दीक्षा ग्रहण करके तपश्चर्या सहित ध्यान अग्नि से कर्म का क्षय करने से हेयोपादेय को जानने योग्य विशुद्ध परिणाम की प्राप्ति होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिये आप जिन दीक्षा देकर हमारा उद्धार करो। ऐसी दोनो ने प्रार्थना की ।।८४७।।

मादव नरुळि चित्ति वरुकमट्रि वर्गट्ट केन्ना ।
पोदनि कुंजि वांग पुनरं्दु मादवत्तिर् सेंड्रा ।।
रादरम् पन्नु नाम तरसिळं कुमरन् पालिन् ।
मादिरं पिल्गु नल्ल वार्तै मामुनिव नानान् ।।८४८।।

अर्थ—उस समय धर्मरुचि महाराज ने दोनो को स्वात्मलब्धि धर्मवृद्धि ऐसा आशीर्वाद दिया। और राजा तथा मत्री के पुत्रो को दीक्षा दे दी। दीक्षा ग्रहण करने के बाद यह प्रीतिकर मुनि अत्यन्त निर्मल तपश्चरण के फल से लोगो के अत्यत प्रिय हो गये। ये प्रिय क्यो हो गये थे क्योकि उनको ऋद्धि प्राप्त हो गई थी ।।८४८।।

मुनि इळ कळिरु पोल वार् मुगिळ् मुलै तडंगट् शैवाय् ।
वनिदैय रोडुं वानोर् मडंदैयर् मगिळ् माडम् ।।

विनिदइन् पुरत्तु विट्टार् वेंदिळं कुमर नाय ।
वनग मामुनिवन् पुक्का नन्नगर् शरिगें केंड्रे ॥८४९॥

अर्थ—पचेद्रिय विषय सुख से वैराग्य प्राप्त करके ये दोनो मुनि जहा स्त्री, पुरुष, पशु आदि न थे वहा नगर के समीप एक उद्यान मे जाकर विराजे । वहा ऋद्धि को प्राप्त हुए प्रीतिकर मुनिराज ने चर्या के लिये जाते समय ऐसा नियम लिया था कि मैं आहार उनके हाथ से लूगा, जो व्रती हो, कुल जाति से शुद्ध हो, सम्यक्दृष्टि श्रावक हो, भगवान जिनेद्र के प्रति पूरा श्रद्धानी हो, नवधाभक्ति सहित पुण्यपुरुष हो, ऐसे श्रावक के हाथ से आहार लूगा। ८४९॥

काट्रेदिरिड्रि मन्निर् कण्णुगत्तळवु नोकि ।
माट्रिनं येरियुं तूळ् वाळ् वाय पिडि नडप्पदे पो ॥
वेट्र नान् मीनोडेगुं पिरै मन विल्लदोरुं ।
माट्रिन् वेन् तुयरं तीर मरुंदुंवान् पोल पुक्कान् ॥८५०॥

अर्थ—इस प्रकार नियम लेकर आहार के लिये जाते समय हवा वडे जोर से चल रही थी । उस वायु के वेग को देखते हुए कोई जीव जन्तु मेरे पाव के नीचे न आ जाये व ईर्या समिति पूर्वक एक पैर छोडकर जिस प्रकार हाथो मद २ गति से जाता है या कोई तीक्ष्ण तलवार की धार पर चलता हो, उसीके समान वे मुनि अत्यन्त धीरे २ सावधानी से आहार के लिए जा रहे थे वे किस प्रकार जा रहे थे ? आचार्य कहते हैं कि इस प्रकार वह मुनिराज उस रास्ते मे श्रावको के घर देखते २ चले जा रहे थे जैसे व्याधिग्रस्त मनुष्य दवा लेने के लिये राजवैद्य का घर तलाश कर रहा हो, उसी प्रकार उच्च वश, नवधा भक्ति सहित सम्यक्-दृष्टि आहार देने वाले को ढूढ रहे थे । यह आहार देना औषधि के समान है। यदि कोई सम्यक्दृष्टि धर्मात्मा व्रती कोई आहार दे देवे तो मैं उसी श्रावक के घर आहार लूगा । ऐसा विचार करते २ श्रावको के घर के बाहर से जा रहे थे ॥८५०॥

आइडै कडिगै वुध्दिशैने तन्नगत्तै शार्द ।
माय मिरवत्ति नानै वंदेदिर कोळ्ळ मट्र ॥
वेयन तिरंड तोळाळ् विळुमिय दानं शैय्यर् ।
केयु नर्कुलत्तु तोंड्र केदु वेन् निरंव वेंड्राळ् ॥८५१॥

अर्थ–इस प्रकार प्रीतिकर मुनिराज ने गली २ मे चर्या के लिये जाते समय देखा कि वह एक घर बुद्धिसेना नाम की वेश्या का था । उसके घर के सामने से जाते समय उसने उस मुनि को देखकर उनके मामने हाथ फैलाकर उनको रोक लिया और वह वेश्या प्रार्थना करने लगी कि हे प्रभु ! मुनि आदि सत्पात्रो को दान देने के लिये हमको कौनसा आचरण व्रत धारण करना चाहिये ॥८५१ ।

तन्नै निंदित्तल् तक्कोर् पळिच्चुदल् दया वोडोंड्रि ।
इन्नुयिर करुळै ईदल् पुलै सुतेन कळ्ळिन् मीडु ॥

मन्निय गुणत्ति निट्रल् माय निन् मनत्त रादल् ।
पन्नरु कुलत्तै पण्णं पान् मैक्कु निमित्त मेंड्रान् ।।८५२।।

अर्थ—तब मुनिराज मौन छोडकर बुद्धिसेना वेश्या को उपदेश देने लगे कि देवी ! सबसे पहले मुनिराज को आहार देने के लिये उत्तम कुल मे जन्म लेना पडता है । सत्य और असत्य का निर्णय करना पडता है । पाप के द्वारा उपाजन किया हुआ कर्म और पाप को मैंने विना जाने अज्ञान से किया है । इस कारण पाप कर्म के उदय से निंद्य पर्याय धारण की है । यदि तुम्हारी वेश्या वृत्ति रूपी पाप छोडने का विचार हो जाय तो सच्चे गुरु के पास जाकर आत्म-शुद्धि का प्रायश्चित्त लेना चाहिये । पच परमेष्ठी का स्तोत्र पाठ आदि भक्ति सहित करना चाहिये । मद्य, मास, मधु का त्याग कर देना चाहिये । सम्यक्दर्शन पूर्वक भगवान जिनेंद्र द्वारा कहे हुए आगम को पढना चाहिये और मायाचार से रहित होकर चारित्र का पालन करना चाहिये । इस प्रकार पालन करना यह उच्च कुल का कारण है ।।८५२।।

अरुतंवनुरैत्त विन् सोलर वमिर् दार मांडि ।
तिरुंदिय गुणत्ति नाळु पुलैसुत्तेन कळि्ळ नोगि ।।
पोरुंदुव शील मट्रु मादुव पनिंदु कोडाळ् ।
तिरिदु पोइमुनिवन कानिन् विचित्र मदियं शेरंदान् ।।८५३।।

अर्थ—इस प्रकार प्रीतिकर मुनिराज ने उस बुद्धिसेना वेश्या को उपदेश दिया । उस वेश्या ने यह उपदेश सुनकर प्रण किया कि आज से मैं मधु मास, मद्य सेवन नही करूंगी, पापाचरण नही करूगी । शीलव्रत धारण करूंगी । इस प्रकार उस प्रीतिकर मुनि के पास उस वेश्या ने प्रतिज्ञा ली । उस दिन मुनिराज मौन धारण करने के वाद वन मे जहा विचित्रमति मुनिराज थे वहां वापस लौटकर आ गये ।।८५३।।

विचित्र मतियुं वीर विळित्त देन् कोलेन्न ।
पवित्तिर मुनियुं पइंबोर् कण्गे यार् पट्ट वेल्लाम् ।।
विरित्तुड नुरैप्प केट्टु वियंदु वै तुइत्तु वेटकै ।
मुरुत्तेळ विरुक्कै नाम मुरुव मुम् तेरिय केट्टान् ।।८५४।।

अर्थ—उस उद्यान मे विराजित विचित्रमति मुनिराज ने प्रीतिकर मुनिराज से पूछा कि हे वीर्याचार को निरतिचार पालन करने वाले मुनिराज आहार लेकर आने मे आपको इतनी देर किस प्रकार हो गई । वे प्रीतिकर मुनि कहने लगे, हे विचित्रमति मुनो ! आहार के लिये जाते समय गली मे एक वेश्या बुद्धिसेना का घर था । उसके घर के सामने से जिस समय मैं निकला तो उस वेश्या ने मुझे रोक लिया । वह वेश्या अनेक आभूपणों को पहने हुए तथा सब प्रकार के शृंगार से सजी हुई थी । उसने मुझसे कई प्रश्न पूछे और मैंने उनका धर्मोपदेश के रूप मे आगमानुसार उत्तर दिया । उसने उपदेश मुनकर पाचो पापों का त्यागकर, पाच अणुव्रत ग्रहण किये । इस प्रकार विचित्रमति मुनि को वह प्रीतिकर कह रहे थे । विचित्रमति के

विचारो मे विकार की उत्पत्ति हो गई। अत. विचित्रमति पूछते हैं कि उस वेश्या के हाव भाव शृंगार कैसा है? कैसी उसकी सुन्दरता है? ।।८५४।।

विनैईन् देळुच्चिच तन्नाल् वेदनै वसत्तनागि ।
मुनि यवन् ट्रनियनागि पारनैवकेंड्र् पोनान् ।।
ट्रन दिडं कुरुग कंड तैयला ळुवंदु शाल ।
विनयंत्ति केटाल् विरडत्तिन् फलनै यड्रे ।।८५५।।

अर्थ—क्योकि बाल अवस्था से जिनको ससार से विरक्तपना हो गया था और पचेन्द्रिय विषय भोगो से लालसा हट चुकी थी। बचपन से ही जिन्होने घोर तपस्या की थी। परन्तु कर्मगति बलवान है। ससार चक्र मे कब कौन कैसे फस जावे, कहा नही जा सकता। उसी प्रकार विचित्रमति मुनिराज ने हाव भाव शृंगार आदि सारे वेश्या के जान लिये। और मायाचार से उस विचित्रमति ने प्रीतिंकर मुनि से कहा कि मै आहार के लिये नगर मे जा रहा हूँ। वह मुनि अयोध्या नगरी मे आकर जिस गली मे वह बुद्धिसेना वेश्या रहती थी उसी के घर के बाहर होकर चर्या के लिये जाने लगे। उन मुनिराज को देखकर उस वेश्या ने नमस्कार किया और प्रार्थना की कि कल जो मुनिराज पधारे थे उनमे जो मैंने पचाणुव्रत ले लिये हैं। उन व्रतो से मुझे कौन से फल की प्राप्ति होगी। ८५५।।

मोग रागत्त वाय कदै गळै मुनिवन् सोल्ल ।
भोग रागत्त वार्तै पुदियनु मुनिव नेंड्र् ।।
नाग रागत्तिर् केट्टार् कदैगळै नविट्र पिन्नुं ।
वेग रागत्तनाग मेल्लि येल वेरुप्प सोन्नाळ् ।।८५६।।
येलुंबु तोलिरुळ् वेन्नं सून् कुडर् मलं कन् मूळै ।
कळद नैत्तोर् नरंबु वळुप्पि वैरु कंडाल् ।।
विलगि सेंर्रलिड्रि वेरुत्तुमिळं दु वर्तु पोवार् ।
कलदिवै किडंद कुप्पै कडु कामुरव देन्नो ।।८५७।।

अर्थ—वह वेश्या कहने लगी कि हे मुनिराज ! यह शरीर मास रक्त से युक्त है। इस में तिल भर भी सार नही है। इसलिए ऐसे निंद्य शरीर पर आप मोह मत करो और ऐसे मोह का त्याग करो। तीन लोक मे प्राप्त होने वाले मनुष्य जन्म को पाकर उत्तम कुल में जन्म लेकर सयम धारण किया है। ऐसे सयम को त्यागकर अधोगति को ले जाने वाले गदे विचार अथवा पाप विचार जो आपने किया है यह आपके लिये दुखदायक है। ऐसे विचारो का त्याग करो। क्योकि किसी कवि ने कहा है—

नारी सग यौवन गया, द्रव्य गया मद पान ।
प्राण गये कुसग में, तीनो गये निदान ।।

शीश सफल सतन नमै, हाथ सफल प्रभुसेव।
पाद सफल सतसगतै तब पावे कुछ भेव ॥
सत संगति में मति बढे ज्यों बौझे से घास।
रज्जब कुसंग न बैठिये, होय बुद्धि का नाश ॥

नारी की संगति करने से यौवन का नाश होता है, मद्य पान करने से द्रव्य नष्ट होता है, कुसगत से प्राणो का नाश होता है, इस प्रकार इन तीनो का नाश होता है। मस्तक की सफलताा साधुओ के नमस्कार करने मे है। प्रभु की सेवा करने मे हाथो की सफलता है। गुणीजनो की सगति से पैर सफल होते हैं और तभी कुछ भेद पा सकता है। अच्छे आदमियो की सगति करने से बुद्धि इस प्रकार वढती है जैसे घास का बोझा होता है, और कुसग मे बैठने से बुद्धि का नाश होता है।

इसी प्रकार मनुष्य को सत्सगति न मिलकर कुसगत मिलने से बुद्धि नष्ट हो जाती है॥८५६॥८५७॥

उनर् वोड्डु वार्तै पार्तलुवत्तलु मुनिवुं कामत्।
तुनै वै तुडरं्दु निड्राल तूयवे यागु मंड्रि ॥
पिनमिडु पिनतै सेरं्दाल् पिळैत्त देन् पेरिय विब।
मनै युमे लेन्न शाल सुळित्तवळ् वेरुत्तु पोनाळ् ॥८५८॥

अर्थ—इस काम विकार को उत्पन्न करने के लिये स्त्री पुरुप को विकार से देखना, विकार भाव की तथा खोटी अश्लील वाते करना ये सब काम भोग के कारण होते हैं। प्रेम की वाते परस्पर मे काम भोग के लिये कारण होती है। स्त्रियो के काम वासना न होने पर भी बलात्कार करने पर वह प्रेम के साथ सेवन करने के समान उत्सुक होती हैं। इस प्रकार उन मुनिराज को उस वेश्या ने वैराग्य पूर्वक वाते कह कर विकार भाव दूर करने की कोशिश की। तव वह मुनिराज कहने लगे कि यदि मुर्दे के साथ भी विषयभोग किया जावे तो अधिक आनन्द आता है। ऐसा सुनकर तुरन्त ही उस वेश्या ने अपना मुह दूसरी तरफ मोड लिया। ॥८५८॥

मालै शांदेन्नै सुन्नं मंजन वान कलिंगम् वेरा।
शाल नाळिरुक्कि नुंदम् गुणं सेव्वि येळिदिडावा ॥
मूनुला मुडंवै सेरं्दा लोरु कनत्तळियुं वण्णुम्।
वानलाम् वनंगुम् सील मायद लेन्नादु सोन्नान् ॥८५९॥

अर्थ—पुष्पहार, चन्दन, अच्छे सुगधित द्रव्य, अनेक प्रकार के सुगन्धित चूर्ण, रेशमी वहुमूल्य वस्त्र एक स्थान पर रहने से इसका नाश नही होता है। और वही वस्तु शरीर का स्पर्श होते ही एक क्षण मे नाशमान हो जाती है। इन सभी विषयो को वेश्या के समझाने पर भी उन मुनिराज ने अपने महाव्रत धारण किए भेप को छोड दिया। तत्पश्चात् उस वेश्या

को कहने लगे कि हम दोनो परस्पर स्पर्श करे। ऐसा कहकर वे अयोग्य बाते उस वेश्या से कहने लगे। इस सबध मे एक कवि क्षत्र चूडामणि मे कहता है —

विषयासक्तचित्ताना, गुणः को वा न नश्यति ।
न वैदुष्य न मानुष्यं, नाभिजात्यं न सत्यवाक् ॥

जो मनुष्य विषयभोग मे आसक्त हो जाता है उसके सभी गुणो की इतिश्री हो जाती है अर्थात् ऐसे मनुष्यो मे विद्वत्ता, मनुष्यता, कुलीनता और सत्यता आदि एक गुण भी नही रहता।

"परारावधनजात् दैन्यात्, पैशून्यात् परिवादतः ।
पराभवात् किमन्येभ्यो, न विभेति हि कामुकः ॥

जो प्राणी विषयभोगो मे आसक्त हो जाता है उसके कारण वह अपनी दीनता, चुगली, बदनामी, अपमान आदि की पर्वाह नही करता।

पाकं त्याग विवेक च, वैभव मानितापि च ।
कामार्ता. खलु मुञ्चन्ति, किमन्यैः स्वञ्च जीवितम् ॥

कामासक्त प्राणी भोजत, दान,विवेक, धन, दौलत और बडप्पन आदि का जरा भी विचार नही करते, और औरो की बात क्या ? भोग विलास के पीछे वे अपनी जान पर भी पानी फेर देते है। ८५९॥

मोगत्ताल् मुडँ युडविन् नाट्रत्तै मुनिदर्लिड्रि ।
भोगत्ताल् कळुमि निकुँ पुल्लरि वाळरागुं ॥
शेगर् कामुडँ युडंवै शेर्दन् मट्रोंड्र्‌ु मेंड्रिट् ।
तागत्ता निनैक्क माटा तरुदवत् तिळिदु निड्रान् ॥८६०॥

अर्थ—मोहनीय कर्म के उदय से इस अशुचिमय शरीर को देखकर आसक्त होना इस का निराकरण न करते हुए इस शरीर की काम वासना मे लवलीन होना यह अज्ञानी मूर्ख जीवो को ही प्रिय है। परन्तु ज्ञानी जीव इसके प्रति घृणा करते है। बडे २ चक्रवर्ती तीर्थंकर मुख मोडकर इस अशुचिमय शरीर के द्वारा मोह छोडकर मोक्ष की प्राप्ति करते है। परन्तु अज्ञानी जीव मोह की तीव्रता, पचेंद्रिय विषय वासना का गाढ प्रेम होने के कारण इसी मे सुख शाति समझकर छोडना नही चाहता है। इसी प्रकार इस मुनि की दशा है। यह चारित्र मोहनीय कर्म का उदय ही यह कार्य कर रहा है। मास भक्षी जीव भक्षण करने योग्य इस निंद्य शरीर (मास) मे सुख समझने वाले ऐसे पापी जीव मोहाध जीव बार २ निद्य ग त मे ले जाने की भावना करते है। इस प्रकार वह विचित्रमति मुनि अपने महाव्रत से च्युत हो गये। ॥८६०॥

पुळु कुलं पोदिद याकं पुगिद नेन पोरुंदिनेन् मुन् ।
नळु कुडंबिदन् कट्चंद्र वार् वत्ता लेंड्र् तन्नै ।।
इळित्तिडा दळुक्कु चोरु पुळुक्कुल दिच्चै तन्नाल् ।
वळुविक नान् माट्रं याट्र केडुक्कु मातवत्तिन् मादो ।।८६१।।

अर्थ—कृमि, कीटो से भरे हुए इस दुर्गंधमय शरीर के सम्पर्क से अपवित्र हुआ यह आत्मा अनादि काल से इस शरीर के मोह से ही आज तक संसार मे दुख का अनुभव करता आ रहा है। ऐसी अपने मन मे भावना न करके अनेक निंद्य और दुर्गंध युक्त मलो से भरे हुए शरीर पर मोहित होकर तपश्चरण से वह मुनि पतित हो गया ।।८६१।।

पोरि पुळत्तेळुंद भोगदासयै पोगविट्टु ।
वेरुत्तेळु मनत्तरागि वींटिंवय् विळयु मंड्रि ।।
मरुत्तेदि राग सेल्लिन् माट्रिडै सुळल्व रेन्नुं ।
तिरत्तिनै निनैत लिल्लान् शीलत्ति निळिदु सेड्रान् ।।८६२।।

अर्थ—यह मानव प्राणी पचेन्द्रिय भोग सम्बन्धी रागद्वेष को त्यागकर शुद्धात्म स्वरूप मे एकाग्रमन से शाति से मोक्ष की प्राप्तिकर लेता है। इस प्रकार न होने से इसके विरुद्ध विषयभोगो मे राग करने वाला होता है। इस प्रकार भगवान के मुख से निकला हुआ श्रुतज्ञान व आगम को वह मुनि अनुभव न करके अपने धारण किये हुए शीलगुण तथा तपश्चरण से च्युत होकर विषयभोग में मोहित हो गया ।।८६२।।

उंडु नाम विट्ट वल्ला उरु विल्लै युलगत्तिन् कन् ।
वडुलाम् कूंदलागि मासेलां तिरडं दंड्रि ।।
कंड दोडिल्लै कामं कन्नि नै पुदेत्त काल ।
तुंडु नाम् विट्ट वासै युवट्टु मेंड्रु नवि ळादान् ।।८६३।।

अर्थ—ज्ञान,दर्शन,चेतना स्वरूप मेरा आत्मा है। इसका अनुभव न करते हुए आत्मा से भिन्न पचेंद्रिय विषय मेरा है, यह जड पुद्गल से युक्त शरीर ही मेरा है, ऐसी भावना करके इस ससार मे अनेक प्रकार के दुख का भोगने वाला कारण हो गया। इस शरीर के सबध मे भली भाति विचार करके देखा जाय तो अनेक प्रकार की कृमि कीटो का स्थान इन स्त्रियो का शरीर अत्यन्त निंद्य है। ऐसा विचार करके यह मूढ जीव अपने सच्चे स्वरूप की पहचान न होने के कारण दुर्गंध से भरे हुए शरीर के मोह से अधोगति मे पडकर अनेक दुख से भरा हुआ ससार समुद्र मे भ्रमण करता है। यह चारित्र मोहनीय कर्म की विचित्रता है। चारित्र मोहनीय कर्म के तीव्र उदय से वह विचित्रमति मुनि कामांध होकर पशु के समान हिताहित का विचार न करके अपने पद से च्युत हो गया ।।८६३।।

विलैविला वास मालै दूमताल् वेयंद कूंदर् ।
ट्रलै ईनिन् ट्रिळिद काळै तान् ट्र ुरंदिट्टदे पोल् ।।
मलै यन तवत्तु वेंड कंडुमुन् वनगि मांड ।
निलै निन् ट्रिळिय पिन्नै नेरिळे इगळं दिट्टाळे ।।८६४।।

अर्थ—अत्यन्त सुगधित फूलो को स्त्रियो के माथे पर धारण करने से वे पुष्प एकदम दुर्गंधित होकर मुरझा जाते हैं और मुरझा जाने पर वे स्त्रिया उनको फेंक देती हैं। और एक बार फेंक देने पर कोई उसको ग्रहण करने की इच्छा नही करता है। उसी प्रकार बुद्धिसेना नाम की वेश्या ने मुनि को घर के बाहर देखकर नमस्कार किया था। जब इनके मन मे सम्यक्ज्ञान का अभाव देखा और यह देखा कि यह मुनि पद से च्युत हो गये हैं तो अपने मन मे उस वेश्या ने ऐसा विचार करके उन मुनिराज को धिक्कारा ।।८६४।।

पुगळ् वरंबाये बुध्दि शेनै यान् तोगै तन्नै ।
इगळवन् केळुंद कोवत् त्रिसैद सोगत्तोडेगि ।।
तगै नेंडुं कुळलि नाळै शारला मपायं तेडि ।
यगनग रेंडुं पुक्का नाव दोड्रिलामे काना ।।८६५।।

अर्थ—तत्पश्चात् वहाँ विचित्रमति मुनि, उस वेश्या के द्वारा की जाने वाली निंदा को देखकर मन मे बुराई का विचार ठान लिया कि इस वेश्या के साथ विषयभोग करने का उपाय सोचना चाहिये और वह इधर उधर भटकने लगा ।।८६५।।

कडैयन पुरत्तु वेंदन् गंधमित्तिर नेंवाना ।
मुडल् सुवै तुंडु शेल्वा नुवप्प दोर् पडियि नूर्नै ।।
मडैयनाय् समैत्तु काटि मट्रंद मन्ननालत् ।
तुडि यिडै बुध्दि शेनै तन्नग टुन्नि नाने ।।८६६।।

अर्थ—वह मास भक्षण लोलुपी एक गधमित्र नाम का राजा था। हेय उपादेय के विचार से शून्य हुआ वह विचित्रमति मुनि मन मे विचार करता है कि इसी राजा के द्वारा मेरी इच्छा पूरी हो सकती है। इस कारण इस राजा को अपनी ओर आकर्पित कर लेना चाहिये। ऐसा विचार करके वह राजमहल मे पहुँचा। और उनके रसोइया के साथ मिलकर वह मुनि अत्यन्त मधुर स्वादिष्ट मास को लाकर उसको देने लगा। तब वह राजा रुचिकर मास लाने वाले उस मुनि पर अति प्रेम करने लगा। वह राजा उस पर प्रसन्न होकर कहने लगा कि तुम इस मास लाने के बदले मे कुछ इनाम मागो,तुम्हारी इच्छा की मैं पूर्ति करूगा। यह सुनकर वह मुनि कहने लगा कि तुम्हारे नगर मे जो बुद्धिसेना नाम की वेश्या है, उससे मेरी विषयभोग करने की इच्छा है। आप उसको पूरा कीजिये। ऐसा सुनते ही राजा ने तुरन्त उस बुद्धिसेना वेश्या को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम इस विचित्रमति के साथ विषयभोग करो। तब राजा की आज्ञा मानकर वह वेश्या उस मुनि को अपने घर ले गई ।।८६६।।

मौवलं कुळलीक्काग मयंगि मादवत्तै विट्टु न्।
सेव्वि यैं काटि तोट्ट सेरिंदिट्ट पांव तन्नाल् ।।
श्रौ उडल् विट्टु वदवौ वळिय निव्वाणै याना।
निव्वनत्ति यांड्रि लोग पर्चत्ति इयंबल् केळा ।।८६७।।

अर्थ–सुन्दर रूप से युक्त उस वेश्या के साथ मुनि ने अपने पद से च्युत होकर विषय भोग करते हुए तथा मास भक्षण करते हुए कुछ समय बाद ही आर्तध्यान से मरकर हाथी की पर्याय मे जन्म लिया ।।८६७।।

श्रप्पिर परिंदु नोंदिट्टवल मुट्रळुंदि इंड्रु ।
मै पड उनरु तोंड्र विरद शोलत्त दाय।।
दिप्पडित्ति दंड्रन शंगै येंदिळ मुलै नादं।।
तुप्पुरळ् तोंडै सेव्वाय पयनिदु सोल्लि निंड्रान् ।।८६८।।

अर्थ—इस प्रकार वह हाथी अपनी इस पर्याय में पूर्व जन्म मे किये हुए पाप के उदय से स्मरण कर आत्मा मे ग्लानि कर रहा है। और ग्लानि होने को अपने निंद्य मांस मिश्रित भोजन को न खाकर चुपचाप खडा हुआ है। यह पूर्वजन्म मे वेश्या के साथ मोहित होने के कारण मद्य सेवन करके दुर्ध्यान से मरकर हाथी हुआ है। ऐसा मुनि वज्रायुध ने कहा। ।।८६८।।

विरितिरै वेलिन्नाल कावलर् विळुम वेन्नो ।
येरि पुरै नरगत्तंड्रि वीळ् दिडार् तुंव वेळ्ळ ।।
तिरै पोरु कडलै नींगि तुरंदुडन् सेरिंदु नोर् पिन् ।
वरुमेदिर् कोळ्ळ वीडुं वानड रुलगु मन्न् ।।८६९।।

अर्थ—पुन वह मुनिराज कहते हैं कि हे राजा रत्नायुध ! यह जीव अपने आत्म-स्वरूप को भली भाति न जानने के कारण पचेन्द्रिय विषय मे लीन होकर अन्त समय में विषय कषायो के तीव्र परिणामो से मरकर अग्नि के समान रहने वाले घोर नरक कुन्ड मे जाकर अनेक दुखों को भोगता है। इससे देवगति व मनुष्य गति प्राप्त नही कर सकता है। इसलिये हे राजन् ! जन्म मरण रूप संसार को त्यागकर मन: पूर्वक प्राणिसंयम और इन्द्रिय सयम धारण कर बारह प्रकार के तप आदि करने से ही देव पद व मोक्ष पद की प्राप्ति इस प्राणी को हो सकती है।।८६९।।

विलै ला मनियै विट्टु कासेत्तै मेव लंड्रि।
तलैव नाळ् तायै विट्टु तन्नडि याळै योंवल् ।।
निलैइला भोग मेवि निंड्रु नल्लरत्तै नींग ।
लिलै कुला मकर पंवुं नेंदु तोळ् वेंद वेंड्रान् ।।८७०।।

अर्थ—हे अत्यन्त सुन्दर नवरत्न आभूषणो से सुशोभित राजा रत्नायुध ! इस ससार मे शाश्वत रहित पचेन्द्रिय सुख को भोगते हुए अत्यन्त श्रेष्ठ आत्म स्वरूप को भूल जाना ऐसा है जैसे एक मनुष्य अपने हाथ मे रखे हुए रत्न का मूल्य न जानकर एक कौवे को उडाने के लिये वह रत्न फेंक देता है। उसी प्रकार मनुष्य जन्म को गवा देता है।

भावार्थ—इस सबध मे शुभ चद्राचार्य ने अपने ज्ञानार्णव ग्रथ मे श्लोक १२ मे कहा है।

"अत्यन्त दुर्लभेष्वेषु दैवाल्लब्धेष्वपि क्वचित् ।
प्रमादात्प्रच्यवतेऽत्र केचित् कामार्थलालसाः ॥
सुप्राप्य न पुनः पुंसा बोधिरत्न भवार्णवे ।
हस्ताद् भ्रष्ट यथा रत्न महामूल्य महार्णवे ॥

मानव जन्म, उत्तम कुल, दीर्घ आयु, इन्द्रियो की पूर्णता, बुद्धि की प्रबलता, साताकारी सबध यह सब अत्यन्त दुर्लभ है। पुण्ययोग से इनको पाकर भी जो कोई प्रमाद मे फस जाते हैं व द्रव्य के और काम भोगो के लालसावान हो जाते है वे रत्नत्रय मार्ग से भ्रष्ट रहते है। इस ससार रूपी समुद्र मे रत्नत्रय का मिलना मानवो को सुगमता से नही होता है। यदि कदाचित् अवसर आ जावे तो रत्नत्रय धर्म को प्राप्त करके रक्षित रखना चाहिये। यदि सम्हाल न की तो जैसे महा समुद्र मे हाथ से गिरे हुए रत्न का मिलना फिर कठिन है उसी तरह फिर रत्नत्रय का मिलना दुर्लभ है ॥८७०॥

कडलन् तोंड्रु नीलक्कानलै नीरेंड्रोडि ।
युड लिळंदुळै पोल उरुदि योंड्रोंवं दिंड्रि ॥
इडरिनैईनु मिन्ना पइल् पुलत्ति वोर चंड्रेन् ।
पडुतुयर् नरगं लन्निर् पदैप्पनो वडिगळेंड्रान् ॥८७१॥

अर्थ—राजा रत्नायुध इन सब बातो को मुनिराज से सुनकर जैसे हरिण अपने मे बलवान व्याघ्र को देखकर चौंकता है, उसी प्रकार चौंक कर जैसे हरिण गर्मी से तापकर इधर उधर भटकता है उसी प्रकार राजा रत्नायुध अपने मन मे ससार सबधी विपयो से अत्यत विरक्त होकर विचार करने लगा कि आज तक मैंने अपने पास रहने वाले आत्म-सुख को न समझते हुए मिथ्या ताप ऐसे क्षणिक इन्द्रिय सुख मे मोहित होकर ससार मे भ्रमण किया। इस प्रकार मन मे पश्चाताप करते हुए मुनिराज के चरणो मे पडकर प्रार्थना करने लगा कि हे भगवन् ! मैंने पचेद्रिय सुखो को ही शाश्वत सुख समझा इससे मेरी आत्मा मलिन व दुखी हो गई है। सुख क्षण मात्र भी नही मिला है ॥८७१॥

येरि इडै पदंगम् पोंड्रु मिळ पिडि कळिरु मोंड्रुम् ।
करिमद दळियै पोड्रुम् कानत्ति नमुनं पोंड्रुम् ॥
विरगिनार् ट्रुडिर् पोन्नै विळुंगि मीनै पोड्रुम् ।
तेरिविड्रि नुगर्द वेल्लाम् तीर यान् ट्रुरप्प नेंड्रान् ॥८७२॥

अर्थ—पुन. रत्नायुध राजा कहने लगा कि हे प्रभु ! जिस प्रकार पतग दीपक मे मग्न होकर अपना प्राण गवा देता है, हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के अधीन होकर तथा मछली रसना इन्द्रिय के अधीन होकर मर जाती है, भौरा घ्राण इन्द्रिय के वश होकर प्राण खो देता है, हरिण कर्णेन्द्रिय के विषय के अधीन होकर अपने प्राण खो देता है। इस प्रकार जब जीव एक २ इन्द्रिय भोगो के अधीन होकर अपने प्राण खो देते है, तब जो मनुष्य पचेन्द्रिय विषयो को भोगता है उसकी क्या हालत होगी। इसलिये हे प्रभु ! पचेद्रिय सुखो के लिये जो पाप कार्य नही करते थे वे मैने किए। मै अब महान दुखी हू। मेरी आत्मा महान कष्ट भोग रही है। अब इस ससार मे परिभ्रमण न करू, इस कारण जिन दीक्षा धारण करने की उत्कठा मेरे मन मे जागृत हो गई है। आप मेरे पर अनुगृहीत होकर मुझे दिगम्बरी जिन दीक्षा देवे। ऐसे मुनि के चरणो मे पडकर प्रार्थना की ॥८७२॥

विनै पयन् ट्रेन्नै वेंगै मुन विडैपोल वंजि।
शिनक्कळिर् ट्रुळवन् शेंवोन् मुडियिनै मगनुक्किका दिट् ॥
तिनत्तिडैं नीगि पोगु मारेन वेंदु कोंगं।
मिनर् कोडि कुळात्तु नीगि मीळंदु पोय् वनं पुक्काने॥८७३॥

अर्थ—मुनिराज ने जिनदीक्षा की सम्मति दे दी। तब वह रत्नायुध अपने नगर मे आता है और अपने पुत्र को बुलाकर उसका राज्याभिषेक कर देता है। और पीजरे मे बन्द पक्षी जैसे पीजरा खुलते ही तुरन्त उड जाता है उसी प्रकार वह रत्नायुध मुनिराज के चरणो मे आ गया ॥८७३॥

इडै परादेट्र कालत्तीयु मोर् मुगिलै पोलुं।
वडित्तुडै तडक्कै वेंदन् वज्र दतन् पादम् ॥
मुडियुर वनंगि मुवार् तोळ् देळ् वडिवं कोंडा।
निडि मुरसदिरंद येंगु मेत्तोलि परंद दंड्रे ॥८७४॥

अर्थ—वह रत्नायुध वज्रदन्त मुनि के चरणो मे दोनो हाथ कमलो की कली के समान जोडकर विनीत भाव से नमस्कार करके प्रार्थना करता है कि हे स्वामी ! तीन लोक मे सम्पूर्ण जीवो के लिये पूज्य ऐसी योग्य जिन दीक्षा ग्रहण करने की मेरी इच्छा हो गई है। वह दीक्षा मुझे प्रदान करे। मुनिराज ने प्रार्थना सुनकर तथाऽस्तु कहा और जिन दीक्षा की स्वीकृति दे दी। दीक्षा लेने के समय अनेक प्रकार के मगलाचरण बाजे आदि बजने लगे। ॥८७४॥

घरैनै इरुंवकु वज्रायुधं ट्रुरंद वन्ना।
लरदम मालै मैंदन् कादला लगत्ति रुंदा ॥
ळुरंद्द नुक्करिय वन्नुं भगनोट्टुं तुरंदिट्टुळ्ळं।
पुरैयला नीगि निट्रु पुगंलं वरुंद नोट्रान् ॥८७५॥

अर्थ—जिस समय रत्नायुध की दीक्षा हो रही थी उस समय उसकी माता रत्न-माला जो राजमहल मे बैठी थी तुरन्त ही उसने भी मुनिराज से दीक्षा ग्रहण करली और उसने अनेक प्रकार के व्रत उपवास करके अपने शरीर को कृश कर दिया ।।८७५।।

कच्चनि मुलै नार् पार् कादल् पोट्रवत्तिन् कण्णुं ।
मेच्चिय मनत्तनागि वेइलिनै यादि योगिन् ।।
पच्चुदि इंड्रि निड्रु कालंगळ् पलवु नोट्रिर् ।
तच्चुद कर्पं पुक्का नरदन मालै योडुं ।।८७६।।

अर्थ—तत्पश्चात् रत्नायुध जैसे राजमहल मे रहते समय पचेद्रिय विषयो मे आनद भोगता था उससे भी अधिक आनद दीक्षा लेने पर तपश्चर्या करते समय भोगता था। और निरतिचार पूर्वक तपश्चरण करते हुए अन्त समय मे सल्लेखना विधि से रत्नायुध मुनि और उनकी माता रत्नमाला दोनो ने सन्यास विधि से शरीर छोड करके दोनो अच्युत नामक कल्प मे देवपद को प्राप्त किया ।८७६।।

इरुवत्तीराळि कालत्तिरुवत्ति रायिरत्तान् ।
डोरुवित्तान् ममुद मुन्ना वुंवरिन् पत्तं युट्रार् ।।
मरुवित्तान् योगि निड्रान् वज्जरायुधनु पिन्नै ।
नरगत्ताळ्डंरविन् शें गै नविट्रु वन् नरगर् कोवे ।।८७७।।

अर्थ—आदित्य देव कहने लगा कि हे धरणेद्र सुनो! इस प्रकार अच्युत कल्प को प्राप्त हुए वे दोनो जीव बाईस सागर आयु से युक्त और बाईस हजार वर्ष मे एक बार मानसिक आहार लेने वाले हो गये। इस प्रकार वे देवगति के सुख को अच्छी तरह से अनुभव करने लगे। इधर वे वज्रायुध मुनि आत्म योग मे लवलीन थे। अब पीछे कहे हुए नरक मे रहने वाले सर्प के जीव के विषय मे कहूगा। उसको लक्ष्य पूर्वक सुनो ।।८७७।।

परुमित्त कडल्गळ् पंक प्रयैर् पत्तुं पेट्रु ।
नरगत्ति नरिदिर् पोंदु नाळ् वगै याळि कालं ।।
तिरत्तावरतीर् सेंड्रु तीयवान् तुयर मुट्रु ।
भरदत्तिर् कच्चै येन्नुं पुरत्तिन् वेड नानान् ।।८७८।।

अर्थ—उस सर्प का जीव पकप्रभा नाम के चौथे नरक मे उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की आयु का अनुभव कर वहा से आयु पूर्ण कर त्रस स्थावर पर्याय मे जन्म लिया। और वहां अनेक दुखो का अनुभव करने के बाद इस भरतक्षेत्र सबधी एक देहात मे भील होकर उत्पन्न हुआ ।।८७ ।।

तारुण किरण नेन्नुं वेडन् ट्रन् मनैविताळद ।
वारिनै यनैयक कोगै मंगि तन् सिरुवन् मिक्क ।।

तारुण नागि तोंड्रि तलैला ताळतुंडम् ।
कूरेरि कवरंद दुप्पान् कोडुमयार् कनवि योप्पान् ।।८७६।।

अर्थ—उस भील का नाम तारण किरण था। उसकी स्त्री का नाम मगी था। उन दोनो के अतिसार नाम का पुत्र हुआ। उस पुत्र का शरीर अत्यन्त काला था। वह सदैव दुष्ट कार्य किया करता था ।।८७६।।

पावंता नुरुवन् कोडै वुइरेयुं पडुक् वेंडि ।
चापं शेंज चरंगळेंदि तिरिंगिड्र तनैयान् वंदु ।।
कोबंता नादि युळ्ळान् कोलै इला नंदत्तोडुं ।
वेपंता नुइर् गट् काकि विलगन् मेलेरि नाने ।।८८०।।

अर्थ—वह अतिसार क्रम से वढते२ यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ। वह अत्यन्त क्रूर व दुष्ट स्वभाव का हो गया था। वह निरपराधी प्राणियो की हिंसा किया करता था। अनन्तानुबंधी क्रोध से युक्त था। ऐसा वह भील हिंसानन्द मे आनन्द मानने वाला था। एक दिन हिसा करते २ वह उसी पहाड पर चला गया ।।८८०।।

वरैनिशै योगि निड्र वज्रायुद नै काना ।
वेरियन विळित्तु वेरत्तेळुंद दोर् कोवति याल् ।।
वरै नै मुरुवकु वान् पोर् कनत्तिडै वंदु कूडि ।
तेरिविलान् सैदि तीयै शेप्पुदर् करिय दोंड्रे ।।८८१।।

अर्थ—उस पर्वत पर जाने के वाद पर्वत की चोटी पर प्रतिमायोग मे स्थिर उन वज्रायुध मुनि को देखते ही उस भील ने उनके पास जाकर अत्यत क्रोध से उपसर्ग करना प्रारभ कर दिया। उस समय वह भील किस प्रकार मुनिराज पर उपसर्ग कर रहा था-वह कहने मे नही आता ।।८८१।।

कूर् नुनै पगळि कोंडु शेविइडै कुडैयुं कुत्तुं ।
कार् मुगं कोंडु निड्र् मत्तगत्तडिक्क् कैयिर् ।।
क्रूर् मुळिन् शलागै येंट्र् कुरंगिडै कोडियै सुट्रि ।
नीर् विळक् कडैयुं पादत्तडिक्कु नीइन् मुळै ये निड्रे ।।८८२।।

अर्थ—उस भील ने अति तीक्ष्ण वाण को अपने हाथ मे लेकर उस वज्रायुध मुनि के घुटने मे मारना शुरू किया और अपने हाथ मे धनुष लेकर उनके सिर पर मार दिया। तीक्ष्ण आयुध को शरीर मे घुसाना, काटेदार लकडी से मारना, शरीर को धसोटना आदि २ अनेक प्रकार के उपसर्ग किए। महान उपसर्ग करने से मुनि के शरीर से इस प्रकार रक्त बहने लगा कि जिस प्रकार पहाड से पानी की धारा वहकर नीचे गिरती है। पुनः उस काटेदार लकडी को लेकर उन मुनिराज को मारना प्रारम्भ कर दिया ।।८८२।।

अच्चु मुळ् कोंडु सुट्रु मडित्तिडुं वैर वारिग ।
युच्चि युट् कुडैत्तिळुत्ति तोडि पेंगेरियुं कल्लाल् ।।
कैचिलै कनैयै कोतु कादळ वैद वांगि ।
येच्चुर तोंड्रु मिव्वारिडुवै कळनेगं शैदान् ।।८८३।।

अर्थ—उस भील को इतने उपसर्ग से शाति नही हुई तब बडे २ काटेदार डडो से मुनिराज को मारने लगा और काटे मस्तक पर चुभाना,पत्थर बरसाना,ककर फेंकना इत्यादि उपसर्ग करते हुए उन पर बाणो की वर्षा करने लगा। । इस प्रकार अनेक प्रकार के घोर उपसर्ग उन मुनिराज पर किये ।।८८३।।

येरि सोरिंदट्ट वण्ग मिवन् शैद विडुवै यल्लान् ।
तैरिव दोंड्रिड्रि निड्र मुनिवनु पीरुत्तु शिंदै ।।
दरुम नट्रि यानुं तोडुं सेंड्रु तन्नुडंबु नीगि ।
तिरुमलि युलगत्तुच्चि सेव्वट्ट सिध्द पुक्कान् ।।८८४।।

अर्थ—उस भील के द्वारा किए गए उपसर्गो की ओर ध्यान न देते हुए वह वज्रायुध मुनि अपने आत्मध्यान मे लीन होते हुए, आज्ञा विचय, अपाय विचय विपाक विचय, सस्थान विचय ऐसे चार प्रकार के धर्म्यध्यान को अपने मे भाते हुए अपने शरीर को त्यागकर के वह अहमिंद्र देव हो गये ।।८८४।।

मुप्पत्तु मूंड्रु तन्नाल् मुरणिय वाळि काले ।
मुप्पत्तु मूंड्रि यांडा इर मिडै विट्टु मुन्ना ।।
मुप्पत्तु मूंड्रु पक्क मुइर् पिडै मुडिवु पेट्रान् ।
मुप्पत्तु मूंड्र दिच्चारिनै ला मुनिवन् ट्राने ।।८८५।।

अर्थ—सर्वदोष प्रायश्चित्त विधि को निरतिचार रूप पालन करने से वह वज्रायुध मुनि सर्वार्थसिद्धि नाम के अहमिंद्र स्वर्ग मे देव हो गये । उनकी आयु तीस सागर की और तेतीस पक्ष मे एक बार श्वास नि.श्वास लेते थे । तेतीस हजार वर्ष मे एक बार मानसिक आहार करते थे ।।८८५।।

अवधि तन् विमानत्तिन् कीळ् नाळिगै येळवुं सेल्लु ।
मुर्वाद गळ् यादुभिड्रि योप्पिला उरु वत्ताळे ।।
शिवगति यारेप्पोल विबत्तु शरींदिरुंदान् ।
ट्रवनेरि निंड्र वीरन् ट्रन्मै या ररिय वल्लार् ।।८८६।।

अर्थ—उस सर्वार्थ सिद्धि कल्प मे रहने वाले देवो को अपने विमान से नीचे रहने

वाले त्रस नाडी तक के जीवो को अपने अवधिज्ञान द्वारा जानने की शक्ति होती है। और वे सिद्ध परमेष्ठी के समान रागरहित होकर वीतराग भावना से युक्त होते है। और स्त्री रहित बाल ब्रह्मचारी रहते हैं। पूर्वजन्म मे अच्छे दुर्द्धर तपश्चरण करते समय उस भील के द्वारा घोर उपसर्ग को सहने वाले वीर पुरुष वज्रायुध मुनि के समान कोई दूसरा नहीं है ।।८८६।।

क्रून् शिलै पगळि कोतु कोडिय वन् कुळय वांगि।
मान्गळं मरैयुं वीळ्तु मुनिवनै वरुत्तिप्पावि।
तान् शिल नाळि लेळा नरगत्तै शेरिंदु कादिर्।
ट्रेन् सुडुतीयिनी पोर् ट्रिगैत्तु पोय् नितत्तु वीळंदान् ।।८८७।।
वीळ्दंव कनत्तु दंडाल् विळुप्पर वदुक्कि इट्टु।
सूळ्देव रुरुक्कु शेविन् कुट्टुव तुंडंघु काटिट् ।।
टाळ्द वन् ट्रन्नै वांगि शक्कि लिट्टरै त्तिट्टाट्र।
सूळ्दं मुळ्ळिलव मेट्रि तुयरंगळ् पलवुं शैदार् ।।८८८।।

अर्थ—वह पापी भील जगल के पशु पक्षियो को मारकर खाया करता था। इस तीव्र पाप के उदय के कारण से थोडे दिनो मे मरकर वह सातवे नरक मे गया।

उस नरक की भूमि मे उस भील का जीव जाकर पडते ही वहां के पुराने नारकी महान घोर दुख देने लगे। ताम्बे को गर्म करके गलाकर अमृत बताकर उसके मुह मे डालते। जिस प्रकार घाणी मे तिलो को डालकर तेल निकाला जाता है, उसी प्रकार उसको घाणी मे पेलने लगे। अत्यत तीक्ष्ण काटेदार वृक्ष पर चढाकर उसको ऊपर से नीचे गिराते थे। नीचे गिरते ही जैसे बगैर पानी के मछली तडफडाती है, उसी प्रकार वह नारकी तडफडाता था। इस प्रकार घोर दुख सहता था। उस नारकी की आयु तेतीस सागर की थी और पाच सौ धनुष ऊचा उसका शरीर था ।।८८७।।८८८।।

पावै तान नडि पंदिर पाविदान् पुगैडै यूट्रै।
योविला देळुंदु वीळ्दैड्यूरु विल् वुयरंदु दंपार् ।।
ट्राविला तुंब मुट्रान् तन्निलै तळर्कोनाद।
वायु वा लांगु पेट्र वाळि कालत्तै येल्लाम् ।।८८९।।
आरवत्ता लोरुव नानै यायिना नोरुव निड्र।
वेरत्ता नरगत्ताळंद विळंबिय विलार्ग ळि व ।।
भारत्तै मुडिय शेंद्रार् पन्नगर् किरैव पारा।
यार्व शेट्रगं ळिड्रि पगै नंयक्किल्लै कंडाय् ।।८९०।।

अर्थ—वह भील का जीव नारकी पहले भव का सत्यघोप नाम के मंत्री का जीव था। इस प्रकार अप्रशस्त राग परिणति से सिंहसेन राजा का जीव हाथी की पर्याय मे हुआ

था । उस सिहचन्द्र मुनि महाराज के साथ बैर भाव धारण करने वाले सत्यघोष नाम के मत्री ने कई बार नरक मे जाकर अत्यन्त दुख भोगकर जन्म मरण किया ।

उस समय मे राग द्वेष परिणति से रहित वह जीव कर्म से मुक्त होकर ससार बधन को तोडकर अनन्त सुख को प्राप्त हो गया । इसलिये भवन लोक के अधिपति हे धरणेद्र ! इस कर्म बध का कारण एक बैरत्व ही इस जीव का है । और कोई नही है । इसलिये आप भली प्रकार से मनन करके विचार करो ऐसा आदित्य नाम के देव ने धरणेद्र से कहा ।।८८९।।८९०।।

इति वज्रायुध मुनि सर्वार्थसिद्धि नाम के विमान मे जाने
वाला आठवा अध्याय पूर्ण हुआ ।।

॥ नवम अधिकार ॥

※ बलदेव का स्वर्ग जाना ※

मंदिरि मन्नन् ट्रम्मिन् मारुमारागि कोळ्मे ।
विदिय यैदु शेल्लु येल्लै यै मुडिय चंद्रार् ।।
वंदवर् तम्मिर् कूडु मळवि निन्न ट्रिळय नाय ।
मैंदनुं तागु मुट्र माट्रिनी युरैक्क लुट्रेन् ।।८९१।।

अर्थ—सत्यघोष मत्री व राजा सिंहसेन इन दोनो में वैर होने के कारण तथा मत्री का दुर्गुणी होने के कारण मत्री का जीव सातवे नरक मे गया और सिंहसेन राजा सद्‌गुणीहोने के कारण सर्वार्थसिद्धि मे गया। इस प्रकार उन शुभाशुभ गुणो के अनुसार उनको गति का भी वध होता है। प्रत्येक जीव अपने परिणामो के अनुसार शुभ अशुभ गति को प्राप्त होता है। पुन: मत्री व राजा का जीव मध्य लोक मे आकर जन्म लेगा और उनकी पटरानी रामदत्ता देवी तथा सिंहसेन राजा का छोटा राजकुमार और वह रामदत्ता पटरानी इन दोनो की कथा आगे कहूँगा। ऐसा आदित्य देव ने धरणेंद्र से कहा ।।८९१।।

पोदोडु तोळर्गळ् शेट्रि पोरिवंडुम् नेमिरुं पाड ।
तादोडु मदुकळ् वीयुं धातकी युडैय दीप ।।
मोदिय पुगैग नान्नुरायिर मुळ्ळ गंड्रु ।
वेदिगै इरंडिर् चक्क वाळतिन् विळंगु निंड्रे ।।८९२।।

अर्थ—भरत क्षेत्र में धातकी खड नाम का द्वीप है। उस द्वीप का चार लाख योजन विस्तार है। उसके चारो ओर घेरा हुआ लवण समुद्र है। उसके बाद चारो तरफ कालोदधि समुद्र है। इन दोनो समुद्रो से घिरा हुआ वज्रवेदी के समान और चक्रवाल गिरि के समान वृत्ताकार रूप से वह द्वीप प्रकाशमान है ।।८९२।।

मंदर मिरंडु यांड कुलमलै पन्निरंडि ।
नंदरत्तारु नाले ळामद नगत्तु कोळ्वान् ।।
मंदर मदर्कु मेल्वार् शीदुदै वडकरै कट् ।
कंदिलै यन्न नाडु कायरुं तगय दुंडे ।।८९३।।

अर्थ-ग्रथकार ने इस धातकी खड द्वीप का वर्णन किया है। इस द्वीप में गगा सिंधु सीता सीतोदा आदि आदि अठाईस नदिया हैं। वहां बहने वाली सीतोदा नाम की नदी के किनारे पर गधिला नाम की एक नगरी है ।।८९३।।

विलंमल् वीळारु वि वेळ मुम्मंद तेरल् वेरि ।
कलंदुरन् शेल्लु मारु कयंदलै पट्ट कालै ।।
सजलं पिरिद कादलार् तमैक्कंड पोळदि ।
ललगलं कुळलिनार् कोल मर्दि नी दोळुगु नाट्टुळ् ।।८९४।।

अर्थ—उस धातकी खड द्वीप मे रहने वाले ऊंचे २ पर्वतो पर से पानी के झरने नीचे बह २ कर छोटे २ तालाब आदि के रूप मे बहते हुए सरोवर में मिल जाते हैं। इस प्रकार सर्व प्रकार शोभने वाली गधिला नाम की नगरी है। उस नगरी के बहकर जाने वाले पानी मे जिस प्रकार छोटे २ शख मोती आदि बहते जाते है और उनकी आवाज होती हे उसी प्रकार उस नगर मे रहने वाली स्त्रियो के जाते आते समय उनके पाव की पैंजनियो के मधुर २ शब्द सुनाई देते थे ।।८९४।।

कदळि इन् कुलै गळ् शेंपोर् कुळुं कनि कांड्रु नांड्रु ।
मदलै यै शोरिद वट्रै मईलन्न चाय लातै ।।
कुदलै यम् पुदल्वर्कुन्न कोडुत्तेंडुत्तुवक्कुं शेंवन् ।
मदलैय माड मूट्टुरयोदि मानगर मामे ।।८९५।।

अर्थ—उस गधिला देश के मुख्य २ नगर सुन्दर और सोने के वर्ण के समान शोभायमान है। उस देश मे कदलीफल, ताड वृक्ष के फल अनेक प्रकार के पेड चारो ओर महान सुशोभित होते थे। वहा के लोग कदली के गुच्छे,सुपारी के गुच्छे, ताड के गुच्छे लाकर अपने२ घरो मे हमेशा बाधे रखते थे। घर मे रहने वाले छोटे बच्चे जब उन गुच्छो को देखते थे तो उनको लेने के लिये रोने लग जाते थे। तब उन बच्चो को उनके माता पिता उन गुच्छो के फल फूल दे देते थे ।।८९५।।

इरवि पोट्राब दीपत्तिळैवर् वदन मेन्नु ।
मरविंद मलरत्तोड्रु मरसन् ट्रानरुगदासन् ।।
वरै पुरै माड मूदूर् मट्रिदर् किरैवन् ट्रेवि ।
सुरि कुळर् चैव्वाय तोगै सूवदै येंबाळाम् ।।८९६।।

अर्थ—उस नगर मे बडे २ महल शोभायमान होते थे। उस गधिला देश से सबधित अयोध्या नाम की नगरी थी जिसका अर्हदास नाम का अधिपति था जो अत्यन्त प्रतापी था। जिस प्रकार सूर्य उदय होते समय अपने प्रकाश से कमलो को प्रफुल्लित कर देता है उसी प्रकार वहा का राजा अपनी प्रजा को तथा अपनी स्त्री को सुख देने वाला था। उसकी पटरानी का नाम सुरता था जो सर्व गुण-सम्पन्न महान सुन्दर थी ।८९६।

अच्चुदै किरैव नाय वरदन मालै येंद ।
कच्चरणि मुलै नाटकु पुदल्वनाय् पिरंद कालै ।।

नक्चु वेल् वेंदर् कंजियन्नवर नडुंद वैयत्त् ।
दिच्चै यै निरंत्तु वीतभय निवनेड्रु सोन्नार् ।।८६७।।

अर्थ—उस अच्युत कल्प मे देव हुआ रत्नमाला आर्यिका का जीव वहा के देवगति का सुख का अनुभव करके वहा से च्युत होकर अयोध्या का अधिपति राजा अर्हदास की पटरानी सुरता के गर्भ मे आया और नवमास पूर्ण होने के बाद उसने पुत्ररत्न को जन्म दिया। पुत्रोत्पत्ति की खुशी मे राजा अर्हदास ने अत्यन्त आनन्दित होकर उस देश के याचको की इच्छा के अनुसार अनेक प्रकार के दान दिये। और उस पुत्र का नाम संस्कार करके वीतभय नाम रखा ।।८६७।।

मट्रंद मन्नन् ट्रेवि वडिनुनं पगळि वाट् कट् ।
शिट्रिडै परवै यल्गुर् शिनदत्तै शिरुव नागि ।।
मुट्रिय कादलाल वंदि रतनायुदनुत्तोंड्र ।
वेट्रि वेळ्वीरन् पेरुं विवीड नेंड्रु सोन्नार् ।।८६८।।

अर्थ—उस अर्हदास की दूसरी रानी और थी जो सर्वगुण सम्पन्न थी और उसका नाम जिनदत्ता था। उस जिनदत्ता के गर्भ मे पूर्व जन्म के रत्नायुध राजा का जीव जो तप करके अच्युत स्वर्ग मे देव हुआ था, वह वहां देवलोक का सुख भोगकर आयु के अवसान पर इस जिनदत्ता रानी के गर्भ में आया और नवमास पूर्ण होने के बाद पुत्ररत्न को जन्म दिया। और नाम संस्कार करके उसका नाम विभीषण रखा गया ।।८६८।।

राम केशवर् गळागि येळिन् यदि नीळ मेग ।
तरा तळ तिळिंद पोल्वार् दरुयस् पुगळुं पोंड्रुम् ।।
करामलि कडलिनोद मदि योडु पेरुगुं वण्णम् ।
पराभवं पगैवर् काकुं पडियिनाल् वळलु सेंड्राल् ।।८६९।।

अर्थ—वह विभीषण अत्यन्त सुन्दर शरीर वाला था। जिस प्रकार नीले रग का बादल नाचे उतर कर आया हो। ऐसे वे वीतभय (बलराम) और विभीषण (केशव) पूर्णमासी के चद्रमा के समान प्रकाशमान मालूम होते थे। क्रम से ये दोनो वृद्धि को प्राप्त हुए। ये महान बलवान तथा शत्रु राजाओ को परास्त करने वाले थे ।।८६९।।

कुल मलै इरंडु पोल कोट्रव कुमर रोंगि ।
निल मगट् निरैव राग निंड्र तंपगैवन् वेंबि ।।
मलै मिशै परुदि योडु माल् कड लिरंडु वंदु ।
निलमिशै पोरुव पोंड्रु निंड्रु पोर् तोडगि नारे ।।९००।।

अर्थ—ये दोनो पराक्रमी कुमार कुलगिरि पर्वत के समान उन्नत होकर भली भांति प्रजा के प्रति वात्सल्य भाव रखकर राज्य करते थे। इस प्रकार न्यायपूर्वक राज्य करते र

देखकर उनके विरोधी वासुदेव और प्रतिवासुदेव, तथा वीतभय और विभीषण ये दोनो हाथी पर बैठकर सेना सहित युद्ध स्थल की ओर प्रस्थान करने लगे ।।९००।।

तुरगं कडिरैंगळान् तुरा वेरि वीर राणार् ।
करि मगरगळान् काऽर पडै कडल दाग ।'
पोरु पडै वीरर् कैवाळ् पुरंडळु मीन्ग लाग ।
करै शेरि नावाय् तेराय् कावलर् कामराणार् ।।९०१।।

अर्थ—युद्ध करते समय दोनो ओर के योद्धा अपने २ घोडो पर बैठकर परस्पर अपने आयुधो का प्रयोग करते थे । जिस प्रकार समुद्र मे मगरमच्छ इधर उधर भागते हैं उसी प्रकार योद्धा लोग रणभूमि पर दौड धूप करते थे । जिस प्रकार हाथी को रथ मे जोता जाता है और वह हाथी उस रथ को खीचता है उसी प्रकार योद्धा परस्पर एक दूसरे को घसीट कर ले जाते थे । ये सैनिक योद्धा अपने २ हाथो मे शस्त्र लेकर युद्ध करते समय ऐसे प्रतीत होते थे, मानो समुद्र मे छोटी २ मछलिया उछल कूद कर रही हो । उस समय यदि उस रथ को देखा जाय तो वे रथ समुद्र मे बहकर जाने वाले बडे २ जहाज के समान प्रतीत होते थे । इन राजाओ को देखा जाय तो उस दल मे छोटी २ मछली के समान प्रतीत होते थे ।।९०१।।

विल्लोडु विल्वंदेट्र वेलोडु वेल्वदेट्र ।
मल्लोडु मल्ल लेट्र वाट् पडै वाळोडेट्र ।।
पोल् कलि यानै योडु तेर्गळुं तम्मिलेट्र ।
नल्लळै पुरवि योडु पुरवी नाट् शेद पोरे ।।९०२।।

अर्थ—ये दोनो राजा युद्ध करते समय मे अपने-अपने हाथो मे शस्त्र, बल्लम, भाले आदि लेकर परस्पर मे घनघोर युद्ध करते थे । जैसा प्रतिपक्षी राजा अपने हाथ मे अस्त्र लेता था उसी के समान दूसरी ओर के राजा भी वैसा ही शस्त्र लेकर लडते थे । और हाथी के ऊपर चढकर युद्ध करते समय जो आयुध वे रखते थे उसी के समान दूसरे पक्ष वाले भी अस्त्र रखते थे । इस तरह घमासान युद्ध करने लगे ।।९०२।।

काळ्पोर कदलि कानं कलि दुडन् मंडिददे पोर् ।
कोल् पोर कोडिइ नीटं कुडै योडु मट्रु वीळंद ।।
वेल् पोर कुरुदि कुंचि कुमिळि विट्टेलुंद नील ।
माल्वरै शेंदर् ट्रादिन् कुमिळि वंदेळुंद दोंड्रे ।।९०३।।

अर्थ—उस युद्ध मे जिस प्रकार बडी भारी आधी या तूफान उठने पर जगल के बडे २ वृक्ष उखड कर गिर जाते हैं, उसी प्रकार युद्ध मे शस्त्र के द्वारा परस्पर मे शत्रुदल का भी नाश होता था । उन आयुधो के प्रयोग से हाथियो के शरीर मे बाण चुभाते थे । और उनके

शरीर मे से रक्त की धारा इस प्रकार निकलती थी मानो नीलमणि के पर्वत के अंदर मे पानी की धारा निकलती हो ॥६०३॥

विर्पडै शरंगळ् वीळ्ंदु मेगंगळ् पोल मायं्द ।
मर्पडै युडन् ट्रेळ्ंदु मडंगल् पोर पोरुदु मायं्द ॥
विर्पमं पिळ्ंद वैवा ळेळिलिइन् मिन्नं पोड्र ।
कोट्र् वर् कुडैग ळेंड्रि नडंददुकुरुदि यारे ॥६०४॥

अर्थ—वर्षा काल मे जिस प्रकार जल वृष्टि होती है उसी प्रकार दोनो राजाओ के दल मे सिह के समान बाणो की वर्षा होती थी। इस प्रकार परस्पर घमासान युद्ध हो रहा था। उस समय शस्त्रो के द्वारा हाथियो को छिन्न भिन्न कर दिया अर्थात् महान तीक्ष्ण शस्त्रो से हाथियो के टुकडे २ कर दिये। वे शस्त्र बिजली की चमक के समान चमकते थे। नदी के प्रवाह के समान उन हाथियो का रक्त निकलकर वहता था। उनके खून मे मरे हुए योद्धा बह २ कर जाते थे ॥६०४॥

काल् पोर पेन्नै नेट्रि कनिगळ् पोर् ट्रलै गळ् वीळ्ं्द ।
कोल पोर कुळित्त यानै करुवि शेर् कुंड्र मोत्त ॥
वेल् पोरक्किडंद वीरर् वेर्गनार् विळ्म नोइन् ।
माल् पोरक्किडंद नेंजिन् मंदर् पोन् मयंगि नारे ॥६०५॥

अर्थ—युद्ध के समय ऐसा प्रतीत होता था मानो ताड वृक्ष के फल पककर जोर की हवा चलने से गिर जाते हैं। उसी प्रकार उस भीषण युद्ध मे से योद्धाओ के मस्तक कट २ कर गिर जाते थे। कई शस्त्रो के प्रहारो से मूर्च्छित होकर गिर जाते थे ॥६०५॥

उरुमिडि पुंड नील मलै यन उरुंड वेलन् ।
वरैमिशै परुदि पोल मन्नवर वंदु वीळ्ंदार् ॥
करै पोरु कलंगळ् पोल तेर तोगै विळ्ंदु पोन ।
पुरविगळ् करयै शारं्द तिरै यन पोरुदु मायं्द ॥६०६॥

अर्थ—जिस प्रकार नीलमणि पर्वत पर गिरने पर पत्थर चूर २ हो जाता है उसी प्रकार बाणो के लगकर गिरने से हाथियो के टुकडे २ हो जाते थे। पर्वत के ऊपर जैसे अनेक राजा लोग बैठे हो उसी प्रकार राजा लोग हाथी पर बैठकर युद्ध करते थे। युद्ध मे हजारों शत्रु की सेना मर जाती थी। जिस प्रकार समुद्र से जाने वाले जहाज कहीं टकरा कर समुद्र मे डूब जाता है उसी प्रकार उस राजा के रथ आदि वाहन युद्ध की मार से टुकडे २ होकर नीचे झुक जाते थे ॥६०६॥

कोट्र् वेन् मन्नर् वेळ कुंबत्तै तलुवि वीळ्ंदार् ।
वेट्रि पोर कोडिइन् कोंगै मेविनार तम्मै योत्तार ॥

अट्ट् दोर केडकवकै कौविय नरिकन्नाडि ।
पट्टिय कुरळि शेल्वाडन् मुगं पार्त पोलुं ।।६०७।।

अर्थ—हाथी के ऊपर रहने वाले राजा लोग तीक्ष्ण शस्त्रो से घायल होकर नीचे पडते समय हाथी के मस्तक को ऊपर से जिस प्रकार जयश्री के स्तन को पकड कर कामी लोग आनन्द को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार राजा लोग घायल होते समय हाथी के वक्ष स्थल को पकड कर नीचे गिर जाते थे। उन कटे हुए हाथो को उस समय गीदड अपने मुख मे चमकीले शस्त्र सहित जाते समय उसका मुख शस्त्र मे ऐसा दीखता था जैसे कोई दूसरा गीदड ही जा रहा हो ।।६०७।।

विळुंदुडन् किडंद वेळं विट्ट मूर्चनै गळ् पांदळ् ।
सेळुं कुर्गे शिरिदु पोंदु शिरुव दोक्कुं पोरि ।।
नळिदुडन् किडंद वीर रगु सेन्नरियै कड्ढु ।
मुळजिडै युरंगु शिगं मुनिवदे पोन् मुरंड्रार् ।।६०८।।

अर्थ—उस युद्ध मे सैनिको के अवयव छिन्न भिन्न होकर पडे हुए थे। पडे हुए घायल हाथी श्वास इस प्रकार छोडते थे मानो कोई एक बडा अजगर सर्प अपने विल से बाहर आकर फुकार कर रहा हो। उसी प्रकार हाथी श्वास नि श्वास लेते थे। उस समय घायल पडे हुए सैनिक लोग जव वैरी लोग उनके सामने मे चले जाते थे तब मरते समय भी पडे २ गर्जना करते थे ।।६०८।।

वासिग ळुलक्क वाळि पाय्दिड मनं कलंगि ।
वीसिन पादमेलाय् विळुदन वरुडै पोड्र ।।
पूशलिर पोंड्रुम् वीरर् तुरक् मा मेण्नुं पोय्न्न ।
त्तासैयार् पोरुदु वीळंदा ररंवैय रार्वत्ताले ।।६०९।।

अर्थ—उस युद्ध मे अनेक घोडे मरण को प्राप्त हुए। उस लडाई मे प्राण छोडते समय योद्धा ऐसा मन मे विचार करते थे कि यह मरण हमारे लिए शुभ है क्योकि युद्ध मे वीर पुरुष यदि मरण करता है तो वह देवलोक मे जाकर पैदा होता है। ऐसा शास्त्रो मे कहा है। हमको मरना ही है। परन्तु युद्धस्थल मे भगवान का स्मरण करते हुए प्राण छोडेगे तो हम देवगति मे जाकर जन्म लेगे और वहा अनेक अप्सराओ के साथ सुख से जीवन बितायेगे ।।६०९।।

कडल् कवर्देळुंदु पैयुं कारण सावं कांड्र ।
पडुकनै मारि कंजि पलकेड पल वंदड्र ।।
कुडरडै कुडवि योन्ना रुडलेनुं कोळुंवर शाये ।
पडै मड्डुत्तुळ्डु वेंपोर् पुल पोड्डु शेरु शैदान् ।।६१०।।

अर्थ—उस युद्ध मे प्रतिवासुदेव द्वारा बाण को छोडे हुए देख वासुदेव की सेना पीछे

भाग जाती थी। उन बाणों को देखकर बलदेव वीतभय ने अपने हलायुध को लेकर उस भूमि को मांसमयी रक्तमयी बना दिया ।।६१०।।

काट्रेरि कडलिर् पोंगी कार पडै युडयक्काना ।
माट्रवन् कुट्रम् पोल वडि नुनै पगळि तूरि ।।
तोट्र नान् तोट्र वीरर् तोडु पडै विट्ट तत्तंम् ।
कार्प यन् कोंडु पोनार कावल रदनै काना ।।६११।।

अर्थ—वासुदेव का शत्रु प्रतिवासुदेव था। उनकी सेना घबडाकर ऐसे पीछे भाग गई जैसे आंधी चलती है और आंधी के वेग से समुद्र की लहरें चलती हैं। उसी प्रकार गिरते पडते बैठते सारी सेना भाग जाती थी। इसको देखकर प्रतिवासुदेव बाणों की वर्षा करने लगा। वासुदेव की सेना घबडा कर पीछे हट गई। इसको देखकर केशव थोडा घबराया ।।६११।।

येरियुरु मेन्न शीरि इडर्जिलै येंदु मेल्लै ।
सुरि युळै शेंगट् पेल्वाय् शीय तोड्र वेरि ।।
वरि शिलै कुणिय वप्पु मारियप्पलं पडैत्तान् ।
शेरुविलै तुर्डेद वीरर् शेणि मेल् विनैगलोत्तार् ।।६१२।।

अर्थ—उस समय बलदेव अपने हाथ में धनुष को धारण करते समय वहा रहने वाला एक देवता उनके पुण्य के प्रभाव से वहा आकर खडा हो गया और उसने सिंह रूप धारण कर लिया और कहने लगा कि मेरे ऊपर तुम चढकर युद्ध भूमि में बाण वृष्टि करो। वह बलदेव उस देवता पर बैठकर चलने लगा। उसे देखकर प्रतिवासुदेव की सेना जैसे कोई मुनि कर्म निर्जरा करके क्षपक श्रेणी चढता हो उसी प्रकार प्रतिवासुदेव की सेना पीछे हटने लगी ।।६१२।।

पारुमेर् परंद देंगुम् परिदि युं करंददगे ।
शेरु पट्टुळर दागि सेरुक्कलुम् शेल्लनींग ।।
मारेदिर् दवनै काना मरिंद तन्सेनैक्काना ।
शोरिनन् गरुडनेरिसेंड्र केशव मेदिदांतान् ।।६१३।।

अर्थ—युद्ध मे मरे हुए लोगों के मांस को देखकर गिद्ध पक्षी आकाश में मडरा रहे थे। उस समय वासुदेव प्रति वासुदेव ने अपने गरुड पक्षी पर चढकर युद्ध मे प्रवेश कर पुनः युद्ध प्रारम्भ कर दिया ।।६१३।।

अरुकन् वंडुदय मेर् मदि योळि यविव वे पोर् ।
ट्रिरुविकळर् गरुडन मेल केशवन् ट्रोंड सिवि ।।

वेरुवकोंडु शेनै योड वीळंदोळि मदिई निड्रा।
नुरुत्तेळु कालन् पोल उडंड्र् चक्करत्तै विट्टान् ॥६१४॥
पडैनड्ड कडलिर् शेल्लुं परुदि पोलाळि शेल्ल।
मुडि मन्नर् नडुंगि इट्टार् मुदुगिट्ट दरशर् शेनै॥
पडै मन्न रार्तेळुंदार् माट्रवन् पक्कत्तुळ्ळार्।
मिडैगति राळि मेरु सूळ्वरुं परुदि पोल ॥६१५॥

अर्थ—इस प्रकार युद्ध प्रारम्भ होने के बाद जिस प्रकार सूर्य पूर्वाचल से उदय होकर पच्छिम को जाते समय चद्रमा का प्रकाश क्षीण दीखता है उसी प्रकार वासुदेव की सेना एक दम शिथिल होकर भाग गई। पुण्यहीन प्रतिवासुदेव अतिक्रोध से अपने हाथ मे रहने वाले चक्र को वासुदेव पर चलाया। जिस प्रकार सूर्य समुद्र के बीच मे होकर जाता है उसी प्रकार वह चक्र इस सेना के बीच मे होकर आते देखकर वासुदेव घबडाया और उनकी सेना भी पीछे हट गई। उस समय मे प्रतिवासुदेव के सैनिक लोगो ने जयघोष किया। उस प्रतिवासुदेव के द्वारा चलाया हुआ चक्र आयुध वासुदेव के पास आकर जैसे पहाड की परिक्रमा देते हैं उसी तरह वह चक्र उनकी तीन प्रदक्षिणा कर उनके चरणो मे गिर गया ॥६१४॥६१५॥

केशवन् ट्रन्नै सूळंदु वल पक्कं केळुम कंडु।
पेशोना वगैनाळि पिडित्तवन् ट्रिरित्तु विट्टान्॥
मूसु तेम कवसन् कोंडु मुइवरै मार्गु पुक्कुत्।
देशर दुरुवि योडि दिशै विळक् कुरुत्त देंड्रे ॥६१६॥

अर्थ—चक्रायुध के परिक्रमा देकर चरणो मे गिरते ही वासुदेव ने यथायोग्य उसकी पूजा करके हाथ लगाकर दाहिनी तरफ ले लिया। अपना विरोधी जो प्रतिवासुदेव था तुरन्त उसी पर वह चक्र छोड दिया। वह चक्र सीधा जाकर प्रतिवासुदेव के सोने मे जाकर घुस गया और तत्काल वह मरण को प्राप्त हो गया। वह चक प्रतिवासुदेव के लगा और उसे मारकर पुन वासुदेव के पास लौटकर आ गया। और उसने दया करके वहा रख लिया। ॥६१६॥

करु मुगिलुरुमि नोडि केशवन् कै नाळि।
युरु मिडि पुंड नील मलई लोन्नानै वीळ्प॥
विरुळ परंदिट्ट देंगुम् यावरु नडुंगि वीळदा।
रोरुवरर्ग निड्र दुंडो तिरुवेन उरै तिट्टारे ॥६१७॥

अर्थ—विभीषण के हाथ से वह चक्र जाकर प्रतिवासुदेव को लगा और वह मर गया। मरते ही उसकी सेना मे हाहाकार मच गया, और सैनिक लोग मूर्च्छित हो गये। वहा पर साधारण लोग यह चर्चा कर रहे थे कि यह लक्ष्मी एक स्थान मे वास नही करती। जब तक

पुण्य रहता है लक्ष्मी रहती है। जब पुण्य समाप्त हो जाता है तब एक क्षण भी वहाँ लक्ष्मी नही ठहर सकती ॥६१७॥

मलमिशै मदिय नीळर् परुदि पोन् मत्त यानै।
तलै निशै कुडयी नीळल् तरणीयै मुळुदु मांडार् ॥
निलविशै इंड्रु कारुं निड्रव रिल्लै येनुं।
तलै वनं तानिव्वाळि तंडिददु कोडिदि देंड्रार् ॥६१८॥

अर्थ—प्रतिवासुदेव के मर जाने के बाद वासुदेव जिस प्रकार उदयाचल मे सूर्य का प्रकाश दीखता है, उसी प्रकार वह वासुदेव महान वडे हाथी पर बैठकर अपने घर धवल छत्र को धारणकर जब वापस आया तो उस राजधानी के लोग कहते थे कि यह लक्ष्मी वैभव पुण्य के आधीन है। एक जगह स्थिर नही रहती। यह शरीर भोगोपभोग आदि सब क्षणिक है। प्रतिवासुदेव का पुण्य समाप्त होते ही वह उसी का चलाया हुआ चक्र वापस जाकर उस ही को मार दिया। यह पुण्य पाप का फल है। ऐसी चर्चा नगर मे हो रही थी ॥६१८॥

गरुडनै इळिंदु कैमामिशै वंदु पुरोदन् काट।
कुरवर्गळुरयुं कोडि शिलै वलं वदेंदी ॥
पेरियव निड्र् पोळ्दिन् वेंदर विजयर्गळ् विन्नोर।
तरु तिरै योडुं वंदु ताळ्दंडि परवि नानं नारे ॥६१९॥

अर्थ—तत्पश्चात् वह वासुदेव गरुड पर से उतर कर हाथी पर बैठ गया और वहाँ जो राज पुरोहित थे उनके कहने के अनुसार महान तपस्वी तथा कोटशिला रूपी पर्वत की प्रदक्षिणा की। तदनन्तर वहा रहने वाले विद्याधर राजा, भूमिगोचरी, व्यतर देवो के अधिपतियों ने अपनी २ शक्ति के अनुसार उनको भेट दी और राजा की स्तुति की ॥६१९॥

मलरेन मलयै येंदि वैत्तवन् मन्नर् सूळ।
वलर कदिराळि पिन् पोय् दिशै यडि पोडुत्तु मीळंदु ॥
निल मगडिलगं पोलु मयोदिया पुरत्तु नी।
मलै योडु मदीयं पोल मन्नवर् तुन्नि नारे ॥६२०॥

अर्थ—तदनन्तर वह विभीषण अपने भुज-बलो के द्वारा जिस प्रकार एक फूल को हाथ मे लिया जाता है उसी प्रकार उस कोटशिला पर्वत को अपनी अगुली से उठा लिया। वह विभीषण अपने बडे भाई वीतभय सहित अनेक राजा महाराजाओ को साथ लेकर दिग्विजय को गया। जाते समय वह चक्र उनके आगे २ चलता था। इस प्रकार वे सभी राज्यो पर विजय पाकर अयोध्या नगरो मे आये ॥६२०॥

मदि दोडु करीय येगं कंडमा कडलै पोल।
पुदियर् कादल् पुगं पार्तिवर पुक्क पोळ्दिन् ॥

विदि यरि पुलवर् सूळंदु वेट्रि शीयासनोत्तु ।
मदियत्त कुडयी नीळल् वेत्तु शायरगळ् वीस ॥६२१॥

अर्थ-जिस प्रकार पूर्णमासी के चद्रमा तथा मेघ मडल को देखकर समुद्र वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार वीतभय और विभीषण को देखकर अयोध्यानगरी की जनता अत्यन्त ग्रानन्दित हुई। वहा के राजपुरोहित द्वारा वीतभय को राजसिंहासन पर विराजमान कराया। ॥६२१॥

पार् कडर् तेन्नोर् परुदियिन् वडिय कुंभ ।
भाट्ट वायिरत्तोरेट्टि नमररा वेंद पट्ट ॥
नूर कडल् केळ्दि यार् कनुनित्त मदिरगळ् सोल्लि ।
येट्रवा राटिनार् गळेटिनार् पाति वेंदर् ॥६२२॥

अर्थ—वासुदेव को राज्यसिहासन पर आरूढ करने के पश्चात् जिस प्रकार भगवान के अभिषेक के लिए १००८ गण बुद्धो मे तथा रत्न घटो से क्षीर सागर से पानी लाते हैं, उसी प्रकार अनेक घटो से वासुदेव का राज्याभिषेक किया गया, और सभी अयोध्यावासियो ने तथा कई राजाम्रो ने स्तुति की ॥६२२॥

मुडिय दन् पिन्नंलिदार् सुरशेंकन् मुरशेंकन् मुळंदग मुम्मै ।
पडिमिशै येरस रीरेन्नायिरर् पनिय विंजै ॥
तडवरै यरस रैवत्तजि नुविकरट्टि ताळ ।
पडरोळि परप्प वेन्ना इरवर् विनोर् पनिदार् ॥६२३॥

अर्थ—राजा वासुदेव का राज्याभिषेक करते समय अठारह प्रकार के वाद्यो की गर्जना हुई और जयघोष की ध्वनि हुई। तीन खड के सोलह हजार मुकुटबद्ध राजा तथा विजयार्द्ध पर्वत पर रहने वाले विद्याधर सभी ने मिलकर तथा आठ हजार गण वद्धो ने उनको नमस्कार किया ॥६२३॥

यानै इन् ट्रोगुदि नार्पत्तिरंडु नूराइरंतेर् ।
यान मट्रदु वे वासि योबदिन् कोडि कालाट् ॥
कानु कार्पत्तिरंडु कोडि तानवर् कडेवर् ।
तानमानंग लेन्नाइए मरु पडैइदाये ॥६२४॥

अर्थ—उस समय रामकेशव के पास बियालीस लाख हाथी, बियालीस लाख रथ, नौ करोड घोडे, बियालीस करोड योद्धा तथा आठ हजार विद्याधर आदि सभी मिलाकर छह प्रकार की सेना उनके पास थी ॥६२४॥

आळि वेल् तंडु शंग मरु मरिण विल्लु वैवा ।
ळेळु मः लिरत नंग लेळायिर् ममरर् काप ।।
माळे मेरवलैन् मादे वियरेन्ना इरत्ति रेट्ट ।
वेळ् मेट्रिरै कोंडैदुं नाडु मेल्रलैत्त दामे ।।६२५।।

अर्थ—उन केशव और वासुदेव के पास चक्रायुध, वेलायुध, दंडायुध जयशख जयखड मरिण आदि २ सात प्रकार के आयुध रत्न रहते थे। इनमे एक २ आयुधो की रक्षा के लिये सात हजार व्यंतर देव रहते थे। और स्वर्ण, मोतियो आदि से निर्मित किए हुए आभूषणो वाली सोलह हजार रानियां होती हैं। तथा राजा को भेट देने वाली अनेक रानिया केशव के होती हैं ।।६२५।।

मालै दंड मोग वाळि कलप्पयि पलन वागुं ।
नालु नल्लि यक्कर नाला इरत्तर् कापि यट्रि शेल्व ।।
रेल वार् कुळलिन् मादे वियरु मेन्ना इरवर ।
मेलु लाम् मदिय पोलुं मेवि यान् विरुंव पट्टार् ।।६२६।।

अर्थ—मरिणयो के दण्डायुध, अतिशक्तिशाली वारण, हलायुध, रत्नो के अनेक प्रकार के आयुध यह सभी वीतभय के पास रहते हैं। इनकी चार हजार यक्ष यक्षिरिणयो द्वारा रक्षा की जाती है। और चंद्रमा के समान पटरानिया उस बलदेव के थी ।।६२६।।

कंदिलै नाडु कंड मूंड्रि निर् कामर् शेल्व ।
तिदु वानुदलि नारो डिव नीर् कडलै याडि ।।
येंद रत्तिरै वन् पोल वांडुगळ् पलवुं शेंड्रार् ।
वेंतिरर् कळिट्रु वेंदन् विवोडनन् वियोग मानान् ।।६२७।।

अर्थ—उस गधिल देश मे तीन खड की सपत्ति को प्राप्त हुआ वह विभीषरण नाम का अर्द्ध चक्रवर्ती उसका भोग भोगते हुए आनद रूपी समुद्र मे लीन हो गया था। और दोनो भाई सुख पूर्वक भोगोपभोग के साथ आनद सहित काल व्यतीत करते थे। समय पाकर वह तीन खड का अधिपति विभीषरण मरण को प्राप्त हुआ ।।६२७।।

अरुमरिण यिळंद नागम् पोर् पलनलं वंदाट्र ।
पेरुगिय पेरुगिय तुयर् मुट्रु पिरवियै वेरुवि पिन्नान् ।
मरुविय पोरुळुं नाडु मैंदर गक् कोंडु माट्रै ।
विरगिना लेरियुं वीतराग मा मुनिव नानान् ।।६२८।।

अर्थ—विभीषरण के मरण को देखकर, जिस प्रकार नागफरिण मे मे रत्न चला जावे और उस रत्न के चले जाने मे नाग को महान दुख होता है, उसी प्रकार बलदेव को

महान दुख उत्पन्न हुआ। और उसने पापमय संसार से डर कर अपने राजकुमार को राज्य-संपत्ति सम्हलाकर वैरागी होकर जिन दोक्षा ग्रहण करली ॥६२८॥

वलं बुरि वण्ण नारादने इना लुडंबु विट्टिट् ।
तिलांतव कर्पं पुक्कान् यानव निड्रु वंदेन् ॥
पुलंगण् मेर् पुरिंदु नींद केशवन् पुक्क देश ।
मिलंगि पोय् ईर यानं नरगिर् कंडिडरै युट्रेन् ॥६२६॥

अर्थ—शख वर्ण के समान वह रहने वाला नवीन दीक्षित बलदेव सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, चारित्र और तप इन चार प्रकार की आराधनाओ की भावना से इस शरीर को छोडकर लातव कल्प के विमान मे जो देव हुआ था उस देव का जीव मैं ही हूँ। और सजयंत मुनिके केवलज्ञान अथवा मोक्षकल्याण की पूजा करने के लिये मैं यहा आया हूँ। धरणेंद्र सुनो! धरणेंद्र ने पूछा कि आदित्यदेव क्या आप ही सजयत मुनि के मोक्ष कल्याण की पूजा के लिए आए हो ? यदि हा तो यह बताओ कि पचेद्रिय विषयों मे लीन हुआ विभीषण नाम का वासुदेव मरकर किस क्षेत्र मे गया है। देव ने कहा कि मैंने अवधिज्ञान से जान लिया है वह दूसरे नरक मे गया है। अब उसके नरक मे से निकलने का धर्मोपदेश करूगा सो सुनो। ॥६२६॥

इति बलदेव स्वर्ग जाने वाला नवाँ अध्याय
समाप्त हुआ।

॥ दशम अधिकार ॥

※ नरक में रहने वाले विभीषण को आदित्य देव द्वारा धर्मोपदेश ※

चक्कर प्रभै तन्पानिर् पदर् कावँ वेत्तु ।
चक्कर प्रभै तन्पा निड्र् वन् टून्नै काना ॥
मिक्क वेन तुयर मुट्रे नवन् टूयर् नींग वेन्नि ।
येक्क नत्तवनै कूडि येरदि वेन्नै वेड्रेन ॥९३०॥

अर्थ—उस शर्करा नाम के दूसरे नरक मे उत्पन्न हुए नारकी विभीषण को देखकर अन्य नारकी लोग उसको दुख देनें लगे। तब उसके दुख को दूर करने के लिए वह लातव देव वहा जाकर धर्मोपदेश करने लगा कि हे नारकी ! सुनो, आपको मालूम है वह नारकी जीव का पहले जन्म मे कौन था ? सुनो ! ॥९३०॥

मदुरै यानाग वेवाइल् वारुणि मगळाय् नीपिन् ।
सदुर मै दत्तै यानेन पूरचंदिर नानाय् ॥
विदियिना नोट्रेन्नोडु मासुक्कं पुक्कु विजै ।
पदियिर् शीदर याने नेन् मगळि सोदरे युमानाय ॥९३१॥

अर्थ—हे नारकी ! मै कई भव पहले मदुरा नाम की ब्राह्मणी स्त्री पर्याय मे थी और तुमनें मेरी कुक्षी से वारुणी नाम की पुत्री होकर जन्म लिया था। वहा से आयु पूरी करके सिंहसेन राजा की पटरानी रामदत्ता हो गई। उस रामदत्ता देवी के गर्भ से तूने छोटा पुत्र पूर्णचद्र नाम होकर जन्म लिया। वहा पूर्णतया मेरे साथ अच्छे व्रताचरण का पालन करके शुभ आचरणो के फल सें महाशुक्र के कल्प मे देव पर्याय धारण की। वहा देवगति के सुख भोगकर आयु के अवसान पर वहा से चयकर विद्याधरो के लोक मे श्रीधरा नाम की राजश्री होकर जन्म लिया। उस श्रीधरा के उदर से पूर्वजन्म के भव भवातर के सबध के कारण यशोधरा नाम की लडकी उत्पन्न हुई ॥९३१॥

कंदियाय नोट्रेन्नोडु काविट्ट कर्प पुक्कुं ।
वंदिया निरद माले मन्निन् मेललाग नीयु ॥
मंदरत्तिळि देन् मैद नरदना युदनु मागि ।
शिंदै मातवत्तोडोड्रि येच्चुंद शेड्रु मीळडोम् ॥९३२॥

अर्थ—अतदन्तर आपने मेरे साथ आर्यिका दीक्षा लेकर उत्तम तपश्चरण करके उस पुण्य के फल से कापिष्ठ नाम के कल्प मे देव पर्याय धारण की। वहा से आयु पूर्ण करके मध्य

लोक में कर्मभूमि मे आकर रत्नमाला नाम की राजश्री होकर जन्म लिया। रत्नमाला की कुक्षी से रत्नायुध नाम का पुत्र हुआ। तदनन्तर रत्नायुध व रत्नमाला धर्मध्यान सहित तपश्चरण करके उस पुण्य के प्रभाव से अच्युत स्वर्ग मे देव हुए। वहा के देवसुख का अनुभव करके तुम इस मध्य लोक मे आये ॥६३२॥

धातकी तीविर् कीळै कदिलै ययोदिन्ग।
नेदनि लिरास नानि केशवना इरंदिव॥
वेदनी नरगत्ताळ्दाय् विळुंदव तंवत्ति लांतम् पुवके।
नोदिया लुन्नै कडिङ् गुरुदिया नुरैक् वदेन् ॥६३३॥

अर्थ—धातकीखड द्वीप मे गाधिल नाम का देश है। उस देश मे अयोध्या नाम की नगरी है। उस नगरी मे दोष रहित ऐसा मैं बलराम हुआ और तुम वासुदेव हुए। अब तुम मरण करके दूसरे नरक मे आये और मैं तपश्चरण करके लातव नाम के कल्प मे देव हुआ हूँ। मैंने अवधिज्ञान द्वारा जाना कि तुम्हारा दूसरे नरक मे जन्म हुआ है तो मै आपके प्रेम के कारण यहा आकर आपको शीघ्र इस नरक से मुक्त हो जाने का धर्मोपदेश देने आया हूँ। ॥६३३॥

येंड्रलु मिरंद मेलै पिरविग लरिदिट्टेन्नै।
वंदुडन् वनगि वीळ्दु मयगिना नवनै पेट्रि॥
इन्दिर विभव सेनु निंड्र दोड्रि यार्कु मिल्लै।
वेन् तुयर् नरगिन् वीळा वुयिर्गळु मिल्लै येंड्रेन् ॥६३४॥

अर्थ—उस वासुदेव को आदित्य देव द्वारा दिया हुआ उपदेश सुनकर भवस्मृति हो गई और देव के चरणो मे गिर पडा। देव ने धैर्य बधाया और कहा कि हे नारकी! सभी जीवो को देवगति प्राप्त नही होती और नरक मे जाकर किसी ने दुख नही भोगा हो, ऐसा कोई जीव नही है ॥६३४॥

माट्रिडै सुळड्रु वाळ्‌ मुईर् कट्कु वंदु शेल्वं।
तोट्रिन तोडरन मायद लियेलगु नी कवल वेंडा॥
मट्रुदर् केरिय तुंवम् पेरि देंड्रु मयंग वेंडा।
माट्रुदर् केळिदु फीळ् नरगत्तो वियल् वरिदाल् ॥६३५॥

अर्थ—गतियां चार होती है। देवगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति और नरकगति। मनुष्य को सुख सपत्ति आदि का मिलना तथा नाश होना यह अनादि काल से चला आया सब पूर्व जन्म के पुण्य पाप का फल है। मै पूर्व जन्म के पुण्य के फल से देवगति मे जन्म लेकर वहाँ सुख भोग रहा हूँ। तू नरक गति मे आकर नरको के दुख भोग रहा है। परन्तु इस बात की चिंता बिल्कुल मत करो कि मेरा भाई तो स्वर्ग मे गया है और मैं नरक मे आकर जन्मा हूँ। इस दूसरे नरक मे तुमको अधिक दिन तक दुख का अनुभव करना पडेगा ऐसा मन मे विचार

मत करो। क्योकि जिस नरक मे तुम रहते हो उस नरक के नीचे नरक मे रहने वाले नारकियो को तुम से भी अधिक दुख हैं। यदि ऐसा मन मे विचार कर लेगा तो इससे तुम्हारा दुख कम हो जायेगा। अब तुम से नीचे के नरको मे रहने वालो के सबध मे सक्षेप मे वर्णन करता हूँ ।।६३५।।

येळुळ नरग नाम मिरद नम् चक्क वालु ।
वाळिय पंकम् धूममं तमंतम तमत्त मांगु ।
पाळि इन्दगन्गळ शेरिग पगिन कदोप्प वंद ।
वेळिनुं पुगवेन्वत्तु नांगु लक्कंगळामे ।।६३६।।

अर्थ—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातम प्रभा, इस प्रकार सात नरक है। इन नरको में श्रेणीबद्ध होकर रहने वाले पुष्प, प्रकीर्णक आदि २ सभी मिलकर चौरासी लाख बिल रहते हैं।।६३६।।

वंड्रु सून्ड्रैदु मैळु मोंवदुं पत्तोडोंद्रु ।
निड्र मूंड्रोडु पत्तु निरैयत्तु पुरैगळ् मेन्मे ।।
लोड्रु मूंड्रेळु पत्तु मोरु पत्तेळिरु पत्तीरि ।
निड्र मूंड्रोडु मुप्पानाळि कोळ् पुरै तोरायु ।।६३७।।

अर्थ—सातवें नरक में पाच बिल हैं। छठे नरक मे पाच लाख कम एक लाख बिल हैं, पाचवे नरक मे तीन लाख व चौथे नरक में दस लाख बिल हैं। पन्द्रह लाख बिल तीसरे नरक मे है। तथा दूसरे नरक मे पच्चीस लाख व पहले नरक मे तीस लाख बिल हैं। इस प्रकार एक के ऊपर एक बिल रहते है। पहले नरक मे रहने वालो की आयु उत्कृष्ट एक सागर की होती है। दूसरे नरक की उत्कृष्ट आयु तीन सागर होती है। तीसरे नरक की उत्कृष्ट आयु सात सागर तथा चौथे नरक की दस सागर की उत्कृष्ट आयु होती है। सत्रह सागर की आयु पाचवे नरक की और बाईस सागर की उत्कृष्ट आयु छठे नरक की तथा सातवें नरक की उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर की होती है। इस प्रकार के क्रम से नारकी जीवो की आयु होती है ।।६३७।।

मुदला नरगत्तिन् मुदर् पुरैयिर् ।
पदि नाइर् मांडुगळां शिरुमै ।।
विदि यान् मिगैया युग मेळन कोळ् ।
पदियार् परमा युग मल्लन वाम् ।।६३८।।

अर्थ—पहले पटल में रहने वाले नारकी जीवो की आयु नव्वे हजार वर्ष की होती है। दूसरे पटल के नारकियो की आयु ९० लाख वर्ष, तीसरे पटल मे रहने वालो की असंख्यात पूर्व कोटि वर्ष की होती है। चौथे पटल मे एक सागर की आयु मे से दसवें भाग मे एक भाग रहती है। पाचवें पटल मे दस भाग के दो भाग आयु रहती है। छठे पटल मे एक सागर के तीन भाग आयु होती है। सातवे पटल मे एक सागर मे चार भाग आयु होती है। आठवें पटल

मे एक सागर का पाचवा भाग, नवे पटल मे एक सागर का छठा भाग, दसवे पटल मे एक सागर का सातवा भाग, ग्यारहवे पटल मे एक सागर का आठवा भाग व बारहवे पटल मे एक सागर का नवां भाग होता है। तेरहवे पटल मे पूर्ण एक सागर प्रमाण तक उनकी आयु होती है ॥६३८॥

मुळ मूंड़ ुयर् वा मुदलाम् पुरइन् ।
मुळ मूंड़ ु विल्लेळ् विरला रुळकी ॥
लेळु वाइदेङ्यूरु विल्लै दळवुं ।
वळुवा दिरुदोरु मिरत्ति यदाम् ॥६३६॥

अर्थ—पहले नरक के प्रथम पटल मे रहने वाले जीव का उत्सेध तीन हाथ रहता है। उसके बाद प्रथम नरक के अन्तिम पटल मे उत्सेध सात धनुष, तीन हाथ, छह अगुल होता है। दूसरे नरक मे अन्तिम पटल मे क्रम से वढते २ पद्रह धनुष, दो हाथ, बारह अगुल उत्सेध है। तीसरे नरक मे अन्तिम पटल मे क्रम से वढते २ इकत्तीस धनुष, एक हाथ उत्सेध है। चौथे नरक में वासठ धनुष, दो हाथ है। पाचवे नरक मे एक सौ पच्चीस धनुष है। छठे नरक मे दो सौ पच्चास धनुष है। सातवे नरक मे नारकियो का उत्सेध पाच सौ धनुष रहता है। बीच मे रहने वाले नारकी जीव तथा ऊपर रहने वाले नारकियो का उत्सेध इससे दुगुना रहता है। ॥६३६॥

पुगै येंदु मुदर् पुरै पुक्क वर्दा ।
मुगै यार् विळुवा रुळवा युव्वेलां ॥
पुगैये ळोडैन्यूरु विल् कावद मून् ।
ट्ू ुगै यार् विळुवार् मुदलिट्टि नूळार् ॥६४०॥

अर्थ—प्रथम पटल मे रहने वाले नारकी जीव पाच सौ योजन नीचे से ऊपर गेंद के समान उछलता उडता जाता है और वहा से उडकर पाच योजन से नीचे गिर जाता है। प्रथम पटल से तीसरे नरक तक रहने वाले नारकी जीव पाच सौ धनुष ऊपर उडकर फिर ऊपर से सर नीचे और ऊपर पाव करके नीचे गिर जाते है ॥६४०॥

येळुवा यदिरट्टि इरट्टिय दाय् ।
वळुवा दिरुवाय् पुरै दोरुं वरा ॥
वेळुदा नरग तियल् बा यवैडयू ।
ट्टोळिया दूविळुं तेळुमोजनये ॥६४१॥

अर्थ—इस प्रकार प्रथम नरक मे जितने नारकी ऊपर उछलते है, उसके १५३ योजन तक ऊपर उछल कर नीचे गिर जाते है। इस प्रकार वृद्धि होकर सातवें नरक मे रहने वाले जीव ५०० योजन ऊपर उछल कर नीचा सर करके गिर जाते हैं। इसी प्रकार उनकी आयु है। तब तक इस नरक मे रहना पडता है। उस वक्त तक ऐसा ही दुख भोगना पडता है। वहा सुख लेश मात्र भी नही है ॥६४१॥

येरि वें पडैया लिवर् वीळ्ंदे ळला ।
रुळु वेंतुयरल्ल दुइंबु विडार् ।।
करुवागि कडुं परिणाम मिडै ।
येरिया वगैया युव याट्ट लिने ।।६४२।।

अर्थ—उस नरक में रहने वाले सभी नारकी जीव तीक्ष्ण आयुध को लेकर जिस समय नया नारकी नीचे गिरता है उस समय उस आयुध से गिरने वाले नारकी जीव पर प्रहार करते है और उस नये नारकी का शरीर चूर २ हो जाता है । इस प्रकार नारकी जीवो का शरीर खड २ होकर पुन जिस प्रकार पारा खड २ होकर जुड जाता है, उसी प्रकार उसका शरीर पुन जुड जाता है और दुख भोगता है ।।६४२।।

विनये तुयरत्तै विळैंप्पद लाल् ।
निनै वा शेयल् मट्रिलै नीडुयिरै ।।
मुनै मूट्टुवर् कीळ्ळ देवरिवन् ।
उनै मुन्निन शैंदन नेंड्रु डया ।।६४३।।

अर्थ—उस नरक मे रहने वाले नारकी जीव पूर्व जन्म मे किए हुए कर्मों के उदय से पुराने नारकी जीव नवीन नारकी को दुख देते हैं । कोई यह नही कहता कि तुमको दुख अभी नही दिया जायेगा, इनको मारो मत, इनकी रक्षा करो, ऐसा कहने वाले कोई नही मिलेगे । और भवनवासी देव उस नरक मे जाकर आपस मे कलह कराते हैं । वैर भाव की याद दिलाते हैं और आपस मे लडाते भिडाते हैं ।।६४३।।

कनर्मु मिडै इर्न्ड्रि येळु पशिया ।
लुन वेंड्रन वंदुलगत्तुळ नन् ।।
सिनै डल्लेन कायंद विरुंबि नैं नी ।
रणयुं बडिया लनया वडुमे ।।६४४।।

अर्थ—उन नारकी जीवो को अत्यन्त तीव्र भूख लगती है । उनकी खाने की तीव्र इच्छा होती है तब सभी नारकी जीवो को चारो ओर विष और तपे हुए लोहे की कढाई में गर्म पानी डालकर उस पानी को स्पर्श कराते ही सारा अग व हाथ पाव जल जाते हैं । वह आदित्य देव कहने लगा कि हे श्यामवर्ण शरीर धारण किये हुए नारकी सुनो ! ।।६४४।।

मेरु नेरिरुप्पु वट्टै इट्टवक्कनत्ति नुळळे ।
नीरेन उरुक्कुं शीत वेप्पंग निड्र कीळ्मे ।।
लावं मीलरिवन् ट्रदं तूलिनैं दाव तन्निर् ।
कार मगिल वण्ण शीत वेप्पंगळिड कडाय ।।६४५।।

अर्थ—उस नरक भूमि मे इतनी उष्णता रहती है कि यदि एक लोहा का भारी गोला डाला जावे तो वह लोहे का गोला भी गल जाता है। इतनी वहा उष्णता रहती है। और उसके नीचे की भूमि महान शीत भूमि है। चौथे नरक मे उष्णता रहती है। पाचवे नरक मे शीत उष्ण दोनो रहती हैं। छठे और सातवे नरक मे केवल शीत ही रहता है। ॥६४५॥

वेंडिय वदक्कु मार विगुवनै येट्टु मेय्यिन् ।
मान् विल दोंड्र नम्मै मारु मुन् शेय्य वंदन् ॥
कोंडिय पावत्तालेळ् नरगत्तु मिरट्टि कीळ् कीळ् ।
मूंडत्ति मरुगित्ति मे मरुगुं तीमि विनैगळाले ॥६४६॥

अर्थ—नरक मे नारकी जीवो की इच्छा के अनुकूल कोई वस्तु नही मिलती है। वल्कि उनकी इच्छा के विपरीत ही मिलती है। आठ प्रकार के वैक्रियिक उन नारकियो को दुख देते है। वहा के नारकी जीव पाप कर्म के किये हुए कार्यो को याद दिला कर परस्पर कलह निर्माण कर पुराने नारकी उनका तमाशा देखने खडे हो जाते हैं। उनके किये कर्म के अनुसार इस प्रकार दुख का अनुभव करते है ॥६४६॥

ईयल्वि नाम् तुंब मेड्रु मेळ् नरगत्तु नींगा ।
मयरिगळ् शैव वेल्लां वंदु वंदुट्रु नींगुम् ॥
पुय लुरु तडक्कै वेंदे पुलसु तेन् कळ्ळै युंडा ।
लुयरुला वगैर् शंवै युरुविक वाय् पेंगिड्रारे ॥६४७॥

अर्थ—हे नारकी! पूर्वजन्म मे तू विभीषण नाम का राजा था। तूने रागद्वेष द्वारा पाप सचय करके इस नरक मे जन्म लिया है। इसलिये हे नारकी! इन सात नरको के दुखों से ये नारकी जीव मुक्त नही होते हैं। जितना २ उन्होने वाधा है उतना २ भोगना पडेगा। पूर्वजन्म मे मद्य, मास, मधु के सेवन करने के फल से इस नरक मे पैदा होने वाले जीवों को पुराने नारकी जीव अत्यन्त घोर कष्ट व वेदनाए देते हैं ॥६४७॥

अरमरि वडक्क मान्मै कुडि पिरप्पडिय वंदिर् ।
पिरर् मनै नलत्तिर् शेरंदार् पेरळर् कुंट्ट तन्निन् ॥
मुरग वेंदुरगं सेप्पु पावै यै मुयंग मूचित् ।
धरिवळिदल वंदाट्टा तरट्रु गिड्राग ळैया ॥६४८॥

अर्थ—हे नारकी सुनो! ज्ञान, सयम, उत्तम कुल, उत्तम जाति का नाश करके दूसरे की स्त्रियो के साथ भोग भोगने से उस पाप के फल से यह पाप के कारण लोहे के खभ को गरमकर उसमे आलिंगन कराते हैं। उसके दुख के कारण वह महान शोक करता है। ॥६४८॥

वून् सुवै तुरुदि योरा रुळ्ळ्त्तिर् कोडिय रागि ।
कून् शिलै कनैयोडेदि कोलै तोळिल् पुरिदु वंदार् ।।
तान् शेलविट्ट नाय् पोर् कडिय नाय् कवर वंजि ।
वान् शिलै इलव मेट्रि वंडु वीळ्ंदरट्रु गिड्रार् ।।६४६।।

अर्थ—अहिसा व्रत को नाश करके अपने हाथ मे लिये शस्त्र बाण, धनुष के द्वारा जीवो की हिसा तथा घात करने से, उस हिसा मे सतोष मानने से और उन जीवो का मास खाने से, खाने की अनुमति देने से,मास आदि की बिक्री करने इत्यादि पापो से यह जीव नरक मे उत्पन्न होते है । और वह नारकी जीव कुत्ते का रूप धारण कर नारकी जीवो को काटता है । काटेदार वृक्ष पर चढता है । और वहा काटे चुभने पर वह नीचे आकर गिर जाता है । ।।६४६।।

मनै यरम मरंदु मड्रि निड्रु वान् कुडिकनैयत् ।
धनं वलि यदनिन् वांगि शालवुं तळर्वु शैदार् ।।
नुनै मुडिविलाद मुळ्ळिन् मद्दिगं पुडयि नुंगि ।
निनै वरु तुयरं तुयित्तु नेडिदुयिर् पार्ग ळैया ।।६५०।।

अर्थ—हे नारकी सुनो ! अर्हंत भगवान के द्वारा कहे हुए धर्म को न ग्रहण कर अधर्म को स्वीकार कर दूसरे की सपत्ति को बल द्वारा छीन लेना वाला जीव इस पाप कार्य के कारण नरक मे जन्मता है । काटे से युक्त डडो से, लोहे के घन से उस नारकी जीव के सिर मे मारते हैं । उससे नारकी जीव का मस्तक चूर २ हो जाता है और उसको महान दुख होता है ।।६५०।।

वलइ लुइर् वार्यदन् मारुविलै कोंडार् ।
निलैय गळ्ु वरिनीनं वदोळ्ग निड्रार् ।।
विलइन् मुडै कोडुनलै येविनर्गळ् कंडाय् ।
निलैइल् पेरुं शीर्कुळिर निड्रु रुळल् गिड्रार् ।।६५१।।

अर्थ—जाल को नदी मे बिछा कर मछली को पकडकर मारकर उसको बेचकर जो प्राणी अनाज धान आदि खरीदता है उस जीव को वे नारकी जीव शूल स्तभ का निर्माण कर उस पर बिठा देते हैं । ऐसे वह नारकी जीव अत्यन्त पूर्वजन्म के पाप के कारण दुख सहता है । पूर्वजन्म मे मास को प्रेम से जो खरीदता है, खाता है, बेचता है उन प्राणियो को वे नारकी नरक मे महान दुर्गंधित खड्डे मे डालकर दुख देते है ।।६५१।।

इल्लै युइर् वल्विनै इरंद वर् पिरप्पेन ।
सोल्लिनवर् सेंवुरुक्कि वाइर् पेंदुइर् वार् ।।
कल्वि योडु पुनरंदु कडै नल्लोळुक् मेन्वां ।
रेल्लैइल वेंतुयर मैदि युळल् गिड्रार् ।।६५२।।

अर्थ—जीव नाम की कोई वस्तु नही है, पाप पुण्य नही है, स्वर्ग मोक्ष नही है, एक बार जीव मरने के बाद उसका पुनर्जन्म नही है–ऐसा कहने वाले नास्तिक जीवो को नरक मे तावे को गलाकर उनके मुख मे डाल देते है। और भगवान के द्वारा कहे हुए आगम का तिरस्कार करके सम्यक्त्व हीन होकर अधर्म का प्रचार करने वाले तथा सम्यक्चारित्र आदि कुछ नही है ऐसा कहने वाले को नारका जीव अवर्णनीय दुख देते है। ६५२।।

पौयुरै पुनैंदु पोरुळ् वांगि नवर्गळ् कंडाय् ।
कैयुगिरि नूशीय वै कायंद शेरिप्पुंवार् ।।
वेंय पुगळ् मादवरै वैदनर्गळ् कारी ।
नैयुरुविक वायिर पेय निंड्रु सुळल्गेंड्रार् ।।६५३।।

अर्थ—असत्य वचन को बोलकर दूसरे की सपत्ति को हरण तथा उपार्जन करके आजीविका करने वाले लोगो को नरक मे पुराने नारकी छोटी २ सुइयो को गर्म करके उनके नाक मे चुभा देते है। महातपस्वी मुनियो की भक्ति स्तुति करने वालो की निंदा करने वालो को नरक मे नारकी जीव उनका रक्त और विष को उनके मुख मे डालकर उनको मार डालते है।।६५३।।

वोळुविकनै येळित्तुड नळुक्कुरणर् वुरैत्तार् ।
तुळुक्कन लिय पुडै पुडैत्तु विळु गिंड्रार् ।।
वळुविकनदर् नन्नेरि यिन् मद्दिगै येडुत्तु ।
विळुप्पर वदुक्क विनैये कोडिय देंवार् ।।६५४।।

अर्थ—सम्यक्चारित्र को नाश। र कुमति, कुश्रुति ऐसा धर्म का प्रचार करने वाले जीवो को नरक मे नारकी जीव उनके शरीर मे शस्त्रो से घाव करके अनेक प्रकार के छोटे २ कीडे उत्पन्न करके उनको अत्यन्त दुख देते है। सत् शास्त्र तर्क आदि प्रमाण द्वारा सिद्ध आगम की निंदा करने वाले उस दुराचारी के शरीर को खड २ करके महान कष्ट देते है।।६५४।।

मिक्क येगुळि कनली इटदु नगर उुट्टार् ।
सेक्कुर लिडैपल तिलत्ति नेरि गेड्रार् ।।
चक् कर मडैद पिन् नरत्तिनै मरंदा ।
रेक्कत्तुनै मिक्क तुयरत्तिडै युळैपार् ।।६५५।।

अर्थ—अत्यन्त क्रोध से दूसरे का घर जलाना, घास के ढेर को जलाना आदि पाप के कारण जैसे घाणी मे तिल को पेल देते हैं उसी प्रकार नरक मे घाणी मे डालकर पेलने हैं। राजा की आज्ञा भग करके इतर लोगो की सपत्ति हरण करने वालो को असह्य वेदनाए देते हैं।।६५५।।

कोलै कळवु पौ पोरुळि नाश इन् मगिळ्दा ।
मलइन् मिशै वेट्टेन उरुट्ट विळुगेंड्रार् ।।

कुलनल कुडिप्पेरिय कर्पळिय मेवुं ।
पुलै मगळिर् कार कळिर् पुळुक्कळेन पोरिवार् ॥६५६॥

अर्थ—जीव का वध करना अथवा हिंसा करना, दूसरो की वस्तु चुराना, असत्य बोलना, अति परिग्रह का सपादन करना,अधिक की आशा करना ऐसे जीवो को नरक मे वृक्ष पर चढाकर उसे नीचे गिरा देते हैं। इससे उनको महान दुख या कष्ट होता है। अपने पति को छोडकर अन्य पुरुषो के साथ विषयभोग करने वालो को वे नारकी जीव जैसे अग्नि मे पडा हुआ जीव तिलमिलाता हुआ दुखी होता है उसी प्रकार नरक मे अग्नि डालकर उनको जला देते है ॥६५६॥

तोलिनै उरित्तिडु निनत्तडि सुवेत्तार ।
सोलि पुग नी नियुं सोरिय उरिंगिड्डार् ॥
मालै कुडै मन्नवरै वंजनै शैदमैच्चर् ।
शालक्कळु निरत्ति लुरत्तामं कनै तिरुप्पार् ॥६५७॥
इनैय तुयरेन्नारिय उडैय वेळु निलत्तिल् ।
विनई लिरडा नरगिन वीळंद उनै मीटल् ॥
मुनिवरिरै तनक्कु मरिदाय उळदागुं ।
इनि येनुरै येन्निनु मिदं शिरि दुरैप्पेन् ॥६५८॥

अर्थ—जीवो के शरीर के चर्म को खीचकर खाने वाले मनुष्य को वे नारकी जीव जब वह चलता फिरता है तब उस पर आग बरसाते है। उस अग्नि से उस नारकी जीव का चर्म जलाते हैं। इससे वह अत्यन्त दुख पाता है। उस दुख का वर्णन करना यहा अशक्य है। मानव प्राणी को रक्षण करने वाले राजा के साथ द्रोह करना इत्यादि कपट बुद्धि से किये हुए अत्याचारी को नरक मे दुख देते समय वह नारकी जीव हाहाकार मचा देता है। उस समय वहा के नारकी कहते है कि इस पाप कर्म के फल से तूने नरक मे जन्म लिया है। अब तुमको इस नरक से छुटकारा कराने के लिये गणधर अर्हंत भी शक्य नही है। कोई से भी साध्य नही है और इसके सिवाय कोई धर्मोपदेश करने वाला भी नही है। इसलिए हे वासुदेव! इस समय तेरी धर्म मार्ग को ग्रहण करने की इच्छा है तो मैं दूसरा मार्ग बता देता हू। तुम सुनो! ॥६५७॥६५८॥

पोरि पुलं वेरुत्तेळु तवत्तमर नागि ।
मरत्तोडु मंलिदोळिरु माळि मन्न नागि ॥
पोरि पुर मिशै पोलि मनत्तोडु पुनर्दाय ।
करुत्तु मुडै मेनि नरगत्तिड गण मानाय ॥६५९॥

अर्थ—हे नारकी! पचेन्द्रिय विषयो को त्यागकर वैराग्य को प्राप्त होकर तूने देवलोक मे जन्म लिया। तत्पश्चात् वहा से चयकर मध्यलोक मे कर्मभूमि मे आकर चक्रवर्ती

पद को प्राप्त किया। भगवान अर्हत देव के यथार्थ स्वरूप को न जानकर पंचेंद्रिय विषयो के कारण तूने नरक मे जन्म लिया है ॥९५९॥

अरत्तोडु पुनरंदमर लोग मडै वायो ।
मरत्तोडु भंलिदेळ् निलत्तु मुरै वायो ॥
तिरत्ति निव्वि रंडयु निनैत्तुरदि सेरि ।
नरप्पोरु पोरुळुरैप्प नुन दल्लल् केंडु वण्णं ॥९६०॥

अर्थ—अब दया रूपी धर्म के आचरण करने से तुमको सद्गति प्राप्त होगी। इसके अतिरिक्त नरक से छुटकारा पाने के लिये कोई दूसरा उपाय नही है। यदि तुम इससे अधिक क्रोध करने वाले होगे तो इस नरक के मुकाबले मे दुख अन्य ठिकाने पर नही है। इन दोनों के फलों को भली प्रकार देखो और आत्मा मे सुख उत्पन्न करने वाले मार्ग को ग्रहण करो। मैं आपको दुख के नाश करने वाले उपदेश को कहूँगा। सुनो! ॥९६०॥

मुनैत्तुन् मिशै वंदवर् कन् मेन् मुनिद लिड्रि ।
निनै तिडिडु मुन्नै यन्बि पयन देंड्रे ॥
मनत्तिन् मरमेविन् मिगु पावम् वरुम् वदा ।
लुनै पिनै विलगि निडै युयित्तिडरै याकुं ॥९६१॥

अर्थ—हे नारकी! इस नरक मे तुझको दुख देने वाले नारकी जीव तुम्हारे ऊपर क्रोध न करे, तुमको कष्ट वेदनाएं न देवे-ऐसे मार्ग का तुम आगे के लिये आचरण करो। इस समय तुमको मन मे ऐसा विचार करना चाहिये कि मेरे पूवजन्म के किये हुए पापो का फल है। जो मुझे ही भोगना पडेगा। यह मेरे द्वारा किए हुए है। इसको सहन करने का साहस होना चाहिये। इसको भोगे बिना मेरा छुटकारा नही होगा। इसके अलावा और कोई उपाय नही है। कर्म के नाश करने का धर्म के अतिरिक्त और कोई अन्य उपाय नही है। ऐसा आदित्यदेव ने विभीषण को कहा ॥९६१॥

अरिवन् मोदलैवर् शरणं पोगदियायिर् ।
पिरवि मरु सुळिइन् वळि येळुगुदल् पिळैति ॥
करुवु शेरि उरुद लोडु वत्तु वै येळित्ता ।
लिरुदि इल् पल् तीविनै कळैदि येडु निंड्रे ॥९६२॥

अर्थ—पंचपरमेष्ठी की पूजा स्तोत्र आदि को सदैव अपने मन पूर्वक करते रहने से तेरे चारो गति के भ्रमण के दुख का नाश होगा। तुम अपने क्रोध के द्वारा आत्मा के गुण का यदि नाश करोगे तो पुनः २ तुमको ससार मे भ्रमण करना पडेगा ॥९६२॥

वीटिनै विळंकु नल काक्षिनै विट्टि ।
मोदु नर कत्तुयर् मुळंगळलिन् वीळंदाय् ॥

मीट्टु नरगत्तिरै विळाद वगै वेळ्ंडिर् ।
काक्षितलै निड्रोळ्गु कादन मुद नीते ।।९६३।।

अर्थ—मोक्ष को प्राप्त करने वाले सम्यक्त्व को छोडकर हमेशा अग्नि के समान आत्मा को जलाने वाली यह समार रूपी दावाग्नि है। उस दावाग्नि मे जन्म लेकर अनादि काल से दुख भोगते आये हैं। इस कारण पुन. नरक मे अब मैं कभी न आऊं ऐसी यदि तुम इच्छा रखते हो तो अन्य द्रव्य की अपेक्षा से रहने वाले बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहों को त्याग करके भगवान जिनेन्द्र देव के कहे हुए वचनो पर श्रद्धान करो तत्पश्चात् हेय उपादेय को ठीक समझकर हेय पदार्थ को तजकर, उपादेय को ठीक ग्रहण करने वाले बनो ।।९ ३।।

वेगळ् मद मायै मिगै पट्रलिवै विनैकुप् ।
पुगुदुं वळि नल्ल वल पोरै वळैवु शम्मै ।।
नगै योडु वंतिद लिवै नल्वि नैकु वायदल् ।
पगै युरवु पणिवु तेळि विन् वंगळै पयक्कुं ।।९६४।।

अर्थ—क्रोध मान, माया और लोभ ये चार प्रकार के कषाय पाप कर्म के आस्रव के उत्पन्न करने वाले हैं। उत्तम क्षमा,मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, सयम, तप, त्याग,आकिंचन और उत्तम ब्रह्मचर्य इन दस धर्मों तथा आगम पर श्रद्धा भक्ति स्तुति आदि करना। दातारों के सात गुणो से तथा पुण्य के उदय से दिगम्बर मुनि ऐसे उत्तम सत्पात्र को दान देना, यह सभी पुण्य का कारण है। इसको भली प्रकार जानकर इन्द्रिय सयम और प्राणि सयम इन दोनो सयम, अभ्युदय नाम के नि श्रेयसपद अर्थात् मोक्ष पद को प्राप्त कराने वाले हैं ।।९-४।।

येंड्रि गदि नींगु वदेनंड्रेद मुरवेडां ।
निड्र विनै नींगिय कनत्तिदवु नींगु ।।
मंड्रित्तुयर् नींगु वदर् कर्व मेळ् मागि ।
लोड्र मुनै लिड्र विनै योरुवकु मिनि मिक्के ।।९६५।।

अर्थ—यह नरक के दुख मुझ को छोडकर कब जायेगे—इसका दुख तथा चिंतवन मत करो तथा आर्तध्यान मन मे मत करो। इस प्रकार विचार करने से ससार के दुख उत्पन्न नही होगे। इसलिए तुम नरक के दुखो को शाति से सहन करो। सारे दुख समाप्त हो जायेंगे ।।९६५।।

सेंड्र डुनदायुग मुम् सेरिदु पेरि दोळिय ।
निड्र पेरुंतुय रिदवु नींगु शिल नाळिल् ।।
वेंड्र वर तमर नेरि इन् मै युनरु काक्षि ।
योंड्रि योळि गुण् कन् विनै येट्टु मुडन् केडुकुं ।।९६६।।

अर्थ—तुम्हारी नरक की आयु बहुत बीत चुकी है अब थोडा समय और बाकी है वह भी पूरा जायेगा, चिन्ता मत करो। इसलिये तुम आगे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और

सम्यक्चारित्र को प्राप्तकर अर्हंत भगवान द्वारा कहे हुए धर्म को मन मे धार कर धर्मध्यान का स्मरण करते रहो। इस प्रकार करते जाओगे तो थोडे ही दिनो मे आत्मा मे लगे हुए कर्मों का नाश होकर इससे शीघ्र ही मुक्ति पा लोगे ॥९६६॥

वळरि युळुवै वाइन् मदकरि कै यी नजिर् ।
शूळेरि यगत्तिर् पोरिर् सुरा वेरि कडलिर् कानि ॥
नीळर नागि निकुं निनरयत्तु विळामर काकु ।
केळिनि येरत्तै पोल किडेप दोंड्रिल्लै कंडाय् ॥९६७॥

अर्थ—दुष्ट मृग, सर्प, व्याघ्र, सिंह आदि और मदमस्त हाथी आदि को जगल मे चारो ओर यदि आग लग जावे तो बीच मे रहने वाले जीवो को, युद्ध भूमि मे योद्धाओ को तथा समुद्र मे रहने वाले जीवो को सकटकाल मे धर्म ही शरण है और कोई शरण नही है। उसी प्रकार नरक मे पडे हुए जीवो की रक्षा करने वाला भी धर्म ही है। ऐसा जानकर अब तुम भी यही भावना करो कि धर्म ही सच्चा साथी है अन्य कोई नही है। ऐसी श्रद्धा रखकर धर्माचरण करो। अब उस धर्म के स्वरूप को मैं कहूगा ॥९६७॥

उंवर तं मुलगि नूयीकु मुलगिनु किरै मै याकुं ।
वेंविय पिरप्पिन् वांगि वीटिन् कन् वेक्कु मैये ॥
नम्वि नल्लरत्तै पोलुं तुनै इल्लै नमक्कु नाडिन् ।
कंवमि निलै में यगि त्तिरु वरुं कैकोळ्ळेंड्रेन् ॥९६८॥

अर्थ—अर्हंत भगवान के द्वारा कहे हुए धर्म को धारण किये हुए जीव को देवगति का सुख मिलता है और अन्त मे मोक्ष सुख भी इस धर्म के प्रभाव से मिलता है। इसलिये हे मेरे भाई! तुम्हे आत्म-सुख को देने वाले इस धर्म के अलावा और कोई नही है। ऐसा तुम स्वीकार करो ॥९६८॥

येंड्रलु मिरप्प्वेन् कनलत्तु विन्निलत्तु वदिन् ।
ट्रोंड्रला उरुदि सुन्निरुं मोळि घळि निल्लेने ॥
निड्रन नेंड्रु मिद निरयेत्तु नींग लिड्रि ।
येंड्रव निरैज नंड्रेंड्रि यानेन दुलगं पुक्केन् ॥९६९॥

अर्थ—इस प्रकार धर्मोपदेश उस नारकी जीव को कहते ही वह नारकी पुन: इस प्रकार हाथ जोडकर कहने लगा कि हे स्वामी! तुमने मेरे प्रेम से देवगति से आकर मुझे नरक से उद्धार करने के लिये धर्म का उपदेश दिया है। यदि आपके द्वारा दिये उपदेश के वचनो का उल्लघन करके चलूगा तो पुन मुझे और कहा सुख मिल सकता है? उस नारकी ने चरणो मे पडकर नमस्कार किया। तत्पश्चात् मैं उसको धर्म का उपदेश व सद्धर्म वृद्धि हो ऐसा कह कर अपने स्वस्थान को आ गया ॥९६९॥

इति आदित्यदेव द्वारा विभीषण को नरक मे उपदेश देने वाला दसवा अध्याय समाप्त हुआ।

॥ ग्यारहवां अधिकार ॥

* वीतभय और विभीषण का मोक्ष जाना *

निरै पोरै शांति योंवि निड् दोंड्रिन् में सिदि ।
तरिवन् शरण मूळ् गि याष्इर् करुळि येंदप् ॥
पिरवि नोरु विच्चित्त विरंद पेयिरुविर् पेट्र ।
वर नेरि यदयिन् वंदिग कर शिळ कुभर नानां ॥९७०॥

अर्थ—इस प्रकार वह आदित्य देव विभीषण को उपदेश देकर पुनः देवगति में आ गया। वह नारकी जीव क्षमा आदि परिणाम को धारण करके प्राणि सयम और इन्द्रिय सयम को निरतिचार पालन करते हुए संसार का सुख शाश्वत नही है-ऐसी मन मे भावना करते हुए अर्हंत भगवान का स्मरण करते हुए जिस प्रकार सिद्ध रस मे लोहा गलाने से स्वर्ण बन जाता है उसी प्रकार वह नारकी जीव अपनी आयु पूर्णकर वहां से चयकर उसने मध्य-लोक मे एक राजा के घर राजपुत्र होकर जन्म लिया ॥९७०॥

मंट्रिद दीपत्तिन् कनिरेवत्त दयोति याळु ।
कोट्र वन् शिरिवन् माविन् कादली शुसी में कोंविन् ॥
पेट्रि याळ् वइट्र् शीदामावेनुं शिरुव नागि ।
कोट्रवर् कुलंगळेंन्नुं कुल मलै विळेंवकै योत्तान् ॥९७१॥

अर्थ—वह नारकी जीव इस मध्यलोक मे जम्बूद्वीप से संबधित अयोध्या नगरी के श्री वर्मा नाम का जो राजा राज्य करता था जिनकी पटरानी का नाम सुषमा देवी था, उसके गर्भ मे आकर पुत्र रूप मे जन्म लिया, उसका नामकरण सस्कार करके सुदामा ऐसा नाम रखा गया। वह सुदामा अपने वंशके लिये दीपक के प्रकाश के समान प्रकाशमान हो गया ॥९७१॥

विनै येत्तिन् मुनिव नुत्तु विजइन् वळरंद वीर ।
निनै वत्तु तीव वेंदर् निलै केडुत्तरसु मेवि ॥
कनमोत्यो वुइरकु मोंडु कमल पून तडत्तु वैय्योन् ।
ट्रनै योत्तु मरै मुगत्तार् तम्मुलै तोयियर् पट्टाण् ॥९७२॥

अर्थ—वह सुदामा राजकुमार धीरे २ वृद्धि को प्राप्त हुआ और सपूर्ण शास्त्र व शस्त्र कला मे अत्यन्त प्रवीण हो गया। और सर्वगुण सम्पन्न होकर अपने विरोधी शत्रुदल को जीतने की शक्ति प्राप्त करने वाला हो गया। जिस प्रकार मेघ गर्जना करके जगत के जीवों को शाति करने के लिये पानी वृष्टि करता है, उसी प्रकार वह सुदामा अपने राज्य मे गरीब

जनता को दान देने वाला हो गया और कमल पत्र के समान अत्यन्त सुन्दर कन्या के साथ उसका लग्न हो गया ।।६७२।।

अळलिडै वंदमैंद नौ वळ रणियु मेल्लै ।
निळलिडै इरुप्पदे पो निरयत्तु तुयरं तीर ।।
कुळलन मोळिई नार्द कुंवि मुलै तडत्तु वैगि ।
पळवि ने तुनिक् पान्मै वंदुदित्त नाळाल् ।।६७३।।

अर्थ—जिस प्रकार एक मनुष्य गर्मी के दिनो मे धूप मे जाते समय उस धूप के ताप से अत्यन्त व्याकुल होकर वृक्ष की छाया के नीचे बैठकर विश्राम करता है, उसी प्रकार वह सुदामा राजकुमार पूर्वजन्म मे अनुभव किये हुए दुखो को भूलकर पचेंद्रिय सुख मे मग्न होकर अपनी पटरानी के साथ अनेक प्रकार के विषयभोगो मे रत हुआ, काल व्यतीत करने लगा। उस समय मे इस प्रकार इन्द्रिय भोगो मे लीन होने पर भी पूर्वजन्म के तीव्र पुण्योदय के कारण आत्मा मे जागृति थी ।।६७३।।

अंतमिल् मिल् विनैकु मारा मनंदमा मुनिवन् पांद ।
वंदवन् वनगि माट्रिन् वडिवेला मुडिय केटिट् ।।
डिंदिर विभवं तन्नं येरि युरु शरुगि नींगि ।
वेतिरल् वेंदर् वीरन् मेत्तव दरस नानान् ।।६७४।।

अर्थ—कर्म नाश करने के लिये उद्यत सम्यक्त्व से युक्त महा तपस्वी व्रतधारी एक दिगम्बर मुनि बिहार करते २ आये और अयोध्या नगरी के उद्यान मे विराजे। मुनिराज के आगमन के समाचार सुनकर उस सुदामा राजा ने उन मुनिराज के पास जाकर नमस्कार किया और उनके द्वारा कहे हुए आत्मतत्त्व के उपदेश को सुनकर वैरागी होकर जिन दीक्षा ले ली। ६७४।।

योंगं कन् मूंड्र ुम शिदै युडन् सेल वडंगि युट्र ु ।
मोगङ् कन् मुदुगिट्टोड मुनिमै यें मुगडु कोंडु ।।
नागंग नडुंग नोट्र रादनै नान्गि नींगि ।
भोगगंळ् पुगळ लाट्रा पोम्मनर् कर्पं पुक्कान् ।।६७५।।

अर्थ—जिन दीक्षा के ग्रहण करने के बाद वह सुदामा मुनि मन, वचन, काय को अपने वश मे करके इन्द्रिय सयम और प्राणि सयम का पालन करते हुए मोहनीय कर्म का सवर करने वाला हो गया। इस प्रकार सुदामा मुनिराज के तपश्चरण के महत्व को समझकर स्वर्ग से देव भी आकर भक्ति पूजा करने लगे। इस प्रकार वे मुनि घोर तपश्चरण करते हुए समाधि मरण करके ब्रह्मलोक मे देव पर्याय धारण की ।।६७५।।

तन्नुळ्ळे निड्रु तन्नै तानरगत्तु ळुइक्कुं ।
तन्नुळ्ळे निड्रु तन्नै तान्रुरगत्तु वैक्कुं ।।
तन्नुळ्ळे निड्रु तन्नै तान् ट्रड्डु माट्रु लुइक्कुं ।
तन्नुळ्ळे निड्रु तन्नै तान् सिद्धि यगत्तु वैक्कुं ।।६७६।।

अर्थ—ज्ञान दर्शन से युक्त आत्म द्रव्य अशुभ योग मे अशुभ परिणाम होकर भ्रमण करने से वह जीव नरक मे जाता है। उससे रहित शुभोपयोग रूप अपने स्वभाव मे परणति होने से देवगति को प्राप्त कर लेता है। और शुभ अशुभ परिणति से देव, मनुष्य नारकी और तिर्यंच गति को प्राप्त कर लेता है। वह जीव शुभाशुभ परणति को त्यागकर के शुद्धोपयोग मे परणति होने से स्वगुणोपलब्धि अर्थात् मोक्ष सुख को प्राप्त कर लेता है ।।९७६।।

येन्नु मिम्मुळिक्कि लक्काय वंदन मिदनै कंड ।
पिन्नु मन्नरत्तै तेरार् पेदै मे यादि यार्गळ् ।।
पन्नगर् किरैव पंचानुत्तरं पुक्क पैदार् ।
मन्नन् वज्जरायुदन् कान् वंदु संज यन्तनानान् ।।६७७।।

अर्थ—इस प्रकार अर्हंत भगवान के द्वारा कहे हुए आगम के अनुसार मेरे न चलने से अब तक इस ससार मे परिभ्रमण करता आया हू। इस जैन धर्म के महत्व को समझने के बाद भी इस मोहनीय कर्म के उदय से यह जीव अज्ञान दशा को प्राप्त होता है। यह कर्म महा बलवान है। हे धरणेंद्र सुनो! अहमिंद्र कल्प से उत्पन्न हुए सिहसेन नाम का जीव विदेह क्षेत्र से सबधित हुआ जीव गंध मालनी नाम के देश मे वीतशोक नाम के नगर मे सजयत नाम का राजा होकर तपश्चरण करके मोक्ष सुख को प्राप्त हुआ ।।६७७।।

पागत्त मुळिइ नारो डिवत्तु पडिदु शोदा ।
मागर् पत्तिळिदु मैदन् शयंदनाय् वळरंदु माय ।।
भोगत्तु किवरि सित्ति पुगुदु नरकाक्षि भोग ।
नागत्तु किरै मै पूंड नंवि निन् वरवि देंड्रान् ।।६७८।।

अर्थ—सुदामा नाम का जीव अच्छे तपश्चरण के फल से ब्रह्मकल्प मे जन्म लेकर वहां की आयु को पूर्ण करके जयंत नाम का राजपुत्र होकर कई दिन के पश्चात् ससार से विरक्त होकर जिन दीक्षा ग्रहण कर ली और घोर तपश्चरण करते हुए उस धरणेंद्र की सपत्ति के समान मुझ को भी सपत्ति मिलनी चाहिये ऐसा विचार करके निदान बध कर लिया और समाधिमरण करके भुवनत्रय कल्प मे देव हुआ और वह जीव तू ही है। इस प्रकार आदित्यदेव ने धरणेंद्र से कहा ।।६७८।।

सेगोत्त मनत्त वेडन् ट्रीविनै तुरप्प सेंड्रु ।
मागवि पेट्र वंद वायुवुं कळिदु मन्मेल् ।।

नागत्तिर् टोंड्रि मूंड्रा नरगत्तु पुक्कुत्ति में ।
वेगत्तिल् विलंगि लैदु पोरि युळुम् सुळंड्र् ु सेल्वान् ।।९७९।।

अर्थ—हे धरणेंद्र सुनो ! यह अत्यन्त निंद्य पाप कर्म को किया हुआ वह भील मरकर सातवे नरक मे गया । और वहा से चयकर सर्प योनि मे जन्म लिया और वहा से मरकर तीसरे नरक मे गया । इस प्रकार पर्याय को धारण करके एकेंद्रिय आदि अनेक पर्याय को धारण करने वाला हुआ ।।९७९।।

वंदिदं भरदत्तिन् कन् भूतर मन वनत्ति ।
नंदरत्तनिइर् सेल्लुं नदि यथि रावदिइन् ।।
ट्रन् करै तापदर्कु तलै वन् कोश्रृंगन् पन्नि ।
मन्दनसेर् संगि मैदन् शिरुगम् शेर् मिरुग नानाम् ।।९८०।।

अर्थ—इस प्रकार वह जीव अनेक पर्यायो को धारण करता हुआ जम्बू द्वीप सबधी मध्यलोक मे भूतारण्य नाम के जगल मे होकर जाते समय ऐरावत नाम की नदी के किनारे पर तपस्या करने वाले उन तपस्वियो मे एक क्रोसिह नाम का अधिपति था, जिसके शखिणी नाम की एक स्त्री थी, उसके गर्भ मे आकर उसने जन्म लिया । इसका नाम मृगसिंह रखा गया ।।९८०।।

परल् मिशै किडंदु मुळ्ळिन् पलगैर् ट्रुयिड्रुम् पंज ।
वेरि नडु पगलि निंड्र् ु मिरावडां वरुंड पुक्कुं ।।
करै युडै मडैर् सेरं्दु कलैन् पिन्नोडि काम ।
तुरै युडै युवरिर् शीत कुडंगळै तळुवि तोळाल् ।।९८१।।

अर्थ—वह मृगसिंह नाम का तापसी एक कठिन शिला पर बैठता और लोहे के काटो पर सोता, पचाग्नि तप को तपता, वर्षाकाल मे खडा रहता, शीतकाल मे तालाब मे बैठता, ऐसा वह तापसी तप करता था ।।९८१।।

तूंगुरि किडंदुम् नल्लार तोळिनै पुनंर्दु तूय्मै ।
दांगि यतवत्तिर् सेल्वान् वानत्तोर् विंजै वेंदन् ।।
तीगिला विजु मालि तिवितिलगत्तु नादन् ।
आंगु वंदवनें कडांगन्नै तानिदानम् शैदान् ।।९८२।।

अर्थ—स्त्रियो के भुजों को आलिगन करता, हेय उपादेय तत्व से रहित, इस प्रकार मिथ्या तप को करते समय, एक दिन पृथ्वी तिलक नगर का अधिपति विद्युन्माली अपनी विद्या के बल से आकाश मे जा रहा था। उस समय उस मिथ्यात्वी तापसी ने यह निदान बंध कर लिया कि ऐसी विद्या मुझको प्राप्त हो जाय तो ठीक है ।।९८२।।

मट्रिवन् ट्रनकु पोन ट्रवत्तिन् मेलेनक्कु वंदि ।
चुट्रमुं शेलवु वेदुम् तोक्कुड निर्कं वेंड्रि ।।
पेट्रि यैं निनैत्तु सेंड्र पिरैपिन् कनींगि वेळ्ळि ।
वेपिन् कन् वडाक्किर् सेडि कनग पल्लुवत्तु वेंदन् ।।६८३।।

अर्थ—उस मृगसिंह नाम के तापसी ने कौन सा निदान बध कर लिया? उसने यह निदान बध कर लिया कि मुझे अच्छे २ बधु मिले, आकाश मे गमन करने की विद्या प्राप्त हो जाय, चक्रवर्ती पद मिल जावे। मैं जो तपस्या करता हूँ इसके फल से मुझे उक्त सब मिल जावे। इस निदान वध से वह तापसी मर गया विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी से सम्बन्धित कनक पल्लव नाम के नगर मे वज्रदन्त नाम का राजा था।।६८३।।

वज्जिर दतंनुक्कुं मादर् वित्तु प्रभैकु ।
मिच्चयार् टोंड्रि वित्तुदंत नेंड्रियेव पट्टाण् ।।
वज्जिर पिळवु पोलुं वेरत्ताल् वंदपाव ।
तिच्चैं गै मुनिक्कु निवनंद वमच्चन् कंडाय् ।।६८४।।

अर्थ—उस राजा की पटरानी का नाम वित्द्युप्रभा था। उस रानी के गर्भ मे आकर वह तापसी पुत्र हुआ। उस पुत्र का नाम विद्युद्द्ष्ट्र रखा। वह अनन्तानुवधी क्रोध के उदय से संजयत मुनि को देखते ही क्रोधित हुआ सिंहसेन राजा के समय शिवभूति नाम का मंत्री अर्थात् वह सत्यघोष नाम का मत्री था। उस समय का किया हुआ वैर यहा तक नही छूटा, बल्कि प्रत्येक भव मे उपसर्ग करता आया है। ऐसा समझना चाहिये। इस प्रकार मैं कहने वाला तुम को मालूम हो गया क्या ? इस तरह उन्होने पूछा।।६८४।।

वेरत्ताल् वेंदर् केड्रु पगैवनाय वेय्य तुंव ।
भारत्तै मुडिय चंड्रान् पगैव नाय तनकुत्ताने ।।
वेरत्तै वेरु मिंड्रि वेदनुं वीटिळिब ।
भारत्तै मुडिय चंड्रान् पन्नगर् किरैव वेंड्रान् ।।६८५।।

अर्थ—इस प्रकार आदित्य देवने धरणेंद्र की तरफ देखकर कहा कि हे धरणेंद्र सुनो! एक भव मे सिंहसेन राजा पर किया हुआ शिवभूति द्वारा वैर इस भव तक तीव्र क्रोध के रूप मे शत्रु भाव से अब तक आ रहा है। तीव्र वध करके अनेक नरक गति आदि अशुभ गतियों मे दुख प्राप्त करने वाला तू हो गया। शुभ परिणाम को धारण किये हुए सिंहसेन राजा ने शुभ गति को धारण कर आगे चलकर मोक्ष गति को प्राप्त कर ली।।६८५।

मांदिरि नांग मापिन् वानरत्ति नागं ।
वेंतेरि नरगन् मिक्क मासुन नरगन् वेंडन् ।।

अंदमा नरगन् नाग मारळ नरगण् मट्रुम् ।
मैदन् सगिक्वु वित्तुदतंन् ट्रन् वरविदामे ॥६८६॥

अर्थ—उस शिवभूति मत्री ने अपनी पर्याय को छोडकर आगध नाम की सर्प पर्याय को धारण किया । पुन: वह शरीर को छोडकर चमरी मृग हो गया । उस चमरी मृग की पर्याय को छोडकर पुन: अजगर सर्प हो गया । उस पर्याय को छोडकर चौथे नरक मे गया । वहा से नरक की आयु पूरी कर इस मध्य लोक मे भील हो गया । भील की पर्याय छोडकर तीसरे नरक मे गया । उस नरक मे से निकल कर मृगसिह नाम का तापसी हुआ । वहा की आयु पूर्ण करके मरकर निदान बध कर लिया कि मैं चक्रवर्ती बन जाऊ । ऐसा बध करके वह विद्युद्दष्ट्र नाम का विद्याधर हो गया ॥६८६॥

मन्नवन् मत्तयानं शासारण् विर्ज वेंदन् ।
पिन्नै काविट्ट देवन् पेरिय वज्जरायुदन् पिन् ॥
पन्नरुं तवत्तिर् पचानुत्तरत्तमरन् पार् मेल् ।
मन्निय पुगळि नान् संजयदन् ट्रल् वरविदामे ॥६८७॥

अर्थ—राजा सिंहसेन मरकर के अशनीकोड नाम का हाथी हो गया । तत्पश्चात् वह हाथी पचाणुव्रत को धारण कर मरकर सहस्रार कल्प मे देव हुआ । तदनन्तर वहा से आकर विद्याधरो मे किरणवेग नाम का राजा हुआ । तत्पश्चात् इन्द्रिय भोग भोगकर वहा से विरक्त होकर अन्त मे दीक्षा लेकर घोर तपश्चरण करके समाधिपूर्वक मरण कर कापिष्ठ कल्प मे देव हुआ । वहा से चयकर वज्रायुध राजा हुआ । वहा के राजभोग को भोग अन्त मे वैराग्य को प्राप्तकर तपश्चरण करके पचानुत्तर विमान मे अहमिंद्र देव हुआ । वहा से मनुष्य लोक मे आकर मजयत मुनि होकर तपश्चरण करके मोक्ष चले गये ॥६८७॥

वैरत्तै योरुवर काकि युरुवर काकि युरुवर्कु पिरवि दोरुं ।
तुयरत्तै विळैत्तल् सोन्ना लिवरगळे सोल्ल वेंडाम् ॥
मयरि कन् मरत्ति नोंगि नाग पासत्तै वांगि ।
युइरोत्तिगिवनो दोड्रि योळुगुनी युरगर् कोवे ॥६८८॥

अर्थ—हे धरणेंद्र सुनो ! परस्पर आपस मे विरोध होने के कारण अनेक भव २ मे दुख सहन करना पडता है । यह बात तुम्हारे अनुभव मे प्रत्यक्ष मे आई होगी । इस समय सिंहसेन महाराज और शिवभूति मत्री इन दोनो का चारित्र ही वर्णन किया है । ये दोनो ही कथा नायक हैं । इस कारण अब तू विद्युद्दष्ट्र पर क्रोध करना छोड दो और उनको बधन से मुक्त करो और उन पर दयाभाव रखो ॥६८८॥

यॅड्रलु मिरैवन् ट्रेन्नरगत्तु ळिडुंवै तोर्ता ।
इन्ड्रु मिप्पिरवि येल्ला निड्रवारेनक्कु सोल्लि ॥

वेंड्रवररत्तिर् काक्षि विमल मदाग सैदा।
येड्रन किरैव नोये इन्न मुंड्रुरुळि सैवन् ।।६८६।।

अर्थ—इस प्रकार आदित्यदेव द्वारा कहा हुआ सुनकर धरणेंद्र आदित्यदेव से कहने लगे कि हे स्वामी ! मैं पूर्वजन्म मे नरक मे जब पडा था, तब तुमने वहा मुझे धर्मोपदेश दिया था। उसको सुनकर तुम्हारी कृपा से मैने इस समय चक्रवर्ती होकर जन्म लिया है। अब तुम मेरे ऊपर प्रत्येक भव में उपकार करते हुए आये हो, और मुझ मे सम्यक्त्व उत्पन्न किया है । इसलिए आप मेरे गुरु हैं · और आगे किए जाने वाले जो कार्य है उनको अब कहूंगा ।।६८६।।

विंजैइन् वलियिर् पोगि मेदक्कोर् तम्मै वव्वि ।
नंचिरै वैकुं वित्तु दंतन् ट्रन् कुलत्तु मिक्क ।।
विजयै परित्तु वीळंद शिर गुडै परवै पोल् ।
विजैमा नगरत्तुळ्ळे इरुत्तुव निवरै इंड्रे ।।६६०।।

अर्थ—विद्या बल से आकाश मे गमन करने आदि की जो शक्ति विद्युद्दंष्ट्र को प्राप्त है वह आगे के लिये विद्या रूप न रहे । जिस प्रकार पक्षी के पख टूट जाने के बाद वह पक्षी उड नही सकता उसी प्रकार यह विद्याधर कही विद्या के बल से भाग न जाय, ऐसा करेगे ।।६६०।।

येंड्रिडा उरैप वादित्ताव निप्पऴै पोरेन्न ।
पोंड्रिडा रवेंद कुळादि वर्ग ळेन्वेगुळि नींगा ।।
दोंड्रिडा उरैत्तु मेना निरैव निन्नरुळि नाले ।
मंड्रुलां कुळलि नार्के माविजै पनिशैगोंड्रान् ।।६६१।।

अर्थ—इस प्रकार धरणेंद्र की बात सुनकर आदित्य देव कहने लगा कि हे धरणेंद्र ! इस विद्याधर द्वारा कहे हुए अपराध को क्षमा करो । इस पर धरणेंद्र कहता है कि हे स्वामी सुनो ! मैं इनके द्वारा किये हुये अपराध के बारे मे विना प्रायश्चित्त दिये नही छोडूगा और विद्याधर की महाविद्या कभी भी इनको साध्य न हो, बल्कि ये विद्याए स्त्रियो को साध्य हो इस विद्याधर को साध्य न हो । और इसके अतिरिक्त इस पचम काल मे ऐसी विद्या किसी को भी साध्य न हो ऐसी मेरी इच्छा है ।।६६१।।

इव्वन्नं शैदिट्टेने लिरुट् पिळं पिरंडु मिन्नु ।
कव्विय तनैय मेनि कडैयर्तन् कळिप्प नाले ।।
येव्वळियानु मोडि येळिय वर तम्मै येल्लाम् ।
कव्वै गळ् पलवुं शैवर् मेलुवरु कालत्तेंड्रान् ।।६६२।।

अर्थ—पुन वह धरणेंद्र कहता है कि यदि मैं इस प्रकार नही करूंगा और विद्याधर

को यदि सतोष से छोड दूगा तो अगले काल मे पुन यह किसी दूसरे के साथ उपसर्ग करेगा ।।९९२।।

मोवलंकुळलि नारुंमा विजै यडिप्पडुप्पार ।
शैवियां सजि येंदन् ट्रिरुवडि कमलं सरंदन् ।।
कौविय मिडिनिड्रु शिरप्पयरंदोदि नल्ला ।
लेव्वगै विजै येनु मेदिर् वर लोळिग वेंड्रान् ।।९९३।।

अर्थ—विद्याधरो के लोक मे सुन्दर २ केशो वाली स्त्रिया है । वे सभी सजयत मुनि के चरण कमलो को मन, वचन, काय से स्मरण करती है। सभी ये विद्याए स्त्रियो को प्राप्त होगी । यदि उसी श्रद्धा से पुरुष इस विद्या को साधेगे तो वे सफल नही होगे ।।९९३ ।

तरै मगडिलग मन्न तडवरै इदन् कन् मेनाट् ।
पिर मरि मुदल विजै येडि पड पिनय नारु ।।
किरि संदानिक्कुलत्तु मैदर कागेंड्रि तन्वे ।
रिरिमदं मेंड्रोर् कुंड्रि निरैव नालय समैत्तान् ।।९९४।।

अर्थ—इस प्रकार धरणेंद्र के कहने के बाद जिन सजयत मुनि ने जिस पर्वत पर मोक्ष प्राप्त किया था उस पर्वत पर जाकर उपवास करने वाली स्त्रियो को ब्राह्मी आदि महाविद्या सिद्ध होगी । इस विद्युद्दष्ट्र के वश मे उत्पन्न होने वाले को यह विद्या सिद्ध नही अतिरिक्त कुछ नही होगा । यह मुनि जिस पवत पर से मोक्ष प्राप्त किया हो उस पर्वत का होगी। इसके नाम ह्रीमत रखकर उस पर्वत पर एक मदिर का निर्माण करा दिया ।।९९४।।

मंजुलामलै मेंलमलि मानगर ।
पजंनन् मणि योडु पशुं पन्नार् ।।
सजयंद भट्टारक शेट्टगं ।
नजुगर् किरैवन् शैदु नाटि नान् ।।९९५।।

अर्थ—तत्पश्चात् धरणेंद्र ह्रीमंत पर्वत पर सजयत नाम मुनि के तपश्चरण के स्थान पर मदिर बनाकर उसमे सजयत मुनि की प्रतिमा स्थापित कर दी ।।९९५।।

मुळवु तन्नुमै मुंदै मुळगिन ।
मुळै मळ इन मुरंड्र वलंवुरि ।।
सुळल निड्रळै तिट्टन् कागळम् ।
कुळलोडेंगिन वीणै कुळांगळे ।।९९६।।
निरैद किन्नरर् गीत निल मिसै ।
येरवै येर्मिन्नि नेगनो माडि नार् ।।

सुरंद कादलिर् सोट्रळ कागनर् ।
करं कुवित्तुरगर् किरै येतिनान् ।।६६७।।

अर्थ—मदिर का निर्माण कराके प्रतिष्ठा सहित मूर्ति विराजमान की और अनेक प्रकार के वाद्य वीणा वासुरी आदि बाजो के शब्द जिस प्रकार समुद्र मे घोष होता है, उसी प्रकार सदैव वीणा बासुरी आदि वाद्य बजने रहे, ऐसा प्रबन्ध कर दिया। उस पर्वत पर अनेक किन्नरियो तथा देवियो ने आकर कई प्रकार बाजे वजाये तथा नृत्य किया। उस समय वह धरणेद्र सजयत मुनि की अनेक प्रकार से स्तुति स्तोत्र आदि करने लगा ।।६६६।।६६७।।

कलै इला वरि वनो कलनिला वळुगु नी ।
मलै विला मदनु नी मरुविला मदनु नी ।।
युलगि नुळ् ळायु नी युलगि नुळ लायोरु ।
निलैला निलैयै नी यागिलु मिरैव नी ।।६६८।।

अर्थ—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय इन चार ज्ञानो को छोडकर एक ही समय मे चराचर वस्तु को जानने की सामर्थ्य रखने वाले आप ही है। वस्त्राभरण आदि का त्याग करने पर भी शरीर से सुशोभित दिखने वाले आप ही है। मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करने वाले आप ही हैं। प्रत्येक द्रव्य स्वभाव को जानकर प्रतिपादन करने वाले आप ही है। यह तीन लोक आपके ज्ञान मे सदैव झलकने पर भी आप उससे भिन्न है ।।६६८।।

अमल नी यरिव यरुग नी यचल नी ।
विमल नी वीर नी वेर मिलोरुव नी ।।
तुमिल नी तुरव नी सुगत नी शिरवनु नी ।
कमल नी करुणै नी कैवल चेल्व नी ।।६६६।।

अर्थ—निर्मल अथवा निर्विकार स्वरूप को प्राप्त हुए आप ही हैं। सम्पूर्ण वस्तुओं मे आप ही योग्य है। चलन रहित आप ही हैं। निजात्म रूप को आपने ही प्राप्त किया है। अनन्त वीर्यादि गुण को प्राप्त हुए भी आप ही हैं। वैरभाव न रखने वाले आप ही हैं। आप ही ओंकार स्वरूप हैं। बाह्य अभ्यतर परिग्रह से रहित आप ही हैं। अनन्त सुख को भी आप ही ने प्राप्त किया है। मोक्ष मगल भी आप ही हैं। पद्मासन रूप भी आप ही हैं। रूपातीत भी आप ही हैं। कैवल्यरूप भी आप ही हैं। निश्चय आत्म द्रव्य स्वरूप होने वाले और कैवल्य लक्ष्मी को भी प्राप्त किये हुए आप ही है ।।६६६।।

इरैव वी ईश नी यैंगुणत्तलैव नी ।
पोरि इला वरिव नी पूशनै किरैव नी ।।
मरुविला वरुव नी मादवत्तलैव नी ।
शिरिय यानिन गुणं सेप्पुदर् करिय नी ।।१०००।।

अर्थ—नाथ भी आप ही हैं। आदि अन्त भी आप ही हैं। अनन्त ज्ञानादि आठ गुणो को प्राप्त किये हुए भी आप ही हैं। अतीन्द्रिय ज्ञान रूप भी आप ही हैं। तीन लोक मे रहने वाले जीवो के द्वारा पूजनीय भी आप ही हैं। आप ही स्वयभू हैं। तपश्चरण करने वाले गण-धरादिको मे भी श्रेष्ठ आप ही हैं। इस प्रकार मेरे समान अल्पमति द्वारा आपके गुणो का वर्णन करना मेरे लिये अशक्य है। आप ऐसे गुणो को धारण करने वाले हैं ।।१०००।।

इनैयन् तुदिगळ् सोल्लि इरुक्कयो इरंडु नान्गु ।
मणमलि वनक्कंदोरु मूवगै सुळट्रि मान् विन् ।।
विनैयर वेरिद कोनै विन्नव रोडु मिन्नुं ।
कनै कळ लुरगर् कोमान् कैतोळु दिरेंजि पोनान् ।।१००१।।

अर्थ—घातिया अघातिया कर्मों का शुद्धोपयोग द्वारा नाश किये सजयत सिद्ध भग-वान को चतुर्णिकाय के देवो ने स्तुति और पूजा करके उस भगवत को मन, वचन, काय से भक्ति आदि करके अर्हत, सिद्ध, साधु को गर्भ, उपपाद और समूर्छन ऐसे तीनो शरीर के नाश करने के लिये तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया। इस प्रकार भक्ति सहित पूजा स्तुति करके वह देव अपने भुवनत्रय कल्प मे लौटकर गया ।।१००१।।

मादक्क पोददादि तावनुं विजै वेंदन् ।
मेदक्क तरुळ वेरस् विडतक्क देंड्र मिक्क ।।
कोपत्तै युपशमिप्पित्तरुळि नै कोंडु निकुं ।
नोदक्क नोति युळ्ळानु वलुदर् कूळ्ळं वैत्तान् ।।१००२।।

अर्थ—तत्पश्चात् सम्यक्दर्शन प्राप्त हुआ वह आदित्य देव, विद्याधरो के राजा विद्युद्दष्ट्र के क्रोध का नाश करना चाहिये इस बारे मे पुन: कहने लगा कि मैं कुछ धर्म की बातें कहता हू सुनो ! ऐसा सुनकर उस विद्युद्दष्ट्र ने धरणेंद्र के चरणो मे पडकर नमस्कार किया ।।१००२।।

मदकरि मसगं पोलवार् वसं वरल् वैय्य मूंड्रिर् ।
कदि बदि यागु मागा विधि वशं वरुद लोंड्र ।।
मदि पेरि दुडैय नीरार् माट्रिडै इन्व मेवार् ।
विंदियर् वेरिय वेन्नुं विजयाल् विजै वेंदे ।।१००३।।

अर्थ—आदित्य देव ने कहा कि डास,मच्छर के समान धारण किया हुआ शरीर है। यह मानव प्राणी अपनी ज्ञान शक्ति तथा मनोबल से मदमस्त हाथी को अपने उपयोग से अपने वश मे कर लेता है उसी प्रकार यह मनुष्य क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त होकर शुक्ल-ध्यान द्वारा इस तीन लोक का अधिपति होने योग्य सिद्ध पद को प्राप्त कर लेता है। इसलिये सम्यक्दर्शन को प्राप्त हुआ जीव इस पंचेद्रिय विषय ऐसा क्षणिक सुख का नाश करने के लिये सदैव इच्छा रखते है। परन्तु संसार सुख मे मग्न नही होते ।।१००३।।

कोपत्ति कुडैय वोडि नरगत्तै कुरुगि पल्काल ।
वेबत्तिन् वेदुंबि निड्रै विलंगिनु सुळंड्रु वदाय् ।।
तापत्तै सनिक्कु नीळल् पोलु नल्लरत्तै मैवि ।
यापत्तै यगट्रि इन्ब मूर्ति नीयाग वेंड्रान् ।।१००४।।

अर्थ—इस कारण आपके इस विषय को न जानते हुए इस प्रकार क्रोध करके अनेक वार नरक मे जाना पडा । इसके सिवाय क्रोध पाप वैर के कारण अनेक तिर्यंच, पशु आदि पर्यायो मे जाकर दुख भी भोगना पडा । अतः इस दुख का नाश करने के लिये कर्मो का नाश करके अनन्त सुख को धारण करने वाले हो जावो ।।१००४।।

अळलिडै मलयै येंदि वंदव नम्मलक्कोळ् ।
निळलिडै पेट्रविब नीर् पिडु पैक निंवम् ।।
सुळलवु मुळुवै निर्प तळिरि नै करित्तु मेल्लु ।
मुळे युरु मिबम् पोलुविलंगुरु मिब मेंड्रान् ।।१००५।।

अर्थ—हे विद्युद्दष्ट्र सुनो! इस ससार के सुख दुख कैसे है सो बतलाते है। एक मनुष्य अपने मस्तक पर भारी पर्वत को धारण कर उसी की छाया मे खडे होने के समान है । और एक हरिण जगल मे चारो ओर सिंह, व्याघ्र आदि क्रूर प्राणियो के भ्रमण करने के बीच मे कोमल घास खाने के समान यह ससार सुख है ।।१००५।।

अरुळिलार् किल्लै इन्ब मार्गलि युलत्तिन् कट् ।
पोरुळि लार् किब मिल्ला वारुरोर् पोन् कोळ् वारिर् ।।
ट्रेरिविलार् किल्लै येंड्रु तीनेरि शेल्ल नींगन् ।
मरुळिला मनत्तै याय् नी मनैयर मरुवुगेंड्रान् ।।१००६।।

अर्थ—एक कवि ने कहा है कि—

असल् लिल्लारकू अल्लुग मिल्लई रुल् इल्लारकू ।
इव्वुलगा विल्लई ।।

इस जगत के मानवो के पास यदि सपत्ति नही है तो उनको तिलमात्र भी सुख नहीं है । एक कवि ने पुन. कहा है.—

"माता निदति नाभिनदति पिता भ्राता न सभाषते ।
भृत्याः कुप्यति नानुगच्छति सुता काता च नालिंगते ।।
अर्थस्यार्थन शकयात् कुरुते, स्वालापमात्र सुहृत् ।
तस्मादर्थमुपाश्रय शृणु सखे ह्यर्थेन सर्वे वशाः ।।

इस प्रकार विचार करके देखा जावे तो इस जगत मे मनुष्य को बाह्य सुखो से कोई सच्चा सुख नही मिल सकता, परन्तु यह अज्ञानी प्राणी इस पचेन्द्रिय सुख को ही सब सुख मानकर ससार मे दुख भोगता आ रहा है। इससे भिन्न ऐसे सद्धर्म के सार को जब तक न समझे तब तक इस जीव को सुख का मार्ग स्वप्न में भी उनके ज्ञान मे नही आयेगा। इसलिये हे विद्युद्दष्ट्र ! अर्हत भगवान द्वारा कहे हुए धर्म को समझकर उस पर विश्वास करो। इसके अतिरिक्त इस आत्मा को सच्चा सुख देने वाली और कोई वस्तु नही है इसका परिपूर्ण पालन करो। ऐसा आदित्य देव ने कहा ॥१००६॥

अरसन् संजयंदनाग ववकुं नी यमच्चनाग ।
पेरिव मादेवियानेन् पिन्नय भवंगडोरु ॥
मरुविनाम् मगिळं दु शेंड्र पिरुप्पु मट्रदनु कप्पा ।
लोरु वरा लुरैक् लागा वुर्लदन पिरवि मेनान् ॥१००७॥

अर्थ—हे विद्युद्दष्ट्र सुनो ! वह सजयत भगवान पूर्वजन्म मे सिंहसेन राजा की पर्याय मे थे। तुम उनके शिवभूति अपर नाम सत्यघोष नाम के मत्री थे और मैं उनकी रामदत्ता नाम की पटरानी थी। तत्पश्चात् हम कई २ जन्म लेकर अनेक प्रकार के सुख दुख भोगते आये हैं और इसी प्रकार पीछे अनादि काल से कई २ बार जन्म मरण करते आये हैं। उनका वर्णन शक्य या साध्य नही है ॥१००७॥

इनैयन केट्टु तन्नै इळित्तंद विद्युदंतन् ।
मनमलि करुत्तु नीगि वानवन् ट्रन्नै वाळ्ति ॥
कनैकळ लरसन् ट्रन्मेर करुविनार् पिरवि दोरुं ।
निनैविलेन् शैदतीमै नींगु माररळ्गेंड्रान् ॥१००८॥

अर्थ—इस प्रकार आदित्य देव द्वारा कहा हुआ वह विद्युद्दष्ट्र विद्याधर पूर्वजन्म से आज तक किये हुए कर्मो पर दुखित हुआ और पश्चाताप किया, क्रोध को त्यागकर आदित्य को नमस्कार करके कहने लगा कि सिंहसेन राजा के पहले भव से आज तक किये हुए कर्मो का नाश करने के लिये उसका उपाय बताये। ऐसी प्रार्थना की ॥१००८॥

इरै वन युलग मेत विरुंद संजयंदन् पादं ।
नरै युला मलर्ग डूवि वनैगन् नमो वेंड्रेति ॥
योरिवि लेन् शैद तीमै पोरुक्क वेंड्रवुनन् पोनान् ।
उरुदि निड्रैत वानो नुवंदु तन्नुलगं पुक्कान् ॥१००६॥

अर्थ—इस बात को सुनकर आदित्यदेव उस विद्युद्दष्ट्र से कहने लगा कि सुनो ! इस मोक्ष को प्राप्त हुए सजयत मुनि की अष्ट द्रव्य से पूजा करो व नमस्कार करो। यह सुनकर उस विद्याधर ने तीन बार नमस्कार करके भगवान की अष्ट द्रव्य से पूजा की और उन भगवान

की मूर्ति के सामने खडे होकर प्रार्थना करने लगा कि हे नाथ ! मैंने भव २ मे आप पर अनेक प्रकार के उपसर्ग किये हैं। आप उनको क्षमा करे। और लौटकर अपने नगर मे गया और आदित्यदेव अपने पवन लोक मे गया ॥१००६॥

करुविना लोरुव नेंड्र ुम् कडु नवै नरगि नाळंदान् ।
पोरैना लुरुवन् पुत्ते लुलगै दि वीडु पुक्कान् ॥
करुवोडु पोरइ नाय पयनिवै कंडु पिन्नुं ।
पोरै योडु सेरविलादार् पुल्लरि वाळ रंड्रे ॥१०१०॥

अर्थ—क्रोध परिणाम से शिवभूति मत्री के जीव ने अनेक नरकादि दुखो को भोगे। क्षमा धारण करनेवाले सिंहसेन राजा ने देव सुख को प्राप्त करके जिन दीक्षा लेकर दुर्द्धर तप करके मोक्ष प्राप्त किया। इसलिये क्षमा भाव से तथा शात भावना से उत्तम होने वाले फल का ज्ञान होने के वाद भी यदि जीव के मन में क्षमा भाव नही उतरता है तो वह संसार मे ही दीर्घकाल तक परिभ्रमण करता है ॥१०१०॥

। ग्यारहवा अध्याय समाप्त हुआ ।
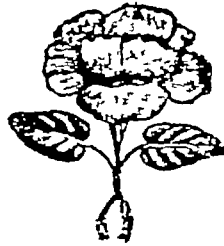
।। बारहवां अधिकार ।।

※ भगवान का बिहार ※

घातियै कडिदु वेंदन् कैवल शल्व नानान् ।
वेदिय नमच्चन् विजै वेंद नाय् वियंदु पोनान् ।।
पोदनी कुळलि नाळुं पुदल् वनुं देव रागार् ।
यादिनी इवर्गळ् शेगै यंड्रिडि लियंब लुट्रेन् ।।१०११।।

अर्थ—सिंहसेन राजा ने अन्तिम भव मे सजयत मुनि होकर घातिया कर्मो का नाश कर केवलज्ञान को प्राप्त किया, और अघातिया कर्मों का नाश करके मोक्ष मे चले गये। शिवभूति मत्री दुष्ट विद्याधर केवलज्ञान की पूजा को देखकर आश्चर्य चकित होकर अपने विद्याधरो मे गया। रामदत्ता देवी अगले भव मे भुवनेंद्र कल्प मे आदित्य देव हो गया। राजा सिंहसेन का छोटा पुत्र भवन लोक मे धरणेंद्र होकर जन्म लिया। अब आगे चलकर इन दोनो का विवेचन करूगा, सुनो! ।।१०११।।

वेदिगै वेदंडत्तिन् विल्लुनान् वीकिट्टे पो ।
लोद नीरुडुत्त मन्मेलुत्तर मदुरे येन्नुं ।।
पोदुडु तळिर् कन् मिडि पोरि वडुम् तेनुं पाड ।
तादोडु मदुकळ् वोयुं तन् पनै सोलै दुंडे ।।१०१२।।

अर्थ—महा लवण समुद्र से घेरा हुवा इस भरत क्षेत्र मे अत्यन्त सुन्दर नाना प्रकार के वन उपवनो से सुशोभित उत्तर मथुरा नाम का नगर है ।।१०१२।।

पगर् किडै कोडाद पंबोन् माळिगै पावै नल्ला ।
रगिर् पुगै यगत्तु निड्रा रणिवरै मदनै चूळ्द ।।
मुगिर् कोडि निन्नु पोड्रु तोंड्रु वार कुळा मुळंग ।
तुगि कोंडि योडु मंजै तोडंगिय नडंग ळोवा ।।१०१३।।

अर्थ—उस नगर मे लगी हुई ध्वजा हवा से उड रही थी। उस ध्वजा से बधे हुए घटो (टोकरो) के शब्द मेघ की गर्जना के समान मालूम होते थे। उन शब्दो को सुनकर मयूर अत्यन्त आनन्द से घूमते थे। और उस नगर के अत्यन्त उन्नतशील गोपुर थे। उस गोपुर के ऊपर आकाश मे उत्पन्न होने वाले बिजली के समान आभरण करने वाले वहा की रहने वाली स्त्रियो के रत्नो के आभूषण आदि चमकते थे ।।१०१३।।

कामने कौव्वै सेवान् करिगळे निगळस् पंव ।
तामने मेलियुं वन्नं शंकरं शिपि यर्के ।।
शेममार् शिरै पुनर्के तीतोळिन् मरैय वर्के ।
वाममें कलैनारे वशीय मन्नगरत्तुळ्ळे ।।१०१४।।

अर्थ—उस नगर मे स्त्री पुरुष को कोई दुख नही देता था । केवल दुख देने वाला एक मन्मथ ही था, दूसरा कोई नही था । और लोहे की जजीर ही उनके लिये बंधन का कारण थी और कोई नही था । धूप के ताप के अतिरिक्त और कोई शुष्क करने वाला उनको नही था । पानी को रोकने के लिये एक तालाब था । अग्नि से ब्राह्मण लोग होमादि के लिये उस अग्नि का उपयोग करते थे और कोई उपयोग मे नही लाता था । पुरुष को वश मे करने के लिये एक स्त्री ही थी अन्य कोई नही था ।।१०१४।।

सिनंदलै निंड्र वेदर् तिन पुयस् शिदैत वीरर् ।
तनंद वीरिय नेंबाना मन्नगर् किरैव नल्लार् ।।
मनंदोर मिरुंद कामन् वन्मैयान् मारि योप्पा ।
ननंदलै युलगि नुळ्ळ नवै यलास् तीर निंड्रान् ।।१०१५।।

अर्थ—इस प्रकार अत्यन्त सुन्दर उत्तर मथुरा नाम के नगर में शत्रुदल का नाश करने वाला पराक्रमी अनंतवीर्य नाम का राजा था । वह राजा मन्मथ के समान महान सुन्दर था और मेघ वृष्टि के समान सारी प्रजाजनो की इच्छा पूरी करता था और याचको को इच्छित दान देता था । उनकी राजधानी तथा देशो मे कोई दुखी नही था ।।१०१५।।

पारि जादत्तै शारं्द पवळत्तिन् कोळुंदै योपान् ।
मेरुमालिनी येवां ळौवेंदन् मादेविमिक्काळ् ।।
वारिवा यमिर्द मन्ना ळमिर्द मामदि येंवाळास् ।
कारोंड्रो डिरंडु मिन् पोर् कावलर् कळ्वि निंड्रार् ।।१०१६।।

अर्थ—उस राजा को पारिजात वृक्ष मे जैसे मणि को पिरोया जाता है, लता पर चढाया जाता है उसी प्रकार अत्यन्त सुन्दर उस राजा के मेरु मालिनी और अमृतमती नाम की दो पटरानियां थी. इन दोनो मे मेरु मालिनी बडी पटरानी थी । अमृतमती छोटी पटरानी थी ।।१०१६।।

मगरवे रिरंडु तोळाल् वारि युट्टिरिव दे पोमार् ।
शिगर माल् यानै यानद्दे विमार् पुयंग ळाग ।।
निगरिला विव वेळ्ळ कडलिडै नोंदु नाळ्ळ् ।
पुगरिलार् वाणिन् वंदिव्विरु वकुं पुदलव रानार् ।।१०१७।।

अर्थ—जिस प्रकार समुद्र मे नर मगर मत्स्य अपने दोनो पखो से छोटे मच्छर को अपनी बगल मे लेकर घूमता रहता है। उसी प्रकार वह राजा अपनी दोनो पटरानियो को अपनी बगल मे लेकर काल व्यतीत करता था। वह आदित्य देव और धरणेंद्र के जीव दोनो ने एक २ पटरानियो के गर्भ मे जन्म लिया ।।१०१७।।

मालिनि तन् कनादि तापनन् मामेरु वानान् ।
पालन माळि मदिगट् भवनन् मंदरनु माग ।।
वेल यै सेरिंद वाळि पोर्कळि शिरंदु वेंदान ।
ञालत्तु किडरैत्तीर नडक्कुं कर्प गत्तै योत्तान् ।।१०१८।।

अर्थ—मेरु मालिनी पटरानी की कुक्षि से आदित्य देव के जीव ने जन्म लिया। उसका नाम मेरु रखा गया और अमृतमति नाम की रानी की कुक्षि से धरणेंद्र के जीव ने जन्म लिया उसका नाम मदर रखा गया। यह दोनो राजकुमार कल्प वृक्ष के समान याचको की इच्छा पूर्ण करने वाले हो गये ।।१०१८।।

मंगयर् कोंगै यन्नुं कुवट्टि निन् ट्रिळिदु नल्ल ।
शिग पोदंगळ् पोल तविशिडै तवळंदु शेंड्र् ।।
पंगयत्तलंगळ् पोलुं पवळच्चोरडियै पारा ।
मंगै तन् सेन्नि सूटि नडंदिट्टार् माले याग ।।१०१९।।

अर्थ—ये दोनो बालक अपनी माता के स्तनो का दूध पीकर वृद्धि को प्राप्त हुए। सिहनी के बच्चो के समान घुटनो के बल चलते थे। शनै २ वे खडे होने लगे ।।१०१९।।

नाविळमं कोवि नल्ल कलै यलगु नलत्तै युंडु ।
माविळं कळिरु तेर्वाळ् विट्रोळिल् वल्लरागि ।।
तेविळंकुमरर् पोल तेसोडु तिळैक्कु मेनि ।
कोविळंकुमरर् कामन् कुनिशिलै किलक्क मानार् ।।१०२०।।

अर्थ—तदनन्तर ये दोनो राजकुमार चौसठ कलाओ मे निपुण होकर अर्थात् राज्य कला, शास्त्र कला, शस्त्र कला, अश्व कला, हस्ति कला, आरोहण कला आदि २ अनेक कलाओ मे प्रवीण होकर यौवनावस्था को प्राप्त हुए ।।१०२०।।

कडैदं नल्ललगं वेन्न करुत्तिडै वेळुत्तु चूळ ।
मडंगल् पोन मोइ विन् मनत्तिन्नै कनत्तळिक्कुम् ।।
तडंगणाम् पाग नल्लार् तमुविल् नानेट्रि तान ।
कडंगि निड्रनंगन् मैदरुळ्ळत्ते येळिक्क लुट्रान् ।।१०२१।।

अर्थ—ये दोनो राजकुमार सिंह के समान तरुणावस्था को प्राप्त हुआ मन्मथ के समान तरुण स्त्रियो को अपने वश मे करने के लिये कामदेव के समान सुशोभित होते थे। वे यौवनावस्था को प्राप्त होकर विवाह के योग्य हुए ॥१०२१॥

कैचिलै कुळय्य वांगि कनै मळे पोंळिदु काम ।
दिच्चेयै मैदरुळ्ळ तेळुत माटाद नंगन् ॥
वञ्जिरं पजिर ट्रुया वडु पडु मेनुं काम ।
दिच्चेयै मैंद रुळ्ळ तेळुत्तोना देंड्रु पोनान् ॥१०२२॥

अर्थ—इस प्रकार मन्मथ के तुल्य शोभने वाले मेरु और मन्दिर के ऊपर कामदेव ने प्रवेश किया फिर भी वे कामदेव के वश मे नही हुए तब कामदेव निरुत्तर होकर चला गया ॥१०२२॥

कायत्ति नुवर्पुन् काम भोगत्तिन् वेरुपुम् माट्राम् ।
मायत्तिन् वडिवु मेल्लान् नेनिप्पिला मनत्ति नार्गळ् ॥
नोयुत्त नुर्गचि शेल्व नुरै योत्त विळमै देसु ।
कायत्तु विल्लै योत्त कामनुकिडमगुंडो ॥१०२३॥

ये दोनों मन मे विचार करने लगे कि यह शरीर अशुचि है, पंचेन्द्रिय सुख क्षणिक हैं। तथा इन्द्रिय सुख विप के समान है। इन पचेद्रिय सुखो से आज तक तिल मात्र भी सुख की प्राप्ति नही हुई। यह सुख आत्मा को व्याधि के समान हैं। यह राज्य संपदा, पचेद्रिय सुख पानी के फेन के समान क्षणिक हैं। यह यौवनावस्था आकाश मे इन्द्र धनुष के समान क्षणिक हैं। ऐसा मन मे विचार कर मेरु और मन्दिर दोनो कुमार ससार से विरक्त हो गये। इस कारण इन दोनो पर मन्मथ का कोई प्रभाव व असर नही पड़ा ॥१०२३॥

अनित्त मरणिन् मै युर विन्मै पिरि दिन्मै ।
युनर् करिय माट्रलग मूट्र तरलुवर्पु ॥
निनैप्पिल् वरुं सेरिप्पुर्दिचि पोदि पेर रूकरुमै ।
मनत्तिन् वरं निनैत्तु मनैयरत्तोळुगुं वळिनाळ् ॥१०२४॥

अर्थ—वे मेरु और मदर दोनो राजकुमार अपने मन मे इस प्रकार भावना भाने लगे कि यह शरीर अनित्य है। बधु मित्र कलत्र आदि कोई भी रक्षण करने मे समर्थ नही हैं। सारी वाह्य वस्तुए शरीर व आत्मा दोनो भिन्न हैं। यह मेरी आत्मा अनन्त गुणो से युक्त है। उसका लक्षण, ज्ञान, दर्शन तथा चेतना है। यह संसार आत्मा से भिन्न है और सार रहित है। इस लोक मे रहने वाले आत्मा का ज्ञान, दर्शन, स्वभाव गुण है; फिर भी विभाव गुणो से उत्पन्न होने के कारण विभाव गुण को प्राप्त हुई आत्मा ससार मे परिभ्रमण करती है। इस आत्मा के विभाव गुण से रागद्वेष उत्पन्न होकर यह विभाव परणति को प्राप्त हो जाता है। शरीर सबंधी अशुचि को आस्रव उत्पन्न होने वाले ससार भावना तथा कर्मो का नाश करने

वाली निर्जरा भावना, बोधि दुर्लभ भावना को भाने लगे। इस प्रकार बारह अनुप्रेक्षाओं को सतत अपने हृदय मे भाते थे ॥१०२४॥

अमल नल वाडियगत्तान निळर् पोल।
तुमिल मिडै मूवुलगुं तोंड्रु मरि उडैय ॥
विमलनेनु मरिवन् मलर् पोळिय विन्नोर्।
कमल मिसै पुलावियोरु कावग मडैददन् ॥१०२५॥

अर्थ—इस प्रकार भावना भाते २ एक दिन तीन लोक की चराचर वस्तु को जानने वाले केवलज्ञान को प्राप्त हुए श्री विमलनाथ तीर्थंकर अर्हंत केवली भगवान का समवसरण इधर उधर विहार करते हुए उत्तर मथुरा नगरी के उद्यान मे आकर विराजमान हो गया। ॥१०२५॥

अनगन् विनैयगल वेळुंदरुळुमेनु मळविर्।
कनग नवमणि मय मोर कमल नरुमल रो ॥
शनै यगल मुडैय वद निदळग डोरु मडवार्।
मन मगिळ नडन विल वानव रमैत्तार् ॥१०२६॥

अर्थ-कर्म मल से रहित उन विमलनाथ भगवान के भव्य जीवो के कर्मो का नाश करने के लिये समवसरण सहित विहार करते समय देवेंद्र ने अपने द्वारा भगवान के चरण-कमल के नीचे कमल निर्माण करके कमल की कर्णिका के ऊपर जैसे देव स्त्री नृत्य करती हैं ऐसा निर्माण किया।

वास मलर् नांगि नवन् मेवि इरै वानो।
रोजनै इरंडगंड्र मंडब मुंड्र मै ता ॥
रीशनेळुंदरुळु मेन वेळिन् मणि पुन् मुत्ति।
नोजनै कन् मूंड्रगंड्र वीदियुड नमैत्तार् ॥१०२७॥

अर्थ—तीन लोक के नाथ विमलनाथ तीर्थंकर उस कमल पर चार अगुल अधर विहार करने वाले ऐसा समझकर उस मुख्य मडप का निर्माण किया और उसके लिये तीन योजन चौडी गली का निर्माण किया ॥१०२७॥

मारुदियुं वास मय मागि मंदम् वीसि।
पारिन् मलि तुंडुगळ् परिदिड मुयंड्रान् ॥
कारिन् मिसै वंदु वरुणन् कमल मादि।
वेरि मल कमळु नरु नीर्तुवलै विट्टान् ॥१०२८॥

अर्थ—तदनन्तर वायुकुमार देवो ने वहा की धूलि को साफ किया। वरुणकुमार देवो से सुगधित पानी की वर्षा की ॥१०२८॥

इंदिरनु मेन्मै युल कांति यरु मिरैवन् ।
वंदेळुंद रुळुं पोळु देंड्रेदिर् वनग ॥
इंदिरर्तं कोणु मेळुंदा निरु निलत्तु ।
नंदरंग डीर्ंद वरिवर् कियल् विदाने ॥१०२९॥

अर्थ—उस समय सौधर्म इन्द्र तथा आठ प्रकार के लोकातिक देवो ने भगवान के सन्मुख आकर नमस्कार किया। यह सभी अर्हंत भगवान का अतिशय समझना चाहिये। ॥१०२९॥

इडि मुरसन् तिमिलै कंडै काळमेळिर् शकम् ।
तुडि मुळव मोदै तुन वंदन्नु मै शेगंडै ॥
कडन मुगिलि नोलि करंदु दिशिगळ् विम्म वोलित्त ।
तड मलरिन् विशै इरै वन् ट्रानोदुंगुम् पोळुदे ॥१०३०॥

अर्थ—वहा देवो द्वारा मेघ की गर्जना के समान अनेक प्रकार की जय, घटा आदि दुदुभि होने लगी। अर्थात् भगवान अर्हंत देव के विहार करते समय समुद्र मे तूफान के समान ध्वनि होती है उसी प्रकार सभी तरह के वाद्य बजने लगे ॥१०३०॥

इन्नरंबिन् याळ् कुळल्गळ् वीणै मुदलेंदि ।
किन्नरियर् किळै नरबि नोदि नगंळ् गीतं ॥
पोन्वैरु मणि यमिर्द मीड्रु मलरेंदि ।
पन्नरिय वगई मिल मडंदै यदिर् पनिदाळ् ॥१०३१॥

अर्थ—किन्नर देव आदि वीणावाद, ततुवाद, बासुरी आदि सहित सगीत के रूप मे भगवान की स्तुति करके भक्ति पूर्वक उस भूमि को सुवर्ण और रत्नो से सुशोभित करते थे। इस प्रकार स्तुति करके सम्पूर्ण प्राणी का हित करने योग्य जल आदि तथा पुष्पो से वृष्टि करते थे, तथा भगवान के चरणो मे नम्रीभूत होकर नमस्कार करते थे ॥१०३१॥

सुंदरियर् वंदरियर् तुरकत्तिळं पिडिय ।
रंदरै इनंदरत्तिन् वाणि नडं पयिड्रार् ॥
मंदर नन्मलर् मळैगळ् वंडिनंगळ् शूळ ।
विदिरर् कोनेळुंदरुळुं वीदि वेंगुम् पोळिदार् ॥१०३२॥

अर्थ—ज्योतिप तथा व्यतर देवो की स्त्रिया, कल्प लोक मे नृत्य करने वाली स्त्रियां भगवान के सामने के मंडप में पृथ्वी से अधर खडे होकर नृत्य करती थीं। भगवान अर्हंत देव

जिन २ गलियो मे होकर विहार करते थे वहा २ कल्पवासी देव कल्प वृक्षो को लाकर जैसे मेघ जल की वृष्टि करता है उसी प्रकार वे देव वृष्टि करते थे ।।१०३२।।

वाम नर् कन् मन्निन् मरिंदेळुंदु नडं पुरिंदार् ।
कामं बिल वग वरसर् करणन् सुळन् ट्रळुंदार् ।।
केमकर नामगळो रायिरत्तोरिट्टुं ।
तामगलं पाड वर्गळा विंदिरर् पडिदार् ।।१०३३।।

अर्थ—सुन्दर रूप को धारण किये हुए देवलोक आकाश मे उडकर ऊपर अधर नृत्य किया करते थे। भवनवासी देव भी अत्यन्त सुन्दर नृत्य करते थे। कल्पवासी देव सम्पूर्ण जगत मे रहने वाले जीवो की शाति प्रदान करने वाल भगवान की एक हजार आठ नामो से स्तुति करते थे ।।१०३३।।

शकमल मुंड्रिरंड्र् पकय मलरंदन् ।
वकमलत्तरिवन् ट्रिरुवडियिनै वैत्तळ विर् ।।
ट्रिगळन कुडै मुम्मयुं मंडलमुं शेरिंद ।
पोगिय वेन्शामरै गळ् पूमळै पुळिदार् ।।१०३४।।

अर्थ—एक लाल कमल के ऊपर मानो दो कमल उत्पन्न हुए हो । ऐसे प्रतीत होने के माफिक देवो के द्वारा निर्माण किया हुआ कमल, पुष्पो पर अतीद्रिय ज्ञान स्वरूप ऐसे विमलनाथ तीर्थंकर अपने चरण रखते ही चद्रमा के समान धवल वर्ण को प्राप्त हुआ तीन छत्र व प्रभामडल सहित इन्द्रो के द्वारा चवर ढोरते हुए भगवान के ऊपर पुष्प वृष्टि करते थे ।१०३४।

मादवर् गन् मलरडि पनिदुं पिनेळुदांर् ।
शोदमनो डेन्मै युलगांतर तोळुदेति ।।
नाद नेदिर् वैत्य मुगरागि मुन्नडदांर् ।
घाति केड वंदतिरु वोडु शाशि शेंड्रार् ।।१०३५।।

अर्थ—उस समवसरण मे तपश्चरण करने वाले दिव्य मुनिगण भगवान के चरणो में नमस्कार करके भगवान के पीछे २ गमन करने लगे । सौधर्म इन्द्र के साथ आठ प्रकार के लौकातिक देव भगवान को नमस्कार करके उनका मुख भगवान की तरफ करके पीछे २ चलते थे । उनको पीठ नही दिखाते थे । घाती कर्मों का नाश किये केवली भगवान के पीछे साथ २ शची आदि देविया विहार करती थी ।।१०३५।।

पूर कलशं मुदलेन् मंगलेंगळेंदि ।
वेरि मलर् मडंदै योडु मेविन रिळुंदार् ।।

कारिन् मोरिण कनगं पुळि या कमलं संगिन् ।
पेरुडय निधिक्करसर् पिन्नै मुन्नेळुंदार् ।।१०३६।।

अर्थ—कई देवांगनाए कुंभ कलश, अष्ट मगल आदि २ लेकर भगवान के समवसरण में आई। मेघ वर्षा के समान पद्मनिधि, शखनिधि के अधिपति देव पुष्प वृष्टि करते हुए भगवान के साथ २ चलने लगे। १०३६।।

पन्नगर्गळ् पन्मरिणगडिविगैगळाग ।
मुन्न मिरै पाद परिणदेगिनर् कन् मुरैयाल् ।।
वण्णि मुडि वानर्गळ् शेनि मिशै वेत्त ।
पन्नरिय धूप कड पनिदेळुंवार् ।।१०३७।।

अर्थ—भवनवासी देव अपने २ हाथो मे रत्नो की दीप लेकर भगवान के पीछे २ चलने लगे। अग्नि कुमार देव अपने मस्तक पर अति सुगन्ध धूपघट को धारण करके भगवान के सन्मुख चलते थे ।।१०३७।।

इरविशाशो येन्नरिय तोक्कनैय विरैवन् ।
ट्रिरु वुरुवि नोळि यळगु कंडु शिरंदेत्ति ।।
परुदि मदि पान्मैयुडै मांदर् मुरव मेन्नु ।
मरविदमुंस् कुमुदंगळुं मरल वुड नेळुंदार् ।।१०३८।।

अर्थ—एक करोड सूर्य एक करोड चद्रमा का जितना प्रकाश होता है, उससे भी अधिक भगवान के परमौदारिक शरीर को देखकर भव्य जीव का मुख कमल प्रफुल्लित देखकर भगवान को नमस्कार करते थे ।।१०३८।।

कुडैईनोडु कोडि परुदि मिन्निन् मिशै कुलव ।
वडि उडय वैजयंत्तै वान् कोडि मुन्नेग ।।
वडियि नोलि यविय वेळि नादि मुन्न येंव ।
पडरुविनै येरियु मरुळाळियु मुण्णेग ।।१०३६।।

अर्थ—छत्रत्रय तथा ध्वजा, सूर्य की किरण के समान चमकने वाले ऐसे भगवान के आगे २ वढते जा रहे थे। और मेघो की गर्जना को जीतने वाले महान गभीर मगल स्तोत्र को अपने मुख से गाते हुए देव लोग भगवान के आगे २ चलते थे। आत्मा मे उत्पन्न हुए कर्म मल को नाश करने वाला धर्म-चक्र भगवान के आगे २ चलता था ।।१०३६।।

देसु दिशै शिरंद दिशै युडय मडवार्गळ् ।
वास मलर् मळै पोळिंदु मलरडि पनिदार् ।।

काशिनिई नीदि मुदलानवै करंद ।
वीस नेळिल् वास मल रेरिय कनत्ते ।।१०४०।।

अर्थ—तीन लोक के अधिपति जिनेंद्र भगवान के देवो द्वारा निर्माण किये, कमल के ऊपर से जाते समय दिक्कुमरिकाए भगवान पर वृष्टि होती देखकर अत्यन्त आनन्द मनाती थी। भगवान जहा २ विहार करते थे उन २ क्षेत्रो मे अतिवृष्टि अनावृष्टि नही होती थी। ।।१०४०।।

मूगर् मोळिदार् विडइन् मुडवर्क नडंदार् ।
शोग मुळिंदा नेवरुं शेविडर् मोळि केटार् ।।
कौव मुळिंदोर् कुबिदर् कुरुडर् विळिपेट्रार् ।
वेग मुळिदा रियन वीर नेळु वोळुदे ।।१०४१।।

अर्थ—विभाव पर्याय के उत्पन्न करने वाले मोहादि कर्म को जीतकर अनतवीर्य आदि से युक्त स्वस्थान को प्राप्त हुए अर्हत भगवान द्वारा विहार करते समय गूगे लोग बोलने लगे, बहरे सुनने लगे, लगडे चलने लगे, दुखी जीव सुखी होते थे, क्रोधी लोग कषाय का त्याग करते थे। अधे लोग देखने लगते थे ।।१०४१।।

पिरवि युरु पगै युडैय पनिनकुल मोदला ।
वुरवि इर वाद उर वायव निलत्तु ।।
किरैव निर कादलोडु मगग दिर् कोडार् ।
मरमलि विलाळि युडै मन्नवनै वदे ।।१०४२।।

अर्थ—जन्म से ही परस्पर वैर रखने वाले नेवला, सर्प, चूहा, बिल्ली आदि २ जीव भगवान के विहार करने के क्षेत्रो मे मित्रता के साथ परस्पर खेलते थे और सभी जीव धर्म-चक्र प्राप्त हुए भगवान को नमस्कार करते थे ।।१०४२।।

वेव्विनैगडीर विमलन् कमल मेर् कोन् ।
डिव्वगै येळुंदरुळि वंदविवै कंडान् ।।
कव्विय मिन् मंद रै यनैदु सिलर् शोन्नार् ।
मौ वन् मलर् तूयवरु मलरडि पणिदार् ।।१०४३।।

अर्थ—पाप कर्म को नाश किये हुये विमलनाथ तीर्थंकर को देवो द्वारा निर्माण किये हुये लाल कमल पर विराजमान हुए जाते देखकर कई राजकुमार महाराज लोग भगवान के समवसरण के आने के समाचार सुनकर राजसिंहासन से उतरकर उनने भगवान को नमस्कार किया ।।१०४३।।

येळडि येळुंदु वंदागि रै वनै डर्रंजि येति ।
पाळि यान् वेंदर् पल कल मवकु नल्गि ॥
येळु यरुलगं तन्नु निरुळ् केड वेळुंद कोविन् ।
शूळोलि यनैय पादं तोळुदु नामेळुग वेंड्रार् ॥१०४४॥
मुरड्रन शंक मेंगुम् मुळंगिन मुरस निड्रु ।
तुरंग ममेरियानै मेन् मन्नर् तोडंयलेंदि ॥
निरंदनर् नेळिद दंड्रु निलमगन् मुदुगु नीडु ।
करंदन कडिय वाय् कडुविनै कुळांग ळगे ॥१०४५॥

अर्थ—तदनन्तर राजा ने समवसरण आने का समाचार सुनकर उस समाचार देने वाले वनपाल को अनेक वस्त्र आभरण वगैरह दे दिये। तदनन्तर भगवान के समवसरण की पूजा के लिये दुंदुभि भेरी आदि बजवाई। इस भेरी को सुनकर प्रजाजन स्नान आदि से निवृत होकर शृंगार आदि करके अपने २ हाथो मे अष्ट प्रकार के द्रव्य ले राज दरबार मे एकत्रित हो गये ॥१०४४॥१०४५॥

शंदन कोळबि नारंद चंदिर कातं शेप्पुं ।
कुकुम कुळंबु विम्पु मिरविइन् कुळवि चेप्पु ॥
मिदिर नील चेप्पु मगिर् पुगै पुगैत्त वेंदि ।
मैंद रै शूळंदु निड्रार् मयोर् कुळाम् पोल वंदे ॥१०४६॥

अर्थ—उस समय सभी राजा, महाराजा, पुरुष स्त्रिया सारे प्रजाजन अनेक प्रकार वाजे वाद्य लेकर जिस प्रकार आकाश मे मेघ गर्जना करता है, उसी प्रकार वाद्यो की आवाज सहित भगवान के समवसरण की ओर धीरे २ गमन किया ॥१०४६॥

विशुंबुर विरिंदु नारुम् विरैमलर् मालै पैदु ।
पशुं पोनुं मणियुं मिन्नुं पडलिगै पलवु मेंदि ॥
येशुंबरा कडात वेळ त्तरसिळं कुममर् वंदार् ।
विशुंविन् मेल विनैयुर् पाद मरुक्कर्ता मिरुवरोत्तार् ।१०४७।

अर्थ—उस समय सभी जनता एवं स्त्रिया आदि अपने २ सुगध द्रव्य, पूजा पात्र ले लेकर उन राजा महाराजाओं के साथ जा रही थी। जाते समय वह शोभा ऐसी प्रतीत होती थी मानो आकाश से इन्द्र ही उतर कर आया हो। ऐसे आते हुए वे दोनो मेरु और मदर शोभते थे ॥१०४७॥

। बारहवां अध्याय समाप्त ।

✽

॥ तेरहवां अधिकार ॥

※ समवसरण का वर्णन ※

योजनै पन्नि रंडि नुबंर कोन् ट्रवर् काना ।
पेशोन् वगई निड्र पेरुमिद मळिद दियार्कु ॥
मीशनै इरंजि नार्ग ळंदिना रिरेवन् कोइल् ।
वीसु वेन् चामरादि परिचद मुळुंदु विट्टार ॥१०४८॥

अर्थ—बारह योजन लम्बे समवसरण भूमि मे भगवान के पास जाने के लिये चार वीथिया (मार्ग) हैं। एक २ वीथी मे एक २ मानस्तभ है। इस प्रकार चार मान स्तम्भो को दूर से देखते ही मानियो के मान गल जाते हैं। इस प्रकार मानस्तभ को देखते ही मेरु और मदर दोनो राजकुमार अपने २ वाहनो से उतरकर समवसरण के समीप आ गये ॥१०४८॥

यानई निळिंदु मानांगणत्तिरु काद वीदि ।
मान पीडत्तै भावि नळ वुळ मदिले येदि ॥
कानुरै कमल पोदिर् कैतोळु दिरैंजि वाळ्ति ।
यूनंतिर् तूयत्तानाम् कनं पुक्कार् कोश पोये ॥१०४६॥

अर्थ—क्रम से उन दोनो राजकुमारो ने धूलि नाम की शाला को छोडकर वहाँ रहने वाली प्रासाद नाम की चैत्यभूमि मे प्रवेश किया और उत्तर वीथी मे रहने वाली मनुष्य के हृदय प्रमाण वलि पीठ के पास पहुँचकर उस बलिपीठ पर पुष्प चढाकर नमस्कार किया और आगे चलकर प्रासाद नाम की चैत्य भूमि के मध्य भाग मे प्रवेश किया ॥१०४६॥

आंगद नगत्तु वीदि नडुव नार्काद मोंगि ।
पांगिन मा दिशै इर् पन्निरोचनै काण निड्र ॥
वांगु कांतम् पोल मान वांगु नन्मानत्तबम् ।
पांगिनार् ट्रोरनं वेदि मंगल पलवुं सूळंद ॥१०५०॥

अर्थ—उस समवशरण की चारो दिशाओ की चार वीथियो मे चार मानस्तभ बारह योजन दूर से मनुष्य को दीखते हैं। और वह मानस्तभ जैसे लोह चुम्बक दूर पडी हुई सुई को खीच लेता है उसी प्रकार उसको देखते ही मनुष्य की भावना उसी ओर लग जाती है और भावना खिचते ही मन गलित हो जाता है। उ के चारो ओर वेद्रिया तथा तोरण है। और चारो तरफ अष्ट मगल द्रव्य हैं ॥१०५०॥

वईर नपंडिगं वैडूर्य मडि नडुव नुच्चिच ।
युयरत्तिन् भाग मोक्कं पडिग मेर् कोळ वोकम् ।।
वेइल् विडु तामरै कोळ् मेलाइरम् नडुवि रट्टि ।
तुयरिनं केडुक्कु सित्त पडिमै नाट्टि शयु मामे ।।१०५१।।

अर्थ—उस मानस्तंभ का उत्सेध चार कोस का है। वह वैडूर्य मणियो से निर्मित है। उस मानस्तभ को दो कोस तक के विस्तार मे बीच मे स्फटिक मणि तथा रत्नो से निर्मित किया है। उस मानस्तंभ के ऊपर मेघाडम्बर (गुमटो) नीचे से एक कोस चौडा, बीच मे दो कोस और ऊपर एक कोस निर्मित किया गया है। उन स्तभो पर नीचे चारो ओर सिद्ध परमेष्ठी के जिनबिंब विराजमान हैं। बारह योजन दूर से उनके दर्शन होते हैं ।।१०५१।।

नानुग भूत डुच्चिच पालिगै कमलप्पोदिन् ।
मेल् वैत शंबोर् कुबत्तुच्चि मेर् पलगै तन्निर् ।।
पानिर पगडु पालै पदुमै मेर पुळिय हृेवि ।
मेन् मुडि पदुम राग मिरुबदोचनै विळक्कुं ।।१०५२।।

अर्थ—उस मानस्तभ के ऊपर चतुर्मुखी यक्ष यक्षिणी की मूर्ति का निर्माण कर कलश रखा गया है। कलश पर फलक रखा गया है। फलक पर लक्ष्मी देवी की मूर्ति विराजमान की गई है। उस लक्ष्मी देवी के सिर पर दोनो आजू बाजू श्वेत हाथियो द्वारा अभिषेक करते का दृश्य दिखलाया है। इस लक्ष्मी देवी के किरोट लगे हुए का प्रकाश बीस योजन दूरी तक फैला हुआ है ।।१०५२।।

मणिमय माय शुक्कं नांड्रु मंगलगंळेंदि ।
येनिपेर निंड्र नान्गा मंद मानस्तंवत्तै ।।
इनैला वलंकोडेति इरैजि पोय् कोस नील ।
मणि निल तगळि मार्वि नळ वुळ मदिलै कंडार् ।।१०५३।।

अर्थ—उस रत्नमयी लक्ष्मी देवी के नीचे जो फलक है उसके कौने मे आठ मगल द्रव्य हैं, जो उसके नीचे चारो ओर लटकते हुए हैं। इस प्रकार चारो ओर के मानस्तंभों की प्रदक्षिणा देकर दोनों राजकुमार आगे बढे और उसके बाहर रहने वाली एक कोस चैत्य भूमि को तथा वहां को वेदियो को उलांघ कर दूसरी खातिका भूमि में प्रवेश किया ।।१०५३।।

आळमु निरैवु मुंडे यागिलु मलै येंबानि ।
लूळि पेरंदालुं पेरा विदनै नानोळिप्प नेंड्रिन् ।।
काळि वंदिरे वन् पाद मडंडु पूम पट्टै पोत्तुं ।
शूळुन् तान् किडंद दोत्तु तोंड्रु मिप्परिगै येंड्रान् ।।१०५४।।

अर्थ—वह खातिका (खाई) परिपूर्ण पानी से भरी हुई है। उसको देखते ही ऐसा विदित होता है जैसे कोई दूसरा समुद्र ही हो। ससार रूपी तरगो ने हमको नही छोडा तो भगवान को देखते ही मेरे मन की तरगे हमे क्या छोड देगी ? ऐसी भावना इन्होने की। वह खातिका ऐसी दीखती थी कि उस पर फूलो से आवरण कर दिया हो। मानो यह भगवान मुझे छोड देंगे। ऐसी कल्पना उन दोनो राजकुमारो को उत्पन्न हुई ॥१०५४॥

पणित्तेळित्तनय वारि वासवान् सुवय तारंदङ् ।
कनगु वा काळंदु तोंड्रि यडॅदवर् तान् मट्टागि ॥
पनि उयर विलादु पोदिर् पइंड्रु पॅवोन् शॅवीदि ।
मणियोळि परंदु वान विर्कळाय् मयंगु निंड्रे ॥१०५५॥

अर्थ—उस खाई मे जैसे नीलरत्न का चूर्ण करके किसी ने डाला हो ऐसी शोभायमान होती थी। उस खातिका के पानी मे यदि उतरकर देखा जाय तो उसमे घुटने तक का ही पानी था और वह भूमि के समान दीखता था। इस रत्न के प्रकाश से वह स्वर्ण से निर्मित वीथी ऐसी दीखती थी जैसे आकाश मे पाच वर्ण वाला इन्द्रधनुष ही हो। उसी प्रकार देखने से मनुष्य को भ्राति उत्पन्न करती थी ॥१०५५॥

कादत्ति नरॅय गंड्र रवातिगॅ कमलमादि ।
पोदॅ कोय् तंगॅ येंदि पोन् सॅदों रणं कडंदु ॥
मेदक्क मणिइ नाय् पादत्त वीदिनिंड्र ।
वादि गोपु रत्ति नादि निलयळ वागि येंपोन् ॥१०५६॥

अर्थ—वे दोनो कुमार उस खातिका मे से पुष्पो को लेकर उस दो कोस वाली खातिका को उलाघकर साढे तीन कोस विस्तार वाली वीथी में रहने वाले उदयतर नाम के गोपुर मे जो नीचे के भाग मे स्वर्ण और रत्नो से निर्माण किया था-प्रवेश किया ॥१०५६॥

पालिगॅ मुदल वाय् परिचंद मुडय वट्टॅ ।
मालयुं शांदु मोंदि वनंगिनरागि पोगि ॥
शीलं पोर् शंपो निजिशिलॅगळीरोंब दोंगि ।
मालॅ पोर् शूळ कादमगल् वल्लिवनत्तॅ शेरंदार् ॥१०५७॥

अर्थ—उस गोपुर मे निर्माण की हुई वेदियो का अठारह धनुष का उत्सेघ था। उस को छोडकर आगे चलकर एक कोस से युक्त लता भूमि मे प्रवेश किया ॥१०५७॥

वल्लि मंडपंगळ् पंदर् वॅर वालुगत्तलंगळ् ।
विल्लुमीळ् दिलंगुम् भूमि विळुंद पूवनइन् वीयॅ ॥

पुल्लुं वंडोशै भूमि देव नै पाडल् पोलु ।
मेल्लै ई लिडंग लिव्वा रियंबुदर करिय दोंड्रे ।।१०५८।।

अर्थ—उस तीसरी लता भूमि मे लता मडप अत्यन्त सुन्दर व शोभायमान दिखाई पडते थे। लता मडप के नीचे वज्र को चूर्ण करके जैसे एक ढेर लगा दिया हो ऐसा प्रतीत होता था। उस लता मंडप पर लगे हुए पुष्पो की सुगध का रस खीचने वाले भ्रमर झकार शब्दों से इस प्रकार के अत्यन्त मधुर शब्द करते थे मानो वे भगवान के गुणगान ही कर रहे हो। ऐसे उन शब्दो की मधुर ध्वनि कानो मे सुनाई पडती थी ।।१०५८।।

मल्लिगै मुल्लै मौवन् मालदि माद विनर् ।
पल्लिदळ पत्ति पित्ति शवग कुरिंचि वेच्चि ।।
सोल्लिय पिरवुं शेलवि शूटेन सेरिय पूत ।
वल्लि नन् मलकै येंदि वंडु गोपुर मडैदार् ।।१०५९।।

अर्थ—उस लता भूमि मे रहने वाले जाई जूही चपा केवडा केतकी चमेली आदि के सुगन्धित पुष्पो को हाथ मे लेकर वे दोनो कुमार उदयतर गोपुर मे पहुँच गये ।।१०५९।।

काद मूंड्रिरंडुयरंदु काद नीन्डगंड्रु वाय्दल् ।
कादमाय् शिरप्पु मुम्मै पडिमै मुन्निलय दागि ।।
ज्योति युट कुळितु वाय्दल् जोदिड देवर् काप ।
पोदरुं पदागै शूळद दुदय गोपुर मदामे ।।१०६०।।

अर्थ—वह उदयतर गोपुर तीन कोस उत्सेध वाला तथा चौडाई मे दो कोस का था। उसके अन्दर जाने वाले द्वार की चौडाई एक कोस प्रमाण थी। उस द्वार पर अष्ट मगल द्रव्य लटक रहे थे। उस द्वार के रक्षक ज्योतिष देव थे। और चारो ओर अत्यन्त शोभायमान ध्वजाएं फहरा रही थी ।।१०६०।।

विल्लैड यूरगन् ड्रुयंडु वेळ्ळिया लियंड्रु शेन्नि ।
सोल्लिय वगै नाले सुरुंगि पोर् सूटदागि ।।
वल्लि मुन्निलै येट्टालै कोडि इडै मदिलि निड्र ।
सोल्लिय गोपुरत्तै तोळुदु पूचिदरि पुक्कार् ।।१०६१।।

अर्थ—उस गोपुर का विस्तार पाच सौ धनुष का था। इसके सबध मे विस्तार से आगे वर्णन किया जावेगा। इस गोपुर की ऊंचाई तीन खण्ड की है। जिस पर अनेक रग की ध्वजाएं हैं। उन दोनो राजकुमारो मे उदयतर नाम के गोपुर मे पहुँचकर फूल चढाये और पुष्पांजलि करके उस वन भूमि मे प्रवेश किया ।।१०६१।।

पल निर पर्यिड़् भूमि परमरण दरिवु पोल ।
उलगला मडंगु मेनु मुळ्ळिरु कादमागि ।।
निलविय मदिलिन् भूलै निड़् कुट्टियेंग नांगिर् ।
पल वन मागि पैवोन् मदिलिनै शूळ्द दुंडे ।।१०६२।।

अर्थ—उस सुन्दर वनभूमि का विस्तार जिस प्रकार अर्हंत केवली भगवान का विस्तार है, उसी प्रकार का था। कितने ही लोग उसमे समा जाय किंतु पता नही पडता था। ऐसी वह वनभूमि सभी जीवो को आकर्षित करने वाली थी। उस वन भूमि के चारो ओर उदयतर नाम की वेदिका है। उस वेदी के चारो तरफ प्रीतिधर नाम की दूसरी वेदिका है। और वनभूमि के बीच मे और कौनो मे अर्थात् एक २ कौने मे चार-चार स्तूप है। उस भूमि मे अनेक प्रकार के वृक्ष हैं ।।१०६२।।

कुट्टिय तिरुमरुंगुम् गोपुर तुयर मागि ।
येट्टुळ तूवै निड़् विजिक्कु ळेट्टे यागुं ।।
वट्ट वेन्कुडय सेदि मरंग ळेट्टि वट्टै शारंद ।
वेट्टुळ वपनुक्कादि पादव मिवट्रि निप्पाल् ।।१०६३।।

अर्थ—उस वनभूमि के कौनो के स्तूपो के दोनो बाजू मे जितनी ऊचाई मे वे गोपुर हैं। उतना ही विस्तार उसके चबूतरे का है। एक २ चबूतरे के साथ दो-दो स्तूप हैं। इस प्रकार चारो चबूतरो के मिलाकर आठ स्तूप हो जाते हैं। और एक २ कौने मे छत्रत्रय सहित दो-दो चैत्य वृक्ष हैं। सभी मिलाकर आठ चैत्य वृक्ष हैं। उन चैत्य वृक्षो की बाजू मे एक २ कल्प वृक्ष है। इस प्रकार दोनो मिलकर आठ कल्प वृक्ष हैं ।।१०६३।।

वोदियै सारंयु मुक्कोन् वट्ट नार् शेदुर मागि ।
नीदिया निड़् वावि येट्ट ु मूंड्रि वट्टै येय्दि ।।
योदिय वगर नोड्रि कुळिलु वाय् पशि योंड्रिर् ।
पोदु कोंडोंड्रि मन्नोर् पनिवर् पोयतूवै येप्द ।।१०६४।।

अर्थ—उस वन भूमि मे महावीथी के कौने मे जाते समय एक २ कौने मे एक २ बावडी है। उसके आगे वृत्ताकार से युक्त एक और बावडी है। इस प्रकार एक २ कौने से सबधित तीन बावडी हैं। कुल मिलाकर चौबीस तडाग (बावडिया) हैं। इन दोनो मेरु और मदर राजकुमारो ने पहले कौने के तीसरे नम्बर के तडाग मे जाकर स्नान किया और स्नान करके आगे वृत्ताकार नाम के तडाग मे दातुन आदि क्रियाओ से निवृत्त होकर चतुष्कोण मे रहने वाली पुष्प वाटिका मे आ गये। और वहा से पुष्प लेकर स्तूप के पास गये ।।१०६४।।

तिरकरै कोसमोगि शिनैग कोंडिशैयु मोडि ।
परुदि योर् कोशमागि पड्ंड्र कर्य गत्त सोलै ।।

किरुमडि युयरं्द सोग मेकिळंवाळै शेंबगं ।
तिरुवळि मांवु कीळद्दिशै मामरगळ् ॥१०६५॥

अर्थ—उस स्तूप का उत्सेध आधा कोस है। तथा उसका मध्य भाग उतना ही विस्तार वाला है। उसके पूर्व दिशा मे अशोक वृक्ष तथा दक्षिण दिशा मे चम्पक वृक्ष हैं। पच्छिम दिशा मे नाग केसर का वृक्ष एव उत्तर दिशा मे आम्र वृक्ष है। इस प्रकार महान ऊंचे २ कल्प वृक्ष वहां सुशोभित होते है ॥१०६५॥

आडगत्तियन् रिरंडु गोपुरत्तकवुं सेंड्र ।
नाडग शाळै मूंड्र निळैना लेट्टु पांद्रि ॥
यूड्ड शेड्रांडु नल्ला ज्वोतिडर् देविमार्गळ् ।
वीडिल पलवु निड्र वोदिई निरुमरंगुम ॥१०६६॥

अर्थ—स्वर्णमयी उस वन भूमि की महावीथी के दोनो बगल के उदयतर नाम के गोपुर मे प्रीतिंकर नाम के गोपुर तक एक से एक बढकर तीन खण तक है। एक २ मजिल मे जाने के लिये आठ २ पंक्ति है। उन पक्तियो में ज्योतिषवासी देवाङ्गनाओ द्वारा नृत्य करने की नाट्य शालाएं है ॥१०६६॥

पैंबोनुं मनिई नात्युं कुविड्रं वे पाद वादि ।
सेपोन् मंगलंगळ् वेदि तोरणं सेरिंदयावु ।
मुंबर् तं मुलगुं भोग भूमियु मोंड्रिनार् पोळ् ।
वं पोनि मुळइ नारु मैदेरु मळिद वेंगुम् ॥१०६७॥

अर्थ—सोने और रत्नो आदि से निर्मित चैत्यवृक्ष, स्तूप, अष्ट मंगल द्रव्य, वेदी के द्वार पर तोरण आदि अत्यन्त सुन्दर हैं। उस वनभूमि मे देवाङ्गनाएं, देवपुरुष, देवकुम मनुष्य ये सभी वहां रहते है १०६७॥

कुइळिशै मुळर माग कोंविन भेर् ट्रुविपाड ।
मइळ् नडं पइलु मेगुंम् वानवर् मड दैनल्लार् ॥
पुयळियन् मिन्नुपोळ सोळै वाय् पोळिपु तोंड्रि ।
कयल् विळि पिरळ कामं कनिय निड्रांडि नारे ॥१०६८॥

अर्थ—उस वनभूमि मे रहने वाले पक्षियो के द्वारा होने वाले शब्द अत्यन्त मुस्वर प्रतीत होते हैं। भ्रमरो के गुंजार शब्दो की ध्वनि और देवकुमार द्वारा होने वाले संगीत आदि को सुनकर जिस प्रकार मयूर अत्यन्त आनंदित होकर अपने दोनो पखों को फैलाता है, उसी प्रकार देवाङ्गनाएं नृत्य करती थी ॥१०६८॥

कर्पगमड नल्लार्गळ् कामनै शेखिदे पोर् ।
कर्पग मरत्तै कामवल्लिगळ् शेरिंद कामर् ।।
विर्पई ळोबियै कंडु वेदिगे येंड्रु मीळ्वार् ।
तप्पुवट नडयिट्टाळवै लोळयिना ळुयर मेन्ना ।।१०६९।।

अर्थ—जिस प्रकार पतिव्रता स्त्रिया अपने पति से बार २ आलिगन करती है, उसी प्रकार लताए' व कल्पवृक्ष परस्पर मे लिपटे हुए थे। उस वनभूमि मे रहने वाले मणियो के समूह के प्रकाश को देखकर वे मेरु और मदर इसी प्रकाश को भगवान का मदिर समझ कर जाते है; परन्तु भ्रम समझकर वापस लौटकर आ जाते हैं। ऐसी वह मणि चमकती थी। उस भूमि के प्रभाव से चलने मे श्रम अश्रम का कुछ भी पता नही चलता था। इसी से वह भूमि भ्रमायमान प्रतीत होती थी ।।१०६९।।

मधुकरं तुंबि वंडु वन् शिरै परवै मट्रु ।
पोदिय विळ् पोदिन् मीदू पोर्तन पुगळ लार्टा ।।
मदि योळि परंद भूमि विदि युळि किडदवल्लि ।
पोदुलिय पोदिन् मैदु पोर्ल कन् वांग ळार्टा ।।१०७०।।
वनमिदु विधिई नैय्दि वावियै शार्दु मैद ।
रिण मळरेंदि सोन्न वेट्टेडु मरत्ति नान्गु ।।
शिनैदोरु शेरिंद शीय वनै मिशै देवर्कोमा ।
ननैय पुरपडिमै तूबै यरुचित्तु पिरिदि सेरंदार् ।।१०७०।।

अर्थ—जिस प्रकार चद्रमा की किरणे चारो ओर फैल जाती है, उसी प्रकार वहा की विशाल वनभूमि मे रहने वाले पुष्पो मे निवास करने वाले भ्रमर आदि की ध्वनि चारो ओर गूजती है। उसका वर्णन करना मेरी अल्प बुद्धि मे अशक्य है। उस भूमि को देखने के पश्चात् और कोई दूसरी वस्तु देखने की इच्छा ही नही होती ।।१०७०।।

इरुनिदि इरुंद सेन्नि इमै यस् वंदिर्वन् पाँद ।
मरुविय देन्न सेंवोन् मयदाय वेळ्ळि शूडि ।।
युरु मळि युदयत्तिर्कु मिरुमडि यागु पिरिदि ।
तरमेनु मिंजि येंदु निळय्य नट्टाळेत्तागुं ।।१०७१।।

अर्थ—ऐसी वनभूमि मे वे दोनो राजकुमार पहुँचे और वहा अत्यन्त सुगधित पुष्पो को अपने हाथ से तोडे। वहा आठ कल्प वृक्ष है। और आठ ही चैत्य वृक्ष है। एक २ चैत्य वृक्ष मे चार २ शाखाए' है। एक २ शाखा मे एक २ जिन बिम्ब है। उस चैत्य वृक्ष के पास पहुँचकर मेरु और मदर दोनो राजकुमारो ने भगवान की पूजा की। वहा से आगे चलकर वनभूमि मे रहने वाले प्रीतकर नाम की वेदी पर पहुँच गये। वहा शखनिधि और पद्मनिधि

ऐसी २ निधिया हैं। इन दोनो निधियो के अधिपति वहा के देव है। वहा रहने वाली उदयतर वेदी इतनी ऊंची है कि मानो हिमवन पर्वत ही यहा आ गया है, ऐसा प्रतीत होता था। उससे दुगुनी ऊंची पाच सौ धनुष वाली प्रीतकर नाम की पाच वेदिया है ॥१०७१॥

कोडि मिडैगोपुरंग ळोंगिन नांगु गात ।
मिडि मुरसि द्यॅव वानो रियट्ट मंजिर प्यौ येयंद्रु ॥
पडि मेगळिरुंद पच निकगंळै पुडैय पैबोर् ।
कुडमुगं पदुमम् तेमागोंत्तन कोनंदाने ॥१०७२॥

अर्थ—उस प्रीतकर वेदी के कौने मे अधिक से अधिक प्रकाशमान ऊंची ध्वजाओ से युक्त चार गोपुर है। वे गोपुर चार कोस उत्सेध वाले है। जिस समय वहा देवलोग भगवान की पूजन करते हैं उस समय मेघ की गर्जना के समान अनेक प्रकार के वाद्यो की ध्वनि होती है। भगवान के अभिषेक के लिये बडे २ सोने के घडो को वहा स्थापित करते हैं और उन घडो पर सोने तथा पुष्पो की मालाएं व पल्लव आदि से उन घडो को सुशोभित करते हैं। ॥१०७२॥

गोपुर त्तिरु मरुंगुम् कुडवरै यनय तोळार् ।
पागर प्रमै पोळ पडरोळि भवनवेंदर् ॥
नागरु किरैवर् कोमानळं पुगक्ंद ळगंळारं्द ।
वेदिरं पिडित्तु काकुं पुरत्तुळार कोडिइन् वीदि ॥१०७३॥

अर्थ–उन गोपुर के द्वारो पर अस्ताचल पर्वत के समान भुजाओ वाले सूर्य के प्रकाश से युक्त भवनवासी देवो के अधिपति चमर वैरचित नाम का भुवनेंद्र और देवेद्र आदि के अधिपति जो देव हैं वे भगवान की स्तुति व गुणगान करते हुए अपने हाथो मे दण्ड तथा घोटो आदि को धारण कर खडे रहते हैं। उन गोपुर के अन्दर के भाग मे जो ध्वजा भूमि है वह पाचवे प्रकार की महावीथी कहलाती है ॥१०७३॥

ऐदुंवीर चदुरमगि पायिर त्तंवदाय ।
पंदिइन् वरुक्क माय मंडलं पत्तिन् भाग ॥
मिंगिवै तिरट्टि येग दिक्किनु कामि वट्टै ।
मंगल तन्निन् मार वंदव पंदिन् मोदू ॥१०७४॥

अर्थ—पाच प्रकार नाम की महावीथी के कौने मे अर्थात् एक २ कोने मे चतुष्कोण के रूप मे क्रम रूप से एक हजार अस्सी, एक हजार अस्सी इस प्रकार दो हजार अस्सी और अस्सी पक्तिया हैं। इन सब को मिलाकर गिनती करने से ग्यारह लाख, साठ हजार चार सौ हो जाती है। यह संख्या एक २ कौने की है। चारो कौनो मे रहने वालो की सख्या छियालीस लाख, पैंसठ हजार छह सौ मेखला होती है ॥१०७४॥

मूंड्र् विट्ट शदुर मागि मुकुमणि पीडत्तुच्चि ।
यूड्रि विल्लेरंडु सुट्रा युरंदिरु कांद पयं्वु ।।
नीड्रवे पोड्र् कन्निनेळिन मणि इरुद तडि ।
नांड्र पल्लिगै इनुच्चि पळगै मेळ् पदागै यामे ।।१०७५।।

अर्थ—तीन धनुष प्रमाण से युक्त रहने वाले चतुष्कोण की पीठ के ऊपर दो धनुष चारो ओर दो कोस उत्सेध वाले हैं। इनसे वह पीठ देखने मे अत्यन्त सुन्दर व शोभायमान मालूम होती है। और उस पीठ पर एक फलक है ।।१०७५।।

शिग मालियानै मालै शिरिवयन्नं गरुड नेरु ।
पकय मगर माळि पदिगळाम् पदागै पत्तुं ।।
पोंगिया काय मेन्नुं पुनरि वेडिरै गळ् पोलुं ।
मंगलक्किळ वन् कोइल् मदिलै सूळ्दाडु निड्रे ।।१०७६।।

अर्थ—सिंह, हाथी, फूलो का हार, मयूर, हस पक्षी, गरुड, वृषभ, कमल पुष्प मगर-मच्छ व समुद्र आदि इस प्रकार के लक्षणो से युक्त आठ प्रकार की ध्वजाए समुद्र से उठने वाली जलतरग के समान जिनेंद्र भगवान के समवसरण के आगे वेदी के चारो ओर ध्वजाए फहराती है ।।१०७६।।

मुडिमणि मुत्त मालै नानंड्र् किंकिनि गळ् मोइत्त ।
कोजि निरै कोडि नागो डरुपत्ता रिलक्कं कोमा ।।
नुडै यन वै वत्तारा इरमुंड्रि लुलावुगिड्र ।
पडियिदु काद मूंड्राय् पयोदि पोर् सूळ्ददामे ।।१०७७।।

अर्थ—उस ध्वजास्तभ के शिखरो मे मोती के हार नृत्य करने वाली नर्तकियो के पावो मे पैजनी के समान छोटी २ घटियो सहित फहराने वाली ध्वजाओ की सख्या चार करोड छियासठ लाख पचपन हजार है। यह भूमि तीन कोस चौडी होकर समवसरण को घेरे हुए है ।।१०७७।।

पलभणि पईड्र पत्ति पित्ति नर् पडिगम् पेवोन् ।
निलैगळै दागि निड्र नाटक शालै दोरुं ।।
मुलयुं मेगलेयुं मुत्तमालैयुं कुलाव मिन् पोर् ।
पल नड पैलुं भादरं भवनर् तम् पवळ वायार ।।१०७८।।

अर्थ—वहा अनेक प्रकार के रत्नो से निर्माण की हुई चार प्रकार की वेदिया हैं। उस वीथी मे रहने वाली नृत्य शालाए, मेखला भरण मोती आदि से युक्त भवन तथा देवाग-नाए नृत्य करती हैं ।।१०७८

पुळैक्कै माविट्ट मोळि याळानं पुनरं्द वट्रिन् ।
तळैच्चवि पोल वाडुं पदागै याम् तरणी तन्नै ।।
मळैं कैमा वेंदर् वंदु मंगल मरदि नैदि ।
कुळैत्तेळुं पोळिलै मूळ् कल्याण गोपुरत्तै सारं्दार् ।।१०७६।।

अर्थ—जिस प्रकार हाथी को ठान मे क्रम से बाध दिया और तब उस हाथी के कान जैसे हिलते रहते हैं उसी प्रकार ध्वजाए वहा फहराती हैं। यह सम्पूर्ण ध्वजाए ऐसी मालूम होती है, मानो सम्पूर्ण जनता को दान देने के लिये अपने हाथ फैलाये हुए है। इस प्रकार की ध्वजा भूमि को उलाघकर कल्याणतर नाम की वेदी मे वे दोनो मेरु व मदर पहुँच गये ।।१०७६।।

मुदनडु विरुदि कोश मूंड्रै यरैय कंड्रिद् ।
ड्रुदयत्तिन् मुत्ति योंगि तमणि येत्ति येंड्रु नाना ।।
विदभणि येनिंदु सेन्नि विडेद वेन् कोडिय दागि ।
मदिलिन तगत्तट्टाळै मलिदं वेळ् निलत्तदामे ।।१०८०।।

अर्थ—उस कल्याणतर वेदी की चौडाई नीचे तीन कोस और बीच मे डेढ कोस उसके ऊपरी भाग मे तीसरा हिस्सा उत्सेध होकर उदयतर और कल्याणतर का पहला उत्सेध जितना प्रमाण है उतना ही परिमाण है। जिस प्रकार सिर मे सुन्दर २ रत्न मोती तथा रत्न सोने से निर्मित पाउडर (स्त्रियो के सर पर माथे पर पीछे से अगले ललाट तक) धारण करती है। उसी प्रकार उस कल्याणतर नाम की वेदियो की सात प्रकार के भिन्न २ रूपो मे सजावट की गई थी ।।१०८०।।

पत्तरै काद मोंगि पैवोर् गोपुरंग नांगु ।
मुत्तमत्तुरक्क मेळै योत्त वेळ् निलत्तवागि ।।
पत्तु नामत्त वा मेळ् भवत्तोडर् पदनै काट ।
वैत कन्नाडि वाय्दल् मरुगिरंडुडै यदामे ।।१०८१।।

अर्थ—वह स्वर्णमयी कल्याणतर गोपुर सात मजिल की ऊचाई मे है, और पांच कोस चौंडाई मे है। उस गोपुर द्वार पर एक महान बडा काच लगा हुआ है, जिसमेंवहा जाने वाले को सात भव तक का ब्यौरा उस काच मे दीखता है। अर्थात् पूर्व भव व आगे के भवो का हाल प्रत्यक्ष मालूम होता है ।।१०८१।।

उरैत्त नामत्त वाय पुरत्तगत्तुदयं पोल ।
पेरुत्त गोपुरंग नागु पेरुविलै मनिय मालै ।।
तरत्ति नार् परत्तु ताळं्दु शन शन वेन्नुं कंडै ।
परित्तु नाट्रिशैयु वीदि परुदि पोलुळिरु निड्रे ।।१०८२।।

अर्थ—इस प्रकार चारो दिशाओ मे चार कल्याणतर गोपुर हैं। उन गोपुरो के अदर सूर्य के समान अत्यन्त प्रकाशमान जयघटा है। जिसकी ध्वनि दूर २ तक चारो दिशाओ मे सुनाई देती है ॥१०८२॥

उरैत्त गौपुरत्तु वाय्दल् कापव रुलग पालर् ।
निरैत्त वळ् निलत्तदाय नाटक शालै इन्कद् ॥
तरत्तिना निरैत्त मिन्निट्रा नडं पुरियु मादर ।
विरित्तुना मुरैत्त देवर् मेवुमा देवि मारे ॥१०८३॥

अर्थ—उस कल्याणतर गोपुर के दोनो ओर अगल-बगल मे लोकपाल नाम के देव रक्षण करते हैं। उस गोपुर मे रहने वाली वीथी की अगल-बगल मे सात मंजिल से युक्त नाट्य शालाए' बनी हुई हैं जिनमे लोकपाल देवो की स्त्रियां बिजली की चमक के समान प्रकाशमान होती हुई नृत्य करती है ॥१०८३॥

वडि वुडं पीडत्तिप्पाल् मणित्तिरळ् मलर्ंद नांगु ।
विडवं कन् मिक्का दिक्कै येळप्पन पोंड्र् शित्त ॥
पडिमैगळिरुद सिद्ध पादवं पयिड्र पोंड्र ।
कुडैइन् मदि निंदु वादि नांगिनुं कुलावु मिप्पाल् ॥१०८४॥

अर्थ—उस कल्याणतर गोपुर मे रहने वाली वृक्षभूमि मे चार दिशाओ मे एक २ वलिपीठ है। उसके अदर सिद्धायतन नाम के वृक्ष हैं। उन वृक्षो मे चार शाखाए' हैं। उन एक २ शाखा मे एक २ सिद्धो की प्रतिमा है। उस वृक्ष के फूलो के भगवान के ऊपर तीन छत्र हैं। वे सुन्दर प्रतीत होते है। उन फूलो का सुगध तथा प्रकाश चारो दिशाओ मे फैल जाती है ॥१०८४॥

अन्जुडरु विळंतूबै येरिवना लयत्तै सूळ्ंद ।
मजुर निमिर्ंदु माळै तलंगळ् पन्निरडं वागि ॥
येजन मलै यै सूळ्ंद ददिमुरव मनैय नान्गाम् ।
इंजि गोपुरगं नार् पालुडय वान् तडगं नान्गम् ॥१०८५॥

अर्थ—अनन्तज्ञान को प्राप्त हुए केवली भगवान के विराजमान होने का मदिर है। जिसको घेरे हुए कल्याणतर वेदी और गोपुर मे रहने वाले कल्पवृक्षो की वीथी मे अत्यन्त प्रकाशमान बारह मजिल से युक्त स्तूप हैं। जो आकाश को स्पर्श किये हुए हो ऐसे प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार नंदीश्वर द्वीप मे चारो दिशाओ मे अनतगिरि दधिमुख आदि चार पर्वत हैं, उसी प्रकार वहा भी चार स्तूप है और चारो दिशाओ मे चार बावडिया हैं ॥१०८५॥

नदै भप्रै शयंदै पूरनामत्त वावि ।
वंद मादिक्कि नान्गिल् वारियै तेळित्त पोळ् विल् ॥

मुंदय परण्पै योर्वा मुन् पिन्नेळ् भवत्तै कान्वार् ।
शिदै शैद वट्ट् पार्क तेळिक्क नोयायुं तीरु ॥१०८६॥

अर्थ—उस नदीश्वर द्वीप की भूमि मे रहने वाली बावडियो के नाम अर्थात् पूर्व दिशा मे रहने वाली बावडी का नाम नंदा, दक्षिण दिशा की बावडो का नाम भद्रा, पच्छिम दिशा की बावडी का नाम जयता और उत्तर दिशा मे रहने वाली बावडी का नाम पूर्णा है। ॥१०८६॥

वास निड्राद शोलै भदिळिन् दगत्तु मांड ।
ओचनै यगंड्र देनु मुळगेळा मडगिनाळु ॥
मासै पोग ळगंड्र तोड्र मरुमणि निळत्त दागि ।
मासिला मणिड्र नायमरंगळा शेरिंददेंगुम् ॥१०८७॥

अर्थ—पूर्व दिशा की वावडी के जल को मनुष्य गधोदक के रूप मे अपने मस्तक पर डालते हैं, जिससे उसके आगे के और पीछे के दो भवो का ज्ञान हो जाता है। दक्षिण दिशा की वावडी के जल को देखने से आगे और पीछे के भवो को जान लेते है। पश्चिम दिशा की वावडी के जल को देखने से अपने मन मे जो इच्छा होती है वह पूर्ण हो जाती है। तथा उत्तर दिशा की पूर्णा नाम की वावडी के जल को देखकर मस्तक पर डाल लेने से सम्पूर्ण व्याधियो का नाश हो जाता है ॥१०८७॥

पळ निरं पइंड्र फळंगकुं शेरिदं शागै ।
निळैतळंदोशिय काना निरैय वन् शिरैग कीडि ॥
मळ्र निरेंदिरुदं मट्टै वांगिनार् 'ट्रांगपारा ।
मिळैयना मिळाद वकुं विरुंदेळुदुडं तेनै ॥१०८८॥

अर्थ—उस कल्याणतर गोपुर मे रहने वाले कल्पवृक्ष नाम की भूमि का चार कोस का विस्तार है। वह भूमि इतनी विशाल है कि तीन लोक के जीव आकर बैठ जांय तो सब का समावेश हो जाता है। वह भूमि बैठने मे कम नही पडती है। वहा रहने वाले कल्पवृक्षो की रत्नो से सजावट की गई है। वह वृक्ष अनेक प्रकार के फल पुष्प आदि मे भरे हुए हैं। फल व पुष्पो से उन वृक्षो की शाखाए झुकी हुई है। उन फलो की सुगध के अधीन होकर भ्रमर तथा अन्य पक्षी मधुर रस का आस्वादन लेते हुए उन्ही मे रहते हैं। वे पक्षी उन फूलो के रसो को खीच रहे हैं इसलिये कि उन वृक्ष का बोझ कम हो जावे। जैसे २ उन शाखाओ मे से वे पक्षी मधुर रस को खीचते हैं वैसे २ फूल व शाखाए ऊपर को उठती जाती हैं। वे शाखाएं झुकी हुई हवा से इस प्रकार हिलता है। मानो लोगो को बुलाकर दान दे रही हो। ॥१०८८॥

शिरप्पोडिंगडंद देवर् शेरि पोकि ळदनंचेर्दार ।
ट्रुर कत्तै मरप्परेड्रा मोळ्रय दिनि येन्नंड्रिप् ॥

पिरप्पेरिंट्टदिरुंद वीरन् पेरुमैयै शिरिदु काट ।
विरप्पवु मुयरं्द देव राजना ळियंड्र देंड्रो ।।१०८९।।

अर्थ—तदनन्तर वे मेरु व मदर दोनो राजकुमार उस समवसरण मे रहने वाले कल्पवृक्ष की भूमि से अष्ट द्रव्य सहित आगण वाली उस भूमि मे प्रवेश करते ही ऐसा मालूम होता था जैसे कि देवलोक मे प्रवेश कर रहे हैं। ऐसा आनन्द प्रतीत होता था कि उसके समान अन्य कोई स्थान ही नही है। उस भूमि वर्णन करना अवर्णनीय है। इस प्रकार भगवान के अतिशय को दिखाने वाले देवो ने समवसरण की रचना की ।।१०८९।।

पळिक्कु नट्रळमि देड्रु वावियुट् वैत्तु ।
कुळिक्क वोऊंदवरै काना कैकोट्टि शिरिप्पर् नोका ।।
पळिक्करै तळत्तै वेळ्कप्परप्पेंड्रु पात्तु मोक्वा ।
रुकिप्पिकं वीवट्रे पित्ति येंड्रु पो कट्रु निर्पार् ।।१०९०।।

अर्थ—वे दोनो कुमार उस रत्नजडित भूमि मे रहने वाली बावडियो मे अपने २ हाथ पाव धोने तथा स्नान करने उतरे इनको ऐसा करते देखकर वहा के रहने वाले लोग हसने लगे। क्यो हसने लगे ? वास्तव मे बावडियो मे पानी नही था बल्कि स्फटिक मणि के समान वे जल पूर्ण बावडिया प्रकाशमान हो रही थी उसी को पानी समझकर वे नीचे उतरे थे। किंतु केवल प्रकाश देखकर ही तथा पानी न होने के कारण वे मेरु और मदर वहा से वापस लौटकर और कहने लगे कि काच सा है पानी नही है ।।१ ९०।।

कदिर मणि माडन् तम्मै कन्नुरुवार् तन् सायै ।
यदिर् वरु वारै योप्प विडंदिडेंदेगुं निर्पर् ।।
मदुरमाम् तन् सोट्रामे तमक्केदिर् माट्रमाग ।
वेदरेदिर् मोळिगिन् गिड्रारोत्तियं बुवरेंगु मेंगुम् ।।१०९१।।

अर्थ—स्फटिक मणि से निर्माण किए उन मदिरो की चमक से अपने ही प्रतिविम्ब को उसमे देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे उसी के समान दूसरे आदमी का प्रतिबिम्ब हो ऐसा समझकर वे वहा से हट जाते थे। जब वे बोलते थे तो उनकी आवाज ऐसे गूँजती थी मानो आदमी बोल रहा हो ।।१०९१।।

वरै पुरयु माळिगैइनिरैगळवै योरु पाळ् ।
परुदियोळि तेरुव पळ मंडपग ळोरुपाल ।।
मरुविनरु मरि वरिय माड निरै यरु पाल ।।
परुमणिय तूनिरैय पाडळिडमुरुपाळ् ।।१०९२।।

अर्थ—उस कल्पवृक्ष की भूमि मे बडे २ पर्वतो के समान विशाल भवन थे। दूसरी

ओर सूर्य की किरणो को जीतने वाले अनेक मंडप थे। एक ओर बडे २ स्तभो से निर्माण की हुई सगीत शालाए थी ॥१०६२॥

नाटक मडंदयरंगळाडुमिड मुडु पाल् ।
आडवर्गळ वूडि विळैयाडुमिड मोरुपाळ ॥
कोडुयर्सै कुंड्रमवै निड्र विड मोरुपा ।
लाडग नल्वैदिगै य कूड मिड पोरु पाळ् ॥१०६३॥

अर्थ—वहा नृत्य करने वालो की नृत्यशालाए एक ओर है। पुरुषो के खेलने का स्थान क्रीडाशाला के रूप मे एक तरफ है। निर्माण किये हुए कृत्रिम पर्वत एक ओर हैं। स्वर्ण से निर्माण किये हुए महल तथा दीवारे एक ओर थी ॥१०६३॥

वान् करुविन ट्रीन्सुवैय वारिनदि योरुपाळ् ।
तेन् सेरिद पून् तडंगळ् शिरै पईड्र दोरुपाळ् ॥
वायंद मणितळंगळ् वल्लिमंडपगं ळोरुपाळ् ।
सूकंद सेंवोन् वेदिगय वागुम् शिळ वोरुपाळ् ॥१०६४॥

अर्थ—उस कल्पवृक्ष की भूमि मे इक्षुरस के समान माठे पानी की नदी है। दूसरी ओर फूलों और कमलो की लता से युक्त बावडी है। लता मडप एक तरफ है तथा स्वर्ण निर्मित कई स्थानो पर कोट बने हुए हैं॥१०६४॥

मंजमळि पंजमळि युडैयविड मोरुपा ।
लुंजन मिशै येन् सोळव राडुमिड मोरुपाळ् ॥
पजियनै यार्गळोडु मैदरिड मुरुपा ।
ळिजियद नगत्तिनै ईयंविड वोनादे ॥१०६५॥

अर्थ—सोने के लिये मखमल के गद्दे, पलग आदि एक ओर है। स्त्रियो के बैठने की जगह एक ओर है। स्त्रियो का झूला तथा पुरुष-स्त्रियो-दम्पतियो के बैठने का स्थान एक तरफ है। इस कल्पवृक्ष भूमि का वर्णन करना मेरे लिए अशक्य है ॥१०६५॥

मळै यनैय निळै युडैय मादवर्ग कोरुपाळ् ।
विळैयमर वेरिदरुम विरोचनगं ळोरु पान् ।
मळै विन् मोळि निळै युनळ मौनधर रोरुपाळ् ।
निलै पनिड्न वेयिन् मकंई नींगळिळ रोरुपाळ् ॥१०६६॥

अर्थ—पर्वत के समान तपस्वियों की तपस्या करने के स्थान एक तरफ हैं। संसार मे होने वाले दुःख का नाश करने, सद्गुणी उपाध्यायो के स्थान वहां एक ओर हैं। और व्रत

के धारण किए मुनि लोग एक तरफ बैठते हैं और सर्दी, गर्मी, बरसात मे हमेशा समान रूप मे रहने वाले मुनियो के स्थान एक ओर ही है ।।१०९६।।

उक्कतवर् तत्ततवर् रोरुपाळ् ।
मिक्कतवर् घोरतवर् मेरुमिड मोरुपान् ।।
तोक्कनळ काय मन वशिवळिगमेरुपाल् ।
पक्कमुद नोन् बुडैय परम तव रोरुपाल् ।।१०९७।।

अर्थ—उग्र तप को प्राप्त हुए तपस्वियो क स्थान एक ओर हैं। दीप्त तप को प्राप्त हुए तपस्वियो तथा आर्यिका माताओ के स्थान अलग २ हैं। महातप व घोर तप को करने वाले मुनियो के स्थान एक तरफ है। मनोबल और वचनबल को प्राप्त हुए मुनियो का स्थान तथा पक्षोपवास, मासोपवास तप करने वाले मुनियो के स्थान एक ओर हैं ।।१०९७।।

मासुमळं वाय् तिवळै मूकुडय भरुदान् ।
पसरिय पेरुंतवर्ग ळिरुंद विडमोरुपाळ् ।।
वासनरु नेयमदु पाळमुदु विन्मे ।
ळासै यर् उरै शैमुळि येरुंतवर्ग ळोरुपाळ् ।।१०९८।।

अर्थ—अपने शरीर मे होने वाले मलयुक्त मल्लौषधि ऋद्धिधारी, आमर्षौषधि, खेलौषधि, विडौषधि सर्वौषधि आदि २ ऋद्धिधारी मुनियो के स्थान एक तरफ है। क्षीर रस ऋद्धि, सर्पि: रसऋद्धि, यानी घृतऋद्धिधारी मुनियो का स्थान एक ओर हैं ।।१०९८।।

मुदळिरुदि नडुव नोरु पदमदु कोंडन् नूळ् ।
विदि मुकुदु मरिडर् शिळर् मूळ पद मेवि ।।
मुदनडुवु मुडिय उनर् वार् सविन्न मदिकन् ।
मदिइन पुगै पन्नि रंडिन् वरु मुळिग करिवार् ।।१०९९।।

अर्थ—जिनागम के प्रथम एक पद, अत का एक पद, मध्य का एक पद को लेकर संपूर्ण आगम के जानने वाले कोष बुद्धि मुनियो के स्थान एक तरफ थे। प्रथम मे एक पद को जानने वाले बीज बुद्धि मुनि तथा अपने स्थान से बारह योजन दूर रहने वाले शब्दो को भली प्रकार सुनने वाले तथा समझने वाले दूर श्रवण ऋद्धिधारी मुनि का स्थान एक तरफ है। ।।१०९९।।

मदिय वदि सुद मिरुदु विपुलमतिज्ञान ।
मदि शयर्ग लनगार केवली ळीरुपाल् ।।
विदिरलनु मादि विगुवनै वलव लोरुपान् ।
मदियिन् वरु चारण नन्मा मुनिव रोरुपाल् ।।११००।।

अर्थ—मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, ऋजुमति, विपुलमति मुनि तथा इतर केवलियो के स्थान एक ओर थे। आकाश मे सूर्य के समान गमन करने वाले, चलने वाले चारण ऋद्धिधारी मुनियो के स्थान पृथक् थे तथा अणिमा, महिमा ऋद्धिधारियो के स्थान एक तरफ थे ॥११००॥

वेदमरु नांगैनयत्तै विनयत्तं मिगमेवि ।
योदुवद् केर्पव रुरैप्पवर्निरुत्तर् ॥
वदियर्गळ् कट्रमर वादमयि योर कन् ।
मेदगैय शिदनै कन् मेवुनर्ग ळोरु पाळ् ॥११०१॥

अर्थ—प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग और द्रव्यानुयोग को भली भांति पढने वाले, मनन करने वाले सुनने वाले तथा मानव के प्रति उपदेश देने वाले, सुनकर उसको ग्रहण करने वाले और धर्मध्यान व शुक्ल ध्यान वाले महामुनियो का स्थान एक ओर था। ॥११०१॥

पुक्क विड सक्करन् ट्रन् पडै योदुंग पोदु ।
मिक्कतवर पानिमिशै मेयमिगै यडिसिळ् ॥
पुक्कुळग मुंडिडिनुं पोदु पगलेल्लै ।
तक्कतवर् मुदन् मुनिवर् शाट्र मुडियारे ॥११०२॥

अर्थ—उस कल्पवृक्ष की भूमि को बाह्य से यदि देखा जावे तो ऐसा स्थान बहुत ही कम देखने मे आता है। उस स्थान पर यदि चक्रवर्ती भी अपने दल सहित आ जावे तो वह भूमि कम पडती। उस भूमि मे अक्षीण महानस ऋद्धिधारी महामुनि रहते हैं। जिसके घर मे ऐसे मुनि आहार लेते हैं उसके घर मे अक्षीण महानस ऋद्धि हो जाती है। और यदि चक्रवर्ती का दल भी वहा भोजन करने के लिये आ जावे तो कमती नही होता है ॥११०२॥

इनैयमुनि वन मिदनिन् वीदि इरुमरुंगिर् ।
कनगमणि वेदिगै विल्लुडय कोडियदनिन् ॥
निनैय मळि निळगळै यव्वैदर् पणिदेत्ति ।
येनगमन राइरैजि याशिर मंडिदार् ॥११०३॥

अर्थ—इस प्रकार उस कल्पवृक्ष की भूमि मे ऋद्धि सम्पन्न मुनिराज रहते हैं। यह छठे कल्पवृक्ष की भूमि है। वहा स्वर्ण तथा रत्नो से निर्मित एक धनुष ऊंची वेदी है। ऐसी उस भूमि मे रहने वाले मुनियो को नमस्कार करके वहा से आगे सातवे प्राकार नाम के गृहांगण भूमि की महावीथी मे प्रथम श्रेणी मे रहने वाले जयाश्रव मंडप मे वे दोनो मेरु और मदर राजकुमार गये ॥११०३॥

कडित्तळ वुळ्ळ नरंडगै ।
कोडि निरैत्त सयाशिरं कोशत्ति ॥

नुडन कंडू दोरोचनै योकमुम् ।
कडन दायदु कावद मागुमे ।।११०४।।

अर्थ—वह जयाश्रव मडप बडी २ ध्वजाओ से तथा उसका अर्द्ध भाग छोटी २ ध्वजाओ से परिपूर्ण था । उस जयाश्रव मडप की एक कोस की चौडाई है और एक कोस की ही ऊ चाई है ।।११०४।।

मांदिरत्तेळु मामदि वान् कड ।
लोद मेर वुडन् पुगुमारु पो ।।
नादन् मानगर् मुंड्रिळिन् वाय्दळ् वाय् ।
पोदुवार् पुगुवार् कन्मिडैदरार् ११०५।।

अर्थ-जिस प्रकार पूर्णिमा के चद्रमा को देखकर समुद्र उमड पडता है, और छोटी २ नदिया उसमे प्रवेश करती हैं, उसी प्रकार उस जयाश्रव मडप सबधी मदर मे रहने वाले भव्य जीव सदैव ही वहा निवास करते है । और उनको देखकर महान आनन्द होता है । ।।११०५।।

सुंदरत्तरक पवळत्तिरळ् ।
पदि पदि परदन पार् मिशै ।।
इदुविन कदि रोडिर विवक दिर् ।
वदु वालु गमायिन पोलुमे ।।११०६।।

अर्थ—उस जयाश्रव मडप की जो भूमि है वह मोतियो और पन्नो मे निर्मित है । उसको देखने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे चंद्रमा व सूर्य की किरणे तथा बालू मिट्टी की कणी हो ।।११०६।।

मरै तलत्तरै जोतिरमंडिलं ।
वरैत्त कुंकुम शंदन मंडिळम् ।।
निरैत्त शकंमळंग निमकिशै ।
नरैत्तल तेळुतामरै पोलुमे ।।११०७।।

अर्थ—उस जयाश्रव मडप को चंदन कपूर आदि का मिश्रण करके जमीन पर साथिया आदि से पूरा गया था । तथा सूर्य और चद्रमा माडे गये थे । उनको देखने से ऐसा प्रतीत होता था, जैसे पुष्कर द्वीप के बाहर रहने वाले ज्योतिषी देवो के रहने वाले सूर्य और चंद्रमा जिस प्रकार गमन रहित स्थिर रहते हैं वैसा ही प्रतीत होता था । वह मडप कमल के फूलो से पूरा गया था । वह देखने मे पुष्कर द्वीप के समान प्रतीत होता था ।।११०७।।

माळिगै निरै मंडप मल्लवु ।
माळि मानवर् देवरडैदुळि ।।

नाळु नाळु नंह्लिवस् पयप्पन ।
शूळि याने ये शूळ् पिडि पोळ् वन् ।।११०८।।

अर्थ—उस जयाश्रय नाम के मडप मे अनेक प्रकार के महल कई मंजिल वाले हैं। उसको देखने से ऐसा मालूम होता था जैसे एक हाथी के चारो ओर कई २ छोटे २ हाथी हो। इस प्रकार कई मंजिल का वह मडप था। उस ऊंची मजिल मे रहने वाले जीवों को अत्यन्त आनन्द उत्पन्न होता था ।।११०८।।

शिप्पि शैगं मुंडयन् शैविनं ।
तुप्पुरुवै युरैप्पन नन्नेरि ।।
तप्पिनार् तडुमाट्रै विरिप्पन् ।।
विप्पडिय विर्वाट्र मेनिप्पळ ।।११०९।।

अर्थ—उस मंडप मे रहने वाले महल की मंजिल पर पूर्वजन्म में उपार्जन किया हुआ तथा संचय किया हुआ पाप और पुण्य का लेखा जोखा उसमे लिखा हुआ था और महाव्रत को धारण करके भ्रष्ट होना तथा मरण को प्राप्त हुए दुख को भोगना आदि अनेक विषय वहा लिखे हुए थे ।।११०९।।

मंदिरत्तै येनिदु पुर् शिडिगं ।
इन्दिरत्तु वस मिडं निड्रंन ।।
शंदिरत्तिरळिन पुळगत्तिडै ।
वंदु नित्तिळ माळंग नाड्रंवे ।।१११०।।

अर्थ—उस जयाभव मंडप के अदर स्वर्णमयी एक पीठ है। उस पीठ के मध्य भाग मे इन्द्र ध्वज नाम की एक पताका है। वह ध्वजस्तभ चद्रमा की किरण के समान प्रकाशमान हो रहा था। उस स्तभ के शिखरों को मोती आदि अनेक प्रकार के हारो से सुशोभित किया गया था ।।१११०।।

सुंदिरत्तिरन् मामरिण सूडिन ।
मिव मिन् परप्पिन् मिळिरदु बिळ् वीसुव ।।
पेन् लुगिर् कोडि काळ् पोर पार्पिन ।
मंदरत्तिडै याडुव पोळ मे ।।११११।।

अर्थ—उस ध्वजा स्तभ को अत्यत सुन्दर दर्पण से निर्माण किया हुआ शीशा के समान श्रेष्ठ रत्नो से जड दिया गया था। वे रत्न बिजली के समान चमकते थे। उस स्तभ पर लगी हुई ध्वजाएं जब हवा चलने पर लहराती हैं, उस समय ऐसा मालूम होता है कि जैसे हस पक्षी अपने परो को फडफडाता है ।।११११।।

कारिन् मेदुळवुं कदलि कोडि ।
तार मणिगळ् शेलिप्प वोलिप्पन् ।।
वारि मीदु वरु परित्तेरिडै ।
तार् मणियल् शेलित्तोलि पोलुमे ।।१११२।।

अर्थ—मेघ मडल पर लहराने वाली पताकाओ के हलन चलन होने से ध्वजाओ पर रहने वाली फूल के समान उन घटियो (टोकरें) के शब्द अत्यन्त मधुर होते थे। वे शब्द कैसे थे जैसे सूर्योदय होते समय सूर्य ऊपर आता है और छोटे २ घंटे आदि वजते हैं, उसी प्रकार शब्द होते थे ।।१११२।।

इंद वान् वान् कोडि यै कडंदेगलुं ।
वंदु तोंड्रु मगोदय मंडपं ।।
सुंदरं मार्णत्तू निरै यायिर ।
तेंदै कोइन् मुगत्ति निरुददे ।।१११३।।

अर्थ—इस जयाश्रव मडप को उलाघ कर जाते ही उसके सामने महोदय नाम का मडप है। वह मडप एक हजार स्तभो से निर्माण किया हुआ है और भगवान के मदिर के सन्मुख है ।।१११३।।

मट्रि मंडप तुन्मणि पोडिगै ।
सोर किलत्ति इरुक्कै सुदक्कडन् ।।
मुट्रुम् वंदोरु मूर्ति कोंडालन्न ।
पेट्रिया लिरुंदालै वलत्तिरिई ।।१११४।।

अर्थ—उस मडप के अंदर रत्नो से निर्मित की हुई पीठ है। उस पीठ पर सरस्वती देवी की मूर्ति विराजमान है। श्रुतज्ञान नाम का समुद्र जिस प्रकार इकट्ठा होकर आया हो उसी के समान दिखाने वाली वह देवी थी। और उसके बाई बाजू श्रुत है ।।१११४।।

सोर्विन् मादवर् सूल् सुदकेवलि ।
तारगै नडुचंदिरन् पोलववन् ।।
कार् पैविर् कुदवुं बडि यालुइर् ।
कवि मिडि यरत्तै यलिक्कुमे ।।१११५।।

अर्थ—उस सरस्वती देवी के दाहिने भाग मे अनेक मुनि बैठे हुए हैं और उनके बीच मे एक श्रुतकेवली। जैसे मेघ बादलो से वर्षा करता है उसी प्रकार वे मुख कमल मे भव्य जीवों को उपदेश करते हैं ।।१११५।।

मेरुविन् येट्टयु मेविय ।
वारणं मलै पोलवन मंडप ।।
मेर निपुल वेंडिसैयु मिदन् ।
नेर् मुन्निड्र दोर् पीडिगै नंड्री १११६।।

अर्थ—उस महोदय मडप के चारो दिशा में जिस प्रकार महामेरु पर्वत रहता है। उसी प्रकार बडे २ मडप है। उन मडपो के सामने बलिपीठ है ।।१११६।।

वल्लिनन् मणि पोन्मय मागिय ।
वेल्लि पगलुं वलि येंदुमी ।।
देल्लि शैपिरै वन्नगर् वायीलुट् ।
शेल्लवल्लि कन् मंडप मेडुंम ।।१११७।।

अर्थ—वह बलिपीठ योग्य प्रमाण से उत्सेघ तथा चौडाई आदि योग्य प्रमाण से युक्त है। वह पीठ सोना और रत्नो से निर्मित की हुई है। उसकी बलिपीठ की भव्य जीव पूजा करने के लिये अदर जाते समय सुगधित एक लता मडप है ।।१११७।।

पोदरा मणि पीडत्ति नप्पुरं ।
वाय्दल् वीदियै नोकिय मंडप ।।
नीदिया निधि कोक निरंदर ।
मीदल् मेविइरुप्प विरळ ।।१११८।।

अर्थ—उस रत्नो से निर्माण किये हुए बलिपीठ को छोडकर आगे जाने पर एक महावीथी आती है। उसके दोनो ओर दो मडप है। वे मडप नवनिधि के अधिपति कुवेर के समान दान करने वाले ऐसे प्रतीत होते हैं ।।१११८।।

पाडळोडु पइंड्रिलै येंपळ ।
कूडि नीडु नीला वल्लै मिन्नेन् ।।
तोडु माडुव वच्चुर देविय ।
राडु माडग शालयप्पालवे ।।१११६।।

अर्थ—उस मंडप को छोडकर आगे की वीथी से भीतर जाते समय वहा सुन्दर २ आभरणो को धारण किए हुए कुवेर की स्त्रियो के नृत्य करने की नाट्यशालाएं हैं। इस प्रकार वे दोनो राजकुमार उस समवसरण के वैभव को देखकर आगे बढ रहे थे ।।१११६।।

वेट्रि मुट्र विदिक्कनतूवंग ।
कुट्र निड्रेन वोंगि योरोचनै ।।

सुट्र ु वेरुळ वेदिगै तोरणं ।
वेट्रि वेन् कोडि माळय मेळेलां ।।११२०।।

अर्थ—यहा तक सात प्रकार के गृहागण भूमि मे रहने वाली वस्तुओ का आधिक्य विशेषकर वर्णन किया गया है। उस गृहागण भूमि के कौने मे रहने वाले स्तूप हैं। एक योजन उत्सेध से युक्त एक स्तूप है। वह स्तूप सभी भव्य जीवो को अत्यन्त सुन्दर व मनोहर दीखता है। उसके चारो ओर वेदी है और स्तूपो पर चारो ओर सफेद ध्वजाए है। और वे पुष्पो के हार मोती के हारो से युक्त है ।।११२०।।

अडिपि निर् पिरप्पिन् मनैयुत्तिडै ।
तुडियै वेंड्र विरिमुळ विन्नळ ।।
वडिवै योप्पन वैय्यग तूव इप् ।
पडिपिनागुमट्र ुळ्ळदु सोन्नुवाम् ।।११२१।।

अर्थ—पहले कहे हुए स्तूप के विस्तार से होकर बीच मे कमती विस्तार होकर बीच मे मृदग के रूप मे रह गया है। उस गृहागण भूमि के कोने मे लोक स्तूप नाम का आदि स्तूप है। उसका स्वरूप आगे कहेगे ।।११२१।।

मद्दिम ळोगमु मंदरत्तयुं ।
मोत्तवुं तुरक्क नर्कवै योप्पवुं ।।
सिद्दि शेव्वट्टवुं सिद्धरुपियुं ।
पट्रियल् कलैत्तेरुं भव्य कूडमुं ।।११२२।।

अर्थ—मध्य लोक मे एक स्तूप मेरु पर्वत के समान है, और स्वर्ग का स्तूप नवग्रह के समान है। तथा एक सर्वार्थ सिद्धि के समान स्तूप है। और एक राग को नाश करने वाला भव्य स्तूप है ।।११२२।।

वीत शोगमु मै मै विळक्कुमेन् ।
ट्रोदु नामत्त वंड्रि नोंडुळ्ळवाम् ।।
काद पाद मगंड्र ु विल्लोंगिमे ।
ळेदमिळ् वळकांळ् वट्ट मिगिदे ।।११२३।।

अर्थ—स्वभाव से ही प्रकाशमान शोक रहित एक वोधिनाम का स्तूप है। इस प्रकार स्तूप कौने २ मे रहने वाले सभी वीथियो में क्रम से है। वहां प्रदक्षिणा मे आने वाले जीवों को चार भागो मे से एक भाग आने जाने के रास्ते के लिए है। वाहर की भूमि से वह स्तूप एक धनुष ऊँचा है ।।११२३।।

वानवर् कोन् मनत्तेन्नि चैदवन् ।
ट्रान्मिग वियपुरं तरणी तन्मै पै ।।

यानिव बुरै पदर केळुंद मट्रिदु ।
वूनमे यागिळु मुळिय वल्लनो ।।११२४।।

अर्थ—देवेंद्र अपने मन मे यह विचारता है कि इसी प्रकार के समवसरण की रचना करना चाहिये। कुबेर द्वारा तैयार किए हुए समवसरण को देखकर सभी लोग आश्चर्य करे ऐसा वर्णन करने मे मेरी शक्ति नही है फिर भी मेरी अल्प बुद्धि के अनुसार समवसरण का वर्णन करूंगा। सुनो! ।।११२४।।

कोसमुं कोसमुं मिरंडु कोसमुं ।
कोस नान्गेट्ट्रु मुन्नागि रेट्टू माय् ।।
कोसमोर् पत्तोडे ळोंड्रु मुम्मदिर् ।
कोसमो रारुपोय् कोई ळैदिनार् ।।११२५।।

अर्थ—उस समवसरण की दो कोस प्रमाण प्रासाद भूमि है। दो कोस विस्तार से युक्त खातिका भूमि है। चार कोस विस्तार वाली बलिभूमि है। आठ कोस विस्तार वाली उद्यान भूमि है। बारह कोस विस्तार वाली ध्वजा भूमि है। सौलह कोस वाली गृहागण भूमि है। और महान विशाल वीथियां हैं। इस प्रकार समवसरण भूमि का उल्लघन कर वे दोनो मेरु और मदर कुमार भीतर रहने वाले नील नाम के मदिर मे पहुँच गये ।।११२५।।

कार्मुग मुंड्रु मे ळुंड्रु पत्तोडेळ् ।
कार्मुग कुरंद मुम्मदिलि नोकमुं ।।
कार्मुग मीरायिर मुंड्रु माय पिन् ।
मरियमा लुयर्द न निळंकळंववे ।।११२६।।

अर्थ–उस समवसरण मे रहने वाली सात भूमि एक से एक बढकर ऊंची है। बाहर से अदर आते समय उदयतर वेदी दो हजार दस धनुष ऊंची है। प्रीतंकर वेदी चार हजार धनुष ऊंची है। और तीसरी कल्याण कारक नाम की वेदी छह हजार धनुष ऊंची है। ।।११२६।।

वार मळि मुळै मादर् नडंगकुं ।
कमिळि कदळिक्कोडि ईटमुस् ।।
सेर्विन् मट्रु मुरैत्तनन् सुंदर ।
मौरिनन् मदि यत्तिनै योदुमे ।।११२७।।

अर्थ—उनमे नर्तन करने वाली देवाङ्गनाओ की नाट्यशालाएं बनी हुई हैं। वहा पर रहने वाली ध्वजा पताकाओ के स्थानो के सबध मे विवेचन किया जा चुका है। अब अर्हंत केवली भगवान के समवसरण मे विराजमान लक्ष्मी मडप का वर्णन करूंगा ।।११२७।।

मकर वन् कोडियवन् ट्रन्नै वेड्ंवन् ।
नगरमुं तनदिड मागनाटि योन् ।।
पुगररु पोन्नेयिळाम् पुट्रामरं ।
शिगरमाम् तिरु निळै यमैंदि शेप्पुवाम् ।।११२८।।

अर्थ—मकरध्वज नाम के कामदेव को जीता हुआ जो स्थान है वह स्थान देवो के द्वारा निर्मित है। उस स्थान के विषय मे जो स्वर्ण के कमलो से बनाया है उसके सम्बन्ध मे विवेचन करूंगा ।।११२८।।

देवर् कोन ट्रिसै दिशै कंडु सोप्पिय ।
मूबुलग अरसर् गळादि मूदुरं ।।
मेविय विदनै यान विळब लुट्र्दु ।
नावलर् नगुवदोर् वाइ लागुमे ।।११२९।।

अर्थ—देवेंद्र के द्वारा एक २ दिशा मे जो इस प्रकार की रचना की गई है, इसके बारे मे तीन लोक के नाथ जिनेंद्र भगवान के रहने वाले श्री निलय का वर्णन किया है। वे इसका वर्णन करने मे अशक्य है। फिर भी अल्प बुद्धि के अनुसार वर्णन किया है। ज्ञानी लोग देखकर इसकी हास्य न करके इसमे जो रहने वाले विषय हैं उनको ग्रहण करे ।।११२९।।

इव्विड मिव्वन्न मागि नंड्रेनि ।
लव्विड मव्वन्नवागि तोंड्रिडु ।।
मिव्वड दिव्विड मळगि देंड्रिडि ।
नव्विड तौव्विड मळगि दामे ।।११३०।।

अर्थ—उस समवसरण मे जाकर उस मकरध्वज नाम के कामदेव को जीतने वाले स्थान को देखकर प्रशसा करते हुए आगे एक दूसरी भूमि मे पहुँच गये, जो कि इसमे भी अधिक सुन्दर थी ।।११३०।।

उच्चमे नीच माय् नीच मुच्च माय् ।
इच्चेया लोरुव नुक् कियलु मारु पो ।।
लुच्चने नोचमाय् नीच मुच्चमा ।
इच्चे इन् पडियिना लेंगुम् तोड्रुमे ।।११३१।।

अर्थ—उस मणिमय भूमि की चमक मे उस भूमि का ऊचा नीचा सम विषमपन मालूम नही पडता था। एक मनुष्य के अदर जिस प्रकार उसकी इच्छा कमती बढती हो जाती है, उसी प्रकार उस भूमि की ऊचाई नीचाई मालूम नही होती थी ।।११३१।।

ओचनै मूंड्र नरै यगंड्र दोंगिय ।
दोचनै नांगुमेर् कोश मैंदु कीळ् ॥
माशिला पोन्मरिण पत्ति रेट्टिना ।
लाशै पोर् परंद विल्ल वयवत्तदां ॥११३२॥

अर्थ—उसके मध्य मे रहने वाला श्री निलय चौदह कोस विस्तार वाला है। उसका उत्सेघ चार योजन पाच कोस है और वह अत्यन्त सुन्दर रत्नों से निर्मित किया गया है। ॥११३२॥

तलंदन मेर् शगवि कन् मूंड्रु तम्मिसै ।
इलंगु पट्टिगैयु मे नूरु विर्कळै ॥
विलगं कंड्रुयरं दन वेरु वेरुळि ।
मलर्न्दु विर् पयिड्रु वज्जिर मयंगळ ॥११३३॥

अर्थ—चौदह कोस चौडाई ऐसी भूमि के ऊपर तीन जगती है। वह एक के ऊपर एक है ऐसे क्रम से है। वे जगती एक से एक बढकर पाच धनुष विशाल है। और यथा योग्य उत्सेध वाली होकर वज्र और रत्नो की किरणो से प्रकाशमान होती है ॥११३३॥

मार् बळ वुयर्न्द पोन् वरंडगत्तिन् मेर् ।
कानुगं शेगदि इन् कदलि कट् किडे ॥
पार विर् पत्तिडे कूडम् कोटग ।
नोर्म यार् ट्रनुमुप्पत्ति रट्टि नीडवे ॥११३४॥

अर्थ—उस जगती का स्थल मनुष्य के हृदय के प्रमाण है। और वहा एक धनुष का वीच मे अंतर छोडकर मडप है। दस धनुष को छोडकर राजमहल के भवन एक-एक धनुष के अन्तर से छोटे २ घर लोगों के बैठने के लिये वनाये हैं। वे साठ धनुष के अन्तर से हैं ॥११३४॥

तलमिरंडि वट्रिन् वायदल् कावला ।
निलय मंतराळत्तु निड्र वेंगणु ॥
तलैयोळु नूरु मुर्शगदिन् मुर्शगदिन् मुरै ।
निरै इरडेळुवदु नार्पत्तेट्टुमां ॥११३५॥

अर्थ—उस जगती स्थल के मडप के ऊपर दो कुंभ है। पहली जगती के मंडप पर रहने वाले सात सौ बहत्तर घर हैं। दूसरी जगती के मंडप पर सात सौ चालीस घर हैं और तीसरी जगती के मडप पर सात सौ आठ घर हैं ॥११३५॥

कूडत्ति नेळवे कोटगं कोडि ।
पोडत्ति निलुवत्तेळाइरंकळि ॥

तूडुट्र मूंड्र ु तूट्रॆवत्तोंड्र ु माय् ।
नीडुट्र मुदलदाम् शगदि निड्रवे ।।११३६।।

अर्थ—इस प्रकार पहली जगती के मडप के चारो ओर वरण्डक ध्वजाएं हैं। ये ध्वजाएं सख्या मे सत्तर हजार तीन सौ इक्यासी हैं। ११३६।।

येळवत्तु नान्गै यायिरत्तु मारिय ।
वुळकुट्र विरंडु तूट्र ु येलुवत्तेंबुदु ।।
मिलुत्तोरायिर तैबत्तारु माम् ।
पलुदट्र शगदिमेल् मेर्पदागै यामै ।।११३७।।

अर्थ—दूसरी जगती के मडप के ऊपर चौहत्तर हजार दो सौ उन्नासी वरण्डक ध्वजाए है। तीसरी जगती के मडप पर सतत्तर हजार छप्पन ध्वजाए हैं ।।११३७।।

इरंडु तूट्रेलुव तेला इरत्तोडु ।
किरंड तोळ्ळाइर तिरुवदा मुदर् ।।
किरंद तूट्रुवत्ताइर तोडु।
निरद नानूरु कन्नडु नडवु निड्रवे ।।११३८।।

अर्थ—वहा रहने वाले घरो के ऊपर दो लाख सतत्तर हजार अस्सी ध्वजाएं है। कुछ दूसरे मकानो पर दो लाख छियासठ हजार चार सौ ध्वजाए है ।।११३८।।

सुन्नै एट्टेट्टु नांगेदिरंडिडै ।
सोन्ने तानत्तिन् मूंडावदिन् ट्रोगै ।।
इन्न कूडत्त कोटगं तनमिशै ।
सोन्न सोन्न वै येंगम् किरट्टि ये ।।११३९।।

अर्थ—तीसरी जगती मडप पर दो लाख चौपन हजार आठ सौ अस्सी ध्वजाएं है। इस प्रकार वहा की ध्वजाओ का वर्णन किया गया है ।।११३९।।

पट्टि कैतलत्तिन् मेर् पैबोर् कोइलि ।
नेट्ट लातिशै मुगत्तिरुंद मंडव ।।
तुट्टोलि तिरंडु कावद मोंड्रो कमुं ।
विट्टोलि तुळुव वेन् शुडरि निड्रवे ।।११४०।।
मकर वाय् मेडपत्तरैय वायनार् ।
शिगर वाय् जिनकरं शिवन् शै मूर्तिगळ् ।।

पगरोना तन परिवारमं तन्नोडु ।
पुगरिळा वानंदम् पोड्रं तोड्रंमे ।।११४१।।

अर्थ—ऊपर कही हुई ध्वजाएं बीच में रहने वाले अर्हंत भगवान के चारो ओर हैं। त्रिमेखला जगती के ऊपर रहने वाले मकान तथा ध्वजाएं सूर्य के प्रकाश के समान प्रतिभासित होती हैं। वह मण्डप एक कोस ऊंचा है। उस मडप मे रहने वाले स्थान २ के चारो दिशाओ को छोडकर उसमे रहने वाले चारो द्वारो से युक्त जो जिन चैत्यालय हैं उनके कौनो मे छह चैत्यालय हैं। एक २ चैत्यालय के मध्य भाग मे रहने वाले अनेक चैत्यालय और है। उनका वर्णन करना साध्य नही, ऐसे भगवान के प्रतिविम्ब प्रातिहार्यों सहित हैं। वे काच के समान चमकदार देखने मे प्रतीत होते हैं।।११४०।।११४ ।।

विल्लुमेळं दिडु मरिण मिडैद मेनिय ।
नल्ल नामंगना ळारु मेविन् ।।
शेल्व मुंतिन्मयु मरिवुं वेड्रियु ।
नळ्गुव नाट्रिकु मुगमु नान्गवे ।।११४२।।

अर्थ—वह जिन प्रतिमा अत्यन्त प्रकाशमान चौवीस तीर्थकरो के नामो से प्रसिद्ध हैं। उन प्रतिमाओ के दर्शन करने वाले भव्य जीवों को संपत्ति,पराक्रम तथा ज्ञान आदि की प्राप्ति होती है। वहा के प्रत्येक प्रतिविम्ब चतुर्मुखी हैं।।११४२।।

नाद तुळ्ळुरु नान् मुगं पोळु नळ् ।
वायद नान् कुडैमंडप नांगिनुट् ।।
आंत कुंभ मंजंगन् मैदुविल् ।
ळोदु मैबदु मोंगि यगंड्रवे ।।११४३।।

अर्थ—उन चतुर्मुखी जिन विम्ब चतुराननत्व के सामने वहा चार वीथी हैं। जगती तल मडपो के चार द्वार हैं। प्रत्येक द्वार के वाहर चवूतरा है जिस पर स्वर्ण के कुम्भ लगे हुए हैं। इस चवूतरे का उत्सेध पाच सौ धनुष है। इसी प्रकार प्रत्येक वीथी मे प्रत्येक द्वार पर चवूतरे हैं।।११४३।।

मारि पोळ मुळेंगुव मजिन् मेळ् ।
भेरि नान्मुग शंख मिरंडुळ ।।
कारि नुन्मळि सूर्य नेर् पोनिन् ।
वारिन् वंदिळि कंडयु मागुमे ।।११४४।।

अर्थ—मेघ की गर्जना के समान अनेक प्रकार की मेरी शख आदि वाद्य वजते रहते हैं। चवूतरे से नीचे उतरते समय बीच मे एक जयघंटा है।।११४४।।

कडिगैयुं जाममुं कलंद संदियु ।
मुडिविनिर् कंडं शंगगंल् भेरिगै ।।
इडियन तम्मिले मुळगि इन्नोलि ।
पडुवदा मुप्प दोजनै परक्कुमे ।।११४५।।

अर्थ—चौबीस मिनट के बाद जयघटा बजता है। तीसरी घडी मे शख बजता है। मध्याह्न मे बारह बजे जयघटा बजता है। इस प्रकार तीन प्रकार से वाद्य ध्वनि होती रहती है। इन वाद्यो के शब्दो की ध्वनि तीन योजन तक सुनाई पडती है ।।११४५।।

पेरुमलर मारिय भेरि यादिइन् ।
ट्रिरु निलै वाय्दल्ग लिरु मरुंगिसै ।।
मरुविय करुवि गर्लेदि कंदप्प ।
वश्सर्ग डेविमार् पाडलागुमे ।।११४६।।

अर्थ—यह बजने वाले वाद्य और देवों के द्वारा पुष्पो की वृष्टि से युक्त चैत्यालयो क दोनो ओर गधर्व स्त्रिया वीणा आदि अनेक वाद्यो के सगीत करने के मडप हैं ।।११४६।।

मंगल निरैयवे वाय्दल् तोरण ।
पंदिई निरैयवै पडिमुडि वेला ।।
मिंगला वाय्दलु काव लोंवलिर् ।
ट्रगि नार् सोद मीशान् लादरे ।।११४७।।

अर्थ—जगतीतल नाम की भूमि के चारो ओर अष्ट मंगल द्रव्य क्रम रूप से पक्ति-बार स्थित है। द्वार मे मकर तोरण से युक्त पक्ति है। इस द्वार पर सौधर्म ईशान स्वर्ग के देव रहते हैं ।।११४७।।

इरवि येन्नरिय वास् परिधि इन्निडै ।
मरुविय देनमणि योलिशै मंडल ।।
तुरुवरु पिबळदा योलियिर् ट्रोंड्रिडुं ।
तिरु निलै येम्मेलां तिरु निलयमे ।।११४८।।

अर्थ—असंख्यात सूर्य इकट्ठे होकर उनका प्रकाश होने के समान उन श्री निलयो मे रहने वाले रत्नो का प्रकाश ऐसा होता है कि उनकी उपमा देने को अन्य कोई वस्तु नही है ।।११४८।।

पलनेरि योलिमनि पइंड्र पंदियु ।
मिलदैयुं वल्लियु मिरुंद कूडमूं ।।

विलै यल्गुन् मडनल्लार् मेगलै गलु ।
मुलै गलुं पुन्मय कुरुक्कु मुट्रूमे ॥११४६॥

अर्थ—इस जगतीतल के चारो ओर अनेक प्रकार के रत्नो से युक्त तथा नाना प्रकार के चित्रो से निर्माण किये हुए उन लता आदि चित्रकला को देखते ही ऐसा प्रतीत होता है मानों गणिका स्त्री मेखला आभूषण धारण किये हुए हो ॥११४६॥

तुवर पशै नान्गिलार् किरै वन् ट्रोनगर् ।
सुवतले नांगिरु काद मोंगिमा ॥
तवर् किरै नगर् सुवरलगलं पादमे ।
लुवप्प मूंड्रो जनै विरिंदगड्वे ॥११५०॥

अर्थ—चार प्रकार की कषायो से रहित भव्य जीवो के नाथ कहलाने वाले जिनेश्वर के समवसरण मे लक्ष्मीवर मडप की जो वेदी है उसका उत्सेध चार कोस का है। और उन चार भागो मे एक भाग चौडा है। वह तीन योजन विस्तार वाला है ॥११५०॥

तलंगलि तुयर मामरुवत्तु नांगुविर् ।
विलक्कुड नरुपत्तु नांगु वील्दंव ॥
निलंगन् मुन्नोट्रलुव तोरंदु कील् ।
तलंदन् मंडलगन् मूवाइ रंगळाम् ॥११५१॥

अर्थ—पिछली कही हुई वेदी पर उस गोपुर का उत्सेध चौसठ धनुष के आगे वह मेखला ऊंचाई तथा चौडाई मे रहती है। उस मेखला के ऊपर एक के ऊपर एक तीन २ ऐसे पच्चीस मंदिर है। नीचे छोटी मेखलाओ पर छोटे २ चबूतरे है ॥११५१॥

आयवित्तलं दोरुं मंडल मेट्टिनै ।
माय् चंड्रोळि दिरुंद वेट्टिन मेर् ॥
ट्रूय मंडलत्तोगै इलक्क मैदिनों ।
डाइर् मरुवत्तु नांगु मामे ॥११५२॥

अर्थ—इस प्रकार प्रथम स्थल मे उससे ऊपर कम होते २ आगे जाकर तीन सौ पिचहत्तर इन मंजिलों मे आठ ही चबूतरे रह जाते है। ये सभी मिलकर दो लाख चौसठ होते हैं ॥११५२॥

कडित्तडत्तळ वुळ्ळ वरंडगम् ।
पडियि नाट्रळि नान्गिर् परंदन ॥

कोडि निरंदन कोइ निलंगळै ।
मडनल्लार कलै पोल वळैंदवे ॥११५३॥

अर्थ—यहा तक कहे हुए निलयो मे वरण्डक ध्वजाए चार धनुष छोडकर चारो ओर होती है। उनको यदि लक्ष्य पूर्वक देखा जाय तो स्त्रियो को पूर्णतया आभरण पहने हुए के समान प्रतीत होती है ॥११५३॥

देसुला तिरुनिलै येत्तिन् मेनिलं ।
कोस नीडगंड्र् वज्जिर तडक्क माय ॥
मासिला मणिगळान् मलिद तन् मिशै ।
कोश नान् गुयरं्दु पुर् कोंबु मागुमे ॥११५४॥

अर्थ—उस प्रकाशमान श्री निलय गोपुर के तीन सौ पिचहत्तर मदिरो मे एक कोस लवा उस पर रत्नो से निर्मित चार कोस का पूर्ण कलश है ॥११५४॥

इरवि वंदुदय मेरि इरुंददु पोलु मिद ।
तिरु निलै येत्तिनुच्चि सेंवोर् शेंवर् कुंबत्तम शेन्नि ॥
मरुविय कमलत्तुट् शम्मामणि पाद मोंगि ।
विरगिनार् कोश पादं विरिंदु कीळ् सुरंगिट्टाम् मेल॥११५५॥

अर्थ—उदयाचल पर्वत पर सूर्य के उदय होने के ससान स्वर्ण से निर्मित शिखरो के कमलो मे पद्म रागमणि रत्न एक कोस उत्सेध होकर एक कोस का चौथा हिस्सा अर्थात् एक पाव कोस हिस्से के समान विशाल है ॥११५५॥

इत्तलतगत्ति नुळ्ळा लिन मणि कुमुद वीट्रिन् ।
वैत्त पोर् कमलं सूळंदु कावद माय तन् पान् ॥
मुत्त मालेगळ् पोय् गंध कुडियिनै मुळुदु सूळं्द ।
तत्तु नीर गंगै कूडं तन्मिशै शंड्रदंड्रे ॥११५६॥

अर्थ—इस प्रकार तीन सौ पिचहत्तर मदिरो से युक्त ऐसे गोपुर मे नीचे रहनेवाले मडप मे बारह कोस का महान विशाल तथा नीचे रहने वाले मडप के मध्य भाग मे कुमुद पुष्पो के समान स्वर्णमयी कमल एक कोस चोडाई से युक्त वृत्ताकार है। उस कमल पुष्प पर मोतियो के हार लटके हुए हैं। यदि लक्ष्यपूर्वक उसको देखा जाय तो जैसे गगा नदी का पानी ऊपर से नीचे गिर रहा हो उसी प्रकार प्रतीत होता है ॥११५६॥

परुमणि कूड मोंड्रिन् पक्कत्ति निरडं वट्टे ।
मरुविय विरडुं लूवै मंडलम् मट्रिदन् कट् ॥

पेरिय देन्नानुगु मेट्ट ु विल्लुयरंदगडं तन् ट्रन् ।
नरैय तन् नरैय निड्र वंदर नुगम दामे ।।११५७।।

अर्थ—पीछे कहे हुए श्री निलय नाम के गोपुर के दो चबूतरे है। एक-एक चबूतरे पर रत्नो से निर्मित एक महल है। उस महल की बगल मे गोल स्तूप है। उस स्तूप की बगल मे छोटे बड़े दो स्तूप और है। उस महल के मध्य भाग का उत्सेध बत्तीस धनुष का है, और बड़ा स्तूप सोलह धनुष का है। उसकी चौडाई चार धनुष है। छोटा स्तूप आठ धनुष उत्सेध वाला और चौडाई में दो धनुष प्रमाण है, और मध्यभाग का स्थान खाली है।।११५७।।

निलगंनान् किरंड्रो ड्रागि निड्र माकूडमागि ।
इलंगु मंडलं कडंद मिडै नुग मिरडं वागुं ।।
मलिदु वेन् कोडिग निड्रं मंडल मुंड्रि नूरुं ।
विलंगम् मेलेलुंदवन्न क्कुलात्तिनार् पत्तुनानुगां ।।११५८।।

अर्थ—उस चबूतरे के मध्यभाग के महल चार मंजिल के हैं। उस महल की अगल बगल मे स्तूपो से ऊपर तक दो चबूतरो के समान उसका उत्सेध है। उस चबूतरे के बीच मे खाली भूमि है जिसका उत्सेध दो धनुष है। उस चबूतरे की बगल मे पर्वत पर उडने वाले हंस पक्षी के समान एक सौ चार श्वेत ध्वजाए है।।११५८।।

ईरट्टाइरमु मीरारिलक्कमुं कोडियेट्टुं ।
वारत्तै येट्टार् कोइन् मंडल कोडिरनीटम् ।।
तेरट्टार् कोइर् कीळैत्तळत्तिन् मेल् वरंडगत्त ।
वोरिट्टिन पादि योनूबा नेट्टम् सेळ् दानत्ताळे ।।११५९।।

अर्थ—मोहनीय कर्म को सम्पूर्ण नाश किये हुए श्री जिनेद्र भगवान के गोपुर मे रहने वाले चबूतरे ध्वजाओ से युक्त है। वे ध्वजाएं आठ करोड वारह लाख तेरह हजार है। वह गोपुर कैसा है? मानो बडे-बड़े रथो का निर्माण करके खडा किया गया है। नीचे के भाग मे पिचहत्तर हजार आठ सौ चौरासी वरण्डक ध्वजाएं है।।११५९।।

इरंडिनो डिरंडु नूरु तलंदोरुं कुरंदु सेन्नि ।
इरंडिनो दिरंडु नूरां तोगै योरु कोडि नार्पत्तु ।।
तिरंडिलक्कं कनार् पत्तु तोराईर् मिवट्रि नोडु ।
वरंडग पदागै नूट्रु नार्पत्तु नांगुमामे ।।११६०।।

अर्थ—अभी तक कहे हुए वरण्डक ध्वजा से ऊपर २ एक २ मजिल मे दो सौ दो कम होते २ ऊपर की मजिल मे तीन सौ पिचहत्तर ध्वजाए हैं। इस तरह सभी ध्वजाए मिलकर एक करोड वियालीस लाख इकतालीस हजार एक सौ चालीस है।।११६०।।

नरंडगं मंडलत्तिन् वंदवक्कोडिइन् कुप्पै ।
इरंडयुं तोगुप्प कोइर् कोडिपिन दीटमांगु ।।
तिरंडु वंदिळियुं देवर् सित्तिर कोडन् काना ।
मरुंडु निन्ड्रैपर् वैयत्तिलदो वडवि देंड्रे ।।११६१।।

अर्थ—इस श्रीनिलय मे रहने वाली तथा चबूतरे पर लगी हुई वरण्डक ध्वजाओ को वहा के देव देखकर अत्यन्त आनन्दित होते है। और यह कहते हैं कि ऐसी ध्वजाए जगत मे और कही नही है ।।११६१।।

देवरै वियप्पुरुवकुं शित्तिर कूंड शंवार् ।
कावद मिरंडु येद वाय्दल् गळगड्र काद ।
मूवुलगत्ति नल्ल मणि मुत्तिन् वॆरत्ताय् ।
कावलर् मुडिगळ् पोलुं कुडुमिय कदव मेल्लां ।।११६२।।

अर्थ—उस विचित्र कूट नाम से प्रसिद्ध मडप के अदर बारह कोस का विस्तीर्ण तथा तीन सौ पिचहत्तर मजिल से युक्त वह गोपुर है। उस गोपुर के द्वार का चौखट स्वर्णमयी है जो रत्नो से मोतियो से निर्मित है। वह एक कोस का विशाल होकर चक्रवर्ती के मुकुट के समान दिखता है ।।११६२।।

कदवु काल् कदप्पट्टि कवुगळ् वॆरं नाना ।
विदमणि पड्ड्र पत्ति यायिर तगत्तु पैबो ।।
निलत्तै वल्लिगळिनुळ्ळा लिरुंद पत्तिरि कन् मुत्तिन् ।
कदलि कै कबिन पुर् कमलंगळ् सेरिंद वट्टुळ् ।।११६३।।

अर्थ—उस गोपुर के दरवाजे के किवाडो के बीच के अडवे (चौखटे) (दो आगलो के बीच का फ्रेम) रत्नो से पक्ति युक्त खिले हुए निर्माण किये हुए थे। इस प्रकार यह एक-एक हजार है। उनके बीच मे सोने की लताए तथा भिन्न २ छडे पट्टी मे जकडे हुए है। पुन सोने के कमलो के पुष्पो से अत्यन्त सुशोभित किया है ।।११६३ ।

मरुविय मरगदत्तिन् कोट्टै गळ् वंडुमट्टै ।
परुगुव पोलुं पैबोर् कि पोरि इरुंद पांगिर् ।।
ट्रिरु मुदन मंगलंगट् सेरिंदन शेदंगै मालै ।
यरमु मनंगन् विल्लुमाइडै परंद मादो ।।११६४।।

अर्थ—उस कमल मे हरे २ रत्न हैं। वे रत्न दिखने मे ऐसे प्रतीत होते है, जैसे कमल के बीच मे रहने वाले भ्रमर उसका रसास्वादन ले रहे है। उस द्वार मे मगलमई तथा

सुशोभित अनेक प्रकार के सोने से निर्माण किये हुए चित्र हैं ।।११६४।।

पुळगमु पिरयुं कवि नीलत्तिन् शवियु पोट्रा ।
रळगमु नुदलु नल्लार् वदनमु मनय मोट्टिन् ।।
ट्ळैय विळ्ताम मुत्तिन् ट्रामंगळ् वैरत्ताम् ।
मिळवेइन् विरि पोट्राम मिन्मिनित्ताम् ।।११६५।।
वंबु कोडेळुदुं कुळुंद मणि योळि परंद वायद ।
रंबोडै इरुंदु यर्‌द मणिय पीडत्तुच्चि ।।
कुंवंगळिरुंद वट्रिर् ट्रूवंगळ् कोटपडादे ।
येवं रत्तेळुंदु दिक्कै परिम माकु निड्रें ।।११६६।।

अर्थ—उस द्वार के विलो के नीचे व ऊपर चद्रमा के समान हरे रत्नो से जडाई की गई है। वह दीखने मे ऐसा सुशोभित होता है जैसे स्त्री के नीले रग के केश ही हों। वहा मोती तथा वज्र के हार टगे हुए प्रातःकाल के सूर्योदय के समय पीले रंग के समान प्रतीत होते हैं। उन द्वारों पर लगे हुए रत्न आदि का प्रकाश उस समवसरण के बीच में बडा सुदर चमकदार प्रतीत होता है। उसमे रहने वाले स्वर्ण की पीठ पर धूपघट हैं। उनमे सदैव धूप जलती है उसकी सुगन्ध चारो ओर फैली रहती है ।।११६५।।११६६।।

वोदिगळगंड्रु कादं वेदिगै इरंड वागु ।
मोदिय कुंभतिप्पा लोंबदु तूबै निकुं ।।
नीदिया ट्रोरणं तवट्रि रै पत्तवत्त् ट्रिडै निंड्र वोप्पार् ।
पोदोडु वलिगळेंदुम् पोन् शै पीडंगळामे ।।११६७।।

अर्थ—उस द्वार के अंदर की महावीथी की चौडाई एक कोस है। उस महावीथी के कोनो को देखने जाने के लिये दो मार्ग हैं। उस द्वार पर रहने वाले अस्सी धूपघट हैं। उसमे चारो दिशाओ मे पूजा करने योग्य चार बलिपीठ हैं ।।११६७।।

कोशमु वैदिर् गंद कुडिनै शूळ वंदु ।
मासिला पडिग पित्ति मार्वळ उयर्‌दि रिट्टा ।।
लासै पोनिरै विलाद निलंगळ् पन्नि रंड वागि ।
ईशन् मागणंग ळीरारिरुक्कै तानिक्कुमारे ।।११६८।।

अर्थ—पंद्रह कोस से प्रदक्षिणा देकर घूम करके आने पर कलक रहित उस भूमि मे एक कोट है। उम कोट मे वारह सभाए हैं जिनमे इतनी जगह है कि कितने ही भव्य प्राणी वहा आकर बैठें वह स्थान कम नही पडता ।।११६८।।

विक्किर मंकन् मूंड्राय् विरियिं वीरि यन् ट्रन् कोइर् ।
चक्कर पीडं काद मिरंडगंड्रु यर्वु कोमान् ।।
ट्रक्कदन् नळवदाइ पोन्मणि मय मागि नाना ।
पक्कमु मेर लागुं पडि पदि नारदामें ।।११६९।।

अर्थ—अनन्त सुखोत्सव, अनत लघुत्व व अनन्त विचित्र ऐसे गुणो को प्राप्त हुए अनन्त वीर्य के धारक अर्हंत भगवान के रहने के स्थान मे धर्म चक्र पीठिका है। उस पीठिका का विस्तार दो कोस का है। और जितना भगवान का आकार है उतना ही इस पीठिका का आकार है ।।११६९।।

उरै शैद पीड तुंबर् वलं कोन् मंडल मोर् कोस ।
तरै नल्ल वरंड कत्त तगत्तळव देयाय् ।।
विरै मलर् मारि मेला मुगत्तवाय् विळुंद पोदिन् ।
ट्रयिन दगत्तु नान्गु चदुमुग भूत मामे ।।११७०।।

अर्थ—अर्हंत भगवान के विराजने के स्थान पर जहा वलिपीठ है वह एक कोम का है। वहां वरण्डक नाम की ध्वजाए महान सुन्दर है। वहा देवो द्वारा पुष्प वृष्टि के स्थान मे चारो दिशाओ मे चार यक्ष खडे किये हैं ।।११७०।।

चक्करं चावपोल तनुविल्लै युमिळ चेन्नि ।
मिक्कमा मनिसे यारं विळंगु माडरत्तदागि ।।
दिक्कुलाम् पोळ्दु काद नान्गदाय् शेरिंदिरुदांल् ।
विर्कन् मूंड्राय रप्पेराळि तान् विळंगु निड्रे ।।११७१।।

अर्थ—देवेद्र के धनुष के समान चतुर्मुख ऐसे भूतो के शरीर अत्यन्त चमकदार हैं। उनके मस्तक को रत्नो से सजाया गया है। वह सजा हुआ मस्तक तथा किरीट चमकता रहता है। उसका प्रकाश चार कोस तक पडता है। समवसरण का जब चलना बन्द हो जाता है तब तीन कोस तक प्रकाश पडता है ।।११७१।।

मुन्नै पीडत्तिर् पादं कुरैद कंड्रु यंर्द वारे ।
येन्नमु मइलु मिन्ना वोक्कोडि पीड तन्मेर् ।।
सोन्नवा रुयरंदिट् तैदु कोशमाम् तलत्तिन् मीदु ।
मन्निय गदं कुडियिन् मंडपमं कादमामे ।।११७२।।

अर्थ—पहले कहे हुए प्रथम वलिपीठ की एक कोस की चौडाई है। उतना ही उत्सेध है। वहा की लगी हुई ध्वजाओ मे हस, मयूर आदि पक्षियो के चिन्ह अकित हैं। यह ध्वजाए

बलिपीठ पर हैं। उस ध्वजा पीठ पर एक कोस चौडा गध कुटी मडप है। यह सभी मिलकर समवसरण मे गध कुटी का स्थान एक कोम विस्तार वाला है ।।११७२।।

वान् पळिगालि यंड्र् नालैदु विल्लुयर्ंद ।
नान्गु तंबंगळेंद नवमरिण माले वाईर् ।।
शूळदं तनडुवेन् मुत्तमाले गळ् पत्तु विल्लु ।
ताळंदु शम्मुगिलि निड्रुम् तारै वंदिळिव पोंड्र ।।११७३।।

अर्थ—उस गधकुटी का मडप स्फटिक मणि से युक्त है और भगवान की ऊचाई से बीस धनुप ऊचा है। उस समवसरण के चारो कोनों मे चार स्तंभ है। मडप मे ऊपर से नीचे तक रत्नो के हार लटके हुए हैं। बीच मे एक मोतियो का हार ऊपर से नीचे दो धनुष प्रमाण लटका हुआ है। यदि दृष्टि डालकर देखा जाय तो वह ऐसा प्रतीत होता है कि मानो आकाश से पानी बरस रहा हो ।।११७३।।

मूंड्रु विल्लु परंद गंड्र मुळुमारिण पीटं शीय ।
मेंड्रु मे लेळुव पोंड्र विरुंदन वेंद पट्ट ।।
तांड्र पोन्ननयु मम् पोन् वीसियु नुन् दुगिलु मेवि ।
तोंड्रु मंडपत्ति नुळ्ळार् सुडरु मिळदिरवि पोंड्र ।।११७४।।

अर्थ—इस मडप का मध्य भाग तीन भाग उत्सेध तथा यथा योग्य इसका विस्तार है। रत्नो द्वारा निर्मित पीठ है। वह पीठ ऐसी लगती है मानो सिंह को उठाकर ले जा रहा हो। उम सिह के ममान पीठ पर स्वर्णमयी बिछोना, रेशमी पट वस्त्र बिछा हुआ है। उस पर चार अगुल अधर जिनेंद्र भगवान विराजमान हैं। वे सूर्य के समान प्रकाशमान होते हैं। ।।११७४।।

विल्लरै यगंड्रुयर्ंद विळु मरिण पीड मेय ।
वेल्लै निन् ड्रिरु मरंगु मियकर् चामरै ईयक्क ।।
नल्लेळिर् पीट मेवि नाग विदिरु नाना ।
विल्लुमिळंदिलंगु तोन् मेल् विळगुं चामरयराणार् ।११७५।

अर्थ—उन अर्हंत भगवान के विराजमान रहने को पीठ आधा धनुष चौडी है। उस के चारो ओर तथा भगवान के आजू बाजू यक्ष देव व भवनवासी देव चंवर ढोरते हैं ।।११७५।।

तामरै तडत्तेळुंदु पोन्मलै तन्नै चूळंद ।
कामरु कन्नि येन्न कुळात्ति निन् नांगि लाद ।।
चामरै तोगुदि नान्गु पत्तु नूराइर तान् ।
शोमरै वेंड्र मूंड्र कुडै इनान् बुडैय वामें ।।११७६।।

अर्थ—पानी से भरे हुए कमल के तालाब को मानो पक्षी मेरु पर्वत को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान पर ढोरे जाने वाले धवल चवर चालीस लाख थे जो चद्रमा को किरण के समान दोखते थे। मानो चद्रमा को किरणो को जीत रहे हो, ऐसे वे श्वेत चवर दीख रहे थे ॥११७६॥

करुत्ति नालङ्गि वानोर् करत्ति नार् कडेदंङ्गि ।
युरेत्त मंडवत्ति नुंब लुरगोरु मूंड्रु पोल ॥
निरैत्त मुन्निलत्तदा येन्नैदु विल्लोंगि योक्क ।
तरै त्तल कीळदगि यरैयरे मेल वागि ॥११७७॥

अर्थ—इस समवसरण की रचना देवो के अतिरिक्त किसी मनुष्य के द्वारा नही हो मकती है। जिनेद्र भगवान की गध कुटी के मडप के ऊपर जिस प्रकार उर्द्ध्व लोक, मध्यलोक और अधोलोक की रचना होती है, उसी प्रकार गध कुटी की रचना होती है। यह गध कुटी तीन मजिल की है। नीचे की मेखला की पीठ का उत्सेध बीस धनुष है। दूसरे नबर की मेखला की पीठ का उत्सेध दस धनुष ऊचा तथा ऊपर का उत्सेध भी दस धनुष ही ऊचा है ॥११७७॥

पडिगळिन् पंदि वाय्दल् पर मन दुरुवसंगम् ।
कुडैय मुन्निलंग न मुम्मे युलगिनु किरै मै योदि ॥
इडै इरुदिरै वन् कोइर् किरै मै कोंडिरुंद दुळ्ळार् ।
कडैला वरिवन् गंद कुडिय माळिगै इदामे ॥११७८॥

अर्थ—भगवान के गुणो को दूसरा भव्य जन जैसे समझा रहा हो इस भाति उस मडप का निर्माण किया गया था। उस केवली भगवान की गध कुटी इस प्रकार की है। ॥११७८॥

कुडत्तिशै कोडिनिरै पीडत्तिन् मिशै ।
योडिनिलाय् पिंडि विल्लरुव दोंगि मेर् ॥
कडियुला मलर् मिडै कवडु केदमा ।
कुडियिनै सोळ्ंदु कुलावि निड्रवे ॥११७९॥

अर्थ—ध्वजाओ से परिपूर्ण ध्वजापीठ के पच्छिम भाग मे अशोक नाम का वृक्ष है। वह वृक्ष साठ धनुष ऊचा है। उसकी शाखाए पुष्प तथा फलो से भरी हुई हैं। वह अशोक वृक्ष भगवान के चारो ओर से घिरा हुआ है ॥११७९॥

मुत्तमा मारिण मुदन् मालै ताळ्ंदु पून् ।
दोत्तु मेर् ट्रदैदन् सुरुंबु वंडु तेन् ॥
ट्रत्तिइन् पिरस मुंडेळुव तम्मोलि ।
मौइत्तलार् कडन् मुगिन् मुळक्क मुगिन् मुक्कुमे ॥११८०॥

अर्थ—उस अशोक वृक्ष की शाखाओ मे मोती, रत्न तथा पुष्पो के हार लटक रहे है और उस वृक्ष के फूल खिले हुए हैं। वे पुष्प अत्यन्त सुगन्धित है। उस सुगन्ध के मधुर रस का रसास्वादन करने के लिए भ्रमर अपनी इच्छानुसार रसास्वादन करके उड जाते थे, और उडते समय उनके झीकार शब्द कानो मे ऐसे मनोहर लगते थे जैसे कि मेघ गरज रहा हो ॥११८०॥

तरुवलि तलनल तडत्तिन् मीदला।
विरुदुवु मलर् मलरुड मल्रं दिडे ॥
मरगत मणिगळाय् मुरिगळ् वांड्ळि।
ररुमणि यालि यंड् रसोग निड्रदे ॥११८१॥

अर्थ—उस वृक्ष की शाखाए अत्यन्त वलिष्ठ है। उस वृक्ष से षट् ऋतुओ के फल फूल भगवान के अतिशय के प्रभाव से सदैव उत्पन्न होते है। उस वृक्ष के पत्ते ऐसे सुशोभित होते थे मानो हरे रत्नो की मणिया चमक रही हो ॥११८१॥

मुत्तम वाय् शेरिदन् निरैद मुम्मदि।
यौत्तु मू वुलगिनु किरै मं योडुव ॥
पत्तिइर् कुइंड्रदु निलाइरिदु मेर्।
शित्तिमा वेदै मुक्कवि सेरं दवे ॥११८२॥

अर्थ—उस अशोक वृक्ष के चारो ओर मोतियो के हार लटके हुए थे, मानो एक के ऊपर एक चंद्रमा ही आया हो। अर्हंत भगवान के ऊपर तीन श्वेत छत्र लगे हुए हैं जो रत्नो समान देदीप्यमान होकर चमक रहे हैं ॥११८२॥

पुंडरीगत्तोडु पुनरं द चायै पोर्।
पिडियिन् कोळु निळर् ब्रम्ह मूर्तिइन् ॥
मंडलम् मलरडि वनंगि पिन्ट्रनै।
कंडवर् पिरवि येळ् कान् निड्रदे ॥११८३॥

अर्थ—उस वृक्ष के नीचे जहा जिनेन्द्र भगवान विराजमान है, पीछे की ओर प्रभामडल है जैसे लाल कमल सहित काति को प्रकाश करता हो। इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलो मे नमस्कार करके जो भव्य जीव प्रभामंडल को देखते है वे अपने पहले के सात भवो को जान लेते है ॥११८३॥

अंदमिलु वगैयरान वानवर्।
दुंदुभि मुलक्कोलि तोडरं द रादळ ॥
वंदुडन् वीळं द वानवर् पं पूमळै।
पदियुं परवयुं पिरवु मागवे ॥११८४॥

अर्थ—अर्हंत भगवान के चरण कमलो को भक्ति पूर्वक नमस्कार करके आनन्दित व सतोषित हुए वे देव अपने अनेक प्रकार के वाद्यो को बजाते रहते है। तथा वाद्य गर्जना व पुष्प वृष्टि करते रहते है ।।११८४।।

मादवर् तुरक्क मादवर् पुरियु मादर् ।
जोतिडर् वान वंदरर् भवनर् तन् तोगै येन्नार् ।।
मेदगु भवनर् वान वदरर् विळंगुर् देवर् ।
सोदमनादि वानोर् मन्नर् सोन्नरि विळंगां ।।११८५।।

अर्थ—१ गणधर देव अनेक प्रकार के ऋद्धिधारी आदि महामुनि, २ कल्प वासिनी देविया,३ ज्योतिषी देविया,४ भवन वासिनी देविया,५ व्यतर देवो की देवाङ्गनाए, ६ सौधर्म आदि कल्पवासी देव, ७भवनवासी देव, ८ व्यतर देव, ९ ज्योतिषी देव, १० आर्यिकाए, ११ चक्रवर्ती राजा महाराजा तथा मनुष्य आदि, १२ सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि अनेक प्रकार के तिर्यच जीव भगवान के उपदेश सुनने वालो की इस प्रकार बारह सभाए है ।।११८५।।

पन्निरुगणमुं शूळ परुदिई नडुव नुच्चि ।
मन्नियवरुक्क नुत्तुं मंदर मुलग मूंड्रिन् ।।
तन्नडु विरुंद दोत्तुं तारगै नडुवट् सोम ।
नेन्नवु मिरुंद कोमान् ट्रन्निडं कुरुगि नारे ।।११८६।।

अर्थ—ऊपर कही हुई बारह सभाए प्रदक्षिणा रूप मे है जिस प्रकार चद्रमा के चारो ओर तारे अर्थात् मध्यलोक मे रहने वाले मेरु पर्वत को चद्रमा और तारे घेरे रहते है, उसी प्रकार तीसरी पीठ मे रहने वाले गधकुटी मे विराजमान भगवान अर्हंत के पास वे दोनो मेरु और मदर राजकुमार पहुँच गये ।।११८६।।

मेरुवै शूळ वोडुं विरिगति रिरंडु पोल ।
वूर्कोन् मंडलत्तै यूकुं वलं कोन् मंडलत्ति नुळ्ळान् ।।
मारि पोन् मलर् सोरिदुं वलं वोडुं पणिदु पुक्कार् ।
तोरणं कडंद पोळ् दिर् ट्रु रविनु किरै वन् टोंड् ।।११८७।।

अर्थ–महामेरु पर्वत को दोनो मेरु और मदर सूर्य और चद्रमा जैसे मेरु की प्रदक्षिणा देते है, उसी प्रकार दोनो पुष्प वृष्टि करते हुए प्रदक्षिणा दे रहे हैं। इस प्रकार प्रदक्षिणा देते हुए भीतर रहने वाली गधकुटी के पास आकर स्तूपो को दस प्रकार के तोरणो को छोडकर भीतर जाकर अर्हंत भगवान के मुख का दर्शन किया ।।११८७।।

करंगळ् मुन् कुविदं वुळ्ळ कमलंगळ् विरिंदु कन्निर् ।
सोरिदन् परंद रोमं पुळगंग डुडित्त वाय सोल् ।।

लरिदन सुरंद कादलडि मुरै युडुद लोयं्द ।
विरिंदन विनैगळेल्ला मिरवि मुन् निरुळै योत्ते ।।११८८।।

अर्थ—उस भगवान के मुखकमल को देखते ही दोनो हाथो को कमलो की कली के समान जोडते ही उनके मन मे अत्यन्त आनन्द उत्पन्न होता है। आनन्द होते हुए इस प्रकार उनके हृदय कमल विकसित होकर दोनो नेत्रो मे आनन्दाश्रु निकल पडते हैं। तब उसी समय उनके शरीर मे रोमांच खडे हो गये। उनके हृदय मे जो आनन्द हुआ था उस आनद को हम वर्णन करने मे अशक्य है, वे दोनो कुमार आगे न बढकर भगवान के सामने खडे हो गये। खडे होते ही ऐसा प्रतीत होता था मानो दोनो सूर्य चद्र ही आकर उपस्थित हुए हो। इस प्रकार वहा पर प्रकाश होने से जैसे अन्धकार नष्ट होता है, वैसे इन दोनो कुमारो के हृदय मे छिपा कर्म रूपी अन्धकार नष्ट होने लगा ।।११८८।।

तुंब मार् नेमियान काक्षि नल्लोळुक्क भाय ।
शवंवन् मुन्बु निंड् धरुम चक्करत्ति नुंवर् ।।
मैदेरा नवर्गळेरि वलं कोडार् चनइन् मुट्रि ।
तुंबि पोर् पणिदेळुंदु वाळ्तु बु तोडंगि नारे ।।११८९।।

अर्थ—प्रकाश से परिपूर्ण ऐसे मडप मे क्षायिकज्ञान, दर्शन, चारित्र ऐसे आत्म स्वभाव गुण को प्राप्त और उनके सामने धर्म चक्र से युक्त रहने वाले केवली भगवान के पीठ के ऊपर चढकर ये दोनो राजकुमार आठ प्रकार की पूजा सामग्री से भगवान की पूजा की और साष्टाग नमस्कार कर खडे हो गये, और खडे होकर भगवान की स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया ।।११८९।।

कामादि कडंददुवुं कैवलप्पेन् नडैददुवुं कमल पोदिर् ।
पूमारि पोळिय वेळुंदरुळि यदुं पोन्नेइन् मंडलत्त सोग ।।
तेमारि मलर् पोळिय शीय वनैयमरंददुवुं दवर् कोमान् ।
ट्रामादि येनिदु पनिंदेळुंददुवुं तत्व मेंड्रगवु वेन्न ।।११९ ।।

अर्थ—वे दोनों राजकुमार इस प्रकार स्तुति करने लगे कि हे भगवन्! हे रागद्वेष परिषहों को जीतने वाले भगवन्! आपको मोक्ष लक्ष्मी ने वर लिया है चतुर्णिकाय देवो ने आकर पुष्पवृष्टि की। देवेंद्र ने आपके चरण कमलो के नीचे दो सौ पच्चीस स्वर्ण कमलो की रचना की है। आप उनको स्पर्श न करके चार अगुल अतरिक्ष ऊचे गमन करते हैं। जैसे पक्षी दोनो पाव समेट कर चलते हैं उसी प्रकार आप भी चलते है। और देवन्द्र तीन प्रकार की वेदी अशोक वृक्ष, सुरपुष्प वृष्टि, दिव्यध्वनि, सिंहासन, भामडल, चामर आदि तुम्हारे अतिशय सदैव रहते हैं। जब वे रहते है तब देवेंद्र आकर षोडश आभरणो से सुशोभित होकर नमस्कार करने योग्य आपको नमस्कार करता है ।।११९०।।

वोरु मोळिय पदिनेट्टा युलगरीय विर्यवियदु मोळि कोन् मूंड्रिर् ।
ट्रिरु मरुवाय् तिगळ्गिड् तिरुसूर्तो यदनळगुं देव निन्वान् ।।
मरुवि नर्कु मल्ल वर्कु मोत्तिरुदुम् अडेंदु वर्कु वार्तैननगुं ।
पेरुमयमु वतिशयमु पिराणि ये मूवुलगोर् पिरा नागिड्राय् ।।११६१।।

अर्थ—हे भगवन् ! आपकी दिव्यध्वनि एक प्रकार होने पर भी सात सौ महाभाषा और अठारह सौ क्षुल्लक लघुभाषा मे परिणत होकर इस लोक मे रहने वाले जीवो को आप आपकी भाषा मे समझ लेते हैं। मन ज्योति, काय ज्योति, वाग्ज्योति से युक्त एक हजार आठ लक्षण को प्राप्त परमौदारिक दिव्य शरीर को प्राप्त हुये हे भगवन् ! आपके पास आये हुए भव्य जीवो पर और तुम्हारे पास न आने वाले मिथ्यादृष्टि जीवो पर दोनो पर समान भाव रखते है। अपने पास आये हुए भव्य जीवो को उपदेश देने की शक्ति स्वभाव से रखते है। इसलिये आप साक्षात् हितोपदेशी है। सम्पूर्ण राग नष्ट होने के कारण आप पूर्ण वीतरागी हैं। सम्पूर्ण चराचर वस्तु एक साथ जानने के कारण ही आप सर्वज्ञ है। यह सभी अतिशय कर्मक्षय होते ही स्वभाव से प्राप्त होते है। इसलिये आप इस लोक मे रहने वाले समस्त जीवो के स्वामी कहलाते है ।।११६१।।

विलंगरसन् वलिविलाक्कि वेर् पोळिंदु विमल माय् वेळिदा युन्मे ।
विलंगु पोरि यायिरत्तोट्टिरुंद ळगारं नदिळनाट्र मियल्वाइन् सोर् ।।
पुलं तनक्किन्नमुदागि वज्जिर पूण् शरिदानि येरेंद यापा ।
इलंगु वडि वुडय् तिरु मूर्तीयल् पतिशय नेम्मिरैव नीये ।।११६२।।

अर्थ— सिंह इतना पराक्रमी व क्रूर होने पर भी अपना वैरभाव छोडकर आप की शरण लेकर हाजिर रहता है। आपके शरीर मे रजोमल के अभाव से आपके शरीर मे दूध के समान रक्त रहता है। और आपके शरीर मे एक हजार आठ लक्षण होकर उपमातीत ऐसे अतिशय स्वभाव से होते हैं। इसकी भक्ति से श्रीदेवी आदि सदैव सेवा करने मे तत्पर रहती है। आप सभी समचतुरस्र सस्थान को प्राप्त होकर आपका शरीर वज्रवृषभ नाराच सहनन वाला है। इस प्रकार अनुपम गुणो को प्राप्त हुए, हे हमारे स्वामी ! ।११६२।। /

शामै पार्शयिमै पोळिदुं चदुमुगमाय् मेयिरुगिरुदम् मळविर् केट्ट ।
काय मिशै युलवि नल कलै केल्ला मिरैवनु माय करुम केटि ।।
नोचनै नानूरगत्ति नुइर् कळिवु पार्शकळ्ब सरुक् नींग ।
तेशि नोडु तिळैत्तिरुंद तिरुमूर्ति यतिराय नेम् शेलव नीये ।।११६३।।

अर्थ—छाया रहितत्व, निर्मुक्तित्व, निर्निमेषत्व चतुराननत्व को प्राप्त होकर समान नख केशत्व प्राप्त होकर इस धरती के ऊपर गमन न करते हुए आकाश मे चलने वाले आप सर्व विद्येश्वरत्व को प्राप्त करने वाले है। आप जहा विराजते है वहा चारो तरफ चार योजन

तक अशाति नही होती है , अकाल और दुर्भिक्ष नही होते हैं , अकाल वृष्टि नही होती है । आपके चार घातिया कर्मो का नाश होता है । आपके परमौदारि शरीर देखकर आपकी स्तुति करने की भावना होती है ।।११६३।।

तिरुमोळिइन् वियत्तगवु मनत्तुइ रिन् मैत्तिरि युन् तिक्का काय ।
निरुमलमाय् विळंगुद लेव्विरुदुवुं वंडुड निगळ्द निलत्तु पैगुळ् ।।
पेरुमे योजुमगलंग लर वालि पूमारि नरुं काट्रम् पोन ।
मरं मलरि निरै मोदल् वानवरिन् वरुमतिशय नम्मन्ननीय ।।११६४।।

अर्थ—आप की सभी को आश्चर्य करने योग्य वाक्प्रवृत्ति, सर्वजीवो मे मैत्रीभाव, षट्ऋतु के फलफूल, धान्यादि उत्पन्न होकर धान्य समृद्धि होना । अष्ट मगल द्रव्य, पुष्पवृष्टि मद २ वायु का वहना,सोने से निर्मित श्रेणी के कमलो का देवो द्वारा निर्माण होना । ये सभी देवकृत अतिशय हैं । ऐसे अतिशय को प्राप्त हे भगवन् ! आप हमारे लिये स्वामी हैं । ।।११६४।।

अळुंदु विनै पगै पुरं केडनै तुलगु मलोग मुदेन् नगत्ति नोंग ।
वळुंदरि विन् मुगत्ता लेप्पुरुळु मुन दगत्तडक्कि इरुंदोय् वंदु ।।
शेळुकुंवडु शेरिदिरुंदु मुळंगु मेळिन् मुगिल् पोल विराग मिड्रि ।
येळुंदरुळि वंदिरुंदे प्पोरुळ् मरुळिय वेंगळिरैव नीये ।।११६५।।

अर्थ—आत्मा के अदर अनादिकाल से बधे हुए चार घातिया कर्मों का नाश कर लोक और अलोक मे रहने वाले सभी द्रव्य पर्यायो को अपने केवलज्ञान के बल से जानने की शक्ति को प्राप्त किये हे भगवन् ! आप आकाश से मेघ समूह पर्वत पर उतरकर गजना करने के समान है । और आपको किसी प्रकार का दुख नही है । इस प्रकार आप किसी प्रकार कष्ट को न प्राप्त हो कर त्रमेखला पीठ मे विराजमान होकर समस्त चराचर पदार्थों को आपकी पवित्र दिव्यध्वनि से कहने वाले हे भगवन् ! ।।११६५।।

शकंमल तुलवु मुंड्रन् ट्रिरुंददडि यै निनत्तिडवे सित्ति यन्नु ।
मंगनै वंदवरै यडंदिडै वदन् मेर् कोडैरंड्रा यरुळु नोंगि ।।
वेगंदगं कोडुं नै यडैया क्षोळिंद वर् गणेडुंतु यरिन् वीळक्काना ।
वंग वर सेलरुळ् पुरिवु मुनिवु भगन् ट्रिरुंदनै येम्मिरैव मीय ।।११६६।।

अर्थ—लाल कमल के ऊपर विहार करने वाले आपके चरण कमलो को अपने मन मे भावना कर आपके स्वरूप को जानकर आपकी भक्ति करने वाले जीवो को मोक्ष लक्ष्मी वरती है । परन्तु आप दुखी जीवो को देखकर दुखो को नाश करने की भावना नही करते हैं । और सुखी जीवो को अधिक भक्ति करने वाले समझकर आप उनसे प्रेम नही करते हैं । ऐसे समभावो के धारक हे भगवन् ! ।।११६६।।

पोदु वगैयार् पोरुळेल्ला मोंड्रे येड्रुळ् शैद पोदुव लाद ।
विदि वगयार् पोरुळेल्लावेरे येंड्रन्विरंडु मोड्रे येंड्रुम् ॥
पोदुविरिवु पोरुनिगळ् वाल् विव्वेरा योंड्रुमा मेंड्रा लुन् सोन् ।
मेदि पेरिदु मिलादार्कु मारागित्तोंड्रादो वानोर कोवे ।११६७॥

अर्थ—हे देवधिदेव भगवन्! तुमने उपदेश दिया है कि सब ही जीवादि द्रव्य सामान्यरूप से एक हैं और विशेष गुणो से भिन्न २ है। ऐसा भव्य जीवो को समझाया है। अस्तित्व, नास्तित्व, स्वभाव पर्याय, विभाव पर्यायो से परिणमन करते है। इसी तरह अल्प ज्ञानी लोग आपके उपदेश को नही समझते है। अत उन्हे आपके अनेकात मन मे विरोध भासता है। जैसे कि समतभद्राचार्य ने कहा है —

अनेकातोऽप्यनेकातः प्रमाणनयसाधनः ।
अनेकातः प्रमाणस्ते स्यादेकातोऽर्पितान्नयात् ॥

अर्थ—अनेकात भी कथचित् प्रमाणनयो के निमित्त से अनेकात है। अनेकात प्रमाण दृष्टि से कथचित् अनेकात रूप है। और विवक्षित नय दृष्टि से कथचित् एकात रूप है। ॥११६७॥

आदिया यादिला येंदमा येंदमिला यडैया देदु ।
पोदि याय् पोदिलाय् पुरत्ताय्प्पुरिळी निवर्कुमगत्ताय मूंड्रु ॥
ज्योतियाय् ज्योतिलाय् सुरुंगदाय् पेरुगादाय् तोंड्रामाया ।
नीदि याय् नीदिलाय् निनैपरियाय् विनैप्पगै येम्मिरैवं नीय ॥११६८॥

अर्थ-ज्ञानदर्शन से युक्त स्वभावरूप आत्मस्वरूप को प्राप्त हुए हे भगवन्! द्रव्यार्थिक नय के तन्मय से अनादि कहलाने वाले ससार का त्यागकर अन्तरहित तत्व को प्राप्त होकर शाश्वत रहने वाले आप ही हैं। इन्द्रिय सुख को त्यागकर अतीन्द्रिय सुख को प्राप्त होने वाले आप ही हैं। अवधिज्ञान, मन पर्यय ज्ञान को प्राप्त हुए आप ही है। परपदार्थ आपके अन्दर न घुसने के कारण स्वपदार्थ को जानने वाले स्वयभू आप ही हैं। सकलगुणो को ज्ञानानद स्थिति को प्राप्त हुए आप ही है। शुद्ध दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हुए आप ही है। आत्म ज्योति को प्राप्त हुए आप ही है। आपके अन्दर आत्म-ज्योति के अलावा बाहर का अन्य कोई प्रकाश नही है। आपमे सभी गुण कभी कम ज्यादा नही होते हैं। द्रव्यार्थिकनय मे जन्म-मरण रहित होकर नीतियुक्त आत्म स्वभाव से युक्त आप ही है। पर्यायार्थिक नय मे नीति स्वरूप से रहित होने वाले आप ही है। अचिन्त्य स्वरूप आप ही है। कर्म शत्रु के नाश करने वाले आप ही है। इसलिये आप ही हमारे स्वामी है ॥११६८॥

कामरु दुंदुभि करगं कडिमलर् मामळै पुळिय कवीर पोगं ।
तेमरु पूम् पिडि इन् कोळ् मंडलम् पोय् दिशै कुलव तिगळ् वट्टं ॥

तामरु मूड्रनैय मणि मुक्कुडै कोळ् मिक्क विनै युडैय सेल्लुं ।
शेम मुडै नेरियरुळि शीय वनै यमरं्दनै यम् शेलवनीय ।।११९९।।

अर्थ—आपको किसी प्रकार की इच्छा नही है, तो भी देवो के वाद्य हमेशा बजते रहते हैं। चतुर्णिकाय देव पुष्पवृष्टि करते हुए छत्र चामर चारो ओर ढोरते रहते है। सुगधित पुष्पों से युक्त हारो को पहनते रहते है अशोक वृक्ष के फूलो को देवो द्वारा आप पर बरसाये जाते हैं। अपने प्रभामडल के किरणो से चारो ओर फैले हुए है। मानो तीनो प्रकार के चद्रमडल खडे हुए के समान तीन छत्र आप के ऊपर सदैव प्रकाशमान हैं। और अपनी दिव्यध्वनि से मोक्ष मार्ग का उपदेश देते हुए, सिहासन पर विराजमान हे भगवन्! आप ही शाश्वत मपत्ति को देने वाले हैं। इस प्रकार दोनो कुमारो ने भगवान की स्तुति की। ।।११९९।।

इनै यन् तुदिई नो डिरैजु मेल्लै इन् ।
विनैगळिन् वैयरुगळ् वेंद मैदर कन् ।।
मुनिम वडिविनै मुडिय निड्रुतम् ।
विनैगळै मुदलरल वेरिय वेन्निनार् ।।१२००।।

अर्थ—इस प्रकार उन दोनो कुमारो के भगवान की स्तुति करके भक्ति से नमस्कार करते समय कर्मपिंड का भार हल्का हो गया। इस प्रकार हल्का होने से उन दोनो कुमारो ने सर्वोत्कृष्ट वैराग्ययुक्त ससार शरीर भोग से विरक्त परिणाम होने से उन भगवान के पास निर्ग्रंथ दीक्षा धारण कर कर्मनाश करने का विचार किया ।।१२००।।

येत्तरुं गुणत्तव तिरैव यामुडै ।
गोत्तिरं कुलमिवै येरुळ् वाळिनि ।।
नोटरुं पिरवि नीर् कडलै नींदु नर् ।
ट्रपै याम् तिरुवुरु वेंड्रिरै जिडा ।।१२०१।।

अर्थ-इस प्रकार मन मे विचार कर कहने लगे कि गणधरादि मुनियो के अधिपति! हे स्वामी सुनो! हमारा कुल उच्च है, इसलिये अत्यन्त दुस्तर संसार रूपी समुद्र से पार करने के लिये सेतुरूप मुनि दीक्षा का अनुग्रह करो। इस प्रकार भगवान से प्रार्थना की ।।१२०१।।

मुडिगळ् कडगमु मुत्तिन् पून्गळुम् ।
कडि मिशै कांचियु नानु माडयुं ।।
वडिवुडै तडकैयाल् वांगि विट्टवें ।
विडु सुडर् विळक्किन् मुन् निमैतु वीळं्दवें ।।१२०२।।

अर्थ—इस प्रकार भगवान ने इनकी प्रार्थना मुनकर तथाऽस्तु कहा। तदनन्तर वे दोनो कुमार जैसे अपराधी दुष्ट आदमी को हद पारकर देते हैं, उमी प्रकार अपने शिर के

मुकुट, हस्तककरण, मेखला (करधनी) अनेक प्रकार के राज्य चिन्ह रत्नो के आभरण, वस्त्र, शस्त्र आदि निकाल कर अपने हाथो से दूर फेंकने लगे ।।१२०२।।

कुरु नेरि पइंड्रळु कुंजि येंजोलार् ।
नेरिभयै परनेरि निर्नैप्प नीकुमेन् ।।
ररिवन तडि मुदलैबदं सोला ।
नेरिमै यो नीकिनार् नींडि तोळिनार् ।।१२०३।।

अर्थ—तदनन्तर उन दोनो राजकुमारो ने पूर्वाभिमुख पर्यङ्क आसन से बैठ कर ॐ नम. सिद्धेभ्य इस प्रकार तीन बार बोलकर पचपरमेष्ठी का स्मरण करते हुए विधिपूर्वक पंचमुष्ठि केश लुचन किया ।।१२०३।।

मर्पुयत्तार् मयिर् वांगि निड्रवर् ।
कर्पग भिलै मलर् कळंड्र दुत्तनर् ।।
मट्रु वानवरंन मथिरै मालयार् ।
सुट्रिवान् कडलिडे तोळ्दिट्टार्गळे ।।१२०४।।

अर्थ—तत्पश्चात् दोनो कुमारो ने भगवान की साक्षी पूर्वक दीक्षा विधिपूर्वक ग्रहण की। दीक्षा लेने के बाद उन कुमारो के लुंचन किये हुए सिर ऐसे दिखने लगे जैसे कल्प वृक्ष की लता पतझड होने से स्पष्ट दिखाई देती है। इसी प्रकार सिरमुंडन के साथ दस प्रकार का मुडन भी कर लिया। दस प्रकार के मुडन निम्न प्रकार हैं।

मन मुंडन, इन्द्रिय मुडन, चार कषाय मुंडन, वचन मुडन, तन मुडन, हस्त मुडन, पाद मुंडन।

तदनन्तर केश लुचन किए हुए बालो को देवो ने भक्ति से उठाकर समुद्र मे क्षेपण कर दिए ।।१२०४।।

शीलमुं वदंगळुं शेरिंद वेल्लैइन् ।
मालैयुं शांदमु मेंदि वानवर ।।
कोलमा दवर् गुणं पुगळं दिरैजिना ।
रेलवन् पिरंदियै ळडेंद वेंबवे ।।१२०५।।

अर्थ-उन दोनो मुनिराज की शीलाचार सहित महाव्रत को धारण करते समय देवो ने पुष्पवृष्टि करते हुए अष्ट द्रव्य से पूजा की। दीक्षा लेने के कुछ समय पश्चात् उन दोनो मुनिराजो को सप्तऋद्धिया प्राप्त हो गई ।।१२०५।।

पोदि या रैंदुमा मरुंदुभादव ।
नीदि नार्सुवै बलिकन् मूंड्रिरन् ।।

डोदि नार् कुरै पडा वुरैवु ळ्ळिवै ।
यादियां मादव रिद्धि वण्णवे ॥१२०६॥

अर्थ—वह सप्तऋद्धिया निम्न प्रकार से हैं:—

बुद्धिऋद्धि छह प्रकार की, औषधऋद्धि पाच प्रकार की, तपऋद्धि चार प्रकार की रसऋद्धि चार प्रकार की, बलऋद्धि तीन प्रकार की, अक्षीण, ऋद्धि दो प्रकार की, विक्रिया ऋद्धि आठ प्रकार की ॥१२०६॥

तुवर् पसै नान्गोडु तोडरं्द पत्तुमा ।
सुवपु नीरार् कळिई युळ्ळम् तूयमा ॥
तनत्तवर् पुरपत्तु मासु तन्नयु ।
मुवत्तल काय् विलामया लोरुवि नार्गळे ॥१२०७॥

अर्थ—क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायो से युक्त, मिथ्यात्व, नपुसक वेद, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन चौदह प्रकार के परिग्रहो को अभ्यंतर (वैराग्य रूपी पानी से मन पूर्वक शुद्ध तप का आचरण करते हुए तथा बाह्य परिग्रह जो क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य सुवर्ण धन, धान्य, दास, दासी, कुप्य, भाड इन बाह्य १० परिग्रहो को त्यागकर निष्परिग्रही बन गये ॥१२०७॥

वोळुक्क नीर कुळित्तुडु तंबरति नै ।
वळुकिला मादवच्चांदु मट्टिया ॥
विळुगुण मणि मैनि सेर्ति नार् ।
तोळिर् ट्रोडै शील मा मालै शूडिनार् ॥१२०८॥

अर्थ—सम्यक्चारित्र रूपी जल से स्नानकर आकाश रूपी अम्बर धारण करके महातप रूपी सुगंध चदन, सम्यक्ज्ञान रूपी गुणाभरण को धारण किया । तत्पश्चात शीलाचार को धारण किया ॥१२०८॥

विदि मनर् तमै वेल वंद केवलत् ।
तदि पदि तनक्किळ वरस राग नर् ॥
सुदमलि केवल पट्टं सूडिनार् ।
विदियिना लिरै वनै वंदिरैजिनार् ॥१२०९॥

अर्थ—कर्म रूपी वैरी को जीतकर केवलज्ञान को प्राप्त हुए भगवतों की गुनगाउ पदवी धारण करने के समान ही वे हो गये अर्थात वे दोनों मुनि श्रुतकेवली होकर भगवान के पास आकर उन्होंने नमस्कार किया ॥१२०९॥

इरैव निन्नडि यडैं युलगियर्कैयुं ।
पेरु परु ळळवैं युं पिळैत्त नीदियुं ।।
मरविनै मनमिग वरुदर् केदनुं ।
पिरविइन् विकर्पमुं वीटिन् पेट्रिवुं ।।१२१०।।

अर्थ—तदनन्तर वे दोनो श्रुतकेवली भगवान से करबद्ध प्रार्थना करने लगे कि हे प्रभु ! तीन लोक का स्वरूप, जीवादि तत्वो का प्रमाण, उन तत्वो को मिथ्यात्व के कारण बाधा आने वाले पाप कर्म, आत्मा के अन्दर आकर बध के होने वाले कारण तथा संसार तथा मोक्ष के स्वरूप का आप विवेचन कीजिये ।।१२१०।।

अरुळेन विरंजलु मणि कट्टिणपुर ।
मुरसु निड्रदिर् वदि नेळुंदु केवल ।।
तिरुविड्ड तूदि पोल सेंज्वल् वल्लिदान् ।
मरुविनान् मुनिवर् तम् मणतगत्तये ।।१२११।।

अर्थ—इस प्रकार बियालीस प्रकार के प्रश्न करने के बाद भगवान की दिव्यध्वनि ऐसी प्रगट हुई, जिस प्रकार मेघो की गर्जना होती है। उसी प्रकार गर्जना के समान भगवान के सर्वाङ्ग से दिव्यध्वनि के खिरने के बाद सम्पूर्ण भव्य जीव जो बारह सभाओं मे बैठे थे, उन सब के ऊपर जलवृष्टि के समान दिव्यध्वनि खिरने लगी ।।१२११।।

ओरु तिरुमोळियुमे पदिनेन् पाडैयाय् ।
मरुविय दोजनै मिगुदि मंडल ।।
तरुगिडै मुडि वदनगत्त वर्केला ।
मरुवगै यालिनि तायोलित्तदे ।।१२१२।।

अर्थ—उपमा रहित दिव्यध्वनि एक होने पर भी वह सात सौ अठारह भाषाओ मे परिणत होकर भगवान विमलनाथ स्वामी के ६-६½ योजन विस्तार वाले समवसरण की बारह सभाओ मे बैठे हुए भव्य जीव अपनी २ भाषा मे एक साथ समझ गये ऐसी वह भगवान की वाणी प्रगट हुई ।।१२१२।।

विनविय पोरुळेलां विळुंगि मैत्तवर् ।
मनं वलि मोळिवाळि वांगि येप्पोरु ।।
दनित्तनियागं नार्पत्तिरंडदाय ।
मुनिवरचैंदु मामुणि वर् कोदिनार् ।।१२१३।।

अर्थ—जिस समय भगवान की दिव्य ध्वनि खिरने लगी उस समय ये दोनो मेरु

व मंदर श्रुतकेवली, भगवान के द्वारा वाणी खिरी हुई को श्रुतज्ञान के बल से अ शरूप मे जानकर उसको सूत्ररूप में गूंथ लिया ।।१२१३।।

मुडिविडै यगलमायद मोंड्रेळ् मुळ ।
विडैइनै कइरगंड्रेळ् नीळमा ।।
यडिई नेळगंड्रु नोंडुयर मीरेळ् माय् ।
वडि वुडै युलग सूवांत शूळं्ददे ।।१२१४।।

अर्थ—हे भव्य मेरु व मदर सुनो ! इस लोक के शिखर मे मध्य लोक मे पूर्वापर विस्तार एक राजू है । तथा ब्रह्मलोक मे पाच राजू चौडा व सात राजू अधोलोक मे चौडाई मे है। दक्षिण उत्तर सब जगह सात राजू है। ऊचाई चौदह राजू है। यह लोक चारो ओर धनोदधिवात, घनवात, तनुवात इन तीन वातवलयो से वेष्टित है ।।१२१४।।

मुळंदै कावद मेळ् मुडिदुळि ।
मुळंजिलै गावद मूंड्रु वीळं्दोर्प ।।
लेळुंदिवा रेळु कैरैद चन्ड्रिडै ।
विळुंदवा रोळिद दोंड्रागु मेन् मुगं ।।१२१५।।

अर्थ—इस प्रकार नीचे सात राजू, मध्य में एक राजू, लोक शिखर मे एक राजू ब्रह्मलोक मे पाच राजू इस प्रकार लोक का स्वरूप है ।।१२१५।।

अरै मुळ मेळु शेंड्रगु नात् मुळं ।
पेरुग विव्वाट्रिनार् पेरुगि शेंड्रुमे ।।
ळरै येळु कयिट्रि नैगइर् कंड्रुमेर् ।
पेरुगिय पडियिनार् पिन् सुरुंगुमे ।।१२१६।।

अर्थ—मध्य लोक से ऊपर साढे तीन राजू जाकर वहा पर पाच राजू चौडा होकर फिर क्रम से घटता हुआ सिद्ध शिला के पास लोक शिखर पर एक राजू चौडा रह गया । ।।१२१६।।

पोदुवि नालोंड्रु मासु नाळिपाइरं ।
विदिइना लुलगिरंडाग वेंडिनार् ।।
मुद नडु विरुदि यान् मूंड्रु मागिनार् ।
गति रना निलत्ति नांगागु मेंववे ।।१२१७।।

अर्थ—सामान्य से लोक का स्वरूप इस प्रकार है । लोक का स्वरूप एक प्रकार है और दूसरा लोक त्रसनाडी और बाह्य के भेद से दो प्रकार है। और अधो, मध्य, ऊर्ध्व के भेद

से तीन प्रकार है। और नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के भेद से चार प्रकार है। ॥१२१७॥

अंजुमास् पंजत्ति कायत्तारुमा ।
मेंजिय कालत्तोडेळुनारगर् ॥
नंजुदारि कनर रुळियर् मेलव ।
रजोला रिलादव रगदियार् किडम् ॥१२१८॥

अर्थ—पचास्तिकाय की अपेक्षा से लोक पाच प्रकार का है। जीव, पुद्ग, धर्म, अधर्म आकाश और काल ये छह प्रकार का है। और नरक लोक, भवनवासी लोक, मनुष्य लोक, ज्योतिष लोक, कल्पवासी लोक, अहमिद्र लोक और सिद्ध लोक यह सात प्रकार के लोक हैं। ॥१२१८॥

नि गोदमे निरै यंग ळंजु तन्निडै ।
पगादळ वगलमोर् केइट्ट वागुमे ॥
मिगादोरु केरुदान् मेरु वैदिडा ।
पगानर किरंडु मेर् भवन पत्तुमास् ॥१२१९॥

अर्थ—निगोद मे पूर्वापर की अपेक्षा से चोडाई सात राजू है। उत्तर-दक्षिण सर्वत्र सात राजू है। इस प्रकार क्रम से घटता २ अधोलोक मे पूर्वापर एक राजू, ऊपर जाकर क्रम से घटता हुआ एक राजू की ऊचाई पर ६$\frac{१}{७}$ राजू है अर्थात् $\frac{४३}{७}$ राजू है। इससे आगे क्रम से कम होता हुआ मध्यलोक मे एक राजू $\frac{६}{७}$ रह गया ॥१२१९॥

वंड्रै योंड्रै परै योडारु माय् ।
निड्रवोंडुरक्क मोर् कैरु निड्रवा ॥
मंड्रि येळ् निलप्पुरै नपित्तोंव दिर् ।
सेंड्र विदिरगत्त् तेंडिशैयुं शेरिणये ॥१२२०॥

अर्थ—चित्राभूमि के ऊपर १$\frac{१}{२}$ राजू उत्सेध मे सौधर्म ईशान कल्प है। उस पर डेढ राजू पर सनत्कुमार कल्प है। उसके ऊपर छह युगल कल्प तक आधा २ राजू उत्सेध है। अन्त मे एक राजू उत्सेध अहमिंद्र लोक है। इसके अतिरिक्त सात नरक पटल अधोलोक मे छह राजू ऊचाई मे है। सातो नरको मे उनचास पटल है। आठ दिशाओ मे श्रेणीबद्ध बिल है। और बीच मे एक २ इन्द्रक बिल है ॥१२२०॥

आरेट्टां विदिविक लोड्रोड्रां गवै दिक्किलामे ।
लूरिट्ट सेरिणबदस् पुरैदोड्रोळि दोंड्राड् कोळ् ॥
नूरिट्टाइरगळे शमगरें येंदु मूवै ।
तेरिट्टी रेंदु मूंड्रोंडैदिला वेंदु कोळाम् ॥१२२१॥

अर्थ—पहले नरक के प्रथम पटल में दिशा में श्रेणीबद्ध उनचास विल हैं और विदिशा मे अडतालीस विल हैं। यह प्रथम पटल मे है। पीछे एक २ पटल मे एक २ विल कम होता गया है। अन्त के उनचासवे पटल मे एक २ विल है। विदिशा मे नही है। प्रथम नरक मे तेरह पटलो मे सब तीस लाख विल है। द्वितीय नरक मे ग्यारह पटलो मे पच्चीस लाख बिल हैं। तीसरे नरक मे नो पटलो मे पद्रह लाख विल हैं। चौथे नरक मे सात पटलो मे दस लाख बिल हैं। पाचवे नरक मे पाँच पटलों मे तीन लाख बिल हैं। छठे नरक मे तीन पटलो मे पांच कम एक लाख है। सातवे नरक मे एक पटल मे पाच ही बिल हैं। कुल मिलाकर चौरासी लाख विल हैं ।।१२२१।।

असुरर् नागर पोन्नर तीवरेन् ।
डिसपर् तीयवरुदगर् वायुवर ।।
विशै इन् मिन्नवर् मेग रागुमत् ।
दशनिकायमां भवनर् तांगळे ।।१२२२।।

अर्थ—भवनवासी देवो मे असुकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, दिक्-कुमार, अग्निकुमार, उदधिकुमार, वायुकुमार, विद्युत्कुमार, मेघकुमार ये दस प्रकार के देवो के भेद है ।।१२२२।।

अरुवत्तु नांगु नांगोडेंवत्तेळ् पत्ति रंडुम ।
शेरिवुट्र तोन्नुट्रारुं शेप्पिय वेळुपत्तारुं ।।
मरुवट्र वसुरर् नागर् पोन्नर् वायुकळ् मट्रै ।
यरु वर्कुं वेरु नूगईरं भवनंगळामे ।।१२२३।।

अर्थ-दोष रहित असुरकुमार के चौसठ लाख भवन हैं। नागकुमार के चौरासी लाख भवन है। सुपर्णकुमार के बहत्तर लाख भवन हैं, वातकुमार के छिनवे लाख भवन हैं और छह प्रकार के देवो के एक २ के छिहत्तर २ लाख हैं ।।१२२३।।

भवनर् तं भवनंगळ् कोडि येळोडु ।
शिवनिय वेळुवत्तोडिरंडु लक्क माम् ।।
अवनुरै यशुरर् कायु वान् कड ।
लुवमई रगु तनु वैयदोंगि नार् ।।१२२४।।

अर्थ—भवनवासी देवो के सव मिलाकर सात करोड वहत्तर लाख भवन हैं। असुर कुमार देव की उत्कृष्ट आयु एक सागर है, और एक शरीर की ऊचाई पच्चीस धनुष है। ।।१२२४।।

पल्ल मूंड्रिरंडरै इरंडु मूवरै ।
शोल्लिय नागर नर् सुवर्णर तीवरो ।।

डल्लव ररुवकुं मायु नागकुं ।
विल्लुमूवंदु मेलवर् कीरंदु माम् ।।१२२५।।

अर्थ—नागकुमार देव की आयु उत्कृष्ट तीन पल्य, सुपर्ण कुमार देव की उत्कृष्ट आयु अढाई पल्य, अग्नि कुमार की उत्कृष्ट आयु दो पल्य है और शेष सब देवो की आयु डेढ २ पल्य है। नागकुमार देव की शरीर की ऊंचाई पंद्रह धनुष है। शेष सब देवो ऊंचाई दस २ धनुष की है ।।१२२५।।

मानव'ररै विडं मंदरत्तिनै ।
तानडु वुडैयदु दीप सागर ।।
मूनमि लिरंडरै इरंडु माय् पुगै ।
तान वट्टिडै योंवत्तैदु लक्क माम् ।।१२२६।।

अर्थ—मनुष्यो के रहने के स्थान जम्बूद्वीप, घातकी खड, पुष्करार्द्ध ऐसे ये अढाई द्वीप हैं। इनको दो समुद्र घेरे हुए है। उनके नाम लवण तथा कालोदधि है। इन अढाई द्वीप और दोनो समुद्रो का विस्तार पैंतालीस लाख योजन है ।।१२२६।।

आरियर् म्लेंचरावार् मानव ररैत्त योर्वा ।
ररियर् दरुम कंडम् नूट्रेळुवत्ति नावार् ।।
वारियुट्टिवु तोन्नुट्रारु मट्रै कंडत्तुम् ।
शेरुन ररैत्त शेरार् म्लेचराय् सेप्पपट्टार् ।।१२२७।।
वंड्रदाम् कालर् वालर् कोंवर सेवियर् शीयम् ।
पंड्रिमान् कुरंगु कीरि योट्टगं करडि यादि ।।
वंड्रला मुगत्तर् पल्ल मायुगं कादमोक्कं ।
तिंडिडा पळत्तै मन्नै मुळंजि मरत्तुन् सेर्वार् ।।१२२८।।

अर्थ—मनुष्य मे आर्य और म्लेच्छ ऐसे दो भेद हैं। धर्म मार्ग के अनुसार चलने वाले को आर्य कहते हैं, और वे एक सौ सत्तर धर्म क्षेत्र कर्म भूमि के आर्य खडो मे उत्पन्न होते है। महालवण समुद्र तथा कालोदधि समुद्र के दोनो तटो पर चौवीस अतर्द्वीप म्लेच्छक्षेत्र हैं। सब छियानवे क्षेत्र है। उनमे एक टाग वाले हरिण, घोडे, तथा सूअर, ऊंट, सिंह, वानर, रीछ आदि के समान मुख वाले, लबे कान वाले आदि नाना प्रकार के म्लेच्छ मनुष्य एक पल्य की आयु वाले रहते है, तथा कर्मभूमि के एक सौ सत्तर क्षेत्रो मे पाच २ म्लेच्छ खंड हैं। कुल मिलाकर आठ सौ पचास खड हैं। उन म्लेच्छो का शरीर दो हजार धनुष उत्सेध रहता है, और वे फल फूल और मीठी मिट्टी खाकर जीवन व्यतीत करते हैं। वे म्लेच्छ वृक्ष के कोटरो तथा गुहा आदि मे रहते हैं ।।१२२७।।१२२८।।

इमैयमा लिमैयमुं निडद नीलियुं ।
शिमय नल्लुरिक्कियुम् शिकरि यामलै ।।
तमैनडु वुडय वेळ् नाडि वट्रिनुट् ।
समय मा रुडेय वाम् भरत रेवतं ।।१२२६।।

अर्थ—हिमवन पर्वत,महाहिमवन पर्वत,निषध पर्वत,नील पर्वत,रुक्मि पर्वत शिखरी-पर्वत ऐसे छह कुलाचलों के बीच में भरतादि सात क्षेत्र हैं। भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ऐसे सात क्षेत्र है। मेरु की दक्षिण दिशा मे भरत क्षेत्र है और उत्तर दिशा मे ऐरावत क्षेत्र है। ये दोनो क्षेत्र अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी काल का परिवर्तन वाले हैं ।।१२२६।।

नन्मयुं नन्मयुं नन्मथायट्टुं ।
नन्मइर् ट्रीमयुं तीमै नन्मयुं ।।
तिन्निय तीमयुं तीमै तीमयन् ।
टेन्निय कालमेट्रिळिवै याकुमे ।।१२३०।।

अर्थ—ये छह प्रकार के काल निम्न प्रकार से हैः—

सुषमा सुषमा, सुषमा, सुषमादुषमा, दुषमा सुषमा, दुषमा, दुषमा दुषमा (इसी को अति दुषमा भी कहते हैं) इस प्रकार अवसर्पिणी के छह भेद हैं। इसी को उलटा पढने से उत्सर्पिणी के छह भेद हो जाते हैं। ये दोनो सर्पिणी के समान घटते बढते रहते हैं ।।१२३०।।

ओरु मुळं पदिनै यांडुंदि युंदिमेल् ।
वरुशिलै यारईरं पल्लमूंड्रं दि ।।
पेरुगिय परिशिनार् पिन् सुरुंगी वन् ।
तोरु मुळं पदिनै यांडामुर् कर्पमाम् ।।१२३१।।

अर्थ—उत्सर्पिणी काल के मनुष्यो की ऊंचाई प्रथम काल में एक हाथ उत्सेध तथा पन्द्रह वर्ष की आयु होती है। पुनः बढते २ छठे काल मे छह हजार धनुष की ऊंचाई वाले तथा तीन पल्य की आयु वाले उत्तम भोगभूमि मे मनुष्य होते हैं। तदनंतर उत्सर्पिणी काल में जैसे वृद्धि होती जाती है उसी प्रकार अवसर्पिणी काल मे कम होते २ अंत मे एक हाथ उत्सेध व पद्रह वर्ष की आयु वाले हो जाते हैं। दोनो कालो को मिलाकर एक कल्प काल होता है ।।१२३१।।

आळिगळ् कोडा कोडियै इरंडिनिल् ।
नालु मूंड्रि रंडोड्रां नालु कालंगळिर् ।।
ट्राळिई लांडुनार्पत्तिरायिरं ।
मेलवै इरंडिकुं विदिकप्पट्टवे ।।१२३२।।

अर्थ—यह अवसर्पिणी काल दस कोडाकोडी सागर का होता है। उसमे चार कोडाकोडी सुषमासुषमा पहला काल है। तीन कोडाकोडी सागर का दूसरा सुषमा काल है। दो कोडाकोडी सागर का तीसरा सुषमा दुषमा काल है। बियालीस हजार वर्ष कम एक कोडाकोडी सागर का चौथा दुषमा सुषमा काल होता है। यह चौथा काल अनवस्थित कर्म भूमि है, और क्रम से कम होते २ इस काल मे पाचसौ धनुष्य उत्सेध वाले मनुष्य होते हैं। इनकी आयु एक कोटि पूर्व की उत्कृष्ट होती है। इनका शरीर पाच वर्णका होता है। ये महान पराक्रमी व बलशाली होते है। प्रतिदिन आहार करते है। अनेक प्रकार के भोगोप-भोगो को भोगने वाले, धर्म मे अनुरक्त, त्रेसठ शलाका पुरुष इस काल मे होते हैं ।।१२३२।।

करुममुं भोगमुमिरुमै यु मुडन् ।
मरिय मुन्निगंळुळ् भरत रेवत ।।
मिरुमैय मुदल् मुक्कालम् भोगत्तिन् ।
मरुविय करुमत्तं मट्रै मूंड्रुमे ।।१२३३।।

अर्थ—पहले कहे हुए सात भूमि मे भरत व ऐरावत क्षेत्रो मे कई दिनो तक भोग-भूमि रहती है अर्थात् सुषमा सुषमा, सुषमा, सुषमा दु:षमा इन तीनो कालो मे भोगभूमि की रचना रहती है और शेष तीनो कालो मे कर्मभूमि को रचना होती है ।।१२३३।।

नन्म युट् टीम युट् टीमै नन्मयुट् ।
पन्नरुं पिरमरुं परम तीर्थरुं ।।
मन्नरुं पलवरुं वासु देवरुं ।
तन्नुरु पगै वरु शमरर् तामुमा ।।१२३४।।

अर्थ—अवसर्पिणी के तीसरे काल के अत मे तथा चौथे काल के प्रारभ मे ब्रह्मार्थी (आत्मार्थी) ऐसे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रति वासुदेव, चमराधीश आदि सामान्य राजा उत्पन्न होते हैं ।।१२३४।।

उत्तर दिक्कण कुरवमुत्तमं ।
मद्दम मरिवरुडंमि रम्मय ।।
मत्तग मैवप मैरण्णि य मिवै ।
नित्तमाय् भोगंग निड्र भूमिये ।।१२३५।।

अर्थ—उत्तर कुरुक्षेत्र व दक्षिण कुरुक्षेत्र ऐसे ये दो क्षेत्र हैं। ये दोनो उत्तम भोग भूमि है। हरिक्षेत्र, रम्यकक्षेत्र, ये दोनो मध्यम भोगभूमि है। तथा हेमवत क्षेत्र, हैरण्यवत क्षेत्र ये दोनो जघन्य भोगभूमि है। यह सदैव भोगभूमि मे अवस्थित ही रहते हैं ।।१२३५।।

मूंडि रंडोरु पल्ल मुरैयु ळायुग ।
मांड्र बिल्लइर् मारु नाळिरत् ।।

डूंड्रिय ओक मूंड्रिरंडोर् नाळ् विडा ।
दोंड्रिय पशिकेड वमुद मुन्बरे ।।१२३६।।

अर्थ—उत्तम भोगभूमि मे रहने वाले मनुष्यो की आयु तीन पल्य की होती है। मध्यम भोगभूमि मे रहने वालो की आयु दो पल्य तथा जघन्य भोगभूमि के रहने वालो की आयु एक पल्य होती है। उत्तम भोगभूमि के मनुष्यो के शरीर की ऊंचाई छह हजार धनुष की होती है। मध्यम भोगभूमि के मनुष्यो की ऊंचाई चार हजार धनुष तथा जघन्य भोगभूमि मे रहने वाले मनुष्यो की ऊंचाई दो हजार धनुष होती है। उत्तम भोगभूमि मे रहने वाले मनुष्य तीन दिन के बाद एक बार आहार लेते हैं। मध्यम भोगभूमि के दो दिन के बाद एक बार तथा जघन्य भोगभूमि के मनुष्य एक दिन छोड कर आहार लेते हैं ।।१२३६।।

उरैत्त मुक्काल मूंडादि युळ्ळ् माम् ।
निरैत्त वंन्नूरुविर् पुव्व कोडियु ।।
मरत्तियेळिरंडु नोट्रिरुपत्तेवडु ।
मुरैत्तिला मूंडिला दिक्कु मोक्कनाळ् ।।१२३७।।

अर्थ—सुषमा सुषमा काल, सुषमा काल, सुषमा दुषमा काल ये तीनो उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमि मे जिस प्रकार मनुष्य रहते है उसी प्रकार यहा भी भरत, ऐरावत क्षेत्रो मे रहते है और चौथे काल मे उनका शरीर पाच सौ धनुष ऊचा और एक कोटि पूर्व की आयु होती है। कर्मभूमि की रचना होती है व मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति हो जाती है और पाचवे काल मे घटते-घटते आगे चलकर सात हाथ की ऊचाई और एक सौ बीस वर्ष की आयु वाले इस काल के अन्त मे होते है, फिर कम होते २ छठे काल के प्रारभ मे उनकी आयु बीस वर्ष व ऊंचाई दो हाथ की तथा अन्त मे पद्रह वर्ष आयु व एक हाथ की ऊचाई रह जाती है ।।१२३७।।

नोट—चौरासी लाख वर्ष को चौरासी लाख वर्ष से गुणा करने से एक पूर्व वर्ष की सख्या निकलती है, उसको एक कोटि से गुणा करने से एक कोटि पूर्व वर्ष हो जाते है।

करुमत्त कच्चं नरसु कच्चं कामिग ।
मरुविय मा कच्चं कच्चगावदि ।।
इरुमै इला वदं इलगंलावदं ।
पोरुविला पोक्कलं पोक्कला वदि ।।१२३८।।

अर्थ—कर्मभूमि मे सम्बन्ध रखने वाले कच्छ, सुकच्छ, महाकच्छ, कच्छकावती, आवर्ता, लागलावर्ता, पुष्कलावती, पुष्कला ये नगर (देश) सीता नदी के उत्तर मे रहते है ।
।।१२३८।।

मन्नु तेन् फरै वच्चं नर् सुवच्चं मा ।
तुन्नुमा वच्चये वच्चगा वदि ।।

सोन्न नल्लिरमये सुरमै तोमिला ।
मन्नर् मन् रमणीय मंगलावती ॥१२३९॥

अर्थ—सीता नदी के दक्षिण तट पर रहने वाले वत्सा, सुवत्सा, महावत्सा, वत्सकावती, रम्य, सुरम्य, रमणीय, मगलावती आदि देश रहते है ॥१२३९॥

परवरु पदुमै नर्पदुमै मापदं ।
मरुवु मप्पदुमये पदुमकावती ॥
तिरि विनर् शंकये नळिनै शादुदै ।
करैय तेन्कुमुदये चरितौ कान्वरिल् ॥१२४०॥

अर्थ—सीतोदा नदी के दक्षिण किनारे पर, पद्म, सुपद्म, महापद्म, पद्मावती, पद्मकावती, शख, नलिना, कुमुद, सरिता इत्यादि देश हैं ॥१२४०॥

वडत्तडत्तिन् वप्पै नल्ल वप्पयु ।
मिडरिला मा वप्पै वप्पगावती ॥
सुडरुडै कंदये सुगंदै तोमिला ।
कडलुडै कंदिलै गदमालिनी ॥१२४१॥

अर्थ—सीतोदा नदी के उत्तरी किनारे पर वप्रा, सुवप्रा, महावप्रा, विप्रावती, गधा, सुगधा, गधिला, गधमालिनी आदि देश है ॥१२४१॥

नालु मुन् नदियिनुम् ।
नालु नाल्वरैनुम् ॥
नालु नालिरट्टियाय् ।
विदेग ताडु निंड्रवे ॥१२४२॥

अर्थ—वहा बारह विभंगा नदी, सोलह प्रकार के पर्वत और बत्तीस विदेह के देश हैं। ॥१२४२॥

शीद इन् वडक्क रै ।
यादि याय् वलं मुरै ॥
योदिय वन्नाडु गळ् ।
नीदि योडु निंड्रवे ॥१२४३॥

अर्थ—पहले कहे हुए कच्छ आदि बत्तीस देश सीतोदा नदी के उत्तरी किनारे से प्रारंभ होकर क्रम से प्रदक्षिणा रूप में रहते है ॥१२४३॥

सोल्लियॆ वन्नाडुगळ् ।
देळ्ळियं मलैयुनुम् ।।
सुळॆळेया रिरंडि नुं ।
नल्लकडं मारु माम् ।।१२४४।।

अर्थ—पीछे कहे हुए कच्छ आदि बत्तीस देश है वे एक २ विजयार्द्ध पर्वतो मे उत्पन्न होने वाले दो क्षुल्लक नदियो से छह खण्ड वाले हो गये हैं ।।१२४४।।

शेव्विलेंडु नूरुयर्ड्डु ।
पूव्व कोडियायुग ।।
मिव्वगय नादु ळेंड्रुम् ।
वेव्विनैग डीर् परे ।।१२४५।।

अर्थ—इस प्रकार जो बत्तीस देश हैं उनमे रहने वाले मनुष्यो की ऊंचाई पांच सौ धनुष है और पूर्व कोटि आयु वाले होते है। यह काल भेद से रहित होकर तपश्चरण करके मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ।।१२४५।।

सुल्लै मेरु नान् गुडैय ।
नल्ल नाडु नांगिनु ।।
मिल्लै वेरु पाडि वट् ।
सोन्न सोन्न यावै युं ।।१२४६।।

अर्थ—चार प्रकार के मेरु चार देश मे अर्थात् धातकी खंड व पुष्करार्द्ध में दो २ अर्थात् चार होते हैं। जम्बूद्वीप में कहे हुए के समान ही चारों होते हैं ।।१२४६।।

ओट्टि नोट्टि रट्टियाय् ।
सोट्ट दीपं मागंर् ।
मेट्टन मलै पुरैंत्तु ।
निट्टया रीवंवु याम् ।।१२४७।।

कुरिय रोम मेन्न वाम् ।
तेरियं दीपं सागरं ।।१२४८।।

अर्थ— मानुषोत्तर पर्वत के बाह्य प्रदेश मे असरयात द्वीप तथा असख्यात समुद्र हैं। यह वर्णनातीत है। उनकी सख्या कितनी है यदि ऐसा पूछा जाय तो उसकी सख्या पच्चीस कोडाकोडी उद्धार पल्य के रोमो की सख्या प्रमाण है ।।१२४८।।

उवरि तन्नीर् तेन् सुरै ।
तिवरु परने मिक्कु विन् ।।
सुवैय्य नीरिन् वारिग ।
ळवैयुमेळ दागुमे ।।१२४९।।

अर्थ—लवण समुद्र खारे पानी से युक्त है तथा इक्षुवर, घृतवर, क्षीरवर, वारुणीवर के समुद्र हैं,तथा अपने २ नाम के से स्वाद वाले है , तथा शेष सर्व समुद्र इक्षुरस समान मधुर स्वाद वाले है ।।१२४९।।

सागरं जलचरंगट् ।
काक रगं लळ्ळ वाम् ।।
नाग मादि पादनाल् ।
भोगभूमि तीवे लाम् ।।१२५०।।

अर्थ—असख्यात द्वीप समुद्रो मे जलचर प्राणी वही है। असख्यात द्वीप समुद्र सभी स्थानो मे है। चतुष्पाद वाले हाथी, सिह, मृग आदि जो जीव जिस भूमि मे रहते हैं उसे तिर्यग् भूमि या तिर्यग् लोक कहते है ।।१२५०।।

मुडिंद दीपं सागर ।
तडैद वै विलगुं मीव् ।।
विडगं ळेनिरंदन् ।
मुडिदिडा उरैक्कवे ।।१२५१।।

अर्थ—अन्त मे रहने वाले आधे स्वयभू रमणद्वीप और पूरे स्वयभू रमण समुद्र इन दोनो मे अढाई द्वीप और कालोदधि तथा लवणोदधि समुद्र हैं। इनमे जितने जीव रहते हैं, उनसे कही अधिक स्वयभू रमण समुद्र मे रहते हैं। उनकी संख्या का कहना असंभव है। ।।१२५१।।

येळ्ळु सागर तीवत्ति नट्ट दाय् ।
सूळ् किडंद नंदीश्वर दीवात्ति ।।

लूळि यूळिवानोर वंदिरै वनै ।
ताळु मट्रदन् पेट्रियै सादृ वाम्।१२५२।

अर्थ—जम्बूद्वीप आदि सात द्वीपो को सातो समुद्र घेरे हुए है। आठवा नंदीश्वर द्वीप है। यह नंदीश्वर द्वीप अनादि निधन है, और वहां के रहने वाले बावन अकृत्रिम चैत्यालयो की पूजा चतुर्णिकाय देव आकर करते हैं। अब आगे चलकर मैं अकृत्रिम चैत्यालयो का विवेचन करूंगा ।।१२५२।।

अरवत्तु मूंड्रि नोडाय त्तुट्रिना ।
लेरिप पट्टिरुंदन कोडियोचनै ।।
शेरि वुट्र विलक्क मेंबत्तु नान्गोडु ।
मरुवट्र तीवत्तु ळगल मागुमे ।।१२५३।।

अर्थ—नंदीश्वर द्वीप का एक सौ तिरेसठ करोड, चौरासी लाख योजन का व्यास है ।।१२५३।।

निलंगळ् पोन् मणिगळा निरैंट्टुदिरुंदन ।
विलंगलु कयंगळु वीतरागरै ।।
पुलंगळाळ् वेलवन भोगभूमि यो ।
डिलंगु वानवरिड तन्नै येरुमे ।।१२५४।।

अर्थ—उस नंदीश्वर द्वीप की भूमि स्वर्ण और रत्नो से परिपूर्ण है। वहां के पर्वत और सरोवर जिस प्रकार वीतराग भगवान निर्दोष हैं उसी प्रकार वे भी निर्दोष दीखते है। नंदीश्वर द्वीप का सभा मडप देवों को हास्य के समान दीखता है ।।१२५४।।

कन्नैयुं मनत्तैयुं कवरं डु कोळ्वन् ।
वन्न मेगलै ईनार् वडिवु पोलवं ।।
विन्नवर् किरै वरुं विडाद वेट् कैय ।
वेन्निला विडंगळा लियांड्रिरुंददे ।।१२५५।।

अर्थ—इस जम्बूद्वीप को देखने वाले मनुष्यो का हृदय तथा नेत्र आकर्पित होते हैं। जिस प्रकार एक सुन्दर स्त्री जो अनेक प्रकार के शृंगारो से युक्त हो, उसके देखने से चित्त आकर्पित हो जाता है, उसी प्रकार यह द्वीप देवों के हृदयो को आकर्पण करता है ।।१२५५।।

इलदै वह्नि कन्मणि पालियंड्र् तन् ।
शलदि शूळ् पोयदु तरणी मूंड्र् डै ।।

उलगिनु किरै व ना लयगळा त्तिम्मु ।
उलगिनु किरै मै कोडोंगु गिड्डदे ।।१२५६।।

अर्थ—यह नंदश्वर द्वीप अनेक प्रकार की सुन्दर लताओ से अलकृत है। और तीन लोक के नाथ कहलाने वाले अर्हंत भगवान के चैत्यालय वहा अत्यत श्रेष्ठ प्रकाशमान है। ।।१२५६।।

पन् चिरै किडंद सोर्पावै मारुडन् ।
विन् शिरै कळमेन विट्टु वीरनै ।।
वन् शिरप्पोडु वंदडैद वानवर् ।
कन् शिरै पडुवदु कामर् भूमि याल् ।।११५७।।

अर्थ—सगीत तथा नृत्य करने वाली देवाङ्गनाओ के साथ वहा के देव अपना देव-लोक छोडकर अति सुन्दर अष्ट द्रव्य पूजा सामग्री के थाल को हाथ मे लकर नदीश्वर द्वीप मे भक्ति के साथ पूजा करते हैं, और वही निवास करते है ।।१२५७।।

अंजन मलैग नान्गागु मांगदन् ।
मंजिल मादिशै नडुव निड्रन ।।
वंजन मूलमा यगंड्रुयर्ंदन ।
वेंजिलापिरं पुगै नांगो डवदे ।।११५८।।

अर्थ—उस दोषरहित नदीश्वर द्वीप की भूमि के मध्य मे चारो दिशाओ मे अर्थात् पूर्व, पच्छिम, उत्तर व दक्षिण इनमे एक-एक अन्जनगिरि पर्वत है। कुल मिलाकर चार है। वे अन्जनगिरि पर्वत चौरासी योजन उत्सेध वाले है। एक हजार योजन का अवगाह है मौर चौरासी हजार योजन का विस्तार समवृत्त है ।।११५८।।

मट्रिंद मलै इन् मादिक्किन् वाविगळ् ।
पेट्रियार् किडंदन पेरिय शालवु ।।
मुट्रुनीर् शूळ्द लार् ट्रदिमुगंगळेन् ।
ट्रुट्र पेर् मलै कळतडत्ति लुळ्ळवे ।।१२५९।।

अर्थ—यहा तक कहे हुए अन्जनगिरि पर्वत के चारो दिशाओ मे चार वावडिया है।।१२५९।।

आईरं पुगै पत्तै यगड्रुयर्ंदन् ।
वाय् मैया नीरिन् वरैगळ् वाविइन् ।।
शूळन् तान् किडंद नाल् वनंगडं पेय ।
रेळिलै शंबगं तेमाव सोममे ।।१२६०।।

अर्थ—उस बावडी के मध्य मे रहने वाले दधिमुख पर्वत की ऊंचाई व चौडाई दस हजार योजन है। उन वावडियो के चारो दिशाओं में चार वन हैं। जिनके अशोक वन, सप्तच्छदवन, चंपकवन और आम्रवन ये नाम हैं ।।१२६०।।

वनत्तिडै पुरंबडि वावि कोनत्तिन् ।
मनत्तिनुक्किरदि शैमलैग निड्रन ।।
तनवकुयर् वगल माइरंग योजनै ।
यनैप्पल विडंगळालिरदि शेय्युमे ।।१२६१।।

अर्थ—उन चारो वनो के बाहरी दोनों कोनो में रतिकर नामक दो पर्वत हैं। उन रतिकर पर्वतो का उत्सेध तथा चौडाई एक हजार योजन है। ये देखने में अत्यंत सुदर दिखाई देते हैं ।।१२६१।।

मलै नल मनि पोनिन् मयम दागिय ।
पलवडि वुडयन परमन् कोइलग ।।
निलविय मगुडमा इलंगुम् पारिलुम् ।
मलैदुं माइरं पुगैग लाळंदवे ।।१२६२।।

अर्थ—उस नंदीश्वर द्वीप मे रहने वाले, अन्जनगिरि, दधिमुख और रतिकर नाम के पर्वतो के ऊपर सोने तथा रत्नो के अर्हंत भगवान के चैत्यालय हैं। वे अत्यत प्रकाशमान मुकुट के समान प्रकाशित हैं। वे नीचे से ऊपर तक एक हजार विस्तार वाले हैं ।।१२६२।।

वनंगळुं तडंगळुं मलइन् मामणि ।
तलंगन् मे निड्रन तमनि येत्ति यन् ।।
ट्रिलंगु तोरण मुडै वेदि शूळ्ंदु नल् ।
ललगंलां दरु मणि यालियंड्रवे ।।१२६३।।

अर्थ—नंदीश्वर द्वीप में रहने वाले वन, तडाग, वावडी, पर्वत रत्नो से परिपूर्ण हैं। वहां के आलय (भवन) स्वर्ण से युक्त है। उनके चारो ओर वेदिया हैं। उन वेदियो मे पुष्प हार लटके हुए हैं ।।१२६३।।

मंजन वंजन मालयु नान्गुळ ।
वेंजिडा ददिमुगत्ती रट्टागुमे ।।
वंजि पोलिरदि करत्तेन्नानगुळ ।
मंजिला तन नल वामन् कोयिले ।।१२६४।।

अर्थ—काले बादलो के समान अञ्जनगिरि पर्वत चार है। दधिमुख नाम के सोलह

पर्वत है। चारो ओर रहने वाले रतिकर पर्वत बत्तीस है। उन सभी बावन पर्वतो पर बावन चैत्यालय, अकृत्रिम एक सौ आठ, एक सौ आठ जिन बिम्बो से विभूषित है ।।१२६४।।

आयत मैबदिर् ट्रिरट्टि योजनै।
यायदंकाल् कुरैदल दोकमा ॥
माय तम् तन्नरै यगल माइलन ।
वाइन् मूंड्रुडैय मुन् मंडवंगळाम् ।।१२६५।।

अर्थ—उन चैत्यालयो की लवाई सौ योजन है। उनकी ऊचाई पिचहत्तर योजन है तथा चौडाई भी पचास योजन है। इस प्रकार विस्तार वाले चैत्यालयो मे वेदिया है। वे तीन द्वारो से युक्त है। उसके आगे मडप है। गधकुटी का प्रथम मडप पूर्व दिशा मे है। उस मंडप को पीठिका मडप कहते है ।।१२६५।।

मालयुं शालंगळ् वास मार्दवुं।
शालवुं ताळ्दुळ वार्सलिबुडै ।।
पालिगै मुदल् परिचदेंग नूट्रेंट्टु ।
माले वेय्दन मलिदिरुंदवे ।।१२६६।।

अर्थ—उस गधकुटी मडप के तीनो द्वारो पर फूलो के हार लटके हुए है। उनमे खिडकिया है। उस मडप के चारो ओर एक सौ आठ मगल द्रव्य है, और भिन्न-भिन्न उपकरण हैं।।१२६६।।

आलयत्तळवदा यमैदु कोयिन् मुन्।
पालिरुंदन पल्लवादिया ॥
माडलुं पाडलु ममरंदु कान्वव ।
रूडु शेंड्रन् वल वुळैक्कलत्तवे ।।१२६७।।

अर्थ—इन अकृत्रिम चैत्यालय के पूर्व भाग में अनेक प्रकार की नाटच-शालाएं तथा वाद्यमडप हैं, जिनमे नृत्य सगीत होते हैं ।।१२६७।।

इजिगळं पोना लियड्रं गोपुर ।
मुन्सोन वळविनान् मुडिद माडिशै ।।
येजोलार् मुगमेन विरदवत्तोडु ।
वंजिमेगलै यन वंदु शूळ्ददे ।।१२६८।।

अर्थ—उस मदिर के चारो ओर पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण कोट हैं जिनके बीच मे गोपुर हैं। वे देखने मे अत्यत सुदर प्रतीत होते हैं।।१२६८।।

उगप्पुडै पेर्याच्चि ईट्रिनुंमुदल् मरिणद रोकम् ।
युगत्तिनु किरैवर् तोट्र मुळ्ळिड मलाद देशं ॥
शगत्तडु वडिवु दीप सागरं तनदिडक्कै ।
नगत्तवर् नागर मक्कळ् विलंगुरै ज्ञालं काट्टुं ॥१२६९॥

अर्थ—उस मडप मे उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी इन दोनों कालो के स्वरूप है। उस काल मे मनुष्यों की आयु आदि का उत्सेध तथा तीर्थंकरो का स्वरूप एवं असंख्यात द्वीपो का स्वरूप, विजयार्द्ध पर्वत के ऊपर रहने वाले विद्याधरो के स्वरूप व देव-मनुष्य-तिर्यंच के रहने वालो के स्वरूप उस दीवार मे चित्रित किये हैं ॥१२६९॥

तुरक्कत्तुं वीटिनुं तोंडि नारैदुं ।
शिरप्पदु विगर्पमुं तीय नलिव नैगळिर् ॥
पिरप्पदुं गतिगळिर् पेयरुं पेट्रियुं ।
कुरित्तन पुराणत्तार् कूरु गिड्रवे ॥१२७०॥

अर्थ—देवलोक मे उत्पन्न होने वाले सुख तथा पुण्य पाप को, चतुर्गति मे रहने वाले सुखदुख को एवं भव्य जीवो के ससार को नाश करने वाले सुखदुख के भावो को चित्रित किया है। उन चित्रो को देखते ही चारो गतियो के सुख दुख की शीघ्र ही कल्पना हो जाती है। ॥१२७०॥

कंडवर् काक्षि पै तूपन् शैंदुडन् ।
पंडुशै तीविनै परप्पै तीर्पन ॥
वंडुरै पिडिनल् वामन् सेवडि ।
कंडवर् शेयुं शिरप्पैदुम् कादुमे ॥१२७१॥

अर्थ—भीतर के मंडप मे लिखे चित्रो को देखकर मनुष्य का हृदय अत्यत आनदित होकर उस अशोक वृक्ष के नीचे रहने वाले अर्हंत भगवान के चरण कमलो मे नमस्कार कर के आगे बढते ही वहां भगवान के पच कल्याणको के भाव चित्रित किये हुए हैं ॥१२७१॥

उळैक्कल मंडप मुंवु तूव याम् ।
तळैत्तेळु सेदित्तरु मुन्निंड्रदु ॥
अळै पदि लाडुम् वैजयंतै यांकोडि ।
वळदिकन् मानत्तंब मैद वंददे ॥१२७२॥

अर्थ—उस गधकूटी के पूर्व दिशा मे रहने वाले भीतर के उत्कीर्ण मडपो का विवेचन यहां तक किया गया है। उस उत्कीर्ण मंडप की पूर्वदिशा मे एक स्तूप है। उसके आगे एक चैत्य वृक्ष है। उसके आगे वैजयंत नाम की ध्वजा है। उसके वाद मानस्तभ है। ॥१२७२॥

गोपुरत्तिन् पुरंगुणक्क दान् दिशै ।
वापि मानंद या माशिलाद नीर् ।।
पूविना निरैंदु पोन् मणि इनाय दोर् ।
सोपनं शूळं्दवे तिगैत्तु मागुवै ।।१२७३।।

अर्थ—पूर्व दिशा मे रहने वाली वेदी के बाहर पूर्व दिशा मे नदा नाम की बावडी है। वह बावडी अत्यत निर्मल जल तथा कमलो से भरी हुई स्वर्णमयी सोपान वाली है। उस बावडी के चारो ओर वेदी सहित मडप है ।।१२७३।।

गंदकुडि मंडबगं नूट्रेट्टु वै कानिर् ।
पंदि योरु मूंड्रु निरै यागि वैडूर्य यत् ।।
तंब मिशै इरुंद तलमूंड्रुडैय तामु ।
संदरंग दम्मिडै यनेगं शिलै यासे ।।१२७४।।

अर्थ—उस गधकुटी के एक सौ आठ मडप हैं। उनको देखने से तीन पक्ति से युक्त उत्तर दक्षिण तथा पश्चिम मे छत्तीस-छत्तीस वेदिया हैं। कुल मिलाकर एक सौ आठ वेदिया हैं, और वैडूर्य रत्नो से निर्मित वहा चार स्तभ है। उनपर तोन २ प्रकार से युक्त स्तूप है। यह सब परस्पर स्पर्श न करते हुए भिन्न २ है ।।१२७४।।

शम्मनि मंडपत्ति निडै शीय वनै मीदु ।
वम्मलइन् मिशै इरुंद वरुवक नवन् पोल ।।
वेम्मै विनयुं केड मिरुंद तिरु वुरुवं ।
तन्मळ वैड्नूरु धनवागि युयरंदनवे ।।१२७५।।

अर्थ—रत्नो से निर्मित उस गधकुटी के मध्यभाग मे स्वर्णमयी सिंहासन है। वह सिंहासन ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे उदयाचल से उगता हुआ सूर्य यहां आकर विराजमान हो गया हो। उसी प्रकार पाप कर्म को नाश करने वाले जिनेंद्र भगवान की पाच सौ धनुष उत्सेध वाली पद्मासन प्रतिमाए वहा पर विराजमान है। ।१२७५।।

इरु मरुंगुम् चामरैग ळियक्क मियक्क ।
मरुविय मंडलमुं मलर् पिंडियु मुक्कुडयुं ।।
विलै मलर्गळ् सोरिंदमर रेत विनैनींग ।
परवु पन्निरंडुं सूळं्दिरुंद वांगे ।।१२७६।।

अर्थ—जिनेन्द्र प्रतिमाओ के दोनो पार्श्वो में धवल चवर को ढोल रहे हों—इस

प्रकार प्रभामडल से युक्त अशोक वृक्ष, छत्रत्रय आदि हैं और वहां अत्यत सुगधित पुष्पवृष्टि करते हुए देव स्तुति भक्ति आदि करते है ।।१२७६।।

ज्ञाल मोर् मूंड्रु डै यानदु मै मै इन् ।
मेलेळु कादल देवर विरुंबि युं ।।
काल मनादि परंपरैइन् कट् ।
टालय मक्कनमेवु दलालु ।।१२७७।।

अर्थ—अनादिकाल से परपरा से चले आये देवो के क्रमानुसार तीन लोक के नाथ श्री जिनेद्र भगवान की प्रतिमा की पूजा के लिये भक्ति के साथ आकर पूजा करके उस नंदीश्वर द्वीप मे रहने वाले अकृत्रिम चैत्यात्रय मे प्रवेश किया ।।१२७७।।

सोद मनादि सुरेंदिरर् मै मै कट् ।
कोदिय पेट्रिइन् सुट्रु मुळै कलं ।।
मादर्गळेंदिय वाचिय कोडनै ।
योड वेळुंदुडन् यावरु वंदार् ।।१२७८।।

अर्थ—वहा से निकलकर जिनेद्र भगवान की पूजा के लिये अपने हाथ मे अष्ट द्रव्य की सामग्री लेकर देव नदीश्वर द्वीप मे आ गये ।।१२७८।।

संगु मुरंड्रन तारै गळ् पेरसोल ।
वेगुं मुळंगिन पेरिय मौवोलि ।।
पुंगिय वाद मडित्तुळि माल्कड ।
लंगेळु वोसयै वेंड्रन वंड्रे ।।११७९।।

अर्थ—शंखवाद्य, भेरीवाद्य आदि अनेक वाद्यो के शब्द वहां सुनाई देते थे । वे शब्द वायु के द्वारा जैसे समुद्र मे रहने वाली तरगो के शब्द होते है उसी प्रकार उन बाद्यो के शब्द सुनाई देते थे ।।१२७९।।

तुगिर्कोडि वेन् कुडै तोक्कु निरैंदन ।
मगत्तवर् मंगलं पाडवरोशै ।।
पुगत्ति शै विम्म वोलित्त मनत्तिन् ।
मिगैत्तेळु मानंदरागि इरुंदार् ।।१२८०।।

अर्थ—ध्वजाए , धवल छत्र आदि वहा दीखने मे आते थे । जिनेंद्र भगवान के मगल-मयी होने वाले गीतगान चारो ओर फैले हुए थे । उस समवसरण को देख कर देव उछल रहे थे ।।१२८०।।

परंद वरंबयर् पाडलोडाड ।
निरंद वीयाळ् कुळल् किन्नर गीतं ।।
तुरंगमु मावोडु मानमु मेरि ।
विरुंविय वन्न मरिणदु वियंदार् ।।१२८१।।

अर्थ—देवियो के सगीत और नृत्यादि सदैव होते रहते है। इसके अतिरिक्त किन्नर, किंपुरुष देव वाद्य करते हुए अपने २ वाहनो पर चढकर अलकारो से सजधज कर समवसरण मे आते है ।।१२८१।।

विक्किरियै पल वेट्टु मडुत्तव ।
रविकरियै कन् नळित्तवर् तम्मोडु ।।
पोक्क मुरैत्तु नडित्तुडने शिलर् ।
नक्कनर तक्कवर णारण मुळिदे ।।१२८२।।

अर्थ—देवलोग वहा आठ प्रकार की ऋद्धियो के बल से परस्पर मे हास्य विनोद नृत्य आदि करते थे ।।१२८२।।

वंदिगळ् वंदनै शैदिरै वन् पुग ।
ळंद मिलादन कोंडडि ताळ्द नर् ।।
कंदिर मोदिय काळ पदागै इन् ।
वंदनर् ताम पल रागिय वानोर् ।।१२८३।।

अर्थ—मगलगीत, स्तुतिपाठ आदि अनेक प्रकार के स्तोत्र आदि मगलमयी गीत आदि करके भक्ति के साथ भगवान की स्तुति करके चरणकमलो मे नमस्कार किया। अनेक देव ध्वजाओ को पकडकर वाद्यो सहित वहा आ गये ।।१२८३।।

येळुच्चिच मुळावोलि येंगु मियेंब ।
पळिच्चिच वेळुंद नर् पन्नवर् कौनै ।।
वळक्किनिल् वंदुलग नडुमै मै इत् ।
तोळिर् किरै शोदमनेवलि नाले ।।१२८४।।

अर्थ—देवो के आगमन के समय उनके द्वारा वजाए जाने वाले वाद्यो के शब्द चारो ओर फैले हुए थे। देवो ने वाद्यो के साथ परपरा के अनुसार वहा आकर नदीश्वर द्वीप की पूजा की ।।१२८४।।

कत्तिगै पंगुनि याडिय कासरु ।
सुक्किल पक्क नल्लट्टमि तन्निल् ।।

वत्तवोर् पादिइल् वंदु नंदिसर् ।
पुक्कवर मै मैं तोडंगिन रंड्रे ॥१२८५॥

अर्थ—कार्तिक, फाल्गुण व आषाढ मास के अंतिम मास मे अष्टमी से पूर्णमासी तक नंदीश्वर द्वीप के बावन चैत्यालयो मे सब देव मिलकर पूजा प्रारभ करते हैं ॥१२८५॥

अक्कन मिक्क वरवय राडु नर् ।
पक्क मेळुंद वियाल कुळल् पन्नोलि ॥
तोक्कु मुरंड्र वलं बुरि दुंदुभि ।
नक्कन वान मुळक्किनै मादो ॥१२८६॥

अर्थ—उस नदीश्वर द्वीप के मदिरो मे जिन बिम्बो की पूजा करते समय देवाङ्गनाएं नृत्य करती हैं, और वीणा वाद्य तथा शंख आदि के शब्दो की ध्वनि चारो ओर दूर तक गूंजने लगती है ॥१२८६॥

सल्लरि तन्नुमै भेरि मुळावलि ।
येल्लै तमक्कि येन्न वेळुंदन ॥
सेल्लिनर तम्मेदिर् सोल्लिनर् तम्मोलि ।
योल्लेनु माकडलो शेई नोंड्रे ॥१२८७॥

अर्थ—झलमरी वाद्य, भेरीवाद्य तथा अनेक प्रकार के वाद्यो की ध्वनि चारों ओर फैल जाती है । परस्पर देवागना वहा इस प्रकार वर्तालाप करती हैं, उसकी प्रति ध्वनि ऐसी मालुम होती है, मानो समुद्र की तरग ही उठकर गूंज रही हो ॥१२८७॥

तुंबुरु नारदर् तोक्कुडन् मिक्कव ।
रेगुं मियाळि सै वोडोलि तोट्ट नर् ॥
तंगिय किन्नरर् तम्मि दुनंगळे ।
लगिय गीत मोडाई नर् तामे ॥१२८८॥

अर्थ—तुम्वरुनाद करने वाले देवऋषि वीणा नाद करते हुए आते हैं, और किन्नर देविया आकर अपनी सामर्थ्य से वहा सगीत नृत्य गान आदि करती है ॥१२८८॥

शक्करन् मुदट्रेवर् कडामु शैंद ।
मिक्कशिलवत्तै यावर विळंबुवा ॥
रक्कन मुच्चगत्तुळ्ळव रालयं ।
तोक्क वेदोडंगि शिरप्पोडुमे ॥१२८९॥

अर्थ—सौधर्म इन्द्र आदि देवो के द्वारा किए हुए उनके ऐश्वर्य का वर्णन करने वाले देव तथा तीन लोक मे रहने वाले अकृत्रिम चैत्यालयो के जो देव है वे ही भगवान की पूजा करते हैं। दूसरे अन्य कोई नही कर सकते ।।१२८६।।

शक्करन् शमर नीशन् वैर नान् देव राजर् ।
तोक्क वानवरै नांडु भागमाय् तोगुत्तु कोंडु ।।
मिक्क वत्तिक्कै मेवि विरगुळि शिरप्पयरंद ।
पक्कत्तेन्नाळुं शैवर पदिनै नाळिगं योर्पाले ।।१२६०।।

अर्थ—सौधर्म इन्द्र, चमरेद्र, असुरेंद्र, ईशान कल्प के देव, वैरोचन नामके असुर कुमार देव तथा देवो के राजा सभी मिलकर भगवान की पूजा करते है। उस नदीश्वर द्वीप के चारो दिशाओ के जिनालयो मे शुक्लपक्ष की अष्टमी से लेकर पूर्णमासी तक एक दिन मे एक-एक पहर तक प्रदक्षिणारूप से करते रहते हैं। अर्थात् रात व दिन बराबर पूजा करते रहते है। कोई भेद भाव नही है।।१२६०।।

अक्कनतगत्तु पजं मंदर तालयत्तुट् ।
पुक्कु चारणरिन् मिक्का रिरैपोट्रि शैपर् ।।
तिक्कट्टि लिरै वन् पादं शेरिंदुलगांति देवर् ।
तक्क वच्चिर पै येल्लाम् तान् शिदित्ति रुप्प रंड्रे ।।१२६१।।

अर्थ—कार्तिक, फाल्गुण व आषाढ इन तीन माह के शुक्लपक्ष मे पूजन करके जम्बूद्वीप का एक मेरू, धातकी खड के दो मेरू तथा पुष्करार्द्ध द्वीप के दो मेरू इस प्रकार पाच मेरू के अकृत्रिम चैत्यालयो मे रहने वाली प्रतिमाओ के सम्यक्त्व तथा चारण ऋद्धि को प्राप्त हुए मुनिगण दर्शन करते हैं। ब्रह्मलोक के अत मे रहने वाले ब्रह्मऋषि लौकातिक देव भगवान के चरण कमलो का ध्यान वही से करते है ।।१२६१।।

नान विदिमुदल विदिगळरिंदु मजनांगत् ।
तानमवै येदि मंजनागं मवै वांगि ।।
वानवर् कन् मणिक्कुडत्तु नदैयनुं वावि ।
पानदनै मुगंदु मुगं पदुम मलर् सूटि ।।१२६२।।

अर्थ—जिनेद्र भगवान का अभिषेक तथा पूजा करने की विधि को भली भाति जान कर अभिषेक का गधोदक लेकर नंदा गाम की बावडी के पानी को विधि पूर्वक लेकर छान कर कलश भर कर उस पर लाल कमल रख देते है।।१२६२।।

अंजलिनो डिरैव नाल यत्तै वलमाय् ।
वंदवर् कनिड्रिडत्तिन् मणिक्कदवं तिरप्प ।।

वंदमो नन्नरी विरैवन् ट्रिरुवुरुवम् कानार् ।
वदेळुंद वानदत्तिन् मयांगि मिगत्तुदित्तार् ॥१२९३॥

अर्थ—श्रद्धापूर्वक उस मदिर के दर्शन करने जाते समय प्रदक्षिणा देते हुए मदिर के किवाड अपने आप खुल जाते है। उस समय वे भगवान के गर्भगृह मे जाकर उनका रूप देख कर भक्ति से स्तुति करते है ॥१२९३॥

अनंतवरि वालनंत वीर्यनु मानाय् ।
अनंद देरिशि अनंद विब मुडै योयै ॥
मनं शेयलिन् वनंगिनवर् पनिंदुलग मेत्त ।
निनंद पडि यैदि विनै नीतुयर्व नड्रे ॥१२९४॥

अर्थ—वे देव इस प्रकार स्तुति करते है कि हे भगवन्! आप अनंत ज्ञानो से युक्त हैं। अनत दर्शन, अनंत सुख को प्राप्त हुए आप को मन, वचन. काय से नमस्कार करने वाले को उसकी मन की जो भी इच्छा होती है उसे पूर्ण करते है, और आप की भक्ति करने वाले को क्रम से तपश्चरण करके आगे जाकर मोक्ष की प्राप्ति करा देते हैं ॥१२९४॥

येंड्रु निंड्रु तुदित्तिरैव नाल येत्तिनुळ्ळा ।
लड्रु शेंड्रु पुक्कमर् रासरवर् तांगळ् ॥
वैड्रवर् तमिरै वन् ट्रिरुवुरुवदनुक्केर्प ।
निंड्रवर्गळ् पैद शिरप्पेवर्कु निनै परिदे ॥१२९५॥

अर्थ—इस प्रकार स्तुति करते हुए देवेंद्रो ने भगवान के मदिर मे प्रवेश कर जिनेंद्र भगवान का पचामृत अभिषेक प्रारभ किया ॥१२९५॥

तोळ्ग रायिर् तळुत्तिनर् मणिक्कुडं सोदमन् मुदलानोर् ।
वीळुं मेरुविन् नरुविन् वीळ्द नर् वेंड्र वरतम्मेनि ॥
यून्नि यूळि दोरायत्ति विनै यवैतोर्थ मूवुलत्तोर् ।
ताळु मप्पयर् तांडग मायिर् मुगत्तुडन् पडित्तारे ॥१२९६॥

अर्थ—सौधर्म इन्द्र आदि देव अपने शरीर मे विक्रिया के वल से एक हजार आठ भुजाए निर्माण कर उनमे रत्न कलशो को लेकर जिनेंद्र भगवान का अभिषेक करने लगे। उस अभिषेक को देखने वाले भव्य पुरुषो को ऐसा प्रतीत होता था, मानो मेरू पर्वत से कई नदियो का प्रवाह नीचे गिर रहा हो। वहा के देवो ने एक हजार मुख वना कर सहस्त्र जिह्वाओ से भगवान की स्तुति की। स्तुति करने से उनके पापरूपी रज धुल गई ॥१२९६॥

कनग ळायिर् मुडैयव चक्करन् घातियै कडिदोर् तम् ।
पन्वला मुडनिरुंद वप्पडिमत्तै पलमुरै पारतारा ॥
वनगै या ट्रेळु दिरैवन् ट्रन् चरणत्तै वाळ् तोडु मरु चित्तान् ।
पेगळिर् पिरप्पिल् लविदिराणि यिप्येरुन् शिरप्पुडन् शैदाळ् ॥१२९७॥

अर्थ—देवेद्र अपने एक हजार नेत्रो को वनाकर भगवान को देखता हुआ भी तृप्त नही हुआ, और वार २ साष्टाग नमस्कार किया । तत्पश्चात् अष्ट द्रव्य से भगवान की पूजा अर्चा की । उनकी शची इन्द्राणी पुन गर्भ मे न आने के लिये स्त्री लिङ्ग छेदकर मोक्ष जाने की अभि ताषा वाली ने अपने इन्द्र सहित भक्तिभाव से पूजा करी ॥१२९७॥

गंदमं कडि मालयुं शुन्नमुं कारगिलिडु दूप ।
नंदइन् दलवारिम् दीपमु नल पल सरुवालु ॥
मद मिल्ल नल्लु वगैइन् नडपल तोडंगि निङ्रुचित्तार् ।
चंदिरादि कोळ् मुद्देवरु मिंदिरर् सोदमन् मोदलानोर् ॥१२९८॥

अर्थ—तत्पश्चात् भवनवासी, व्यतरदेव तथा ज्योतिषी देव, सौधर्म इन्द्र आदि कल्पवासी देव सभी ने मिलकर भक्ति पूर्वक अद्भुत नृत्य किया । तदनतर सुगध, चदन, धूप तथा पुष्पो से नदा नामकी वावडी के जल से, नैवेद्य से, दीप से भगवान की पूजा की ॥१२९८॥

मट्र विंदिरर् तम्मोडुं पडिंदिरर् मै मैं कन् मुम्मै कन् ।
नुट्र नर् शिरप्पुळै कलं तांगिनर् देवियर् तम्मोडु ॥
पेट्रियार् पिरप्परुक्कु नचिरप्पिनै शैदु चक्कंर पिन्नै ।
कुट्र मिल्ल नल्लरि वुडै इरैवन् ट्रन् गुणत्तुदि सोल लुट्रान् ॥१२९९॥

अर्थ—इन्द्र और प्रतिइन्द्रो ने इन कार्यों मे भाग लेने के लिये मन, वचन, काय से अपनी २ पूजा योग्य वस्तुओ को थाली मे सजाकर अपनी २ देवाङ्गनाओ के साथ वहां आये और सौधर्म इन्द्र ने ससार का नाश करने वाली नदीश्वर की पूजा करने के पश्चात् स्तुति प्रारभ की ॥१२९९॥

अरुग नी पूसक्करुग नाय् ।
पेरियै यायि नै पेन्नसै इन्मया ॥
लोरुव नायिनै योप्प व रिन्मै यार् ।
ररुव मायिनै तोट्र मदिन् मयार् ॥१३००॥

अर्थ—भव्यजीवो के द्वारा पूजा करने योग्य देव आप ही है । इसलिए आप अर्हत पद को प्राप्त हुए है । आपके स्त्रियों की इच्छा न होने के कारण आपने महान पद को प्राप्त

किया है। आपके समान अन्य और कोई देव न होने के कारण आप ही वीतरागी हैं। जन्म मरण रहित होने से आप का नाम अभव है ॥१३००॥

येरियुं पोल्वै नि येन्विनै काळिद ।
मुरुग सुट्टुइर् तूपत्तै शैंदलाल् ॥
तरुवु नीळलुं पोल्वै नी सार्‌द वर् ।
पेरिय तुंब पिरप्पिनै नीतलाल् ॥१३०१॥

अर्थ—अष्ट कर्मो को ध्यानाग्नि से नष्ट कर आत्मा को परिशुद्ध कर लेने कारण आप शुद्ध सोने के समान है। आपके चरणो मे जो भव्य जीव आते है उनको, जैसे पथिकजनो को छाया सुख पहुँचाती है उसी प्रकार ससार के दु खो से शाति मिलती है ॥१३०१॥

अरिवनी यरिया पोरुळिन्मै यार् ।
मुरै यु नोइलै मुट्र् वुणर्चि यार् ॥
करुवु नी इलै कायव दोड्रिन् मै यार् ।
इरैव नी युलगि यावु मिरैज लाल् ॥१३०२॥

अर्थ—केवलज्ञानी होने के कारण ऐसी कोई वस्तु शेष नही है जिसको आप न जानते हो। इसलिये आप ही सर्वज्ञ हो। जगत मे रहने वाली चराचर वस्तुओ के जानने मे आप को तनिक भी व्यवधान नही है, तथा क्रोध न होने के कारण आप मे राग द्वेष नहीं है। इसलिये तीन लोक के नमस्कार करने योग्य आप ही स्वामी हो। इस सबध मे एक प्राचीन ताड पत्र पुस्तक मे इस प्रकार स्तुति का उल्लेख है:—

यः पुण्यः पुरुषोत्तमो हरिहरः शंभुः स्वयभूर्विभु—
र्विष्णुर्जिष्णुमहेश्वरातकमहितः स्थाणुः पुराणोऽच्युतः।
सर्वज्ञः सुगतोऽजितः पशुपतिस्तीर्थंकरः शकरः,
सिद्धो बुद्ध उमापतिर्ज्जिनपतिः पापादपायात्स वः ॥१॥

अर्थ—यो भगवान् पुण्य. शुभस्वभावो वा धर्मस्वरूपो वा। भवतीति सर्वत्र क्रियाध्याहारः। पुरुषोत्तमः त्रिलोकोदरवर्तिना सर्वेषाम् पुरुषाणाम् मध्ये अस्यैव श्रेष्ठत्वात्पुरुषोत्तम.। हरिहर. हरिश्चासौ हरश्चेति हरिहर । हरति स्वीकरोति क्षायिकसम्यक्त्वादि-गुणानिति हरिः। हरत्यपाकरोति स्वस्य परेषामप्यधमिति हर । प्रत्ययभेदादर्थभेद इति वचनात्। प्रहारप्रहरादिवत् । एकधातुसमुत्पन्नयोरपि हरिहरशब्दयोरर्थभेद इति प्रतीयत एव। शभु, शमभ्युदयनि.श्रेयसलक्षण यस्मात् भवतीति शम्भुः। स्वयभूः स्वयमेव परोपदशेमन्तरेण मोक्षमार्गमनुतिष्ठन्ननंतचतुष्टयाढयोभवतीति स्वयम्भूः। विभुः विश्वव्यापी इत्यर्थ। विष्णु केवलज्ञानेन विश्वं वेष्टिमाप्नोति इति विष्णुः। जिष्णुमहेश्वरातकमहित.। जिष्णुश्च महेश्वरश्च जिष्णुमहेश्वरौ, तयोरन्तकाभ्या महितः, जिष्णुमहेश्वरान्तकर्महित । प्रकटीकृतो

विद्वद्भिरिति जिष्णुमहेश्वरातकमहित.। स्थाणुः परमपदे तिष्ठतीति स्थाणु । आप्त-सतानापि अक्षपानोदिकाले प्रवृत्तत्वात् पुराण.। सर्वेषामपि पुरुषाणा पूर्व. इत्यर्थ । अच्युतः ज्ञानादिस्वरूपात् कदापि न च्युतः इत्यच्युत। सर्वज्ञः गुणपर्यायात्मकान् जीवपुद्गलधर्माधर्मकाश कालाख्यान् सर्वानपि पदार्थान् युगपत् जानातीति सर्वज्ञः। तदुक्तः- "यः सर्वाणि चराचराणि विविध-द्रव्याणि तेषा गुणान्, पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वथा। जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते। सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नम"। इति। सुगतः सुष्ठुगत'। सुशब्दस्य शोभन-वाचित्वात् सुगत। अजितः सांख्य-सौगत-चार्वाक-योग-मीमासकादि-प्रवादि-परिकल्पित-युक्तिभिः जेतुमशक्यत्वादजित'। पशपतिः पशु मदबुद्धीनपि धर्मोपदेशेन पातिति पशुपति। तीर्थंकर-तीर्थ-प्रवचन-भव्यजन-पुण्य-प्रेरणा-समुत्पन्न-कण्ठताल्वौष्ठ घट-व्यापार-रहितत्वात् तदभीष्ट-वस्तुकथननि शेष-भाषात्मक-मधुरगभीर-दिव्यभाषा करोति समुत्पादयति इति तीर्थकर। शकर शमभ्युदयनि श्रेयसरूप सुख भव्यजनाना हितोपदेशेन करोतीति शकर। सिद्धः सकल-कर्म-मलरहितत्वान्निष्पन्न सिद्ध.। बुद्ध बुध्यते येन स्वस्मिन् स्वरूप जानातीति बुद्धः। उमापति· कीर्तिवल्लभो लक्ष्मीपतिश्चेति उमापति'। जिनपति, अनेक-भवगहन-विपम-व्यसन्नापन्नहेतून् कर्मठकर्मारातीन् जयतीति जिन। अप्रमत्तादिगुणस्थानवर्तिन एकदेश-जिनास्तेषा पति स एवविध जिनपति। समवसरणपरिवेष्टित त्रैलोकेश्वर-निरतिशय विभूत्यष्ट-महा-प्रातिहार्य-चतुस्त्रिंशदतिशयसमन्वितो द्वादशगणपरिवेष्टित त्रैलोक्येश्वर-मुकुट-तटघटित-मणि-मरीचिपुञ्जरजितारुणचरणारविंदो भगवदर्हत्परमेश्वरो वः युष्मान् अपायात् भवजापाप परिहृत्य पापात् रक्षतु इत्यर्थ.।

सद्धर्मरक्षितो राजा राजा सद्धर्मरक्षित। परस्पर-निमित्तत्व वनपालोवन यथा।

अर्थ—हे भगवन्! आप पुण्य अर्थात् शुभस्वरूप वा धर्म स्वरूप हो। तीन लोक के मध्यवर्ती समस्त पुरुषो मे तुम्हारे ही श्रेष्ठ होने से तुम पुरुषोत्तम हो। हे भगवन्! तुम ही हरि हो और हर हो। आपने क्षायिक सम्यक्त्वादि गुण स्वीकार किये हैं इसलिये आपका नाम हरि सार्थक है। आपने सब प्राणियो के पापो को दूर किया है इसलिये आप हर हो। यहा हृञ् हरणे धातु एक ही है परन्तु घञ् और घ प्रत्यय के भेद से अर्थ भेद है। जैसे प्रहार और प्रहर शब्दो मे अर्थभेद है। प्रहार का अर्थ है चोट। प्रहर का अर्थ पहर या तीन घटा समय। इसी तरह एक धातु होने पर भी हरि और हर दोनो शब्दो मे अर्थभेद प्रतीत होता ही है। आप ही शभू हो। आप से सुख प्राप्त होता है। अभ्युदय नि·श्रेयस दोनो से सुख मिलते हैं। हे भगवन्! आप ही स्वयभू हो। स्वय ही परोपदेश के बिना मोक्ष मार्ग का अनुष्ठान करते हुए अनत चतुष्टय से परिपूर्ण होते हैं, इसलिये आप स्वयभू हैं। विभु अर्थात् विश्वव्यापी भी आप है। आपने केवलज्ञान से सब विश्व को वेष्टन कर लिया है, इसलिये आप ही सच्चे विष्णु हो। जो वेष्टन करे वह विष्णु है। जिष्णुमहेश्वरातकमहित.। जिष्णु अर्थात् जपनशील देव और महेश्वर अर्थात् महादेव, इन दोनो के अन्तको से महित पूजित आप ही हो—ऐसा विद्वानो ने प्रकट किया है। हे भगवन्! आप ही स्थाणु हो, क्योंकि आप परमपद मे स्थित हो, इसलिये आपको स्थाणु शब्द से कहा है। परपरा को प्राप्त अनादि काल मे अविनाशी होने से आप ही पुराण हो, अनादि हो, सर्व पुरुषो मे प्रथम हो यह अर्थ हुआ। आप ही अच्युत हो, अपने ज्ञानादि स्वरूप से कभी च्युत नही हुए और न होवेगो, इसलिये ही आप सच्चे अच्युत हो। गुण पर्याय स्वरूप जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश काल, नाम के

सभी पदार्थो को एक साथ जानते हो, इसलिये आप सर्वज्ञ हो। सो ही कहते है। जो सभी चर अचर नाना प्रकार सब द्रव्यो को और उनके सब गुणो को और भूतकाल, भावीकाल, वर्तमान काल की सव प्रकार सब पर्यायो को सदा एक साथ प्रतिक्षण जानते हैं, इसलिये उन्हे सर्वज्ञ कहते है। ऐसे सर्वज्ञ जिनेश्वर महावीर को नमस्कार हो। इति। आप सुगत हो। क्योकि शोभन रूप से आप सब के सव प्रकार गत ज्ञाता हो। आप ही अजित हो। साख्य, सौगत, चार्वाक्, योग, मीमांसक आदि परवादीगणो से परिकल्पित युक्तियो द्वारा अजेय हो। आप ही पशुपति हो। पशु अर्थात् मद बुद्धि जनो को भी धर्मोपदेश से रक्षा करते हो, अत पशुपति हो। आप ही तीर्थंकर हो। तीर्थ अर्थात् प्रवचन को भव्यजनो की पुण्य प्रेरणा से समुत्पन्न कण्ठ तालु ओष्ठ जिह्वा घट आदि के व्यापार से रहित होने से भव्य जनो को अभीष्ट वस्तु का कथन करने से सपूर्ण भाषात्मक मधुर गंभीर दिव्य भाषा रूप से उत्पन्न करते हैं। अत आप तीर्थंकर को नमस्कार हो। आप शंकर हो। शं अर्थात् अभ्युदय नि. श्रेयस को करने वाले हो। सुख को भव्यजनो को हितोपदेश से करते हो। इसलिये शकर हो। सकल कर्म मलसे रहित होने से आप वने हो। शुद्ध हुए हो, अत· सिद्ध हो। आप ही बुद्ध हो; अपने मे अपने स्वरूप को जिन्होने जिससे जान लिया है ऐसे ज्ञान वाले आप ही बुद्ध हो। उमापति भी आप ही हो। उमा अर्थात् कीर्ति के वल्लभ पति तथा उमा अर्थात् लक्ष्मी के पति हो। अत· उमापति आप ही हो। जिनपति भी आप ही हो। अनेक भव वन मे विषम दुखों मे पटकने वाले कारणो को मिथ्यात्वादि को कर्मठ दृढ कर्म वैरियो को जीतते हैं सौ जिन हैं। अप्रमत्तादि या असंयत आदि गुणस्थानवर्ती श्रावक साधु एक देश जिन है। उनके पति आप ही हो। इसलिये जिनपति हो। ऐसे समवसरण से परिवेष्टित, त्रैलोक्य के ईश्वर, जिससे वढकर अन्य नही, ऐसा निरतिशयविभूतिरूप अष्ट महाप्रातिहार्यो से तथा चौतीस अतिशयो से सहित. अनत चतुष्टय मंडित, द्वादशगणपरिवोष्टित, त्रैलोक्यनाथ, देवेंद्रादिक के मुकटतट मे लगी मणियो के किरणसमूह से रगे गये है लाल चरण कमल जिनके ऐसे भगवान् अर्हत परमेश्वर तुम सव को भव मे होनेवाले दु खो से हटाकर रक्षा करे।

नीति का श्लोक है कि जो अच्छे राजा होते हैं वे सद्धर्म की रक्षा करते है। तथा सद्धर्म भी उस राजा की रक्षा करता है। ऐसा परस्पर मे निमित्त है। जैसे माली वगीचे की रक्षा करता है तो वगीचा भी माली की रक्षा करता है, इसी प्रकार सर्वत्र परस्पर निमित्त नैमित्तिक संवध है ॥१३०२॥

मुळ्दु नी मुळ्दुवकु मिरंव नी।
मुळ्दु तन्वडिविन् मुळ्दागि नी ॥
मुळ्दुं कडुनर्दा इंव मुट्रुनी।
मुळ्दुं विरित्तु नान्मुग नागिनी ॥१३०३॥

अर्थ—इस लोक में चराचर वस्तु को देखने की शक्ति आप मे ही है। आपका स्वरूप सर्वव्यापी होकर अनंत ज्ञान से सर्व पदार्थ को देखने वाले तथा जानने वाले हैं। सम्पूर्ण सुखको प्राप्त हुए आप ही हो। जीवादि सात पदार्थों को दिव्यध्वनि के द्वारा चारों समवसरण में कहकर चतुर्मुख को प्राप्त हुए आप ही है ॥१३०३॥

वुन्मै तानिन्मै युन्मै इन्मयान् ।
तिन्निय तन्नोडवाचियं सेप्पिडिर् ।।
पण्णु भंगंगळेळ् पुरुट्क्किल्लये ।
लुन्मैदान् पोरुट किल्लै येंड्रोदि नाय् ।।१३०४।।

अर्थ—स्याद् अस्ति, स्याद्नास्ति, स्याद् अस्ति नास्ति, स्याद् अवक्तव्य, स्याद् अस्ति अवक्तव्य, स्याद् नास्ति अवक्तव्य, स्याद् अस्ति नास्ति अवक्तव्य इस प्रकार सप्तभग है। इन सातो के बिना द्रव्यादि वस्तु की सिद्धि नही हो सकती । ऐसे सप्तभगी नय के व्याख्यान करने वाले आप ही हैं।।१३०४।।

सुट्र नी यवर्कुं तुंब नीकलार् ।
पट्र नीइलै पट्रवै तीर्थलान् ।।
सुट्र नीयुनर्दाय् मूवुलगत्तिन् ।
पेट्रि तन्नै नी यावर्कुम् पेसलाल् ।।१३०५।।

अर्थ—आपके चरण मे आए हुए भव्यजीवो का दुख नाश करने के लिए आप बधु के समान हैं। मोह से उत्पन्न हुए रागद्वेष आदि परीषहो का नाश करने वाले चराचर वस्तु तथा सम्पूर्ण पदार्थो के गणधरादि के समान आप हितोपदेशी है ।।१३०५।।

उरुव नीयग दिक्क लिरुत्त लाल् ।
डरुव नी युडंवोडु सेन्नाळेलाम् ।।
मरुवि वान वर वाळ्ति पिन्वाट्रि नार् ।
पोरुविला पुण्णियत्तोडुं पोइ नार् ।।१३०६।।

अर्थ—सदैव के लिए जन्म मरण से रहित पुनर्जन्म न होने के कारण आप अजन्मा है। अरूपी है। मोक्ष प्राप्त करने वाले हैं। आप द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का नाश करने के कारण लौकातिक तथा चतुर्णिकायदेव आकर अकृत्रिम चैत्यालयो मे आकर आपकी स्तुति करके पुण्य-बध कर लेते है।।१३०६।।

इमैय वर पोल विच्चिरप्पं शैदव ।
रिमै यवरुलगत्तै यैदि इंगुवन् ।।
दिमै यवर् शेयुं शिरप्पेडु मैदि पो ।
इमै यवर् दोळच्चित्ति पगत्तिरुपरे ।।१३०७।।

अर्थ—जैसे नदीश्वर द्वीप की देवलोग पूजा करते है, उसी पूजा को मनुष्य लोग यहा पूजा करने से देवलोक को प्राप्त होते हैं। वहा से चयकर कर्मभूमि मे आकर अच्छे कुल

मे जन्म लेकर राजा महाराजा तथा तीर्थंकर तक होते है, और क्रम से मोक्ष को जाते है ।
॥१३०७॥

येन्वगै वियंदरर् किड मिदागवुं ।
पन्नवर् पनित्तनर् पल्ल मायुग ॥
मुन्निलतेंगनु मुरंव रोकमुं ।
पण्गुरु शिलैगळ् पत्तागु मेवंवे ॥१३०८॥

अर्थ—आठ प्रकार के देव इसी मध्य लोक मे रहने वाले देव हैं, ऐसा भगवान ने कहा, और व्यतर देव का शरीर आठ धनुष प्रमाण होता है ॥१३०८॥

आईरं योजन याळ्द दोंगिय ।
ताईर मिलाद नूराइरं पुगै ॥
यायिरं पत्तडि यगल मायदु ।
मेय नाल् वनत्तदु मेरु वेंबवे ॥१३०९॥

अर्थ—पृथ्वी के नीचे महामेरु पर्वत की एक हजार योजन पीठ है—नीव है । इस मेरू पर्वत की जड की चौडाई दस हजार नव्वे योजन है और क्रम से घटते घटते भूमि के ऊपर दस हजार योजन विस्तार है और भूमि पर भद्रशाल वन है । इससे ऊपर दस हजार योजन की चौडाई पर नंदन वन है । जिनके ऊपर सौमनस और पाडुंक वन है । ऐसे चार वन है ।
॥१३०९॥

तुगनिल मीदु पत्तिलाद वेण्णूरु नर् ।
पुगै मिशै नूट्रोरु पत्तु वान पुगै ॥
इगळ्विला जोतिड रोलकै यिट्रल्लै ।
यगनिलत्ति यंगु वर् पुरत्तु निर्परे ॥१३१०॥

अर्थ—चित्राभूमि के ऊपर सात सौ नव्वे योजन के ऊपर एक सौ दस योजन तक ज्योतिषी देव रहते है । मध्यलोक के अढाई द्वीप मे ज्योतिषी देव गमन करते हैं । मानुषोत्तर पर्वत के वाह्य प्रदेश मे ज्योतिषी देव स्थिर हैं ॥१३१०॥

इरवि पत्तिन् मिसै येन्वदिन् मिशै ।
येरविदं पगैवना मीन्ग नान् मिशै ॥
युरै शैद पुदर् कुयर् नानगु मूंड्रिन् मेल ।
विरगि नाल् वेळि्ळ याळं शोव्वाय शनि ॥१३११॥

अर्थ—पहले कहा हुआ सात सौ नव्वे योजन पर तारागण हैं । उससे ऊपर दस योजन जाकर सूर्य का विमान है । उससे अस्सी योजन जाकर चद्रमा का विमान है । चंद्रमा

से अर्थात् आठ सौ अस्सी योजन से चार योजन ऊपर जाकर सत्ताईस नक्षत्र हैं। उससे चार योजन ऊपर जाकर बुध का विमान है। उससे तीन योजन ऊपर जाकर शुक्र का विमान है। उससे तीन योजन ऊपर जाकर बृहस्पति का विमान है। उससे तीन योजन ऊपर मङ्गल (अगार) का विमान है। उससे तीन योजन ऊपर जाकर शनि का विमान है। इस प्रकार एक सौ दस योजन मे अर्थात् इस भूमि से नौ सौ योजन तक ज्योतिषी देवो का निवास है। इसी को ज्योतिर्लोक कहते हैं। यह सब एक राजू मे फैले हुए हैं ॥१३११॥

कीळवान् तारगै केट्किन् मेलुमा ।
मेळ्वान् शिलै युयर् देग पल्लमास् ॥
वाळ् नाळ् जोतिडर् कंड्रि मूवरुं ।
कीळ वायुग मीरारंग ळंजरे ॥१३१२॥
इरंडु नान्गु मुन्नान्गुमे ळारु मर् ।
ट्रिरंडिनो देळ्वदामिडु वरुक्कंनु ॥
तिरंड तूट्र् मुप्पत्तिरंडुमुं शेलु ।
मिरंडि रंडरै सागरत्तोविने ॥१३१३॥

अर्थ—तारागण, सूर्य और चद्रमा के नीचे और ऊपर रहते हैं। ज्योतिष देवो की आयु एक पल्य होती है। भवनवासी और व्यतर देवो की जघन्य आयु दस हजार वर्ष की होती है। मध्यम भूमि के ढाई द्वीप के जम्बूद्वीप मे चद्र और सूर्य दो-दो होते हैं। महालवण समुद्र मे चार चद्रमा और चार सूर्य होते है। धातकी खड मे बारह चद्रमा और बारह सूर्य रहते है। कलोदधि समुद्र मे बयालीस चद्रमा और बयालीस सूर्य रहते हैं। पुष्करार्द्ध द्वीप मे बहत्तर चद्रमा और एक सौ बत्तीस सूर्य अढाई द्वीप मे गमन करते हैं ॥१३१२॥१३१३॥

※ देवलोक का वर्णन ※

तुरक्कत्ति नियर कै सोल्लिर् शोल्लय पडलदोरु ।
मिरप्प विदिरगं शेनि बंदम् किन्नगमुं मागुं ॥
तिरत्तुळि शेणि वंद मिरुडु नाट्रिशयुं शेंड्र ।
वरक्कदिराळि वेंद नरुवदो डिरडेन् ड्राने ॥१३१४॥

अर्थ—स्वर्ग लोक के एक एक पटल एक एक इन्द्रक श्रेणी बद्ध विमान आदि के तिरेसठ पटल होते हैं। सौधर्म कल्प मे प्रथम पटल के तिरेसठ तिरेसठ श्रेणीबद्ध विमान है। ॥१३१४॥

सोल्लिय पडलंदोरु मरो वंड्र् सुरुंगि चड्र् ।
नल्लिशै येनुदिशै कट्रिशैदोरु मरो वंड्रागुं ॥

विल्लुमिळ्दिलंगुम् शंबोन् विमाणत्तिन् कननै वेंडिर् ।
सोल्लुदुं केट्क सोदमोशान तोडक्क भाग ॥१३१५॥

अर्थ—सौधर्म कल्प की 'दशाओ मे श्रेणीवद्ध तिरेसठ विमान हैं और ऊपर जाकर एक एक कम होकर अत के अनुत्तर पटल मे एक एक श्रेणीवद्ध विमान है। अति किरणो से युक्त श्रेणीवद्ध रहने वाले विमान सौधर्म कल्प मे रहने वाले श्रेणीबद्ध विमानो की सख्या के विषय मे आगे वर्णन करेगे ॥१३१५॥

इलक्क मिन्नान्गु मेळु नान्गु मुन्नानगु मेट्टु ।
मिलक्क नान्गिरंडिर् कागु मेलिरंडि रंडिर् किव्वा ॥
रिरक्कत्तिल् पादि येन्नंजाइर मारु मागि ।
विलक्किला विमान नान्गु नूरु मुन्नूरु सामे ॥१३१६॥
नूट्रि नोड्रुरु पत्तोंड्र मेटिम तिरयत्तिन्क ।
नूट्रि नूडेळ् मागु मध्यम मुम्मई ट्रोन् ॥
नूट्रि नोडोंड्र मागमुपरिम मुम्मइन् कन् ।
नाट्रवु मोंबत्तैदा मनुदिशानुत्तरत्ते ॥१३१७॥

अर्थ—सौधर्म कल्प मे वत्तीस लाख विमान है। ईशान कल्प में अठाईस लक्ष विमान हैं। सनत्कुमार कल्प मे वारह लाख विमान हैं। महेद्र कल्प मे आठ लाख विमान है। व्रह्म व्रह्मोत्तर दोनो कल्पो मे दो दो लाख अर्थात् चार लाख विमान है। लातव कापिष्ठ कल्प मे पचास हजार विमान है। शुक्र महा शुक्र मे चालीस हजार विमान है। शतार सहस्रार कल्प मे छह हजार विमान है। आनत प्राणत कल्प में चारसौ विमान है। आरण अच्युत कल्य मे तीन सौ विमान है। नीचे के तीन ग्रैवेयिक मे एक सौ ग्यारह विमान हैं। मध्यम के तीन ग्रैवेयिक मे एक सौ नौ विमान हैं। ऊपर के तीन ग्रैवेयिक मे इक्यासी विमान है। नवानुदिश कल्प में नौ विमान है। पचाणुत्तर कल्प मे पाच विमान है ॥१३१६।१३१७॥

इंदिरर् सामानिकर तार्यत्तिगर पारिडदर् ।
कंद पालर कापरानी कर कीनर् किल् विळियर् ॥
विंदिरादि गळिर् पत्तु मरसर् गळ् कुरव रंड्रि ।
मंदिरर् शूळ्दि शूळं दिरुपर कांजुगि यादि पोल्वार्॥१३१८॥

अर्थ—इन्द्रसामानिक देव, त्रायस्त्रिश देव, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, दण्डनायक, अनीक, प्रकीर्णक, किल्विषिक देव, आभियोग्य इस प्रकार दस जातिया प्रत्येक स्वर्ग मे होती हैं, और जिस प्रकार कर्मभूमि मे राजा मत्री आदि होते है उसी प्रकार वहां देवो मे भी राजा मत्री आदि होते है ॥१३१८॥

नडुव नेन् पुगै कोळुपाय नंदिईचिरगोट् तीट्रिर् ।
कुडै मलरं दिरुंददे पोल् डिरंडरै तीवोडोत्तु ।।
कडैला वरिवु काक्षि युडैय वर् कळुवि निड्र ।
विडमदु वुलगत्तुच्चि येतरुं तिरत्त दामे ।।१३१६।।

अर्थ—अनतज्ञान, अनतदर्शन आदि को प्राप्त हुए सिद्धपरमेष्ठी के सिद्धक्षेत्र तीन लोक के शिखर के ऊपर जो सिद्धशिला है, वह आठ योजन प्रमाण मोटाई मे छत्राकार सिद्ध-शिला है। उसके उपर सिद्धक्षेत्र मे सिद्ध भगवान विराजमान हैं। वह सिद्धशिला गोल पैंतालीस लाख योजन चौडी है। ऐसे सिद्ध भगवान भव्य जीवो के द्वारा स्तुति करने योग्य हैं ।।१३१६।।

मतिश्रुतमवदि मांड मनपच्चं केवलमाम् ।
विदियमां पमाणं वेंडिन् विकपँग ळियावु मागुम् ।।
मदिसुदं परोक मागुं मट्र पच्चक्क मागुं ।
विदिइवै विगुलन् तूलं सकल निच्चयमु मामे ।।१३२०।।

अर्थ—सम्यक्ज्ञान मे मतिज्ञान, श्रतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान इस प्रकार ज्ञान पाच प्रकार के हैं। इन एक एक का विस्तार से विवेचन करना मेरे द्वारा अशक्य है। ग्रथ विस्तार के भय से मैंने यहा विवेचन नही किया है, अन्य ग्रंथ से जान लेवे। क्योकि ये पाचो ज्ञान अनत विकल्पो से युक्त है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान परोक्ष हैं। अवधिज्ञान एक देश प्रत्यक्ष है तथा मन:पर्ययज्ञान स्थूल व सूक्ष्म है। केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है। १३२०।।

मदिइनुं करुत्तु कन् कूडिरंडु माम् विशेडं पत्ताम् ।
विदियदु कन् कूडांगु विचारनै नीकं तेट्रं ।।
मति सुरति शेन्ना सिंदै मट्रिवै परोक्क मांगु ।
सुदमदन् मुन्वु सेल्लु मदियुनर् परोक्क मामे ।।१३२१।।

अर्थ—मतिज्ञान के अर्थावग्रह व व्यंजनावग्रह दो भेद हैं। यह विशेष रूप से दस प्रकार का होता है। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन ये छह भेद हैं। इन से एक एक उत्पन्न होने वाले छह अर्थावग्रह हैं। चक्षु और मन के व्यञ्जनावग्रह नही हैं। अर्थात् चार भेद है। ये दोनो अर्थावग्रह के छह और व्यजनावग्रह के चार इस प्रकार दोनो मिलाकर दस भेद है। अर्थावग्रह के ऊपर ईहा, आवाय, धारणा ये तीन हैं। स्पर्शनादि इन्द्रियो के भेद भिन्न भिन्न प्रकार से होते हैं। ये सभी मिलकर अठाईस होते हैं। यह वहु, वहुविध, एक एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, नि.सृत, अनि सृत, उक्त, अनुक्त, ध्रुव, अध्रुव ये वारह पदार्थ हैं। इनको गुणा करने से तीन सौ छत्तीस भेद होते हैं। यह मति, स्मृति, सज्ञा, चिता, अभिनिवोध इन पर्यायो को धारण करते हुए परोक्ष है, मतिज्ञान पूर्वक श्रुतज्ञान परोक्ष है ।।१३२१।।

वैपु नय नळव वाईल् मार्कनै गुणजीवन् गळ् ।
सेप्पिय सुदत्तिय शेंड्रु विकर्पमाम् सदादि योड्रु ।।
मैप्पड उनर्वै तोट्रिन् विनै गळै केडुक्कु मेंड्रु ।
पैपोरु पमाणमाग पुण्णिय किळवन् सोन्नान् ।।१३२२।।

अर्थ—नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव ऐसे चार प्रकार होकर उत्पन्न होने वाले निक्षेप, द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक नयो से उत्पन्न होने वाले, नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत ऐसे सात नयो के द्वारा उत्पन्न होने वाले, अध्यात्मभाषी, उपचरित, अनुपचरित, असद्भूत, सद्भूत, व्यवहार, शुद्धनय, अशुद्धनय, इन भेदो से छह प्रकार है । द्रव्यप्रमाण, भावप्रमाण, प्रत्यक्ष प्रमाण, परोक्ष प्रमाण, लौकिक प्रमाण, परमार्थ प्रमाण होकर यह निक्षेप नय प्रमाण से गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व सम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहार ये चौदहमार्गणा के स्थान हैं । और मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, असंयत, देशसयत, प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृतिकरण, सूक्ष्मसापराय उपशात कषाय, क्षीणमोह, सयोगकेवली, अयोगकेवली ऐसे ये चौदह गुणस्थान हैं। सूक्ष्मपर्याप्ति, सूक्ष्म अपर्याप्ति, बादर अपर्याप्ति, बादर एकद्रियपर्याप्ति, द्वीद्रिय अपर्याप्ति पर्याप्ति, तीद्रिय पर्याप्ति अपर्याप्ति, चौइन्द्रिपर्याप्ति अपर्याप्ति, असंज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्ति अपर्याप्ति, सज्ञीपर्याप्ति, इस प्रकार चौदह जीव समास है । यह सभी अर्हंत भगवान की दिव्यध्वनि द्वारा निकले हुए शब्दो को भाव शुद्धि से परिपूर्ण गणधर देवो के द्वारा द्रव्यागम नाम के शास्त्र के बारह अग और चौदह पूर्व मे द्रव्यागम की रचना को गई थी । सत्, सख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अतर, भाव, अल्प, वहुत्व ऐसे ये भाव श्रुत कर्मोपशम काललब्धि के अनुसार उत्पन्न हो जाय तो कर्मो का नाश होकर परमात्म पद को प्राप्त हो जाय—ऐसा गणधर देवो ने कहा है।१३२२।

अंग पूव्वादि नूल्गळागमं पमाण मागुं ।
शिंगिय मदि सुदंगळ् विभंगमुं तीय ज्ञान ।
मंगवे मूडन् सदेयं विपरीत मागुं ।
तंगिय सन्निविकप्पार् ट्रानेला मूढ मामे ।।१३२३।।

अर्थ—अगपूर्वादि द्वादशाग चतुर्दश पूर्व को गणधर ग्रथरूप मे रचना किया हुआ श्रुतज्ञान ग्रथरूप प्रमाणरूप है । कर्म के उदय से इसके विरुद्ध कुमति, कुश्रुत विभग ये तीनो मिथ्यात्व को उत्पन्न करते हैं । यह मिथ्यात्व मूढत्व, विपरीत और सशय को उत्पन्न करने वाले हैं। संज्ञी पचेद्रिय जीव के शरीर को छोड कर शेष तेरह प्रकार के जीव सुमति ज्ञान से युक्त हैं ।।१३२३।।

अरु तत्तिर् कामत्तिन् कनौ विरंडगत्तुं सेंड्रु ।
विरुत्तत्तै तेळिविलामै विशदमामूडमागु ।।
मोरुत्तुळि शेरिद लिड्रि युलावल् संदेग मागुं ।
विरुद्धमा युनर् दल् सोल्लल् विपरीत नयमदामे ।।१३२४।।

अर्थ—पचेद्रिय जीव द्वारा अर्थ और काम भोग मे परिणति करते हुए धर्म मार्ग को न जानते हुए पचेद्रिय विषय मे मग्न रहना यही मिथ्यात्व का कारण है। सच्चे देव, गुरु, शास्त्र मे सशय करना सशय मिथ्यात्व है। भगवान के कहे हुए वचनो मे विपरीतता समझना विपरीत मिथ्यात्व है।।१३२४।।

अराघाति मान्ग ळात रल्लर् नल्लरेंड्रु ।
विरागादि येल्ल मार्ग विकर् पत्तै विडुदलेंड्रु ।।
मुरोगादि योंब लिड्रि वुईर् कोलै दरुम मेड्रुम् ।
वरागादि पिरवि याने वैयत्तु किरैव नेंड्रुम् ।।१३२५।।

अर्थ—राग द्वेष परिणाम से युक्त मनुष्य को देव कहना, पाप कार्य करने वाले मनुष्य को गुणी कहना और वैराग्य भावना से रहित धर्म—मार्ग मानना, सासारिक विकल्पो को नाश करने एव रोग आदि दु खो के परिहार करने मे जीवहिसा आदि को धर्म मानना, जन्म मरण करने वाले जीवो को देव मानना, यह सभी विपरीत मिथ्यात्व है ।।१३२५।।

विकार मिल्लोरुवन् शैगै युलगत्तिल् विकारमेंड्रु ।
मवावोडु मनवि नोगांद वरै मादवगळेंड्रुम् ।।
तगादन यावुं शैय्यवल्लर् तलैव रेंड्रुम् ।
तोगा विरि पोरुळ्ग ळिल्लै सूनिय मल्ल देंड्रुम् ।।१३२६।।

अर्थ—विकार गुण रहित कार्य को विकार ऐसे कहना, रागादि विकार रहित गृहस्थ को महातपस्वी कहना, अति क्रूर हिंसा करने वाले प्राणी को वीर पुरुष कहना जीव को सदा शून्य मानना और जीव कोई द्रव्य ही नही है ऐसा कहना-यह विपरीत मार्ग है। इसको शून्य मत कहते हैं ।।१३२६।।

तन्नै कोंड्रु यिरै योंवल् तक्क नर् करुणै येंड्रुम् ।
पिन्नैता नूनै युन्गै पेरुंदव मावदेंड्रु ।
मुन्निट्राम् कनत्ति यावु मुट्टर केडुमेंड्रोदि ।
पिन्नैत्ता नित्तमुत्ति कुळक्कन पेशलामे ।।१३२७।।

अर्थ—अपने प्राण को नाश करके दूसरे का रक्षण करना-इसी को दया कहना, मास खाने को धर्म कहना, आत्मा क्षण २ मे नाश होकर नया उत्पन्न होना-ऐसा कहना, विना तपश्चरण के आत्मा का कल्याण मानना, यह सब क्षणिकवाद है ।।१३२७।।

अरिविने वीडा मंड्रि याचारत्तागु मंड्रि ।
इरैवनर् कादलाला मिव्विरंडालु मागु ।।

नेरि मुत्ति किल्लै नित्तं मुत्तने जीवनेड्रुम् ।
अरिविन् नंड्रे येंड्रु मळैत्तलाम् पिळैत्तलोदि ॥१३२८॥

अर्थ—केवल दर्शन से ही मोक्ष होना कहना, केवल ज्ञान ही तथा चारित्र से ही मोक्ष होना–ऐसा कहना, भक्ति से मोक्ष होना कहना, इसके अतिरिक्त मोक्ष मार्ग के लिये और कोई मार्ग ही नही है ऐसा कहना तथा जीव हमेशा नित्य ही है–ऐसा कहना, इस प्रकार विवेचन करना मिथ्यामार्ग का पोषक है ॥१३२८॥

इरैव मट्रेन् कोलेट्ट विनै मण्नर् मिगुदर् कॅड्रम् ।
करै कळलरसर् फेटा रुंतव रुरैक लुट्रु ॥
नेरियिना लेट्टुंतत्त निमित्तत्तै निरैय पेट्रु ।
सेरिय मिक्कल्ल दीन मामदु शप्पक्केळ् मिन् ॥१३२९॥

अर्थ—मेरू मदर ने प्रश्न किया कि कर्मरूपी शत्रु के द्वारा आत्म-बधन के लिए कारण कौनसा है ? तो भगवान ने बतलाया कि ज्ञानावरणादि आठ कर्म क्रम से आने वाले अशुद्ध चेतना परिणामो से कर्म आकर आत्मा मे आस्रव करते है। आस्रव कौन २ से है, यह बतलाते हैं ॥१३२९॥

परमनोल् पळित्तल् मायत ळिडैयुरल् पिळैक वोदल् ।
कुरवर् मारादल् सुरेदगं कोंडुळि करत्तल्ट्रितन् ॥
मरुवु तुवर्ग नान्गिन् ज्ञान माचर्यमुट्रु ।
पेरुगिला वरण ज्ञान काक्षि यै पिनिक्कु मिक्के ॥१३३०॥

अर्थ—अठारह दोष रहित ऐसे अर्हंत परमेश्वर के मुखारविंद से निकली हुई दिव्य-ध्वनि के शब्दो को गणधर देव उस दिव्यध्वनि को अ शरूप मे गूथ कर उसको सूत्रबद्ध करते हैं। उस सूत्रबद्ध को अवर्णवाद अर्थात् उस सूत्र की निंदा करना, उसका नाश करना, उसके अन्दर विघ्न उपस्थित करना, उस सूत्र के विरुद्ध अपने मनोकल्पित रचना करके कहना, आचार्य, उपाध्याय सर्वसाधु की निदा करना, भव्य जीवो द्वारा आगमानुसार उपदेश को छुपाना, झूठे शास्त्रो का प्रचार करना, क्रोध, मान, माया, लोभ से सम्यक्त्व रहित होना, यह सभी ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय कर्म के आस्रव के कारण हैं ॥१३३०॥

तन्मुद लुयिरै कोरल् वरुत्तुदल् पडैगळेंदि ।
इन्नुयिर् नडुंग चेर लेरि इड लुरुप्परुत्तर् ॥
विन्मुद ळीद लुळ्ंळ वरुंद वेन् तुयरै शैदल् ।
इन्नवै इडरै ईनु मसाव वेदत्तै वीदुम् ॥१३३१॥

अर्थ—स्वपर जीवो की हिंसा तथा दूसरे जीवो पर उपसर्ग करना, जीवो की शिकार करना, दूसरे के घर को आग लगाना, गज जलाना, आयुध दूसरो को देना, क्रूर कृत्य

करना, दुख देने वाले निंद्य कार्य करना ये सब असातावेदनीय कर्म के बध के कारण है।
॥१३३१॥

उरै शैद गुणंगळिडि करुणयै युळिळट्टेळु ।
मरुविय मनत्तिनगि ळुयिगळिन् वरुत्तमोंबि ॥
तुरु नयत्ताल् वंदेदुं तुंबत्तै तुनिय नोरि ।
पेरिय विबत्तै याकुं सादंदान् पिनिक्कु मिक्के ॥१३३२॥

अर्थ—इस क्रूर परिणाम को त्यागकर समताभाव को धारण कर कारुण्य, प्रशम, अनुकपादि धर्मानुराग से युक्त परिणाम को धारण करना, दुखी जीवो पर अपनी शक्ति अनुसार कृपा कर दुख दूर करना, मिथ्यामार्ग से आने वाले दुखो को तथा उपसर्गों को रोकना। इससे अनत सुख को देने वाले सातावदेनीय कर्म का बध होता है। घातिया कर्मों को नाश किये हुये अर्हंत भगवान तथा उनके आलय को जिन धर्म का मार्ग का यथाथ स्वरूप समझ कर धर्म का ऐसा उपदेश देना जो सभी भव्य जीव समझ सके, यह सभी सातावेदनीय कर्म के बध के कारण है। इसी प्रकार इसके विपरीत कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र मिथ्यात्वी साधु को नमस्कार करना, षट् अनायतनो को मानना ये सभी दर्शन मोहनीय के बध के कारण है।
॥१३३२॥

अरुग नालयंग नूल्ग ळर नेरि तमक्कु माराय् ।
पोरुळ् कडेरादु माराम् पोरु ळुरै तरुगनादि ॥
पेरुमयै पोरादु कुट्रम् पिरंगि नार् तमै इरै जल ।
मरु मिच्चत्त मट्रि नेरिमय कुरुक्कु मिक्के ॥१३३३॥

अर्थ—सम्यक् चरित्र को नाश करना, त्रस और स्थावर जीवो की हिंसा करना, दुष्ट परिणामो से राग द्वेषादि परिणामो को उत्पन्न करना, इनसे चारित्र को नाश करने वाले चारित्र मोहनीय कर्म का बध होता है ॥१३३३॥

ओळ्कत्तै येळित्तल् कायत्तूर्वन् निर्प तम्मै ।
येळित्तिडल् किळइर् सेर्द नीकुद लादि यालुं ॥
वळुक्किला चेट्र मार्व मयक्कमा मै येदालु ।
मोळुक्कत्तै यळिक्कुं मोग मुडन् वंदु पिगिक्कु मिक्के।१३३४।

अर्थ—इस प्रकार अनादि काल से मोह को उत्पन्न करने वाले आठ प्रकार के कर्मो से तथा परिग्रह वाँछा से जीव का वध करना, चोरी करना, असयम मे आनद मानना आदि से अशुभ लेश्या परिणाम होता है। इन परिणामो से बहु आरम्भ परिग्रह को उत्पन्न करने से तीव्र नरकायु का कर्म बध होता है ॥१३३४॥

मरुळ् शैयुं विनै मुन्नेट्टिन् माट्रोणा उदयत्तालुं ।
पोरुळ् कोलै कळवु पोय्यिर् पुरिदेळु मुवगै पालुं ॥

तिरिविद तीर लैचै मुरुक्कि पेरारंवत्तु ।
मरु मानिरै वायु माट्रोना उदयत्ताले ।।१३३५।।

अर्थ—सत्य स्वरूप को जानने वाले सम्यकदशन की शुद्धि से उत्पन्न होने वाले घाती अघाती कर्मो को जीते हुए अर्हंत परमेष्ठी मे, तथा निश्चय व्यवहार रत्नत्रय मार्ग मे भक्ति रखना, हेयोपादेय से समताभाव रखना, धर्मध्यान व शुकल ध्यान से इस लोक और परलोक मे अपने को उत्पन्न होने वाले सुख की इच्छा न करते हुए और पाप पुण्य के नाश करने के लिये प्रयत्न करना, मोक्ष पुरुषार्थ मे ही निमग्न होना, सत्पात्रो को औषधि, शास्त्र, अभय और आहार चार प्रकार के दान देना, देव पूजा, गुरु उपास्ति, शास्त्र—स्वाध्याय आदि पट् क्रियाओ का पालन करना, शील पालना यह सब उत्तम भोग भूमि का कारण है ।।१३३५ ।

वंचनै मनत्तु वैत्तु वाकोडु कायं वेराय ।
नजन वोळुक्कं पट्रि नल्लोळु कळित लालु ।।
मेंजिडामूडमादि मूंड्रु मिच्चुदयत्तालुं ।
सेम् सैवेव् विलक्कि लुयिक्कु मायुगं सेरिक्कु मिक्के।१३३६।

अर्थ—मायाचार करना, कपट को मन मे धारण करना, मन, वचन काय से विष के समान हिसादि दुष्ट क्रियाओ का पालन करना, अहिसादि मार्ग को नाश करने वाली लोक मूढता, पाखड आदि मिथ्यात्व के उदय से सज्ञी असज्ञी ऐसे तिर्यंच गति मे उत्पन्न होता है । ।।१३३६।।

मैमै यां तेळिवि लागुं वेंड्र वर् गुणतुळार्वम् ।
सेम्मै वातू करुणै सिंद युट् कलक्क मिन्मै ।।
इम्मंयाम् भोग वेडां मुनिवर् कट् कीद लादि ।
तम्मिनादि भोगभूमि मक्कळा युग कडामे ।।१३३७।।

अर्थ—दर्शनविशुद्धि रहित मायाचारी करने से भोगभूमि मे रहने वाले तिर्यंचगति का कारण होता है । इसलिये मायाचार रहित सम्यक्त्व पूर्वक आचरण करने से कर्मभूमि के मनुष्य की आयु का बध होता है ।।१३३७।।

उरैत्त विक्गुणंगळ् माय मोंड्रिडि ळंदभूमि ।
तिरिक्कय वायु वांगु सेप्पिय गुणंगळ् मायं ।।
पोरुत्त मिल्लाद पोदु मंद मद्दिमंगळागिल् ।
वरुत्त मिल् करुम भूमि मक्कळा युगंगळामे ।।१३३८।।

अर्थ—धर्मध्यान से उत्पन्न होने वाले सम्यक्त्व रुचि से ससार सवधित पचेद्रिय विषय सुखो से वैराग्य को प्राप्त होकर क्षमाभाव धारण कर समता भाव से देवाधिदेव

भगवान होने वाले चरम शरीर को धारण कर मोक्ष जाने वाले तीर्थंकर पद को प्राप्त कर लेते है ।।१३३८।।

आरत्तेळु विरुप्पि नालु मांडू नरकाक्षि यालुं ।
वेरुत्तेळु मनत्तिनालु मिवक नर् पोरइ नालुं ।।
शिरप्पुडै शमत्तिनालुं देवर शाकु भूमि ।
पिरप्पिनै श्रमैकु मक्कळा युगं पिनिवक् मिक्के ।।१३३९।।
नेरिइ वै पेरदारंद निलत्तुळ विलगुंमावार् ।
श्ररिवंडु मुदल् विलंगुम् तेळि विला मणिद रागु ।।
मरुविलां तेळिविनाळे वायु तेयुक्कळ् शेंडु ।
सेरियु मैबोरि विलंगिल् शिरिय दोर् करुणे यालुं ।१३४०।

अर्थ—इस मार्ग को पालन न करते हुए जीवो पर अल्पदया भाव रखने वाले इस कर्मभूमि मे तिर्यच आयु का आस्रव कर लेते है । एकेद्रिय आदि चतुरिद्रिय पर्यंत पशु पर्याय तक तीव्र मोह से नीच मनुष्य गति का बध होता है । कदाचित् सैनी, असैनी पचेद्रिय पशु-गति का बध होता है ।।१३३९।१३४०।।

विरद मिल् काक्षि तीमै विरविय वोळुक् मार्व ।
मरुविय सरितकुत्ति समितै पन्निरंडु सिंदै ।।
दरुममुं तवमुं देवारायुगं तन्नै याकुं ।
विरत शीलंगळ् मिच्चं विरविन दालु मामे ।।१३४१।।

अर्थ—असयत सम्यक्दृष्टि जीव हेयोपादेय रहित अज्ञान रूप आचरण को पालन करे और इन्द्रिय भोगो सबधी विषयो की इच्छा करे तो कुगति को प्राप्त होता है । तीन गुप्ति, पाच समिति, द्वादश भावना, दश प्रकार के धर्मो को पालन करने से उत्तम, मध्यम, जघन्य देवायु का कर्मबध होता है । सम्यक्त्व को त्याग कर मिथ्या चारित्र को पालन करने से उस परिणाम के अनुसार कर्म का बध होता है ।१३४१।।

नर्गुणं पोरामै तीय कदैगळै नविट्रनल्ल ।
सोर्कळै युरळ् दल् तूय वोळुक्किन् मै तुयर मैदल् ।।
कुट्रतल् मनो वाकायं कोटं पोल्लाच्चिरिपुं ।
मट्रिवै पळित्तल् नामं पिनित्तलु केदु वामे ।।१३४२।।

अर्थ—सम्यक्त्व आदि गुणो को छोडकर काम भाग आदि शास्त्रो को पढना, दूसरे को दुश्चारित्र कथा कहना, धर्म की निंदा करना, अपने सम्यक्‌रूपी चारित्र का त्यागना, दुष्टा-

चार धारण करना, रागद्वेष आदि से युक्त मन, वचन काय का होना, दूसरे को हास्य द्वारा कटुवचन बोलना ये सब वध का कारण है ।।१३४२।।

तूय काक्षियुं सुरुक्क मिल् विनयमु मिरप्पि वंदशील ।
माय नल्लुपयोगंमुं वेग माट्रिय तवन् त्यागं ।।
चाय रिंदु शै समादि वै यावच्च मावच्चं ताळ्विन्नै ।
माय मिन्नरि विलक्कलुं तुळक्किंड्रियरत्तु वच्चळत्ताळुं।१३४३।।

अर्थ—दर्शन विशुद्धि, चार प्रकार का विनय, निरतिचार शीलव्रत, अभीक्षण ज्ञानोपयोग, सवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधु समाधि, वैयावृत्यकरण, आवश्यकापरिहाणि शुद्धि, मायाचार रहित मार्ग प्रभावना, चलन रहित प्रवचन, वात्सल्य ।।१३४३।।

अरिव नागम माचरियन् पलसुरुदि वलारं बुमुं ।
शेरिय निंड्रिडुं तीर्थंगरत्तुंव शैयु नट्रिरु नामं ।।
मरुविलिगुण नल्ल नगुंणत्ति निल् वेय्यग तुइर् तम्मै ।
कुरुगु नामंग नल्लवै सालवुं गुण वैगळाले ।।१३४४।।

अर्थ—अर्हंत भक्ति, प्रवचन भक्ति, आचार्य व बहुश्रुतभक्ति इस प्रकार सोलह प्रकार की भावना है । वह तीर्थंकर प्रकृति के बध का कारण है । इसके अलावा शुभनामकर्म प्रकृति का शुभ गुणो से इस लोक मे जीव सद्गुण भावना से शुभ परिमाण से शुभ नाम प्रकृति आत्मा के अदर उत्पन्न होतो है ।।१३४४।।

पिरर्गळै पळित्तु तन्नै पुगळ्दुडन् पिरर्ग निंड्र ।
मरुविला गुणत्तै मायुत् तीगुणं परप्पि माराय् ।।
निरैविला माय् वोळुकत्तै पुगळं्दु नल्लोर् ।
निरै युला वोळुक्कं कायंदार् नीचगोतिरम दांगु ।।१३४५।।

अर्थ—धार्मिक आदि जन के गुणो की, उत्कृष्ट तपस्वियो की निंदा करना, दूसरे को देखकर उसकी निंदा करना, खोटे शास्त्रो की स्वाध्याय करना, कुचारित्र वाले की प्रशसा करना, यह सब नीच गोत्र के कारण है ।।१३४५।।

अरैद विगुणत्तिन् मारा यरविनै युळि्ळट्टारं ।
इरैजि निंड्रोळुगल् तन्नै इळित्तल् पार्तुंड नल्ल ।।
वरंपुगळं् दिडुंद रन्नै पोक्कं शेय्यामै तम्मार् ।
पिरंदुलगिरैज निकुं गोतिरं सेय्यु मेंड्रान् ।।१३४६।।

अर्थ—पीछे कहे हुए दुर्गुणो को त्यागना, अर्हंत भगवान के स्वरूप, आचार्य, उपाध्याय को नमस्कार करना, मुनि की चर्या के अनुसार मार्ग पर द्वारापेक्षण करना, तत्पश्चात् भोजन करना, अहिंसामयी भोजन करना, शरीर मे निर्ममत्व भाव होना यह सब उच्च गोत्र के कारण हैं ।।१३४६।।

कोलयै कोबित्तु शैया कोडैइनै इडै विलक्का ।
विलै येनिनु वंदु नंड्रिडुळि कायंदु नेंजर् ।।
पुलैसुत्तेन कळ्ळु मेविपिरन् शेल्वम् पोरादु वोव्व ।
वलै शैय वंदराय मैदुम् वंदडयु मेंड्रान् ।।१३४७।।

अर्थ—आत्मा रौद्रध्यान मे तत्पर होकर अनेक प्रकार के जीव हिंसा को करना, दूसरे को दान देने वाले के अतराय कर्म डालना, दान न देने वाले को देखकर तिरस्कार करना तथा कषाय करना, मद्य, मास, मधु का सेवन करना, दूसरे की वस्तु को जबरदस्ती से छीनना, इनसे तीव्र अतराय कर्म का बध होता है ।।१३४७।।

सोन्न कारणंगळ् भाव योगत्तिल् पडिडर् सोल्लि ।
तुन्नलां पडियवल्ल वुरैक्किनुं सोगिळाट्रा ।।
वेन्नमुम् नार्कनत्तुळ् यावरु मिरैंजि येत्ति ।
तुन्निय विनैयै वेल्लत्तोडंगिनार् मलरु मंड्रे ।।१३४८।।

अर्थ—पिछले कहे हुए दुर्गुण, मन, वचन, काय से आत्म-प्रदेश परिस्पद मे प्रवेश होकर आत्मा को अनेक कुगतियो मे भ्रमण के कारण होते है । उस पाप कर्म के होने वाले दुख को इस जिह्वा द्वारा कहना असाध्य है । ऐसे समझ कर केवली भगवान ने उन मदिर और मेरू दोनो गणधरो को समझाया । इसको सुनकर समवसरण की बारह सभाओ के सभी भव्य जीवो ने उठकर भगवान को नमस्कार किया और वहा स्थित अन्य केवलियो को नमस्कार किया, तत्पश्चात् सभी गणधरो को नमस्कार किया । तदनतर ये लोग सम्यक्दृष्टि होकर कर्म निर्जरा के लिये प्रयत्नशील बन गये ।।१३४८।।

आयुवुं करणमुं पोरियु मग्गति ।
वायुवुं केड्डुद लाल् मरण मट्रवै ।।
पोयळि पेरुद लाम् पिरवि पोमिड ।
तेयु मोंड्रि रंडु मूंड्रांगणंगळे ।।१३४९।।

अर्थ—उस गति मे स्थित होने वाले आयुष, मन, वचन, काय, इन्द्रिय, श्वास, उच्छवास आदि दस प्राणो के नाश होने को मरण कहते हैं । पुनः कार्माणकाय सहित दस प्राणो के धारण करने को जन्म कहते हैं । एक शरीर को छोडकर दूसरे शरीर को धारण करने को समय अथवा विग्रहगति कहते हैं ।।१३४९।।

वुरैत्त विप्पिरप्पुपपादमूर्चनै ।
करुप्प मुमा मुम्मद्देवर् नारगर् ॥
कुरैत्त वट्रुपपादं जरायुजं ।
करुप्पु मानवगळु काव दागुमे ॥१३५०॥

अर्थ—पीछे कहा हुआ जन्म–उपपाद, गर्भ, सम्मूर्छन ऐसे तीन प्रकार का होता है । इन तीनो मे से उपपाद जन्म देव नारकी को होता है । और मनुष्यो को जरायुगर्भ तथा सम्मूर्च्छन भी होता है । शेष सब तिर्यंचो के गर्भ सम्मूर्छन होता है ॥१३५०॥

नम्मि नुन्नियवर् नाल्रिवु कारुराळ् ।
सम्मुच्च पिरवियर् विलंगि लैबोरि ॥
विम्मिनार् सम्मुच्चम् करुपत्तावदां ।
तम्मिलु शेरा युग मंडम् पोदमाम् ॥१३५१॥

अर्थ—पचेंद्रिय लब्धि पर्याप्त मनुष्य एकेद्रिय, द्वीद्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय सम्मूर्छन होकर जन्म लेते हैं । तिर्यंच गति मे कही पचेद्रिय जीव होकर जन्मते हैं, कही सम्मूर्छन हुआ जन्म लेता है और कही गर्भ जन्म मे भी जन्म लेते है अर्थात् तिर्यंच जीव जरायु, अडज और पोतज मे भी जन्म लेते है ॥१३५१॥

यावयुं तोर्शवि युडय शन्नियां ।
तावरुं तुळैशवि शन्निय शन्नियां ॥
मेवुरुं तिरुवरं मेवुगं सन्निग ।
ळोविला पिरप्पि वट्रि योनि योंबदाम् ॥१३५२॥

अर्थ—सभी जीवो की उत्पत्ति का स्थान (योनि) नौ प्रकार की है। कर्णेंद्रिय मन को प्राप्त हुए सज्ञी जीव को सैनी जीव कहते हे । इसमे कही मन रहित असैनी सर्प आदि होते है ॥१३५२॥

विनै युयिर् तत्तमिल् विडुदल् वीडदु ।
तनगुण नीगंलु दवियं शूनियं ॥
मुनै यवरुड नुरल् मुदल्व नंड्रुवा ।
ननग नाय गुणंगळु मनंद मागुमे ॥१३५३॥

अर्थ—जीव और कर्म अनादि काल से परस्पर मे रागपरिणति मिलकर यह आत्मा पुद्गल के निमित्त से ससार मे परिभ्रमण करते आ रही हैं। इस आत्मा का अपने शुद्ध स्वरूप, स्वपर ज्ञान से भिन्न २ करके शुद्ध चैतन्य बल से पर को त्याग करके अपने स्वरूप मे स्थित

होना ही मोक्ष है। आत्मा के कर्म बध का कारण अशुद्ध चेतन परिणाम जो रागादि भावरूप हैं, वे ही बध के कारण हैं। यदि उसको शुद्ध चैतन्य आत्मा स्वरूप के बल के द्वारा त्याग करेगा वही आत्मा लोकाग्र विराजमान होने के योग्य सिद्ध परमेष्ठी बन जाता है। ऐसा भगवान ने कहा है ॥१३५३॥

ऐंबत्तंगणधरर् घाति यांगण ।
तंवत्तेदि रट्टि पत्ताम् पूवद ॥
रेंबदि निरट्टि नार्पत्तेट्टोरिय ।
रेंबदि निरट्टि योंवान् विगुवनर् ॥२३५४॥

अर्थ—उन विमलनाथ तीर्थंकर की सभा मे पचपन गणधर थे। एक हजार एक पूर्व अङ्गधारी थे। अवधिज्ञानी मुनि चार हजार आठ सौ थे। विक्रिया ऋद्धिधारी गणधर नौ सौ थे ॥१३५४॥

विलिक्कल शैयत रुवत्तेन्नाइरम् ।
इलक्क मूनं ड्रेट्टा इरंगळ् सादव ॥
रिलक्क मोंड्राइर् मूंड्रु कांतिय ।
रिलक्क नान्गिरंडु सावगियर् ॥१३५५॥

अर्थ—सम्पूर्ण सयमी लोग अडसठ हजार थे। नवीन सयमी तीन लाख चौसठ हजार थे। आर्यिका तीन लाख तीन हजार थी। श्राविकाए चार लाख, श्रावक दो लाख थे। ॥१३५५॥

इनैय वाम् विमल नार् गणत्तु नादराय ।
विनवला मरवेरि वेद नान्गि नै ॥
मनैत्तुर वानरुवकोदि मट्टवर ।
विनै कन् मेनिनै वुरिइ विवित्त मेविनार ॥१३५६॥

अर्थ—मेरू और मदर ये दोनो श्री विमलनाथ भगवान के मुख्य गणधर थे। उनने कर्मा को नष्ट करने के लिये चारो अनुयोगो को श्रावक और यतियो के लिये उपदेश करने हेतु अपनी आत्मा मे बधे हुए कर्मो को क्षय करने के ि ये एकात स्थान को प्राप्त किया। जिस प्रकार गाय भैस अपने २ झुन्ड के साथ जाती हैं, अलग २ नही जाती हैं, उसी प्रकार दोनो मेरू और मदर एक साथ निर्जन पहाड की चोटी पर पहुँच गये ॥१३५६॥

इनत्तिडै पिरिंदु पोमेरिरंडु पोर् ।
कनत्तिडै पिरिंदु पोय कान मेविय ॥
वनत्तिडै पेरुवरै युच्चि मण्णिनार् ।
निनै पिनै तन् कने निरुत्ति निड्रां ॥१३५७॥

अर्थ—जिस प्रकार एक चदन वृक्ष को काटने वाले को वह चदन वृक्ष सुगध ही देता है या छाया देता है उसही प्रकार अपने को दुख देने वाले को भी सुख देने वाले धर्मोपदेश देकर उनकी तृप्ति कर देते हैं और समता भाव सदैव धारण करते हैं ।।१३५७।।

वरैत्तुनं कुळिपैं शैमरत्ति नीळलु ।
मरैपिनुं शीतमां संदम् पोलवुं ।।
निरैत्तु निड्रिनाद शैद वकुं मिवमा ।
मुरै कमिन् रुत्तम पोरै योडोबिनार् ।।१३५८।।

अर्थ—गर्व रहित उत्तम मार्दव से युक्त सम्पूर्ण जीवो को समताभाव से देखकर उन भव्य जीवो को धर्मोपदेश देकर आर्जव गुण से युक्त थे । जिस प्रकार स्फटिक मणि भीतर बाहर एक सा रहती है उसी प्रकार बाह्य-अभ्यंतर से ये दोनो सम्यक् चारित्र से युक्त थे । ।।१३५८।।

मार्तवत्ताल् वळै दारुयिर्कलां ।
पार्तरं पगंदुळं पंजिन् मेल्लिय ।।
रचिवत्तगं पुंर मारिण विळकि तोत् ।
तूर्तम योरुवगै योळ्गु नीररे ।।१३५६।।

अर्थ—इष्ट अनिष्ट वस्तु मे रागद्वेष रहित रहने वाले मदर और मेरू उत्तम सत्य धर्म को पालन करने वाले होकर पंचेद्रिय विषयो से अत्यत अलिप्त थे ।।१३५६।।

अविमुं सेट्रमु मयक्क मिन्मया ।
लारुयिर् कुरुदि पेल्लाद सोल्लिला ।।
रोर् विडत्तरु तोरुविय पोलत्तिन् मीदुळं ।
सोविड तुन्शेला तूयर्राडनार् ।।१३६०।।

अर्थ—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र पचेद्रिय तथा मन अर्थात् पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति और त्रस जीव की रक्षा करना ये छह प्रकार के प्राणि सयम है। द्वादश तप को निरतिचार पूर्वक पालन करते हुए निरतिचारी तथा अकिंचन्य धर्म को पालन करने वाले थे। इसके अतिरिक्त भव्य जीवो को तत्वो का उपदेश करने वाले उत्तम त्याग धर्म वाले थे ।।१३६०।।

अरुवगै पोरिवळी पर्डाच नोंगियुं ।
मरुवगै कायत्तै येरुळि नोंवियुं ।।
शेरित वं पन्निरंटिर् शेलापिनै ।
तुरुवु मेत्वागमुं तुन्नि नार्गळे ।।१३६१।।

अर्थ—स्त्रियो की स्तुति करना, प्रेम से देखना, उनकी प्रशसा करना, रुचिकर ग्रहार लेते समय प्रेम रखना, स्त्रीसहवास करना, उनसे हास्यादि करना आदि से रहित उत्तम ब्रह्मचर्य को पालन करने वाले थे ॥१३६१॥

मादरै पुगळदल् पातल् मट्रव रट्ट देंड्रा ।
लादरी तुंडल् पुक्क वव्वगत्तुरैद लजंल् ॥
मेदग केटल् मेवि शिरितिडलूविळैवु नोकल् ।
येद मिंड्रि वट्रि नीगि इलंगु मुळ्ळत्त राणार् ॥१३६२॥

अर्थ—चर्या को जाते समय चार हाथ भूमि को देखकर जीवो को बाधा न हो, वे ईर्यापथ शुद्धि से मद २ गति द्वारा गमन करने वाले थे। सपूर्ण जीवो से दया के भाव के साथ बात करते थे। एषणा समिति पूर्वक एक बार व्रती श्रावक के घर जाकर शुद्ध आहार लेने वाले थे। मलमूत्र को निर्जंतु स्थान मे त्याग कर व्युत्सर्ग समिति के पालन करने वाले थे, और वस्तु को रखते तथा उठाते समय यत्नाचार पूर्वक रखना आदि आदान निक्षेप समिति का पालन करने वाले थे। इस प्रकार पाचो समिति के पालन करने वाले थे ॥१३६२॥

मुन्नगत्तळवु नोकि मुंबु पिन् पिरियच्चेल्ला ।
रिन् सोलुं पिरर् तमक्कु मिदत्तन वंड्रिचोल्ला ॥
रबु नीतुइरै योबि यळव मैदुब राकुं ।
तुंवुर कोडल् वैत्तल मलगेळै तुरत्तल् शैयार ॥१३६३॥

अर्थ—पर्यंकासन, पद्मासन, खड्गासन, वीरासन, गोदूहन आदि से सामायिक तथा ध्यान करना। चर्या मार्ग से आहार के लिये जाना। सोते समय हलन चलन नही करना, जीव को बाधा न हो इसलिये हाथ पैर नही पसारना। सकोच करके रखना, इस तरह काय-गुप्ति का पालन करते थे। भव्य जीवो को धर्मोपदेश के सिवाय मौन धारण करने वाले थे। इस प्रकार वचन गुप्ति पालन करते थे। रत्नत्रय वृद्धि करने योग्य श्रावक श्राविका के हाथ से शुद्ध आहार लेते थे। मन का सदैव एकाग्र चित्त रख कर मौनवृत्ति के पालन करने वाले थे ॥१३६३॥

इरुत्तले किडत्तल् निट्र नियंगुदल् मुडक्कल् मीटल् ।
तिरुत्ति यव्वुइकुं तीमै शिरैदिडा वोळुक् मोबि ॥
युरैत्तुइर् कुरुदि मगिमोवुव कोडुप्पिर् कोडुम् ।
परिक्कद पावे मारै पट्र तुरदिट्टारे ॥१३६४॥

अर्थ—सुख दुख आदि मे समान भाव रखने वाले, तीन लोक के नाथ अर्हन भगवान का स्मरण करने वाले, अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु पचपरमेष्ठियो को नमस्कार करने वाले, कर्मेद्रिय से आने वाल दोषो का प्रायश्चित्त लेने वाले थे। अपने शरीर

से मोह का त्याग, आत्मा और शरीर भिन्न है, ऐसा समझने वाले, आत्मा-स्वरूप मे लीन रहने वाले, षट्कर्म को सदैव निरतिचार पूर्वक पालन करने वाले तथा चलन रहित ध्यान मे मग्न रहने वाले थे ।१३६४।।

नन्नमै तीमै कन्नोत्तु नादन् ट्रन् पादमोदि ।
तन्मै कन्निड्रार् तम्मै पनिडु तम् पिळैप्पिन् मींड्रु ।।
पिन्नै तंपाल् वदैदु पिळैपें मुन् मरुत्तु कायं ।
तन्नैत्तान् विट्टु निड्रार् तडवरै शूळि योत्तार् ।।१३६५।।

अर्थ—सघन जगल मे जहा श्मसान भूमि हो, भूत प्रेत हो ऐसे श्मसान मे, जहा सिह, सर्प, व्याघ्र आदि क्रूर प्राणियो का स्थान हो—ऐसे भयानक जगल मे बैठ कर एकाग्र चिता निरोध किया हुआ ध्यान से युक्त आर्तरौद्र ध्यान से रहित समय को आत्म-ध्यान मे सतोषपूर्वक बिताने वाले थे ।।१३६५।।

आतपयोगं तांगि यरुंदवर् निड्र पोळ्दिर् ।
पादवं पोड्र कोंड्र पनिदन पनियच्चेर् ।।
शीत पंकयंगळ् कूंव विरिदं शंकमलंशिदै ।
मादवर् मरत्तै शेर मगिळ्ंडु वान् वोळिद वंड्रे ।।१३६६।।

अर्थ—ऋतु, अयन, वर्ष इस प्रकार मर्यादा सहित ध्यान करने वाले, आत्मध्यान करने वाले होकर अपने शरीर को कृश किया था । इस शरीर के साथ साथ कषायो तथा इन्द्रियो को भी कृश करके आने वाले आश्रव मार्ग को रोकने वाले होकर आत्म गुणो का विकास करके सम्यक् दर्शन को वृद्धि करने वाले थे ।।१३६६।।

कूगै पेय् कवंद मोरि टाकिनी कुलवुं काड्र ।
नागमा नागं शीय मुळुवै शेर् मलै मुलंजु ।।
येगमाय् वेगमेवि इराजमा शीयं पोल ।
योगमे भोगमाग वुवंदव रुरैदु शेंड्रार् ।।१३६७।।
इरुडु नल्लयन मांडै येल्लै शैदिरुंदु निड्रु ।
मरिय मुक्काल योगं वळगुं मगित्तै विट्टु ।।
तिरिविद करणं तन्नै शेरिय वैत्तरिवै युंड्रि ।
पोरुविलार् शिदै योगं तन्मये पोरुंदि नारे ।।१३६८।।

अर्थ—वे मेरू और मंदर दोनो मुनिराज, जैसे म्यान मे रखी हुई खड्ग और म्यान पृथक २ रहती है, उसी प्रकार आत्मा और शरीर को भिन्न समझने वाले, स्वपर भेद भावना

से युक्त, आत्मा को दुख देने वाले कर्मों की पर्याय को शुक्ल ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा दहन करते हुए, स्वर्ण मे मिश्रित कालिमा कीट को तपाकर दूर करके सोने को शुद्ध करते है, उसी प्रकार आत्मा को शुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा मुष मे आत्मरूपी स्वर्ण को रख कर कर्म रूपी कीट को भस्म कर आत्म-शुद्धि करने वाले थे ।।१३६७।१३६८।।

उडंबुंई रुरैवा नेरेंड्र् ुडंबै विट्टुडै पार्तांग् ।
कडुंतुयर् विनैगळव्वा ळुरुक्कोडु नेरुप्पुइर् कट् ।।
केडुम् परियाय मव्वाकिट्ट मामेड्र वट्रवै ।
कडंतम् वडिवैकळाकळंड्र पोन् पोलक्कं डाल् ।।१३६९।।

अर्थ—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान के आवरणो को मन पर्यय ज्ञानावरणी, केवल ज्ञानावरणी कर्मो के आवरण को नाश करते हुए, अनत गुणो से युक्त आत्म-स्वरूप की वृद्धि करते हुए अनादि काल से आत्मा के साथ चिपक कर आए हुए चक्षु, अचक्षु, आदि कर्मो को दर्शनावरणीय आदि आठ कर्मों को नाश करके अनत दर्शन से युक्त आत्मगुण को प्राप्त कर सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान के बल से सदैव ज्ञान के बल से आत्मस्वरूप की सतना भावना भाने वाले थे ।।१३६९।।

मतिश्रुतअवधि यामा वरणत्ति लरिवु मट्र ।
विदियर केडवड्रागि येनद माय विरियं काक्षि ।।
पोदुविना लरिविन मुंबु पुलत्तै कोनं्डनेक मायतन् ।
विदियर केडवड्रागि विरियुमा नुन्निनारे ।।१३७०।।

अर्थ—अतीद्रिय युक्त शुद्ध चैतन्य आत्मद्रव्य नाम के आत्मसुख को व इन्द्रिय सुख को उत्पन्न करने वाले मोह सुख को पाच प्रकार के ज्ञानावरणाय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय आदि पाच कर्मों को नाश करने से हमको अत्यत सुख देने वाले आत्मसुख की प्राप्ति होगी ।।१३७०।।

सुगदुख मोग मागि सुळलुं चेतवे सुगत्तै ।
लगै वै शं येंतरायं तम्मोडु मोगनींग ।।
मुगै विट्ट नाट्रं पोल मुळुंडु वंदेळुंद नंद ।
सुगमट्र डागु मेड्र् ु तुळक्कर निनैदु निड्रार् ।।१३७१।।

अर्थ—वीर्यान्तराय कर्म आत्मा से अलग होते ही उसी समय तीन लोक को एक ही समय मे जानने वाले, अनन्तवीर्य नाम का गुण प्राप्त होगा। इस प्रकार भावना भाते थे। ।।१३७१।।

वीर्यंतराय नींगं विकलत्ति नींगि वीरम् ।
कार्यं कडैलादु कनत्तिले मुडित्तळंदु ।।

मूरि मूवुलगं तन्नै येंदलु मागु माट्रल ।
वोर्यमागु मेंड्रिव् विदि युळि निनैदिट्टारे ।।१३७२।।

अर्थ—तदनंतर आत्मा के साथ लगे हुए आठ प्रकार के द्रव्य कर्म का नाश होते ही रूप, शब्द, स्पर्श रस, गध इत्यादि का नाश होकर ज्ञान से जानने योग्य अगुरुलघुत्व गुण को प्राप्त कर तीन लोक के अग्रभाग मे रहने वाले तनुवात मे अपना आत्मा चलायमान न होते हुए कव जाकर विराजमान होगा—ऐसी भावना निरतर भाते थे ।।१३७२।।

उरुवमो मेलियु मूरु नाट्रमुं सुवयु मिड्राय् ।
तेरिवरु नुन्मैत्तागि नोर्पमुं शिरप्पु मिड्राय ।।
मरुविय विनैगळट्टं मायं्दवक्कनत्तु सेंड्र ।
तिरिदर उलगत्तुच्चि निट्टलु सिंदित्तारे ।।१३७३।।

अर्थ—गुण गुणी से युक्त जीवादि अनंत द्रव्यगुण कहलाने वाले द्रव्य सामान्य और विशेष से तथा द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इस तरह दो प्रकार से है, और विशेष से द्रव्यार्थिक पदार्थ के तन्मय से अस्तित्व है । पर्याय कहने से अनित्य है । स्याद्वाद के सप्तभंगीनय से नाम स्थापना द्रव्य भावो से उत्पाद व्यय सहित है । द्रव्य आत्मा गुण है इस प्रकार दोनों गुणी आत्म-भावना के वल से अपनी २ आत्मा हमेशा शाश्वत है । ज्ञानदर्शन से युक्त है । शेष जो द्रव्य हैं, वे आत्मा से भिन्न तथा अन्यत्व है । इससे आत्मा-पर वस्तु से इस प्रकार भिन्न है । उनकी आत्मा अप्रमत्तगुणस्थान नाम के क्षपक श्रेणी को प्राप्त हुई ।।१३७३।।

गुणगुणि निलैमै युं गुणंग निट्रलु ।
मन मुडै मट्र वर् तत्तं सिंदिया ।।
वनवरुं पमादं विट्ट पमत्तरा ।
इनैला सेशिमेलेरि नार्गळे ।।१३७४।।
विनैगळेळ् विरगिनाल् वीळ्ंद वक्कण ।
मुनिवर् पुव्वाणि नन् मुनिवराइनार् ।।
विनैयला निलै तळर्दिट् डुर्दिचिग ।
तनै यडैदिट्ट वाल्वगै इनार् पिन्नै ।।१३७५।।

अर्थ—अप्रमत्त गुणस्थान को प्राप्त होने के वाद मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, अनंतानुवधी क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार दर्शन मोहनीय इस प्रकार सात प्रकृतियो का नाश किया । तदनतर ये दोनो मुनिराज अपूर्वकरण नामके आठवें गुणस्थान को प्राप्त हुए । वध, सत्व, उदय, उदीरणा, इन चार प्रकार के उत्पन्न होने वाले कर्मो की निर्जरा करने लगे । भिन्न २ होते हुए भी अपने अन्दर ही वृद्धि होने वाले पृथक्त्व, वितर्कत्व

वीचार ऐसे प्रथम शुक्ल ध्यान को प्राप्त होकर अनिवृत्तिकरण नाम के नवे गुणस्थान को प्राप्त होकर, उस गुणस्थान मे अन्तर्मुहूर्त मे समय को व्यतीत करते हुए वे दोनो मेरू और मदर मुनियो के नो समय शेष रहने के बाद प्रथम समय मे सोलह प्रकृतियो को नष्ट कर दिया ।।१३७४।।१३७५।।

※ सोलह प्रकृतियों के नाम निम्न प्रकार के हैं ※

निड्रुळि निलाद सुक्किलत् ध्वानत्तो ।
दंड्र वरणि येट्टि मुनिवराई नार् ।।
शेंड्र शिलपल कनंगळ् शेंड्रपिन् ।
वेंड्रनर् विनैगळीरट्टै वीररे ।।१३७६।।

अर्थ—१ नरकगति २ तिर्यचगति ३. नरकगत्यानुपूर्वी ४ तिर्यक् गत्यानुपूर्वी ५ एकेद्रिय ६ दोइन्द्रिय ७ ते इन्द्रिय ८ चौइन्द्रिय ९ स्थावर १०. सूक्ष्म ११ साधारण १२ आतप १३. उद्योत दर्शनावरणी की तीन १४ स्त्यानगृद्धि १५ निद्रानिद्रा १६ प्रचला प्रचला यह सोलह प्रकृतिया है ।।१७६।।

तीगति इरंड वट्रप् पूविगणांगु जाति ।
याकै निट्र नुप्पं पोदुवेइल् विळक्कि वट्रे ।।
याकु नामं काक्षि यावरणध्यान तीटि ।
नीकरुं पसलै निह्रै यागु मीरट्टै नित्तार् ।।१३७७।।

अर्थ—तीसरे समय मे नपुसक वेद कर्म का नाश किया । चौथे समय मे स्त्री वेद कर्म को नाश करने के पश्चात् पाचवे समय मे रति, अरति, हास्य, भय, जुगुप्सा और शोक ऐसे छह प्रकृतियो का नाश किया । तदनतर छठे समय मे पुरुष वेद को जीत कर वे दोनो मुनिराज अनिवृत्ति नाम के गुणस्थान को आरूढ हुए थे ।।१३७७।।

वेगुळिये मानमाय मुलोब मा मिक्क नांगु ।
पगडिय पच्च पच्चक्कनत्तदा मेट्टै नीत्तु ।।
मुगडुर वेळुंदसिदं मुरुक्कि पिन्नुरुक्कळर् पोल् ।
तोग युडप्पेडि वेंद तन्नयु मुडैत्तिट्टि पाल् ।।१३७८।।

अर्थ—दूसरे समय मे अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभ ये कषाय तथा प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ इन आठो को नाश किया ।।१३७८।।

मट्टैत्ती पोल वेंवुम् मोय् कुळलातै वेदं ।
केट्टपि निरदि याचं पयमुवर् परदि शोकं ।।

विट्टव पोळट्टु वैति पोलेळुं पुंगवेद ।
मट्टवर् वेदनीत वरिग येट्टि मुनिवरागार् ॥१३७६॥
नल्ल वांचलन कोद मान माय लोभ तन्नै ।
सोल्लिय मोरंइन् मूंड्रु तार्नात्तर् ट्रुवकरुत्तु ॥
पुल्लिदा मुलोगं तन्नै वीळ् तंद मूळ्तर्त्तपि ।
नेल्लै इर् शुद्धि पेट्रा रिरुवत्तेन् तेन्मोग नोते ॥१३८०॥

अर्थ—तदनतर सज्वलन क्रोध, मान, माया, और लोभ इन चार प्रकृतियो मे मे सातवे समय मे सज्वलन क्रोध को और आठवे समय मे मान को, नवे समय मे माया को नाश कर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान को उलाघ करके सूक्ष्म सापरायिक गुणस्थान का अतर्मुहूत मे संज्वलन लोभ कषाय का नाश करके सपूर्ण अठाईस मोहनीय कर्म की प्रकृतियो का नाश किया। मोहनीय कर्म की अठाईस प्रकृतिया निम्न प्रकार है-क्षपक श्रेणी के आरोह मे दर्शन मोहनीय की सात प्रकृति। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे तेरह नाम कर्म की। दर्शनावरणीय कर्म मे ३ प्रकृति। चारित्र मोहनीय कर्म की २० प्रकृति। तदनतर सूक्ष्म सांपरायिक गुणस्थान मे सज्वलन लोभ मिलकर २८ प्रकृति होती है। इन कर्मों को नाश करके शुद्धात्म परणति को प्राप्त हुए ॥१३७६॥१३८०॥

वेंबिय विनैक्कु मूल मागु मोगत्तै वोळ्ता ।
रबर पांडगं शेंबन् चडत्तु विट्टदनै योत्ता ॥
संबरोड्रागुं सिदैयुड निंड्रोर् मूळ्त तीट्रिन् ।
मुन् बिनांगणत्तु निदै पसलै कन् मुरिय चड्रार् ॥१३८१॥

अर्थ—तत्पश्चात् मेरू और मदर दोनो मुनिराज २८ कर्म प्रकृतियो को जीत कर सत्परिणाम को प्राप्त कर एकत्व वितर्क, अवीचार नाम के द्वितीय शुक्ल ध्यान को प्राप्त किया। क्षीण कषाय नाम के गुणस्थान मे अन्तर्मुहूर्त मे दो समय मे निद्रा प्रचला ऐसे दो प्रकृतियो को नाश किया ॥१३८१॥

उरु करणं कडंद पोदु वोरुनाल्वर् कण्मर् कूडि ।
पोरुगिर वेळै तन्निर् पोदिया वरण मैदुम् ॥
मरुवि निंड्रेदिर्त कालत्तंदरा येंदानैदुम् ।
तरगि ईरेळुव रंदक्कत्तिळे तोर्दा रंड्रे ॥१३८२॥

अर्थ—क्षीणकषाय नाम के गुणस्थान मे अत मे एक समय शेप रहने पर चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय, केवलदर्शनावरणीय ऐसे चार, मतिज्ञानवरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मन.पर्यय ज्ञानावरणीय, केवलज्ञाना-

वरणीय ऐसे पाच प्रकृति व दानातराय, लाभातराय, भोगान्तराय, उपभोगातराय, वीर्यान्तराय यह पाचो मिलकर इस प्रकार १४ प्रकृतियो को नाश किया ॥१३८२॥

मालैवा इरुळै नीकि वैयत्तै तुई लेळुप्पुं ।
कालै वायरुक्कं पोल घातिगनाशगु नींग ॥
मेलिला सुरंगु नान्मै विळित्तुल गरात्तुम् कान ।
मालिला मनत्तु चिंदै यरुक्कन तुदित्त देंड्रे ॥१३८३॥

अर्थ—जिस प्रकार रात्रि का अधकार प्रात काल सूर्य का प्रकाश होने पर दूर हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, और अतराय इन चारो का नाश होते ही अनपत चतुष्टय प्रकट होते ही केवलज्ञान रूपी सूर्य का उदय हुआ ॥१३८३॥

वुळ्ळेळुं तोई नाल् वेंदोळि पेट्र विरगै पोल ।
वेळ्ळयध्यानं तन्नाल् वेदेरि युवळमेनि ॥
पळि्ळ कोंडोडुदं मूत्तल् पशित्त नोय् वेळ्कै इंड्रि ।
पिळ्ळै यादित्तन् पोल पिरप्पिरु डूतिरुंदार् ॥१३८४॥

अर्थ—तदनतर ये दोनो केवली शुक्लध्यान के बल से आत्म प्रकाश को प्राप्त कर ससार का कारण जन्म, मरण, जरा और व्याधि, शोक, भय, वृद्धावस्था, भूख, प्यास, पसीना, निद्रा आदि १८ दोषो को नाश कर वीतराग शुद्धोपयोगी हो गये ॥१३८४॥

भयं पगै पनित्त लावं सेट्रमे कर्वाच शोकं ।
वियंदिडल् वेगुळि शोग वेर्रतिडल् विरुंबल्रेवदं ॥
मयगुदल् तेळिदल् सिंदै वरुंदुदल् कळित्तल् मायम् ।
ईयं बरुं तिरत्त विन्न यावयु मेरिंदुरुंदार् ॥१३८५॥

अर्थ—आत्मा के विरोध करने वाले राग, द्वेष, शोक, आश्चर्य, सुख, दुख, सतोष आदि अठारह दोषो को नाश किया। श्री भगवान समतभद्राचार्य ने भी इसी प्रकार कहा है—

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्रविरोधिवाक् ।
अविरोधो यदिष्ट ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ॥ (देवागम)

हे भगवन! आप ही पूज्य हो, युक्ति शास्त्र से अविरोधी वचन होने से आपके वचन ही अविरुद्ध हैं। क्योकि प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम आदि प्रमाणो से वाधा नही आती है। ॥१३८५॥

आइडै यमरर्तङ वन् मुडियोडा सनंतुळंग ।
पाय नल्लवदि येन्तुं परुदि यार् कंडदेल्लां ॥

आइर् कण्णि नानै यदि बदि याग चूळ्‌डु ।
माइरु विशुंबुम् मण्णु मरैय् वानवर्गळ् वंदार् ।।१३८६।।

अर्थ—उस समय केवलज्ञान के अतिशय से देवो के आसन कपायमान हुए । देवो ने अवधिज्ञान से जान लिया कि मेरू और मदर दोनो को केवलज्ञान हो गया है । तभी सभी देव पुष्प वृष्टि, जय २ कार आदि करते हुए सपरिवार आगए ।।१३८६।।

मुळंगिन मुरसमेंगुम् मुरंड्रन शंग मुन्ने ।
येळुंदन रेरु शीयं यानै मावेरि विन्नोर् ।।
निळुंद पूमारि विन्नै विळुंगिन पदागै वेळ्ळ ।
मेळुंद वेत्तारवं कीर्ति ईयबिन काळ मेंगुम् ।।३१८७।।

अर्थ—उस समय भगवान के केवलज्ञान का अतिशय चारो ओर फैल गया था । और देव दुदुभि, शंख, पटहा आदि बजने लगे । तब देव अपने २ वाहनो पर बैठ कर भगवान के केवलज्ञान कल्याणक की पूजा मनाने के लिए धवल छत्र, ध्वजाओ को धारण कर आगए । ।।१३८७।।

अरवं यर् नडंपुरिंदा रंबर मरगंमाग ।
नरं पोलि पोलिद वेंगु नन्निनार् मन्नै विन्नोर् ।।
करंगळुं कुविद कन्निर् पुळिदन् घातिनान्मै ।
युरं कडिदिरुंद वीररुरु तुनै येडि पनिदार् ।।१३८८।।

अर्थ—उस समय मे देवाङ्गनाए आकाश मे नृत्य करती थी । उनके द्वारा बजाए गए वाद्यो की ध्वनि तथा सगीत के मधुर शब्द सुनाई देते थे । मध्यलोक मे रहने वाले सभी जीव अपने दोनो हाथो को कमल के समान जोड कर आनदाश्रु सहित भगवान के दर्शन कर रहे थे ।।१३८८।।

पिंडि कुडैयुं शीय वनयुं शामरयु मट्रु ।
मंडवर किरैय मैत्तानन्नवर् कुरिय वाट्रा ।।
लुंडर वमिर्दम् वंदिड्गुण् मिनेन् नोलित्त वूळि ।
कंडवर कळलै वाळ्ति काम कोडनैग निड्र ।।१३८९।।

अर्थ—अशोक वृक्ष, सुरपुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, छत्र, सिहासन, धवल चवर, दुंदुभि तथा भामडल इन आठ प्रतिहार्यो को देवो ने निर्माण किया उस समय भगवान की दिव्य-ध्वनि प्रगट हुई । तव केवली भगवान कहने लगे कि हे ससारी भव्य जीवो ! सुनो ।

इस प्रकार अनत चतुष्टय (ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य) से मडित मानो भगवान स्वय ही संबोधन कर रहे हो ऐसा मालूम पडता था । इस प्रकार उनके मुखारविद से निकली हुई

दिव्यध्वनि चारो दिशाओ मे फैल रही थी। इस प्रकार सभी उपस्थित भव्य जीवो को मोक्ष मार्ग का उपदेश मिला। उसे सुनकर सभी आनदित हुए ॥ ३८६॥

मंदर मिरंडै चूळ्द धातकी मलैगळ् पोल् ।
विदिरर् विजै वेंदर् मन्नव रेरणै योर्गळ् ॥
सुंदर मलरुं सांदुं दूपमुं मेदिमेरु ।
मंदर नामर् पादं पनिदु वाळ्तोडेळुंदार् ॥१३९०॥

अर्थ—तत्पश्चात् जम्बूद्वीप, धातकीखड, पुष्करार्द्ध ऐसे अढाई द्वीप मे रहने वाले सुमेरु के चारो ओर कुलगिरि पर्वत के समान, शतेद्र, विद्याधर राजा, भूमिपति इन सभी भव्यजीव आदि ने भक्ति पूर्वक भगवान की पूजा अर्चा आदि करके अत मे नमस्कार करके करवद्ध होकर स्तुति के लिये खडे हो गये ॥१३९०॥

चेरु वुरु तुयरोडु विळवेळु तुयरु ।
करुवुरु तुयरोडु कडैवरु तुयरुं ॥
मरुविय वुइर् विनै मरुवर् वरुळुं ।
पोरु वरु त्तिरुवडी पुगळ् तर वडैदुं ॥१३९१॥

अर्थ—सभी देव मिलकर इस प्रकार भगवान की स्तुति करने लगे—हे भगवन्! आप सदैव आत्मा मे स्वाभाविक दुख को उत्पन्न करने वाले नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चार गतियो के दुखो को नाश करने वाले धर्मोपदेश को देने वाले है। आपके चरण-कमलो को हम नमस्कार करते है। आपके चरण कमल हमारी रक्षा करे ॥१३९१॥

परुदिइ नोळि वेल पगै पशि पिनि केड ।
वरुवन मलर् मिशै मदननै नलिवन ॥
उईरुरु तोडर् वर वेरिवन उलगिनी ।
लरियन् पेरिय नुमडिइनै यडैदुं ॥१३९२॥

अर्थ—सूर्य और चद्रमा के प्रकाश को जीतने वाले, आत्मज्योति को आप प्राप्त हुए, और अनादि निधन द्रव्य कर्म और भाव कर्म को नाश किये हुए ऐसे आपके पवित्र चरण कमल को नमस्कार करते है ॥१३९२॥

मुरै पोरि मरै कड मुळुदु मोर् कनमदि ।
लरियु नल्लरि उडै ररैब इरैव नुम्मडिइनै ॥
युरुतवर् मनमिशै युरै वन उईरुरु ।
पिरवियै वर वेरि पेरुमय्य शरणं ॥१३९३॥

अर्थ—क्रमवर्ती जानने वाले इन्द्रिय ज्ञान के नाश होते ही सम्पूर्ण पदार्थो को एक साथ जाननेवाले केवलज्ञान रूपी सूर्य के प्रकाश से युक्त, जन्म-मरण रूपी ससार को नाश करने वाले आपके पवित्र चरण कमलो की शरण हम ग्रहण करते है। अर्थात् भव २ मे हमे आपके चरण कमलो की शरण मिले ।।१३६३।।

कुलिगमो डिगलुव कुविमुलै पुणरु नर् ।
तलै मै ये नगुवन तवनेरि वरुवन ।।
उलगिनै योरु नोडि यगवै नळगुव ।
सलैविल निलैय नुम्मल मलरडि यडैट्ु ।।१३६४।।

अर्थ—स्त्री के रूप को देखते ही कामीपुरुष काम विकार को प्राप्त होते हैं, ऐसे लोग भी आपके निर्ग्रंथ वीतराग स्वरूप को देखकर अपने हृदय मे मोक्ष जाने की इच्छा करके तदनुकूल चारित्र प्राप्त करने की भावना उत्पन्न करते हैं। ऐसे आपके पवित्र चरण कमल हमारी रक्षा करे ।।१३६४।।

उयर् वर उयरिय वुलगिनी नुईर् गळिन् ।
अयर् वर् वरमु दरुळ्व वमरर् गळ् ।।
मयर् वर मणि मुडि यनिवन पनिवार् ।
तुयर् वर वेरियु नुन् तुनै यडि तुळ्ट्ु ।।१३६५।।

अर्थ—इस ससार मे रहने वाले भव्य जीवो के दुखो को नाश करने वाले, धर्मोपदेश को देने वाले, ऐसे पवित्र चरण कमलो की शरण मे रहने वाले पूजा स्तोत्र पढने वालो को आपके चरण कमल हमेशा रक्षा करे ।।१३६५।।

इनैयन् तुदियी नो डिमयव रिरै वरै ।
मनमलि युवगैइन् वळिपडु मुरैनाळ् ।।
विनैवळि यामुम्मै योगु वियोगु सै ।
कनमलि यूनिल योगिगळानार् ।।१३६६।।

अर्थ—इस प्रकार चतुर्णिकाय देवो ने स्तोत्र आदि पढकर दोनो मेरु और मदर कवली भगवान को नमस्कार किया और जाते समय तुरत ही उनने अयोगकेवली गुण-स्थान को प्राप्त कर लिया। अर्थात् शेष घातिया कर्मो को नाश कर मुक्त हो गये ।।१३६६।।

आइडै यैदिनो डेवदु वेट्टिवनै ।
माय वेळ्ड्ु कनत्तुल गुच्चियै ।।
मेईनर् विन्नवर् मन्नवर् मेनिकद् ।
काय शिरप्पोड्ु वंदन रंगे ।।१३६७।।

अर्थ—सयोग केवली गुणस्थान के अनतर वे दोनो मदर और मेरू अन्तर्मुहूर्त मे पिच्चासी (८५) कर्म प्रकृतियो का नाश करके उर्द्ध्व गमन करके सिद्धशिला पर विराजमान हो गये। उस समय अग्नि कुमार देव तथा मनुष्य सभी मिलकर जिस स्थान पर निर्वाण हुआ था, आगये ।।१३९७।।

पोन्नरि शांदस् सून्नं पूमालै धूमै ।
मिन्नन पलवु मेदि इमयव रिरैंजु मिल्लै ।।
मिन्न न मुनिवर् मेनि मॅरिंदन् वियंदु नोंकि ।
पन्नरुं तुदिय रागि वानवर् पनिंदु पोनार् ।।१३९८"

अर्थ—स्वर्णहार, चंदन के सुगधित द्रव्य, पुष्पहार, कपूर आदि द्रव्यो से भगवान नख और केशो को लेकर भगवान का कृत्रिम पुतला बनाया और अग्निकुमार देवो ने उस को जला दिया। तत्पश्चात् सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चारित्र को उन्होने प्राप्त कर लिया था, इस कारण उन देवो ने उस भस्मि को अपने ललाट पर लगाया, और विधि पूर्वक निर्वाण कल्याण पूजा करके वे देव अपने-अपने स्थान को चले गये ।।१३९८।।

मुडिविला तडु माट्र मुदल् किळिय मूवमिर्द मुरईट्रोंड्रि ।
इडैलाम् विनं गोदला मोग मेरिंदार् बमिला विवल्बिर ट्रोडि।।
कडैला घाति केड काक्षिवलि येरिविवम् कम्नेतोड्रि ।
तोडर् वेला सरवेरिदुं तोड्रि नार्गुणत्तिलु नर् स्वयवु वानर्।।१३९९।।

अर्थ—इस प्रकार दोनो मेरू व मंदर मुनिराज ने मिथ्यात्व नामक दर्शन मोहनीय कर्म के नाश होते ही सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनो के बल मे मोहनीय कर्म का नाश किया। तदनतर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अतराय, मोहनीय, आयु और गोत्र इत्यादि आठो कर्मो का नाश करके अनतज्ञान, अनत दर्शन, अनत सुख और अनतवीय ऐसे चार चतुष्टय को प्राप्त हुए।।१३९९।।

मन मलिंद वोळियनवु मलर् मिरैद विरै यनवुं मल्गुसंदिन् ।
तुनि युमिळंद तन्मै इनुं तोडियव पेरिबत्तुळ्ळे तोंड्रि ।।
इनै पिरिदु मिलरागि इमयवरुं मादवरु मिरैजियेत्त ।
पनिवरिय शिवगति इनमरं दिरुदा ररवमिर्द मुंडारंड्रे ।।१४००।।

अर्थ—विमलनाथ तीर्थकर के उपदेश को सुनकर मेरू व मदर रत्न प्रकाश के समान, पुष्पो की सुगंध के समान शुद्धात्म स्वभाव से युक्त उपमातीत आत्मानंद अनत सुख को प्राप्त कर वे दोनो गणधर विमलनाथ भगवान के उपदेश के निमित्त से मोक्षपद को प्राप्त हुए। सत्सगति ये अत्यत नीच जीव भी यदि साधु या भगवान का निमित्त

मिल जाता है तो वह शीघ्र ही ससार सागर से तिर जाता है। इस प्रकार मेरू व मदर भगवान विमलनाथ के उपदेश से तथा उनके पवित्र चरण कमलो के प्रभाव से शीघ्र ही तिर गये ॥१४००॥

मदुरै नह्लि रामै देवन् मलैइर् शोदरै काविट्ट ।
तदिर् कळ लमरन् पिन्नु भरतन मालै वानोन् ॥
विदियिना लच्चुदंकन् वीत पीतन् निलांदै ।
कदि पदि यादित्तावन् मेरु नल्लगति वेंदन् ॥१४०१॥

अर्थ—ये मेरू मदर कौन थे? इस सवध मे आचार्य सक्षेप मे वतलाते हैं—

मेरू नाम का जीव पूर्वभव मे मदुरा नाम के ब्राह्मण की स्त्री थो। तदनतर वह स्त्री मरकर रामदत्ता देवी हो गई अर्थात् सिंहसेन महाराज की पटरानी हो गई। तदनतर वह आर्यिका दीक्षा लेकर स्वर्ग में जाकर भास्कर नाम का देव हो गया। वहा से चयकर विजयार्द्ध पर श्रीधरा हो गई। वहा से तपकर के कापिष्ठ स्वर्ग में देव हो गई। तत्पश्चात् वहा से रत्नमाला नाम की स्त्री पर्याय धारण की। तदनंतर तप करके अच्युत नाम के कल्प मे देव हुआ। इसके पश्चात् वहा से चयकर वीतभय नाम का वलदेव हुआ। तत्पश्चात् लांतव कल्प मे आदित्य देव हुआ। इसके वाद कर्मभूमि में आकर मनुष्य पर्याय धारण कर मेरू नाम होकर तपश्चरण करके मोक्ष प्राप्त कर लिया ॥१४०१॥

वारुणो पूर चंदन् वानवन् मंगै वानोन् ।
येरणि इरद नायुदन् नच्चुदन् विवीडन ॥
नारळल् नरगन् वेंद नमरण् पिन् सयंदनं पुर् ।
ट्रारणि तरणन् पैदार् मंदरन् शिवगति कोन् ॥१४०२॥

अर्थ—यह मंदर नाम का जीव पूर्वभव मे वारुणी नाम की ब्राह्मण की स्त्री थी। वह तपश्चरण करके पूर्णचंद नाम का सिंहसेन राजा का छोटा पुत्र होकर जन्म लिया। तदनंतर तपश्चरण करके वह देव हो गया। तदनतर यशोधरा नाम की स्त्री हुई। पुनः वह तप करके देव गति को प्राप्त किया। वहा से चय कर मध्यलोक में रत्नायुध राजा हुआ। वहां से तप करके अच्युत कल्प मे देव हुआ। वहां से चय कर विभीषण नाम का वासुदेव हुआ। वहां से नरक मे गया। नरक से आकर श्रीधाम नाम का राजा हुआ। वहां से तप करके ब्रह्मलोक मे जाकर देव हुआ। वहां से आकर जयत नाम का राजा हुआ। तदनतर धरणेंद्र हुआ। इसके पश्चात् मंदर नाम का राजा का पुत्र हुआ। इस प्रकार यह दोनो मेरू और मदर तप करके मोक्ष को चले गये ॥१४०२॥

इनैयदु वेंगुळिई नियलवु माट्रियल् ।
पिनैयदु विनैगळि नियल्वु पट्रियल् ॥
पिनैयदु पोरुळिन दियलदु वोटियल् ।
पिनैयदु तिरुवर डियल्वु तानुमे ॥१४०३॥

अर्थ—क्रोध या मायाचार से दुखी हुए सत्यघोष की कथा इस पुराण मे वर्णन की गई है। यह पुराण केवल सत्यघोष को लेकर ही है। क्योकि यह पर द्रव्य में आसक्त लोभ तथा मायाचार के द्वारा अनेक बार नरको मे जाकर कष्ट व दुख भोगता रहा। इसका विवेचन यहा तक किया गया। इस पुराण में पापी पुरुष तथा पुण्यात्मा पुरुषो का विवेचन किया गया है। सत्यघोष को पाप कर्म के उदय से दुख ही दुख भोगना पडा, और इन दोनों पुण्यवान पुरुषो को पुण्यानुबन्धी कर्म के कारण मुक्ति मिली। इस जीव को सुख और शांति का देने वाला जैनधर्म के अतिरिक्त कोई सहायक नही है। ऐसा समझकर भव्य जीवो को इस लक्ष्मी सपति को क्षणिक समझकर इसका सदुपयोग सत्कार्यों मे करके जैन धर्म को सदा अङ्गीकार करना चाहिये, और अपनी आत्मा को निर्मल बनाना चाहिये ।।१४०३।।

अरमल वुरुदि शैवार् कडा मिलै।
मरमला दिडर्शय वरुवदु मिलै ।।
नेरि ईवे इरंडयुं निणैंदु नित्तमुं।
कुरुगु मी नरनेरि कुट्र नींगवे ।।१४०४।।

अर्थ—आत्मा को सुख देने वाला जैन धर्म ही है। दूसरा कोई नही। आत्मा को दुख देने वाला मिथ्यात्व के समान और कोई पाप नही है। इसलिए भव्य जीव जैनधर्म का भली भाति मनन करके सदैव पाप को उत्पन्न करने वाले रागद्वेषादि को त्याग करके सच्ची आत्मा को सुख देने वाला सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र सहित निश्चय व व्यवहार धर्म की आराधना करके स्वानुभूति के रसिक बनें ।।१४०४।।

आकुव देदेनि लरत्तै याकुग।
पोकुव देदे निल् वेगुळि पोकुग ।।
नोकुवदेदेनिल् ज्ञान नोकुग।
काकुवदे देनिल् विरदम् काकवे ।।१४०५।।

अर्थ—प्रत्येक जीव को ग्रहण करने योग्य क्या है और छोडने योग्य क्या है—इसका विचार करके यदि देखा जाय तो सर्व प्रथम मिथ्यात्व क्रोधादि ही संसार के मूल कारण हैं। ऐसा समझ कर उनको त्याग कर सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र यह रत्नत्रय ही ग्रहण करने योग्य हैं, और यही मोक्ष के मार्ग होने से आत्म स्वरूप मे धारण करने योग्य हैं। जो भव्य प्राणी इस पवित्र चरित्र—पुराण को मन, वचन, काय से भक्ति पूर्वक पढता है, मनन करता है उस भव्य जीव को इस ज्ञान की आराधना से शीघ्र ही स्वर्ग मोक्ष फल की प्राप्ति होती है ।।१४०५।।

इति श्री वामनमुनि रचित मेरु मदर पुराण में मेरु मदर का मोक्षगमन तथा उनके पूर्वभव का वर्णन करने वाला तेरहवां अधिकार समाप्त हुआ और ग्रंथ पूर्ण हुआ।

।। इति जैनं जयतु शासनम्

पौष शुक्ला २ रविवार स० २०२८ वीर निर्वाण सं० २४६८ तदनुसार ता० १६ दिसम्बर सन् १९७१ मध्याह्न काल मे पार्श्वनाथ चूलगिरि पर अनुवाद रूप मे लिखकर समाप्त किया।

आइरत्तु नानूट्रिन् मेलु निरुयूंड्रान्।
पाप पुगळ् येरुक्कळ् मंदरर् "पार" ट्रूप ।।
तवराज राज कुरु मुनिवन् ट्रंद ।
भवरोग मंदिरमास् पादु ।।

१४०८ श्लोक रूप मे अत्यत पवित्र तपस्या करने वाले मेरु और मदर इन दोनो का चरित्र लिखवाया है ।। इति भद्रं।।